संविदा विधि

डॉ. रामगोपाल चतुर्वेदी

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय
भारत सरकार

लेखक

डॉ० रामगोपाल चतुर्वेदी का जन्म 1931 में हुआ था। राजस्थान विश्वविद्यालय की एल-एल० बी० परीक्षा में विश्वविद्यालय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के साथ आपने दर्शन-शास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि भी प्राप्त की। 1969 में, सांविधानिक तथा संसदीय अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली, द्वारा "पार्लियामेन्टरी फैलो" के रूप में आपका चयन हुआ। आगरा विश्वविद्यालय ने "फिलोसोफी ऑफ जस्टिस" विषयक शोध प्रबन्ध पर आपको डॉक्टर ऑफ फिलोसोफी की उपाधि प्रदान की है।

डॉ० चतुर्वेदी कुछ समय के लिए, मध्य प्रदेश राज्य में न्यायिक सेवा के सदस्य रहे हैं किन्तु सेवागत सीमाओं से उनकी मौलिक चिंतन की प्रवृत्ति का सामंजस्य न हो सका। अतः, उक्त सेवा त्याग कर, विगत अनेक वर्षों से, आप विधि व्यवसाय में संलग्न हैं।

डॉ० चतुर्वेदी विधि के क्षेत्र में लब्ध प्रतिष्ठ लेखक हैं। विधि व विधिक दर्शन के क्षेत्र में अब तक आपके अनेक मौलिक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। आपके प्रकाशित मौलिक ग्रंथों में, ज्यूडिशरी अंडर कांस्टीट्यूशन, नैचुरल एण्ड सोशल जस्टिस, प्रेजीडेण्ट एण्ड दी कौंसिल ऑफ मिनिस्टर्स, स्टेट एण्ड राइट्स ऑफ मैन, लॉ ऑफ क्लेम्स, लॉ एण्ड प्रोसीजर ऑफ डिपार्टमैण्टल इन्क्वायरीज एण्ड डिसीप्लिनरी ऐक्शन, आदि प्रमुख हैं।

विधि शास्त्र का वैदिक दर्शन नामक आपका ग्रंथ, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना द्वारा प्रकाशनाधीन है। "लॉ ऑफ रिट्स तथा लॉ ऑफ फण्डामेण्ट्ल राइट्स" आपके अन्य प्रकाशनाधीन ग्रंथों में प्रमुख हैं।

संविदा विधि

लेखक : डा० रामगोपाल चतुर्वेदी
अधिवक्ता

विधि साहित्य प्रकाशन
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय
भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली ।

समर्पण

अपनी पत्नी शीला को जो, इस पुस्तक के रूप में,
मेरे अनवरत लेखन यज्ञ में अनन्त प्रेरणा
बनने और सतत सहयोग करने की
अपनी संविदा की पूर्णाहुति
देकर देह-यष्टि
त्याग गई

प्रकाशकीय

विश्वविद्यालय स्तरीय विधि की मौलिक पुस्तकों का प्रकाशन भारत सरकार के विधि न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय के विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा किया जा रहा है। इस प्रकाशन योजना का मुख्य उद्देश्य विधि के विद्यार्थियों के लिए मानक और उपयोगी साहित्य सुलभ बनाना है। इस योजना के अधीन विधि के विभिन्न विषयों पर विद्वान लेखकों द्वारा लिखित कई मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी और इसकी उपादेयता बढ़ाने के लिए पाठकों द्वारा यदि कोई सुझाव दिए जाएंगे तो उनका स्वागत है।

शुद्धि पत्र

पृ० सं०	पंक्ति	के स्थान पर	पढ़ें
1	2	3	4
v	4	सलभ	सुलभ
vii	4	लखको	लेखकों
vii	1	मल	मूल
viii	3	यथोचित्र	यथोचित
x	20	अविक्रय	अवक्रय
xii	11	सबत	सबूत
xii	13	कपठ	कपट
xii	16	कपठ	कपट
xiii	24	आफ लाईस	आफ लार्ड्स
xvii	उपांतिम	मिमांसा	मीमांसा
xviii	27	की समपहरण	का समपहरण
xix	15	निम्मुक्ति	निर्मुक्ति
xix	18	सह प्रतिभूओं	सह प्रतिभुओं
xx	22	प्रणयमदार	पणयमदार
xxi	6	प्रत्यापक	प्रत्यायक
1	25	पयवेक्षण	पर्यवेक्षण
2	30	साकेदार	साझेदार
4	(अंतिम पाद टिप्पण)	नई क्वैलिटी	इनईक्वैलिटी
6	8	प्रत्यक	प्रत्येक
13	11	निरसिते	निरसित
14	19	स शासित	से शासित
23	3	निणित	निर्णीत
27	11	प्रतिगहीत	प्रतिगृहीत
35	8	नियम ह	नियम है
35	9	से ह	से है
37	6	वचनगृीता	वचनगृहीता
39	7	अनियम	अधिनियम
41	26	ोर	और
42	20	उदभत	उद्भूत
51	3	विधि, में	विधि में,
52	1	प्रस्तापना	प्रस्थापना
55	22	ज्ञान म	ज्ञान में
58	28	के थ	के थे
69	1	क्षत्र	क्षेत्र
69	3	आप्रान्त	आक्रान्त
69	7	प्रातग्रहण	प्रतिग्रहण
69	8	ारा	द्वारा
78	अंतिम	शन्य	शून्य
94	5	प्राप्तिव्य	प्राप्तव्य
121	18	अनियम	अधिनियम

377—VSP(ND)/81

1	2	3	4
128	11	शन्य	शून्य
146	6	यक्तियुक्त	युक्तियुक्त
147	15	यक्तियुक्त	युक्तियुक्त
147	17	सविदाय	संविदायें
147	17	सामाजक	सामाजिक
148	16	विधि पूर्ण	विधिपूर्ण
149	21	प्रतिकुल	प्रतिकूल
149	28	कारबार ी	कारबार की
153	28	नामंजरी	नामंजूरी
154	2	थुनियन	यूनियन
154	6	दप्टांत	दृष्टांत
159	15	जा प्राय	जो प्राय:
159	30	तजी	तजी
169	22	पर्ण	पूर्ण
179	13	तत्प्रतिकल	तत्प्रतिकूल
179	18	प्रातकूल	प्रतिकूल
179	19	पकल्पना	प्रकल्पना
179	32	तत्प्रतिबद्ध	तत्प्रतिकूल
182	उपांतिम	सयुक्त	संयुक्त
183	1	मल ऋणी	मूल ऋणी
185	3	निमय	नियम
185	5	बना	बिना
186	1	म किसी	में किसी
191	13	नथूलाल	नाथलाल
198	11	उपयौजन	उपयोजन
198	20	काय करने	कार्य करने
200	24	अवस्थायें में	अवस्थायें
212	1	का ओर	की ओर
214	9	अद्यत:	आद्यत:
251	पाद टिप्पण 1	टाईम्स	टाइम्स
301	12	प्रकार क	प्रकार के
304	उपांतिम	प्रतिमति	प्रतिमूति
313	22	के सजन	के सर्जन
316	9	ंविदा	संविदा
330	23	प्रतिधारणा	प्रतिधारण
335	4	चतुर्भूज	चतुर्भुज
387	23	वयक्तिक	वैयक्तिक

आमुख

संविदा विधि पर लिखी गई प्रस्तुत पुस्तक के मूल में, भारत सरकार के विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मन्त्रालय द्वारा हिन्दी में मानक विधि-साहित्य के अभाव की पूर्ति का उद्देश्य है। अतः पुस्तक का लेखन, भारत सरकार के उक्त मन्त्रालय के नीति-निदेश के अनुसार हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में, प्रचलित टीका-शैली को त्याग कर व्याख्यान-शैली का आश्रय लिया गया है, किन्तु, व्याख्यान शैली में होने पर भी, इस पुस्तक में, 1 मई, 1974 को यथा विद्यमान भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 के प्राधिकृत हिन्दी पाठ में अन्तर्विष्ट अधिनियम की किसी भी धारा और धाराओं से संलग्न किसी भी दृष्टान्त का लोप नहीं किया गया है। निर्णयज-विधि के समावेश के लिए, अन्य विदेशी जर्नलों तथा इण्डियन लॉ रिपोर्ट्स में सम्प्रकाशित विनिश्चयों की रिपोर्ट के अतिरिक्त, आल इण्डिया रिपोर्टर, नागपुर में सम्प्रकाशित जुलाई, 1979 तक तथा भारत सरकार के विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मन्त्रालय द्वारा, प्रकाशित उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय निर्णय-पत्रिकाओं में सम्प्रकाशित 1973 से दिसम्बर, 1976 तक की निर्णयज-विधि का सार ग्रहण किया गया है। संविदा विधि पर अब तक की सम्प्रकाशित सम्पूर्ण निर्णयज-विधि का समावेश इस पुस्तक में न सम्भव था और न ही समीचीन। निर्णयज-विधि का उपयोग, विधि के सिद्धान्तों को सरल और स्पष्ट करने के प्रयोजन से होता है और इसकी सार्थकता का उसी सीमा तक अनुमान करते हुए, निर्णयज-विधि के चयन में यथेष्ट सतर्कता बरती गई है।

व्याख्यान-शैली में लिखी जाने वाली किसी भी पुस्तक में यह कठिनाई तो स्वाभाविक है कि उसमें सम्बन्धित अधिनियम की धाराओं का क्रम-बद्ध विवेचन सम्भव नहीं रहता और फलतः धाराओं के क्रम में उलट-फेर करके उनकी विषयवस्तु को प्रमुख और सुसंगत शीर्षों के अंतर्गत संजोने का कार्य वस्तुतः श्रम-साध्य होता है और कहीं-कहीं कुछ धाराओं की अन्तर्वस्तु की पुनरावृत्ति भी अपरिहार्य हो जाती है, तथापि इसका सर्वाधिक लाभ यह रहता है कि इस शैली में विषय-प्रवेश और विषयवस्तु की प्रस्तावना और समीक्षा में, उस मौलिकता का, जिसका कि विधि विषयक पुस्तकों में दावा किया जाना कठिन है, अपेक्षाकृत अधिक अवसर रहता है। पुस्तक के जो स्थल अधोटिप्पणों से युक्त हैं, उन्हीं में, लेखक द्वारा प्रयतित न्याय-शास्त्रिक मौलिकता का समाकलन किया जा सकता है।

अंग्रेजी पाठ के तत्सम हिन्दी पारिभाषिक शब्दों के लिए, राजभाषा (विधायी) आयोग द्वारा प्रकाशित विधि-शब्दावली का आश्रय लिया गया है, और सुविधा की दृष्टि से, पुस्तक के अन्त में, पारिभाषिक शब्दों की हिन्दी-अंग्रेजी और अंग्रेजी-हिन्दी तालिकायें दी गई हैं।

पुस्तक की रचना, मूलतः, भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में विधि-विषय के शिक्षार्थी छात्रों के दृष्टिकोण से की गई है, तथापि ऐसी आशा है कि इसे कानून के वेत्ता, अधिवक्तागण तथा न्यायिक कार्यवाही को हिन्दी में सम्पन्न करने वाले न्याय-कर्ता भी उपयोगी पायेंगे।

सन्दर्भ-ग्रन्थों की सूची में उल्लिखित जिन विद्वान् लेखकों की टीकाओं से, सहायता ली गई हैं, उनके प्रति नतमस्तक होने का दायित्व मानकर, विज्ञ पाठकों से भी यह विनम्र निवेदन है कि वे इस सम्बन्ध में अपने मूल्यवान सुझाव देकर अवश्य अनुगृहीत करें जिससे आगामी संस्करण उनका यथोचित लाभ अर्जित कर सके।

डा० रा० गो० चतुर्वेदी

दिनांक :
21 मार्च, 1979

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

समर्पण . . . iii
प्रकाशकीय . . . v
आमुख . . . vii
निर्णय सूची . . . xxiii
अध्याय 1 : विषय-प्रवेश . . . 1–15
सामाजिक समागम और संविदा . . . 1
संविदा का व्यवहारिक स्वरूप . . . 3
न्यायालय के अवमान की विधि से संविदा विधि के क्षेत्र की पृथकता . . . 7
भारतीय संविदा अधिनियम की पृष्ठभूमि . . . 7
अधिनियम का उद्देश्य, विस्तार और व्यावृत्ति . . . 9
क—उद्देशिका . . . 9
ख—प्रवर्तन भूतलक्षी नहीं . . . 9
ग—अधिनियम सर्वांगीण नहीं है . . . 9
घ—प्रथा अथवा रूढ़ियों को छूट . . . 11
ङ—दो महत्वपूर्ण शब्दावलियां . . . 13
विदेशी संविदाएं . . . 14
संविदा का प्ररूप . . . 15
अध्याय 2 : संविदा के संघटकों का निर्वचन . . . 16–48
निर्वचन का महत्व . . . 16
अर्थान्वयन और निर्वचन . . . 16
निर्वचन के कुछ सामान्य नियम . . . 16
संविदा अधिनियम का निर्वचन खंड . . . 19
निर्वचन खंड में प्रयुक्त पद . . . 21
प्रयुक्त पदों की व्याख्या . . . 22
क—प्रस्थापना . . . 22
ख—वचन . . . 26
ग—वचनदाता और वचनगृहीता . . . 27
घ—प्रतिफल . . . 28
(i) प्रतिफल का महत्व . . . 28
(ii) प्रतिफल का अर्थ . . . 29
(iii) हेतु और प्रतिफल . . . 30
(iv) प्रतिफल की पर्याप्तता . . . 30
(v) प्रतिफल की समग्रता . . . 30

पृष्ठ संख्या

(vi) न्यूडम पैक्टम 31
(vii) वचनदाता की वांछा 32
(viii) प्रतिफल का किसी की भी ओर से उद्भूत होना तथा पर-व्यक्ति द्वारा वाद लाने के अधिकार की सीमा 33
(ix) निष्पादित और निष्पाद्य प्रतिफल 37
(x) भूतकालिक प्रतिफल 38
(xi) प्रविरति से उद्भूत प्रतिफल 39
(xii) प्रतिफल की यथायोग्यता 40
ङ करार 41
1. करार और प्रतिफल 41
2. करार और संविदा 42
च—व्यतिकारी वचन और पारस्परिकता का भाव . . . 42
छ—शून्य करार 43
ज—करारों की शून्यता और प्रवर्तनीयता में भेद . . . 43
झ—संविदा 43
ञ—शून्यकरणीय संविदा 45
ट—संविदा जो शून्य हो जाए 46
संविदा और विबन्ध में भेद 46
विक्रय की संविदा और श्रम अथवा कार्य की संविदा में अन्तर . . 47
विक्रय और अविक्रय के करार में भेद 47
संविदाओं का अर्थान्वयन 48
अध्याय 3 : संविदा के गठन की पृष्ठ भूमि . . . . 49—73
मतैक्य अर्थात् कान्सैन्स एडइडम 49
संसूचना और उसका तात्विक महत्व 50
लालमन बनाम गौरीदत्त का मामला 50
कार्य अथवा कार्य के लोप में संसूचना की अभिव्यक्ति . . . 51
घोषणा अथवा विज्ञापन की प्रस्थापना का प्रतिग्रहण . . . 52
कारलिल बनाम कार्बोलिक स्मोक बाल का मामला . . . 53
हर भजन बनाम हर चरण का मामला 54
प्रतिग्रहण की संसूचना जब अनिवार्य हो 54
टिकट, रसीद, आदि की शर्तों का प्रतिग्रहण 55
संसूचना की सम्पूर्णता 55
पारेषण का महत्व 57
प्रस्थापनाओं और प्रतिग्रहणों का प्रतिसंहरण 57
प्रतिसंहरण के विषय में भारतीय विधि की विशेषता . . . 57
हैन्थोर्न बनाम फ्रेजर का मामला 58
प्रतिग्रहण के लिए प्रस्थापना के खुले रहने की अवधि . . . 59

पृष्ठ संख्या

प्रतिसंहरण की रीति 60
प्रस्थापना के प्रतिसंहरण के संबंध में कुछ सार की बातें . . . 60
प्रस्थापना के वचन में सम्परिवर्तन की शर्तें 63
निष्पन्न (कनक्लूडेड) संविदा 64
प्रतिग्रहण की रीति के विषय में प्रस्थापक का दायित्व . . . 65
प्रस्थापना की शर्तों में परिवर्तन का प्रभाव 66
संविदा के गठन का क्षण 66
सशर्त प्रतिग्रहण की परख 66
विलेख द्वारा संविदा का गठन 67
आचरण, शर्त के पालन, अथवा परिस्थिति से प्रतिग्रहण . . . 67
प्रतिफल के ग्रहण से प्रतिग्रहण 69
अभिव्यक्त और विवक्षित वचन 70
डाक तार अथवा टेलिफोन की संसूचनाओं में संविदा गठन का स्थान . . 70
नीलाम की संविदा में प्रस्थापना का प्रतिसंहरण . . . 71
निविदा का प्रतिग्रहण 72
अध्याय 4 : संविदा के गठन की शर्तें 74–101
विधित: प्रवर्तनीय करार ही संविदा है 74
कौन-सा करार विधित: प्रवर्तनीय है 74
करार के लिए सक्षम पक्षकार 75
प्राप्तवयता 76
अवयस्क द्वारा संविदा 76
मोहरी बीबी बनाम धरमोदास घोष का मामला 77
अवयस्क के दायित्व के संबंध में विचारणीय प्रश्न . . . 79
क—प्राप्तवयता पर अनुसमर्थन 79
ख—अवयस्क द्वारा उठाए गए लाभ का प्रत्यास्थापन . . . 80
ग—अपकृत्य के लिए दायित्व 81
घ—अवयस्क को प्रदाय की गई आवश्यक वस्तुओं के लिए दावा . . 81
ङ—अवयस्क की भागीदारी 82
च—विनिर्दिष्ट पालन 82
छ—कम्पनी के शेयरों का क्रय 82
ज—पट्टेदारी अथवा अन्य व्यवसाय 82
झ—अवयस्क और अन्य व्यक्तियों का संयुक्त वचन-पत्र . . . 83
ञ—अवयस्क वचनगृहीता 83
स्वस्थ चित्तता 83
व्यक्तिगत निरर्हता 84
क—विदेशी शत्रु की संविदा . . . . . [illegible]

	पृष्ठ संख्या
ख—अनिगमित निकाय की संविदा	84
ग—विवाहित स्त्री निरर्ह नहीं	85
सम्मति	85
सम्मति की स्वतंत्रता का अर्थ	86
एक विरोधाभास	86
प्रपीड़न का अर्थ	87
प्रपीड़न और विबाध्यता (ड्यूरेस) में भेद	87
'प्रपीड़न' के विस्तार का सम्यक् परीक्षण	88
असम्यक् असर का अर्थ	89
असम्यक् असर की स्थितियां	91
असम्यक् असर का अभिवाक् व सबत	92
असम्यक् असर और प्रपीड़न में भेद	93
कपठ का अर्थ	93
मौन द्वारा कपट	93
कपट वाले मामलों की मीमांसा	94
कपठ और दुर्व्यपदेशन में भेद	96
'क्रेता सावधान' का सूत्र	96
परम विश्वास की स्थिति	96
दुर्व्यपदेशन का अर्थ	97
दुर्व्यपदेशन की परिभाषा की समालोचना	97
दुर्व्यपदेशन तथा कपट में भेद	98
भूल	99
सरकार के साथ संविदा विशेष की शर्तें	100
अध्याय 5 : शून्यकरणीय संविदा और शून्य करारों के विषय में	102–162
शून्यता और शून्यकरणीयता	102
शून्यकरणीयता और विखंडनीयता	103
प्रपीड़न, कपट या दुर्व्यपदेशन द्वारा कारित करारों की शून्यकरणीयता	104
प्रपीड़न, कपट या दुर्व्यपदेशन के कारण शून्यकरणीयता पर टिप्पणी	106
असम्यक् असर द्वारा कारित संविदा की शून्यकरणीयता	108
असम्यक् असर से कारित संविदा की शून्यकरणीयता की सीमा	108
करार पर भूल का प्रभाव	109
क—भूल का अर्थ	109
ख—संविदा अधिनियम में भूल संबंधी उपबन्ध	110
ग—भूल संबंधी कुछ अन्य बातें	110
घ—सत्य के बारे में उभयपक्षीय भूल	111
ङ—तथ्य की भूल के आवश्यक तत्व	112

पृष्ठ संख्या

च—विधि के बारे की भूल 113
छ—कल्याणपुर लाइम वर्क्स का मामला 113
ज—तथ्य के बारे में एकपक्षीय भूल 115
झ—भूल के प्रभाव का सारांश 115
उद्देश्य अथवा प्रतिफल की विधिविरुद्धता के कारण शून्य करार . 116
क—विधि विरुद्ध प्रतिफल और विधिविरुद्ध उद्देश्य . . . 116
ख—शून्यता और विधि विरुद्धता में भेद और साम्पार्श्विक करारों पर प्रभाव . 117
ग—किस विधिविरुद्ध उद्देश्य या प्रतिफल के कारण करार शून्य होता है . 118
घ—विधि निषिद्धता और तत्कारण शून्य करार . . . 120
विधि के उपबन्धों को विफल कर देने वाले शून्य करार . . . 122
उद्देश्य अथवा प्रतिफल की कपटपूर्णता से करार शून्य . . . 122
शरीर अथवा सम्पत्ति को क्षतिकारी करार शून्य है . . . 123
अनैतिकता 123
अनैतिकताग्रस्त करार शून्य है 123
भूतकालिक सहवास के मामले 124
लोकनीति—प्रतिकूलता 125
क—परिभाषा में कठिनाई 125
ख—परिभाषा में विस्तार की आवश्यकता 126
ग—लोकनीति के प्रतिकूल कुछ सुपरिचित शीर्षक . . . 127
घ—लोकनीति के प्रतिकूल अन्य शीर्षक 128
1. अभियोजन को कुंठित करना 128
2. वैवाहिक दलाली 129
3. जयांशभागिता और पोषण 129
4. रामस्वरूप बनाम कोर्ट आफ वार्ड्स का मामला . . . 130
5. अधिवक्ता और मुवक्किल के मध्य करार . . . 131
भागतः विधि-विरुद्ध करार 132
समदोषिता का सिद्धान्त 133
काले धन का संव्यवहार 133
विद्यालय में प्रवेश के लिए धन का उपदान 134
न्यायिक पृथक्करण के वाद में भरणपोषण का करार . . . 134
लोकनीति के प्रतिकूल न होने वाले दो उदाहरण . . . 134
करारों की शून्यता का प्रभाव 135
प्रतिफल के अभाव में करार की शून्यता 135
क—सामान्य सिद्धान्त 135
ख—प्रतिफल का चमत्कार 136
ग—लिखित वचन और प्रतिफल 136
घ—आनुग्रहिक कार्य के प्रतिकर का वचन और प्रतिफल . . . 137

पृष्ठ संख्या

ङ--व्यतिकारी वचन और प्रतिफल 138
च--अपर्याप्त प्रतिफल 139
छ--ठीक प्रतिफल और मूल्यवान प्रतिफल 139
कतिपय बिना प्रतिफल वाले करारों की विधिमान्यता . . . 140
क--नैसर्गिक स्नेह अथवा प्रेमवश किया गया लिखित रजिस्ट्रीकृत करार . 140
ख--पहले ही की गई बात के प्रतिकर का करार . . . 141
ग--परिसीमा विधि वारित ऋण के संदाय का करार . . . 143
1. 'ऋण' का अर्थ 143
2. ऐसे करार के सम्बन्ध में अन्य बातें 144
बिना प्रतिफल दान की विधिमान्यता 145
कतिपय अवरोधक करारों की शून्यता 145
क--अवरोधक करारों की शून्यता का ध्येय 145
ख--सामाजिक न्याय और संविदा की स्वतंत्रता . . . 146
ग--विवाह के अवरोधक करार की शून्यता 147
घ--व्यापार के अवरोधक करार की शून्यता 148
ङ--व्यापार समुच्चय 149
च--गुडविल के विक्रय द्वारा स्थापित वृत्ति . . . 149
छ--विधिक कार्यवाहियों के अवरोधक करार की शून्यता . . 150
1. नियम का कथन 150
2. नियम के दो अपवाद 151
3. स्काट बनाम एवरी खण्ड 152
अनिश्चितता के कारण शून्य करार 154
पंद्यम के तौर के करार की शून्यता 155
पंद्यम का स्वरूप 156
पंद्यम और सट्टे में भेद 156
पंद्यम के आवश्यक तत्व 157
पंद्यम से युक्त साम्पार्श्विक करार 158
कीमतों में अन्तर का सट्टा 159
तेजी-मन्दी के संव्यवहार 159
पक्की और कच्ची आढ़त 160
अग्रिम संविदा 160
चिटफण्ड, लाटरी और बीमा 161

अध्याय 6 : समाश्रित संविदायें 163-168
समाश्रित संविदा का स्वरूप 163
समाश्रित संविदा और सशर्त करार 163
'साम्पार्श्विक' शब्द का प्रयोग अस्पष्ट 164

पृष्ठ संख्या

व्यतिकारी वचन और समाश्रित संविदा 165
घटना के घटित होने पर प्रवर्तनीय संविदा 165
बशीर अहमद बनाम आंध्र प्रदेश राज्य का मामला . . . 165
घटना के घटित न होने पर प्रवर्तनीय संविदा 166
भावी आचरण पर समाश्रित घटना कब असंभव मानी जाए . . . 166
नियत समय में घटनीय घटनाओं पर समाश्रित संविदाओं की शून्यता और प्रवर्तनीयता की स्थिति 167
असंभव घटनाओं पर समाश्रित करारों की शून्यता . . . 167
अधिनियम की धारा 36 और धारा 56 167
समाश्रित करार और पंद्यम के तौर के करार 168
अध्याय 7 : संविदाओं के पालन के विषय में 169–218
परिचायक टिप्पणी 169
पालन और विनिर्दिष्ट पालन 169
संविदा के पक्षकारों की बाध्यता 170
संविदा का समनुदेशन 170
व्यक्तिगत प्रकार के वचन की बाध्यता किस पर 172
पालन की प्रस्थापना के प्रति ग्रहण से इन्कार का प्रभाव . . . 175
पालन की प्रस्थापना का अर्थ 176
पूर्णतः पालन से इन्कार का प्रभाव 177
प्रत्याशित वचन भंग 178
अन्य व्यक्ति द्वारा किए गए पालन के प्रतिग्रहण का प्रभाव . . 179
संयुक्त वचनों में न्यागमन के सिद्धान्त 179
सामान्यिक अभिधारी और संयुक्त अभिधारी का भेद . . . 180
अधिनियम की 42वीं और 45वीं धाराओं में अन्तर . . . 181
संयुक्त वचन में प्रत्येक वचनदाता की विवशता 181
सामर्थ्यानुपात का सिद्धान्त 183
संयुक्त दायित्व और पृथक्-पृथक् दायित्व 183
संयुक्त वचन में एक वचनदाता की निर्मुक्ति 183
वचनदाताओं की संयुक्तता का दोहरा प्रभाव 184
पालन का समय, स्थान और उसका प्रकार 184
क—स्थान और समय आदि का महत्व 184
ख—अधिनियम के पांच उपबन्ध 185
1. युक्तियुक्त समय का नियम अर्थात् जब समय विनिर्दिष्ट न हो . 185
2. जब समय विनिर्दिष्ट हो 185
3. जब पालन आवेदन पर किया जाना हो . . . 186

पृष्ठ संख्या

4. देनदार, लेनदार की खोज करे अर्थात् जब स्थान नियत न हो और आवेदन न किया जाना हो 187
5. जब समय और प्रकार वचनगृहीता द्वारा विहित हो . . 188
व्यतिकारी वचनों का पालन 189
क—पालन और उसकी तीन अवस्थाएं 189
ख—तीनों अवस्थाओं का विवेचन 189
1. जब साथ-साथ पालन किया जाना हो . . . 189
2. पालन किस क्रम में किया जाए 190
3. नाथूलाल बनाम फूलचन्द वाला मामला . . . 191
4. पहले पालन होने वाले वचन में व्यतिक्रम का प्रभाव . . 192
पालन के सम्बन्ध में आस्थान परिदान और बिल्टीकर परिदान का भेद . 192
एक पक्ष का दूसरे पक्ष को पालन से निवारित करने का प्रभाव . . 193
शून्यकरणीय संविदा के विखण्डन आदि की संसूचना . . . 194
पालन के समय की विवेचना 194
क—अधिनियम की धारा 55 के अन्तर्गत तीन आकस्मिकताएं . . 194
ख—समय संविदा का मर्म कब होता है 195
1. सामान्य संविदाओं में 195
2. व्यापारिक संविदाओं में 195
3. स्थावर सम्पत्ति के अन्तरण की संविदा में . . . 195
4. पट्टे के नवीकरण की संविदा में 195
5. स्थावर सम्पत्ति के प्रति हस्तान्तरण की संविदा में . . 196
पालन के क्रम में संदायों के विनियोग 196
संदायों के विनियोग के तीन उपबन्ध 197
क—जबकि विनियोग का निर्देश उपदर्शित हो . . . 197
ख—लेनदार के विवेकानुसार विनियोग 197
ग—कालक्रमानुसार या अनुपातत: उपयोजन . . . 198
असम्भव कार्य करने का करार 198
असम्भाव्यता के सिद्धान्त का सामान्य अर्थ 199
क—अधिनियम की धारा 32 और धारा 56 का भेद . . . 199
ख—आन्वयिक कपट के अर्थ में असम्भाव्यता . . . 199
ग—असम्भाव्यता के आधारों का वर्गीकरण 200
असम्भाव्यता के मामलों में आवश्यक तत्व 200
असम्भाव्यता के अर्थ का विस्तार 201
निष्पादित संविदा पर असम्भाव्यता लागू नहीं 202
असम्भाव्यता की सीमा 202
समझौते की डिक्री पर असम्भाव्यता लागू नहीं 203
असम्भाव्यता सम्बन्धी दो अन्य दृष्टान्त 203

	पृष्ठ संख्या
सत्यव्रत घोष बनाम मगनीराम का मामला	203
उस करार का पालन जिसमें वैध और अवैध दोनों बातों का मिश्रण हो	206
उस अनुकल्पी वचन का पालन जिसकी एक शाखा अवैध हो	206
संविदाओं का उन्मोचन अर्थात् वे संविदाएं जिनका पालन आवश्यक न रहा हो	206
क—उन्मोचन का अर्थ	206
ख—उन्मोचन की अवस्थाएं	208
1. नवीयन, विखंडन या परिवर्तन द्वारा उन्मोचन	208
2. नवीयन का स्वरूप	209
3. परिवर्तन का अर्थ सारवान परिवर्तन	209
4. वचनदाता को परिहार या अभिमुक्ति देकर उन्मोचन	209
5. एकॉर्ड एण्ड सेटिसफैक्शन के कुछ मामले	210
5क. अधित्यजन का सिद्धान्त	211
6. शून्यकरणीय संविदा के विखण्डन द्वारा उन्मोचन	211
7. वचनगृहीता की ओर से सौकर्य में उपेक्षा द्वारा विखण्डन	212
संविदा के शून्य हो जाने या संविदा की शून्यता का पता चलने का परिणाम	212
यह नियम सरकार और स्थानीय निकायों पर भी लागू होता है	213
करार की शून्यता का पता चलने और संविदा के शून्य हो जाने की स्थितियां	213
'फायदा' के तात्पर्य में अग्रिम धन के निक्षेप का प्रत्यावर्तन सम्भव नहीं	214
शून्य करार के अधीन संदत्त धन का प्रत्यावर्तन	215
'पता चले' शब्द की व्याख्या	217
अध्याय 8 : संविदा के सदृश सम्बन्धों के विषय में	**219–226**
परिचयात्मक	219
असमर्थ व्यक्ति को प्रदाय की गई वस्तुओं के लिए प्रतिपूर्ति	219
हितबद्ध व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति से शोध्य किसी धन के संदाय कर दिये जाने पर प्रतिपूर्ति	220
अनानुग्रहिक कार्य का फायदा उठाने वाले व्यक्ति की बाध्यता	221
क—संविदा अधिनियम की धारा 70	221
ख—धारा 70 का विस्तार	221
ग—धारा 70 के आवश्यक तत्व	222
घ—धारा 70 सरकार और निकायों पर भी लागू होगी	222
ङ—प्रत्यावर्तन का अर्थ	223
च—अधिकारोचित प्रतिकर या क्वान्टम मैरियट का सिद्धान्त	223
पड़े माल के ग्रहण का दायित्व	224
भूल या प्रपीड़न द्वारा प्राप्त संदाय का दायित्व	225
क—संविदा अधिनियम की धारा 72	225
ख—'भूल' शब्द की मिमांसा	225
ग—प्रपीडन का अर्थ	226

2—377 व्ही० एस० पी० (एद०डी०)/81

पृष्ठ संख्या

अध्याय 9 : संविदा भंग के परिणामों के विषय में 227–255

संविदा भंग का अर्थ 227

संविदा भंग और संविदा का प्रत्याशित भंग . . 227

संविदा भंग की दशा में विधिक उपचार . . 228

(i) विनिर्दिष्ट पालन . . 228

(ii) व्यादेश . . . 228

(iii) अधिकारोचित प्रतिकर . . . 228

(iv) हानि या नुकसान के लिए प्रतिकर . . . 229

प्रतिकर का अर्थ और अधिकारोचित प्रतिकर तथा नुकसान के लिए प्रतिकर में अन्तर 230

संविदा विधि के अन्तर्गत प्रतिकर के उपचार 230

संविदा अधिनियम की धारा 73 और उसके दृष्टांत . . . 230

धारा 73 के दृष्टान्तों और निर्णयज विधि के आधार पर प्रतिकर के प्राक्कलन के कतिपय सिद्धान्त 234

हैडले बनाम बैक्सेन्डेल 237

जमाल बनाम मुल्ला दाऊद एण्ड सन्स का मामला . . . 238

धारा 73 का द्वितीय चरण--हानि की दूरस्थता या परोक्षता . . 239

हैडले और जमाल वाले मामलों के सूत्रों की मान्यता और अनुषंगी उप-सिद्धान्त 240

क्या ब्याज को नुकसानी के तौर का प्रतिकर माना जा सकता है . . 241

अविधिमान्य संविदा के भंग की अवस्था में प्रतिकर की अदेयता . . 242

शास्ति के अनुबंधयुक्त संविदा के भंग पर प्रतिकर के लिए संविदा अधिनियम की धारा 74 242

शास्ति और परिनिर्धारित नुकसानी में अंतर 243

धारा 74 के वर्तमान स्वरूप की जटिलता 244

संविदा का अनुबंध शास्ति के तौर का कब होता है . . . 245

शास्ति और परिनिर्धारित नुकसानी के भेद की निःसारता . . . 247

शास्ति, परिनिर्धारित नुकसानी और ऋण की भिन्नता . . . 248

अग्रिम धन के निक्षेप और प्रतिभूति की समपहरण . . . 249

हनुमान काटन मिल्स का मामला 252

वर्धित ब्याज के संदाय का अनुबन्ध 253

जमानतनामा या मुचलका की राशि का समपहरण . . . 254

शेयर का समपहरण 254

समझौते वाली डिक्री में व्यतिक्रमी खण्ड . . . 254

वचन पत्र अथवा परक्राम्य लिखत पर धारा 74 का लागू होना . . 254

नुकसान नहीं तो नुकसानी भी नहीं 254

संविदा के अधिकारपूर्ण विखण्डन पर प्रतिकर 255

	पृष्ठ संख्या
अध्याय 10 : क्षतिपूर्ति और प्रत्याभूति के विषय में	**256–274**
क्षतिपूर्ति और प्रत्याभूति का स्वरूप और भेद	256
बीमे की संविदा का स्वरूप	258
क्षतिपूर्तिधारी पर वाद लाए जाने की दशा में उसका अधिकार	258
क्षतिपूर्ति के दायित्व का उद्भूत होना	259
चलत प्रत्याभूति क्या है	259
चलत प्रत्याभूति और साधारण प्रत्याभूति में अन्तर	259
प्रत्याभूति का प्रति संहरण	260
प्रतिभू के दायित्व की सीमा	261
प्रतिभू के उन्मोचन की अवस्थाएं	262
प्रतिभू के भागत: उन्मोचन की अवस्था	266
वे अवस्थाएं जहां प्रतिभू उन्मोचित नहीं होता	267
1. मूल ऋणी को समय दिए जाने का पर-व्यक्ति से करार	267
2. लेनदार की मूल ऋणी के विरुद्ध वाद लाने से प्रविरति	267
सह-प्रतिभू की निम्मुक्ति	269
प्रतिभू के अधिकार की तीन कोटियां	269
मूल ऋणी के विरुद्ध प्रतिभू के दो अधिकार	269
सह प्रतिभूओं के परस्पर दो अधिकार	271
लेनदार के विरुद्ध प्रतिभू के अधिकार	273
प्रत्याभूति की अविधिमान्यता की तीन अवस्थाएं	273
अध्याय 11 : उपनिधान के विषय में	**275–296**
उपनिधान का स्वरूप	275
कौन-सा संव्यवहार उपनिधान नहीं है	276
उपनिधान के आवश्यक तत्व	276
संविदा के अधीन किए गए उपनिधान की कोटियां	277
उपनिधान की संविदा की शून्यकरणीयता और पर्यवसान	278
उपनिधाता के कर्त्तव्य और दायित्व	278
उपनिहिती के दायित्व	279
1. माल के प्रति सतर्कता का दायित्व	279
(i)—सामान्य उपबन्ध	279
(ii)—होटल वालों के दायित्व	280
(iii)—सामान्य वाहक और उनके दायित्व	281
(iv)—लॉण्ड्री वालों के दायित्व	282
2. अप्राधिकृत उपयोग के लिए दायित्व	282
3. उपनिहित माल की वापसी का दायित्व	283
4. माल की वापसी न किए जाने पर दायित्व	283

पृष्ठ संख्या

5. माल में हुई वृद्धि या उसके लाभ के लिए दायित्व . . . 283
उपनिहित और अन्य माल के मिश्रण का प्रभाव 283
1. जब मिश्रण सम्मति से किया जाए 284
2. बिना सम्मति मिश्रण जब पृथक्करण संभव हो . . . 284
3. बिना सम्मति मिश्रण और पृथक्करण संभव नहीं हो . . . 284
उपनिहिती की विधिक सुरक्षा 285
1. संयुक्त उपनिधाताओं की दशा में माल प्रतिपरिदत्त करने का नियम . 285
2. बिना हक वाले उपनिधाता को सद्भावपूर्वक प्रतिपरिदान का नियम . 285
3. उपनिहिती का साधारण और विशिष्ट धारणाधिकार . . 286
4. माल के वास्तविक हकदार का निर्णय कराने का नियम . . 287
पड़ा माल पाने वाले के विधिक अधिकार 287
गिरवी रूपी उपनिधान 288
गिरवी, बन्धक, विक्रय और आडमान 289
गिरवी में कब्जे का परिदान आवश्यक 289
अवक्रय अर्थात् भाड़ा-क्रय (हायर परचेज) 290
पणयमकार के परिसीमित हित वाली गिरवी 291
वाणिज्यिक अभिकर्ता द्वारा गिरवी 291
शून्यकरणीय संविदा के अधीन कब्जा रखने वाले द्वारा गिरवी . . 293
पणयमदार के अधिकार 293
1. गिरवी माल के प्रतिधारण के आधार . . . 293
2. उपगत गैर मामूली व्ययों को प्राप्त करने का अधिकार . . 294
3. पणयमकार द्वारा व्यतिक्रम की दशा में, प्रणयमदार के अधिकार . 294
व्यतिक्रमी पणयमकार का मोचनाधिकार 295
उपनिधान से सम्बन्धित वाद 295
1. दोषकर्ता के विरुद्ध वाद 295
2. अनुतोष या प्रतिकर का विभाजन 296
अध्याय 12 : अभिकरण—समस्या और स्वरूप 297–347
भारतीय संविदा अधिनियम में अभिकर्ता के प्राधिकार की विवक्षायें . . 299
अभिकरण में आपराधिक दायित्व नहीं होता 299
अभिकर्ता कौन हो सकेगा 300
अभिकरण की तुलना में कुछ अन्य प्रकार के सम्बन्ध या पद . . 301
1. न्यायालय द्वारा नियुक्त प्रापक 301
2. न्यासी 301
3. नौकर या कर्मचारी तथा स्वतंत्र ठेकेदार . . . 301
4. अविभक्त कुटुम्ब का कर्ता 302
5. नगरपालिका का अध्यक्ष 302

पृष्ठ संख्या

6. प्लीडर 302
7. पत्नी 302
8. पुत्र 303
साधारण, विशेष और सर्वस्व अभिकर्ता 304
व्यापार जगत में प्रचलित अभिकर्ताओं की श्रेणियां . . . 304
1. प्रत्यापक अभिकर्ता 304
2. कमीशन अभिकर्ता 304
3. फैक्टर 304
4. नीलामकर्ता 305
5. सह-अभिकर्ता 305
6. ब्रोकर (दलाल) 305
7. आढ़तिया 305
8. अभिकर्ता को कौन नियोजित कर सकता है . . . 306
8क. एक से अधिक मालिकों द्वारा एक अभिकर्ता का अभियोजन . 306
अभिकर्ता का प्राधिकार 306
1. अभिव्यक्त और विवक्षित 306
2. सामान्य और आपात् में प्राधिकार का विस्तार . . . 307
उपाभिकर्ता 309
उपाभिकर्ता का नियोजन कब किया जा सकता है . . . 310
उपाभिकर्ता के प्राधिकार, प्रतिनिधित्व और दायित्व सम्बन्धी उपबन्ध . 310
उपाभिकर्ता और प्रतिस्थापित अभिकर्ता 311
अनुसमर्थन द्वारा अभिकरण 313
अनुसमर्थित अभिकरण के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें . . . 314
अनुसमर्थन का प्रभाव 316
अभिकरण का पर्यवसान 317
अभिव्यक्त और विवक्षित पर्यवसान 317
अभिकरण के पर्यवसान का उपाभिकरण पर प्रभाव . . . 318
पर्यवसान कब प्रभावी होता है 318
प्रतिसंहरण द्वारा पर्यवसान पर कतिपय निर्बन्धन 319
अभिकर्ता के हितयुक्त प्राधिकार के प्रतिसंहरण पर विशेष निर्बन्धन . . 319
प्राधिकार के भागतः प्रयोग के पश्चात् प्रतिसंहरण की परिसीमा . . 321
समयपूर्व प्रतिसंहरण अथवा त्यजन के लिए उपबन्ध . . . 321
मालिक की मृत्यु या उन्मत्ततावश पर्यवसान का प्रभाव . . . 322
मालिक के अभिकर्ता के प्रति कर्त्तव्य 323
मालिक के प्रति अभिकर्ता के कर्तव्य 324
अभिकर्ता के विरुद्ध मालिक के कुछ विशेष अधिकार . . . 328

पृष्ठ संख्या

अभिकर्ता का धारणाधिकार अथवा प्रतिधारणा की अवस्थाएं . . 330
1. तीन अवस्थाएं 330
2. मालिक के लेखे प्राप्त राशियों का प्रतिधारण . . . 330
3. कटौतियों के पश्चात् संदाय की आबद्धता . . . 331
4. पारिश्रमिक की शोध्यता तथा प्रतिधारण . . . 331
5. पारिश्रमिक कब शोध्य होता है 331
6. मालिक की सम्पत्ति पर अभिकर्ता का धारणाधिकार . . 332
(i) प्रतिधारण और धारणाधिकार में अन्तर . . . 332
(ii) धारणाधिकार के विषय में उपबन्ध . . . 332

अभिकरण के प्राधिकार में की हुई संविदाओं का प्रवर्तन . . . 333
1. अधिनियम की धारा 230 और 226 का संदर्भ . . . 333
2. धारा 230 333
3. चतुर्भुज बनाम मोरेश्वर की व्याख्या 335
4. धारा 226 335

प्राधिकार से परे या प्राधिकार के बिना किए गए कार्यों की बाध्यता . . 336
1. जब प्राधिकृत और अप्राधिकृत कार्यों का पृथक्करण हो सके . . 336
2. जब प्राधिकृत और अप्राधिकृत कार्यों का पृथक्करण न हो सके . . 337
3. जब अप्राधिकृत कार्य को प्राधिकृत मानने का विश्वास हो . . 338
4. होल्डिंग आउट या व्यपदेशन का सिद्धान्त . . . 338

अप्रकटित अभिकर्ता द्वारा की हुई संविदा 339
1. धारा 231 प्रथम चरण 339
2. धारा 232 339
3. धारा 231, द्वितीय चरण 340
वह अवस्था जब मालिक और अभिकर्ता दोनों दायी हों . . . 340
मिथ्या अभिकर्ता से किया गया संव्यवहार 342
अभिकर्ता को दी गई सूचना के परिणाम 342
वह अवस्था जब मालिक और अभिकर्ता में से कोई एक दायी हो . . 343
अपदेशी अभिकर्ता का दायित्व 343
अभिकर्ता के कपट या दुर्व्यपदेशन का प्रभाव 344
अभिकर्ता के दोष से उद्भूत आपराधिक दायित्व . . . 347
अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली 349
हिन्दी-अंग्रेजी शब्दावली 370
प्रमुख संदर्भ 391
विषयानुक्रमणिका 393

—o—

निर्णय-सूची

अ

अजीज अहमद बनाम शेरअली, 268.
अटर्नी जनरल बनाम ग्रेट ईस्टर्न रेलवे कम्पनी, 84.
अनन्त बनाम सरस्वती, 39.
अनन्त महन्तो बनाम उड़ीसा राज्य, 92.
अन्नामलाई बनाम दौरायसिगम, 70.
अन्नामलाई बनाम मुरुगास, 302.
अनामलाई टिम्बर ट्रस्ट बनाम त्रिपुनीथरा देवस्थान, 275.
अप्पिन टी एस्टेट के कर्मचारी बनाम औद्योगिक अधिकरण, 88.
अपोलो चेट्टियार बनाम साउथ इन्डिया रेलवे कम्पनी, 113.
अफर शेख बनाम सुलेमान बीबी, 92.
अब्दुल बनाम अली, 176.
अब्दुल बनाम हुसैनी, 122.
अब्दुल अजीज बनाम मासूम अली, 31, 32, 272.
अब्दुल रहीम बनाम भारत संघ, 72.
अब्दुल हमीद बनाम मोहम्मद इशाक, 118.
अब्दुल्ला बनाम अम्मोद, 121.
अब्रम एस० एस० कम्पनी बनाम वैस्टविले, 106.
अमरनाथ चांद प्रकाश बनाम भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स, 210.
अमृत वनस्पति बनाम भारत संघ, 67.
अमृतलाल गोवर्धन लाल बनाम स्टेट बैंक, ट्रावनकोर, 266.
अमृतलाल सी० शाह बनाम राम कुमार, 304.
अयेकपाम अगलसिंह बनाम भारत संघ, 115.
अल्लूम दी बनाम ब्राहम, 303.
अल्ला बख्श बनाम चुनिया, 123.
अलोपी प्रसाद एण्ड सन्स बनाम भारत संघ, 241.
अस्करी मिर्जा बनाम बीबी जय किशोरी, 87.
अहमदाबाद जुबिली कम्पनी बनाम छोटालाल, 142.

आ

आई० ए० इण्डस्ट्रीज बनाम पंजाब नेशनल बैंक, 14.
आइशा बीबी बनाम अब्दुल कादर. 181.
ऑकलैण्ड के मेयर, काउन्सिलर व निवासी बनाम एलायन्स एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड 15.

आजमखाओ बनाम एस० सत्तार, 318.
आदित्य दास बनाम प्रेमचन्द, 32.
आन्ध्र प्रदेश राज्य बनाम मैसर्स पायनियर कन्सट्रक्शन कम्पनी, 41.
आन्ध्र प्रदेश राज्य विद्युत परिषद बनाम पटेल एण्ड पटेल, 195.
आन्ध्र शुगर लि० बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, 22, 88.
आनन्द कन्स्ट्रक्शन वर्क्स बनाम बिहार राज्य, 247.
आनन्दजी हरिदास एण्ड कम्पनी प्राईवेट लिमिटेड बनाम इंजीनियरिंग मजदूर संघ, 18.
आनन्द प्रकाश ओमप्रकाश बनाम मैसर्स ओसवाल ट्रेडिंग एजेन्सी, 127, 133.
आफिशल लिक्विडेटर बनाम स्वरूप कोल्ड स्टोरेज, 288, 333.
आयरन एण्ड हार्डवेयर (इण्डिया) कम्पनी बनाम फर्म श्यामलाल एण्ड ब्रदर्स, 248.
आर० एस० नेवीगेशन बनाम बिसेश्वर, 343.
आर० सी० ठक्कर बनाम बम्बई हाउसिंग बोर्ड, 99.
आवाजी बनाम त्र्यम्बक, 41.
आस्ट्रेलियन स्टीम नेवीगेशन कम्पनी बनाम मोर्स, 309.
आसुतोष बनाम सरोजिनी, 221.

इ

इन्डो यूनियन एश्योरेन्स बनाम श्रीनिवास, 301.
इन्दरजीत सिंह बनाम सुन्दरसिंह, 121.
इन्दरमल बनाम राम प्रसाद, 37.
इन्दन रामस्वामी बनाम अन्थप्पा चेट्टियार, 79, 135, 142.
इन री ट्रैस्पका माइन्स लिमिटेड, 130.
इब्राहीम बनाम भारत संघ, 172.
इरावदी फ्लोटिला कम्पनी बनाम भगवान दास, 9, 11, 14, 281.
इर्विन बनाम यूनियन बैंक, 315.
इश्ताक काम बनाम रन छोड जिप्रू, 39.
इस्माइल बनाम दत्तात्रेय, 115.

ई

ईवान्स बनाम क्रैमब्रिज, 272.
ईस्टर्न ट्रेडर्स बनाम पंजाब नेशनल बैंक, 312.

इं

इंग्लैंड बनाम डेविडसन, 40.

उ

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशोरी लाल मिनोचा, 101.
उड़ीसा राज्य बनाम राजवल्लभ मिश्र, 213.

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम चंद्रगुप्त एण्ड कम्पनी, 221, 255.
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मुमताज हुसेन, 101.
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मुरारी लाल एण्ड सन्स, 335.
उत्तर प्रदेश राज्य भांडागार निगम की कार्यकारिणी बनाम चन्द्र किरण त्यागी, 236.
उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद बनाम गोपाल इलैक्ट्रिक स्टोर, 26.
उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद बनाम लक्ष्मी देवी, 126.
उम्दा बनाम ब्रोजेन्द्र, 9.
उमेद सिंह बनाम राज सिंह, 18.
उलजेम बनाम निकोल्स, 276.

ए

ए० आर० जी० कृष्णमूर्ति बनाम जे० रामानुजन, 305.
एच० एस० सोभासिंह बनाम सौराष्ट्र आयरन फाउन्ड्री, 187.
एच० वी० राजन बनाम सी० एन० गोपाल, 202.
एडग्वारे बोर्ड बनाम हैरो गैस कम्पनी, 29.
एडगिंगटन बनाम फिट्स मॉरिस, 94.
एडम्स बनाम लिण्डसैल, 59.
एडमस्टोन शिपिंग कम्पनी बनाम एंग्लो सैक्सन पैट्रोलियम कम्पनी, 155.
एडोनी जिनिंग फैक्ट्री बनाम सेक्रेटरी, आन्ध्र प्रदेश विद्युत बोर्ड, 253.
एण्टोर्स लिमिटेड बनाम माइल्स फार ईस्ट कार्पोरेशन, 71.
एन० एथिराजुलू बनाम के० आर० चिन्नीकृष्ण, 144.
एन० पी० बैंक बनाम ग्लैमस्क, 273.
एन० वी० पी० पंण्डियान बनाम एम० एम० राय, 134.
एन० सुंदरेस्वरन बनाम श्रीकृष्ण रिफाइनरी, 196.
एपिलसन बनाम मिलिट वुड लिमिटेड, 23.
एम्पेरर बनाम बाबूलाल, 347.
एम्प्रैस इंजीनियरिंग कंपनी, का मामला 314.
एम० एन० गंगप्पा बनाम ए० एन० सेट्टी, 235.
एम० केशव गाउंडर बनाम डी० सी० राजन, 126.
एम० सिंहालिगप्पा बनाम टी० नटराज, 282.
एम० सी० चाको बनाम स्टेट बैंक, 34.
एल० एण्ड एल० इन्श्योरेंस कं० बनाम बिनोय, 88.
एल्फ्रेड विलियम डोमिंगों बनाम एल० सी० डिसूजा, 56.
एलायन्स बैंक बनाम ब्रूम, 39.
एलिस मेरीहिल बनाम विलियम क्लार्क, 125.
एशान किशोर बनाम हरिश्चन्द्र, 123.
एस० पी० कान्सोलिडेटेड इंजीनियरिंग बनाम भारत संघ, 72.

एस० मैनुअल राज एण्ड कंपनी बनाम मनीलाल एण्ड कंपनी, 55.
एस० राजन्ना बनाम एस० एम० घोंघसा, 30.

ओ

ओ ग्रेडी बनाम हवट विन, 66.
ओडिस्कोल बनाम मैनचेस्टर इंश्योरेन्स कमेटी, 248.
ओम प्रकाश बनाम सैक्रेटरी ऑफ स्टेट, 275.
ओरिएन्टल इनलैंड स्टीम कंपनी बनाम त्रिग्स, 64.
ओरिएन्टल बैंक कारपोरेशन बनाम फैलेमिंग, 98.

औ

औसेफ वर्गीस बनाम जोजेफ एली, 170.

क

क्यू० एस० तय्यबजी बनाम कमिश्नर, 302.
क्यूरी बनाम मीसा, 29.
क्वीन एम्प्रैस बनाम तैय्यब अली, 347.
कतारी बनाम केवल कृष्ण, 91.
कंदासामी बनाम सोमासकांत, 302.
कन्हैया बनाम इन्दर, 85.
कन्हैयालाल बनाम दिनेशचंद्र, 9.
कन्हैयालाल बनाम नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया, 89, 226.
कमर बाई बनाम बद्रीनारायण, 133.
कमलाकांत बनाम प्रकाश देवी, 96.
कमिश्नर, इन्कम टैक्स बनाम महाराजा दरभंगा, 198.
कमिश्नर ऑफ वैल्थ टैक्स बनाम विजयवाडा उगर महारानी साहेब, भावनगर, 29.
कर्टिस बनाम लन्दन सिटी एण्ड मिडलैण्ड बैंक लिमिटेड, 61.
कर्नल मैकफर्सन बनाम एम० एन० अपन्ना, 21.
कर्नाटक बैंक लिमिटेड बनाम गजानन शंकर राव, 266.
करनाल डिस्टिलरी बनाम भारत संघ, 75.
कलकत्ता नेशनल बैंक बनाम रंगरून टी कम्पनी, 20.
कलियाना गाउन्डर बनाम पालानी गाउन्डर, 177, 209.
कलेक्टर ऑफ मसूलीपटम बनाम केवलीवेंकट, 315.
कस्तूरम्मा बनाम वेंकट सुरय्या, 24.
कांग बनाम बर्नार्ड, 277.
कात्यायनी बनाम फोर्ट कैनिग, 316.
कॉफी बोर्ड, बंगलौर बनाम हाजी इब्राहीम, 22, 24.
कार्तिक चन्द्र बनाम भूषण चंद्र, 195.
कार बनाम लिविंग स्टोन, 63.

कारलिल बनाम कार्बोलिक स्मोक बॉल कम्पनी; 29, 53, 68.
कार लिस्ले बनाम वैग, 86.
काल्डर बनाम डोबैल; 341.
कालटैक्स इण्डिया लिमिटेड बनाम भगवान देई, 195.
कालिदास साइजिंग वर्क्स बनाम भिवंडी नगरपालिका, 336.
कालिन बनाम राइट, 344.
कालिया पेरुमल बनाम विशालाक्षी, 276.
कार्लिल बनाम कार्बोलिक स्मोक बाल कम्प ी, 68.
कार्लिस बनाम कडिफ्राय, 40.
काली बनाम हरी, 301.
कालिपाकम बनाम चित्तूर, 80.
कालूराम बनाम चिमनीराम, 329.
कालूराम बनाम राम, 162.
काले बनाम चकबंदी के डिप्टी डाइरेक्टर, 106.
काशी बनाम ईश्वरी, 59.
काशीनाथ गुप्ता बनाम कलक्टर ऑफ देहरादून, 264.
काशीराम बनाम बरकमा, 132.
किरखाम बनाम अटेन बरो, 69.
किशनचंद बनाम राधाकिशनदास, 249.
किशोरीलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 222.
किसन लाल बनाम खलीदा सुल्तान, 210.
कीर्तिचंदर बनाम स्टुथर्स, 184.
कूक बनाम एडीसन, 285.
कुजू कोलियरीज लिमिटेड व अन्य बनाम झारखण्ड माइन्स लिमिटेड और अन्य 133, 135, 214, 217, 218.
कुंदन बनाम सैक्रेटरी ऑफ स्टेट, 59.
कुन्दन बीबी बनाम नारायण, 79.
कुलादा प्रसाद बनाम रामानंद पटनायक, 253.
कूपर बनाम कूपर, 76.
कूपर बनाम फिलस, 113.
के० अप्पूकुट्टन पनिकर बनाम एस० के० आर० ए० के० आर० अथप्पा चेट्टियार, 209.
के० एल० जौहर बनाम डिप्टी कमर्शियल टैक्स आफीसर, 290.
के० टी० चन्दी बनाम मन्साराम जादे, 7.
के० टी० पापम्मा बनाम राउथर, 14.
केदार बनाम मनु, 106.
केदारदास बनाम नंदलाल, 75.

केदारनाथ बनाम गौरी मोहम्मद, 31, 32, 33.
केदारनाथ बनाम प्रहलादराय, 126.
केदारनाथ बनाम सीताराम, 39.
केदारी बनाम अत्माराम भट, 40.
केशव मिल्स बनाम इनकम टैक्स कमिश्नर, 176.
केशोराम इंडस्ट्रीज बनाम धनकर आयुक्त, 143.
के० श्रीरामुलु बनाम टी० अश्वथ नारायण, 75.
के० सी० कुंदू बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य, 224.
केसोराम इन्डस्ट्रीज बनाम भारत संघ, 226.
कैधले बनाम डयू रेण्ट, 36, 487.
कैनेडी बनाम थामैसेन, 54.
कोजेब (श्रीमती) बनाम माखनसिंह, 106.
कोटेश्वर बनाम के० आर० बी० एण्ड कंपनी, 120.
कोटेश्वर विठ्ठल कामथ बनाम के० रंगप्पा, 242.
कोल्स बनाम ओधमस प्रेस, 162.
कोसलाई बनाम पुलोस्थियम, 32.
कंवर चिरंजीत सिंह बनाम हरस्वरूप, 249.
कंवरानी मदनावती बनाम रघुनाथ सिंह, 91.
केथॉर्न बनाम स्विन बर्न, 272.
क्रोगडेन बनाम मैट्रोपोलिटन रेलवे कंपनी, 56.

ख

ख्वाजा मुहम्मद बनाम हुसैनी बेगम, 35.
खरबूजा कुंअर बनाम जंग बहादुर, 91.
खरादा कंपनी लिमिटेड बनाम रेमन एंड कंपनी, 171.
खूबचंद बनाम बेरम, 124.
खम बनाम दयाल, 148.

ग

गद्दरमल बनाम चन्द्रभान, 68.
गनपतराय सागरमल बनाम भारत संघ, 296.
गम्भीरमल महावीर प्रसाद बनाम इन्डियन बैंक, 309.
गरपति बनाम बासवा, 316.
गवर्नर ऑफ उड़ीसा बनाम शिवप्रसाद, 107.
गवर्नर जनरल इन काउंसिल बनाम जय नारायण रीतोलिया, 172.
गाई बनाम चर्चिल, 130.
गिनव्वा बनाम बाइरप्पा शिद्दप्पा, 107.
गिरधारीलाल बनाम ई० एस० एण्ड वी० डी० इन्श्योरेन्स कम्पनी, 23:

गिरराज बख्श **बनाम** काजी हामिद अली, 173.
गिबन्स **बनाम** प्रॉक्टर, 50, 51.
गिंगटन **बनाम** फिट्ज मारिस, 94.
गुजरात राज्य **बनाम** मैमन मोहम्मद, 275.
गुजरात राज्य **बनाम** वैराइटी बॉडी बिल्डर्स, 48.
गुरुमुख सिंह **बनाम** दियाल सिंह, 253.
गुरुबख्श सिंह गुरोत्रारा **बनाम** बेगम रफिया खुरशीद, 245.
गुलाबचन्द **बनाम** चुन्नीलाल, 80, 81.
गुलाब चन्द **बनाम** कुदीलाल, 127.
गुली **बनाम** एक्सैटर के बिशप, 140.
गैंस्टो बिहारी राम **बनाम** रमेश चन्द्र दास, 107.
गोरधा इलैक्ट्रिक कम्पनी **बनाम** गुजरात राज्य, 75.
गोपाल **बनाम** सैक्रेटरी ऑफ स्टेट, 346.
गोपाल सिंह **बनाम** पंजाब नेशनल बैंक, 289.
गोपाल सिंह **बनाम** भवानी प्रसाद, 261.
गोपी लाल **बनाम** ट्रक इन्डस्ट्रीज, 261.
गोपेश्वर **बनाम** जादव चन्द्र, 253.
गोमचीनायगम पिल्लई **बनाम** पालानीस्वामी नाडार, 195.
गोलकुण्डा इन्डस्ट्रीज **बनाम** कम्पनी के रजिस्ट्रार, 82.
गोवर्धन **बनाम** अब्दुल, 329.
गोविन्दप्रसाद **बनाम** हरिदत्त, 195.
गोविन्द भाई **बनाम** गुलाम अब्बास, 203.
गोविन्दलाल **बनाम** कृषि उत्पादन बाजार समिति, 17.
गोविन्दलाल **बनाम** फर्म ठाकुरदास, 176.
गोविन्द लाल चावला **बनाम** सी० के० शर्मा, 185.
गोसाई **बनाम** गोसाई, 130.
गौरीदत्त **बनाम** बन्धु पाण्डे, 117.
गौरिन्निसा **बनाम** एस० जे० कीरमिन, 144.
गौस मोहिद्दीन **बनाम** अप्पा साहेब, 134.
गंगप्पा **बनाम** इमामुद्दीन, 95.
गंगाधर **बनाम** परसराम, 253.
गंगानन्द **बनाम** सर रामेश्वर, 81.
ग्रीन **बनाम** बार्टलेट, 331.
ग्रीन **बनाम** म्यूल्स, 331.
ग्रीन **बनाम** ल्यूकस, 331.

घ

घनराज मल **बनाम** शामजी, 155.
घासी शरन माथुर गद्दरमल **बनाम** चन्द्रभान, 68.
घेरुलाल पारेख **बनाम** महादेव दास, 123, 126, 156.

घोंघवत बनाम आत्माराम 27.

च

चतुर्भुज विट्ठल दास बनाम मोरेश्वर परशराम, 26, 30, 315, 335.
चन्दूलाल हरजीवनदास बनाम आयकर आयुक्त, 163.
चन्द्रकली बनाम शम्भू, 125.
चन्द्रभान गोसाई बनाम उड़ीसा राज्य, 47.
चन्द्रशेखर बनाम विट्ठल भण्डारी, 179.
चम्पा बनाम तुलशी, 304.
चित्तन जे० वासवानी बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य, 16.
चिन्नम्मा बनाम देगाव, 92.
चैल्सवर्थ बनाम फरार, 298.
चौधरी बनाम चटर्जी, 162.

छ

छक्कूलाल बनाम नगरपालिका, मुरैना, 213.
छबीलदास बनाम दयाल, 343.

ज

ज्वाला दत्त आर० पिल्लई बनाम बन्सीलाल मोतीलाल, 10.
जगदबन्धु चटर्जी बनाम श्रीमती नीलिमारानी, 210.
जगधात्री भण्डार व जगधात्री आयल मिल्स बनाम कर्मशियल यूनियन एश्योरेन्स, 154.
जनरल एश्योरेन्स सोसायटी बनाम एल० आई० सी० ऑफ इन्डिया, 64.
जफरभाई बनाम थामस डी०, 304.
जम्मू कश्मीर राज्य बनाम सन्नाउल्ला, 112.
जमाल बनाम मुल्लादाऊद एण्ड सन्स, 238, 240.
जयकान्त बनाम दुर्गा शंकर, 82.
जयकिशन बनाम लक्ष्मी नारायण, 75.
जयनारायन बनाम महाबीर, 84.
जय नारायन बनाम सूरजमल, 66.
जसवन्तराय बनाम मुंबई राज्य, 291.
जार्डन बनाम रामचन्द्र गुप्ता, 331.
जाहरराय बनाम प्रेमजी भीमजी, 181.
जॉकी बनाम डोमीनियन, 282.
जिब्राइल एण्ड सन्स बनाम चर्चिल, 304.
जी० एच० ह्निटन वेकर बनाम जे० सी० गोल्ड स्टान, 12.
जीवन बनाम निरुपमा, 32.
जीवराज बनाम लालचन्द्र, 144.
जुग्गीलाल कमलापत आइल मिल्स बनाम भारत संघ, 282

जुगल किशोर गुलाबसिंह **बनाम** पारस लाल, 66.
जे० थामस एण्ड कम्पनी **बनाम** बंगाल जूट बेलिंग कम्पनी लिमिटेड, 334.
जैनिंग्स बनाम रण्डोल, 80.
जे० हरिगोपाल बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, 267, 271.
जैन्किन्स बनाम जैकिन्स, 183, 184.
जैन एण्ड सन बनाम कैमरोन, 280.
जैनर बनाम टर्नर, 147.
जोगेन्द्र मोहन सेन बनाम उमानाथ गुहा, 197.
ज्योति प्रसाद बनाम हरद्वारी, 300.
जोब्स बनाम थॉमसन, 248.
जंग बहादुर बनाम नवल किशोर, 91.
जंगलिया बनाम गया, 128.
झुरईलाल बनाम मोहिनदास, 254.

ट

ट्वीडिल **बनाम** एटकिंसन, 34, 35.
टर्नर **बनाम** गोल्डस्मिथ, 332.
टाउन एरिया कमेटी **बनाम** राजेन्द्र कुमार, 213.
टिक्की **बनाम** कोमल, 80.
टिन **बनाम** हाफमैन, 51.
टिम्बलू इरमाओस बनाम जार्ज आनीबाल माटोस सिक्कैरिया, 222.
टी० एन० एस० फर्म बनाम मोहम्मद हुसैन, 265.
टी०जी०एम० आसदी बनाम कॉफी बोर्ड, 88.
टी० लिंग गाउडर बनाम मद्रास राज्य, 52, 71.
टी० सी० चौधरी **बनाम** गिरेन्द्र मोहन, 312.
टेकायत मोन मोहिनी जमादेई **बनाम** वसन्त कुमारसिंह 122.
टेलर **बनाम** टेलर, 20.
टेलर **बनाम** ब्रूअर, 24.
टेलर **बनाम** लेयर्ड, 56.
टैनैन्ट्स **बनाम** विलसन, 20.
टैक्स मैको लिमिटेड **बनाम** स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, 256.
टैवाय एम० कमेटी **बनाम** खू, 302.

ड

डगलस **बनाम** एण्ड्रूज 303.
डनलप **बनाम** हिगिन्स, 59, 61.
डनलप न्यूमैटिक टायर कम्पनी **बनाम** सैलफ्रिज कम्पनी लि०, 34, 35.
डेवेलपमैण्ट ऑफ इंडस्ट्रीज लिमिटेड **बनाम** आयकर आयुक्त, 317.
डा० जीवन लाल और अन्य **बनाम** बृज मोहन मेहरा और अन्य, 64.

डाया भाई त्रिभुवन दास **बनाम** लक्ष्मीचन्द, 156.
डालीचन्द **बनाम** राजस्थान, राज्य, 262, 266.
डिकिन्सन **बनाम** डाड्स, 61.
डिबिन्स **बनाम** डिबिन्स, 314.
डी० नागरलम्बा **बनाम** कुनकुर मैया, 124.
डेविन्स **बनाम** लण्डन एण्ड मैराइन इंश्योरेन्स कम्पनी, 273.
डेरी **बनाम** पीक, 95, 97.
डेविडसन **बनाम** डोनेल्डसन, 343.
डोमिनियन ऑफ इंडिया **बनाम** गया प्रसाद गोपाल नारायण, 171.
डोमिनियन ऑफ इंडिया **बनाम** रामरखामल, 193.

त

तेलचर कोलफील्ड लि० **बनाम** सेन्ट्रल कोलफिल्ड, 242.
तमिलनाडु राज्य **बनाम** एम० कन्दस्वामी, 17.
तरनता **बनाम** गोपाल, 141.
तार मोहम्मद ब्रदर्स **बनाम** क्वीन्सलैण्ड इंश्यौरेन्स कम्पनी लिमिटेड, 153.
तालुक बोर्ड **बनाम** सेंठा, 30, 33.
तिरूपागडी तायारम्मा **बनाम** श्री रमन जानेय, 254.
तिरुम्मगल **बनाम** रामस्वामी, 84.

थ

थक्काडी सैयद मोहम्मद **बनाम** अहमद फातुम्मल, 92.
था झां थेथिल **बनाम** केरल राज्य, 108.
थामस **बनाम** मोरममार वैसिलियिस ओगेन आई० कैथोलिक्स मैट्रोपोलिटन मालंकार, 202.
थावरदास फेरुमल **बनाम** भारत संघ, 241.
थूरी कोथंडा **बनाम** थेसू रेड्डियार, 129.

द

द्वार मपूडि नागरलम्बा **बनाम** कुनकूरामैया, 38.
द्वारिका प्रसाद **बनाम** द्वारका दास सराफ, 19.
दत्तन **बनाम** पूल, 33.
दरायसिंह **बनाम** अरुंचला, 185.
दामोदर वैली कारपोरेशन **बनाम** बिहार राज्य, 293.
दास बैंक लिमिटेड **बनाम** कालीकुमारी देवी, 268.
दिल्ली नगरपालिका **बनाम** जगदीश, 336.
दीनोनाथ **बनाम** हंसराज गुप्ता, 33.
दीप **बनाम** मोहम्मद, 25.
दीपचन्द्र **बनाम** रुकुनुद्दौला, 64.
दीवान मॉडर्न ब्रूअरीज **बनाम** पोस्ट मास्टर, जम्मू, 100.

देवी बनाम राम, 39.
देवी बनाम भगवती, 145.
देवी प्रसाद बनाम रूप राम, 122.
देवी प्रसाद खंडेलवाल बनाम भारत संघ, 73.
देवी सहाय पल्लीवाल बनाम भारत संघ, 222.
दोरास्वामी बनाम अरुणाचल, 33.

ध

धनकर आयुक्त, मैसूर बनाम विजयबा डाउगर महारानी साहिब, भावनगर, 30.
धनपतराम बनाम जय नारायण, 285.
धनपतराय बनाम इलाहाबाद बैंक, 308.
धन्नूमल परसराम बनाम कुप्पूराज, 260.
धरमवीर बनाम जगन्नाथ, 82.
धनराज मल बनाम शामजी, 155.
धनराज मल गोविन्द राम बनाम मैसर्स रामजी कालिदास, 14.
धान्यलक्ष्मी राइस मिल्स बनाम कमिश्नर, सिविल सप्लाईज, 226.
धापई बनाम दल्ला, 230.
ध्रुव देव चन्द बनाम हरमोहिन्दर सिंह, 202, 314.

न

न्यू मैराइन कोल कंम्पनी बनाम भारत संघ 223.'
नजीरुन्निसा बीबी बनाम नासरुद्दीन सरदार, 12.
नजीर अहमद बनाम एम्परर, 20.
नन्दकिशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य, 175.
नन्दलाल बनाम राम, 221.
नरसिंहदास बनाम छेदूलाल, 112.
नरेन्द्र बनाम ऋषिकेश, 142.
नरेशचंद्र सान्याल बनाम कलकत्ता स्टाक एक्सचेंज, 254.
नरोतम बनाम नानका 85.
नलिकन्हैया बनाम श्याम सुन्दर, 19.
नवेन्द्र नाथ वसक बनाम शशिबिन्दु नाथ, 27.
नसीरुद्दीन बनाम राज्य परिवहन अपील अधिकरण, 17.
नाइकेन बनाम चेट्टी, 221.
नाइटेंडल्स बनाम ब्रस्टर, 330.
नागले बनाम फील्डेन और अन्य, 126.
नाजर अली बनाम बाबा मियां, 122.
नाथूभाई बनाम जवहरबाई, 303.
नाथूलाल बनाम फूलचन्द, 190, 191.
नोनेजीभाई बनाम रामकिशन, 254.

3—377 बी०एस०पी०(ए०डी०)/81

नाम्बेरुमल **बनाम** वीरपेरुमल, 125.
नार्थ **बनाम** बासेट, 308.
नारायण **बनाम** वेल्लाचमी, 161.
नारायणीदेवी बनाम टैगोर कमर्शिअल कार्पोरेशन, 36.
नारायन **बनाम** रामानुज, 22.
नारायणदास **बनाम** पापामल, 327.
निजाम ज्वैलरी ट्रस्ट वाले मामले, 200
निसार **बनाम** रहमत, 141, 218.
निहालचन्द्र शास्त्री **बनाम** दिलावर खां, 12.
निगव्वा **बनाम** बाइरप्पा शिट्टप्पा, 96.
नीलगिरि ठेकेदार संघ **बनाम** उड़ीसा राज्य, 25.
नेपियर **बनाम** विलियम्स, 27.
नेशनल यूनियन कर्मशियल एम्पालाईज **बनाम** इंडस्ट्रियल ट्रिब्यूनल, बम्बई, 121.
नैहाटी जूट मिल्स **बनाम** खयाली राम जगन्नाथ, 199.

प

प्यारचन्द केसरीमल बीड़ी फैक्टरी **बनाम** ओंकार लक्ष्मन, 171.
प्यारेलाल **बनाम** होरीलाल 203.
पटनायक एण्ड कम्पनी **बनाम** उड़ीसा राज्य, 47.
पटेल इंजीनियरिंग कम्पनी **बनाम** इंडियन आयल कार्पोरेशन, 224.
पदम परशाद **बनाम** पंजाब नेशनल बैंक, 326.
पन्नालाल **बनाम** डिप्टी कमिश्नर, भण्डारा 172, 222.
परधान **बनाम** अमीनचन्द, 106.
परसी वे विल लि० **बनाम** लन्दन काउन्टी काउन्सिल एसाइलम कमेटी, 25.
पश्चिम बंगाल राज्य **बनाम** बी० के० मोंडल, 221, 223, 341, 335.
पाण्डुरंग **बनाम** विश्वनाथ, 138.
पारस उल्ला **बनाम** चन्द्रकान्ता, 149.
पारसन्स **बनाम** सोवरिन बैंक, 301.
पी० एन० दोराई राज **बनाम** एन० डी० राजन, 214.
पी० एन० बैंक लिमिटेड **बनाम** अरुडामल, 9.
पी० के० बनर्जी **बनाम** मंगल प्रसाद, 140.
पीपुल **बनाम** आरगेली, 143.
पी० बी० मिल्स **बनाम** भारत संघ, 88.
पीलू धनजी शाह **बनाम** नगरपालिका, पूना, 223, 236.
पी० सी० कपूर **बनाम** आयकर आयुक्त, 117.
पुडी लैजारस **बनाम** जानसन एडवार्ड, 195.
पुरुसोत्तमदास **बनाम** भारत संघ, 277.
पुष्पबाला रे **बनाम** लाइफ इन्शोरेंस कार्पोरेशन, 136, 154.
पूरनलाल साह **बनाम** स्टेट आफ उत्तर प्रदेश 229, 230.

पूरवी बनाम वासुदेव, 88.
पेस्टोनजी बनाम मेहर बाई, 144.
पैट्रिक बनाम लियान, 301.
पोगसे बनाम बैंक ऑफ बंगाल, 271.
पोन्नू स्वामी बनाम रामा बोयन, 183.
पोलहिल बनाम वाल्टर, 344.
पोस्ट बनाम मार्श, 123.
पंचानन घोष बनाम डाली, 271.
पंजाब नेशनल बैंक बनाम फर्म ईश्वरी लाल, 313.
पंजाब नेशनल बैंक बनाम श्री विक्रम कॉटन मिल्स, 257, 260.
पंजाब राज्य बनाम अमरसिंह और एक अन्य, 17.
प्रताप बनाम श्रीमती पुनिया 96, 107.
प्रतापसिंह बनाम केशव लाल, 263.
पृथ्वीनाथ बनाम भारत संघ, 151.
प्रागलाल बनाम रतन लाल, 158.

फ

फजल हुसन बनाम जीवन अली, 197.
फर्म जी० एल० कीलिकर बनाम केरल राज्य, 236, 255.
फर्म प्रताप चन्द नोपाजी बनाम फर्म कोर्टि कवेंकट शेट्टी एण्ड सन्स, 118, 121, 158, 259, 300, 323.
फर्म शेख अहमद मुहम्मद अमीन बनाम फर्म बच्चुलाल, 62.
फतेहचन्द बनाम बाल किशन दास, 246, 251, 255.
फर्म बच्छराज अमोलक चन्द बनाम फर्म नन्दलाल सीताराम, 188, 193.
फर्म रूपराम कैलाशनाथ बनाम सहकारी संघ, 336, 338.
फर्म स्मिथ कं० बनाम मैसर्स कम्पनी लि० 250.
फाइनैन्स सन्टर बनाम राम प्रकाश, 47.
फार्मेस्युटिकल सोसायटी आफ ग्रेट ब्रिटेन बनाम बूट्स कैश कैमिस्टस, 26.
फारमैन एण्ड कंपनी बनाम लिडिलसडेल, 169.
फ्रिच बनाम स्नेडकर, 50.
फिण्डन बनाम पार्कर, 130.
फिण्डले बनाम नरसी, 186.
फिलिप एन० गोडिनहो का मामला 12.
फुलझडीदेवी बनाम मिठाई लाल, 307.
फुलर्टन बनाम प्रोविंशल बैंक ऑफ आयर लैण्ड, 39.
फेरिना बनाम फाइकस, 22.
फैल्ट हाउस बनाम बिन्डले, 55
फोक्स बनाम बीयर, 211.

फ्रास्ट बनाम नाइट, 178, 235.
फ्रैडरिक टामस किंग्सले बनाम सेक्रेटरी आफ स्टेट, 237.

ब

ब्लैकमोर बनाम ब्रिस्टल एण्ड एक्सेटर रेलवे, 279.
लेड्स बनाम फ्री, 63.
बखशीदास बनाम नादूदास, 129.
बड़ौदा स्पिनिंग एण्ड वीविंग कम्पनी लिमिटेड बनाम शिवनारायन मैरिन फायर एण्ड एन्श्योरेंस कम्पनी, 153.
बद्री प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 26, 64.
बन्दीचाल पनिराव बनाम आफिशियल एसाईनी, 277.
बन्शीधर बनाम बाबूलाल, 144.
बन्सराज बनाम सेक्रेटरी ऑफ स्टेट, 89.
बन्सीलाल अबीरचन्द बनाम गुलाम मेहताब, 187.
बर्ड बनाम बोल्टर, 52.
बर्ड बनाम ब्राउन, 317.
बल्लभदास बनाम प्राण शंकर, 27.
बल्लभदास मथुरादास बनाम म्युनिसिपल कमेटी, 226.
बल्लभदास बनाम पैकाजी, 10.
बशीर अहमद और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, 165.
बशेसर बनाम भीखराज, 132.
बसन्त बनाम मदन, 143.
बादु बनाम बदरीन्नसा, 148.
बाव सेट्टी बनाम वेंकटरमन, 112.
बालो (मुसम्मात) बनाम मुसम्मात पार्वती, 39.
बाबू बनाम राम, 130.
बाबू लाल बनाम परसैल, 303.
बाबू शंभूमल गंगाराम बनाम स्टेट बैंक ऑफ मसूर, 268.
बादू सेट्टी बनाम वेंकट रमन, 112.
बाम्बे हाउसिंग बोर्ड बनाम करमासे नायक एण्ड कम्पनी, 176.
बालकिशन बनाम आत्माराम, 262.
बालकिशन बनाम देवी सिंह, 127.
बालमजी लालजी बनाम अनिलचरन, 200.
बाल सुख रिफैक्टरी बनाम हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड, 150.
बालराम दोटी बनाम भूपेन्द्रनाथ बनर्जी, 252.
बिधू बनाम अहमद, 302.
बी० बनर्जी बनाम श्रीमती अनिता पान, 17, 18.

बुद्धा बनाम लक्ष्मीचन्द, 94.
बुधालाल बनाम डैक्कन बैंकिंग कम्पनी, 133, 216, 217.
बुलियन एण्ड ग्रेन एक्सचेंज लिमिटेड बनाम पंजाब राज्य, 160.
बूथलिंग एजैन्सी बनाम वी० टी० सी० पोरियास्वामी नाडार, 201.
बेगवी बनाम फासफेट स्यूएज कम्पनी, 29.
बैंजले बनाम फोर्डर, 303.
बैरी बनाम डाकोस्टा, 235.
बैल बनाम बैल, 305.
बलफोर बनाम बैलफोर, 24.
बैंक ऑफ इन्डिया बनाम विनोद स्टील लिमिटेड, 290.
बैंक ऑफ इन्डिया लिमिटेड बनाम जमशेतजी, 192.
बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम कृष्णवल्लभ, 267.
बैंक ऑफ बिहार लिमिटेड बनाम दामोदर प्रसाद, 261.
बैंक ऑफ बिहार बनाम स्टेट ऑफ बिहार, 289.
बोल्टन बनाम जोन्स, 27, 85, 112.
बोल्टन बनाम लम्बर्ट, 459.
बंगाल इम्यूनिटी कं० बनाम बिहार राज्य, 18.
बंगाल कोल कम्पनी बनाम भारत संघ, 315.
बंगाल नागपुर रेलवे बनाम रतनजी रामजी, 241.
बंगो स्ट्रीट फर्नीचर बनाम भारत संघ, 241.
ब्रह्मपुत्र टी कम्पनी बनाम स्कार्थ, 149.
ब्राइट ब्रदर्स बनाम जे० के० संयानी, 322.
ब्रागडैन बनाम मैट्रोपोलिटन रेलवे कम्पनी, 52.
ब्रावेण्ट बनाम किंग, 280.
ब्रिजज बनाम एन० एल० रेलवे, 280.
ब्रिटिश इन्डिया जनरल इन्श्योरैन्स कम्पनी के मामले में, 258.
ब्रिटिश एफ० एण्ड एम० इन्श्योरैन्स बनाम आई० जी० एन० रेलवे, 281.
ब्रिटिश मोनोफोन लिमिटेड बनाम किंग एण्ड सी रिकार्ड मैन्युफैक्चरिंग कं०, 24.
ब्रिटिश वैगन कम्पनी बनाम ली, 174.
ब्रेडले एगफार्म लिमिटेड बनाम क्लिफर्ड, 84.

भ

भगवत बनाम आनन्द राव, 132.
भगवतराव बनाम दामोदर, 253.
भगवानदास गोवर्धनदास बनाम गिरधारीलाल पुरुषोत्तमदास, 52, 71.
भगवान दास बनाम स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद, 183.
भगवान दास परसराम बनाम बरजोरी रतनजी बोमनजी, 156.
भाई पन्नासिंह बनाम भाई अरजनसिंह, 245.

भारत संघ बनाम ए० एल० रलिया राम, 242.
भारत संघ बनाम एस० केसरसिंह, 178, 235.
भारत संघ बनाम के० एच० राव, 249.
भारत संघ बनाम गंगाराम भगवानदास, 210.
भारत संघ बनाम चिनाय चावलानी एण्ड कम्पनी, 334.
भारत संघ बनाम डी० एन० खेरी, 48.
भारत संघ बनाम नारायन सिंह, 66.
भारत संघ बनाम मैसर्स जे० के० गैस प्लान्ट, 223.
भारत संघ बनाम त्रिभुवनदास लालजी पटेल, 241.
भारत संघ बनाम बाबू लाल, 67.
भारत संघ बनाम बालचन्द एण्ड सन्स, 225.
भारत संघ बनाम ब्रजेन साहा, 15.
भारत संघ बनाम भादल ताथयेया, 26.
भारत संघ बनाम मैसर्स चमनलाल, 37.
भारत संघ बनाम मैसर्स जॉली स्टील इण्डस्ट्रीज (प्राइवेट) लिमिटेड, 235.
भारत संघ बनाम रमण आयरन फाउन्ड्री, 143, 247, 248, 249.
भारत संघ बनाम राजधानी ग्रेन्स एण्ड जैगरी एक्सचेंज, 163.
भारत संघ बनाम रामपुर डिस्टलरी एण्ड केमिकल कम्पनी, 249.
भारत संघ बनाम लक्ष्मी रतन कॉटन मिल, 278.
भारत संघ बनाम लालचन्द एण्ड संस, 113.
भारत संघ बनाम वाटकिन्स मेयर एण्ड कम्पनी, 242.
भारत संघ बनाम वैस्ट पंजाब फैक्ट्री, 240, 242.
भारत संघ बनाम स्टील स्टॉक होल्डर्स सिंडीकेट, पूना, 15.
भारत संघ बनाम साहब सिंह, 223.
भारत संघ बनाम सीताराम, 222, 223.
भास्कर राव जागेश्वर राव बनाम सारू जाधा राव, 214.
भिका बनाम चरण सिंह, 18.
भीकन भाई बनाम हीरालाल, 120.
भीमराव बनाम अब्दुल रशीद, 117.
भीवा बनाम शिवराम, 141.
भैया लाल रामरतन बनाम बी० एन० रेलवे, 171.
भोलानाथ बनाम लक्ष्मी नारायण, 149.
भोली बखश बनाम गुलीला, 123.

म

मगन बनाम रमन, 85.
मगनीराम गुरुबचन, 205.

मणिकान्त तिवारी बनाम बाबराम दीक्षित, 117.
मथुरा बनाम शम्भू, 263.
मदासामी नाडार बनाम नगरपालिका विरुधनगर, 222.
मद्रास राज्य बनाम रंगनाथन, 72.
मध्य प्रदेश राज्य बनाम एन० वी० नरसिम्हन, 19.
मध्य प्रदेश राज्य बनाम फर्म गोरधन दास कैलाश नाथ, 69, 73.
मध्य प्रदेश राज्य बनाम हाकिम सिंह, 25.
मन्नासिंह बनाम उमादत्त, 91.
मनमथ कुमार साहे बनाम एक्सचेंज लोन लिमिटेड, 80.
मनिक्का भूष्पनार बनाम पेरियो मुनायदी पंडिथम, 123.
मनिया (श्रीमती) बनाम डिप्टी डाइरक्टर, चकबन्दी, 88.
मनिका गाउन्डर बनाम मुनियाम्माल, 124.
मनीशंकर बनाम ए० सन्स लिमिटेड, 162.
मनोजकुमार बनाम नवद्वीप चन्द्र, 144.
मनोहर आइल मिल्स बनाम भवानीदीन, 187.
मलाबार एस० एस० कम्पनी बनाम दादा, 281.
महन्त धर्मदास और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य, 17.
महन्तसिंह बनाम ऊषा, 268.
महबबखां बनाम हकीम अब्दुल रहीम, 91, 109.
महादेव प्रसाद बनाम साइमन लिमिटेड, 243.
महाराजा जसवन्त सिंह बनाम सैक्रेटरी ऑफ स्टेट, 259.
महाराष्ट्र राज्य बनाम डा० एम० एन० कौल, 262.
महाराष्ट्र राज्य बनाम दिगम्बर बलवन्त कुलकर्णी, 250.
महेश्वर दास बनाम साखीदेई, 121.
महेशचन्द्र बनाम राधा किशोर, 298.
माउले जे० मटिण्डाले बनाम फकनर, 111.
माटनहेला बनाम महावीर इन्डस्ट्रीज, 71.
मारीमुथु गाउन्डर बनाम रामास्वामी गाउन्डर, 254.
मान्ट्रियल गैस कम्पनी बनाम वैसी, 24.
मान्ट्रियल ट्रस्ट बनाम सी० एन० रेलवे, 120.
मानिक लाल मनसुख भाई बनाम सूर्यपुर मिल्स लिमिटेड, 12.
माप्वा बनाम माल, 26.
माहेश्वरी मैटल रिफाइनरी बनाम मद्रास राज्य, 73.
मिल स्टोर्स ट्रेडिंग कंपनी बनाम मथुरादास, 66.
मिश्रबन्धु कार्यालय बनाम शिवरतन लाल, 178, 179.
मिश्री लाल बनाम निताई चन्द्र, 67.

मीनाक्षी बनाम पी० एम० सुन्दरम, 22.
मीर नियामत अली खां बनाम कार्मशियल और इन्डस्ट्रियल बैंक, 257.
मुआंग आउंग बनाम हाजीदादा, 301.
मुथिया चेट्टियार बनाम शाण्मुधम, 107.
मुथस्वामी बनाम वीरस्वामी, 162.
मुनियाम्मल बनाम राजा, 134.
मुरलीधर बनाम किशोरी लाल, 160.
मुरलीधर अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 117, 122.
मुरलीधर चटर्जी बनाम इन्टरनशनल फिल्म कम्पनी, 215.
मुरलीधर चिरंजीलाल बनाम हरिश्चन्द्र, 234.
मु० हलोमन बनाम मोहम्मद मनीर, 122.
मून बनाम टावर्स, 81.
मूर बनाम फ्लैनेगन, 341.
मूलमचन्द बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 223, 315, 335.
मूसाजी बनाम एडमिनिस्ट्रेटर जनरल, 322.
मेघराज बनाम बयाबाई, 198.
मकार्थी बनाम यंग, 279.
मेकालिफ बनाम विलसन, 107.
मैके बनाम डिक, 193, 212.
मैका वेंकटादो अप्पाराव बनाम पार्थसारथी अप्पाराव, 196.
मैकेंजी बनाम शिवचन्दर, 189.
मैथ्यूज बनाम लैवसटर, 84.
मैनवी बनाम स्काट, 303.
मैसर्स टी० वी० सुन्दरम बनाम मद्रास राज्य, 47.
मैसर्स डी० कावसजी एण्ड कम्पनी बनाम मैसूर राज्य और अन्य, 111, 226.
मैसर्स बैरकपुर कोल कम्पनी लिमिटेड बनाम भारत संघ, 18.
मैसर्स सूरज मल्ल शिव भगवान बनाम मैसर्स कलिंग आयरन वर्क्स, 151.
मैसर्स हिन्द कन्सट्रक्शन कान्ट्रैक्टर्स बनाम महाराष्ट्र, राज्य, 184, 195.
मैसर्स हिन्द टोबैको एण्ड सिगरेट कम्पनी बनाम भारत संघ, 65.
मोटूमल बनाम रतनजी, 186.
मोण्टेग बनाम बैनेडिक्ट, 302.
मोती लाल बनाम ठाकुर लाल, 27, 63.
मोदी वनस्पति कम्पनी बनाम कटियार जूट मिल, 36, 241.
मैनबी बनाम स्काट, 302.
मोहनलाल बनाम श्रीगंगाजी कॉटन मिल्स, 98.
मोहम्मद बनाम आदिल, 128.

मोहम्मद ईशाक **बनाम** मोहम्मद इकबाल, 221.
मोहम्मद **बनाम** हुसैनी, 92.
मोहम्मद दिलावर **बनाम** मुस्लिम वक्फ बोर्ड, 316.
मोहम्मद सैयद बाबा **बनाम** यूनीवर्सल टिम्बर ट्रेडर्स, 118.
मोहम्मद हबीबुल शाह **बनाम** मोहम्मद शफी, 249.
मोहम्मद हाजी वली मोहम्मद **बनाम** रामप्पा, 107.
मोहरीबीबी **बनाम** धरमोदासघोष, 10, 76, 77, 80, 81, 219, 306.
मोरवी मर्केन्टाइल बैंक **बनाम** भारत संघ, 289, 296.
मोरेल ब्रदर्स **बनाम** वैस्ट मोर लैण्ड, 303.
मौला बख्श **बनाम** भारत संघ, 246, 249, 255.

य

याकोमद राजा **बनाम** नादरजमा, 253.
यूनाइटेड बैंक **बनाम** ए० टी० अली हुसैन, 225.
यूनियन ऑफ इन्डिया **बनाम** भीमसैन विलायतीराम, 164.
योगन्द्र कुमार जालान **बनाम** भारत संघ, 118.

र

रतनकली गुरन्ना साहेब **बनाम** वाचलप अपल्ला नायडू, 11.
रतन **बनाम** नानिक, 98.
रतनकली **बनाम** वाचलपू, 158.
रतनचन्द **बनाम** अक्सर, 127.
रतनलाल **बनाम** जयजिनेन्द्र, 96, 99.
रनविजय **बनाम** बालाप्रसाद, 170.
रमन **बनाम** पशुपति, 27.
रमन दयाराम शेट्टी **बनाम** इन्टरनेशनल एयरपोर्ट अथारिटी, 72.
रमाशंकर **बनाम** श्यामलता, 183.
राउट लेज **बनाम** ग्रान्ट, 60, 65.
राघवेन्द्र गुरूरावनायक **बनाम** महीपत कृष्ण, 270.
राज्य **बनाम** चकियत ब्रदर्स, 324.
राघवैया **बनाम** मोहम्मद इब्राहीम, 259.
राजलखी **बनाम** भूतनाथ, 141, 218.
राजस्थान राज्य **बनाम** चन्द्रमोहन चोपडा, 255.
राजस्थान राज्य **बनाम** बूंदी इलैक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी, 150.
राजस्थान राज्य **बनाम** मोतीराम, 241.
राजा ऑफ वेंकट गिरि **बनाम** कृष्णय्या, 32.
राजामणि **बनाम** भूरासामी, 106.
राजाराम **बनाम** डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, तंजौर, 201.
राधाकिशन **बनाम** शंकर, 66.

राधाकृष्ण चिन्तामन **बनाम** चापाभीम, 128.
रानी प्रभावती **बनाम** शैलेश नाथ, 203.
राबसन एण्ड शार्प **बनाम** ड्रमाण्ड, 174.
राम्सगट विक्टोरिया होटल कम्पनी **बनाम** मौन्टेफियौर, 62.
राम **बनाम** सीतल, 91.
रामकुमार **बनाम** चन्द्रकान्तो, 130.
रामचन्द्र **बनाम** आयशा बेगम, 43, 85.
रामचन्द्र **बनाम** मानिक चन्द, 82.
रामचन्द्र केशव अडके **बनाम** गोविन्द जोति चावारे, 20.
रामचरन मल **बनाम** चौधरी देवियासिंह, 220.
रामनाथपुरम मार्केट कमेटी **बनाम** ईस्ट इंडिया कार्पोरेशन, 225.
राम नारायण सिंह **बनाम** छोटा नागपुर बैंकिंग एसोसियेशन, 11.
रामपाल **बनाम** सुरेन्द्र, 10.
राम प्रसार **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य, 290, 332.
राम बरन प्रसाद **बनाम** राम मोहित हाजरा, 170.
राम लाल **बनाम** मलिक, 62.
रामलिंग **बनाम** मुथू, 158.
रामस्वरूप मामचन्द **बनाम** छाजूराम एण्ड सन्स, 329.
रामाज्ञा प्रसाद **बनाम** मुरली प्रसाद, 213, 217.
राव **बनाम** गुलाब, 147.
राव एण्ड सन्स **बनाम** विजयलक्ष्मी दास, 69.
रासबिहारी **बनाम** हरीपाद, 139.
रास कोर्ना **बनाम** थामस, 38.
राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ **बनाम** अपोलो मिल्स, 147.
रिज **बनाम** बाल्डविन, 236.
रीड **बनाम** एण्डरसन, 321.
रीड **बनाम** रैन, 331.
री महमूद एण्ड इस्पाहनी, 121.
रीस आर० एस० माइनिंग कम्पनी **बनाम** स्मिथ, 45.
रूबी जनरल इन्श्योरेन्स कम्पनी **बनाम** भारत बैंक, 151, 153.
रैफिल्स **बनाम** वाइचलपान्स, 112.
रैफिलस **बनाम** विन्चेल हाल, 86.
रेनोल्ड्स **बनाम** कोलमैन, 187.
रोज फ्रैंक एण्ड कम्पनी **बनाम** क्राम्पटन ब्रदर्स, 23.
रोशनलाल **बनाम** दिल्ली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स, 249.
रोशर **बनाम** विलियास, 30.
रौबिन्सन **बनाम** रिग, 302.

रंगनायकम्मा **बनाम** अलवार शेट्टी, 89.
रंग्राजू **बनाम** बासप्पा, 83.
रंजीत **बनाम** नौबत, 268.

ल

लक्षुमनन **बनाम** बोम्माची, 39.
लच्छूमल बनाम राधेश्याम, 122.
लताफा **बनाम** शेहराब, 148.
लल्लन प्रसाद बनाम रहमत अली, 295.
ललित मोहन बनाम वासुदेव, 140.
लक्ष्मीअम्मा व अन्य **बनाम** तेलंगला नारायण भट्ट, 91.
लक्ष्मी चन्द **बनाम** छोटूराम, 320.
लक्ष्मी जिनिंग व आयल मिल्स बनाम अमृत वनस्पति, 305.
लक्ष्मी नारायण बनाम हैदराबाद सरकार, 302.
लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन बनाम गदाधर डे, 196.
लाइफ इन्शोरेन्स कारपोरेशन बनाम वैद्यनाथ, 105
लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन **बनाम** रामदास अग्रवाल, 211.
लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन बनाम श्रीमती मंजला, 108.
लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन **बनाम** समरेन्द्रनाथ राय, 196.
लाडली प्रसाद **बनाम** करनाल डिस्टिलरी, 91.
लायड **बनाम** ग्रेस स्मिथ, 346.
लालचन्द **बनाम** प्यारेदसरथ, 287.
लालजी **बनाम** रामजी, 40.
लालमन **बनाम** गौरीदत्त, 50,51,68.
लाल महोमद **बनाम** भ्राथा, 145.
लाला **बनाम** जंग, 141.
लाला कपूर चन्द गोधा, **बनाम** आजमा, 179.
लाला कपूरचन्द **बनाम** हिमायत अली खां, 210.
लाला राम सरूप **बनाम** कोर्ट ऑफ लार्ड्स, 130.
लावण्य रे **बनाम** पी० एम० मुखर्जी, 67.
लिली व्हाइट **बनाम** मुन्नूस्वामी, 55.
लीज **बनाम** व्हिटकाम्ब, 42.
लीमा लेटाव एण्ड कम्पनी **बनाम** भारत संघ, 257, 261.
लीलूराम **बनाम** रामपियारी, 125.
लुपटन **बनाम** व्हाइट, 285.
लैशली **बनाम** शील, 81.
लोक शिक्षण न्यास **बनाम** आयकर आयुक्त, 18.

लोवे **बनाम** पीयर्स, 148.
लोहिया ट्रेडिंग कम्पनी **बनाम** सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, 225.
लैंकास्टर **बनाम** वाल्श, 28, 53.
लिंगो **बनाम** दत्तात्रेय, 109.

व

व्हाइट **बनाम** रैंच, 59.
वल्कन इन्श्योरैन्स कं० **बनाम** महाराज सिंह, 153.
वाटकिन्स **बनाम** धन्नू बाबू, 220.
वाफ **बनाम** मारिस, 124.
वाफन **बनाम** वान्डरस्टेजन, 80.
वायर्न **बनाम** वान टियेन हो विन, 60.
वार्ड **बनाम** नेशनल बैंक, न्यूजीलैण्ड, 269.
वारविक **बनाम** इंग्लिश जाइन्ट बैंक, 345.
विक्रम किशोर **बनाम** वेनुधर, 75.
विजयकृष्ण **बनाम** कालीचरन, 209.
विटी **बनाम** वर्ल्ड सर्विसेज, 251.
विदर **बनाम** रेनोल्ड्स, 178.
विनियथीथल आछी **बनाम** चिदाम्बरम, 187.
विनी **बनाम** विनगोल्ड, 152.
विमलाबाई **बनाम** शंकरलाल, 97.
विलसन **बनाम** ब्रैट, 280.
विलसन **बनाम** हारी, 41.
विलियम्स **बनाम** बेली, 87, 28.
विलियास **बनाम** कारवाडाईन, 27.
विष्णुचार्य **बनाम** रामचन्द्र, 320.
विष्णुप्रिया **बनाम** वृषभानु, 92.
वीरजी डाह्या **बनाम** रामकृष्ण, 161.
वीरपान्नप्पा **बनाम** मुनीयप्पा, 38.
वीरेन्द्र **बनाम** वसन्त, 128.
वीरेन्द्र नाथ धर **बनाम** फूड कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया, 237.
वेनगार्ड फायर एण्ड जनरल इन्शोरैन्स कम्पनी लिमिटेड, मद्रास **बनाम** एन० आर० श्रीनिवास अय्यर, 152.
वेब **बनाम** स्टेन्टन, 143.
वैसविक **बनाम** वैसविक, 35.
वैंकट **बनाम** लक्ष्मी, 22.
वेंकट रमन स्वामी भण्डार **बनाम** फातियाबी, 253.

श

श्यामनगर टिन फैक्टरी बनाम स्नोव्हाइट फूड कम्पनी, 210.
शतजादी बेगम बनाम गिरधारी लाल, 48, 289.
शरतचन्द्र बनाम कनाईलाल, 115.
शान्ति प्रिय मुखर्जी बनाम सुरेन्द्र चटर्जी, 10.
शाहजादा बनाम मोहम्मद 148.
शिव बनाम हनुमान, 327.
शिवरामकृष्णय्या बनाम वेंकट नरहरि राव, 218.
शेखपीरूबख्श बनाम कालिन्दी, 307.
शेष अप्पर बनाम कृष्ण अय्यर, 161.
शैफील्ड नाइकेल कम्पनी बनाम अनविन, 106.
शंकरलाल बनाम तोशनलाल, 302.
शंकर लाल बनाम घूरालाल, 275.
श्री कृष्ण बनाम कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, 96.
श्रीचन्द व अन्य बनाम जगदीश परशाद किशनचन्द व अन्य, 267, 269.
श्री दुर्गा सॉ मिल बनाम उड़ीसा राज्य, 72.
श्रीनिवास एण्ड कम्पनी बनाम इन्डेन बाइसेलर्स, 222.
श्रीमती ज्ञानदा देवी बनाम नाथ बैंक लि०, 185.
श्रीमती रामपत्तीदेवी बनाम रेवेन्यू बोर्ड, 113.
श्रीमती रूलिया देवी बनाम रघुनाथ प्रसाद, 196.
श्रीमती श्यामा कुमारी बनाम एजाज अहमद, 202.
श्रीमती शकुंतला बनाम हरियाणा राज्य, 229, 141.
श्रीमती सूमित्रादेवी बनाम श्रीमती सुलेखा, 121.
श्रीमती संध्या चटर्जी बनाम सलिल चन्द्र चटर्जी, 134.
श्रीमती सुशीलादेवी बनाम हरीसिंह, 202.
श्रीमती सोहवत देई बनाम देवीफल व अन्य, 155.
श्रीराम मैटल वर्क्स बनाम नेशनल इण्डस्ट्रीज, 75, 144.

स

स्काट बनाम एवरी, 152, 236.
स्टब्स बनाम होलीवैल, 173.
स्टाके बनाम बैंक ऑफ इंग्लैण्ड, 344.
स्टेट ऑफ जम्मू-कश्मीर बनाम सनाउल्लामीर, 115.
स्टेट ऑफ बिहार बनाम बंगाल सी० एण्ड० पी० वर्क्स, 56.
स्टेट ऑफ वैस्ट बंगाल बनाम बी० के० मोंडल एण्ड संस, 138.
स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया बनाम श्यामा देवी, 345.
स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र बनाम चितरंजन रंगनाथ राजा, 263.
स्पेन्सर बनाम हार्डिंग, 27.

स्मार्ट **बनाम** सैण्डर्स, 320.
स्मिथ बनाम के, 92.
स्मिथ बनाम स्मिथ, 29.
सत्यदेव **बनाम** त्रिवेनी, 20, 83.
सत्यव्रत बनाम मगनी राम, 10, 202, 203.
सतीशचन्द्र **बनाम** काशी साहू, 123.
सम्पय्या **बनाम** शमशेर खां, 145.
सय्यद अब्दुल खादर बनाम रामो रेड्डी, 301, 306.
सर्वेश **बनाम** हरी, 120.
सरतचन्द्र **बनाम** कनाईलाल, 115.
सरदार काहनसिंह **बनाम** टेकचन्द, 265.
सरोज **बनाम** ज्ञानदा, 23, 141.
सरोज बनाम ज्ञानोदा, 41, 63, 207.
साइक्स **बनाम** डिक्सन, 42.
सईमन्स **बनाम** पैचट, 344.
सादिक अली खां **बनाम** जयकिशोर, 80, 306.
साधु लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 73.
साबवा **बनाम** यमनअप्पा, 142.
सायम्मा **बनाम** पूनमचन्द, 128.
सालिगराम **बनाम** अयोध्या प्रसाद, 313.
सालू **बनाम** बाजत, 9.
सिक्केरिया **बनाम** नोरोन्हा, 145.
सिगे **बनाम** सिगे, 178
सी० आई० टी०, पंजाब **बनाम** पानीपत वुलन एंड जनरल मिल्स, 48.
सीमाचल महापात्रो बनाम बुद्धिराम, 308.
सुक्खा **बनाम** निन्नी, 122.
सुखदेव **बनाम** मंगल 128.
सुट्टन **बनाम** स्पैक्टकिल मेकर्स कं०, 42.
सुधीन्द्र **बनाम** गणेश, 128.
सुन्दर राजा **बनाम** लक्ष्मी अम्माल, 36.
सुपरिटेन्डेन्स कम्पनी आफ इंडिया **बनाम** कृष्ण मुरगाई, 148.
सुबोध चन्द्र **बनाम** हिमांशुबाला, 67.
सुब्रमन्य **बनाम** डब्लू०पी० एंड एस० सोसाइटी, 57.
सुब्रमन्यम **बनाम** सुब्बराव, 82.
सुमेर एण्ड लीवसले **बनाम** जॉन ब्राउन, 251.
सुरेन्द्र नाथ **बनाम** केदार नाथ, 55.
सुरेन्द्रनाथ **बनाम** लोहितचन्द्र, 324.

सुलतान चन्द्र बनाम शिलर, 177.
सुलोचना बनाम पंडियान बैंक, 83.
सुशीलचन्द्र बनाम राजबहादुर, 327.
सेतू पार्वतीअम्माल बनाम बज्जी श्रीनिवासन, 170.
सेठ लून करन बनाम आई० ई० जान, 320.
सैन्ट्रल बैंक मोतमिल लि० बनाम व्यंकटेश वापूजी, 57.
सेल्स टैक्स आफीसर बनाम कन्हैयालाल, 225.
से से आइल बनाम मैसर्स गोरख राम, 14.
सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम क्रेद, 282.
सेक्रेटरी आफ स्टेट बनाम जी० टी० सरीन एंड कम्पनी, 236.
सैन्चुरी स्पिनिग कंपनी लि० बनाम उल्हासनगर नगरपालिका, 47.
सैयद अब्दुल खादर बनाम रामी रेडि, 301, 306.
सैवी बनाम किंग, 315.
सैसून बनाम टोकरसी, 156.
सोनिया बनाम शेख मौला, 91.
सोपर बनाम आरनॉल्ड, 250.
सोभाग्यमल बनाम मुकुन्दचन्द, 160.
सोरेल बनाम स्मिथ, 149.
सौंडती बनाम श्रीपाद, 132.

ह

हनुमान प्रसाद बनाम हीरालाल, 189.
हनुमान काटन मिल्स और अन्य बनाम टाटा एयर क्राफ्ट लिमिटेड 215, 252.
हफीज उल्ला बनाम मोन्टेग, 283.
हरनाथ कौर बनान इन्दर बहादुर सिंह 216.
हरप्रसाद चौबे बनाम भारत संघ, 201.
हरफूल चन्द बनाम किशोरीलाल, 161.
हरभजन लाल बनाम हर चरन लाल, 54.
हरिचन्द मदन गोपाल बनाम पंजाब राज्य, 211.
हरिदायतराम बनाम वी० एण्ड एन० डब्लू० रेलवे, 276.
हरिद्वार सिंह बनाम वगुन सुम्ब्रुई, 164.
हरिमोहन बनाम दूलूमिया, 81
हरियाणा राज्य बनाम संपूर्ण सिंह, 17.
हरिश्चन्द्र बनाम त्रिलोकीसिंह, 301.
हरी बनाम जतीन्द्र, 300.
हस्सी बनाम होम्पेन, 66.
हसमन रूनी मालक बनाम मोहनसिंह, 196.

हाकमसिंह **बनाम** गैमन इंडिया लिमिटेड, 150.
हाजी अब्दुल रहमान **बनाम** बाम्बे एंड परशिया स्टीम नेविगेशन कम्पनी 113.
हाजी मुहम्मद ईशाक **बनाम** मुहम्मद इकबाल, 15.
हाजी मोहम्मद **बनाम** स्पिनर, 65.
हाजी शराफत हुसैन **बनाम** बद्रीविशाल धनधनिया, 189.
हार्वे **बनाम** जॉनसन, 30.
हार्वे **बनाम** फेसी, 20.
हाल्डेन **बनाम** जानसन, 187.
हिप्पिसली **बनाम** नी ब्रदर्स, 330.
हिन्दुस्तान जनरल इंश्योरेन्स **बनाम** सुब्रमन्यम, 107.
हिन्दुस्तान स्टील वर्क्स लि० **बनाम** भारत स्पन पाइप कंपनी, 171.
हिन्दू मर्केण्टाइल कार्पोरेशन लिमिटेड **बनाम** मोर याला, 11.
हीराभाई **बनाम** मैन्यूफैक्चरर्स लाइफ इन्शोरन्स कम्पनी, 23.
हीरालाल बनाम मनीलाल, 263.
हुकुमचन्द इंश्योरेन्स कम्पनी **बनाम** बड़ौदा बैंक, 258, 261, 314.
हेग बनाम ब्रुक्स, 29.
हेमसिंह **बनाम** भगवत, 115.
हेमैन बनाम डारविन्स, 227.
हेवर्थ बनाम नाइट, 65.
हैडले **बनाम** बैक्सेन्डेल, 237, 240.
हैन्डरसन **बनाम** स्टीवैन्सन, 55.
हैन्थोर्न **बनाम** फ्रेजर, 58.
हैरिस **बनाम** निकलसन, 25.
हैरोडंस लिमिटेड **बनाम** लमन, 330.
होरमसजी **बनाम** मान कुंवर बाई, 343.
होव **बनाम** स्मिथ, 250.
हंगरफोर्ड इनवेस्टमैण्ट **बनाम** हरिदास मुंदड़ा, 185.
हंस राज गुप्ता **बनाम** भारत संघ, 221.
हैंकिस बनाम पेप, 86.

ज्ञ

ज्ञान रंजन सेन गुप्ता बनाम अरुण कुमार बोस, 19.

अध्याय 1

विषय प्रवेश

सामाजिक समागम और संविदा

मानव, मूलतः, एक संवेदनशील प्राणी है। समाज के साथ, मानव का प्रारम्भिक और आत्यन्तिक सम्बन्ध मुख्यतः संवेदनात्मक होता है। स्वयं से भिन्न, अन्य जो भी प्राणवान अस्तित्व है, उसके साथ एक साम्यानुभूति का जीवन जीने की सहज प्रवृत्ति ही संवेदन की संज्ञा है। साम्यानुभूति को सहवेदन कहा जा सकता है। सहवेदन की आत्यन्तिक तीव्रता ही मानव की अनुभूतियों का आधार है। सुखद और दुखद अनुभूतियों के सामान्य मानदंड स्थिर करके ही, वह समाज में अधिकार और कर्त्तव्यों का स्वरूप निर्धारित करता है। यह एक सहज धारणा है कि विचार, भाव, संवेग और अनुभूति की प्रक्रिया सभी मानवों में समान होती हैं। जो स्वयं को सुखद है, सामान्यतया अन्यान्य व्यक्तियों को भी वही सुखद होगा, यही विश्वास, कर्म के सुखद फल को कर्तृत्व में परिणत करता है और इस प्रकार पारस्परिक व्यवहार के नियम मानवी संवेदना से ही प्रादुर्भूत होते हैं। पारस्परिक व्यवहार के कतिपय नियमों का सुचारू रूप ही संविदा को जन्म देता है। मनःस्तरीय संवेदन का सामाजिक स्वरूप नियमबद्ध होकर संविदा का विधिक आधार प्रस्तुत करता है। संवेदन के मौलिक भाव में ही संविदा शब्द का उद्गम है।

पशुता से सभ्यता की ओर जिस संस्कृति का विकास हुआ है, उसने मानव को अद्-वैतात्मक और द्वैतात्मक दो स्तरों पर जीना सिखाया है। मानव के सामाजिक स्वभाव की यह विचित्रता है कि वह एक साथ ही आत्मपरक और वस्तुपरक होता है। अनुभूतियों के संवेदनात्मक स्तर पर समाज के साथ उसका सम्बन्ध वस्तुपरक होता है, क्योंकि समाज के अन्य अवयवों के प्रति वह वही व्यवहार करता है जिसके अनुरूप व्यवहार की वह स्वयं अन्य जनों से अपेक्षा रखता है। इसके विपरीत स्वानुभूति के क्षेत्र में वह सर्वथा आत्मपरक होता है क्योंकि बौद्धिक स्तर पर वह अपने कलाप इस प्रकार निश्चित करता है जिससे सर्वथा और सर्वत्र उसके स्वयं के हितों का संरक्षण और संवर्धन हो। संविदा के रीति-बद्ध रूप से ही द्वैत और अद्वैत के इस द्वन्द्व का शमन होता है। दो व्यक्तियों अथवा दो व्यक्ति समूहों के पारस्परिक हितों का नियमन ही संविदा की रचना का मूलाधार है। संविदा के द्वारा उभय पक्षों के हितों का पृथक् पृथक् पर्यवेक्षण सम्भव हो जाता है और पारस्परिक सन्तुलन की दृष्टि से किसी एक पक्ष के हित को दूसरे पक्ष के दायित्व से सम्बद्ध कर दिया जाता है।

किसी भी प्रकार का सामाजिक समागम संविदा के अभाव में सम्भव नहीं है। सामाजिक समागम में निहित सम्प्रदान के भाव का शुद्ध निरूपण और सोद्देश्य नियोजन संविदा के कौशल द्वारा ही सुलभ होता है। इस प्रकार संविदा सामाजिक सह-अस्तित्व का प्राण है। प्लैटो[1] के अनुसार मानवी संविदायें ही राज्य के प्रादुर्भाव का आधार है। उसका कथन है कि मानवी आवश्यकताओं से ही राज्य का जन्म होता है। कोई भी व्यक्ति स्वयमेव पूर्ण और आत्म निर्भर नहीं हो सकता वरन् प्रत्येक व्यक्ति की ही अपनी अपनी एकानेक आवश्यकतायें होती हैं जिनकी पूर्ति के निमित्त विभिन्न सहयोगियों की आवश्यकता भी स्वाभाविक है। किसी विशिष्ट आवश्यकता

---

[1] रिपब्लिक बुक 2.

4—377 व्हीं० एस०पी०/81.

की आपूर्ति के लिए किसी व्यक्ति विशेष के श्रम उद्योग अथवा कौशल की आवश्यकता होती है और इसी प्रकार अन्यान्य आवश्यकताओं की तुष्टि के उद्देश्य से अन्यान्य व्यक्तियों की सहायता की अपेक्षा रहती है। जब ऐसे सहायक व्यक्ति भागीदार होकर एक समूह बनाकर निवास करने लगते हैं तब इसी समुदाय के विकसित रूप से राज्य की उत्पत्ति होती है। ये व्यक्ति जब परस्पर विनिमय करते हैं अर्थात् एक किसी को कुछ देता है और दूसरा किसी से कुछ लेता है तभी ऐसे व्यक्तियों के समुदाय में इस भावना का जन्म होता है कि इस प्रकार का सम्प्रदान अथवा विनिमय सर्वहितकारी है। चर्मकार, कुम्भकार, पशुपालक, कृषक, बुनकर, चिकित्सक अध्यापक, मिष्ठान्नकार, नट, नर्तक, गायक, गृह-सेवक आदि सभी परस्पर की हुई संविदाओं के आधार पर एक सांगोपांग समाज का निर्माण करते हैं। फ्रान्स के महान चिन्तक रूसो ने तो सामाजिक संविदा[1] के सिद्धान्त को ही राज्य-संस्था का जनक माना है। थामस हाब्स और जान लॉक ने भी राज्य की उत्पत्ति में इसी सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की है। वस्तुतः मानव निर्मित विधि और मानवी व्यवहार का आधार संविदा ही है।

भारत में वैदिक काल में मानवी व्यवहार का समग्र विस्तार धर्म में समाहित था। ऐसा प्रतीत होता है कि स्मृति-काल में धर्म के इस विशाल निकाय से मानवी संव्यवहार के भाग को पृथक् करने का प्रयास किया गया किन्तु उस काल तक यह पृथक्करण स्पष्ट नहीं हो पाया था। मनुस्मृति के प्रारम्भ में ही यह कथन है कि एकाग्रचित बैठे हुए मनु के पास जाकर और यथा-विधि उनका अभिवादन करके ऋषियों ने सभी वर्णों और सभी आश्रमों के धर्म को क्रमशः जानने की इच्छा की। ऋषियों की जिज्ञासा का विषय सकल और स्वयंभू विधान था[2]। मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ में धर्म को सत्कर्त्तव्य मानते हुए भगवान मनु ने तत्पश्चात् वेद स्मृति सत्पुरुषों का आचार और आत्मा का प्रियाचरण ये चार प्रकार के धर्म के सुस्पष्ट लक्षण बताए[3] यद्यपि उन्होंने पूर्व में सम्पूर्ण वेद को ही धर्म का मूल बताया[4]। याज्ञवल्क्य स्मृति[5] में भी वेद को ही धर्म का प्रथम स्रोत माना गया है। यद्यपि सभी स्मृतियों के निर्माण का हेतु धर्म की जिज्ञासा रहा है तथापि मनु याज्ञवल्क्य, कात्यायन और कुछ अंशों में वशिष्ठ की स्मृतियों में कुछ विशिष्ट विवादों को व्यवहार शीर्षक के अन्तर्गत पृथक् स्थान दिया गया है। इसी के समानान्तर स्मृति ग्रन्थों में आपराधिक कृत्यों के लिए दंड का विधान किया गया है। इस प्रकार स्मृति काल मे दांडिक और व्यावहारिक मामलों का निपटारा राजाज्ञा पर आश्रित विधि-विधानों द्वारा होने लगा था तथा संविदा विधि को व्यवहार के अन्तर्गत स्थान दिया गया था। मनुस्मृति के आठवें अध्याय में व्यवहार सम्बन्धी विवादों को अठारह भागों में विभक्त करते हुए प्रत्येक का इस प्रकार नामकरण किया गया है—1—ऋण का लेन देन, 2—निक्षेप, जिसका तात्पर्य धरोहर या गिरवी से है, 3—स्वामी से बिना पूछे उसकी वस्तु का विक्रय, 4—भागीदारी अथवा साझे का व्यवहार, 5—उधार दिए अथवा सम्प्रदत्त किये हुए पदार्थ का पुनः न देना या ग्रहण करना, 6—वेतन का देना, 7—संविदा का व्यतिक्रम अर्थात् करारभंग, 8—क्रय–विक्रय में विवाद होना, 9—पशुपति और पशुपालक में विवाद होना, 10—मारपीट, 11—पारुष्य अथवा अपवचन गाली-गलौज आदि, 12—चोरी—डाका, 13—सीमा

---

1 सोशल कान्ट्रैक्ट.

2 सर्वस्यविधानस्य स्वयंभुवः—मनुस्मृति, 1/3.

3 वेद : स्मृति सदाचार : स्वस्यच प्रियमात्मनः मनु० 2/12.

4 वेदोऽखिलो धर्ममूल-मनु० 2/6.

5 उसी में 1/7.

सम्बन्धी विवाद, 14—बलात् अथवा साहस के प्रयोग से किसी कार्य को करना अथवा करवाना, 15—अन्य की स्त्री से सम्बन्ध रखना, 16—दाम्पत्य सम्बन्धों में व्यतिक्रम होना, 17—दायभाग के विभाजन का विवाद और 18—जड़ अथवा चेतन पदार्थ को दांव पर रखकर द्यूत-क्रीड़ा अथवा जुआ खेलना। यद्यपि इनमें से पहला, दूसरा, चौथा, पांचवां, छठा, सांतवां, और आठवां वर्ग, संविदा के ही अन्तर्गत माना जा सकता है तथापि "संविदश्च व्यतिक्रमः" का उल्लेख करके संविदाभंग को एक पृथक वर्ग के अन्तर्गत रख कर स्मृतिकार द्वारा नागरिक जीवन में संविदा के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

पौराणिक काल में संविदा-विधि को विद्याओं के अन्तर्गत स्थान दिया गया था। विष्णु-पुराण में आन्वीक्षिकी (तर्क-शास्त्र); त्रयी (कर्मकांड); दंडनीति और वार्ता इन चार प्रकार की विद्याओं का उल्लेख हुआ है जिनमें से वार्ता नाम की एक विद्या को ही कृषि, वाणिज्य और पशुपालन, इन तीन वृत्तियों का आश्रय बताया गया है[1]। स्पष्ट है कि कृषि वाणिज्य और पशु पालन की वृत्तियों का संविदा से ही प्रमुख सम्बन्ध है। अतः संविदा विधि को व्यक्त करने वाली वार्ता नाम की विद्या ही है, और यह नामकरण सार्थक भी है क्योंकि उपरोक्त तीन वृत्तियों के निबन्धनों और शर्तों को परस्पर के संवचनों या वार्ताओं द्वारा ही स्थिर करना सम्भव है। महाभारत काल तक संविदा सहित समस्त व्यवहार विधि राज्य की न्याय-व्यवस्था के अधीन हो चुकी थी। महाभारत के शान्ति पर्व में स्पष्टतया धर्म का उद्‌गम वेद से तथा व्यवहार का उद्‌गम राज्यसंस्थाओं से माना गया है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में व्यवहार विधि को, राज्य की न्याय व्यवस्था में न केवल प्रमुख स्थान दिया गया है वरन् इस क्षेत्र में उपस्थित विवादों के निपटारे के लिए राजाज्ञा को ही प्रधानता दी गई है। अर्थशास्त्र के 'धर्मस्थीयम्' प्रकरण में यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक विवाद में काल के भेद उपस्थित रहने के कारण उनके निराकरण के लिए सामाजिक मान्यताओं से भी ऊपर राजाज्ञा ही प्रभावी होगी। इस प्रकार वैदिक काल में धर्म से निसृत होकर मौर्य वंश तक आते-आते संविदा का व्यावहारिक स्वरूप अन्य व्यवहार विधि के साथ-साथ राजाज्ञाओं अथवा राज्य की अधिनियमितियों के अधीन हो चुका था।

संविदा का व्यावहारिक स्वरूप

संविदा उन सब व्यवस्थाओं का आधार है जिन्हें उनम और स्थायी मान कर नीति और युक्ति द्वारा रचा जाता है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के संकल्पों में द्वन्द्व हो सकता है, किन्तु किसी समझौते के द्वारा इस द्वन्द्व का निराकरण किया जा सकता है। विवेक के बल पर किए गए संकल्प में, जो विवेकशील हैं, उन सभी की स्वाभाविक रुचि हो जाती है। सबकी रुचि के अनुकूल संकल्प सर्व-सम्मत हो जाता है। यह सम्मति अथवा सहमति ही संविदा के व्यावहारिक स्वरूप का निर्धारण करती है।

सहमत होने की क्रिया प्रकट अथवा मौन दोनों ही प्रकार के लक्षणों से सम्पन्न हो सकती है। इस सहमति के किसी भी प्रकार से अभिव्यक्त होते ही संविदा का बीजांकुरण हो जाता है। वास्तव में अभिव्यक्त कार्यशीलता के आधार पर ही किसी समझौते का संविदा में अभ्युदय हो जाता है।

---

[1] आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दंडनीतिस्तथापरा.
विद्या चतुष्टायं चैत द्वार्तामात्रं शृणुष्व मे..
कृषिर्वेणिज्या वद्वच्च तृतीयं पशुपालनम्
विद्यष्येका महाभाग वार्त वृत्ति त्रयोश्रया..5/10/27-28.

संविदा के पक्षकार यह चैतन्य रूप से अनुभव कर सकते हैं कि किसी भी पक्ष द्वारा अपने हितों की पूर्ति का प्रश्न इसलिए उठाया जा सकता है कि दूसरा पक्ष भी इसे स्वीकार कर चुका है और इसी कारण इसकी बाध्यता में दोनों ही पक्षों की निष्ठा निहित होती है। संविदा के द्वारा एक व्यक्ति का संकल्प दोनों पक्षों का संकल्प हो जाता है। ऐसी दशा में किसी भी पक्ष के हित की पूर्ति की मांग इस कारण उठाई जा सकती है कि इसकी सम्पुष्टि में दोनों ही पक्षों की स्वीकृति समाविष्ट हो चुकी है। दोनों ही पक्षों के हित इस प्रकार मान्यता प्राप्त कर लेते हैं।

मान्यता प्राप्त हित ही अधिकार बन जाते हैं। क्योंकि केवल उन्हीं हितों की मान्यता हो सकती है जिनका कि किसी अन्य द्वारा विरोध न किया जा सके। अतः अधिकार के अन्तर्गत वे ही विषय आते हैं जो सामान्यतः सर्व-मान्य हों। ऐसे सर्व-मान्य अधिकारों की उपेक्षा करने वाले दुराग्रही, फिर समष्टि-मत अथवा विधिक-बल से बाध्य होकर इनके समक्ष नत-मस्तक होते हैं। जब तक मान्यता प्राप्त न हो किसी भी अधिकार को वास्तविक नहीं कहा जा सकता। जब तक मान्य न हों तब तक अधिकार केवल स्वकल्पित एवं निरर्थक ही हैं।

संविदा एक विधि है जिसके द्वारा किसी अधिकार अथवा तत्समान दायित्व का सृजन होता है। समझौते में जो सहमति का भाव समाविष्ट रहता है उसी के द्वारा पक्षकारों को उसके निबंधन और शर्तें अभिस्वीकृत हो जाती हैं और फलतः जिस विषय को अधिकार अथवा तत्समान दायित्व के रूप में मान्यता दी जाए वह उसी समझौते के किसी निबंधन अथवा उसकी किसी शर्त के अधीन होता है। इस प्रकार व्यक्तिगत अधिकार और दायित्व संविदा से ही उद्‌भूत होते हैं। लैटिन भाषा में एक उक्ति इस प्रकार है कि **ऊबी जस ईबी रिमेडियम** अर्थात् जहां अधिकार है वहां उसका उपचार भी है किन्तु इस उक्ति की सार्थकता तभी है जबकि अधिकार का सृजन करने वाली किसी संविदा का अस्तित्व हो। संविदा ही वह आधार-भूत विधि है जिसके द्वारा उसके निबंधनों को अभिस्वीकृत करने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक अधिकार और दायित्व प्रशासित होते हैं। समझौते की युक्ति द्वारा ही पृथक-पृथक व्यक्ति, सम्पृक्त होकर समागम करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि समझौते से संगठन का जन्म होता है न कि संगठन से समझौते का। समझौते के अभाव में यदि कोई संगठन हो भी तो वह व्यक्तियों का आकस्मिक सम्पर्कमात्र है। संविदा के बल पर ही आकस्मिक सम्पर्क संगठन का रूप ले लेता है। सर्वोच्च संघ होने के नाते राज्य को भी इसीलिए संविदा पर आधृत माना गया है।

समझौते के अभाव में विवेकशील प्राणियों के किसी भी संगठन का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। विधिक शब्दावली में इस समझौते को 'करार' संज्ञा से अभिहित किया गया है। करार ही संविदा का आत्मतत्व है। पारस्परिक समानुभाव अथवा समझौते के बिना दाम्पत्य जीवन का संगठन भी मनोनुकूल नहीं हो सकता। अरस्तु[1] और रूसो[2] के मतानुसार कर्त्तव्य विभाजन ही दाम्पत्य और सम्पूर्ण पारिवारिक संस्था की भित्ति है। समझौते कर्म विभाजन का ही विधिक स्वरूप हैं। कर्म विभाजन के द्वारा प्रत्येक सहचर अथवा सदस्य का यह अधिकार हो जाता है कि इच्छानुसार और आवश्यकतानुसार बाध्यकर के भी अन्य सहचर अथवा सदस्य के उस अभिस्वीकृत विभाजन के प्रति निष्ठा की अपेक्षा कर सकें। मुस्लिम विधि में तो दाम्पत्य जीवन का आधार भी संविदा ही है।

संविदा के व्यावहारिक स्वरूप में इस प्रकार दो चरण होते हैं। प्रथम एक समझौता अथवा **करार** होता है जिसमें हितों का एकत्व होता है। जब इन हितों की सिद्धि के निमित्त कर्त्तव्य विभाजन की व्यवस्था

1 अरस्तु का 'निकोमैचीन एथिक्स' नामक ग्रन्थ.

2 ए डिसकोर्स ऑन दि ओरिजिन ऑफ इनईक्वैलिटी.

करके प्रत्येक पक्ष के दायित्व निर्धारित कर दिए जाते हैं तो यही करार संविदा बन जाता है, क्योंकि इस प्रकार निर्धारित दायित्व प्रवर्तनीय बन जाते हैं और प्रवर्तनीय समझौता अथवा करार ही संविदा कहा जाता है। प्रवर्तनीय होने के कारण संविदा एक आधारभूत विधि बन जाता है और फिर इसी के अनुसार प्रत्येक पक्ष के अधिकार और दायित्व का निर्माण और निर्धारण किया जाता है।

अस्तु संविदा पक्षकारों द्वारा स्वयं के लिए निर्मित विधि है। विधि का मूल लक्षण यही है कि इसके द्वारा अधिकारों और दायित्वों का निर्धारण करने वाले सिद्धान्तों को स्थापित किया जाता है। संविदा वह व्यावहारिक युक्ति है जिसके द्वारा पक्षकार स्वयं अपने मध्य कुछ अधिकार और बाध्यताओं को उत्पन्न कर उनसे परस्पर आबद्ध हो जाते हैं और उन्हें मान्यता और आदर देना आवश्यक समझने लगते हैं।

किसी भी अधिकार और बाध्यता का निर्धारण सहसा नहीं हो जाता। वास्तव में जब तक किसी प्रसंगवश पक्षकार मिलकर स्वयं के लिए अपने अभीष्ट अधिकार और दायित्व को उत्पन्न करने के विवेक पर सहमत न हो जाएं तक तब किसी अधिकार अथवा दायित्व की मान्यता का अवसर उपस्थित नहीं हो सकता। किसी निश्चित उद्देश्य की आवश्यकता अनुभव करके पक्षकार मिलते और कोई करार करते हैं। करार की स्थिति के पश्चात् करार करने वालों के विचारपूर्ण आदान-प्रदान से अधिकार और दायित्व उत्पन्न होते हैं। करार ही अधिकार और दायित्वों का स्रोत है। प्रथम किसी प्रयोजन की तात्कालिक आवश्यकतावश एक करार सम्पन्न होता है। तदनन्तर उस प्रयोजन की पूर्ति के निमित्त जिन अधिकार और दायित्वों का निर्माण होता है उनका पालन भी उसी करार की परिधि में आता है।

प्रयोजन की पूर्ति एक क्रियात्मक पद्धति है। जब तक किसी कृत्य को सम्पन्न करने का विचार न हो तब तक किसी भी प्रकार की सिद्धि कठिन है। प्रयोजन की पूर्ति के हेतु जिस क्रियात्मक पद्धति का विनिर्देश किया जाता है उसका तात्पर्य यह होता है कि या तो कोई कार्य किया जाए या किसी कार्य से प्रविरत रहा जाए। जिस प्रयोजन हेतु सहमति हुई हो उसकी सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि पक्षकार अपने अभीष्ट के निमित्त जिन कार्यों का करना या जिन कार्यों से प्रविरत रहना आवश्यक समझे क्रमशः उन्हीं के पालन या निषेध के लिए परस्पर वचन-बद्ध हों।

पक्षकारों का वह वचन ही वह विधिक बाध्यता है जिसके कारण वे एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी हो जाते हैं। इसी बाध्यकारी तत्व को जस्टीनियन ने अपने 'इंन्स्टीट्यूट्स' नामक ग्रन्थ में '**विनकुलम ज्यूरिस**' अर्थात् न्यायिक बन्धन कहा है। इस न्यायिक-बन्धन की स्थापना से करार का संविदा में उन्नयन हो जाता है। इस प्रकार संविदा के शास्त्रीय विचार में दो संघटक निहित होते हैं—समझौता अथवा करार और बाध्यता अथवा प्रवर्तनीयता।

दो निश्चित व्यक्तियों अथवा पक्षों का किसी निश्चित विषय में समान उद्देश्य ही करार का कारण होता है। संविदा का मूल करार में है। जब तक कोई दो व्यक्ति किसी समान उद्देश्य से प्रेरित न हों, अर्थात् एक मत न हों तब तक उनमें करार होना असम्भव है। व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहों में करार तभी हो सकता है जबकि उनके भाव समान हों और वे एक मत भी हों अर्थात् उनके विचारों में साम्य हो। उनका एक ही विषय पर एक ही समय में तथा एक ही अर्थ में मतैक्य आवश्यक है। लैटिन भाषा में इस उपरोक्त मतक्यता के सूत्र को '**कान्सैन्सस एड इडम**' नाम दिया गया है।

संविदा की दृष्टि से दोनों पक्षों के मध्य किसी करार का होना ही यथेष्ट नहीं है। यह भी नितान्त आवश्यक है कि करार की विषय-वस्तु के निबन्धन और उसकी शर्तें प्रवर्तनीय भी हों और उनकी प्रवर्तनीयता के लिए आवश्यक है कि करार की विषय-वस्तु विधि-सम्मत हो उसका उद्देश्य अवैध, अनैतिक

अथवा लोकनीति के विरुद्ध न हो। इस प्रकार संविदा की अपेक्षा करार का अर्थ अधिक व्यापक है। **प्रत्येक संविदा करार होता है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक करार संविदा की कोटि में आ जाए।** संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसी प्रवर्तनीय करार का नाम ही संविदा है। जब दो पक्ष किसी निश्चित प्रयोजन से एकमत होकर अपने करणीय कृत्यों और दायित्वों के निर्वाह की पृथक-पृथक व्याख्या करते हैं और अपने किसी वैध उद्देश्य की पूर्ति के इच्छुक होते हैं तो उनका करार संविदा बन जाता है। यह समान उद्देश्य परस्पर आदान-प्रदान की भावना से ओतप्रोत होता है और आदान-प्रदान के इस मौलिक भेद के कारण ही कर्त्तव्यों और दायित्वों की पृथक-पृथक विवेचना पक्षकारों के उभयनिष्ठ उद्देश्य की दृष्टि से आवश्यक हो जाती है। आदान-प्रदान का यह पारस्परिक भाव वस्तुत: प्रत्यक पक्ष का दूसरे पक्ष के प्रति-भूत, भविष्य अथवा वर्तमान में कोई विशिष्ट कृत्य करने का हेतु, निमित्त अथवा प्रलोभन होता है जिसे विधिक शब्दावली में **प्रतिफल** नाम दिया गया है। उभय पक्षों में एक-दूसरे के प्रति किया गया, किया जा रहा अथवा किया जाने वाला विशिष्ट कृत्य प्रत्येक के लिए प्रतिफल का निर्माण करता है।

यदि किसी कार्य को कोई एक जन स्वयं सम्पन्न करने की क्षमता रखता हो तब दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के करार की आवश्यकता नहीं रहती। किन्तु संसार में अधिकांश कार्य ऐसे हैं जो किसी एक व्यक्ति द्वारा या व्यक्तियों के केवल एक दल द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकते। कुछ ऐसे भी कार्य हैं जिनमें मात्र पारस्परिकता का भाव रहता है, अर्थात स्वयं कोई कार्य करके प्रतिफल में, दूसरे पक्ष से भी कोई कार्य करवाया जाए। वे समस्त कार्य जिनमें ऐसी पारस्परिकता का भाव हो, पक्षकारों के मध्य, करार के अतिरिक्त, किसी अन्य प्रकार से, सम्पन्न हो ही नहीं सकते। पारस्परिकता के इस भाव में प्रत्येक पक्ष, दूसरे पक्ष के प्रति, कुछ करने का और दूसरे पक्ष से प्रतिफल में कुछ किए जाने का प्रस्ताव रखता है, और प्रथम पक्ष द्वारा समावेदित प्रतिफल के बल पर, दूसरा पक्ष इसे उसी अर्थ में, स्वीकार कर लेता है। ऐसा प्रस्ताव या समावेदन जब स्वीकार कर लिया जाए, तो **वचन** बन जाता है। इस वचन से ही, उस बाध्यता का निर्माण होता है जिसके बल पर स्वीकार करने वाला पक्ष दायित्व-बद्ध होकर, स्वीकृत कृत्य का पालन करता है। वचन में अन्तर्निहित बाध्यता की शक्ति के कारण ही, प्रत्येक पक्ष, दूसरे पक्ष की ओर से स्वीकृत कृत्य के पालन की मांग कर सकता है। और यदि आवश्यकता हो तो, उसे इसके पालन के लिए बाध्य भी कर सकता है।

वचन, किसी पक्ष की, वह प्रतिज्ञा है जिसके द्वारा, एक पक्ष दूसरे के प्रति, किसी विशेष कार्य को करने या किसी विशेष कार्य से प्रविरत रहने की घोषणा करता है या ऐसा करने या इस प्रकार प्रविरत रहने का विश्वास उत्पन्न करता है। इस वचन द्वारा किसी पक्ष को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह दूसरे पक्ष द्वारा घोषित किए हुए कार्य की पूर्ति की मांग उठा सके। जो किसी एक पक्ष का दायित्व या कृत्य होता है, वही दूसरे पक्ष का अधिकार बन जाता है। यही वह दूसरा चरण है, जहां अधिकार और कर्त्तव्य उत्पन्न और निर्धारित हो जाते हैं। इस द्वितीय चरण में, मूल करार, संविदा बन जाता है। इस प्रकार, संविदा का न्यायिक रूप, दो पृथक उपबन्धों में विभक्त हो जाता है। प्रथम, एक करार होता है और द्वितीय, यह कि उस करार में इतना बल होता है कि उससे प्रत्येक पक्ष बाध्य हो जाता है। वस्तुत:, यह बाध्यता भी एक द्वितीय करार होता है और ये दोनों करार, एकनिष्ठ होकर, पृथक-पृथक अधिकार और दायित्व के द्वारा, परस्पर, सम्बद्ध हो जाते हैं। एक आवश्यक तथ्य यह भी है कि करार द्वारा निर्मित अधिकार अथवा दायित्वों की बाध्यता तभी उत्पन्न हो सकती है जबकि करार करने वाले दोनों पक्ष, **प्राप्तवय, स्वस्थचित्त** और **स्वच्छाधीन** हों, और किसी प्रकार के **कपट, भ्रम, छल** अथवा अन्य किसी **प्रपंच** से

प्रभावित न हों। उपरोक्त सभी दशाओं से, करार करने वाले व्यक्तियों की करार करने के लिए, सक्षमता का बोध होता है। अस्तु, संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि न्यायिक विचार से, **संविदा, किसी वैध उद्देश्य के लिए स्वीकृति देने में सक्षम व्यक्तियों के मध्य बाध्यकारी करार है।**

न्यायालय के अवमान की विधि से संविदा विधि के क्षेत्र की पृथकता

यह सत्य है कि न्यायालय के अवमान सम्बन्धी विधि, न्याय प्रक्रिया की निर्मल और अगर्हित गति के लिए नितान्त आवश्यक है तथापि इसे भी स्मरण रखना होगा कि समाज किसी भी मानव की संविदा से संरक्षित अपेक्षाओं की पूर्ति में भी उतना ही हितबद्ध है और इसी प्रयोजन से संविदा विधि का अस्तित्व है। इन क्षेत्रों में से किसी एक विधि को असीमित और अपरिमित क्षेत्र प्रदान कर देना दूसरी विधि के क्षेत्र का ह्रास करना है। न्यायमूर्ति एस० एन० द्विवेदी[1] के मत में संविदा के अन्तर्गत अपने अधिकार का निष्ठापूर्ण प्रयोग ही इन दोनों विधियों के अपने-अपने क्षेत्र की पृथकता का मानदंड है। संविदा के अन्तर्गत किसी भी पक्ष के अधिकार उसके विधिक अधिकार हैं। अस्तु किसी विधिक कार्यवाही के किसी पक्ष द्वारा अपने किसी विधिक अधिकार का सद्भावपूर्ण प्रयोग किसी प्रतिषेधात्मक आदेश अथवा वचनबद्धता के अभाव में यदि न्यायालय के अवमान की परिधि में नहीं आता तो फिर इसी सिद्धान्त के संविदाजन्य अधिकारों के प्रयोग पर लागू न होने का कोई कारण नहीं है। सारांश यह है कि यदि न्यायालय द्वारा कोई प्रतिषेधात्मक आदेश न दिया गया हो अथवा कोई पक्षकार अन्यथा वचनबद्ध न हो तो संविदा से सम्बन्धित किसी विधिक कार्यवाही के दौरान भी कोई पक्षकार संविदा के अन्तर्गत अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है और ऐसे प्रयोग से न्यायालय का कोई अवमान नहीं होगा।

भारतीय संविदा अधिनियम की पृष्ठ भूमि

24 सितम्बर, 1726 के ब्रिटिश राजपत्र (चार्टर) द्वारा कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में, मेयर कोर्टों की स्थापना की गई जिनका अधिकार क्षेत्र उच्च न्यायालय के समकक्ष था। शाही राजपत्र के अधीन स्थापित, ये उपरोक्त न्यायालय, इंग्लैण्ड की विधि को भारतीय परिस्थितियों के अनुसार, कुछ संशोधित करके लागू करते थे जबकि अन्य न्यायालयों के न्यायाधीश, किसी भी निश्चित विधि का अनुसरण किए बिना केवल **न्याय, साम्या** तथा **सदभाव** के सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए, न्याय-दान करते थे। अतः तत्कालीन भारत में, संविदा विधि की एकरूपता नहीं थी। कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई के उपरोक्त न्यायालयों द्वारा लागू की जाने वाली अंग्रेजी विधि भी, वैदेशिक होने के कारण, भारत के लिए अनुपयुक्त थी। एतदर्थ, 1781 में[2] कलकत्ता के उपरोक्त न्यायालय को, तथा 1797 में[3], बम्बई तथा मद्रास के उपरोक्त न्यायालयों को यह अधिकार प्रदान किए गये कि वे, जहां दोनों पक्षकार हिन्दू हों, वहां हिन्दू-विधि, और जहां दोनों पक्षकार मुसलमान हों, वहां मुस्लिम-विधि को लागू करें तथा जहां एक पक्षकार हिन्दू और दूसरा मुसलमान हो, वहां प्रतिवादी होने वाले पक्ष की विधि को लागू करें।

सन् 1833 से पूर्व, तत्कालीन ब्रिटिश भारत में, संविदा विधि की यही असन्तोषजनक स्थिति रही। ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित, सन् 1833 के चार्टर ऐक्ट द्वारा, सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत के लिए एकल विधानमंडल का स्वरूप स्थिर हुआ और इसे, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के

---

1 के० टी० चन्दी **बनाम** मंसाराम जादे, ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 642, 644-[1974] 1 उम० नि० प० 1061.

2 जार्ज तृतीय का 1781 का इक्कीसवां घोषणा अधिनियम.

3 जार्ज तृतीय का 1797 का सैंतीसवां घोषणा अधिनियम.

प्रेसीडेन्सी नगरों तथा ब्रिटिश भारत के अन्य क्षेत्रों के लिए विधान पारित करने हेतु प्राधिकृत किया गया। इस चार्टर ऐक्ट की धारा 53 के अनुसार, एक विधि आयोग की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य, भारत के लिए, एक ऐसे समरूप कानून का निर्माण करना था जो यहां के नागरिकों के सभी वर्गों पर समान रूप से लागू हो सके और जिसका अधिनियमन इस भांति हो कि उसमें यहां के विभिन्न वर्गों के अधिकार, विचार और विशिष्ट प्रथाओं के लिए समुचित स्थान तो हो ही, साथ ही, उसके द्वारा ऐसी व्यवस्था का भी स्थापन हो सके जिससे समस्त विधियों तथा विधि के समान प्रभावशील समस्त रुढ़ियों का **विनिश्चय, समेकन** और **संशोधन** भी हो सके। इस प्रकार, सन् 1834 में, प्रथम विधि आयोग[1], की स्थापना हुई और फिर, इस आयोग की सिफारिशों पर सम्यक् विचार हेतु सन् 1853 में द्वितीय विधि-आयोग स्थापित हुआ। तदनन्तर सन् 1861 के अन्त में, तृतीय विधि-आयोग आया जिसने संविदा अधिनियम का प्रारूप और इस पर अपनी द्वितीय रिपोर्ट, सन् 1866 में, प्रस्तुत की। सन् 1867 के जुलाई मास में अपने उद्देश्य और कारणों के विवरण सहित, संविदा का विधेयक, राजपत्र में प्रकाशित हुआ। इस विधेयक को श्री डब्लू० एन० मैसी ने विधानमंडल में प्रस्तुत किया, किन्तु दिसम्बर, 1869 में, जब श्रीमान् स्टीफैन ने विधि-आयोग के सदस्य के रूप में प्रवेश किया, तो उन्हें इस विधेयक के अधिकांश स्थलों में संशोधन और पुनर्लेखन की आवश्यकता अनुभव हुई। फलतः, उन्होंने एक परिवर्तित प्रारूप प्रस्तुत किया। वर्तमान संविदा अधिनियम की धारा 2 के अन्तर्गत, निर्वचन खंड की व्याख्या का श्रेय उक्त श्री स्टीफैन को ही है। उन्होंने, अनुचित प्रभाव को 'कपट' और दुर्व्यपदेशन के भावों से पृथक् करके, उसे, एक स्वतंत्र पद के रूप में स्थापित और परिभाषित किया। अन्ततः यह विधेयक, सन् 1872 में, पूर्णतः पारित होकर, **भारतीय संविदा अधिनियम,** (1872 का अधिनियम संख्या 9) के नाम से प्रवृत्त हुआ।

इस अधिनियम की 76 से 123 तक धारायें माल विक्रय तथा इसी प्रकार 239 से 266 तक धाराएं भागीदारी से सम्बन्धित थीं जिन्हें कुछ समय पश्चात् पृथक अधिनियमिति द्वारा प्रकट करना युक्तियुक्त माना गया। परिणामतः, सन् 1930 में माल विक्रय अधिनियम, 1930 (1930 का अधिनियम संख्या 3) तथा सन् 1932 में, भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का अधिनियम संख्या 9) पृथक् और स्वतंत्र रूप से पारित किए गए। माल विक्रय अधिनियम के पारित होने पर, संविदा अधिनियम के सप्तम अध्याय, को, जिसमें कि 76 से 123 तक धाराएं थीं, निरसित कर दिया गया और इसी प्रकार, भागीदारी अधिनियम के पारित होने के फलस्वरूप, संविदा अधिनियम के ग्यारहवें अध्याय को, जिसमें कि 236 से 266 तक धारायें थीं तथा अधिनियम के अन्त में दी हुई अनुसूची को भी, निरसित कर दिया गया।

सातवें और ग्यारहवें अध्याय के निरसन के पश्चात्, संविदा अधिनियम के अवशिष्ट अध्यायों में से, प्रथम छह अध्यायों में, संविदा विधि के सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है और शेष में, संविदा की विशेष रीतियों, जैसे, **प्रत्याभूति, उपनिधान, अधिकरण,** आदि का विवेचन किया गया है।

अपनी वर्तमान अवस्था में, संविदा अधिनियम, सम्पत्ति के अन्तरण पर भी उस सीमा तक लागू होता है जहां तक कि इसके उपबन्ध, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का अधिनियम संख्या 4) के उपबन्धों से असंगत न हों। उक्त सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 4 में

[1] विक्टोरिया का सोलहवां तथा सत्तरहवां खंड 95.

यह उल्लेख है कि इस अधिनियम के अध्याय और वे धारायें, जिनका संविदा से सम्बन्ध है, संविदा अधिनियम के ही भाग माने जाएंगे। इसी प्रकार, माल विक्रय अधिनियम, 1930 (1930 के अधिनियम संख्या 3) की धारा 3 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि माल विक्रय की संविदाओं पर, भारतीय संविदा अधिनियम के उपबन्ध, उस सीमा तक लागू रहेंगे जहां तक कि संविदा अधिनियम के उपबन्ध, उक्त माल विक्रय अधिनियम के अभिव्यक्त उपबन्धों से असंगत न हों।

अधिनियम का उद्देश्य, विस्तार और व्यावृत्ति

(क) उद्देशिका—

इस अधिनियम की उद्देशिका यह अभिव्यक्त करती है कि संविदाओं से सम्बन्धित विधि के कतिपय भागों को परिभाषित और संशोधित करना समीचीन मानकर इसे अधिनियमित किया गया है। अधिनियम की धारा 1 में कहा गया है कि इस अधिनियम को भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 कहा जा सकेगा। इसका विस्तार, जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय, सम्पूर्ण भारत पर है, और यह 1872 के सितम्बर के प्रथम दिन से प्रवृत्त हुआ है।

(ख) प्रवर्तन भूतलक्षी नहीं—

1 सितम्बर, 1872 के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि **इस अधिनियम का प्रवर्तन, भूतलक्षी नहीं है**[1] अतः जिन पक्षकारों में कोई संविदा 1 सितम्बर, 1872 से पूर्व हो चुकी हो उसका प्रतिपालन चाहे उपरोक्त 1 सितम्बर, 1872 के पश्चात् ही हुआ हो, तो भी वह संविदा इस अधिनियम के उपबन्धों से शासित नहीं होगी।

(ग) अधिनियम सर्वांगीण नहीं है—

अधिनियम की धारा 1 में ही यह भी कहा गया है कि इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई भी बात एतद्द्वारा अभिव्यक्त रूप से निरसित न किए गए किसी स्टेट्यूट, अधिनियम या विनियम के उपबन्धों पर, व्यापार की किसी प्रथा या रूढ़ि पर अथवा किसी संविदा की किसी प्रसंगति पर, जो अधिनियम के उपबन्धों से असंगत न हो, प्रभाव न डालेगी।

क्योंकि इस अधिनियम का प्रयोजन, संविदाओं से सम्बन्धित विधि के कतिपय भागों को परिभाषित और संशोधित करने तक ही सीमित है, अतः यह स्पष्ट है कि यह अधिनियम, संविदाओं की प्रत्येक कोटि अथवा प्रत्येक श्रेणी अथवा उनके प्रत्येक वर्ग के लिए कोई परिपूर्ण और सर्वांगीण कानून नहीं है।[2] यह तथ्य, स्वयं उद्देशिका में प्रयुक्त, **कतिपय** शब्द से ही सुव्यक्त है। **इरावदी फ्लोटिला कम्पनी** बनाम **भगवानदास**[3] के मामले में न्यायमूर्तियों ने यह मत व्यक्त किया था कि इस बात को सामान्य नियम के रूप में नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक अवसर पर ही संविदा अधिनियम को नितान्त सर्वांगीण न माना जाए। किन्तु, इसी मामले का जब **सालू** बनाम **बाजत**[4] में संदर्भ आया तो, पुनः स्पष्ट करते हुए कहा गया कि इरावदी फ्लोटिला कम्पनी वाले मामले में न्यायमूर्तियों के उपरोक्त कथन का आशय यह नहीं था कि संविदा से सम्बन्धित विधि की किसी विशिष्ट रीति अथवा उसकी किसी विशिष्ट शाखा का विवेचन करने वाले, भारतीय संविदा अधिनियम के विशेष उपबंधों को भी सर्वांगीण न माना जाए।

---

[1] उम्दा **बनाम** ब्रोजेन्द्र, 12 बंगाल लॉ रिपोर्ट्स 451, 458, 472.

[2] कन्हैया लाल **बनाम** दिनेश चन्द्र, ए० आई० आर० 1959, मध्य प्रदेश 234.
पी० एन० बैंक लिमिटेड **बनाम** अरुडामल, ए० आई० आर० 1960 पंजाब 632.

[3] एल० आर० (1891) 18 इंडियन अपील्स, 121.

[4] एल० आर० (1915) 42 इंडियन अपील्स, 200.

इन दो निर्णयों की अटपटी भाषा से ऐसा प्रकट होता है कि किन्हीं विषयों में, यह अधिनियम सर्वांगीण है तथा किन्हीं विषयों में यह सर्वांगीण नहीं है । यही प्रश्न कि यह अधिनियम किन विषयों में सर्वांगीण है तथा किन विषयों में सर्वांगीण नहीं है, **मोहरी बीबी** बनाम **धरमोदास**[1] वाले सुप्रसिद्ध मामले में भी प्रस्तुत हुआ, जहां अपीलार्थी की ओर से यह तर्क उठाया गया कि जब अधिनियम की उद्देशिका में ही यह प्रदर्शित है कि इसका अभीष्ट संविदाओं से सम्बन्धित विधि के कतिपय भागों को परिभाषित और संशोधित करना मात्र है और जबकि शिशुओं अथवा अवयस्कों द्वारा संविदा की सक्षमता का विषय, इस अधिनियम के उपबन्धों में समाविष्ट नहीं किया गया है, तो इस सम्बन्ध में, यह अधिनियम सर्वांगीण नहीं है, किन्तु इस प्रश्न के उत्तर में न्यायमूर्तियों का अधिमत यह था कि जहां तक इस अधिनियम की सीमा है, वहां तक यह सर्वांगीण एवं अनिवार्य है और इसके उपबन्धों[2] से ही यह स्पष्ट है कि अवयस्क स्वयं को किसी संविदा द्वारा आबद्ध करने में किसी भी प्रकार सक्षम व्यक्ति नहीं है ।

अतः निष्कर्ष यह है कि **जिन विषयों को इस अधिनियम के उपबन्धों के अन्तर्गत समाविष्ट किया गया है, उन विषयों के समावेश की सीमा तक यह अधिनियम सर्वांगीण है किन्तु जो विषय इसके उपबन्धों में समाविष्ट नहीं किए गए हैं, वहां यह सर्वांगीण नहीं है ।**

अब प्रश्न यह उठता है कि जहां इस अधिनियम के उपबन्धों में किसी विषय को वास्तव में समाविष्ट नहीं किया गया है, उस विषय में किस विधि का अनुसरण किया जाए । इस विषय में निम्न **सुस्थिर सिद्धांत** है—

(1) जहां इस अधिनियम के उपबन्धों में किसी विषय को समाविष्ट नहीं किया गया है, वहां इंग्लैण्ड के कानून और वहां की साम्या के सिद्धांतों का उस सीमा तक अनुसरण किया जा सकता है जहां तक वे भारतीय परिस्थितियों के प्रतिकूल भी न हों और न ही वे भारतीय संविदा अधिनियम के उपबन्धों से असंगत हों ।[3]

(2) जब भारतीय संविदा अधिनियम के उपबन्ध, किसी विषय में, इंग्लैण्ड की संविदा विधि के उपबन्धों से भिन्न हों, तो उन विषयों में, भारतीय न्यायालयों पर, भारतीय संविदा विधि ही बाध्यकारी होगी तथा इसी के उपबन्धों को सर्वांगीण माना जाएगा, और ऐसे विषयों में जहां कि इस अधिनियम के उपबन्ध किसी विषय पर व्यवहार्य हों, उन विषयों में, इंग्लैण्ड में प्रचलित विधिक सिद्धान्तों का भारतीय संविदाओं में अनुसरण किया जाना निषिद्ध है ।[4]

(3) भारतीय न्यायालय, भारतीय संविदा अधिनियम के उपबन्धों से शासित होंगे तथा जहां तक इस अधिनियम के उपबन्ध स्पष्ट हों, वहां तक इस अधिनियम की सीमाओं से पलायन करने का अधिकार न्यायालयों को नहीं है किन्तु यदि किसी विषय में, यह अधिनियम मौन हो अथवा किसी विषय में इसके उपबन्ध संदिग्धार्थी हों, तभी इंग्लैण्ड में प्रचलित विधिक सिद्धांतों का अनुसरण आवश्यक हो सकता है, अन्यथा नहीं ।[5]

---

[1] एल० आर० (1903) 30 इण्डियन अपील्स 114 : 7 सी० डब्ल्यू० एन० 441.

[2] अधिनियम की धारा 11 में, अन्य बातों के साथ, यह बताया गया है कि वही व्यक्ति संविदा करने के लिए सक्षम है जो प्राप्तवय हो.

[3] राम पाल **बनाम** सुरेन्द्र, 166 आई० सी० 194 ज्वाला दत्त आर० पिल्लई **बनाम** बन्सीलाल मोतीलाल, ए० आई० आर० 1929 प्रिवी काउन्सिल, 132, 133.

[4] वल्लभदास **बनाम** पंकाजी, ए० आई० आर० 1916 नागपुर, 104, 110 : सत्यव्रत **बनाम** मगनी राम, ए० आई० आर० 1954, एस० सी०, 44.

[5] शान्ति प्रिय मुखर्जी **बनाम** सुरेन्द्र चटर्जी, ए० आई० आर० 1952 कलकत्ता 98.

(4) जहां भारतीय संविदा अधिनियम के उपबन्ध, इंग्लैण्ड के अधिनियम के किसी उपबन्ध की आवृत्ति मात्र हों तो ऐसी दशा में इंग्लैण्ड के किसी ऐसे निर्णय की अवहेलना नहीं की जानी चाहिए जिसमें कि किसी उपबन्ध का अर्थान्वियन पृथक् प्रकार से न करके, एक ही प्रकार से किया गया हो[1] ।

(घ) प्रथा अथवा रूढ़ियों को छूट --

अधिनियम की धारा 1 के व्यावृत्ति वाले प्रसंग में 'व्यापार की किसी प्रथा अथवा रूढि' का उल्लेख सारगर्भित है । उद्देश्य स्पष्ट है कि जहां पक्षकारों ने, अपनी संविदा में किसी प्रथा का अवलम्ब ग्रहण किया हो, उस दशा में, वे संविदायें, इस अधिनियम के उपबन्धों से मुक्त रहेंगी ।[2] उदाहरण के लिए बम्बई प्रेसीडैन्सी और कलकत्ता के उच्च न्यायालय की आरम्भिक सिविल अधिकारिता में, हिन्दुओं की ऋण सम्बन्धी प्रथाओं में **दाम-दुपट** का सिद्धान्त प्रचलित है जिसका आशय है कि जब ब्याज की राशि मूलधन की राशि से अधिक हो जाए, तो ऐसी राशि, किसी एक समय में, ऋणदाता द्वारा वसूल नहीं की जा सकती । इस सिद्धान्त का, भारतीय संविदा अधिनियम द्वारा विखंडन नहीं किया गया है, अतएव अधिनियम की धारा 1 के व्यावृत्ति खंड के अनुसार, उपरोक्त दाम-दुपट का सिद्धान्त, उन रूढियों अथवा प्रथाओं के अन्तर्गत माना जाएगा जो कि इस अधिनियम के उपबन्धों से असंगत नहीं है । और जिस पर इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई बात प्रभाव नहीं डालेगी । ज्ञातव्य है कि इस सिद्धान्त का लाभ तभी उठाया जा सकता है जबकि ऋणी पक्ष हिन्दू हो । यदि ऋणी पक्ष मुसलमान हो तो इस सिद्धान्त का लाभ नहीं उठाया जा सकता है और न ही ब्याज की राशि की कोई सीमा निर्धारित की जा सकती है । इसका आधार, जार्ज तृतीय के काल में पारित सन् 1781 तथा 1797 के वे घोषणा पत्र हैं जिनमें यह निर्देश है कि जहां दोनों पक्ष हिन्दू हों वहां हिन्दुओं में प्रचलित प्रथाओं अथवा रूढ़ियों को और जहां दोनों पक्ष मुसलमान हों वहां मुस्लिम विधि में प्रचलित प्रथाओं अथवा रुढ़ियों को लागू किया जाएगा किन्तु जहां एक पक्षकार हिन्दू और दूसरा मुसलमान हो वहां प्रतिवादी की विधि में मान्य प्रथाओं अथवा रूढ़ियों को लागू किया जाएगा ।

यह सुनिश्चित होते हुए भी कि जहां पक्षकारों ने, अपनी संविदा में, किसी प्रथा का अवलम्ब लिया हो, उस दशा में वे संविदायें अधिनियम के उपबन्धों से मुक्त रहेंगी[3], यह स्मरणीय है कि कोई भी व्यापारिक प्रथा अथवा रूढ़ि किसी प्रवर्तनीय संविदा का अवलम्ब उसी दशा में बन सकती है जबकि वह युक्तियुक्त, न्यायोचित और विधिमान्य हो **जो इस अधिनियम के उपबन्धों से असंगत न हो** ऐसा कह कर उपरोक्त तथ्य को धारा 1 के व्यावृत्ति खंड में ही स्पष्ट कर दिया गया है । न्यायिक संदर्भों में, विधिमान्य रूढि के प्रमुख और अनिवार्य लक्षण, इस प्रकार बताए गए हैं[4] कि मान्य रूढि—

(1) सुनिश्चित होनी चाहिए,

(2) इसमें स्थायित्व होना चाहिए,

(3) इसका युक्तियुक्त होना अनिवार्य है; और

(4) अन्ततः इस विषय में यह भी आवश्यक है कि पक्षकारों के मध्य जिन परिस्थितियों में किसी संविदा का निर्माण हुआ है, उन परिस्थितियों में यह विश्वास करने का समुचित और युक्तियुक्त आधार भी हो कि उस पक्ष को, जिसे कि सम्बन्धित रूढ़ि से बाध्य किया जा रहा है, यह ज्ञान

---

1 रत्नकली गुरन्ना साहेब **बनाम** वाचलप अप्पला नायडू, ए० आई० आर० 1925 मद्रास, 434.

2 इरावदी फ्लोटिला कम्पनी **बनाम** भगवानदास, एल० आर० : (1891) : इण्डियन अपील्स, 121.

3 हिन्दू मर्केण्टाइल कॉरपोरेशन लिमिटेड **बनाम** मीरयाला, ए० आई० आर० 1956, आन्ध्र प्रदेश, 545.

4 राम नारायण सिंह **बनाम** छोटा नागपुर बैंकिंग एसोसिएशन, आई० एल० आर० (1916) कलकत्ता, 332, 388.

भी था कि उसने संविदा में जिस विशेष व्यवस्था को स्वीकार किया है, वह सम्बन्धित रुढ़ि से न केवल शासित है वरन् यह भी कि उसने उसी रूढ़ि के सन्दर्भ में, दूसरे पक्ष से अपना करार किया है।

यह ज्ञातव्य है कि **संविदा को प्रभावित करने वाली कोई रूढ़ि अथवा प्रथा शुद्ध व्यापार से सम्बन्धित होनी चाहिए** । उदाहरण के लिए, यदि कोई अधिवक्ता अथवा बैरिस्टर, अपने कक्षीकार (मुवक्किल) से ऐसा कोई विशिष्ट करार करता है कि वह अपने कक्षीकार के विरुद्ध पारिश्रमिक के सम्बन्ध में कोई वाद नहीं लाएगा, तो ऐसा करार, संविदा अधिनियम की धारा 28 के अन्तर्गत शून्य करार है ।[1] और इस सम्बन्ध में, यह धारणा व्यर्थ है कि संविदा अधिनियम की धारा 1 के व्यावृत्ति खंड में उल्लिखित व्यापारिक प्रथा के समकक्ष होने के कारण, ऐसा करार, धारा 1 के उपबन्धों से मुक्त रहेगा । ऐसी संविदा के शून्य होने का तथा इसे व्यापारिक प्रथा के अन्तर्गत न माने जाने का कारण यह है कि अधिवक्ताओं के व्यवसाय को व्यापार की श्रेणी में माना ही नहीं जा सकता और तदनुसार, संविदा अधिनियम की धारा 1 में निहित व्यावृत्ति इस सम्बन्ध में लागू नहीं होती । उच्चतम न्यायालय ने, उसे स्पष्ट करते हुए, यह कहा है कि अटर्नी, सालीसिटर तथा चिकित्सक आदि के व्यवसाय उन उदार व्यवसायों की कोटि में आते हैं जिन्हें व्यापार अथवा उद्योग नहीं कहा जा सकता ।[2]

व्यापार जगत में उन प्रथाओं अथवा रूढ़ियों का यथेष्ट सम्मान है जो दीर्घ अवधि से प्रचलित हैं । 'प्रथा' शब्द से उस व्यवहार का बोध होता है जोकि किसी स्थान विशेष के निवासियों के वर्तमान अथवा अद्यावधि अभ्यास में है । यह बात अधिक महत्व की नहीं है कि ऐसे किसी अभ्यास का प्रादुर्भाव वर्तमान से कुछ पूर्व हुआ है अथवा यह किसी दीर्घकाल से प्रचलित है ; किन्तु महत्व की बात यह है कि ऐसा अभ्यास नियमित और सामान्य रूप से किसी स्थान के निवासियों के व्यवहार का अंग बना हुआ है ।[3] कोई प्रथा चाहे कितने भी दीर्घकाल से क्यों न प्रचलित हो, किन्तु यदि वह नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है तो वह न्यायालय के समक्ष अमान्य होगी । अतः जो प्रथायें नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हों, उनका व्यापार जगत में भी कोई स्थान नहीं है ।[4] संविदा अधिनियम के प्रकट उपबन्धों के प्रतिकूल प्रथाओं के सम्बन्ध में, किसी प्रकार का साक्ष्य भी ग्राह्य नहीं है ।[5] प्रथाओं को उन व्यक्तियों के मौखिक साक्ष्य के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है जो अपने विशिष्ट वाणिज्य अथवा व्यापार में रत रहने के कारण उन प्रथाओं से सुपरिचित हैं, तथा यह आवश्यक है कि इस प्रकार का साक्ष्य, स्पष्ट, विश्वसनीय और सुसंगत हो और यह भी कि किसी व्यापार विशेष के अन्तर्गत, किसी प्रथा को सिद्ध करने के लिए यह प्रकट करना आवश्यक है कि वह प्रथा न केवल सुसंगत और युक्तियुक्त है वरन् यह भी कि वह प्रथा, उस व्यापार में संलग्न सभी व्यक्तियों द्वारा सुमान्य है और ऐसे सभी व्यक्तियों की उसमें आस्था है और वे सब या तो उससे सुपरिचित हैं अथवा साधारण प्रयास या खोज के पश्चात् उससे परिचित हो सकते हैं ।[6]

---

[1] निहाल चन्द्र शास्त्री बनाम दिलावर खां, ए० आई० आर० 1933 इलाहाबाद 413.

[2] नेशनल यूनियन कामर्शियल एम्प्लाइज बनाम इंडस्ट्रियल ट्रिब्यूनल, बम्बई, ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 1080.

[3] मानिक लाल मनसुख भाई बनाम सूर्यपुर मिल्स लिमिटेड, आई० एल० आर० (1928) 487, 490, 492.

[4] फिलिप एन० गोडिन हो का मामला, आई० एल० आर० (1934), मुम्बई 456, 458.

नशीमुन्निसा बीबी बनाम नाचरुद्दीन सरदार, आई० एल० आर० (1924) कलकत्ता, 548, 556.

[6] जी० एच० ह्विटन वेकर बनाम जे० सी० गोल्डस्टान, ए० आई० आर० 1918 कलकत्ता, 337.

(ङ) दो महत्वपूर्ण शब्दावलियां—

अधिनियम की धारा 1 के व्यावृत्ति खंड में यह कहा गया है कि इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई भी बात, एतद्द्वारा अभिव्यक्त रूप से निरसित न किये गए किसी स्टेट्यूट, अधिनियम या विनियम के उपबन्धों पर, व्यापार की किसी प्रथा या रूढि पर, अथवा किसी संविदा की किसी प्रसंगति पर, जो इस अधिनियम के उपबन्धों से असंगत न हो, प्रभाव न डालेगी। उपरोक्त अभिव्यक्ति में प्रयुक्त दो शब्दावलियां विशेष महत्व की हैं :—

(1) 'एतद्द्वारा अभिव्यक्त रूप से निरसित न किए गए किसी स्टेट्यूट, अधिनियम या विनियम के उपबन्धों पर' ; तथा

(2) 'जो इस अधिनियम के उपबन्धों से असंगत न हो।'

प्रथम शब्दावली उन अधिनियमों अथवा विनियमों के उपबन्धों को, भारतीय संविदा अधिनियम के उपबन्धों से मुक्त करती है जिन्हें कि स्वयं संविदा अधिनियम में ही अभिव्यक्त रूप से निरसित न किया गया हो। इसका कारण यही है कि संविदा अधिनियम सर्वांगीण नहीं है और ऐसे भी अन्य अधिनियम या विनियम वर्तमान हैं जिनके अन्तर्गत पक्षकारों द्वारा, संविदात्मक सम्बन्ध विधिवत् उत्पन्न हो सकते हैं। इस प्रकार के कुछ अधिनियम ये हैं—

(1) परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का अधिनियम संख्या 26),

(2) सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का अधिनियम संख्या 4),

(3) विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का अधिनियम संख्या 47),

(4) माल विक्रय अधिनियम, 1930 (1930 का अधिनियम संख्या 3),

(5) भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का अधिनियम संख्या 9),

(6) भारतीय रेल अधिनियम, 1890 (1890 का अधिनियम संख्या 9),

(7) ब्याज अधिनियम, 1839 (1839 का अधिनियम संख्या 32),

(8) भूमि हस्तान्तरण अधिनियम, 1854,

(9) भारतीय वहन पत्र अधिनियम, 1856 (1856 का अधिनियम संख्या 9),

(10) वाहक अधिनियम, 1865 (1865 का अधिनियम संख्या 3),

(11) सूदखोरी विधि निरसन अधिनियम, 1855 (1855 का अधिनियम संख्या 23)।

ऐसे अधिनियम, अपनी-अपनी, सीमाओं में, पक्षकारों के मध्य स्थापित संविदाओं को, अपने विशेष उपबन्धों द्वारा शासित करते रहेंगे तथा ऐसे विशेष अधिनियमों के उपबन्ध, संविदा अधिनियम के उपबन्धों के प्रभाव से मुक्त रहेंगे।

द्वितीय शब्दावली, अर्थात 'जो इस अधिनियम के उपबन्धों से असंगत न हो' के विषय में यह सन्देह किया जा सकता है कि यह शब्दावली—

(1) 'व्यापार की किसी प्रथा अथवा रूढ़ि', और

(2) 'किसी संविदा की प्रसंगति'

इनमें से किन पदों को शासित करती है।

इरावदी फ्लोटिला कम्पनी बनाम **भगवानदास**[1] वाले मामले में, इस सन्देह का निवारण यह कह कर किया गया है कि इस शब्दावली से शासित होने वाले पद 'व्यापार की कोई प्रथा अथवा रूढ़ि' नहीं हैं, वरन् इससे शासित होने वाले पद 'संविदा की कोई प्रसंगति' है, जिसका कारण यह है कि वाक्यविन्यास में, उक्त शब्दावली के निकटतम, इन्हीं पदों को रखा गया है। अस्तु किसी भी संविदा की ऐसी प्रसंगति, जो संविदा अधिनियम के किसी उपबंध से असंगत हो, अधिनियम के उपबन्धों के प्रभाव की तुलना में, अमान्य होगी, जबकि व्यापार की कोई प्रथा अथवा रूढ़ि केवल इस कारण अमान्य नहीं होगी कि वह संविदा अधिनियम के उपबन्धों से असंगत है, वरन् वह ऐसी स्थिति में अमान्य होगी जबकि वह स्वयं में ही युक्तियुक्त, न्यायोचित अथवा विधिमान्य न हो अथवा उस स्थिति में जबकि वह नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हो।

विदेशी संविदाएं

संविदा अधिनियम के विस्तार के सम्बन्ध में, विदेशियों द्वारा की गई संविदाएं प्रायः जटिलता उत्पन्न कर देती हैं। जबकि संविदा के एक अथवा दोनों पक्षकार विदेशी हों तो यह निर्णय करने में प्रायः कठिनाई उत्पन्न हो जाती है कि उन पक्षकारों के बीच जो संविदा स्थापित हुई है, वह किस देश की विधि द्वारा शासित होगी। इस भ्रम का निवारण करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने[2] यह मत व्यक्त किया है कि ऐसी संविदाओं को शासित करने वाली उपयुक्त विधि प्रथमतः वह होगी जिसे पक्षकारों ने स्वयं स्वीकार किया हो अथवा जिसे स्वीकार करने का उन पक्षकारों का उद्देश्य अथवा अभिप्राय हो, किन्तु जहां पक्षकारों का अभिप्राय समझने के प्रकट अथवा विवक्षित कोई संकेत विद्यमान न हों उस स्थिति में उपधारणा यह होगी कि संविदा जिस देश में की गई है, पक्षकारों का उद्देश्य, उसी देश की विधि स शासित होने का रहा है।

वस्तुतः, भारतीय संविदा विधि का प्रचलन राज्यक्षेत्रातीत नहीं है तथा इस अधिनियम के उपबन्ध भारत के बाहर की गई संविदाओं तथा भारत के क्षेत्र से बाहर किए गए निक्षेपों के बारे में लागू नहीं किए जा सकते।[3] **के० टी० पापम्मा राउथर के मामले**[4] में यह प्रतिपादित किया गया है कि जिस देश में संविदा की गई हो अथवा जिस देश में संविदा का पालन किया जाना हो और जिससे यह अभिप्रेत भी हो कि वह संविदा उसी देश की मानी जाए जिस देश में उसका पालन किया जाना हो, तो ऐसी संविदा पर उस देश की विधि लागू होगी जो उस संविदा के न केवल अर्थान्वियन के विषय को वरन्, संविदा के रूप में लागू होने वाली उसकी सभी दशाओं को, शासित करने में सक्षम हो—यदि किसी भारतीय द्वारा भारत में, संविदा की गई हो अथवा उसका पालन, पूर्णतः या अंशतः, भारत में किया जाना हो, तो ऐसी स्थिति में उस संविदा पर भारतीय संविदा अधिनियम का अटल प्रभाव होगा।[5]

यद्यपि यह सत्य है कि किसी संविदा की व्याख्या अथवा उसका निर्वचन उसी देश की विधि द्वारा होगा जिस देश में वह संविदा की गई है तथापि यह सत्य नहीं है कि यदि कोई न्यायालय उस संविदा से सम्बन्धित वाद को केवल ग्रहण करने में सक्षम होने के कारण ही, उस संविदा पर, अपने देश की विधि को लागू करने लगे।[6] किन्तु उस संविदा से सम्बन्धित वाद लाने की प्रक्रिया तथा यह कि अवधि

---

[1] आई० एल० आर० (1891) 18 कलकत्ता, 620, 626, प्रिवी काउंसिल.

[2] धनराज मल गोविन्द राम बनाम मैसर्स रामजी कालिदास, ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 1285.

[3] आई० ए० इण्डस्ट्रीज बनाम पंजाब नेशनल बैंक, ए० आई० आर० 1970 इलाहाबाद, 108, 113.

[4] ए० आई० आर० 1954 मद्रास 96, 98.

[5] से से आइल बनाम मैसर्स गोरख राम, 1962-64 बाम्बे लॉ रिपोर्टर, 113.

[6] चेशायर का प्राइवेट इन्टरनेशनल लॉ, चौथा संस्करण, पृष्ठ 211, टिप्पण 4.

की किस परिसीमा में ऐसा वाद लाया जा सकता है, ये प्रश्न केवल उस देश की विधि से ही निर्णीत होंगे जिस देश में कि वस्तुत: वाद प्रस्तुत किया गया हो, जब तक कि जिस देश में संविदा की गई थी, उस देश की परिसीमा विधि द्वारा संविदा समाप्त ही न हो गई हो और उस संविदा के पक्षकार, नियम विहित अवधि के मध्य, संविदा जहां की गई थी, उस देश में अधिवासित भी रह चुके हों ।[1] एक मामले में, वादी ने पाकिस्तान सरकार के अन्तर्गत, फरीदपुर में, एस० बी० रेलवे से, अपने कुछ माल के परिवहन के लिए एक संविदा की किन्तु भारतीय सीमा में, उस माल को एक सीमाशुल्क अधिकारी द्वारा अभिग्रहण कर लिए जाने के कारण वह माल क्षतिग्रस्त हो गया और उसे बेच देना पड़ा और, माल प्राप्त न होने की दशा में, जब वादी ने सियालदा में अपना वाद प्रस्तुत किया तो यह निर्णीत किया गया कि इस प्रकार के वादों में प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि का यह स्वीकृत सिद्धान्त मान्य होगा कि जिस देश में संविदा की गई हो, उसी देश की विधि, उस पर लागू होगी और फलस्वरूप कलकत्ता स्थित न्यायालय को उस वाद के ग्रहण करने में अधिकारिता-प्राप्त नहीं माना गया ।[2]

संविदा का प्ररूप

यह सुस्थिर हो चुका है कि भारतीय संविदा अधिनियम में कुछ ऐसी मूलभूत शर्तें उपबन्धित की गई हैं जिनके अधीन पक्षकारों पर करार आबद्धकर हो सकें, किन्तु इस अधिनियम में संविदा का कोई विशेष प्ररूप उपबन्धित नहीं किया गया है जिससे यह स्पष्ट है कि किसी संविदा के पक्षकार उस संविदा के निष्पादन के लिए कोई विशेष प्ररूप, ढंग या शर्त निर्धारित कर सकते हैं । जैसे सरकार के साथ की जाने वाली संविदाओं के लिए संविधान के अनुच्छेद 299 में संविदा के लिए विशेष प्ररूप उपबन्धित किया गया है और इसी प्रकार रेल अधिनियम, 1890, की धारा 72 में भी संविदा का एक विशेष ढंग प्ररूपित किया गया है, किन्तु न्यायाधिपति फ़ज़लअली के निर्णयानुसार इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि संविधान अथवा रेल अधिनियम के उपरोक्त उपबन्धों द्वारा संविदा अधिनियम के उपबन्ध अधिक्रान्त हो गए हैं ।[3] **जब तक किसी विधि द्वारा अथवा पक्षकारों के करार द्वारा यह विहित न हो, किसी संविदा का लिखित में होना आवश्यक नहीं है ।** उदाहरण के लिए माध्यस्थम् के करार का, माध्यस्थम अधिनियम, 1940, की धारा 2 के अन्तर्गत लिखित में होना आवश्यक है । इसी प्रकार सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882, तथा भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1903, के अन्तर्गत सम्पत्ति अन्तरण के कतिपय मामले अनिवार्यत: लिखित, अनुप्रमाणित और रजिस्ट्रीकृत होंगे ।

संविदा विधि में, विवक्षित संविदाओं को भी मान्यता प्राप्त है । विवक्षित संविदा का एक उदाहरण, **हाजी मुहम्मद ईशाक** बनाम **मोहम्मद इकबाल**[4] वाले मामले में उपलब्ध है । इस मामले में, वादी का स्पष्ट अभिवाक् यह था कि उसने प्रतिवादी को माल का प्रदाय अपने ही लेखे में किया था तथापि प्रतिवादी ने उस माल को प्रतिगृहीत करके कीमत का आंशिक संदाय कर दिया था जिसके पश्चात् कीमत की बाकी शोध्य रही । न्यायमूर्ति एन० एल० ऊंटवालिया ने इसे ऐसी संविदा की संज्ञा दी जिसे कि विधि के अन्तर्गत **पक्षकारों के आचरण से घटित विवक्षित संविदा** कहा जाता है ।

□ □ □

---

1 आकलैन्ड के मेयर, काउन्सिलर व निवासी **बनाम** एलायन्स एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड, ए० आई० आर० 1937 पा० सी० 54, 59.

2 भारत संघ **बनाम** ब्रजेन साहा, ए० आई० आर०, 1953 कलकत्ता 366.

3 भारत संघ **बनाम** स्टील स्टॉक होल्डर्स सिंडीकेट, पूना, ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 879, (1976) 2 एस० सी० आर० 1060-[1977] 1 उम० नि० प० 624.

4 ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 798.

अध्याय 2

संविदा के संघटकों का निर्वचन

निर्वचन का महत्व

जन-जीवन के आश्रयभूत संव्यवहारों को समरूपता प्रदान करना ही विधि का ध्येय होता है। समाज की असंख्य आवश्यकताओं के घात, प्रतिघात के कारण, मानवी संव्यवहार वस्तुतः जटिल होता है और इसीलिए इन संव्यवहारों को समरूपता प्रदान करने का प्रयास स्वयं एक जटिल विधा है। संव्यवहार में समरूपता के उद्देश्य से निश्चित किए गए सूत्रों को भाषाबद्ध करने में सरलता का स्वाभाविक लोप हो जाता है। प्रत्येक मानव सृष्टि की एक अनन्य कृति होते हुए भी अन्य मानवों से भिन्न नहीं है, और फलतः मानवों का सामुदायिक जीवन सामान्यताओं और विशेषताओं का एक असाधारण संयोग है। सामान्यताओं और विशेषताओं के समन्वय के प्रयास के कारण ही, सामाजिक जीवन को नियमित करने वाले सूत्रों में नितान्त निरपवादिता और सर्वथा अतिशयता को स्थान देना असम्भव रहता है। अतः इन सूत्रों के संकलन में प्रयुक्त भाषा, बहुधा, अपवादों, परन्तुकों एवं व्यावृत्तियों से अवमंडित रहती हैं। यही कारण है कि विधि की भाषा सरल नहीं होती और इसका विन्यास प्रायः क्लिष्ट हो जाता है। **अर्थान्वयन और निर्वचन द्वारा विधिक शब्दों की क्लिष्टता का परिहार हो जाता है।**

अर्थान्वयन और निर्वचन

विधायी भाषा में प्रयुक्त किसी विशिष्ट पद द्वारा वहन किए गये भाव को सुस्थिर करने की कला 'निर्वचन' तथा उसमें सन्निविष्ट एक से अधिक पदों द्वारा संरचित किसी शब्दावली या वाक्य द्वारा वहन किए गये भाव को सुनिश्चित करने का प्रयास 'अर्थान्वयन' कहा जाता है। विधायी भाषा में सरलता न होने के कारण, निर्वचन और अर्थान्वयन सम्बन्धी अनेक जटिलतायें उत्पन्न हो जाती हैं। उच्चतम न्यायालय का तो इस सम्बन्ध में यह कथन है कि विधान बनाने वालों ने इस सच्चाई को कभी भी ध्यान में नहीं रखा होगा कि विधान जनता के लिए होता है और इसलिए उसे बहुत सरल होना चाहिए। विधायी भाषा के निष्कर्ष के लिए न्यायालयों ने 'संदर्भ एवं प्रयोजन' से प्रभावित प्रयोजन-परक (टीलियो लाजिकल) दृष्टिकोण का आश्रय लिया है, तो भी, न्या० वी० आर० कृष्ण अय्यर का कथन है कि कानूनी निर्वचन के बहुत से सिद्धान्त होने पर भी निर्वचन का "कोई भी नियम सबसे अच्छा नियम नहीं है।"[1]

निर्वचन के कुछ सामान्य नियम

क्राफोर्ड[2] ने एक अमेरिकन मामले में कुछ पंक्तियों को उद्धृत करते हुए यह कहा है कि प्रधानता विधानमंडल के अभिप्राय और आशय को दी जानी चाहिए। इसी उक्ति के प्रसंग में,

---

1 चित्तन जे० वासवानी बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य, [1976] 3 उम० नि० प० 935, 943.

2 स्टेट्यूटरी कन्स्ट्रक्शन, संस्करण 1940, अनुच्छेद 261, पृष्ठ 516.

उच्चतम न्यायालय ने न्या० वाई० वी० चन्द्रचूड़ (पश्चात् मुख्य न्या०) के निर्णयानुसार दो सिद्धान्त स्थिर किए हैं—

(1) मुख्य बात विधानमंडल का वह अर्थ और आशय है जिसका अनुमान विधानमंडल द्वारा प्रयोग किए गये मात्र शब्दों से ही नहीं, अपितु तरह-तरह की अन्य परिस्थितियों और बातों से भी किया जा सकता है।

(2) यदि किसी कानून के शब्द अपने आप में ठीक और असंदिग्ध हैं तो शब्दों को उनका स्वाभाविक और मामूली अर्थ दिया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसे मामलों में विधानमंडल का आशय स्वयं शब्दों से ही भली प्रकार प्रकट हो जाता है।[1]

न्या० वी० आर० कृष्ण अय्यर के शब्दों में अब यह सुस्थिर विधि है कि न्यायालयों को चाहिए कि वे ऐसे निर्वचन को मानें जिससे कि किसी अधिनियम के सामान्य प्रयोजन की प्रगति होती हो, बजाय उसके कि उसे अग्रसर न किया जा सके।[2] न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि किसी अधिनियमिति का अर्थान्वियन इस रूप में करें कि जब तक भाषा तत्विरूध्द न हो उसका ऐसा अर्थ लगाया जाय जिससे कि विधान के लाभदायक आशय को प्रगति मिले बजाय उस अर्थ के जो कि ऐसी विधायी उपधारणाओं के आधार पर लगाया गया हो जोकि लांछन के रूप में लगाई गई हों और मनमाने सामाजिक मूल्यों के आधार पर जो कि प्राचीन युग में विधिमान्य थे और जो कानून की स्कीम को उलट देते हैं। तात्पर्य यह है कि विधि शासन जीवन के नियमों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चलेगा। अतः अर्थान्वियन में प्रमुख "गतिशील किन्तु निस्तब्ध" आधार को ध्यान में रखना होगा।[3]

मुख्य न्या० ए० एन० रे के निर्णयानुसार किसी विधि में प्रयुक्त शब्द जब स्पष्ट और असंदिग्ध हों किन्तु उनका साधारण अर्थ करने पर होने वाला परिणाम अनुचित हो, ऐसी दशा में भी न्यायालय को यह अधिकार नहीं होगा कि वह ऐसी विधि को प्रभावी करने से इन्कार करे। जब एक ही शब्दावली के दो विभिन्न अर्थान्वियन सम्भव हों और उसके साधारण अर्थ करने पर असुविधा हो किन्तु असाधारण अर्थ करने पर असुविधा न हो, उस अवस्था में भी साधारण व्याकरणिक अर्थ की उपेक्षा तब तक नहीं की जा सकेगी, जब तक कि ऐसा करने का कोई उचित कारण विद्यमान न हो।[4] न्या० वी० आर० कृष्ण अय्यर के मतानुसार यदि निर्वचन दो प्रकार से किया जा सकता है तो अधिमान के योग्य वही निर्वचन होगा जो कानून को विधिमान्य बनाने वाला है और मुकदमेबाजी को जल्दी समाप्त करने वाला है।[5] न्या० आर० एस० सरकारिया के कथनानुसार यदि दो अर्थान्वियन सम्भव हों तो उस अर्थान्वियन की अपेक्षा जो उसे व्यर्थ और निरर्थक बनाए, उसकी कार्यकरणीयता और प्रभावकारिता को बनाए रखने वाले अर्थान्वियन को अधिमान दिया जाना चाहिए।[6] जो अर्थान्वियन दीर्घकाल से स्वीकार किया जाता रहा हो, उसे बदला नहीं जाना चाहिए।[7] ऐसा न्या० पी० जगनमोहन रेड्डी ने अभिनिर्धारित किया है।

[1] गोविन्द लाल बनाम कृषि उत्पादन बाजार समिति, [1976] 1 उम० नि० प० 1146, 1156 : ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 263.

[2] हरियाणा राज्य बनाम सम्पूर्ण सिंह, [1976] 2 उम० नि० प० 1, 19.

[3] पंजाब राज्य बनाम अमरसिंह और एक अन्य, ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 994 : [1974] 1 उम० नि० प० 1736.

[4] नसीरुद्दीन बनाम राज्य परिवहन अपील अधिकरण, [1976] 1 उम० नि० प० 1245, 1265 : ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 331.

[5] बी० बनर्जी बनाम श्रीमती अनीता पान, [1975] 2 उम० नि० प० 257: ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1146.

[6] तमिलनाडु राज्य बनाम एम० कन्दस्वामी, [1975] 4 उम० नि० प० 788 : ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1871.

[7] महन्त धर्मदास और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य, [1975] 2 उम० नि० प० 873 : ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1069.

निर्वचन का यह सुपरिचित नियम बताते हुए न्या० डी० जी० पालेकर ने कहा है कि विधानमंडल जिन शब्दों का उपयोग करता है, उनका अर्थान्वियन, उनके स्पष्ट स्वाभाविक अर्थ के अनुसार किया जाना चाहिए।[1] कानूनों के शब्दों का वास्तविक अर्थ तथा उनका प्रयोग यदि विधानमंडल के पिछले इतिहास तथा संशोधन प्रस्तुत करने वाले विधायक के भाषण के बिना स्पष्ट न हो सके किन्तु संशोधन प्रस्तुत करने वाले विधायक द्वारा बताए गए कारणों के अवलोकन से अर्थ स्पष्ट हो सके तो, निर्वचन करते समय, संशोधन प्रस्तुत करने वाले विधायक के भाषण की सहायता ली जा सकती है।[2] न्यायालय, कानून का निर्वचन करने के लिए, विधान सम्बन्धी कार्यवाही, सामान्य ज्ञान और अन्य सुसंगत तत्वों के प्रति निर्देश कर सकते हैं जिनमें उद्देश्य और कारणों का कथन भी सम्मिलित है।[3] किन्तु, जैसा कि न्या० आर० एस० सरकारिया का कथन है, इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि जहां किसी परिनियम के शब्द स्पष्ट, सुनिश्चित तथा असंदिग्ध हों, वहां विधानमंडल का आशय स्वयं परिनियम की भाषा में लगाया जाना चाहिए और, ऐसी दशा में, संसदीय वाद विवाद सम्बन्धी कोई बाह्य साक्ष्य ग्रहण नहीं किया जा सकेगा। केवल वहां जहां कि कोई परिनियम विस्तृत न हो अथवा जहां उसकी भाषा सन्देहास्पद, अनिश्चित, धुंधली अथवा एक से अधिक अर्थ देने वाली हो, यदि किन्हीं बुराइयों के बारे में जिनका उपचार करने के लिए परिनियम आशयित था अथवा उन परिस्थितियों के बारे में जिनके परिणामस्वरूप परिनियम पारित किया गया था, उन पर, उस उद्देश्य को अभिनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए जो कि प्रश्नगत शब्दों का प्रयोग करते समय विधान मंडल के समक्ष था, विचार किया जा सकता है।[4]

कानून के निर्वचन में, किसी अधिनियम की उद्देशिका कहां तक सहायक हो सकती है, इस विषय में उच्चतम न्यायालय[5] ने यह मत व्यक्त किया है कि यों तो किसी अधिनियम में सन्निविष्ट विभिन्न खंडों का आशय ग्रहण करने के उद्देश्य से उस अधिनियम की उद्देशिका के अवलोकन की छूट है तथापि अधिनियम के अभिव्यक्त उपबन्धों को ही पूर्ण प्रभावी करना चाहिए, भले ही वे उपबन्ध उद्देशिका में निहित प्रयोजन से भी कुछ अभिवृद्ध अर्थ में प्रयुक्त प्रतीत होते हों। मूल सिद्धान्त यह है कि जहां किसी अधिनियम की भाषा सुस्पष्ट हो, वहां उद्देशिका की उपेक्षा ही करनी चाहिए किन्तु जहां अधिनियम का अर्थ अथवा प्रयोजन स्पष्ट न हो रहा हो, वहां उद्देशिका का आश्रय लिया जा सकता है। यदि अधिनियम की किसी धारा में प्रयुक्त शब्दों के अर्थान्वियन में किसी प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो तो ऐसी दशा में सन्देह के निराकरण के उद्देश्य से अधिनियम में प्रयुक्त शीर्षकों से सहायता ली जा सकती है।[6] यह सुनिश्चित है कि किसी अधिनियम के अर्थान्वियन के लिए, अधिनियम की धाराओं के पार्श्व-टिप्पण पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए।[7] यदि अधिनियम की किसी धारा की समग्र भाषा सुस्पष्ट एवं असंदिग्ध हो तो पार्श्व-टिप्पण के द्वारा उस अर्थ को सीमित नहीं किया जा सकता। यदि अधिनियम की धारा में प्रयुक्त भाषा स्पष्ट है तो सम्भावना इस बात की है कि पार्श्व-

1 उमेद सिंह **बनाम** राज सिंह, [1975] 1 उम० नि० प० 512, 560 : ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 43.

2 लोक शिक्षण न्यास **बनाम** आयकर आयुक्त, [1976] 1 उम० नि० प० 1177, 1208.

3 बी० बनर्जी **बनाम** श्रीमती अनीता पान, [1975] 2 उम० नि० प० 257.

4 आनन्दजी हरिदास एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड **बनाम** इंजीनियरिंग मजदूर संघ, [1975] 2 उम० नि० प० 1484 : ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 946.

5 मैसर्स बैरकपुर कोल कम्पनी लिमिटेड **बनाम** भारत संघ, ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 954.

6 भिका **बनाम** चरन सिंह, ए० आई० आर० 1959 एस० सी० 960.

7 बंगाल इम्यूनिटी कं० **बनाम** बिहार राज्य, ए० आई० आर० 1955 एस० सी० 661.

टिप्पण में ही कोई आकस्मिक स्खलन रहा होगा न कि इस बात की कि पार्श्व-टिप्पण शुद्ध है और धारा की शब्दावली में कहीं स्खलन है ।[1]

परन्तुकों के निर्वचन के सम्बन्ध में, उच्चतम न्यायालय (न्या० वी० आर० कृष्ण अय्यर) का अभिमत यह है कि परन्तुक, अधिनियमन करने वाले खंड की विषयवस्तु तक सीमित होना चाहिए ।[2] साधारण तौर पर परन्तुक तो केवल परन्तुक ही होता है, यद्यपि स्वर्णिम नियम यह है कि समस्त धारा का पठन परन्तुक को अन्तर्विष्ट करते हुए किया जाय और वह ऐसी रीति से किया जाना चाहिए कि वे परस्पर एक दूसरे पर प्रकाश डालें और परिणामस्वरूप सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वियन किया जा सके । मैक्सवैल[3] का, परन्तुकों और व्यावृत्तियों के निर्वचन के विषय में, यह मत है कि अर्थान्वियन के व्यापक सामान्य नियम को लागू किया जाना चाहिए जो यह है कि किसी धारा या अधिनियमिति का अर्थान्वियन समग्र रूप में किया जाय जहां कि प्रत्येक भाग, यदि आवश्यक हो तो, शेष भागों पर प्रकाश डाले, और निःसन्देह सही सिद्धान्त यह है कि परिनियम का उचित निर्वचन तथा अर्थान्वियन, अधिनियमन करने वाले खंड, व्यावृत्ति खंड तथा परन्तुक के विषय में, उन पर एक साथ विचार किए जाने पर अपनाया गया मत अभिभावी होगा ।

अधिनियमों में, प्रायः विषय-वस्तु के प्रारम्भ से पूर्व ही, एक निर्वचन खंड प्रस्तुत किया जाता है जिसका उद्देश्य यह होता है कि अधिनियम के अन्तर्गत प्रयोग में लाए गए शब्दों का अर्थ, जैसा कि विधानमंडल ने दिया है, वैसे ही समझा जाए । निर्वचन खंड में जिस किसी शब्द अथवा शब्दावली का अर्थ जैसा दिया जाता है, वही अर्थ उस शब्द अथवा शब्द समूह का सम्बन्धित अधिनियम में प्रयोग होने पर सर्वत्र किया जाता है । अधिनियमों के अर्थान्वियन में स्वयं निर्वचन खंड में परिभाषित पदों के भी निर्वचन की आवश्यकता आ सकती है । इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय (न्या० पी० के० गोस्वामी) का यह मत है कि परिभाषा सम्बन्धी खंड में अस्पष्टता या अनिश्चितता न होने पर, न्यायिक निर्वचन द्वारा कोई ऐसी बात पुनः स्थापित करके, जो उसमें पहले से न हो, फायदाग्राही व्यक्तियों के अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित नहीं किए जा सकते ।[4]

संविदा अधिनियम का निर्वचन खंड

संविदा अधिनियम का ध्येय नागरिकों के पारस्परिक संव्यवहारों को नियमित करना है । अतः यह एक सामाजिक अधिनियम है । ऐसे अधिनियमों के अर्थान्वियन में न्या० फज़ल अली के अनुसार अधिनियम को अग्रसर करने की अनिवार्यता रहती है तथा ऐसे विधानों का उदारतापूर्वक अर्थान्वियन किया जाना चाहिए जिससे अधिनियम के उद्देश्य को पूरा किया जा सके ।[5]

संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2, इसका निर्वचन खंड है । जिन विभिन्न संघटक तत्वों से संविदा का निर्माण होता है, इस धारा में उन्हीं का प्रस्तुतीकरण और विवेचन किया गया है । अतः इस खंड में सन्निविष्ट शब्दों और शब्दसमूहों का परिभाषात्मक प्रयोजन कम किन्तु संविदा के निर्माण की आवश्यक प्रक्रिया का परिचय देना या संविदा के संघटक तत्वों की व्याख्या प्रस्तुत करना अधिक है । इन व्याख्याओं में, अधिकांश, में इंग्लैण्ड के विधानों की परम्परा का अनुसरण

---

1 नलिकन्हैया **बनाम** श्यामसुन्दर, ए० आई० आर० 1953 एस० सी० 148.

2 द्वारिका प्रसाद **बनाम** द्वारका दास सराफ, [1975] 4 उम० नि० प० 1275 : ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1758.

3 आन इन्टरप्रेटेशन आफ स्टैट्यूट्स, 10वां संस्करण, पृ० 162.

4 ज्ञानरंजन सेनगुप्ता **बनाम** अरुण कुमार बोस, [1975] 4 उम० नि० प० 967 : ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1994.

5 मध्य प्रदश राज्य **बनाम** एन०पी० नरसिम्हन, [1975] 4 उम० नि० प० 523 : ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1835.

किया गया है ।[1] चूंकि इस खंड में उन निश्चित रीतियों का उल्लेख है जिनके द्वारा कोई संविदा अस्तित्ववान हो सकती है, अतः यह माना जाना चाहिए कि इस खंड में निर्दिष्ट किसी रीति का अनुसरण न किए जाने पर, किसी प्रवर्तनीय संविदा का अस्तित्ववान होना संदिग्ध है । किसी वैध संविदा के निर्माण के लिए इस खंड में उल्लिखित रीतियों का अनुपालन आवश्यक है क्योंकि वैसा न करने से किसी भी संविदा के विफल हो जाने की आशंका है ।

टेलर बनाम टेलर[2] वाले मामले में एम० आर० जैसल ने यह नियम अपनाया था कि जहां किसी निश्चित रीति से कोई निश्चित कार्य करने की शक्ति दी जाती है वहां वह कार्य उसी रीति में किया जाना चाहिए अथवा बिल्कुल ही न किया जाना चाहिए और यह कि कार्य करने की अन्य रीतियां आवश्यक रूप से प्रतिषिद्ध हैं । यही नियम प्रिवी काउन्सिल ने **नजीर अहमद बनाम एम्परर**[3] में अपनाया था । मैक्सवैल[4] ने यह स्वीकार किया है कि उपरोक्त नियम उन स्थानों पर बहुत कम लागू होगा जहां वास्तव में विधानमंडल का पूर्ण उद्देश्य और आशय प्रत्यक्षतः समाप्त हो जाएगा यदि किसी विशिष्ट रीति से कार्य करने के निर्देश के अन्तर्गत इसे किसी अन्य रीति से करने का प्रतिषेध निहित न हो । उच्चतम न्यायालय (न्या० आर० एस० सरकारिया) ने इसे स्पष्ट करते हुए यह कहा है कि महत्व की बात यह है कि क्या किसी विहित रीति से कार्य न करने अथवा प्रतिषिद्ध रीति से कार्य करने से अधिनियम से सम्बन्धित उपबन्ध का प्रयोजन ही विफल हो जाएगा ।[5] यदि ऐसा हो तो, वह कार्य विहित रीति के अतिरिक्त अन्य किसी रीति से नहीं किया जाना चाहिए ।

उदाहरण के लिए, संविदा अधिनियम के निर्वचन खंड में, सर्वप्रथम, संविदा के एक प्रमुख तत्व प्रस्थापना का उल्लेख है और किसी व्यक्ति के द्वारा प्रस्थापना किए जाने की एक निश्चित रीति का निर्देश किया गया है जो इस प्रकार है कि जब एक व्यक्ति, किसी बात को करने या करने से, प्रविरत रहने की अपनी रजामन्दी किसी अन्य को इस दृष्टि से संज्ञापित करता है कि ऐसे कार्य या प्रविरति के प्रति, उस अन्य की अनुमति अभिप्राप्त करे, तब वह प्रस्थापना करता है । मान लीजिए **क** ने ख को एक तार इस आशय का किया कि क्या **ख**, क को बम्पर हालपैन, बेच सकेंगे तथा **क** ने उस वस्तु का न्यूनतम मूल्य भी तार से जानना चाहा । **ख** ने उत्तर में तार करते हुए जब लिखा कि उस वस्तु का न्यूनतम मूल्य 900 पौंड होगा तब **क** ने पुनः **ख** को तार किया कि **क** वह वस्तु ख के इच्छित मूल्य 900 पौण्ड में क्रय करना स्वीकार करता है । **क** और **ख** के ऐसे संव्यवहार से, वस्तुतः किसी संविदा का निर्माण नहीं हुआ क्योंकि **ख** द्वारा **क** के प्रत्युत्तर में दिया गया तार प्रस्थापना न होकर, एक प्रश्न का उत्तरमात्र था और इसी प्रकार, **क** द्वारा **ख** को प्रेषित दूसरा तार, विक्रय की प्रस्थापना को प्रतिगृहीत करने के निमित्त नहीं था वरन् वह प्रस्थापना के ही निमित्त था जिसे कि ख द्वारा प्रतिगृहीत किया जाना शेष था ।[6] वादी प्रत्यर्थी ने प्रतिवादी अपीलार्थी के एक बंगले को 6,000 रुपये में क्रय करने का प्रस्ताव किया और उसके पश्चात् प्रतिवादी अपीलार्थी के अभिकर्ता से अपने प्रस्ताव की स्वीकृति में पूछा और 6,000 रुपये से भी अधिक मूल्य दे सकने की क्षमता प्रकट की । अभिकर्ता का उत्तर

---

[1] **सत्य देव बनाम त्रिवेनी**, 161 आई० सी० 579.

[2] एल० आर० (1876) चां 426.

[3] एल० आर० 63 इण्डियन अपील्स, 372 : ए० आई० आर० 1936 प्रिवी काउंसिल 253.

[4] इन्टरप्रेटेशन आफ स्टैट्यूट्स, 11वां संस्करण, पृ० 362.

[5] राम चन्द्र केशव अडके बनाम गोविंद जोति चावारे, [1975] 3 उम० नि० प० 411: ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 815.

[6] **हार्वे बनाम फेसी**, (1893) ए० सी० 552.

इस प्रकार था कि अपीलार्थी के केबिल के अनुसार बंगले का विक्रय 10,000 रुपये से कम पर स्वीकार नहीं किया जा सकता। वादी प्रत्यर्थी ने इसे स्वीकार कर लिया और अपनी पुष्टि प्रतिवादी अपीलार्थी के अभिकर्ता को प्रेषित कर दी। तत्पश्चात् वादी प्रत्यर्थी द्वारा संविदा के विनिर्दिष्ट पालन का वाद संस्थित किए जाने पर अन्ततः उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के अनुसार वाद खारिज किया गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिवादी अपीलार्थी का न्यूनतम मूल्य 10,000 रुपये बताने वाला तार, प्रतिप्रस्ताव न होकर, प्रस्ताव के लिए आमंत्रण मात्र था।[1]

निर्वचन खंड में प्रयुक्त पद

अधिनियम की धारा 2 में सन्निविष्ट निर्वचन खंड में, संविदा के जिन संघटक तत्वों का उल्लेख किया गया है वे ये हैं—"प्रस्थापना", "प्रस्थापना का प्रतिगृहीत होना" और उसका "वचन" बन जाना, "वचनदाता", "वचनगृहीता", "प्रतिफल", "करार", "व्यतिकारी वचन", "शून्य करार", "संविदा", "शून्यकरणीय संविदा", और "शून्य हो जाने वाली संविदा"।

जब तक कि अन्यत्र किसी "सन्दर्भ से प्रतिकूल आशय प्रतीत न हो" अधिनियम के निर्वचन खंड में, उपरोक्त शब्दों और पदों का जिन भावों में प्रयोग किया गया है, वे इस प्रकार हैं —

(क) जबकि एक व्यक्ति, किसी बात को करने या करने से, प्रविरत रहने की अपनी रजामन्दी किसी अन्य को इस दृष्टि से संज्ञापित करता है कि ऐसे कार्य या प्रविरति के प्रति उस अन्य की अनुमति अभिप्राप्त करे तब यह कहा जाता है कि वह **प्रस्थापना** करता है,

(ख) जबकि वह व्यक्ति, जिससे प्रस्थापना की जाती है उसके प्रति अपनी अनुमति संज्ञापित करता है तब वह प्रस्थापना **प्रतिगृहीत** हुई कही जाती है। प्रस्थापना प्रतिगृहीत हो जाने पर **वचन** हो जाती है।

(ग) प्रस्थापना करने वाला व्यक्ति **वचनदाता** कहलाता है और प्रस्थापना प्रतिगृहीत करने वाला व्यक्ति **वचनगृहीता** कहा जाता है।

(घ) जबकि वचनदाता की वांछा पर वचनगृहीता या अन्य कोई व्यक्ति कुछ कर चुका है या करने से प्रविरत रहा है या करता है या करने से प्रविरत रहता है या करने का या करने से प्रविरत रहने का वचन देता है, तब ऐसा कार्य या प्रविरति या वचन उस वचन के लिए **प्रतिफल** कहलाता है।

(ङ) हर एक वचन और ऐसे वचनों का हर एक संवर्ग, जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल हों, **करार** है।

(च) वे वचन जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल या प्रतिफल का भाग हों **व्यतिकारी वचन** कहे जाते हैं।

(छ) वह करार जो विधितः प्रवर्तनीय न हो, **शून्य** कहलाता है।

(ज) वह करार, जो विधितः प्रवर्तनीय हो, **संविदा** है।

(झ) वह करार, जो उसके पक्षकारों में से, एक या अधिक के विकल्प पर तो विधि द्वारा प्रवर्तनीय हो, किन्तु अन्य पक्षकार या पक्षकारों के विकल्प पर नहीं, **शून्यकरणीय संविदा** है।

---

[1] कर्नल मैकफर्सन बनाम एम० एन० अपन्ना, ए० आई० आर० 1951 एस० सी० 184.

(ञ) जो संविदा विधितः प्रवर्तनीय नहीं रह जाती, वह तब **शून्य** हो जाती है जब वह प्रवर्तनीय नहीं रह जाती ।

प्रयुक्त पदों की व्याख्या

(क) प्रस्थापना—

भारतीय संविदा अधिनियम में प्रयुक्त प्रस्थापना शब्द, इंग्लैण्ड की विधि में प्रचलित "आफर" शब्द के पर्यायवाची भाव का वाहक है। निर्वचन खंड में, प्रस्थापना के जिस विधिक स्वरूप का निरूपण किया गया है, उसके आधार पर, संविदा के निर्माण के योग्य प्रस्थापना में निम्न आवश्यक तत्व होते हैं —

(1) प्रस्थापना का संज्ञापन एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की अनुमति अभिप्राप्त करने की दृष्टि से किया जाना चाहिए । अतः, विधिक प्रस्थापना की दृष्टि से दो पक्षों का होना अनिवार्य है **न्यूनतम दो पक्ष जब तक न हों, किसी संविदा का निर्माण नहीं हो सकता।**[1]

(2) प्रस्थापना का उद्देश्य, जैसा कि न्या० आर० एस० बछावत ने कहा है, किसी अन्य की अनुमति अभिप्राप्त करना होता है । ऐसी अनुमति के प्राप्त होते ही वह प्रस्थापना वचन बन जाती है ।[2] न्या० सोमनाथ अय्यर के अनुसार प्रस्थापना का आशय विधिक सम्बन्धों को उत्पन्न करना होता है ।[3] **प्रस्थापना का आशय जब तक किसी विधिक प्रभाव को उत्पन्न करना न हो, तब तक वह अभिव्यक्ति पारस्परिक होने पर भी प्रत्येक पक्ष के लिए कोरी आशा मात्र है ।**[4] एक व्यक्ति ने एक नवयुवक पर यह प्रकट किया कि वह अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात्, अवशिष्ट सम्पत्ति में अपनी पुत्री का भाग रखेगा । किन्तु उस व्यक्ति का यह कथन ऐसी प्रस्थापना नहीं माना जा सकता जिसके आधार पर वह नवयुवक उस व्यक्ति की पुत्री से विवाह करके उस कथन को संविदा का आधार बना सके, क्योंकि उस व्यक्ति के कथन से किसी आशा का संचार तो होता है तथापि उसके आधार पर किसी विधिक सम्बन्ध की रचना नहीं होती ।[5] एक व्यक्ति ने यह प्रकट किया कि वह उस व्यक्ति को, जो उसके पास रहे, भूमि और आभूषण, दान में देगा, किन्तु यह कथन, दाता व्यक्ति के आशय की अभिव्यक्ति मात्र है जिससे यह अनुमान हो सकता है कि दाता के आशय में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होगा, परन्तु इसके आधार पर उस दाता व्यक्ति के पास रहने वाले व्यक्ति को किसी निश्चायक संविदा का लाभ नहीं प्राप्त हो सकेगा ।[6]

(3) **प्रस्थापना करने तथा उसे प्रतिगृहीत करने वाले दोनों पक्षों को इस बात का स्पष्ट भान होना चाहिए कि उनके इस कृत्य से किसी न किसी प्रकार के अधिकार और दायित्व प्रादुर्भूत होंगे ।** जिस संव्यवहार में ऐसा भान हो, वहां यदि पक्षकारों ने इसे विमर्शतः स्वीकार भी कर लिया हो कि वे अधिकार और दायित्व किसी न्यायिक कार्यवाही द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होंगे तो भी उन पक्षकारों के मध्य उस समय तक के संव्यवहार, विधिक सम्बन्धों की श्रेणी में ही माने जाएंगे चाहे उस संव्यवहार की शर्तों का विधितः पालन कराया जाना सम्भव न हो ।

---

[1] मीनाक्षी बनाम पी० एम० सुन्दरम, ए० आई० आर० 1957 मद्रास 8.

[2] आन्ध्र शुगर लि० बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, ए० आई० आर०, 1968 एस० सी० 599, 604.

[3] काफी बोर्ड, बंगलौर बनाम हाजी इब्राहीम, ए० आई० आर० 1966 मैसूर 118, 122.

[4] नारायण बनाम रामानुज, ए० आई० आर० 1920 इलाहाबाद 209.

[5] फेरीना बनाम फाइकस, एल० आर० (1900) चान्सरी 331.

[6] वेंकट बनाम लक्ष्मी, 5 आई० सी० 102.

एक व्यापारिक संव्यवहार में दोनों पक्षों ने यह स्वीकार कर लिया कि उनके इस संव्यहार का कोई विधिक स्वरूप अथवा अर्थ नहीं होगा। तदनन्तर, एक पक्ष की ओर से संविदा भंग के कारण कार्यवाही प्रारम्भ की गई तो उस मामले में यह निर्णित हुआ कि यद्यपि उन पक्षकारों द्वारा निष्पादित दस्तावेज न तो विधितः बाध्यकारी थी और न ही उसकी किसी शर्त के प्रतिवादी द्वारा भंग किए जाने पर, वादी किसी नष्ट-परिहार (नुकसानी) का हकदार था तथापि उन पक्षकारों द्वारा माल परिदत्त करने के आदेश बाध्यकारी थ और प्रतिवादी द्वारा माल परिदत्त न किए जाने पर, वादी नुकसानी का हकदार था।[1] न्यायमूर्ति स्काट ने एक अन्य मामले[2] में, इसी सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए यह मत व्यक्त किया कि "व्यक्तियों को स्वयं द्वारा किए गये ठहरावों से बाध्य रहना होगा जबकि ऐसे ठहराव सुस्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त किये गए हों"।

इस सम्बन्ध में, निम्न अवधारणाएं, स्पष्टतः घटित होती हैं—

(क) यदि प्रस्थापना और उसके प्रतिगृहीत कर लिए जाने के पश्चात् उस वचन के परिपालन में अथवा उसे अग्रसर करने के उद्देश्य से पक्षकारों द्वारा कोई कृत्य सम्पादित होता है तो वह बाध्यकारी होगा और उस कृत्य की परिधि में जो दायित्व उत्पन्न होंगे, उन्हें टाला नहीं जा सकता।[3]

(ख) किसी प्रस्थापना द्वारा विधितः प्रवर्तनीय अधिकारों का उत्पन्न न होना अथवा उत्पन्न हुए अधिकारों की प्रवर्तनीयता का कालान्तर में विधितः समाप्त हो जाना पृथक् बात है और प्रादुर्भूत अधिकारों की विधिक प्रवर्तनीयता का परस्पर सहमति द्वारा पूर्णतः त्याग कर देना पृथक् बात है। प्रथम दशा में, अधिकारों की प्रवर्तनीयता का प्रश्न ही नहीं रहता किन्तु द्वितीय दशा में, अधिकारों के सम्बन्ध में, विहित न्यायिक उपचार का, संविदा द्वारा, त्याग नहीं किया जा सकता और न उस उपचार के सम्बन्ध में विहित परिसीमा में ही कोई परिवर्तन किया जा सकता है।[4]

(ग) किसी अधिकार के निर्वापन और किसी-किसी उपचार की हानि में स्पष्ट अन्तर है। यदि परिसीमा अधिनियम किसी निश्चित अवधि के व्यतीत हो जाने पर किसी विधिक उपचार की अनुमति नहीं देता, तो ऐसी दशा में, उपचार की समाप्ति के साथ ही अधिकार भी पूर्णतः निर्वापित हो जाता है, किन्तु दूसरी ओर, अधिकार की हानि में उपचार का अभाव स्वयं अन्तर्ग्रस्त होता है। जिस सीमा तक अधिकार वर्तमान रहते हैं, उस सीमा तक वर्तमान अधिकारों के प्रति, उपलब्ध विधिक उपचार का, संविदा द्वारा, त्याग प्रतिषिद्ध है। उदाहरण के लिए यह करार किया जा सकता है कि किसी विनिर्दिष्ट घटना के घटित हो जाने पर किसी व्यक्ति के विधिक अधिकार समाप्त हो जाएंगे।[5] ऐसी दशा में विधिक उपचार उपलब्ध नहीं है।

---

[1] रोज फ्रैंक एंड कम्पनी बनाम क्राम्प्टन ब्रदर्स, (1923) 2 के० बी० 261.

[2] एपिलसन बनाम मिलिट वुड लिमिटेड, (1933) 1 आल इंग्लैंड लॉ रिपोर्ट्स 464.

[3] देखिए, उपरोक्त रोज फ्रैंक एंड कम्पनी वाला मामला, (1923) 2 के० बी० 261.

[4] भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 28 : हीरा भाई बनाम मैन्यूफैक्चरर्स लाइफ इन्शोरेन्स कम्पनी, 14 बाम्बे लॉ रिपोर्टर 741.

[5] गिरधारी लाल बनाम ई० एस० एण्ड वी० डी० इन्श्योरेन्स कम्पनी, 27 सी० डब्ल्यू० एन० 955; सरोज बनाम ज्ञानदा, 36 सी० डब्ल्यू० एन० 555.

(4) प्रस्थापना में किसी बात को करने या करने से प्रविरत रहने की रजामन्दी किसी अन्य व्यक्ति को इस दृष्टि से संज्ञापित की जाती है कि वह अन्य व्यक्ति ऐसे कार्य या प्रविरति के प्रति अपनी अनुमति दे सके, अतः उस अन्य व्यक्ति को यह भली भांति विदित होना चाहिए कि उसे अपनी अनुमति किस विनिर्दिष्ट कार्य या प्रविरति के प्रति देनी है । अतः प्रस्थापना में जिस कार्य को करने या करने से प्रविरत रहने की रजामन्दी संज्ञापित की गई हो, वह कोई निश्चित और असंदिग्ध बात होनी चाहिए । संदिग्ध अथवा अनिश्चित बात की प्रस्थापना से किसी सफल संविदा का निर्माण नहीं हो सकता । न्या० सोमनाथ अय्यर का अभिमत यह है कि यदि किसी व्यक्ति को यह बताया जाए कि अमुक वर्णन का माल उपलब्ध है और उससे यह अपेक्षा की जाए कि वह यह उल्लेख करे कि वह कौन सा माल किस कीमत पर लेने का इच्छुक है, किन्तु यदि वह व्यक्ति कीमत का उल्लेख करते समय यह संकेत न करे कि कौन सा माल चाहिए तो ऐसी अनिश्चयात्मक प्रस्थापना से किसी संविदा का निर्माण नहीं होता साथ ही जब माल के परिमाण का कथन प्रस्थापना की आवश्यक शर्त हो और प्रस्थापना में इस शर्त की पूर्ति न की गई हो तो यह प्रस्थापना अनिश्चितता के कारण शून्य है ।[1]

जहां नियोक्ता द्वारा केवल यह कथन किया गया हो कि कर्मचारी की सेवाओं को ध्यान में रखा जाएगा और जो उचित समझा जाएगा वही पारिश्रमिक दे दिया जाएगा तो ऐसी दशा में किसी विधिक बाध्यता की उत्पत्ति नहीं होगी क्योंकि पारिश्रमिक की राशि अनिश्चित है ।[2] एक कम्पनी ने किसी व्यक्ति को यह आश्वासन दिया कि यदि उस व्यक्ति का ग्राहक बने रहना कम्पनी को सन्तोषजनक प्रतीत होगा तो कम्पनी उसकी संविदा के नवीकरण की प्रार्थना पर विचार करेगी । इस मामले में भी किसी प्रकार की निश्चितता न होने के कारण, किसी विधिक बाध्यता का निर्माण नहीं हो पाया ।[3] किन्तु जहां पक्षकारों में यह करार हुआ हो कि उनके मध्य समयानुसार लिखित में तय हो सकने वाले मूल्य पर पैट्रोल का प्रदान किया जाएगा और उस करार में पक्षकारों के मध्य उत्पन्न हुए किसी विवाद को माध्यस्थम द्वारा तय करने का भी खंड सन्निविष्ट रहा था तो वहां यह माना गया कि करार प्रवर्तनीय था क्योंकि यद्यपि मूल्य की शर्त निश्चित नहीं हुई है तथापि विषय में विवाद होने पर उसे तय किए जाने की रीति में निश्चितता थी ।[4]

(5) प्रस्थापना में विधिक सम्बन्ध उत्पन्न करने की क्षमता का होना अनिवार्य है । किसी वार्तालाप के मध्य अथवा किसी पत्र द्वारा प्रकट किया गया ऐसा आकस्मिक कथन जिससे कि प्रस्तावकर्ता के आशय का अनुमान करके अन्य व्यक्ति कोई कार्य कर ले, तो वह किसी संविदा की सफलता के लिए कोई आधार नहीं है ।[5] इसी प्रकार, जहां कि पक्षकारों में साथ-साथ भ्रमण करने का करार हुआ अथवा किसी पारस्परिक सौजन्य का प्रस्ताव और स्वीकृति की गई, अथवा जहां कोई पति, अपनी पत्नी को मासिक भत्ता देने के लिए सहमत हुआ हो, ऐसी सभी दशाओं में, यही माना जाएगा कि पक्षकारों द्वारा किसी भी प्रकार का विधिक परिणाम आशयित नहीं था ।[6]

---

[1] काफी बोर्ड, बंगलौर बनाम हाजी इब्राहीम, ए० आई० आर० 1966 मैसूर, 118, 123.

[2] टेलर बनाम बूबर, (1813) 105 इंग्लिश रिपोर्टस 108.

[3] माण्ट्रीयल गैस कम्पनी बनाम वैसी, (1900) ए० सी० 595.

[4] ब्रिटिश मोनोफोन लिमिटेड बनाम किंग एण्ड सी रिकार्ड मैन्यूफैक्चरिंग कं०, (1935) 152 ला टाइम्स रिपोर्ट्स 589.

[5] कस्तूरम्मा बनाम वेंकट सुरय्या, (1915) 29 एम० एल० जे० 538.

[6] बैलफोर बनाम बैलफोर, (1919) 2 के० बी० 571.

जब किसी मामले में ऐसा प्रश्न उत्पन्न हो कि किसी प्रस्थापना द्वारा कोई निष्पन्न (कनक्लूडड) संविदा हुई अथवा नहीं, तो इसके अवधारण के लिए यह परिसिद्ध करना होगा कि या तो संविदा की शर्तें सभी अभिव्यक्त थीं अथवा पक्षकारों की अथवा सामान्यतः उनके मध्य किए गए संव्यवहारों की परिस्थितियों से ही यह विवक्षा थी कि वस्तुतः उस संविदा का निर्माण ऐसी शर्तों से हुआ था। यदि संविदा की कोई मर्मभूत शर्त तय नहीं हुई हो तो यह माना जाएगा कि किसी प्रकार की समापित संविदा हुई ही नहीं, किन्तु यदि तय न की हुई शर्त, संविदा की शर्त ही न हो तो उस दशा में यह माना जाएगा कि संविदा हुई थी। **वीर बनाम मोहम्मद**[1] वाले मामले में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने यही अभिनिर्धारित किया है।

(6) प्रस्थापना से आशय उस प्रस्ताव का है जिसे किसी अन्य द्वारा प्रतिगृहीत किए जाने की अपेक्षा हो किन्तु यदि उसका आशय यह हो कि कोई अन्य व्यक्ति उसे प्रतिगृहीत करने के बजाय स्वयं अपनी ओर से प्रस्थापना करे तो वह प्रस्थापना न होकर, प्रस्थापना के लिए आमंत्रण है। नीलाम द्वारा विक्रय, निविदा के लिए विज्ञापन, दूकान पर सूचीपत्र का प्रदर्शन, कीमत की सूची का आह्वान अथवा भाव के दरों की सूची, आदि, इस प्रकार के प्रस्तावों के उदाहरण हैं जो स्वयं प्रस्थापना न होकर, प्रस्थापना के लिए आमन्त्रण मात्र हैं। नीलाम द्वारा माल के विक्रय का विज्ञापन एक प्रकार की सूचना अथवा घोषणा है और ऐसी सूचना के आधार पर ही किसी के द्वारा कोई कार्य कर लिए जाने पर किसी संविदा का गठन नहीं होता।[2] भारतीय विधि में नीलाम द्वारा विक्रय के निश्चित उपबन्ध, माल विक्रय अधिनियम, 1930 में स्पष्टतः वर्णित हैं, जिसके अनुसार केवल बोली लगाने से ही विक्रय की संविदा नहीं हो सकती, वरन् **नीलामकर्ता द्वारा ग्राहक की ऊंची से ऊंची बोली को स्पष्टतः स्वीकार कर लेने पर ही विक्रय की संविदा सम्पूर्ण समझी जाएगी** और जब तक नीलामकर्ता द्वारा उस बोली को स्वीकार नहीं कर लिया जाता तब तक किसी को भी अपनी बोली वापस लेने का अधिकार है।

मध्य प्रदेश राज्य बनाम **हाकिम सिंह**[3] वाले मामले में न्यायमूर्ति आर० जे० भावे ने यह माना है कि **नीलाम में बोली लगाने की क्रिया केवल प्रस्ताव है जिसे नीलामकर्ता द्वारा स्वीकार किए जाने से पूर्व वापस लिया जा सकता है।** इसी प्रकार नीलाम में यदि सबसे ऊंची बोली, उस बोली की सक्षम प्राधिकारी द्वारा पुष्टि किए जाने की शर्त पर स्वीकार की जाती है तो ऐसी पुष्टि के अभाव में बोली लगाने वाला, सरकार की ओर से किसी भी व्यक्ति के साथ की गई किसी व्यवस्था को चुनौती नहीं दे सकता।[4]

निविदाओं के लिए किया गया विज्ञापन स्वयं में प्रस्थापना न होकर, प्रस्थापना के लिए केवल आमंत्रण है। ऐसी निविदायें बहुधा इस रूप में होती हैं कि विक्रय करने वाली संस्थायें निविदा करने वाले को किसी प्रकार का क्रयादेश देने के लिए कदापि बाध्य नहीं है, दूसरे शब्दों में निविदा करने वाले ठेकेदार केवल माल के प्रदाय के लिए प्रस्थापना करते हैं और कीमत का उल्लेख करते हैं और क्रय करने वाली संस्था जब किसी निश्चित अवधि में माल प्राप्त करने के निमित्त क्रयादेश करे तभी ठेकेदार पर माल के प्रदाय की बाध्यता उत्पन्न होती है, अन्यथा नहीं।[5] **भारत संघ बनाम मद्दाला**

---

[1] ए० आई० आर० 1951 इलाहाबाद 93.

[2] हैरिस **बनाम** निकलसन, (1873) 8 क्यू० बी० 286, 288.

[3] ए० आई० आर० 1973 मध्य प्रदेश 24, 25.

[4] नीलगिरि ठेकेदार संघ **बनाम** उड़ीसा राज्य, ए० आई० आर० 1975 उड़ीसा 33, 34.

[5] परसी वे विल लि० **बनाम** लन्दन काउन्टी काउन्सिल एसाइलम कमेटी, एल० जे० (1918) 87 के० बी० 677.

थायथा[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति रघुवर दयाल ने यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी माल के प्रदाय के लिए किसी निविदा को स्वीकार कर लिए जाने पर भी कोई संविदा उत्पन्न नहीं होती। ऐसी दशा में बाध्यकारी संविदा का गठन तभी होता है जब किसी निश्चित तिथि तक माल के प्रदाय का आदेश किया जाए।

यदि कोई दुकानदार अपनी दुकान के प्रत्येक माल पर कीमत की चिप्पी लगाकर रखता है, तो उसका यह कृत्य प्रस्थापना न होकर, प्रस्थापना के लिए आमंत्रण मात्र है।[2] प्रस्थापना वस्तुतः बातचीत करने के उद्देश्य से किया गया प्रस्ताव या विक्रय या भाड़े पर देने (अवक्रय) के लिए किए गए उस विज्ञापन के समान नहीं होती जिसमें कि किसी संविदा द्वारा बाध्य होने का प्रस्ताव नहीं होता और जो कि बातचीत को अग्रसर करने अथवा बदले में प्रस्ताव प्राप्त करने के उद्देश्य से किए गए प्रस्ताव हुआ करते हैं। **चतुर्भुज विठल दास बनाम मोरश्वर परशराम**[3] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय का यही मत रहा है और साथ ही यह भी कहा गया है कि ऐसे मामलों में किसी प्रकार की संविदा नहीं होती वरन् प्रत्येक आदेश और उसकी स्वीकृति के पश्चात् एक पृथक् संविदा का गठन किया जा सकता है।

न्या० एस० एम० सीकरी (जैसा कि उस समय वह थे) के शब्दों में जब किसी अन्य पक्ष को प्रस्ताव करने के लिए आमंत्रण दिया जाए और उस अन्य पक्ष द्वारा किए गए प्रस्ताव को प्रथम पक्ष बिना शर्त स्वीकार न करे तो किसी संविदा का गठन नहीं होता।[4] ऐसी दशा में, संविदा के गठन के लिए अनिवार्य है कि प्रस्ताव को आमंत्रित करने वाला पक्ष, आये हुए प्रस्ताव को बिना शर्त स्वीकार करे।

(ख) वचन—

अधिनियम के निर्वचन खंड में प्रस्थापना और वचन में प्रभेद किया गया है।[5] **प्रस्थापना वह रजामन्दी है जिसे वचन के द्वारा बाध्यकारी बनाया जा सकता है जबकि वचन प्रतिगृहीत प्रस्थापना है।**[6] किसी प्रस्ताव का स्पष्टीकरण मांगना उसका प्रतिग्रहण नहीं है और न ही यह प्रति-प्रस्ताव है।[7] वचनगृहीता द्वारा वचनदाता से निविदा में अन्तर्विष्ट त्रुटियों के परिहार की मांग करना जिससे कि उसे उचित प्रतिफल माना जा सके, वचनदाता के प्रति अवसर प्रस्तुत करना है न कि प्रति-प्रस्ताव।[7]

प्रस्थापना बिना वचन के उत्पन्न हो सकती है जबकि वचन बिना प्रस्थापना के उत्पन्न नहीं हो सकता। वचन प्रस्थापना का अनुगामी हो यह अनिवार्य नहीं है, क्योंकि जिसे प्रस्थापना की गई है, यह उसकी स्वेच्छा है कि वह उस प्रस्थापना को प्रतिगृहीत करे अथवा न करे, किन्तु प्रस्थापना के लिए अनिवार्य है कि वह किसी भी वचन की पूर्वगामिनी हो। **वचन का अस्तित्व प्रस्थापना के पश्चात् सम्भव है किन्तु प्रस्थापना वचन से पूर्व अस्तित्ववान् होती है।**

---

[1] ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 1724: [1964] 3 एस० सी० आर० 774.

[2] फार्मेस्यूटिकल सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन बनाम बूट्स कैश कैमिस्ट्स, [1953] : 1 क्यू० बी० 401.

[3] ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 236.

[4] बद्री प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 706 : [1969] 2 एस० सी० आर० 380 : (1970) 1 एस० सी० जे० 537.

[5] देखिए (संविदा अधिनियम) धारा 2 (ख).

[6] माप्वा बनाम माल, ए० आई० आर० 1939 रंगून 86.

[7] उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद् बनाम गोपाल इलैक्ट्रिक स्टोर, ए० आई० आर० 1977 इलाहाबाद 494, 496 में उद्धृत चैशायर एण्ड फिलट्ट का लॉ ऑफ कान्ट्रैक्ट, नवां संस्करण.

घोंघवत बनाम **आत्माराम**[1] वाले मामले में, एक व्यक्ति ने दूसरे को एक पत्र इस निवेदन के साथ प्रेषित किया कि पत्र वाहक के हाथों धन भेज दिया जाए जिसे कि भविष्य में ब्याज सहित प्रतिसंदत्त कर दिया जाएगा। निर्णय यह हुआ कि यह पत्र वचन न होकर केवल प्रस्थापना था।

वोल्टन बनाम **जोन्स**[2] वाला मामला इस प्रसंग में कुछ मनोरंजक तथ्य प्रस्तुत करता है। प्रतिवादी ने एक फर्म से, जिसमें कि उसका खाता था, पत्र द्वारा एक प्रस्थापना की। प्रतिवादी को जो हाल ही में उस फर्म का मालिक हुआ था, वह पत्र प्राप्त हुआ और उसने प्रतिवादी को उसके पत्र के आधार पर माल प्रेषित कर दिया किन्तु यह सूचना नहीं दी कि उक्त फर्म के स्वामित्व में परिवर्तन हो चुका है। वादी द्वारा माल की कीमत का वाद प्रस्तुत किये जाने पर, यह निर्णय हुआ कि इस मामले में किसी संविदा का गठन नहीं हो पाया था क्योंकि प्रस्थापना किसी एक व्यक्ति से की गई थी जबकि उसे प्रतिगृहीत करने वाला व्यक्ति दूसरा था। इस प्रकार, **विधिक स्थिति यह है कि वचन तभी उत्पन्न हो सकता है जबकि जिस व्यक्ति के प्रति प्रस्थापना की गई है, वही व्यक्ति उसे प्रतिगहीत भी करे।**[3]

(ग) वचनदाता और वचनगृहीता--

प्रस्थापना करने वाला व्यक्ति "वचनदाता" और प्रस्थापना प्रतिगृहीत करने वाला व्यक्ति "वचनगृहीता" कहलाता है। उपरोक्त दोनों पद, अंग्रेजी विधि में प्रचलित, क्रमशः "आफरर" और "आफरी" पदों के पर्यायवाची हैं। निर्वचन खंड में, इन दोनों पदों की पृथक्-पृथक् परिभाषा दिए जाने से ही यह स्पष्ट है कि **वचनदाता और वचनगृहीता दो, सुभिन्न व्यक्ति होने चाहिएं।** संविदा की दृष्टि से, किसी भी व्यक्ति का स्वयं के प्रति बाध्यताधीन हो जाना सम्भव नहीं है।[4] संविदा के लिए दो पक्षों का अस्तित्व अनिवार्य है। विधिक सिद्धान्त से, **दो व्यक्तियों के मध्य किसी प्रकार के संसर्ग अथवा निजत्व (प्रिविटी) की संस्थापना से ही संविदा का गठन सम्भव है।** किसी व्यक्ति द्वारा प्रस्थापना करने और किसी अन्य द्वारा उस प्रस्थापना को प्रतिगृहीत किए जाने की प्रक्रिया से, यह संसर्ग अथवा निजत्व, दोनों के मध्य, स्वतः स्थापित हो जाता है। उन दोनों के मध्य विधिक सम्बन्धों अथवा बाध्यताओं का प्रकट और वास्तविक आधार यह संसर्ग अथवा निजत्व है।

निर्वचन खंड में, प्रतिफल की जो परिभाषा दी गई है, उससे भी, वचनदाता के स्वयं वचनगृहीता हो सकने की सम्भावना का अपवर्जन हो जाता है।[5] कोई भी 'व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से तो भली भांति' संविदा कर सकता है किन्तु यदि उन व्यक्तियों में उसने स्वयं को भी सम्मिलित कर लिया है तो **संविदा नहीं की जा सकती।**[6] यह तो आवश्यक है कि प्रस्थापना के समय वह व्यक्ति जिससे प्रस्थापना की गई है, अस्तित्व में हो, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जिस व्यक्ति से प्रस्थापना की गई है, वह कोई अभिनिश्चित व्यक्ति हो। **आवश्यक, तथापि,** यह है कि प्रस्तावना को प्रतिगृहीत करने वाला कोई अभिनिश्चित व्यक्ति हो।[7] इस प्रकार, **यद्यपि प्रस्थापना, किसी समाचारपत्र में**

---

[1] ए० आई० आर० 1913 मुम्बई, 669.

[2] (1857) 157 इंग्लिश रिपोर्ट्स, 232.

[3] मोती लाल **बनाम** ठाकुर लाल, 16 आई० सी० 696 14 बाम्बे लॉ रिपोर्टर, 648.

[4] नवेन्द्र नाथ बसक **बनाम** शशिविन्दु नाथ, ए० आई० आर० 1941 कलकत्ता 595.

[5] रमन **बनाम** पाशुपथी, 49 आई० सी० 41.

[6] नेपियर **बनाम** विलियम्स, (1911) 1 चान्सरी 61.

[7] विलियास **बनाम** कारबाडाईन, 4 बार्नेवाल एंड एडोल्कस रिपोर्ट्स, 621. स्पेन्सर **बनाम** हार्डिंग, एल० आर० 5 कामन प्लीज 561.

विज्ञापन के माध्यम से की जा सकती है, तथापि संविदा का गठन तब तक नहीं माना जा सकता जब तक कि कोई अभिनिश्चित व्यक्ति उस विज्ञापन में प्रकाशित शर्तों के अनुपालन द्वारा, उस प्रस्थापना को प्रतिगृहीत न कर ले। यदि ऐसे विज्ञापन के आधार पर, प्रस्थापना को प्रतिगृहीत करने वाले एक से अधिक व्यक्ति हों, तो ऐसी दशा में उस संविदा का लाभ किसे प्राप्त हो, इस विषय में विनिश्चय, प्रत्येक मामले की विशेष परिस्थितियों के अनुसार किया जाएगा।[1]

(घ) प्रतिफल—

(i) प्रतिफल का महत्व—

संविदा के संघटकों में सर्वाधिक महत्व का तत्व, प्रतिफल है। इस तत्व के अभाव में किसी प्रवर्तनीय संविदा का निर्माण ही असम्भव है। यह तो सम्भव है कि प्रतिफल के विद्यमान रहते हुए भी, स्वयं प्रतिफल की अवैधता के कारण अथवा अन्य कारणों से, संविदा अप्रवर्तनीय रह जाए अथवा आद्यत: प्रवर्तनीय होते हुए भी कालान्तर में, विधि-विरुद्ध हो जाने अथवा अन्य किसी परिस्थिति, से अप्रवर्तनीय हो जाए, किन्तु **प्रतिफल के बिना की हुई संविदा आद्यतः शून्य है।** किसी प्रवर्तनीय करार के अतिरिक्त, संविदा कुछ भी नहीं है। अत: प्रतिफल का अभाव, वस्तुत: किसी करार को ही शून्य कर देता है। भारतीय संविदा अधिनियम[2] के अनुसार, **प्रतिफल के बिना किया गया करार शून्य है, सिवाय जबकि वह करार—**

(1) लिखित रूप में हो;

(2) दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण के लिए तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत हो;

(3) एक दूसरे के साथ निकट सम्बन्ध वाले पक्षकारों के बीच हो; तथा

(4) पक्षकारों के बीच नैसर्गिक प्रेम और स्नेह के कारण किया गया हो।

जब तक उपरोक्त सभी चारों दशायें वर्तमान न हों, तब तक प्रतिफल के विना किए हुए किसी करार को संविदा में परिणत नहीं किया जा सकता। प्रतिफल के बिना किए गये करार की प्रवर्तनीयता के लिए, उपरोक्त चारों दशायें अपरिहार्य हैं। अत: यह स्पष्ट है कि प्रतिफल के आधार पर, किये गए करार के लिए, लिखित रूप में अथवा उसका रजिस्ट्रीकृत होना अथवा उसका साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित होना आवश्यक नहीं है, सिवाय जबकि वह 100 रुपये अथवा उससे अधिक मूल्य की मूर्त स्थावर सम्पत्ति का विक्रय या 100 रुपये या उससे अधिक मूलधन की प्रतिभूति के लिए, विनिर्दिष्ट स्थावर सम्पत्ति में किसी हित का बन्धक द्वारा अन्तरण हो अथवा स्थावर सम्पत्ति का वर्षानुवर्षी या एक वर्ष से अधिक किसी अवधि का या वार्षिक भाटक आरक्षित करने वाला पट्टा हो[3], अथवा लिखित रूप में ऐसे किसी दस्तावेज की संज्ञा में आता हो जिसका दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण को विनियमित करने वाली तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत होना अभिप्रेत हो।[4] इस प्रकार, भारतीय संविदा अधिनियम ने जिन अधिकांश करारों को मान्यता दी है, वे सामान्य प्रकृति के ऐसे करार हैं, जो प्रतिफल पर आधृत हों, भले ही ऐसे करार मौखिक हों। अत:, जैसाकि न्यायमूर्ति

[1] लंकास्टार बनाम वालश, 4 मीसन एंड वैल्सवीज रिपोर्ट्‌स, 16.

[2] धारा 25, जिसमें पूर्व में ही की गई किसी बात के प्रतिकर तथा परिसीमा वारित ऋण के संदाय का भी उल्लेख है।

[3] सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, धारा 54, 59 और 107.

[4] देखिए भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17, 48 व 49.

पी० एन० सिंघल ने, **श्रीमती शकुन्तला** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] में विनिश्चित किया है, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 (घ) में परिभाषित प्रतिफल के स्वरुप में, नैसर्गिक प्रेम अथवा स्नेह का अपवर्जन है।

(ii) प्रतिफल का अर्थ—

क्यूरी बनाम **मीसा**[2] वाले मामले में, एक्सचैकर चैम्बर ने प्रतिफल की परिभाषा, इस प्रकार दी है—

"कानून की दृष्टि में, किसी पक्ष को अर्जित होने वाला कोई अधिकार, हित, लाभ अथवा आय अथवा किसी अन्य पक्ष द्वारा किया गया, सहन किया गया अथवा अंगीकार किया गया कोई त्याग, हानि, अहित अथवा उत्तरदायित्व, मूल्यवान प्रतिफल कहलाता है।"[3]

इंग्लैंड की विधि में मूल्यवान प्रतिफल (वैल्यूएबिल कन्सीडरेशन) तथा अच्छा प्रतिफल (गुड कन्सीडरेशन) ये दो अभिव्यक्तियां प्रचलित हैं। भारतीय विधि में "प्रतिफल" को मात्र प्रतिफल माना गया है तथा इसे किसी भी प्रकार के विशेषण से विशिष्ट नहीं किया गया है, अतः यह कहा गया है कि प्रतिफल के रूप में आशयित लाभ अथवा मूल्य की उपयुक्तता अथवा यथेष्टता का अवधारण करना न्यायालय के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आता, प्रतिफल के रूप में कोई भी लाभ, भले ही वह स्वल्प हो, पर्याप्त है[4], प्रतिफल के रूप में उपलभ्य लाभ न केवल स्वल्प हो सकता है वरन् वह समस्या-ग्रस्त भी हो सकता है, उदाहरणार्थ, परिदत्त की गई कोई अविधिमान्य विल (वसीयत)[5] अथवा अविधिमान्य अनुज्ञप्ति[6] अथवा कोई अप्रवर्तनीय प्रत्याभूति[4] आदि भी पर्याप्त प्रतिफल माने गए हैं, भले ही इन विलेखों की सार्थकता रंचमात्र भी न हो। किसी कौटुम्बिक ठहराव के लिए मुकदमेबाजी की समाप्ति द्वारा पारिवारिक शान्ति के प्राप्तव्य को, ठीक प्रतिफल माना गया है। (देखिए **कमिश्नर ऑफ वैल्थ टैक्स** बनाम **विजयबाडा उगर महारानी साहेब, भावनगर**[7] में न्या० एन० एल० उंटवालिया का विनिश्चय)

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि **प्रतिफल से तात्पर्य किसी एक पक्ष द्वारा आशयित हित और दूसरे पक्ष द्वारा अंगीकृत कोई बाधा या अहित है।**[8] **कारलिल** बनाम **कार्बोलिक स्मोक बाल कम्पनी**[9] वाले मामले में प्रतिफल की व्याख्या यह की गई है कि किसी के वचन के आधार पर वादी के किसी अधिकार की क्षति उसके निलम्बन अथवा उसके त्याग अथवा वादी की किसी प्रकार की संभाव्य हानि से ही प्रतिफल का सार ग्रहण किया जा सकता है। अंग्रेजी विधि में, किसी वचन की पुष्टि में सहन किया गया, किसी भी प्रकार का अहित, प्रतिफल माना जा सकता है, भले ही उस अहित और उस वचन के मूल्यों में समानता न हो। उदाहरणार्थ तम्बाकू खाने की आदत के त्याग में अन्तर्ग्रस्त अहित भी किसी

---

[1] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 843 (844).

[2] (1875) 10 एक्सचेकर चैम्बर 153.

[3] "A valuable consideration in the sense of law may consist either in some right, interest, profit or benefit accruing to one party or some forbearence, detriment, loss or responsibility, given, suffered or undertaken by the other."

[4] हेग **बनाम** ब्रुक्स, 10 एडोल्फ्स एंड ऐलिसिज रिपोर्ट्स, 309.

[5] स्मिथ **बनाम** स्मिथ, एल० जे० 32 कामन प्लीज 149.

[6] बेगवी **बनाम** फासफेट स्यूएज कम्पनी, एल० जे० 44 क्वीन्स बैंच 233.

[7] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 982.

[8] एडवार्ड्स बोर्ड **बनाम** हैरो गैस कम्पनी, एल० आर० 10 क्यू० बी० 92, 96.

[9] एल० आर० (1893) 1 क्यू० बी० 256.

वचन की पुष्टि के लिए पर्याप्त प्रतिफल माना जा सकेगा।[1] **धनकर आयुक्त, मैसूर** बनाम **विजयबाडा उगर महारानी साहेब, भावनगर**[2] वाले मामले में, न्यायमूर्ति एन० एल० उंटवालिया ने एक कौटुम्बिक व्यवस्थापन को जिसमें एक निर्धारिती मां ने अपने कनिष्ठ पुत्र से यह करार किया था कि यदि जेष्ठ पुत्र द्वारा संदाय की जाने वाली धनराशि न्यून रहे तो वह अपने कनिष्ठ पुत्र को उस न्यूनता की पूर्ति में स्वयं संदाय कर देगी, समुचित प्रतिफल से परिपूर्ण माना है।

(iii) हेतु और प्रतिफल—

न्यायिक मामलों में किसी कार्य के हेतु (मोटिव) को प्रतिफल से पृथक् समझा गया है। **एस० राजन्ना बनाम एस० एम० घोंधसा वाले**[3] मामले में न्यायमूर्ति नारायण भाई ने हेतु और प्रतिफल में प्रभेद किया है। इस मामले में किसी संयुक्त हिन्दू परिवार में दो सहदायिक भ्राताओं ने, जिनके कि पुत्र भी थे, अपने अविभक्त हित का, एक रजिस्ट्रीकृत विलेख द्वारा, अपने पिता के पक्ष में, अन्तरण कर दिया जिसके एवज में पिता ने उन भ्राताओं में से प्रत्येक से प्रतिमास एक धनराशि प्राप्त करने का परित्याग कर दिया। अन्तरण के विलेख में इस बात का उल्लेख नहीं था किन्तु पूर्व के अरजिस्ट्रीकृत विलेख में उन भ्राताओं द्वारा ऐसी मासिक राशि पिता को देने का वचन दिया गया था और उस प्रतिफल के आधार पर पिता ने संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में के अपने अधिकार का त्याग कर दिया था। यह माना गया कि पश्चात्‌वर्ती अन्तरण विलेख के लिए पिता द्वारा मासिक राशि प्राप्त करने के अधिकार का त्याग सहदायिक सम्पत्ति में भ्राताओं के हित के अन्तरण के निमित्त प्रतिफल नहीं था वरन् एक हेतु, अवसर अथवा कारण मात्र था। भेद स्पष्ट है। पूर्ववर्ती और पश्चात्‌वर्ती दोनों संव्यवहार स्वतंत्र थे और पूर्व का संव्यवहार पश्चात् के संव्यवहार का प्रतिफल न होकर एक नवीन संविदा का कारण अथवा हेतु था।

(iv) प्रतिफल की पर्याप्तता—

जब तक कि प्रतिफल अपनी प्रकृति में ऐसा घोर आघात पहुंचाने वाला न हो जिससे कि प्रतिफल की वास्तविकता के अभाव के साक्ष्य का अनुमान होता हो तब तक प्रतिफल की पर्याप्तता विचारणीय नहीं है।[4] तथापि **प्रतिफल यदि अनिश्चित, संदिग्ध, भ्रामक अथवा विधितः या भौतिक रूप से असम्भव हो तो ऐसा प्रतिफल प्रवर्तनीय नहीं होगा।**[5]

(v) प्रतिफल की समग्रता—

किसी भी संविदा से सम्बन्धित प्रतिफल को समग्रतः एक और सम्पूर्ण माना जाएगा और उसे किसी प्रकार प्रभाजित नहीं किया जा सकता। यदि किसी संविदा में एक से अधिक शर्तें अथवा दशाएं सन्निविष्ट हों तो प्रत्येक शर्त को पृथक् संविदा न मान कर, उसे एक ही संविदा की एक स्थिति में सम्पूर्ण संविदा के निमित्त जो प्रतिफल है, उसी को उस संविदा की प्रत्येक शर्त के प्रतिफल के रूप में स्वीकार किया जाएगा और उस प्रतिफल को संविदा की प्रत्येक शर्त के प्रति पृथक्-पृथक् मान कर, प्रभाजित नहीं किया जा सकेगा।[6]

---

1 हार्वे बनाम जानसन, (1848) 136 इंग्लिश रिपोर्ट्‌स 1265.

2 ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 982.

3 ए० आई० आर० 1970 मैसूर 270 (276).

4 ताजुक बोर्ड बनाम सेठा, ए० आई० आर० 1936 मद्रास 709.

5 रौशर बनाम विलियास, एल० आर० (1875) 20 ईक्विटी 210.

6 चतुर्भुज बनाम मोरेश्वर, ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 236, 242.

(vi) न्यूडम पैक्टम --

रोमन विधि की एक सूक्ति में, प्रतिफल रहित करार को "न्यूडम पैक्टम" कहा गया है। धर्मार्थ, पुण्यार्थ अथवा दान या खैरात के कार्यों के लिए किसी वस्तु अथवा धन देने के वचन में यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि क्या ये करार "न्यूडम पैक्टम" हैं, और क्या इन्हें प्रतिफल के अभाव में न्यायिक दृष्टि से प्रवर्तनीय माना जा सकता है। **अब्दुल अजीज बनाम मासूम अली**[1] वाले मामले में, किसी मसजिद के जीर्णोद्धार के लिए 500 रुपये चन्दा देने के वचन के अनुपालन के लिए वाद संस्थित किया गया था। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी हित की दृष्टि से इसमें किसी प्रकार का प्रतिफल निहित न होने के कारण ऐसा वचन प्रवर्तनीय नहीं था। हावड़ा में "टाउन हाल" के निर्माण के क्रम में प्रतिवादी 100 रुपये की राशि चन्दे के रूप में देने के लिए सहमत हो गया था। वादी ने, जो कि वहां सचिव था, रेखांक मांग लिया तथा ठेकेदारों को काम सौंप दिया तथा उन ठेकेदारों को भुगतान करने का भार भी ले लिया। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि चन्दे की राशि देने का वचन केवल पुण्यार्थ ही था जिससे कि वचनदाता को कोई लाभ नहीं था, तो भी इस मामले में प्रतिफल का अभाव नहीं था क्योंकि सचिव ने उसी वचन में विश्वास करके ठेकेदारों को भुगतान करने के दायित्व को ग्रहण करके अपना अहित सहन किया था।[2]

उपरोक्त दोनों मामलों के प्रतिफल सम्बन्धी अवधारण में भेद स्पष्ट है। प्रथम मामले में वचन तो था किन्तु वचन के समर्थन में प्रतिफल नहीं था कारण कि वहां उस वचन के पालन में अन्य पक्ष से किसी प्रकार के कार्य करने का कोई साक्ष्य नहीं था जबकि दूसरे मामले में, सचिव ने प्रथम पक्ष के वचन पर विश्वास करके, रेखांक भी मंगवा लिया और जिन्हें उस काम का ठेका दिया गया था, उन ठेकेदारों को भुगतान करने का दायित्व भी ग्रहण कर लिया और ऐसा करने में, सचिव का किसी न किसी रूप में अपाय (डेट्रीमेण्ट) या अहित ही हुआ। वचनगृहीता पर किसी प्रकार की बाध्यता आ जाना ही अहित, अपाय (डेट्रीमेण्ट) माना जाएगा। यह पृथक् बात है कि ऐसा अहित करने वाला भी किसी न किसी प्रकार से इसमें अपने हित को लक्ष्य कर रहा हो जैसा कि उन करारों में होता है जो व्यतिकारी होते हैं अर्थात् जिनमें एक का वचन दूसरे के लिए प्रतिफल होता है जैसा कि प्रायः माल के विक्रय की संविदाओं में होता है जहां माल और माल की कीमत दोनों एक दूसरे के लिए प्रतिफल हैं और दोनों पक्षों में से एक को धन और दूसरे को माल परिदत्त करना है और दोनों ही ऐसा करने के लिए दूसरे के प्रति वचनबद्ध हैं। किन्तु व्यतिकारी करारों के अतिरिक्त, अन्य प्रकार के करारों में यह आवश्यक नहीं है कि दोनों पक्षों को धन के मूल्य का कोई समान लाभ होता हो। यदि किसी वचन पर किसी ने कोई कार्य करके क्षति उठा ली है तो वह क्षति भी उस वचन के प्रति पर्याप्त प्रतिफल है जिसके कारण उस वचन का पालन कराया जा सकता है अथवा उस क्षतिपूर्ति के लिए नष्ट परिहार का वाद संस्थित किया जा सकता है। इसीलिए, **भारतीय संविदा, विधि ने प्रतिफल का वर्णन एक विशाल और व्यापक अर्थ में किया है,** वह यह कि जब वचन दाता की वांछा पर वचनगृहीता या अन्य कोई व्यक्ति कुछ कर चुका है या करने से प्रविरत रहा है, या करता है या करने से प्रविरत रहता है या करने का या करने से प्रविरत रहने का वचन देता है, तब ऐसा कार्य या प्रविरति या वचन उस वचन के लिए प्रतिफल कहलाता है। चूंकि भविष्य में किसी कार्य को करने या करने से प्रविरत रहने का वचन भी उचित प्रतिफल है, अतः यह सिद्ध होता है कि वचन का प्रतिफल कोई तात्कालिक भौतिक मूल्य न होकर केवल वचन मात्र भी हो सकता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि **वचन का प्रतिफल स्वयं वचन भी हो सकता है।**

---

[1] ए० आई० आर० 1936 इलाहाबाद 268.

[2] केदार नाथ बनाम गोरी मोहम्मद, ए० आई० आर० 1914 कलकत्ता 64.

भारतीय संविदा के स्वरूप में वचन का बहुत महत्व है। **वचन, वस्तुतः सम्पूर्ण संविदा तंत्र की कुंजी है।** प्रतिफल के इस व्यापक महत्व को समझने की सुविधा से, इसके प्रमुख तत्वों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है।

(vii) वचनदाता की वांछा—

प्रतिफल वचनदाता की वांछा पर उद्भूत होना चाहिए।[1] यदि किसी धन का संदाय केवल दाता की स्वेच्छा पर हो तो इसे विधिक बाध्यता का आधार नहीं बनाया जा सकता और यदि दाता ने पूर्व में कुछ समय तक ऐसा संदाय किया हो तो भी, भविष्य में संदाय करने के लिए उसे बाध्य नहीं किया जा सकता।[2] किसी उत्सव में चन्दा देने का वचन, दाता की स्वेच्छा पर निर्भर करता है और यदि यह सिद्ध न हो सके कि उस वचन के आधार पर कोई विधिक दायित्व उत्पन्न हो चुके थे, तो ऐसे वचन को प्रवर्तनीय नहीं माना जा सकता।[3] **आदित्य दास** बनाम **प्रेमचन्द**[4] वाले मामले में प्रतिवादी ने वादी के घर किसी उत्सव में किसी ठाकुर को ले आने का वचन दिया जिसके आधार पर वादी ने कुछ अतिथियों को आमंत्रित कर लिया और इस सम्बन्ध में वादी का यथेष्ठ व्यय भी हो गया। प्रतिवादी ठाकुर को न ला सका और वादी ने नष्ट परिहार का एक वाद संस्थित किया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि वादी द्वारा अतिथियों को आमंत्रित करने में प्रतिवादी की कोई वांछा नहीं थी, अतः वादी किसी नष्ट परिहार का हकदार नहीं है। जिस मामले में चन्दे द्वारा एकत्रित धन के उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए कोई कार्य प्रारम्भ न किया गया हो वहां यह माना जाएगा कि चन्दा दिये जाने के वचन की कोई प्रवर्तनीयता नहीं है।[5] इस मामले में चन्दे का वचन किसी मसजिद के जीर्णोद्धार के लिए दिया गया था किन्तु जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ नहीं हुआ था। इसके विपरीत, **केदार नाथ** बनाम **गोरी मोहम्मद**[6] वाले मामले में प्रतिवादी ने हावड़ा टाउन हाल के निर्माण के लिए एकत्रित किये जाने वाले चन्दे के निमित्त, चन्दे की पुस्तक में 100 रुपये की राशि चन्दे में देने के लिए अपने हस्ताक्षर कर दिये थे और वादी ने जो कि अन्य म्युनिसिपल कमिश्नरों के साथ-साथ इस चन्दे के धन का न्यासी था, निर्माण सम्बन्धी रेखांक (प्लान) मांग लिए थे तथा ठेकेदारों को निर्माण कार्य सौंप कर ठेकेदारों को भुगतान करने का दायित्व उठा लिया था। न्यायालय ने इस सिद्धान्त को स्वीकार अवश्य किया कि पुण्यार्थ धन देने का वचन यद्यपि प्रवर्तनीय नहीं होता तथापि इस मामले के तथ्यों को भिन्न मानते हुए यह विनिश्चय किया गया कि इस मामले में, व्याख्या करने पर, संविदा का स्वरूप इस प्रकार और इन शब्दों में लक्ष्य किये जाने योग्य था "मैं आप द्वारा इस भवन के निर्माण अथवा इसके ठेके पर निर्माण कराये जाने की अनुमति के प्रतिफल में अपने नाम लिखी हुई चन्दे की राशि देने का वचन देता हूं"।

इस मामले में किए गए विनिश्चय का इंग्लैण्ड के हडसन[7] वाले मामले के विनिश्चय से तुलना करने पर विधिक सिद्धान्तों में एक स्पष्ट विरोध दृष्टिगत होता है। हडसन वाले मामलों में, दाता ने

---

1 राजा ऑफ वेंकट गिरि बनाम कृष्णय्या, ए० आई० आर० 1948 प्रिवी काउंन्सिल 150.

2 जीवन बनाम निरुपमा, ए० आई० आर० 1953 कलकत्ता 922.

3 कोस लाई बनाम पुलोस्पियम, 72 आई० सी० 774.

4 49 सी० एल० जे० 278.

5 अब्दुल अजीज बनाम मासूम अली, ए० आई० आर० 1936 इलाहाबाद 268.

6 ए० आई० आर० 1914 कलकत्ता 64.

7 एल० आर० 54 चान्सरी 811.

किसी धार्मिक संस्थान के ऋण को समाप्त करने के उद्देश्य से 20,000 पौंड की राशि, पांच समान वार्षिक किस्तों में, संदाय करने का वचन दिया और तीन वर्षों में 12,000 पौंड की राशि का संदाय करने के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। दाता के निष्पादकों के विरुद्ध, अवशिष्ट 8,000 पौंड की राशि के संदाय के लिए, वाद संस्थित किये जाने पर, यह विनिश्चित हुआ कि यह कोई प्रवर्तनीय संविदा नहीं थी क्योंकि 20,000 पौंड के संदाय के लिए किसी प्रकार का प्रतिफल नहीं था और जो 12,000 पौंड की राशि संदत्त की गई, वह, किसी विधिक संविदा के अधीन न होकर, पुण्यार्थ दान के स्वरूप में थी। तर्क यह दिया गया कि जिस पक्ष ने एक कमेटी के रूप में उस राशि के वितरण का परिवचन देकर जोखिम और दायित्व को स्वीकार किया, वही संविदा के लिए प्रतिफल था, किन्तु न्यायालय ने इस तर्क को नकार दिया। इस विनिश्चय के अनुसार, यह माना गया कि किसी आदितः शून्य करार को, किसी पक्ष द्वारा तत्पश्चात् किए गये कार्य के कारण, संविदा में परिणत नहीं किया जा सकता। **दोरास्वामी बनाम अरुणाचल**[1] व **दीनोनाथ बनाम हंसराज गुप्ता**[2] और **तालुक बोर्ड बनाम सेठा**[3] वाले मामलों के विनिश्चयों में, **केदार नाथ बनाम गोरी मोहम्मद**[4] वाले मामले के विनिश्चय की तुलना में **हडसन वाले मामले**[5] के विनिश्चय को अधिमान दिया गया है। इस प्रकार, उक्त **केदारनाथ बनाम गोरी मोहम्मद**[4] वाले मामले के विनिश्चय की शुद्धता में सन्देह किया जा सकता है। इस मामले में यह तो सिद्ध हो चुका था कि वादी ने निर्माण सम्बन्धी रेखांक (प्लान) मंगा लिए थे तथा ठेकेदारों को भुगतान करने का दायित्व भी ले लिया था, और यह वास्तविक प्रतिफल भी था, परन्तु यह सिद्ध नहीं हुआ कि क्या वादी की ओर से यह प्रतिफल प्रतिवादी की वांछा पर उद्भूत हुआ। भारतीय विधि में, जैसा कि संविदा अधिनियम के निर्वचन खंड[6] से ही स्पष्ट है, करार की प्रवर्तनीयता इस बात पर निर्भर करती है कि प्रतिफल किस ओर से और किस की वांछा पर उद्भूत हुआ। **वचन की बाध्यता वचनदाता पर है और वह तब जबकि प्रतिफल वचनगृहीता की ओर से उद्भूत हुआ हो और साथ ही तब जबकि वचनगृहीता की ओर से यह प्रतिफल वचनदाता की स्वयं की वांछा पर उद्भूत हुआ हो। वचनदाता की यह वांछा ही, उसके द्वारा की गई प्रस्थापना का प्राण है।**

(viii) प्रतिफल का किसी की भी ओर से उद्भूत होना तथा पर-व्यक्ति द्वारा वाद लाने के अधिकार की सीमा —

प्रतिफल वचनगृहीता अथवा अन्य किसी व्यक्ति की ओर से भी उद्भूत हो सकता है।

इंग्लैण्ड की विधि का यह सुस्थिर नियम है कि किसी संविदा पर उन पक्षकारों के अतिरिक्त जिनके द्वारा वह संविदा की गई थी, न तो कोई व्यक्ति वाद ला सकता है और न उस पर वाद लाया जा सकता है। इग्लैण्ड की विधि में यह भी आवश्यक है कि प्रश्नगत कार्य अर्थात् प्रतिफल केवल वचन-गृहीता की ओर से ही उद्भूत होना चाहिए, किसी अन्य व्यक्ति की ओर से नहीं। **रत्तन बनाम पूल**[7] वाले मामले में अवश्य इस नियम से विपरीत व्यवस्था दी गई थी। इस मामले में एक पिता, अपनी सम्पदा (एस्टेट) में से अपनी पुत्री के विवाह में धन की आवश्यकता की दृष्टि से, वृक्ष कटवाना

---

[1] 159 आई० सी० 345.

[2] ए० आई० आर० 1936 कलकत्ता 44.

[3] ए० आई० आर० 1936 मद्रास 709.

[4] ए० आई० आर० 1914 कलकत्ता 64.

[5] एल० आर० 54 चान्सरी 811.

[6] **संविदा अधिनियम, धारा 2(घ).**

[7] (1688) 89 इंग्लिश रिपोर्टस् 352.

चाहता था किन्तु उसके पुत्र ने उसे 1,000 पौण्ड की राशि पुत्री के निमित्त देने का वचन, पिता द्वारा वृक्ष न कटवाने के प्रतिफल, में दिया, यद्यपि पुत्री इस संविदा में पक्षकार नहीं थी तथापि पुत्री द्वारा पुत्र के वचन की प्रवर्तनीयता के लिए वाद संस्थित किये जाने पर, पुत्री द्वारा वाद लाने का इस आधार पर समर्थन किया गया कि इस मामले में सम्बन्ध की निकटता और नैसर्गिक प्रेम सम्बन्ध और स्नेह के आधार पर संविदा की गई थी। इस प्रकार इस मामले में आन्वयिक (कान्स्ट्रक्टिव) **प्रतिफल** का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए यह माना गया कि ऐसे नैसर्गिक स्नेह बन्धन के कारण यही समझा जाएगा कि प्रतिफल वादी की ओर से ही उद्भूत हुआ था। किन्तु **ट्वीडिल बनाम एटकिंसन**[1] वाले मामले में, इस नियम को उत्तम विधि नहीं माना गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि संविदा के पक्षकारों के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति संविदा पर वाद नहीं ला सकता भले ही वह इसके लाभ के लिए ही रहा हो और ऐसे मामलों में सम्बन्ध की निकटता का तर्क व्यर्थ है। उपरोक्त, ट्वीडिल बनाम एटकिंसन[1] वाले मामले में, किसी दम्पति के दोनों पिताओं ने परस्पर यह वचन किया था कि वर के पिता द्वारा वधू को 100 पौंड संदत्त किये जाने के प्रतिफल में, वधू का पिता उस भावी वर को 200 पौंड संदत्त करेगा। वर ने वधू के पिता के निष्पादकों के विरुद्ध 200 पौंड संदत्त करने के लिए वाद संस्थित किया। न्यायमूर्ति व्हाइटमन ने अपने निर्णय में ऐसा व्यक्त किया: "अब यह सुस्थापित हो चुका है कि जो व्यक्ति प्रतिफल के लिए पर-व्यक्ति है, वह संविदा से किसी भी प्रकार का लाभ नहीं उठा सकता भले ही संविदा उसी के हित के लिए की गई हो।"

भारत में, अब इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का विवाद शेष नहीं है। उच्चतम न्यायालय के तत्समय कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति जे० सी० शाह ने **एम० सी० चाको बनाम स्टेट बैंक**[2] वाले मामले के निर्णय में यह निर्विवाद और सुस्थापित विधि अधिकथित की है कि **कुछ मान्यताप्राप्त अपवादों को छोड़ कर संविदा के पक्षकारों के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति संविदा की शर्तों के प्रवर्तन के लिए वाद नहीं ला सकता। वे मान्यताप्राप्त अपवाद सामान्यतः दो हैं**—

(1) जहां कोई व्यक्ति किसी न्यास में हिताधिकारी है तथा (2) जब किसी पारिवारिक व्यवस्थापना में किसी व्यक्ति का हित सृष्ट हो गया हो। इसी प्रकार के कुछ अपवाद इंग्लिश और भारतीय, दोनों ही विधियों में मान्य हैं। नियम और इसके कुछ अपवादों की संक्षिप्त व्याख्या नीचे प्रस्तुत की गई है।

डनलप न्यूमैटिक टायर कम्पनी बनाम **सैल्फ्रिज कम्पनी** लि०[3] वाले मामले में, मैसर्स ड्यू एण्ड कम्पनी ने, जो कि वादी के अभिकर्ता थे, यह वचन दे रखा था कि वे डनलप ट्यूब व आवरणों का, सूची में निर्धारित कीमत से कम पर विक्रय नहीं करेंगे। मैसर्स ड्यू एण्ड कम्पनी ने अपने अन्य उपाभिकर्ताओं पर भी इसी शर्त के पालन का भार डाल दिया। इन्हीं मैसर्स ड्यू एण्ड कम्पनी ने प्रतिवादियों से यह करार किया कि यदि वे सूची में निर्धारित मूल्य से कम पर उन वस्तुओं का विक्रय करें तो वे प्रति वस्तु 5 पौण्ड की दर से वादी को संदाय करें। प्रतिवादियों के विरुद्ध डनलप कम्पनी ने एक वाद 10 पौंड के संदाय के लिए इसलिए संस्थित किया कि प्रतिवादियों ने दो वस्तुओं का विक्रय निर्धारित मूल्य से कम पर करके मैसर्स ड्यू एण्ड कम्पनी से किये हुए अपने करार को भंग कर दिया था। इस मामले में यह निर्णीत हुआ कि यह वचन अप्रवर्तनीय था। वाइकाउन्ट हाल्डेन ने इस सम्बन्ध में यह कहा, "इंग्लैण्ड की विधि में कुछ सिद्धान्त मौलिक हैं। एक यह है कि केवल वही व्यक्ति जो किसी संविदा का पक्षकार होता है

---

[1] (1861) 121 इंग्लिश रिपोर्ट्स 762.

[2] ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 504 :[1970] 1 एस० सी० आर० 658: (1970) 1 एस० सी० जे० 347.

[3] (1915) ए० सी० 847.

उसके आधार पर वाद ला सकता है। हमारी विधि पर-व्यक्ति का अधिकार जैसी संविदा से उत्पन्न होने वाली किसी बात को नहीं जानती। ऐसा कोई अधिकार सम्पत्ति के द्वारा प्रदत्त किया जा सकता है जैसे, उदाहरण के रूप में, किसी न्यास के अन्तर्गत, किन्तु यह संविदा के प्रति किसी पर-व्यक्ति को प्रदत्त नहीं किया जा सकता कि वह एक अधिकार के रूप में किसी संविदा का व्यक्तितः पालन करा सके।

जो पर-व्यक्ति किसी संविदा का पक्षकार नहीं है, उस संविदा के आधार पर, वह न तो वाद संस्थित कर सकता है और न ही उसके विरुद्ध कोई वाद संस्थित किया जा सकता है, यह इंग्लिश और भारतीय दोनों ही विधियों का एक सामान्य नियम है जो अपने मूल में एक प्रक्रियात्मक नियम जिसका सम्बन्ध अधिकार से न होकर उपचार से है। अस्तु जहां कोई संविदा का गठन किसी पर-व्यक्ति के लाभ के लिए किया जाता है और जिसे कि उस संविदा के प्रवर्तन कराने का विधिसंगत हित प्राप्त है, तो वह पर-व्यक्ति संविदा के पक्षकार के नाम से ही अथवा उस पक्षकार से सम्मिलित होकर, अथवा उस पक्षकार द्वारा वाद संस्थित करने की अस्वीकृति पर उसे प्रतिवादी बनाकर, संविदा द्वारा सृष्ट अपने अधिकार का प्रवर्तन करा सकता है, अतः मूल रूप में, पर-व्यक्ति द्वारा वाद संस्थित किए जाने का अधिकार इस बात पर निर्भर करता है कि क्या उस व्यक्ति के प्रति उस संविदा द्वारा किसी वास्तविक हित की सृष्टि हो चुकी है, और यदि हो चुकी हो तो उसके हित को विधि का संरक्षण प्राप्त होगा। उन मामलों की बात ही और है जहां कि उस पर-व्यक्ति का कोई विधिसंगत हित सृष्ट ही न हुआ हो जैसे उपरोक्त डनलप न्यूमैटिक टायर कम्पनी बनाम सैलफ्रिज एण्ड कम्पनी[1] वाले मामले में, जहां कि वादी ने केवल वस्तुओं की कीमत को बनाए रखने के इस अधिकार का प्रवर्तन चाहा था जो कि जनता के लिए अहितकर था।

इसी प्रकार से यदि कोई व्यक्ति किसी संविदा द्वारा सृष्ट अपने हित का प्रवर्तन चाह कर अपने किसी न्याय संगत दायित्व से छूट पाने के लिए वाद संस्थित करना चाहे तो उसे वाद संस्थित करने का अधिकार नहीं होगा और वह किसी ऐसी संविदा में, जिस में वह पक्षकार नहीं है, निहित किसी छूट के खंड का आश्रय लेकर, अपने दायित्व से बच नहीं सकता।[2]

ख्वाजा मोहम्मद खान बनाम हुसैनी बेगम[3] वाले मामले में एक मुसलमान महिला ने अपने श्वसुर पर 'खर्चे पानदान' के भत्ते के 1,500 रुपये के बकाया की वसूली के लिए वाद चलाया जो उस महिला की अवयस्कता में, उसके श्वसुर और उसके पिता के मध्य 'खर्चे पानदान' के रूप में श्वसुर द्वारा 500 रुपये प्रतिमास देने के करार पर आधारित था। इस मामले में एक सुभिन्न तथ्य यह था कि इस खर्चे पानदान की राशि को किंचित अचल सम्पत्ति पर भार बना दिया गया था। प्रिवी कौन्सिल ने अपने निर्णय में इसे स्पष्टतः अभिव्यक्त किया कि ट्वीडिल बनाम एटकिंसन[4] वाले मामले में निर्धारित सिद्धान्त का भारत जैसे देश में लागू नहीं किया जाता जहां कि विवाह सम्बन्ध प्रायः वर और वधू के माता पिताओं द्वारा निश्चित किये जाते हैं। इस प्रकार, संविदा के पक्षकारों के अतिरिक्त किसी व्यक्ति को वाद चलाने का अधिकार न देने वाले सामान्य नियम का एक अपवाद यह भी है कि जहां किसी व्यक्ति के हित में किसी विनिर्दिष्ट अचल सम्पत्ति पर किसी भार की सृष्टि कर दी जाए तो ऐसी दशा में उस व्यक्ति को भी संविदा को प्रवर्तित कराने का अधिकार होगा, भले ही वह उस संविदा में प्रत्यक्षतः पक्षकार न हो।

---

[1] (1975) ए०सी० 847

[2] वैसविक बनाम वसविक, (1967) 35 डब्ल्यू० एल० आर० 932 (एच० एल०).

[3] 7 आई० सी० 237 : 37 इण्डियन अपील्स 152 (प्रिवीकांउंसिल)

[4] (1861) 121 इंग्लिश रिपोर्टस् 762.

नारायणी देवी बनाम **टैगोर कार्मशियल कारपोरेशन**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति रामेन्द्र मोहन दत्त ने उपरोक्त **ख्वाजा मोहम्मद** बनाम **हुसैनी बेगम** वाले मामले के निर्णय को लागू करते हुए यह अवधारण किया कि यदि किसी व्यक्ति ने अपने शेयर प्रतिवादियों को विक्रय करके शेयरों के धन पर उस व्यक्ति और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी को एक निश्चित मासिक राशि के संदाय का भार डाल दिया तो इससे पत्नी के हित में एक प्रकार के न्यास का निर्माण हो गया जिसके आधार पर पत्नी उस संविदा का प्रवर्तन कराने में सक्षम हो गई। **सुन्दर राजा** बनाम **लक्ष्मी अम्माल**[2] वाले मामले में एक अन्य अपवाद को मान्यता दी गई और यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि किसी सम्पत्ति के विभाजन अथवा किसी विवाह अथवा अन्य पारिवारिक व्यवस्था के निमित्त की गई संविदा में किसी पर-व्यक्ति को कोई धन संदत्त किया जाता हो, उस दशा में वह पर-व्यक्ति उस संविदा के आधार पर वाद ला सकता है जिसमें कि वह पक्षकार नहीं है।

यदि कोई व्यक्ति अन्य पक्षकारों द्वारा की हुई संविदा का तत्पश्चात् अनुसमर्थन कर दे तो ऐसी दशा में भी उसे उस संविदा को प्रवर्तित कराने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।[3] ऐसा अनुसमर्थन किसी व्यक्ति के आचरण, विबन्ध (एस्टापल) अथवा आंशिक संदाय के द्वारा माना जा सकता है।

प्रतिफल का वचनगृहीता द्वारा उद्भूत होना निजत्व के सिद्धान्त (डाक्ट्रिन ऑफ प्रिविटी) में समाहित है। **निजत्व के सिद्धान्त का मर्म यही है कि प्रतिफल** का संव्यवहार केवल वचनदाता **और वचनगृहीता के मध्य होना चाहिए और किसी पर-व्यक्ति का उस** संविदा के **प्रवर्तन** अथवा **उसके प्रतिफल से कोई सम्बन्ध नहीं है** जिसका अर्थ यही है कि प्रतिफल वचनगृहीता की वांछा पर उद्भूत होना चाहिए। जिन अपवादों की दशा में किसी संविदा के आधार पर किसी पर-व्यक्ति द्वारा वाद लाया जा सकता है, वे वस्तुत: निजत्व के सिद्धान्त के ही अपवाद हैं। किन्तु निजत्व के सिद्धान्त का यह अर्थ कदापि नहीं है कि संविदा का कोई पक्षकार किसी पर-व्यक्ति पर वाद ला ही न सके। कुछ विशेष परिस्थितियों में, विशेषत: **अन्यायपूर्ण धन लाभ** (अनजस्ट एनरिचमेण्ट) के निवारण के सिद्धान्त पर संविदा के किसी पक्षकार द्वारा किसी पर-व्यक्ति पर भी वाद लाया जा सकता है।

मोदी वनस्पति कम्पनी बनाम **कटिहार जूट मिल**[4] वाले मामले में कटिहार जूट मिल ने किसी भादुड़ी कम्पनी से कुछ मशीनें क्रय करने का करार किया और मूल्य का संदाय कर दिया। भादुड़ी कम्पनी ने किसी अन्य फर्म से उक्त मशीनें उपरोक्त जूट मिल को परिदान करने के लिए करार किया। इस प्रकार कम्पनी के माध्यम से उक्त फर्म को धन का संदाय हो गया तथा कम्पनी और फर्म के मध्य का करार केवल क्रेता जूट मिल के फायदे और सहायता के निमित्त रहा और क्रेता का आशय माल के प्रदान न हो जाने के समय तक फर्म को धन का संदाय करने का नहीं रहा था। माल का प्रदाय न होने पर, जूट मिल ने कम्पनी और फर्म दोनों पर धन की वापसी का वाद संस्थित किया। यह मान लेने पर भी कि जूट मिल और फर्म के मध्य संविदा का किसी प्रकार का निजत्व नहीं था यह अवधारित हुआ कि उपरोक्त अन्यायपूर्ण धन लाभ के निवारण के सिद्धान्त के बल पर फर्म के ऊपर जूट मिल को वह धन प्रतिसंदत्त करने की बाध्यता थी।

---

[1] ए० आई० आर० 1973 कलकत्ता 401.

[2] 24 आई० सी० 943.

[3] **कैवले बनाम ड्यूरेण्ट**, एल० आर० (1901) ए० सी० 240, 246.

[4] ए० आई० आर० 1969 कलकत्ता 496.

यहां यह स्मरण रखना होगा कि संविदा के पक्षकारों में से किसी पक्ष द्वारा करार करना कि वह किसी पर-व्यक्ति के साथ की गई अपनी वर्तमान संविदा का पालन करेगा, उन दो पक्षकारों के मध्य की गई संविदा के लिए उचित प्रतिफल माना जाएगा ।[1] क्योंकि यहां प्रतिफल स्पष्टत: वचन-गृहीता की वांछा पर उद्भूत हुआ है । यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिफल वचन दाता के लाभ के लिए ही हो । वह किसी के भी लाभ के लिए और कहीं से उद्भूत हो सकता है । आवश्यक इतना है कि वह वचनगृहीता की वांछा पर उद्भूत हो ।

(ix) निष्पादित और निष्पाद्य प्रतिफल---

प्रतिफल, निष्पादित और निष्पाद्य, दोनों प्रकार का हो सकता है । अधिनियम के निर्वचन खंड[2] में ही निष्पादित और निष्पाद्य प्रतिफल के प्रभेद को लक्ष्य किया गया है । जबकि वचनदाता की वांछा पर वचनगृहीता या अन्य व्यक्ति कुछ करता है या करने से प्रविरत रहता है तो ऐसा कार्य या प्रविरति निष्पादित प्रतिफल होता है, किन्तु जब वचनदाता की वांछा पर वचनगृहीता या अन्य व्यक्ति कुछ करने या करने से प्रविरत रहने का वचन देता है तो यह वचन निष्पाद्य प्रतिफल होता है । **निष्पादित प्रतिफल वर्तमान प्रतिफल होता है जबकि निष्पाद्य प्रतिफल में निष्पादन का वचन सन्निहित रहता है और इस कारण, यह भावी प्रतिफल होता है ।** जहां दोनों पक्षकारों ने अपने-अपने वचन का पालन कर दिया हो जैसा कि विक्रय की संविदाओं में, कीमत दे दी गई और वस्तु परिदत्त कर दी गई हो, वहां संविदा का पालन हो चुकता है और संविदा समाप्त हो जाती है । किन्तु जहां एक पक्ष ने अपने वचन का पूर्णत: पालन कर दिया है, जैसा कि माल के विक्रय में अन्य पक्ष द्वारा कीमत की राशि संदत्त करने के वचन पर एक पक्ष ने माल का विक्रय करके उसे अन्य पक्ष को परिदत्त भी कर दिया हो, वहां प्रतिफल निष्पादित होता है, यद्यपि कीमत की राशि का संदाय होने तक संविदा के एक पक्ष द्वारा पालन का दायित्व शेष रहता है । इसके विपरीत निष्पाद्य प्रतिफल की अवस्था में संविदा के पालन का दायित्व दोनों पक्षों की ओर शेष रहता है ।

भारत संघ बनाम मैसर्स चमन लाल[3] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने चिट्टी के 'ऑन काण्ट्रेक्ट्स'[4] ग्रन्थ से उद्धरण देकर इस प्रभेद को स्पष्ट किया है । निष्पादित प्रतिफल किसी वचन के प्रति किया हुआ कोई कार्य होता है । जब तक कोई कार्य किया नहीं जाता तब तक संविदा का गठन नहीं होता, जैसे रेल की यात्रा के टिकट के लिए धन का संदाय करना, किन्तु इस दशा में निबन्धित कृत्य स्वयं प्रतिफल को नि:शेष कर देता है, जिसके फलस्वरूप, यदि कोई पश्चात-वर्ती वचन किया जाए तो वह किसी नवीन प्रतिफल के अभाव में एक शून्य करार माना जाएगा । इस प्रकार निष्पादित प्रतिफल में दायित्व केवल एक पक्ष की ओर शेष रहता है और इसी कारण यह भावी प्रतिफल से भिन्न वर्तमान प्रतिफल माना जाता है । **निष्पाद्य प्रतिफल वाले मामलों में दायित्व दोनों पक्षों की ओर शेष रहता है और यह केवल वचन के बदले में दिया हुआ वचन मात्र होता है अर्थात् वचन के बदले वचन, प्राप्त किया जाता है और प्रत्येक पक्ष का वचन ही दूसरे पक्ष के लिए प्रतिफल होता है ।** वचनों के इस आदान-प्रदान से ही संविदा अस्तित्व-वान होकर बाध्यकारी हो जाती है ।

---

[1] इन्दरमल बनाम राम प्रसाद, ए० आई० आर० 1970 मध्य प्रदेश 40 (49).

[2] संविदा अधिनियम, धारा, 2 (घ).

[3] ए० आई० आर० 1957 एस० सी० 652, 655.

[4] 21वां संस्करण, जिल्द 1, पृ० 43-44.

व्यापार जगत में, सामान्य रूप से इसी प्रकार के प्रतिफल हुआ करते हैं। इस प्रभेद से यह स्पष्ट होता है कि संविदा के पक्षकारों में से कोई एक पक्ष संविदा के अपने भाग का, बिना किसी प्रतीक्षा के, तुरन्त पालन कर सकता है, जबकि दूसरा पक्ष, जो कि केवल वचन द्वारा प्रथम पक्ष द्वारा किये हुए या उस के द्वारा सहन किये गये अहित के लिए प्रतिफल की व्यवस्था करता है, संविदा के अपने भाग का पालन प्रथम पक्ष के साथ तत्काल न करके उसका पालन समयोपरान्त भी कर सकता है।

(X) भूतकालिक प्रतिफल—

प्रतिफल भूतकालिक भी हो सकता है। इंग्लिश विधि में भूतकालिक प्रतिफल की मान्यता नहीं है।[1] किन्तु भारतीय विधि में, भूतकालिक प्रतिफल को अभिव्यक्ततः प्रतिफल की परिभाषा में सम्मिलित किया गया है अर्थात् "जबकि वचन दाता की वांछा पर वचनगृहीता या अन्य कोई व्यक्ति कुछ कर चुका है या करने से प्रविरत रहा है, तब ऐसा कार्य या प्रविरति उस वचन के लिए प्रतिफल कहलाता है।"

भारतीय विधि में, भूतकालिक प्रतिफल को, निष्पादित और निष्पाद्य प्रतिफल के समकक्ष स्थान दिया गया है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(घ) में न केवल भूतकालिक प्रतिफल को मान्यता प्रदान की गई है वरन् इस अधिनियम की धारा 25 में जहां यह कहा गया है कि प्रतिफल के बिना किया गया करार शून्य है, वहां भी भूतकालिक प्रतिफल को एक अपवाद के रूप में परित्राण प्रदान किया गया है। धारा 25 के खंड (2) में यह कहा गया है कि यदि किसी ऐसे व्यक्ति को पूर्णतः या भागतः प्रतिकर देने के लिए वचन हो जिसने वचनदाता के लिए स्वेच्छया पहले ही कोई बात कर दी हो, अथवा एसी कोई बात कर दी हो जिसे करने के लिए वचनदाता वध रूप से विवश किए जाने का दायी था तो एसा वचन बिना प्रतिफल के भी शून्य करार नहीं माना जाएगा।

ऐसे भूतकालिक प्रतिफल को धारा 25(2) में दो शर्तों के आधार पर संरक्षण प्रदान किया गया है—प्रथम यह कि जिस व्यक्ति को पूर्णतः या भागतः प्रतिकर देने का वचन दिया गया हो, उस व्यक्ति द्वारा वचनदाता के प्रति किया हुआ भूतकालिक कार्य स्वेच्छया होना चाहिए। द्वितीय यह कि प्रतिकर देने का निश्चय वचन होने के कारण वचन दातामें भूतकालिक प्रतिफल का लाभ उठाते समय संविदा करने की सक्षमता होनी अनिवार्य है। उदाहरण के लिए यदि किसी अवयस्क ने ऋण लेकर बन्ध-पत्र निष्पादित कर दिया हो तथा प्राप्त वयता पर पुनः उसी ऋण के मूलधन और ब्याज के लिए नवीन बन्ध-पत्र लिख दिया हो तो वह अवयस्कता की अवधि में लिया गया ऋण, प्राप्त वयता पर, निष्पादित बन्ध-पत्र के लिए प्रतिफल नहीं माना जाएगा।[2] यह पृथक् बात है कि वचनदाता की अवयस्कता में उसके प्रति किया हुआ कार्य वचन दाता की प्राप्तवयता में भी चालू रखा गया हो। ऐसी दशा में वचनदाता की प्राप्त वयता में उसके प्रति किया गया कोई भूतकालिक कार्य उचित प्रतिफल माना जाएगा।

न्या० आर० एस० बछावत द्वारा, **द्वारमपूडि नागरतनम्बा बनाम कुनकू रामैया**[3] वाले मामले में दिए गये उच्चतम न्यायालय के निर्णय के पश्चात् इस विषय में अब कोई विवाद नहीं रह गया है कि **किसी व्यक्ति का किसी स्त्री के साथ भूतकालिक सहवास, उस व्यक्ति द्वारा उस स्त्री के पक्ष में किये गए संपत्ति**

---

[1] रास कोर्ला बनाम थॉमस, (1842) 114 इंग्लिश रिपोर्टर्स् 496.

[2] वीरपाक्षप्पा बनाम मुनीयप्पा, 2 बाम्बे लॉ रिपोर्टर 69.

[3] ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 253 (254.)

के अन्तरण के लिए उचित प्रतिफल है। उच्चतम न्यायालय ने अपने उपरोक्त निर्णय में मुसम्मात बालो बनाम मुसम्मात पार्वती[1] वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा किए गए इस अवधारणा का भी अनुमोदन किया है कि भूतकालिक सहवास के प्रतिफल का औचित्य किसी भी भांति सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 6(ज) के उपबन्धों से क्षत नहीं होता जिसके फलस्वरूप इस्ताक काम बनाम रन छोड जिप्रू[2] वाले मामले में बम्बई उच्च न्यायालय की यह अवधारणा कि भूतकालिक अनैतिक सहवास के प्रतिफल में किसी व्यक्ति द्वारा किसी स्त्री के पक्ष में किया हुआ सम्पत्ति का दान अविधिमान्य है, उलट दी गई। सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 6(ज) का एक उपबन्ध यह है कि कोई भी अन्तरण जो भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 23 के अर्थ के अन्तर्गत किसी विधिविरुद्ध उद्देश्य या प्रतिफल के लिए हो, नहीं किया जा सकता। उपरोक्त द्वारमपुडि नागरत्नम्बा वाले मामले में दिए गए उच्चतम न्यायालय के निर्णय से स्पष्ट है कि सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 6(ज) का प्रतिषेध वर्तमान अथवा भावी प्रतिफल पर लागू होता है न कि भूतकालिक प्रतिफल पर।

(xi) प्रविरति से उद्भूत प्रतिफल—

न केवल किसी कार्य को करने के द्वारा वरन् किसी कार्य को करने से प्रविरत रहने से भी प्रतिफल उदभूत हो सकता है। स्वयं प्रस्थापना की परिभाषा करते समय ही, संविदा अधिनियम में[3] इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया गया है। जबकि एक व्यक्ति किसी बात को करने या करने से प्रविरत रहने की अपनी रजामन्दी किसी अन्य को, उस अन्य की अनुमति अभिप्राप्त करने की दृष्टि से, संज्ञापित करता है, तभी प्रस्थापना का निर्माण हो जाता है। इसी प्रकार वह अन्य व्यक्ति भी, उस प्रथम व्यक्ति के द्वारा प्रस्थापित किसी कार्य को करने या करने से, प्रविरत रहने की किसी भी अवस्था के प्रति अपनी अनुमति संज्ञापित कर सकता है। किसी ऋणी की वांछा पर, ऋणदाता द्वारा, ऋण की वसूली के लिए वाद संस्थित करने से प्रविरत रहने का वचन, उचित प्रतिफल है।[4] इस प्रकार की प्रविरति, यदि शब्दों में, अभिव्यक्त न हो तो भी उसका अनुमान किसी मामले की परिस्थितियों से किया जा सकता है।[5] वाद संस्थित करने से प्रविरत रहने के ऐसे वचन की स्पष्ट अभिव्यक्ति के अभाव में भी, यदि कुछ अवधि के लिए ऐसी प्रविरति प्रकट हो रही है, तो भी यह प्रतिफल मानी जा सकती है।[6] किसी पत्नी का वाद संस्थित करने से प्रविरत रहना, पति द्वारा उसे भत्ता देने के लिए, प्रर्याप्त प्रतिफल है।[7] इसी प्रकार किसी किराएदार को भवन रिक्त करने के लिए दी गई अवधि के प्रतिफल में किराएदार द्वारा निष्कासन की डिक्री की अपील न करने का वचन विधिमान्य प्रतिफल के आधार पर है।[8]

इस संबंध में यह तथ्य ध्यातव्य है कि जिस कार्य से प्रविरत रहने की प्रस्थापना या वचन है, वह कार्य कोई अस्तित्ववान विधिक अधिकार होना चाहिए, जैसे किसी न्यायालय में संस्थित किसी वाद या अपील का प्रत्याहरण या किसी कार्य की वैधता के प्रति किये गये आक्षेप का प्रत्याहरण, आदि ऐसे अधिकार

[1] आई० एल० आर० (1940) इलाहाबाद 371 : ए० आई० आर० 1940 इलाहाबाद 385.

[2] आई० एल० आर० (1947) मुम्बई, 206 : ए० आई० आर० 1947 मुम्बई 198.

[3] धारा 2(क).

[4] लक्ष्मनन बनाम बोम्माची, 32 आई० सी० 416.

[5] अनन्त बनाम सरस्वती, 30 बाम्बे लॉ रिपोर्टर 709.

[6] एलायन्स बैंक बनाम ब्रूम, (1864), 62 इंग्लिश रिपोर्ट्स 631; फुलटर्न बनाम प्रोविंशियल बैंक ऑफ आयरलैण्ड, एल० आर० (1903) ए० सी० 309.

[7] देवी बनाम राम, ए० आई० आर० 1941 पटना 282.

[8] केदारनाथ बनाम सीताराम, ए० आई० आर० 1969 मुम्बई 221.

हैं, जिनका त्याग उचित प्रतिफल माना जा सकता है, किन्तु अस्तित्ववान विधिक दायित्व को निर्वाह कर देने का वचन प्रतिफल नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिए, यदि न्यायालय अथवा अन्य किसी न्यायिक अधिकारी के समन पर उपस्थित होकर साक्ष्य देने का किसी व्यक्ति का विधिक कर्त्तव्य है तो मात्र उस कर्त्तव्य के निर्वाह के लिए किया हुआ कार्य प्रतिफल नहीं माना जा सकता।[1] किन्तु विधिक कर्त्तव्य किस प्रकार और किन दशाओं में उत्पन्न होता है, इस विषय में न्यायालयों ने प्रभेद किया है। किसी चोर की गिरफ्तारी के लिए 50 पौंड के पुरस्कार की घोषणा की गई थी। एक कान्स्टेबिल की सूचना के आधार पर उस चोर की गिरफ्तारी और दोषसिद्धि हो गई। कान्स्टेबिल द्वारा 50 पौंड का दावा करने पर यही तर्क दिया गया है कि अपराधी की गिरफ्तारी करना कान्स्टेबिल का विधिक कर्त्तव्य होने के कारण, वह उस पुरस्कार को प्रतिफल के रूप में नहीं ले सकता था किन्तु मुख्य न्यायाधीश लार्ड डैनमन ने इसे प्रतिफल मानते हुए कहा कि ऐसे अनेक कर्त्तव्यों की कल्पना की जा सकती है जिनका निर्वाह करने की किसी कान्स्टेबिल पर कोई वास्तविक बाध्यता न हो।[2]

(xii) प्रतिफल की यथायोग्यता—

प्रतिफल का यथायोग्य होना आवश्यक नहीं है। यह विषय, संविदा अधिनियम की धारा 25 के स्पष्टीकरण 2 से भलीभांति स्पष्ट हो जाता है। उक्त स्पष्टीकरण में कहा गया है कि कोई करार, जिसके लिए वचनदाता की सम्मति स्वतंत्रता से दी गई है, केवल इस कारण शून्य नहीं है कि प्रतिफल अपर्याप्त है, किन्तु इस प्रश्न को अवधारित करने में कि वचनदाता की सम्मति स्वतंत्रता से ली गई थी या नहीं, प्रतिफल की अपर्याप्तता, न्यायालय द्वारा गणना में ली जा सकेगी। इस सिद्धान्त को अधिक स्पष्ट करने के लिए दो दृष्टान्त भी दिए गए हैं, जो इस प्रकार हैं —

(1) क. 1,000 रुपये के मूल्य के घोड़े को 10 रुपये में बेचने का करार करता है। इस करार के लिए क की सम्मति स्वतंत्रता से दी गई थी। प्रतिफल अपर्याप्त होते हुए भी, यह करार संविदा है।

(2) क. 1,000 रुपये के मूल्य के घोड़े को 10 रुपये में बेचने का करार करता है। क इससे इन्कार करता है कि इस करार के लिए उसकी सम्मति स्वतंत्रता से दी गई थी। प्रतिफल की अपर्याप्तता ऐसा तथ्य है जिसे न्यायालय को यह विचार करने में गणना में लेना चाहिए कि क की सम्मति स्वतंत्रता से दी गई थी या नहीं।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20 के प्रथम स्पष्टीकरण से भी यह स्पष्ट है कि प्रतिफल की अपर्याप्तता के कारण संविदा का विनिर्दिष्ट पालन अस्वीकार नहीं किया जा सकता।[3] किन्तु अपर्याप्तता यदि इस प्रकार की है जो वास्तव में त्रासदायक प्रतीत हो या जिससे कपट के साक्ष्य का आधार बनता हो तो ऐसी दशा में उसे प्रतिफल नहीं माना जा सकता। प्रतिफल की अपर्याप्तता का यदि अन्य ऐसी परिस्थितियों से संयोग हो, जैसे कि दी जाने वाली सम्पत्ति के वास्तविक मूल्य का दुराव, दुर्व्यपदेशन, कपट, असम्यक् असर, धन की महान और तात्कालिक आवश्यकता, मस्तिष्क की दुर्बलता या अज्ञान, तो ऐसी दशा में प्रतिफल की अपर्याप्तता पर यह अवधारित करने के लिए कि संविदा शून्य है अथवा नहीं, सम्यक् विचार किया जा सकता है।[4]

---

[1] कालिंस बनाम कोडफ्राय, (1831) 109 इंग्लिश रिपोर्ट्स 1040.

[2] इंग्लैण्ड बनाम डेविडसन, (1840) 113 इंग्लिश रिपोर्टस् 640.

[3] लालजी बनाम रामजी, ए० आई० आर० 1978 इलाहाबाद 212.

[4] केदारी बनाम आत्माराम भट, 3 बाम्बे हाई कोर्ट रिपोर्टस्, 11.

(ङ) करार —

(1) करार और प्रतिफल

अधिनियम में करार का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि हर एक वचन और ऐसे वचनों का हर एक संवर्ग जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल हो, करार है।[1] निर्वचन खंड की इस अभिव्यक्ति को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, यथा —

1. हर एक वचन करार है, तथा
2. वचनों का हर एक संवर्ग, जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल हो, करार है।

जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल हो यह अभिव्यक्ति वचनों का हर एक संवर्ग इस अभिव्यक्ति को विशेषित करती है न कि हर एक वचन को। इससे सिद्ध होता है कि हर एक वचन स्वयं में एक करार है, भले ही ऐसा करार किसी प्रकार के प्रतिफल से समर्थित न हो, किन्तु जहां वचनों का संवर्ग हो वहां यह आवश्यक है कि ऐसे वचन, एक दूसरे के लिए प्रतिफल हों। किसी करार के लिए प्रतिफल का होना आवश्यक नहीं है, यह बात संविदा अधिनियम की धारा 10 तथा धारा 25 से भी भलीभांति स्पष्ट होती है।[2]

अधिनियम की धारा 10 में कहा गया है कि सब करार संविदाएं हैं, यदि वे संविदा करने के लिए सक्षम पक्षकारों की स्वतंत्र सम्मति से किसी विधिपूर्ण प्रतिफल के लिए और किसी विधिपूर्ण उद्देश्य से किए गए हैं और जो इस अधिनियम द्वारा अभिव्यक्ततः शून्य घोषित नहीं किए गए हैं। धारा 25 में जहां यह कहा गया है कि प्रतिफल के बिना किया गया करार शून्य है वहां भी तीन अपवादों की गणना की गई है। वे तीन अपवाद ये हैं— 1. जबकि ऐसा करार लिखित तथा रजिस्ट्रीकृत और नैसर्गिक स्नेह और प्रेम के कारण किया गया हो, 2. जबकि ऐसा करार पहले ही किसी की हुई बात के लिए अथवा ऐसी बात के लिए, जिसे करने के लिए वचनदाता वैध रूप से विवश किए जाने का दायी था, प्रतिकर देने का वचन हो, अथवा 3. परिसीमा विधि वारित किसी ऋण के संदाय का लिखित और हस्ताक्षरित वचन है। अतः यद्यपि करार के लिए किसी प्रतिफल का होना अनिवार्य नहीं है।[3] तथापि ऐसा करार जो, उपरोक्त तीन अपवादों के सिवाय, बिना प्रतिफल, केवल स्वेच्छया हो अथवा आनुग्रहिक आशय की अभिव्यक्ति मात्र हो, एक शून्य करार है जिसे कि विधि अथवा साम्या के अन्तर्गत प्रवर्तनीय नहीं माना जा सकता।[4]

करार का गठन वचन से होता है और वचन के लिए वचनदाता और वचनगृहीता, इन दो पक्षों का अस्तित्व आवश्यक है। अतः जब किसी संव्यवहार के क्रम में दो पक्ष किसी एक अनुबन्ध पर वचनबद्ध हो चुके हों तो फिर किसी एक पक्ष द्वारा उस अनुबन्ध में दूसरे पक्ष की सहमति के बिना हेरफेर नहीं किया जा सकता; हां यह बात पृथक् है कि अनुबन्ध की शर्तों में अथवा संविदा पर लागू होने वाले नियमों में अभिव्यक्ततः यह उपबन्ध किया गया हो कि संविदा की किसी शर्त में किसी एक पक्ष द्वारा हेरफेर किया जा सकता है।

[देखिए—आन्ध्र प्रदेश राज्य बनाम मैसर्स पायनियर कन्स्ट्रक्शन कम्पनी[5]]

---

[1] धारा 2(ङ).

[2] आबाजी बनाम त्रयम्बक, ए० आई० आर० 1928 मुम्बई 66, 72.

[3] सरोज बनाम ज्ञानोदा, ए० आई० आर० 1932 कलकत्ता 720.

[4] विल्सन बनाम हारी, 183 आई० सी० 78.

[5] ए० आई० आर० 1978 आन्ध्र प्रदेश 281.

(2) करार और संविदा --

प्रतिफल के बिना करार तो हो सकता है किन्तु जो करार बिना किसी प्रतिफल के किया गया है वह करार उपरोक्त तीन अपवादित अवस्थाओं के सिवाय संविदा की श्रेणी में नहीं आ सकता, जिसका यह अर्थ है कि प्रत्येक संविदा करार तो है किन्तु प्रत्येक करार संविदा नहीं है क्योंकि संविदा प्रवर्तनीय करार का ही एक विधिक नाम है और प्रतिफल के बिना किया हुआ करार प्रवर्तनीय न होने के कारण संविदा नहीं है। इसी प्रकार वे करार भी जो कि संविदा करने के लिए अक्षम व्यक्तियों द्वारा अथवा सक्षम व्यक्तियों द्वारा किन्तु उनकी स्वतन्त्र सम्मति के बिना किए गए हैं अथवा जिनका प्रतिफल या उद्देश्य विधिपूर्ण नहीं है करार तो हैं किन्तु वे सब संविदायें किसी प्रकार नहीं हैं।

(च) व्यतिकारी वचन और पारस्परिकता का भाव--

वे वचन जो एक दूसरे कि लिए प्रतिफल या प्रतिफल का भाग हैं, व्यतिकारी वचन कहलाते हैं। सामान्य भाषा में व्यतिकारी वचनों को पारस्परिक या आपसी वचन कहा जा सकता है। व्यतिकारी वचनों में एक व्यक्ति का वचन दूसरे के वचन का प्रतिफल या प्रतिफल का कोई भाग होता है। पारस्परिकता का अभाव या अन्य कोई ऐसा ही कारण उपस्थित हो, तभी ऐसे वचन निरर्थक माने जा सकते हैं अन्यथा ऐसे वचन संविदा के गठन के लिए यथेष्ठ हैं।[1] व्यतिकारी वचनों की उपरोक्त व्याख्या में पारस्परिकता की अनिवार्यता की प्रतिपादना कुछ व्यापक शब्दों में की गई है किन्तु इसका सामान्य अर्थ उन संविदाओं से है जहां प्रत्येक पक्ष प्रतिफल पर निर्भर कर सके। वैसे तो बाध्यकारी होने के लिए प्रत्येक संविदा में ही पारस्परिकता का भाव अनिवार्य है और यह सत्य भी है क्योंकि दो पक्षों की पारस्परिकता के अभाव में किसी संविदा का गठन ही असम्भव है और इसीलिए 'वचनदाता' और 'वचनगृहीता' इन दो पक्षों की पारस्परिकता तो निःसन्देह अपरिहार्य है तथापि उपरोक्त व्याख्या से यह स्पष्ट है कि ऐसी पारस्परिकता का लक्ष्य केवल प्रतिफल को उदभत करना है अतः पारस्परिकता यदि इस प्रकार की हो जहां कि पक्षकारों में से किसी एक के लिए किसी विधिमान्य और उपलभ्य प्रतिफल की संरचना की सम्भावना ही न हो उस स्थिति में वह संविदा उस पक्षकार पर बाध्यकारी नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति ने क के साथ दो वर्ष तक रह कर किसी उद्योग की शिक्षा लेने का करार किया तो यह करार क द्वारा शिक्षा देने के वचन के अभाव में बाध्यकारी नहीं होगा।[2] इससे यह सिद्ध होता है कि वचन का प्रतिफल कोई भौतिक मूल्य न होकर केवल वचन भी हो सकता है किन्तु वचन का अर्थ कोरा वचन कभी नहीं होता वरन् किसी भी वचन की अन्तर्वस्तु प्रस्थापना होती है जिसमें कि किसी कार्य को करने या करने से प्रविरत रहने की रजामन्दी अनिवार्यतः होती है। प्रत्येक वचन किसी कार्य को करने या करने से प्रविरत रहने का वचन होता है और उस कार्य को करने या करने से प्रविरत रहने की प्रथम पक्ष की रजामन्दी और उसी बात के लिए दूसरे पक्ष की अनुमति ये दो बातें ही किसी वचन की बाध्यता का कारण होती हैं। संविदा में पारस्परिकता का यही अर्थ है। अतः यदि एक व्यक्ति दूसरे की अनन्यतः सेवा में रहने का करार करे तो जब तक वह दूसरा व्यक्ति भी उस व्यक्ति की सेवा ग्रहण करने का वचन न दे तब तक यह करार शून्य होगा[3] क्योंकि इस करार में पारस्परिकता का भाव विद्यमान नहीं है।

---

[1] बुट्टन बनाम सैन्टकिल सेकर्स कं०, 10लॉ टाइम्स 411.

[2] लीज बनाम व्हिटकाम्ब, 5 बिघम्स रिपोर्ट्स 34.

[3] साइक्स बनाम, डिक्सन एल० जे० 8 क्यू० बी० 102.

पारस्परिकता के भाव की विद्यमानता के लिए जो समय सुसंगत माना गया है वह समय संविदा के गठन का समय है न कि संविदा के पालन का। **पारस्परिकता का भाव संविदा के गठन के समय विद्यमान होना चाहिए।**[1]

(छ) शून्य करार--

वह करार जो विधितः प्रवर्तनीय न हो शून्य करार कहलाता है। यदि करार शून्य है तो वह करार होते हुए भी संविदा नहीं है क्योंकि विधितः प्रवर्तनीय करार ही संविदा कहा जाता है अतः प्रत्येक संविदा करार तो है किन्तु प्रत्येक करार संविदा नहीं है क्योंकि किसी भी करार में वे सब अथवा कोई ऐसी अवस्था विद्यमान रह सकती है जो उसे विधितः प्रवर्तनीय न होने दे और अपनी अप्रवर्तनीय दशा के कारण ही कोई करार संविदा की श्रेणी में आने से अपवर्जित है। जो करार विधितः अप्रवर्तनीय हो संविदा नहीं है ऐसा न कह कर संविदा अधिनियम के निर्वचन खंड में इस कथन को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है कि **वह करार जो विधितः प्रवर्तनीय न हो शून्य कहलाता है।**[2] इस कथन का विशेष कारण है।

(ज) करारों की शून्यता और प्रवर्तनीयता में भेद--

संविदा विधि में शून्यता और प्रवर्तनीयता में प्रभेद किया गया है अतः **करारों की शून्यता और प्रवर्तनीयता एक दूसरे के न पर्यायवाची हैं और न ही ये परस्पर समविस्तीर्ण हैं।** यह आवश्यक नहीं है कि वे सब करार जो शून्य नहीं हैं, वास्तव में प्रवर्तनीय हैं ही। कोई करार शून्य न होते हुए भी अप्रवर्तनीय हो सकता और कोई करार अप्रवर्तनीय है इसका यह अर्थ भी नहीं है कि वह करार शून्य ही है। संविदा अधिनियम की धारा 20 और धारा 24 से 30 पर्यन्त धाराएं और धारा 36 में उन करारों की गणना की गई हैं जो शून्य हैं। अतः वे धारा 2(घ) के अनुसार, प्रवर्तनीय नहीं हैं। अतः **करार जो विधितः प्रवर्तनीय न हो शून्य कहलाता है** यह अभिव्यक्ति एक निश्चयात्मक प्राख्यान के रूप में प्रयुक्त हुई है जबकि इसी का नकारात्मक प्राख्यान यह होगा कि वह करार, जो शून्य है, विधितः प्रवर्तनीय नहीं है। यहां तक इस अभिव्यक्ति का एक सीमित अर्थ है, सीमित इस दृष्टि से कि जो करार शून्य नहीं हैं, उनका भी संविदा की कोटि तक पहुंचना आवश्यक नहीं है। कोई करार शून्य न होते हुए भी उन पक्षकारों के मध्य हो सकता है जो संविदा करने के लिए सक्षम न हों अथवा यदि सक्षम हों तो, उनमें से किसी की सम्मति स्वतन्त्र न रही हो अथवा, यदि सम्मति स्वतंत्र भी रही हो तो दोनों पक्ष करार के लिए आवश्यक, किसी मर्मभूत तथ्य की भूल कर रहे हों, और इन सब दशाओं में, वह करार शून्य न होते हुए भी संविदा अधिनियम की धारा 10 के अन्तर्गत संविदा की श्रेणी में नहीं आएगा जिसके परिणामस्वरूप वह करार प्रवर्तनीय नहीं होगा क्योंकि **जो करार प्रवर्तनीय है वही संविदा है और जो संविदा है वही प्रवर्तनीय करार है।**

(झ) संविदा --

वह करार जो विधितः प्रवर्तनीय हो, संविदा है। प्रवर्तनीयता से तात्पर्य विधितः प्रवर्तनीयता है। यदि पक्षकार संविदा का स्वतः पालन न करें तो उसकी प्रवर्तनीयता केवल विधिक उपचारों पर ही निर्भर करती है। संविदा अधिनियम की धारा 20 तथा 24 से 30 पर्यन्त धारा तथा धाराएं 36 ऐसे करारों का उल्लेख करती हैं जो शून्य हैं, अर्थात् वे वस्तुतः करार तो हैं किन्तु करार होते हुए भी उनका प्रभाव कुछ नहीं है। स्थापना प्रतिफल और वचन के संयोग से किन्हीं भी दो पक्षकारों का पारस्परिक समझौता करार तो हो जाएगा किन्तु करार होकर भी वह प्रभावी और बाध्यकारी हो सके यह आवश्यक नहीं है। जो करार प्रभावी

---

[1] रामचन्द्र बनाम आयशा बेगम, ए० आई० आर० 1969 मद्रास 470.

[2] संविदा अधिनियम, धारा 2 (छ).

अथवा बाध्यकारी नहीं है, वह करार प्रवर्तनीय भी नहीं है क्योंकि करार की बाध्यकारिता ही उसका प्रभाव या प्रवर्तनीयता है। **प्रवर्तनीयता ही वह व्यावर्तक लक्षण हैं, जो संविदा और करार में प्रभेद करता है।** इस व्यावर्तक गुण के लोप हो जाने पर करार और संविदा में भेद करना ही असम्भव है। इस व्यावर्तक लक्षण के कारण ही यह कहना संभव है कि प्रत्येक संविदा करार होता है किन्तु प्रत्येक करार संविदा नहीं हो सकता। अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संविदा एक प्रवर्तनीय करार है।

संविदा अधिनियम की धारा 10 के प्रारंभ में जो यह कहा गया है कि सब करार संविदायें हैं उसका यही अर्थ है कि सब करार प्रवर्तनीय हैं, यदि वे उस धारा में उल्लिखित शर्तों को पूरा करते हों। अतः धारा 10 की विषय वस्तु उन लक्षणों का वर्णन करती है जिनके कारण करार प्रवर्तनीय होकर संविदा बन जाता है। निर्वचन खंड में केवल यह कहा गया है कि वह करार जो विधितः प्रवर्तनीय हो, संविदा है, किन्तु प्रवर्तनीयता क्या है, इसकी व्याख्या निर्वचन खंड में नहीं है। प्रवर्तनीयता के लक्षणों के वर्णन के लिए ही संविदा अधिनियम की धारा 10 का निर्माण हुआ है। धारा 10 वस्तुतः किसी करार में उन व्यावर्तक गुणों का आरोप करती है जिनके संयोग से कोई करार संविदा बन जाता है। ऐसे लक्षण एक न होकर अनेक हैं और इसी कारण निर्वचन खंड में उन सबका उल्लेख समीचीन नहीं समझा गया। प्रवर्तनीयता के लक्षणों के वर्णन के क्रम में, धारा 10 में, यह आशयित है कि केवल वे करार प्रवर्तनीय हैं जो—

(1) संविदा करने के लिए सक्षम पक्षकारों के मध्य हुए हैं, और
(2) उन सक्षम पक्षकारों की उस करार के लिए स्वतंत्र सम्मति प्राप्त हुई है, और
(3) उपरोक्त स्वतंत्र सम्मति विधिपूर्ण प्रतिफल के लिए प्राप्त हुई है, और
(4) स्वयं वह करार किसी विधिपूर्ण उद्देश्य से किया गया है और साथ ही,
(5) संविदा अधिनियम द्वारा अभिव्यक्ततः शून्य घोषित नहीं किये गए हैं।

इनमें से किसी एक लक्षण के लुप्त होते ही करार प्रवर्तनीयता की दशा से हीन हो जाता है अर्थात् जिस करार में इनमें से किसी एक लक्षण का भी अभाव है तो वह संविदा नहीं है। इसके पश्चात् धारा 11 में पक्षकारों की सक्षमता का परिचय दिया गया है और तत्पश्चात् संविदा अधिनियम के सम्पूर्ण अध्याय 2 में पक्षकारों की सक्षमता उनकी सम्मति के लक्षण, प्रतिफल और उद्देश्य की विधिपूर्णता और उन करारों का जिन्हें कि अधिनियम ने अभिव्यक्ततः शून्य घोषित किया है, विषद् विवेचन है। इस विषद् विवेचन का समावेश निर्वचन खंड में सम्भव नहीं हो सकता था, अतः वहां यही कहना पर्याप्त समझा गया कि वह करार जो विधितः प्रवर्तनीय है, संविदा है। निर्वचन खंड में प्रवर्तनीयता की व्याख्या न होने से ही यह स्पष्ट है कि विधायकों का उद्देश्य, प्रवर्तनीयता की व्याख्या, इस अधिनियम में, अन्यत्र करने का रहा है।

इस प्रकार निर्वचन खंड[1] में **संविदा की जो परिभाषा दी गई है, वह अन्य अनेक तत्वों से सापेक्ष है।** प्रथम तो यह परिभाषा कि वह करार जो विधितः प्रवर्तनीय हो, संविदा है वस्तुतः उन समस्त संघटकों की परिभाषा का परिणाम है जो किसी संविदा की संरचना में अवयव बने हुए हैं, तथा द्वितीय, यह कि इतना होने पर भी, प्रवर्तनीयता का एक पूरक विषय और शेष रहता है जिसे जाने बिना संविदा का सम्पूर्ण स्वरूप नहीं समझा जा सकता। **यदि उन सब संघटक तत्वों, जैसे प्रस्थापना, उसका प्रतिग्रहण, वचन, वचनदाता, वचनगृहीता, प्रतिफल और करार, की प्रकृति को आत्मसात कर लिया जाए, और इसके पश्चात् प्रवर्तनीयता के प्रांगण का पूर्ण परिभ्रमण कर लिया जाए, तब कहीं संविदा का**

---

1. संविदा अधिनियम, धारा 2 (ज).

विधिक व्यास स्पष्ट हो सकेगा। वैसे संविदा के संघटक तत्वों के विवरण और करारों की प्रवर्तनीयता के विषय का सार-संक्षेप लिया जाए तो संविदा के निम्न आवश्यक तत्व सिद्ध होते हैं —

(1) एक प्रस्थापना और उसका प्रतिग्रहण,

(2) विधिक संबंधों के निर्माण का आशय,

(3) प्रतिफल और उद्देश्य की विधिपूर्णता,

(4) पक्षकारों की सक्षमता,

(5) स्वतंत्र सम्मति और विषय-वस्तु का एक ही अर्थ में बोध,

(6) निश्चयता,

(7) पालन की सम्भाव्यता,

(8) ऐसा करार जो शून्य घोषित न किया गया हो और यदि विधितः आवश्यक हो तो वह लिखित और रजिस्ट्रीकृत भी हो।

(त्र) शून्यकरणीय संविदा —

वह करार, जो उसके पक्षकारों में से एक या अधिक के विकल्प पर तो विधि द्वारा प्रवर्तनीय हो किन्तु अन्य पक्षकार या पक्षकारों के विकल्प पर नहीं, शून्यकरणीय संविदा है। **शून्यकरणीय संविदा वह संविदा है जो आद्यतः शून्य नहीं होती किन्तु परिस्थितिवश उसे कोई एक पक्ष शून्य कर सकता है।** उदाहरण के लिए, संविदा के लिए, आवश्यक है कि इसमें पक्षकारों की स्वतंत्र सम्मति हो। मान लीजिए इन पक्षकारों में से किसी भी एक की सम्मति स्वतंत्र नहीं है अर्थात् वह सम्मति, कपट, दुर्व्यपदेशन अथवा असम्यक असर द्वारा प्राप्त की गई है तो यह संविदा उस व्यक्ति के विकल्प पर ही प्रवर्तनीय है जिसकी सम्मति अनुचित रूप में प्राप्त की गई है। यह संविदा उस पक्ष के विकल्प पर प्रवर्तनीय नहीं है जिसने इस प्रकार उस दूसरे पक्ष को सम्मति अनुचित रूप से प्राप्त कर ली है क्योंकि जिसकी सम्मति इस प्रकार अनुचित रूप से प्राप्त की गई है, उसे अधिकार है कि वह उस संविदा को चाहे तो शून्य कर दे और चाहे तो उसे प्रवर्तनीय बना रहने दे और स्वयं भी उससे बाध्य रहे। इसी प्रकार जहां किसी एक पक्षकार से संविदा के पालन में चूक हो जाए तो दूसरा पक्षकार अपने विकल्प पर उस संविदा को विखंडित करके उसे शून्य कर सकता है। इस प्रकार **संविदा जिस पक्ष के विकल्प पर प्रवर्तनीय रहती है उसी के विकल्प पर उसका शून्य करना भी है।**

विकल्प **पर प्रवर्तनीय नहीं है,** इस अभिव्यक्ति का अर्थ केवल यह है कि कोई एक पक्ष चाह कर भी दूसरे पक्ष की सहमति के बिना उस संविदा का प्रवर्तन करा सके क्योंकि दूसरा पक्ष, जिसे उस संविदा को शून्य करने का अधिकार है उसका प्रथम पक्ष द्वारा प्रवर्तन चाहे जाने पर भी, अपने विकल्प द्वारा, उसे शून्य कर सकता है। निष्कर्ष यह है कि **शून्यकरणीय संविदा जब तक शून्य न कर दी जाए तब तक विधिमान्य रहती है।**[1] यह भी स्पष्ट है कि शून्यकरणीय संविदा, शून्य कर दिये जाने के पश्चात् शून्य हो जाती है और फिर वह किसी भी पक्ष द्वारा प्रवर्तनीय नहीं रहती। शून्य करने के पश्चात्, यदि शून्य कर देने वाला पक्षकार भी चाहे तो वह संविदा फिर पुनः प्रवर्तनीय नहीं हो सकती। हां, यदि वे पक्षकार चाहें तो, पुनः एक नवीन संविदा कर सकते हैं।

---

[1] रीस ग्रार० एस० माइनिंग कम्पनी **बनाम** स्मिथ, एल० ग्रार० 4 एच० एल० 64.

(ट) संविदा जो शून्य हो जाए —

जो संविदा विधितः प्रवर्तनीय नहीं रह जाती वह तब शून्य हो जाती है जब वह प्रवर्तनीय नहीं रह जाती। शून्यकरणीय संविदायें, शून्य कर दिये जाने के पश्चात्, प्रवर्तनीय नहीं रह जातीं। अतः वे भी इस कोटि की संविदायें हैं जो शून्य हो जाएं।

जो संविदा विधितः प्रवर्तनीय नहीं रह जाती इस कथन का अर्थ यह है कि वे संविदायें जो आद्यतः अप्रवर्तनीय नहीं थीं किन्तु पश्चात्वर्ती घटनाओं के कारण, अप्रवर्तनीय हो गईं। अतः **विधितः प्रवर्तनीय न रह जाने वाली संविदाओं की कोटि में न केवल वे संविदायें सम्मिलित हैं जिन्हें किसी पक्ष ने अपने उपलब्ध विकल्प पर शून्य कर दिया हो, वरन् वे भी हैं जो पक्षकारों के विकल्प के प्रयोग के कारण शून्य न होकर किन्हीं अन्य परिस्थितियों के कारण प्रवर्तनीय नहीं रह जातीं।** अधिनियम की धारा 56 में ऐसी संविदाओं के विषय में उपबन्ध है जो करार में अनुध्यात कार्य के असम्भव हो जाने से या पश्चात्वर्ती किसी अधिनियमिति के कारण अप्रवर्तनीय हो जाएं। इसी प्रकार धारा 32 में ऐसा उपबन्ध है कि यदि कोई करार किसी भावी अनिश्चित घटना पर आश्रित हो और वह घटना असम्भव हो जाए तो वह करार भी उस समय शून्य हो जाता है। **संविदा जो शून्य हो जाए,** अर्थात् इन्हीं शब्दों का प्रयोग संविदा अधिनियम की धारा 65 में **कोई संविदा शून्य हो जाए** ऐसा कह कर किया है। इन दोनों शब्दावलियों से ही यह स्पष्ट होता है कि संविदा विधि में, आद्यतः शून्य हो जाने वाली संविदाओं में प्रभेद किया गया है। जो करार आद्यतः शून्य है, वे तो किसी भी समय संविदा हैं ही नहीं और वे किसी भी समय प्रवर्तनीय नहीं हैं, भले ही पक्षकारों को संविदा करते समय यह विदित न हो पाया हो कि जो संविदा वे कर रहे हैं, एक शून्य करार है। इसके विपरीत वे करार जो आद्यतः शून्य नहीं हैं, अपनी प्रवर्तनीयता का युग प्रारम्भ तो कर देते हैं और अपनी प्रवर्तनीयता की अवधि में संविदा के स्तर पर भी बने रहते हैं, परन्तु किसी पश्चात्वर्ती घटना के घटित होने से शून्य हो जाते हैं और प्रवर्तनीय नहीं रहते। अतः ऐसे करारों की प्रवर्तनीयता की अवधि में यह सम्भव है कि पक्षकारों ने परस्पर कोई लाभ उठा लिया हो अथवा संविदा का कोई अंश पालन भी हो चुका हो। ऐसी दशा में, **जिस क्षण से संविदा शून्य हो जाती हैं, तब से पक्षकारों के दायित्व समाप्त हो जाते हैं, किन्तु जब तक वह करार प्रवर्तनीय रहा उस समय तक के दायित्व पक्षकारों पर बने रहते हैं। ऐसी परिस्थितियों में, पक्षकारों के दायित्व को किस प्रकार अवधारित किया जाए, इसी दृष्टिकोण से आद्यतः शून्य करार और शून्य हो जाने वाली संविदाओं में प्रभेद किया गया है।**

संविदा और विबन्ध में भेद

संविदा का प्रथम चरण प्रस्थापना है तथा प्रस्थापना किसी तथ्य का व्यपदेशन है। किन्तु किसी वर्तमान तथ्य के व्यपदेशन और इस व्यपदेशन में की कोई बात भविष्य में की जाएगी, भेद किया गया है। प्रथम प्रकार का व्यपदेशन, यदि यह किसी ऐसे तथ्य के बारे में हो जो कि व्यपदेशन के समय वर्तमान हो तथा यदि दूसरे पक्ष ने उस पर विश्वास करके अपनी स्थिति में कोई परिवर्तन कर लिया हो तो यह एक विबन्ध है। जिसके आधार पर व्यपदेशन करने वाला पक्ष व्यपदेशित तथ्य से तत्पश्चात् इंकार नहीं कर सकता। यह साक्ष्य-विधि का एक महत्वपूर्ण सूत्र है। किन्तु इसके विपरीत, ऐसा व्यपदेशन कि कोई बात भविष्य में की जाएगी उस वर्तमान उद्देश्य को अन्तर्वलित करता है जिसके अनुसार व्यपदेशित बात भविष्य में की जानी है। न्या०जे०सी० शाह ने **सेंचुरी स्पिनिंग कम्पनी लि०**

बनाम उल्हास नगर नगरपालिका[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि एक पक्ष के किसी व्यपदेशन पर दूसरे पक्ष ने कोई कार्य कर लिया है, जब तक वह व्यपदेशन करने वाले व्यक्ति पर लागू होने वाली विधि में कोई अन्यथा उपबन्ध न हो, तो ऐसा व्यपदेशन एक प्रवर्तनीय करार बन जाता है। यदि विधि के उपबन्धों में ऐसे करार का कोई निश्चित प्ररूप विहित किया गया हो तो ऐसी दशा में यद्यपि वह व्यपदेशन और उसके अनुसार किया हुआ व्यय संविदा की कोटि में भले ही न आता हो तथापि साम्या के अन्तर्गत उस व्यपदेशन से उद्भूत बाध्यता का पालन कराया जा सकेगा।

विक्रय की संविदा और श्रम अथवा कार्य की संविदा में अन्तर

विक्रय की संविदा, वह संविदा है जिसका मुख्य उद्देश्य क्रेता को किसी जंगम वस्तु का जंगम वस्तु के रूप में उसमें की सम्पत्ति का अन्तरण और कब्जे का परिदान करना होता है और जहां पर उस कार्य का मुख्य उद्देश्य जिसको कि कीमत पाने वाले ने करने का वचन दिया है, ऐसा अन्तरण नहीं है जो जंगम वस्तु के रूप में अन्तरण हो तो वहां पर संविदा कार्य और श्रम की संविदा होती है।[2] **इस की कसौटी यह है कि क्या वह कार्य उचित रूप से किसी विक्रय की विषय-वस्तु बन गई है?** सामग्री का स्वामित्व और सामग्री के साथ तुलनात्मक रूप से कौशल अथवा श्रम का मूल्य दोनों ही इस विषय में निश्चयात्मक नहीं होते कि कोई संविदा विक्रय की संविदा है या नहीं, यद्यपि ऐसे विषयों पर किसी विशिष्ट मामले की परिस्थितियों का अवधारण करने के लिए विचार किया जा सकता है कि क्या वह संविदा सार रूप में एक ऐसी संविदा है जो कार्य और श्रम की संविदा है अथवा वह ऐसी है जो किसी जंगम वस्तु के विक्रय की संविदा है। न्यायाधिपति एस० एम० सीकरी (जैसा कि वे उस समय थे) ने **पटनायक एंड कम्पनी** बनाम **उड़ीसा राज्य**[3] वाले मामले में यह कहा है कि संविदा के सम्पूर्ण स्वरूप को देखना चाहिए कि पक्षकारों का आशय क्या था। उदाहरण के लिए बस के ढांचे के सन्निर्माण के बारे में संविदा में जहां आद्योपान्त यह कहा गया है कि उन्हें पीठिकाओं पर समग्र रूप में एक यूनिट के रूप में लगाया जाएगा और यह सम्पूर्ण ढांचा केवल उन वस्तुओं से ही नहीं बना है जो कि वास्तव में उसमें लगाई गई थीं किन्तु उसमें अन्य जंगम वस्तुएं भी थीं जैसे कि सीटों की गद्दियां और अन्य ऐसी वस्तुएं जिनको यद्यपि उसमें लगाया गया था किन्तु जिनको सुगमतापूर्वक उनसे अलग किया जा सकता था, जैसे कि छतों के बल्ब, हवा रोकने के पर्दों के लिए वाइपर, सामान वाहक, प्राथमिक चिकित्सा के उपस्करों के लिए औजारों का सन्दूक, ऐसी अवस्था में, इस प्रतिवाद के लिए कोई कारण नहीं है कि, जब कोई जंगम वस्तु अन्य जंगम वस्तु में लगाई जाए तो वहां माल विक्रय नहीं होता। **विक्रय को गठित करने के लिए विक्रय शब्द का प्रयोग आवश्यक नहीं है।**[4]

विक्रय और अवक्रय के करार में भेद

कोई करार अवक्रय (हायर परचेज) करार है अथवा विक्रय का करार, इसकी परख यह है कि अवक्रेता को संविदा समाप्त करने का विकल्प उपलब्ध है या नहीं। यदि है तो यह अवक्रय का और यदि नहीं है तो यह विक्रय का करार है। **अवक्रय का करार विक्रय का करार न होकर, उपनिधान का करार है।**[5]

---

[1] ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 1021 (1024).

[2] मैसर्स टी० वी० सुन्दरम **बनाम** मद्रास राज्य, [1975] 1 उम० नि० प० 1145.

[3] (1965) 16 एस० टी० सी० 365.

[4] चन्द्रभान गोसाई **बनाम** उड़ीसा राज्य, (1963) 14 एस० टी० सी० 766.

[5] फाइनन्स सैण्टर **बनाम** राम प्रकाश, ए० आई० आर० 1977 एन० ओ० सी० 209 (जम्मू-कश्मीर).

संविदाओं का अर्थान्वयन

लिखित संविदा की शर्तें यदि स्पष्ट न हों तथा जो एक से अधिक अर्थों की ओर उन्मुख हों तो वहां पक्षकारों का आचरण और उपस्थित परिस्थितियां पक्षकारों के वास्तविक उद्देश्य को अभिनिश्चित करने में सहायक हो सकते हैं ।[1]

संविदा एक व्यापारिक दस्तावेज है । जैसा कि न्या० पी० एन० भगवती का अभिमत है, इसका अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे इसे प्रभावकारिता दी जा सके न कि जिससे यह अविधिमान्य हो जाए ।[2] न्या० फजल अली के अनुसार किसी करार का अर्थान्वयन करते समय न्यायालय को उसके सार अथवा मर्म को न कि उसके प्ररूप को ध्यान में रखना चाहिए । किसी करार को कोई विशेष प्ररूप प्रदान कर देने से पक्षकार इसके विधिक परिणामों से मुक्त नहीं हो सकते जैसे भागीदारी के करार को यदि अभिकरण के करार का स्वरूप दे दिया जाए तो भी विधि की गति वही रहेगी ।[3] संविदा जब लिखित हो तो, न्या० पी० के० गोस्वामी के अनुसार, उसमें पक्षकारों के उद्देश्य का पता लगाना आवश्यक होता है और यह उद्देश्य मूलतः संविदा के निबन्धनों और शर्तों से संगृहीत किया जा सकता है ।[4]

□ □ □

---

1 शतजादी बेगम बनाम गिरधारी लाल, ए० आई० आर० 1976 आन्ध्र प्रदेश 273.

2 भारत संघ बनाम डी० एन० खेरी, ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 2257.

3 सी० आई० टी०, पंजाब बनाम पानीपत वुलन एण्ड जनरल मिल्स, ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 640-[1976] 3 एस० सी० आर० 186-[1977] 1 उम० नि० प० 1.

गुजरात राज्य बनाम वैरायटी वाडी बिल्डर्स, ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 2108.

अध्याय 3

संविदा के गठन की पृष्ठभूमि

मतैक्य अर्थात् कान्सन्सस एडइडम

जबकि एक व्यक्ति, किसी बात को करने या करने से प्रविरत रहने, की अपनी रजामन्दी किसी अन्य को इस दृष्टि से संज्ञापित करता है कि ऐसे कार्य या प्रविरति के प्रति उस अन्य की अनुमति अभिप्राप्त करे तब वह प्रस्थापना करता है तथा जब वह व्यक्ति, जिससे प्रस्थापना की जाती है उस प्रथम व्यक्ति द्वारा संज्ञापित किसी बात को करने या करने से प्रविरत रहने, की रजामन्दी के प्रति अपनी स्वयं की भी अनुमति संज्ञापित करता है तब वह प्रस्थापना प्रतिगृहीत हो जाती है ।[1] दोनों पक्षों की इस परस्पर संज्ञापना का फल ही **वचन** होता है। अतः संज्ञापन की यह क्रिया दोनों पक्षों के लिए आवश्यक है । **दोनों पक्षों द्वारा संज्ञापन की इस सामान्य प्रक्रिया द्वारा ही, उस वैचारिक पृष्ठभूमि का निर्माण होता है जिससे दोनों पक्षों में मतैक्य स्थापित हो जाता है** । यह मतैक्य इस बात से दृढ़तर हो जाता है जबकि दोनों पक्षों के संज्ञापन की इस प्रक्रिया का लक्ष्य केवल यह होता है कि किसी विनिर्दिष्ट कार्य को किया जाए अथवा किसी विनिर्दिष्ट कार्य को करने से प्रविरत रहा जाए ।

पक्षकारों के समान भाव में, एक ही विषय पर वचनबद्ध होने से ही उस विधिक सम्बन्ध का उद्भव होता है जिसके कारण वे एक दूसरे के प्रति दायी हो जाते हैं। संविदा विधि में, इस **न्यायिक बन्धन का सुदृढ़ भवन, पक्षकारों के मतैक्य की भावभूमि पर आधारित हैं** । मतैक्य के इस भाव के कारण वचन करार बन जाता है और करार संविदा में प्रतिष्ठित होता है ।

मतैक्य ही वह अभीष्ट है जिसके निमित्त एक पक्ष प्रस्थापना का और दूसरा पक्ष उस प्रस्थापना के प्रतिग्रहण का संज्ञापन करता है । इस मतैक्यता के सूत्र को ही, लैटिन भाषा में, 'कान्सैन्सस एडइडम' कहा गया है । इसी मतैक्यता के पारस्परिक संज्ञापन से, संविदा के दो शास्त्रीय तत्व प्रकट होते हैं, जिन्हें क्रमशः **करार** (एग्रीमेण्ट) और **बाध्यता** (ऑब्लिगेशन) कहा जाता है ।

उपरोक्त विवेचन से संविदा के गठन में संज्ञापन के भाव की महती सक्रिया का बोध होता है । संज्ञापन के इस भाव में पक्षकारों के अज्ञान, भूल या भ्रम से संविदा का गठन ही ध्वस्त हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसके पालन की सम्भावना भी अस्त-व्यस्त हो जाती है । इसीलिए संज्ञापन की प्रक्रिया का विधिवत नियमन, भारतीय संविदा अधिनियम की 3 से 9 पर्यन्त धाराओं में किया गया है ।

---

[1] संविदा अधिनियम, धारा 2(क) तथा 2 (ख).

7—377 व्ही. एस. पी./81

संसूचना और उसका तात्विक महत्व

संज्ञापन की इस प्रक्रिया को संविदा अधिनियम में संसूचना कहा गया है। **संसूचना की प्रक्रिया से मतैक्यता के भाव की अभिव्यक्ति होती है जो एक वैचारिक स्थिति है।** विचारों की सतत् गतिशीलता के कारण किसी भी समय किसी भी प्रकार के वैचारिक परिवर्तन को नकारा नहीं जा सकता। मस्तिष्क में सहसा, स्वाभाविक अथवा परिस्थितिवश किसी वैचारिक परिवर्तन का प्रस्थापनाओं और उनके प्रतिग्रहण पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है और ऐसे वैचारिक परिवर्तन की स्थिति में सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा अपनी प्रस्थापनाओं अथवा प्रस्थापनाओं के प्रतिग्रहण की संसूचनाओं को अपास्त अथवा निरसित करना आवश्यक हो सकता है। संसूचनाओं को अपास्त या निरसित करने की क्रियाओं को संविदा विधि में प्रतिसंहरण की संज्ञा दी गई है। संविदा अधिनियम[1] में, इस वैचारिक पक्ष का परिचय इन शब्दों में दिया गया है—

> "प्रस्थापनाओं की संसूचना, प्रस्थापनाओं का प्रतिग्रहण और प्रस्थापनाओं तथा प्रतिग्रहणों का प्रतिसंहरण क्रमशः प्रस्थापना करने वाले या प्रतिग्रहण करने वाले या प्रतिसंहरण करने वाले पक्षकार के किसी ऐसे कार्य या लोप से हुआ समझा जाता है जिसके द्वारा वह ऐसी प्रस्थापना, प्रतिग्रहण या प्रतिसंहरण को संसूचित करने का आशय रखता हो, या जो उसे संसूचित करने का प्रभाव रखता हो।"

संविदा में संसूचना का क्या तात्विक महत्व है, यह संविदा अधिनियम[1] में प्रयुक्त उपरोक्त भाषा से ही स्पष्ट है। **संसूचना, पक्षकारों के आशय की अभिव्यक्ति का माध्यम है। संसूचना के बिना पक्षकारों के आशय का कोई अर्थ नहीं है। दो व्यक्तियों का समान आशय होने पर भी जब तक प्रत्येक को उसकी संसूचना न हो तब तक करार का गठन संभव नहीं है।** मान लीजिए किसी कार्य को करने के लिए किसी पुरस्कार की घोषणा की जाती है, तो भी वह कार्य यदि पुरस्कार की घोषणा के अज्ञान में कर दिया जाए तो, कर्ता उस पुरस्कार का हकदार नहीं हो सकता। **फिच** बनाम **स्नेडकर**[2] वाले एक अमरीकन मामले में ऐसा ही अवधारित किया गया था, यद्यपि इसके विपरीत **गिवन्स** बनाम **प्रॉक्टर**[3] वाले एक अंग्रेजी मामले में, जिसमें कि किसी चोर की गिरफ्तारी के लिए किसी दिन मध्याह्न पश्चात्, एक पुरस्कार की किसी पुलिस थाने पर घोषणा की गई थी और दूसरे दिन प्रातः किसी अन्य पुलिस थाने को उस चोर की गिरफ्तारी की सूचना दी गई थी, यह अवधारित किया गया था कि सूचना देने वाले व्यक्ति को पुरस्कार प्राप्त करने का हक था क्योंकि उसने पुरस्कार की घोषणा की शर्त का पालन कर दिया था, भले ही उसे घोषणा का ज्ञान उस समय न हो पाया हो।

लालमन बनाम गौरीदत्त का मामला[4]

भारत में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने **लालमन** बनाम **गौरीदत्त**[4] वाले मामले में उक्त **फिच** बनाम **स्नेडकर**[2] वाले अमरीकन मामले का ही अनुमोदन किया है जिसके

---

1 संविदा अधिनियम, धारा 3.
2 30 एन०वाई० 248.
3 64 ला टाइम्स् 594.
4 (1913) 11 ए०एल०जे० 489.

आधार पर कहा जा सकता है कि **गिवन्स बनाम प्रॉक्टर**[1] **वाले अंग्रेजी मामले में प्रतिपादित सिद्धान्त, भारतीय विधि के अनुकूल नहीं है।**

भारतीय विधि, में संसूचना के आशय और प्रभाव, दोनों का महत्व है। जिसके अनुसार **यद्यपि पुरस्कार की घोषणा करने वाले का आशय पुरस्कार दे देने का ही था तथापि जिस व्यक्ति ने उस कार्य को किया, वह कार्य यदि उस घोषणा के प्रभाव से न होकर, स्वतः या अन्य किसी परिस्थिति से हो गया हो तो, उस कार्य के लिए उसके कर्ता को पुरस्कार का हक नहीं हो सकता।**

उपरोक्त **लालमन** बनाम **गौरी दत्त**[2] वाले मामले में हुआ यह था कि प्रतिवादी ने अपने खोये हुए भतीजे की खोज करने के लिए वादी, जो कि प्रतिवादी की ही सेवा में था, को भेजा और तत्पश्चात, प्रतिवादी ने उस बालक की किसी प्रकार की सूचना दिये जाने के प्रति एक पुरस्कार की भी घोषणा करवा दी। वादी द्वारा प्रतिवादी के विरुद्ध पुरस्कार की राशि के संदाय का वाद संस्थित किये जाने पर, यही अभिनिर्धारित किया गया कि जब तक प्रस्थापना की संसूचना न हो तब तक उसे प्रतिग्रहण करना सम्भव नहीं है, यद्यपि न्यायालय ने अपना निर्णय इस आधार पर दिया था कि वादी प्रतिवादी की सेवा में होने के कारण वैसे भी प्रतिवादी के प्रति कर्तव्याधीन था और अपने कर्तव्य के पालन में किया गया कार्य उसे पुरस्कार का हकदार नहीं बनाता। **प्रस्थापना करने वाले का आशय और उसे प्रतिग्रहण करने वाले पर उसका प्रभाव जब तक एक साथ संयोग न करे तब तक प्रस्थापना और प्रतिग्रहण दोनों की ही संसूचना अपूर्ण है और संसूचना की अपूर्णता में कोई विधिक दायित्व उत्पन्न नहीं हो सकता।**

कार्य अथवा कार्य के लोप में संसूचना की अभिव्यक्ति

मान लीजिए, दो व्यक्तियों ने परस्पर एक दूसरे को पत्र लिखा। उनमें से एक का प्रस्ताव किसी वस्तु को क्रय करने का था। दूसरे का प्रस्ताव उसी वस्तु को विक्रय करने का रहा। दोनों के ही प्रस्ताव में, उस वस्तु की कीमत भी वही रही किन्तु यह पत्राचार किसी भी पक्ष की ओर से आये हुए पत्र का प्रत्युत्तर न होकर प्रत्येक की ओर से स्वतः किया गया था जहां कि एक पक्ष को पत्र लिखते समय दूसरे पक्ष द्वारा भी वैसा ही पत्र लिखे जाने का ज्ञान भी नहीं था। ऐसी दशा में, उन दोनों के मध्य किसी संविदा का गठन नहीं माना जाएगा क्योंकि एक पक्ष का कार्य दूसरे पक्ष की संसूचना का प्रभाव नहीं था[3]।

केवल मानसिक स्वीकृति, **जिसके अनुसरण में कोई संसूचना भी न दी गई हो और न कोई कार्य ही किया गया हो, संविदा की बाध्यता के लिए पर्याप्त नहीं है। संसूचना चाहे प्रस्थापना की हो, चाहे प्रस्थापना के प्रतिग्रहण की हो और चाहे, प्रस्थापना या प्रतिग्रहण किसी के भी प्रतिसंहरण की हो, सम्बन्धित पक्षकार के किसी ऐसे कार्य अथवा लोप के ऐसे रूप में होती है जिसका आशय संसूचना करना हो, अथवा जो संसूचित करने का प्रभाव रखे। इसी प्रकार, प्रस्थापनाओं के प्रतिग्रहण की संसूचना के लिए भी मात्र वैचारिक स्वीकृति पर्याप्त नहीं है क्योंकि ऐसा वास्तव में प्रदर्शित होना चाहिए कि प्रतिगृहीता का**

---

1 64 लॉ टाईम्स 594.

2 (1913) 11 ए० एल० जे० 489.

3 **टिन बनाम हाफ मैन**, 29 लॉ टाइम्स 271

मस्तिष्क उस प्रस्तापना के प्रतिग्रहण को संज्ञापित करने के लिए उन्मुख हुआ। भगवान दास बनाम गिरधारी लाल[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गये निर्णय में न्यायमूर्ति जे० सी० शाह ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रस्थापना का प्रतिग्रहण और प्रतिग्रहण की संसूचना की प्रकट अभिव्यक्ति आवश्यक है। ऐसी प्रकट अभिव्यक्ति का कथन द्वारा लिखित में या अन्य किसी रीति से होना अनिवार्य है, और बिना ऐसा हुए किसी संविदा का निर्माण हो नहीं सकता।[2] प्रतिगृहीता यदि प्रतिग्रहण को अपने मस्तिष्क में ही धारण किए बैठा रहे तो यह निरर्थक है क्योंकि यह सर्वविदित है कि "किसी व्यक्ति के विचार कभी किसी परीक्षण का विषय नहीं बन सकते और 'देवता भी नहीं' जानते कि किसी व्यक्ति का क्या विचार था"[3] **यह आवश्यक नहीं है कि संसूचना शब्दों द्वारा ही अभिव्यक्त हो वरन् यह प्रतीक रूप में अथवा सांकेतिक भी हो सकती है।**[4] प्रतिग्रहण के लिए तो संविदा विधि[5] में यहां तक कहा गया है कि किसी प्रस्थापना की शर्तों का पालन भी उस प्रस्थापना का प्रतिग्रहण है।

जो प्रस्थापनायें किसी से नामत: अथवा व्यक्तित: की जाती हैं, स्वयं उन प्रस्थापनाओं के स्वरूप और प्रकृति में ही यह निहित हो सकता है कि प्रतिग्रहण की संसूचना किसी विशेष रीति से की जाएगी अथवा निर्दिष्ट शर्तों का पालन मात्र ही पर्याप्त संसूचना मानी जाएगी। जो प्रस्थापनायें किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के निश्चित समूह से की जाती हैं, वे विशेष प्रस्थापनायें कहलाती हैं। ऐसी विशेष प्रस्थापनाओं में प्राय: यह अपेक्षा रहती है कि प्रतिग्रहण को संसूचित भी किया जाए किन्तु ऐसा सदैव ही आवश्यक नहीं है क्योंकि संविदा विधि[6] में प्रस्थापनाओं, उनके प्रतिग्रहण और दोनों के ही प्रतिसंहरण के विषय में यह अभिव्यक्तत: कहा गया है कि इसकी मान्यता, सम्बन्धित पक्षकार के किसी ऐसे कार्य या लोप से भी हो सकती है जिसके द्वारा वह पक्षकार, प्रस्थापना, प्रतिग्रहण या प्रतिसंहरण को संसूचित करने का आशय रखता हो या जो उसे संसूचित करने का प्रभाव रखता हो।

घोषणा अथवा विज्ञापन की प्रस्थापना का प्रतिग्रहण

विशेष प्रस्थापनाओं के विपरीत, ऐसी कुछ सामान्य प्रस्थापनायें भी होती हैं जो किसी सार्वजनिक घोषणा अथवा किसी समाचार पत्र में विज्ञापन द्वारा सर्वसाधारण को संसूचित कर दी जाती हैं और ऐसी दशा में, उस प्रस्थापना करने वाले व्यक्ति की घोषणा अथवा उस के विज्ञापन के शब्दों अथवा उस संव्यवहार की रीति से ही यह प्रदर्शित होता है कि प्रस्थापना करने वाले को उसकी घोषणा या उसके विज्ञापन के पालन में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किए हुए कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की संसूचना की न तो अपेक्षा है और न ही आवश्यकता है। किसी खेल-कूद या कुश्ती या वर्ग पहेली आदि की प्रतियोगिता की घोषणायें, इस प्रकार की प्रस्थापना के सामान्य उदाहरण हैं। ऐसी **सामान्य**

---

[1] ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 543.

[2] टी० लिंग गाउडर **बनाम** मद्रास राज्य, ए० आई० आर० 1971 म ास 28, 32.

[3] ब्रागडैन **बनाम** मैट्रोपोलेटन रेलवे कम्पनी, 2 ए० सी० 666, 682-688.

[4] बर्ड **बनाम** बोल्टर, 4 बार्न वाल एंड एडोल्फस् रिपोर्ट्स 443.

[5] संविदा अधिनियम, धारा 8.

[6] संविदा अधिनियम की धारा 3.

प्रस्थापना केवल उसी स्थिति में संविदा बन सकती है जबकि कोई विशेष व्यक्ति उस घोषणा में कथित रीति से उसे स्वीकार कर ले। पुरस्कार की ऐसी सार्वजनिक घोषणा में, जब पुरस्कार एक ही व्यक्ति के निमित्त हो, यह संभावना अवश्य रहती है कि पुरस्कार के प्रत्याशी एक से अधिक व्यक्ति प्रकट हो जायें। ऐसी दशा में सर्वप्रथम जो सफल प्रत्याशी प्रकट हो, उसे ही पुरस्कार का अधिकार होता है।[1]

कारलिल बनाम कार्बोलिक स्मोक बाल कम्पनी का मामला

कारलिल बनाम **कार्बोलिक स्मोक बाल कम्पनी**[2] वाले मामले में सामान्य प्रस्थापना और उसके प्रतिग्रहण का एक अतीव मनोरंजक उदाहरण प्राप्त होता है। कार्बोलिक स्मोक बाल कम्पनी ने एक विज्ञापन द्वारा यह प्रस्थापना की थी—

> "उस व्यक्ति को, जो दो सप्ताह तक प्रति दिन तीन स्मोक बाल, इसके क्रय के साथ उपलब्ध मुद्रित निर्देश पत्र में उल्लिखित निर्देशानुसार सेवन करने के पश्चात् बढ़ते हुए संक्रामक इन्फ्लूएन्जा से ग्रस्त हो जाए, 100 पौंड का पुरस्कार प्रदान किया जाएगा। इस विषय में हमारे सद्भाव के प्रमाण स्वरूप, एलायन्स बैंक में 1000 पौण्ड की राशि निक्षिप्त है।"

श्रीमती कारलिल ने लिखित निर्देशों का विधिवत पालन करते हुए निर्देशित मात्रा में कार्बोलिक बाल नामक गोली का सेवन विज्ञापित अवधि तक किया और फिर भी उन्हें इन्फ्लुएन्जा हो गया। फलतः, उन्होंने घोषित पुरस्कार की राशि के लिए वाद संस्थित किया। हाई कोर्ट के हॉकिस नामक न्यायाधिपति ने अवधारित किया कि श्रीमती कारलिल 100 पौण्ड की राशि कार्बोलिक स्मोक बाल कम्पनी से वसूल करने की हकदार थी। प्रतिवादी कम्पनी की ओर से निम्न आधारों पर अपील प्रस्तुत की गई—

1. इस विज्ञापन से किसी प्रकार की संविदा आशयित नहीं थी;
2. यह विज्ञापन एक प्रस्थापना मात्र था और इसके निबंधन इतने अस्त-व्यस्त थे कि उन्हें पूर्णतः प्रस्थापना का भी रूप देना सम्भव न था।
3. विज्ञापन केवल ग्राहकों को विप्रेरित करने की दृष्टि से किया गया था;
4. प्रस्थापना किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं की गई थी;
5. प्रस्थापना का वास्तविक प्रतिग्रहण भी नहीं किया गया था;
6. प्रस्थापना के प्रतिग्रहण की संसूचना भी नहीं थी; और
7. इस करार के लिए कोई प्रतिफल भी नहीं था।

तीन न्यायाधिपतियों ने अपने सुचिन्तित निर्णय में इन प्रश्नों का इस प्रकार विनिश्चय किया—

(1) विज्ञापन पुरस्कार प्रदान करने के आशय का कथन मात्र न होकर, पूर्णतः निर्दोष भाषा में अभिव्यक्त निश्चायक वचन था।

(2) आख्यापन ग्राहकों के प्रोत्साहन मात्र के लिए नहीं था वरन् बैंक में निक्षिप्त राशि के कथन से इसे प्रोत्साहन मात्र मानना निराधार था।

---

1 लैंकास्टर बनाम वाल्श, (1838) 150 इंग्लिश रिपोर्ट्स 1324.

2 (1897) 1 क्यू०बी० 256.

(3) यद्यपि औषधि के सेवन के पश्चात् इन्फ्लुएन्जा से ग्रस्त होने की कोई अवधि निश्चित नहीं थी और इस परीक्षण का भी कोई अवसर न था कि वास्तव में निर्देशानुसार औषधि का सेवन हुआ भी या नहीं और इस प्रकार प्रस्थापना की शर्तें अनिश्चित और अस्त-व्यस्त अवश्य थीं, तथापि जिस युक्तियुक्त समय का आशय था वह निश्चित किये जाने योग्य था और इस मामले में तो ऐसा निश्चय करने में कठिनाई इसलिए नहीं थी कि वादी औषधि के सेवन की अवधि में ही इन्फ्लुएन्जा से ग्रस्त हो गई थी ।

(4) यद्यपि प्रस्थापना किसी व्यक्ति विशेष को न की जाकर सर्वसाधारण को की गई थी तथापि यह प्रस्थापना केवल बातचीत को अग्रसर करने के निमित्त न होकर ऐसी बाध्यतायुक्त थी कि जो किसी भी ऐसे आगन्तुक के साथ जो शर्तों का पालन कर चुका है, एक परिपक्व संविदा माने जाने योग्य थी ।

(5) सामान्यतः प्रतिग्रहण को यद्यपि संसूचित किया जाना आवश्यक होता है जो केवल प्रस्थापना करने वाले के हित में होता है, तथापि प्रस्थापना करने वाला ऐसी संसूचना का अभित्यजन करके उसके पालन की सूचना को ही प्रतिग्रहण मान कर सन्तोष कर सकता था ।

(6) प्रतिफल दोनों ओर था, कम्पनी के लिए इस बात में कि ग्राहकों में विश्वास उत्पन्न होने से औषधि की मांग में अभिवृद्धि से कम्पनी का लाभ था और वादी के इस अहित के रूप में कि उसने प्रतिदिन तीन बार उस गोली को अपने नासिकारन्ध्रों में प्रविष्ट करने की असुविधा सहन की ।

(7) वचन की वाक्-विदग्धता या प्रतिवादियों के विरुद्ध ऐसे ही अतिरिक्त वाद संस्थित होने की सम्भावना भी, प्रतिवादियों के दायित्व मोचन का कोई आधार नहीं था ।

हर भजन बनाम हर चरन का मामला

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष **हर भजन** लाल बनाम हर **चरन** लाल[1] वाला मामला कुछ इसी प्रकार का था। घर से भागे हुए बालक की खोज के लिए उसके पिता ने एक प्रसूचना निकलवाई दी थी कि खोजने वाले को 500 रुपए का पुरस्कार प्रदान किया जाएगा। वादी ने बालक की खोज करके उसके पिता को सूचित किया और पुरस्कार की मांग की और इस मांग का वाद संस्थित किये जाने पर यह अवधारित हुआ कि यह प्रसूचना सर्वसाधारण को की गई प्रस्थापना थी जो किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रतिग्रहण के योग्य थी और जिसने भी उस शर्त का पालन कर दिया वही प्रस्तावित पुरस्कार पाने का हकदार था ।

प्रतिग्रहण की संसूचना जब अनिवार्य हो

इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि जिस प्रस्थापना में प्रतिग्रहण को संसूचित किया जाना आवश्यक बताया जाए, वहां प्रतिगृहीता द्वारा प्रतिग्रहण को संसूचित न किया जाना अक्षम्य है ।[2]

---

[1] ए० आई० आर० 1925 इलाहाबाद 531.

[2] कैनेडी बनाम थामसेन, (1929) 1 लॉ रिपोर्ट्स 426 चान्सरी.

संविदा विधि में[1], यद्यपि संसूचना किसी पक्षकार के कार्य अथवा लोप (ओमिशन) दोनों ही प्रकार से पूर्ण समझी जा सकती है, तथापि यह आवश्यक है कि वह कार्य या लोप ऐसा हो जो संसूचित करने का या तो आशय या फिर संसूचित करने का प्रभाव रखता हो। ऐसे लोप का कोई महत्व नहीं जिससे न संसूचना का आशय और न जिससे संसूचना का प्रभाव ही प्रकट होता हो। उदाहरण के लिए, यदि किसी प्रस्थापना में यह कहा गया हो कि इसका उत्तर न आने की दशा में इसके प्रतिग्रहण का अनुमान कर लिया जाएगा तो केवल उत्तर के लोप से ही प्रतिग्रहण नहीं माना जा सकता[2], क्योंकि कोई भी व्यक्ति प्रतिग्रहण न करते हुए भी उत्तर का लोप कर सकता था।

टिकट, रसीद, आदि की शर्तों का प्रतिग्रहण

यात्रा आदि के टिकटों पर सामान की जोखिम स्वयं यात्री की होने जैसी प्रायः कुछ शर्तें मुद्रित रहा करती हैं। यदि वे शर्तें टिकट के किसी सहज दृश्य स्थल पर हों तो यात्री को उनके ज्ञान होने का अनुमान किया जा सकता है, किन्तु जहां यह शर्त टिकट के सामने की ओर न होकर पीछे की ओर थी, वहां यह माना गया कि यात्री को उसका ज्ञान नहीं हो सकता था[3]। किन्तु जहां टिकट पर सामने की ओर ही यह संकेत हो कि यह टिकट पीछे की ओर लिखी शर्तों के अधीन है तो कोई इस बात का लाभ नहीं उठा सकता कि उसने वह शर्त पढ़ी नहीं या जिस भाषा में वह शर्त लिखी गई थी, वह उस भाषा को जानता नहीं था, क्योंकि ऐसी स्थिति में यात्री यदि शर्तों को नहीं पढ़ता अथवा जिस भाषा में शर्त लिखी गई है उसके अनुवाद की मांग नहीं करता तो वह स्वयं उसी का दोष है[4]। किन्तु यदि टिकट पर छपी शर्तें लोक नीति के विरुद्ध हैं तो उनके प्रतिग्रहण का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता क्योंकि ऐसी शर्तें विधितः प्रवर्तनीय हो ही नहीं सकतीं।[5]

संसूचना की सम्पूर्णता

प्रस्थापना की संसूचना तब सम्पूर्ण होती है जब प्रस्थापना उस व्यक्ति के ज्ञान में आ जाती है, जिसे वह की गई है।

प्रस्थापना के प्रादुर्भाव के समय तक एक ही पक्ष होता है किन्तु प्रस्थापना के प्रतिग्रहण के समय दोनों पक्षों की विवक्षा हो जाती है, अतः प्रतिग्रहण की संसूचना का प्रभाव एक ओर प्रस्थापना करने वाले पक्ष की ओर तथा दूसरी ओर प्रतिग्रहण करने वाले पक्ष की ओर हो सकता है। अस्तु, प्रतिग्रहण की संसूचना—

1. प्रस्थापक के विरुद्ध तब सम्पूर्ण हो जाती है जब वह उसके प्रति इस प्रकार पारेषण के अनुक्रम में कर दी जाती है कि वह प्रतिगृहीता की शक्ति के बाहर हो जाए।
2. प्रतिगृहीता के विरुद्ध तब सम्पूर्ण हो जाती है जब वह प्रस्थापक के ज्ञान में आती है।

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 3.

[2] फैल्ट् हाउस **बनाम** बिन्डले, 11 कामन बेंच रिपोर्टस् 869, न्यू सीरीज.

[3] हैन्डरसन **बनाम** स्टीवेन्सन, (1875) लॉ रिपोर्ट्स हाउस ऑफ लार्ड्स 470.

[4] देखिए, एस० मैनुअल राज एंड कंपनी **बनाम** मनीलाल एंड कंपनी, ए० आई० आर० 1965 गुजरात 148.

[5] लिली व्हाइट **बनाम** मुन्नू स्वामी, ए० आई० आर० 1966 मद्रास 13.

इसी प्रकार, प्रतिसंहरण की संसूचना—

1. उसे करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध तब सम्पूर्ण हो जाती है, जब वह उस व्यक्ति के प्रति, जिससे प्रतिसंहरण किया गया हो, इस प्रकार पारेषण के अनुक्रम में कर दी जाती है कि वह उस व्यक्ति की शक्ति से बाहर हो जाए, जो उसे करता है।

2. उस व्यक्ति के विरुद्ध, जिससे प्रतिसंहरण किया गया है, तब सम्पूर्ण हो जाती है, जब वह उसके ज्ञान में आती है।

दृष्टान्त के लिए[1]—

1. क अमुक कीमत पर ख को गृह बेचने की पत्र द्वारा प्रस्थापना करता है। इस प्रस्थापना की संसूचना तब सम्पूर्ण हो जाती है जब ख को पत्र प्राप्त होता है।

2. क की प्रस्थापना का ख डाक से भेजे गए पत्र द्वारा प्रतिग्रहण करता है। इस प्रतिग्रहण की संसूचना—

(i) क के विरुद्ध तब संपूर्ण हो जाती है जब पत्र डाक में डाल दिया जाता है,

(ii) ख के विरुद्ध तब सम्पूर्ण हो जाती है जब क को पत्र प्राप्त होता है।

3. क अपनी प्रस्थापना का प्रतिसंहरण तार द्वारा करता है, यह प्रतिसंहरण—

(i) क के विरुद्ध तब सम्पूर्ण हो जाता है जब तार प्रेषित किया जाता है।

(ii) ख के विरुद्ध तब सम्पूर्ण हो जाता है जब ख को तार प्राप्त होता है।

4. ख अपने प्रतिग्रहण का प्रतिसंहरण तार द्वारा करता है, ख का यह प्रतिसंहरण—

(i) ख के विरुद्ध तब संपूर्ण हो जाता है जब तार प्रेषित किया जाता है।

(ii) क के विरुद्ध तब सम्पूर्ण हो जाता है, जब तार उसके पास पहुंचता है।

यह स्पष्ट है कि संसूचना की सम्पूर्णता पर ही संविदा का गठन निर्भर करता है। यदि कोई व्यक्ति अन्य के लिए कोई सेवा या कोई और हित, उस अन्य की वांछा के बिना करता है या जबकि उस अन्य को ऐसे कार्य या ऐसी सेवा का ज्ञान ही न हो तो सेवा का कार्य करने वाला व्यक्ति किसी संदाय का हकदार नहीं है[2]। किसी निश्चित अवधि में किसी प्रस्थापना का प्रत्युत्तर न दिये जाने मात्र से संसूचना सम्पूर्ण नहीं मानी जा सकती[3]। हां यदि संसूचना की प्रस्थापक द्वारा ही निर्दिष्ट की हुई रीति के अनुसरण के आशय के प्रमाण में किसी भी प्रकार का अग्रकृत्य (ओवर्ट ऐक्ट) कर लिया जाए तो प्रतिग्रहण की संसूचना सम्पूर्ण मानी जा सकती है[4]।

---

[1] संविदा अधिनियम, धारा 4.

[2] टेलर बनाम लेयर्ड, 25 ला जर्नल एक्सचैकर कोर्ट्स रिपोर्ट्स 329,32.

[3] लक्ड विलियम डोमिंगो बनाम एल० सी० डिसूजा, ए० आई० आर० 1928 इलाहाबाद 481.

[4] स्टेट ऑफ बिहार बनाम बंगाल सी० एण्ड पी० वर्क्स, ० आई० आर० 1954 पटना 14.

पारेषण का महत्व

किसी प्रस्थापना के प्रतिग्रहण को चाहे प्रतिगृहीता ने लेखबद्ध कर लिया हो किन्तु प्रस्थापक को जब तक वह संसूचित न हो, तब तक वह मौन के ही तुल्य है और उससे किसी संविदा का गठन नहीं हो सकता। उपरोक्त दृष्टान्तों से ही यह स्पष्ट है कि प्रस्थापक के विरुद्ध संसूचना तब सम्पूर्ण मानी जाएगी जबकि प्रतिगृहीता, अपने लेखबद्ध प्रतिग्रहण को, डाक में डाल दे। डाक में डाल देना प्रतिग्रहण को पारेषण के अनुक्रम में रख देना है। यदि एक पक्ष ने कोयले के प्रदाय के लिए एक करार का प्रारूप दूसरे पक्ष के पास स्वीकृति के लिए प्रेषित किया और दूसरे पक्ष ने उस पर 'स्वीकृत' लिख कर, विधिवत् संविदा का विलेख करने के लिए रख दिया जो प्रस्थापक के पास नहीं पहुंच सका, तो ऐसी दशा में यह संसूचना सम्पूर्ण नहीं मानी जा सकती[1]। यदि किसी पाठशाला में, प्रधानाध्यापक के पद की नियुक्ति के लिए पाठशाला के प्रबन्धकों की बैठक में किसी व्यक्ति की नियुक्ति का प्रस्ताव तो पारित कर लिया जाए किन्तु वह उस व्यक्ति को संसूचित न किया जाए तो वह व्यक्ति, संसूचना के अभाव में उस प्रस्ताव की प्रवर्तनीयता के लिए वाद नहीं चला सकता[2]। किसी बैंक में एक ओर से एक व्यक्ति के पक्ष में एक प्रस्ताव तो पारित हो गया किन्तु उस व्यक्ति को वह कभी संसूचित नहीं किया गया। ऐसी दशा में उस व्यक्ति द्वारा उस प्रस्ताव का विनिर्दिष्ट पालन नहीं कराया जा सकता[3]।

प्रस्थापनाओं और प्रतिग्रहणों का प्रतिसंहरण

कोई भी प्रस्थापना, उसके प्रतिग्रहण की संसूचना प्रस्थापक के विरुद्ध सम्पूर्ण हो जाने से पूर्व, किसी भी समय प्रतिसंहृत की जा सकेगी, किन्तु उसके पश्चात् नहीं। कोई भी प्रतिग्रहण, उस प्रतिग्रहण की संसूचना प्रतिगृहीता के विरुद्ध संपूर्ण हो जाने से पूर्व किसी भी समय प्रतिसंहृत किया जा सकेगा, किन्तु उसके पश्चात् नहीं[4]। इन सूत्रों को निम्न दृष्टान्तों से स्पष्ट किया जा सकता है—

क अपना गृह बेचने की प्रस्थापना डाक से भेजे गए एक पत्र द्वारा करता है। **ख** उस प्रस्थापना को डाक से भेजे गए पत्र द्वारा प्रतिगृहीत करता है। इस मामले में—

1. **क** अपनी प्रस्थापना को **ख** द्वारा अपने प्रतिग्रहण का पत्र डाक में डाले जाने से पूर्व किसी भी समय या डाले जाने के क्षण प्रतिसंहृत कर सकेगा, किन्तु उसके पश्चात् नहीं।
2. **ख** अपने प्रतिग्रहण को, उसे संसूचित करने वाला पत्र **क** को पहुंचने के पूर्व किसी भी समय या पहुंचने के क्षण प्रतिसंहृत कर सकेगा, किन्तु उसके पश्चात् नहीं।

प्रतिसंहरण के विषय में भारतीय विधि की विशेषता

सर विलियम एन्सन[5] ने प्रतिसंहरण की स्थिति को एक अतिरंजित भाषा में प्रस्तुत करते हुए कहा है कि "प्रस्थापना के लिए प्रतिग्रहण वही है जो एक जलती दियासलाई

[1] ब्रोगडेन **बनाम** मैट्रोपोलिटन रेलवे कंपनी, 2 ए० सी० 666.

[2] सुब्रमन्य **बनाम** डब्ल्यू० पी० एण्ड एस० सोसाइटी, ए० आई० आर० 1961 मद्रास 289.

[3] सैन्ट्रल बैंक मोतमल लि० **बनाम** व्यंकटेश बापू जी, ए० आई० आर० 1949 नागपुर 286.

[4] संविदा अधिनियम, धारा 5.

[5] एन्सन ऑन कांट्रेक्ट.

गोला बारूद की गाड़ी के लिए है; उससे एक ऐसी बात उत्पन्न हो जाती है, जिसे न वापस ही लिया जा सकता है और न उसे अकृत ही किया जा सकता है। किन्तु बारूद उस समय तक रखी रह सकती है जब तक दियासलाई का स्पर्श न हो या वह व्यक्ति जिसने बारूद रखी है, उसे दियासलाई के स्पर्श से पूर्व हटा सकता है।

इंग्लैण्ड की विधि का इस उक्ति से यथार्थ चित्रण होता है। प्रतिगृहीता जब अपने प्रतिग्रहण की संसूचना डाक में डाल देता है, उसी समय बारूद में दियासलाई का स्पर्श हो जाता है। अतः प्रस्थापक अपनी प्रस्थापना को केवल उस समय तक ही प्रतिसंहृत कर सकता है जब तक कि प्रतिगृहीता अपने प्रतिग्रहण की सूचना का पत्र डाक में न डाले। **प्रतिगृहीता के द्वारा स्वीकृति का पत्र डाक में डाल देने के पश्चात्, प्रस्थापक अपने प्रस्ताव को प्रतिसंहृत नहीं कर सकता।**

भारतीय विधि में पत्र डालने के दोनों ओर प्रभाव होते हैं। **प्रस्थापक के विरुद्ध, प्रस्थापना उसी समय सम्पूर्ण हो जाती है जब प्रतिगृहीता अपने पत्र को डाक में डाल देता है, किन्तु प्रतिगृहीता के विरुद्ध वह तभी सम्पूर्ण हो सकेगी जबकि प्रतिगृहीता का पत्र, प्रस्थापक को प्राप्त हो।** प्रस्थापक, अपनी प्रस्थापना को, प्रतिगृहीता द्वारा अपने प्रतिग्रहण का पत्र डाक में डाले जाने से पूर्व, किसी भी समय या डाले जाने के क्षण प्रतिसंहृत कर सकेगा, किन्तु इसके पश्चात् नहीं। **पत्र डाले जाने से पूर्व** अथवा **पत्र डालने के क्षण** ये दोनों बातें कह कर, भारतीय विधि में, स्थिति को अधिक स्पष्ट किया गया है, अन्यथा इस विषय में भारतीय विधि में और इंग्लिश विधि में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता, क्योंकि पत्र डाले जाने का क्षण भी पत्र को पारेषण के अनुक्रम में रखे जाने से पूर्व का ही क्षण है। पारेषण के इस अनुक्रम में जो समय व्यतीत हो, उसका लाभ प्रस्थापक नहीं ले सकता, केवल प्रतिगृहीता ले सकता है, क्योंकि प्रतिगृहीता, अपने प्रतिग्रहण को, प्रतिग्रहण की सूचना प्रस्थापक के पास पहुंचने से पूर्व अथवा पहुंचने के क्षण तक किसी भी समय प्रतिसंहृत कर सकता है, जिसका अर्थ यह है कि यदि प्रतिग्रहण का प्रतिसंहरण करना हो तो उसमें इस सावधानी की अपेक्षा है कि ऐसे प्रतिसंहरण की सूचना प्रस्थापक के पास प्रतिग्रहण की सूचना पहुंचने से पूर्व या अधिकतम प्रतिग्रहण की सूचना पहुंचने के क्षण तक तो, पहुंच ही जानी चाहिए।

हेन्थोर्न बनाम फ्रेजर का मामला

हेन्थोर्न बनाम फ्रेजर[1] वाले मामले में, तथ्य इस प्रकार के थ जहां कि प्रस्थापना का पत्र हाथों हाथ दिया गया था किन्तु प्रस्थापना के प्रतिग्रहण और प्रस्थापना के प्रतिसंहरण के पत्रों को डाक में डाला गया था। यह मामला एक संविदा के विनिर्दिष्ट पालन का था जिसकी विषय वस्तु फैल्मंक स्ट्रीट, बिरकनहेड में स्थित थी। प्रतिवादी ने एक गृह-सम्पत्ति वादी के हाथ विक्रय करने का प्रस्ताव, वादी को लिवरपूल में 7 तारीख को, हाथों हाथ दे दिया। 8 तारीख को, सायंकाल 3 बजकर 50 मिनट पर वादी ने उस सम्पत्ति को 750 पौंड में विक्रय करने के प्रतिवादी के प्रस्ताव का प्रतिग्रहण करते हुए एक पत्र प्रतिवादी के लिए डाक में डाल दिया। वादी द्वारा प्रतिग्रहण का यह पत्र, प्रतिवादी को, कार्यालय के समय के पश्चात्, 8 बजकर 30 मिनट पर प्राप्त हो पाया था। 8 तारीख

[1] एल० आर० (1892) 2 चांसरी 27.

को ही, प्रतिवादी ने अपने प्रस्ताव को प्रतिसंहृत करते हुए एक पत्र, लिवरपूल में दोपहर 12 से 1 बजे के मध्य डाक में डाल दिया जो वादी को सायंकाल 5 बज कर 30 मिनट पर अर्थात् वादी द्वारा प्रतिग्रहण का पत्र प्रतिवादी की ओर डाक में डाले जाने के 1 घंटा 40 मिनट पश्चात् प्राप्त हो पाया।

इस मामले में, **डनलप** बनाम **हिगिन्स**[1] वाले मामले का भी, जिसमें यह अवधारित किया गया था कि जब तक प्रस्थापना को प्रतिसंहृत न किया जाए, वह एक **चलत प्रस्थापना** के समान, दूसरे पक्ष द्वारा प्रतिग्रहण करने अथवा अस्वीकार करने के समय तक, प्रभावी रहती है, प्रसंग आया था और विशेषत: प्रतिवादी की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि **डनलप** बनाम **हिगिन्स**[1] वाला मामला इस प्रसंग में लागू नहीं होगा क्योंकि इस घटना में प्रतिवादी ने प्रस्थापना का पत्र डाक में न डालकर वादी को हाथों हाथ दिया था। विनिश्चय में कहा गया कि प्रस्थापना को हाथों हाथ देने और प्रतिग्रहण की सूचना डाक द्वारा भेजने के कारण इस मामले में कोई भिन्नता नहीं आई, कारण कि वादी दूसरे नगर में रहता था और प्रतिवादी की भी यह धारणा रही होगी कि वादी उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने पर प्रतिग्रहण की सूचना डाक द्वारा ही भेजेगा। लार्ड हरशैल ने अपने निर्णय में कहा—"मैं इस नियम को इस प्रकार कथन करना चाहूंगा—जहां परिस्थितियां ऐसी हैं कि मानव मात्र की सामान्य प्रथाओं के अनुसार, डाक को प्रस्ताव की स्वीकृति के संचार के साधन के रूप में प्रयोग किया जाता रहा हो तो स्वीकृति डाक में डाले जाने के समय ही पूर्ण हो जाती है।"

प्रतिग्रहण के लिए प्रस्थापना के खुले रहने की अवधि

एक युक्तियुक्त समय तक प्रस्थापना प्रतिग्रहण के निमित्त खुली रहती है, किन्तु इसका प्रतिग्रहण हो जाते ही यह अप्रतिसंहरणीय हो जाती है[2]। उपरोक्त नियम के अनुसार विधि[3] ने उस अवधि को परिनिश्चित कर दिया है जिसके अन्तर्गत प्रतिसंहरण किया जा सके। यह नियम आत्यन्तिक है और इसे न विशेषित किया जा सकता है और न इसमें किसी अपवाद के लिए ही स्थान है। कोई भी एक पक्ष जो कि दूसरे पक्ष को, किसी प्रस्थापना को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए, कोई युक्तियुक्त समय प्रदान करता है उसके लिए उस अवधि की समाप्ति तक प्रतीक्षा करना आवश्यक नहीं है। यह स्पष्ट है कि किसी भी एक पक्षीय वचन की कोई बाध्यता नहीं हो सकती और जो व्यक्ति प्रस्थापना करके दूसरे पक्ष द्वारा इसे प्रतिग्रहण किए जाने से पूर्व ही यदि उसका प्रतिसंहरण कर ले, जो कि वह कर सकता है, तो यह संव्यवहार तुरन्त समाप्त हो जाता है[4]। यदि किसी प्रस्थापना को प्रतिग्रहण करने वाला पक्ष प्रस्थापना की शर्तों में कुछ रूपान्तर करके प्रतिग्रहण करे तथा फिर ऐसे प्रतिग्रहण का प्रतिसंहरण भी प्रतिग्रहण के लिए निर्धारित समय के अन्तर्गत ही कर ले तो यह प्रतिग्रहण का पर्याप्त प्रतिसंहरण है और इसके पश्चात् यदि प्रतिगृहीता प्रस्थापना को पूर्व की मूल शर्तों सहित ही स्वीकार करना चाहे तो वह प्रस्थापना किसी वचन में परिणत नहीं हो सकती[5], क्योंकि प्रतिग्रहण का प्रतिसंहरण सम्पूर्ण हो चुका है।

1 क्लार्कस् रिपोर्ट्स हाउस ऑफ लार्ड्स् 381.
2 काशी **बनाम** ईश्वरी, 6 सी० एल० जे० 727.
3 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 5.
4 एडम्स **बनाम** लिंडसेल, 106 इंगलिश रिपोर्ट्स, 681.
5 कुंदन **बनाम** सैक्रेटरी ऑफ स्टेट, 183 आई० सी० 597; व्हाइट **बनाम** रच, (1840) 49 इंगलिश रिपोर्ट्स 132.

प्रतिसंहरण की रीति

किसी भी प्रस्थापना का प्रतिसंहरण निम्न रीतियों में से किसी भी प्रकार किया जा सकता है[1]—

1. प्रस्थापक द्वारा दूसरे पक्षकार को प्रतिसंहरण की सूचना के संसूचित किये जाने से;

2. ऐसी प्रस्थापना में उसके प्रतिग्रहण के लिए विहित समय के बीत जाने से या यदि कोई समय इस प्रकार विहित न हो तो, प्रतिग्रहण की संसूचना के बिना, युक्तियुक्त समय बीत जाने से;

3. प्रतिग्रहण की किसी पुरोभाव्य शर्त को पूरा करने में प्रतिगृहीता की असफलता से; अथवा

4. प्रस्थापक की मृत्यु या उन्मत्तता से, यदि उसकी मृत्यु या उन्मत्तता का तथ्य प्रतिगृहीता के ज्ञान में प्रतिग्रहण से पूर्व आ जाए ।

प्रथम रीति से सूचना के द्वारा प्रतिसंहरण करने के लिए प्रस्थापक द्वारा दूसरे पक्ष को सूचना द्वारा संसूचित किया जाना आवश्यक है । किन्तु विधि द्वारा जो प्रतिसंहरण के लिए समय विहित है उसी समय के अन्तर्गत प्रतिसंहरण किया जाना चाहिए, विधितः प्रस्थापना का प्रतिसंहरण जिस अवधि तक प्रतिगृहीता उसे विचाराधीन रखता है, तभी तक किया जा सकता है । जैसे ही प्रतिगृहीता किसी प्रस्थापना को स्वीकार करके अपनी स्वीकृति परेषण के अनुक्रमण में रख देता है, प्रस्थापना वचन का रूप ले लेती है और तत्पश्चात् इसके प्रतिसंहरण का कोई महत्व नहीं। स्वयं प्रस्थापना में, प्रतिग्रहण के लिए कोई समय निश्चित किया गया है अथवा नहीं इस बात से विधि की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता[2] ।

प्रस्थापना के प्रतिसंहरण के सम्बन्ध में कुछ सार की बातें

सूचना द्वारा प्रस्थापना के प्रतिसंहरण के सम्बन्ध में दो विचारणीय प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं—

1. जबकि प्रस्थापना की संसूचना दूसरे पक्ष को हो जाए किन्तु प्रस्थापना के प्रतिसंहरण की संसूचना उसे न हो तब तक की अवधि में प्रस्थापना का क्या प्रभाव है?

2. क्या प्रतिसंहरण की सूचना के पत्र को डाक में डाल देना ही जिस पक्ष से प्रतिसंहरण किया गया है उसकी संसूचना के लिए पर्याप्त है ?

वायर्न बनाम **वान टियेन होविन**[3] वाले मामले में इन प्रश्नों के अवधारण का अवसर उपस्थित हुआ था। वादी, जो न्ययार्क का निवासी था, ने कार्डिक में रहने वाले प्रतिवादी की ओर से 11 तारीख की डाक से एक प्रस्थापना की सूचना प्राप्त की और वादी ने तार द्वारा उसी दिन तथा पत्र द्वारा 15 तारीख को, अपने प्रतिग्रहण की सूचना प्रतिवादी की ओर प्रषित करदी। प्रतिवादी ने 8 तारीख को अपनी प्रस्थापना के प्रतिसंहरण का पत्र वादी की ओर प्रेषित कर दिया जो वादी को 20 तारीख को प्राप्त हुआ। प्रथम प्रश्न का उत्तर

---

1 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 6.

2 राउट लेज बनाम ग्रांट, 4 विंघम्स रिपोर्ट्स 653.

3 5 एल० आर० 344, कॉमन प्ली

देते हुए यह अवधारित किया गया कि असंसूचित प्रतिसंहरण सभी व्यावहारिक उद्देश्यों से किसी भी प्रकार का प्रतिसंहरण नहीं है। द्वितीय प्रश्न का अवधारण यह कह कर किया गया कि प्रतिसंहरण की सूचना के पत्र को केवल डाक में डाल देना किसी प्रकार से पर्याप्त प्रतिसंहरण नहीं है और फलतः ऐसा प्रतिसंहरण प्रभावी नहीं है। इस अवधारण की पुष्टि में यह कहा गया कि—

> "विधिक सिद्धान्तों और व्यावहारिक सुविधा, दोनों की ही यह अपेक्षा है कि जिस व्यक्ति ने किसी प्रस्थापना का प्रतिग्रहण कर लिया है और जिसे उस प्रस्थापना के प्रतिसंहरण का ज्ञान नहीं है वह अपने कार्य की स्थिति के प्रति सुरक्षित है क्योंकि प्रस्थापना और उसके प्रतिग्रहण से दोनों ही पक्षों पर एक बाध्यकारी संविदा का गठन हो चुकता है।"

प्रतिग्रहण की संसूचना के लिए विधि का स्पष्ट उपबन्ध[1] यही है कि वह प्रस्थापक के विरुद्ध तभी सम्पूर्ण हो जाती है जब वह उस के प्रति इस प्रकार पारेषण के अनुक्रम में कर दी जाती है कि वह प्रतिगृहीता की शक्ति के बाहर हो जाए। अस्तु प्रतिगृहीता जैसे ही अपने प्रतिग्रहण की संसूचना का पत्र प्रस्थापक की ओर डाक में डाल देता है, उसी समय प्रस्थापना वचन बन जाती है, और इस बात से कोई अन्तर नहीं आ सकता कि वह पत्र प्रस्थापक को समय से नहीं प्राप्त हुआ, क्योंकि जो व्यक्ति पत्र डालता है वह किसी भी प्रकार से डाक विभाग में हुई किसी अप-घटना के लिए उत्तरदायी नहीं है।[2]

प्रस्थापना के प्रतिसंहरण के लिए आवश्यक है कि प्रतिसंहरण स्वयं प्रस्थापक द्वारा अथवा उसके अधिकृत अभिकर्ता द्वारा ही किया जाना चाहिए। किसी तीसरे पक्ष द्वारा प्रतिसंहरण का कोई महत्व नहीं है। यद्यपि डिकिन्सन बनाम डाड्स[3] वाले मामले में यह प्रतिपादित किया गया था कि जिस व्यक्ति से प्रस्थापना की गई है, उसे उस प्रस्थापना के प्रतिसंहरण की सूचना, यदि प्रस्थापक के अतिरिक्त अन्य किसी स्रोत से भी प्राप्त हो चुकी है तो ऐसी सूचना के पश्चात् उसका प्रतिग्रहण किसी संविदा को जन्म नहीं देता, किन्तु यह प्रतिपादना भारतीय विधि के अनुकूल नहीं कही जा सकती। भारतीय विधि में, इसे असंदिग्ध अभिव्यक्तियों से कथित किया गया है कि प्रस्थापना का प्रतिसंहरण "प्रस्थापक द्वारा दूसरे पक्षकार को प्रतिसंहरण की सूचना के संसूचित किए जाने से" ही हो सकता है।[4]

समय के व्यतीत होने पर प्रतिसंहृत होने वाली प्रस्थापनाओं के दो रूप हो सकते हैं—(1) वे प्रस्थापनायें जिन्हें प्रतिग्रहण करने के लिए समय का निर्देश रहता है; तथा (2) वे जिनमें स्वयं समय का निर्देश नहीं होता। प्रथम प्रकार की प्रस्थापनाओं को यदि विनिर्दिष्ट अवधि के अन्तर्गत प्रतिगृहीत न किया जाए तो वे उस विनिर्दिष्ट समय के व्यतीत होते ही प्रतिसंहृत हो जाती है जैसे किसी

---

[1] संविदा अधिनियम, धारा 4.

[2] डनलप बनाम हिगिंस, 1 क्लार्कस रिपोर्ट्स 381 हाउस ऑफ लार्ड्स.

[3] (1876) 2 एल० आर० 463 चांसरी.

[4] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 6 (1).

प्रस्थापक ने यह संसूचित किया हो कि प्रस्थापना 24 घण्टे तक खुली है, तो ऐसी दशा में, जिसे यह संसूचित की गई है, उसे 24 घंटे तक की अवधि में अपना प्रतिग्रहण संसूचित कर देना चाहिए अन्यथा 24 घंटे व्यतीत होते ही, प्रस्थापक द्वारा इसे प्रतिसंहृत किया जा सकता है। यदि स्वयं उस व्यक्ति को, जिसे प्रस्थापना की गई है, प्रस्थापना की प्राप्ति में इसलिए विलम्ब हो कि उसने डाक प्राप्ति का उचित प्रबन्ध ही नहीं किया है तो ऐसे विलम्ब पर विचार नहीं किया जा सकता[1]।

इस विनिर्दिष्ट समय के महत्व को व्याख्या के रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है, अर्थात् समय व्यतीत हो जाने पर और कथित समय के व्यतीत हो जाने के पूर्व ही किसी प्रस्थापना के प्रतिगृहीत न किये जाने पर, प्रस्थापना स्वयमेव प्रतिसंहृत हो जाएगी, किन्तु प्रस्थापक इसे उस अवधि के पश्चात् तत्काल प्रतिसंहृत कर सकता है, जिसका अर्थ, मात्र इतना है कि यदि प्रतिगृहीता डाक में स्वयं के कारण हुए विलम्ब का लाभ उठाना चाहे तो नहीं उठा सकता अर्थात् वह स्वयं यह तर्क नहीं उठा सकता है कि वस्तुतः उसे यह प्रस्थापना जब भी दृष्टिगत हुई उसके 24 घंटे के भीतर ही उसने अपना प्रतिग्रहण संसूचित कर दिया था। जिसे प्रस्थापना की गई है, उस व्यक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रस्थापना में विनिर्दिष्ट अवधि तक प्रतीक्षा करे वरन् वह उसे प्राप्त होते ही, तत्काल भी प्रतिग्रहण कर सकता है किन्तु यह प्रतिग्रहण उस समय प्रभावी होगा जब कि उसने प्रतिग्रहण की संसूचना पारेषण के अनुक्रम में रख दी है। इसका समानान्तर परिणाम यह होता है कि प्रस्थापक के विरुद्ध वह उसी समय बाध्यकारी हो जाती है जबकि प्रतिगृहीता उस प्रस्थापना के प्रतिग्रहण की संसूचना को पारेषण के अनुक्रम में रख देता है और इस प्रकार प्रस्थापक यदि उस विनिर्दिष्ट अवधि से पूर्व ही अपनी प्रस्थापना का प्रतिसंहरण चाहे तो उसे चाहिए कि वह अपने प्रतिसंहरण को इस प्रकार संसूचित करे कि वह प्रतिगृहीता को उसके प्रतिग्रहण की सूचना को पारेषण के क्रम में रखने से पूर्व अथवा रखने के क्षण तक प्राप्त हो जाए, क्योंकि जिसने प्रतिग्रहण किया है वह भी यह तर्क नहीं उठा सकता कि उसने प्रस्थापना का प्रतिग्रहण तो समय से बहुत पूर्व कर लिया था किन्तु उसे संसूचित करने में विलम्ब हुआ। **नियम यह है कि पारेषण के कार्यक्रम में रखे जाने के क्षण ही संसूचना सम्पूर्ण समझी जाएगी, इससे पूर्व वह प्रतिगृहीत होने पर भी सम्पूर्ण नहीं है।**[2]

दूसरे प्रकार की प्रस्थापनायें जिनमें कि प्रतिग्रहण करने के लिए समय विनिर्दिष्ट नहीं रहता, उस समय प्रतिसंहृत हो जाती ह जबकि उनके प्रतिग्रहण को एक युक्ति युक्त समय तक संसूचित ही न किया जाए। **किसी मामले में युक्तियुक्त समय किस अवधि को माना जाए, यह एक तथ्यगत प्रश्न है और इस विषय में कोई स्थिर सिद्धान्त निश्चित नहीं किया जा सकता।**

एक मामले में, किसी कम्पनी में शेयर क्रय करने की 28 जून को की हुई प्रस्थापना के प्रतिग्रहण को 23 नवम्बर को संसूचित किया गया तो इसे प्रतिसंहृत माना गया क्योंकि यह युक्तियुक्त समय के व्यतीत हो जाने के पश्चात् का प्रतिग्रहण था[3]।

प्रतिग्रहण की किसी पुरोभाव्य शर्त को पूरा करने में प्रतिगृहीता की असफलता से प्रस्थापना के प्रतिसंहृत हो जाने का अर्थ यह है कि प्रस्थापना में दी हुई शर्त के पालन से प्रतिफल का उद्भव हो जाता है और प्रतिफल के उत्पन्न होते ही वह प्रस्थापना तुरन्त प्रतिगृहीत होकर वचन में परिणत हो जाती

1 फर्म शेख अहमद मुहम्मद अमीन बनाम फर्म बच्चू लालगगन्धन लाल, ए० आई० आर०, 1927 लाहौर 50.

2 देखिए संविदा अधिनियम, धारा 4.

3 राम्सगेट विक्टोरिया होटल कंपनी बनाम मोन्टेफियोर, एल० आर० (1966) एक्सचैकर कोर्ट्स 109; राम लाल बनाम मलिक, 183 आई० सी० 748.

है और जसे ही प्रतिगृहीता उस शर्त का पालन ऐसे कार्य द्वारा कर देता है जिसे अकृत करना उसकी शक्ति से बाहर हो जाए, तो उसी समय प्रतिग्रहण की संसूचना सम्पूर्ण हो जाती है और प्रस्थापक के विरुद्ध प्रभावी हो जाती है जो उसे फिर प्रतिसंहृत नहीं कर सकता। इसके विपरीत, यदि प्रस्थापक विहित समय के अन्तर्गत प्रस्थापना का पालन न करे तो प्रस्थापना प्रतिसंहृत हो जाती है और विहित अवधि के पश्चात् हुई शर्त का पालन प्रस्थापक के विरुद्ध प्रभावी नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए क ने ख से किसी माल के विक्रय की प्रस्थापना इस शर्त के साथ की कि ख उसे अमुक तिथि से पूर्व उस माल की कीमत का कोई भाग संदत्त कर दे। ऐसी दशा में यदि ख विहित तिथि से पूर्व कीमत की राशि के कथित भाग का संदाय करने में असफल रहता है तो, वह प्रस्थापना स्वयं प्रतिसंहृत हो जाती है।

प्रस्थापक की मृत्यु अथवा उन्मत्तता के द्वारा प्रतिसंहृत हो जाने वाली प्रस्थापनाओं के विषय में इंग्लिश और भारतीय विधि में अन्तर है। इंग्लिश विधि में, प्रस्थापक की मृत्यु के पश्चात् प्रतिगृहीत प्रस्थापना स्वयं ही प्रतिसंहृत हो जाती है भले ही प्रतिग्रहीता को प्रस्थापक की मृत्यु का प्रतिग्रहण के समय ज्ञान न हो[1]। प्रस्थापक की मृत्य का ज्ञान प्रतिग्रहण से पूर्व हो जाना आवश्यक नहीं है[2]। किन्तु भारतीय विधि[3] में इस सम्बन्ध में अभिव्यक्ततः यह कहा गया है कि प्रस्थापक की मृत्यु अथवा उन्मत्तता का ज्ञान प्रतिगृहीता को अपने प्रतिग्रहण से पूर्व हो जाने पर ही, प्रस्थापना प्रतिसंहृत होती है। अतः, यदि प्रतिगृहीता को अपने प्रतिग्रहण के समय प्रस्थापक की मृत्यु हो जाने का ज्ञान नहीं है तो प्रतिग्रहण की क्रिया सम्पूर्ण होकर प्रस्थापना वचन बन जाती है और प्रस्थापक के उत्तराधिकारियों पर प्रभावी हो जाती है, जबकि प्रस्थापना को वह व्यक्ति जिसे प्रस्थापना की गई है, स्वयं या उसका अधिकृत अभिकर्ता स्वीकार नहीं करता तब तक वह वचन नहीं हो सकती, अतः यह भी स्पष्ट है कि प्रतिगृहीता की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों द्वारा किया हुआ प्रतिग्रहण किसी भी प्रकार प्रभावी नहीं है।[4]

प्रस्थापना के वचन में सम्परिवर्तन की शर्तें

सिद्धान्ततः प्रस्थापना प्रतिगृहीत हो जाने पर वचन बन जाती है[5]। किन्तु जिस प्रतिग्रहण से प्रस्थापना वचन बन सके, उस प्रतिग्रहण के लिए विधि की कुछ आवश्यक शर्तों का पूरा करना अनिवार्य है। जो प्रतिग्रहण विधि की इन आवश्यक शर्तों को पूरा न कर सके, वह वचन में सम्परिवर्तित नहीं हो सकती। जबकि वह व्यक्ति, जिससे प्रस्थापना की जाती है उसके प्रति अपनी अनुमति संज्ञापित करता है, तब वह प्रस्थापना प्रतिगृहीत हुई कही जाती है। अतः, इस अनुमति का संज्ञापन, ही विधिविहित रीति से होना चाहिए। विधि के अनुसार[6] वह प्रतिग्रहण जो प्रस्थापना को वचन में संपरिवर्तित कर सके—

(1) आत्यन्तिक होना चाहिए।

---

[1] कार बनाम लिविंग स्टोन, (1865) 55 इंग्लिश रिपोर्ट्स 809, 810.

[2] ब्लेड्स बनाम फ्री, 9 बार्नेवाल एंड क्रैस वेल्स रिपोर्ट्स 167.

[3] संविदा अधिनियम, धारा 6 (4).

[4] भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 6 प्रस्थापना के प्रतिसंहरण की केवल 4 अवस्थाओं का उल्लेख करती है जिनमें उपरोक्त अवस्था का उल्लेख नहीं है किन्तु उपरोक्त मत की पुष्टि, चेशायर बैंकिंग कम्पनी वाले मामले, 32 एल० आर० 301 चान्सरी डिवीजन से होती है.

[5] संविदा अधिनियम, धारा 2(ख).

[6] देखिए संविदा अधिनियम, धारा 7.

(2) अविशेषित होना चाहिए ।

(3) यदि प्रस्थापना में इसे विहित न किया गया हो कि उसे किस प्रकार प्रतिगृहीत किया जाए, तो प्रतिग्रहण को किसी प्रायिक और युक्तियुक्त प्रकार से अभिव्यक्त होना चाहिए।

(4) यदि प्रस्थापना में उसे प्रतिगृहीत करने की रीति विहित की गई हो, तथापि प्रतिग्रहण उस विहित रीति से न किया जाए, तो प्रस्थापक को, प्रतिग्रहण संसूचित हो जाने के पश्चात्, प्रतिगृहीता से यह आग्रह करने का अधिकार है कि प्रस्थापक की प्रस्थापना को प्रतिगृहीता द्वारा, उसी विहित रीति से प्रतिग्रहण किया जाए अन्यथा न किया जाए।

(5) यदि प्रतिगृहीता प्रस्थापना का प्रतिग्रहण तो करे किन्तु ऐसा प्रतिग्रहण, प्रस्थापक द्वारा, विहित रीति के अनुसार न हो और प्रस्थापक प्रतिगृहीता से यह आग्रह भी न करे कि प्रस्थापना का प्रतिग्रहण उसी विहित रीति के अनुसार ही हो तो यह माना जाएगा कि प्रस्थापक को स्वयं प्रतिगृहीता की रीति से किया हुआ प्रतिग्रहण ही स्वीकार है ।

न्या० एस० एम० सोकरी (जैसे कि वह तब थे) के अनुसार विधि की आवश्यकता यह है कि प्रस्थापना का प्रतिग्रहण आत्यन्तिक, बिना शर्त होना चाहिए । सशर्त प्रतिग्रहण, विधि की दृष्टि में, कोई प्रतिग्रहण नहीं है[1] । प्रस्थापना का प्रतिग्रहण प्रस्थापना की प्रत्येक बात के अनुकूल होना चाहिए और प्रस्थापना और प्रतिग्रहण की अनुकूलता असंदिग्ध होनी चाहिए ।[2] यह असंदिग्धता ही पक्षकारों के मतैक्य का प्रमाण है । यदि प्रस्थापना को पूर्णतः स्वीकार न किया जाए तो मतैक्य उत्पन्न नहीं हो सकता भले ही जिस बात को स्वीकार न किया गया हो वह प्रस्थापना की कोई तुच्छ बात ही हो[3] प्रस्थापना यदि संयुक्त भाव में की गई हो तो यह आवश्यक है कि प्रतिगृहीता उसे संयुक्त रूप में ही स्वीकार करे क्योंकि प्रतिगृहीता किसी संयुक्त प्रस्थापना को केवल भागतः प्रतिगृहीत नहीं कर सकता और न ही प्रस्थापक को वह केवल प्रतिगृहीत भाग के लिए बाध्य ही कर सकता है[4] ।

निष्पन्न (कनक्लूडेड) संविदा

प्रस्थापना को आत्यन्तिक रूप से और बिना शर्त स्वीकार कर लेने से संविदा निष्पन्न (कनक्लूडेड) हो जाती है । निष्पन्न संविदा वही है जिसके द्वारा सृष्ट दायित्व, असंदिग्ध हो । उदाहरण के लिए, एक करार के आधार पर विक्रेता ने किसी परिसर के विक्रय की तथा क्रेता ने क्रय की, स्वीकृति दे दी किन्तु करार में एक खंड वर्तमान रहा कि विक्रेता एक निश्चित अवधि में विक्रय-विलेख का निष्पादन कर देगा तो ऐसी संविदा निष्पन्न संविदा मानी जाएगी । न्या० एस० एन० द्विवेदी के मतानुसार, यहां विक्रेता का विक्रय करने का और क्रेता का क्रय करने का दायित्व संविदा के गठन से ही सृष्ट हो गया[5] ।

---

[1] बद्री प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 706 (712).

[2] ओरिएंटल इन लैंड स्टीम कंपनी बनाम क्रिग्स, (1861) 45 इंग्लिश रिपोर्ट्स 1157.

[3] दीपचंद्र बनाम रुकुनुद्दौला, ए० आई० आर० 1951 इलाहाबाद 93.

[4] जनरल एश्योरेन्स सोसाइटी बनाम एल० आई० सी० ऑफ इंडिया, ए० आई० आर० 1964 एस० सी० 892: [1964] 5 एस०सी०आर० 125.

[5] डॉ० जीवन लाल और अन्य बनाम बृज मोहन मेहरा और अन्य, ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 559: [1972] 2 एस० सी० आर० 757.

किसी संविदा को निष्पन्न संविदा बनाने के लिए दायित्व किस प्रकार के हों, इस विषय में, **मैसर्स हिन्द टोबैको एण्ड सिगरेट कम्पनी** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में, न्या० आई० डी० दुआ ने यह अभिनिर्धारित किया कि "दायित्व इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें पक्षकारों ने जिस दायित्व का परिवचन किया है उस दायित्व की किसी मूलभूत शर्त का मर्म निहित हो"। जैसे किसी भवन के क्रय का प्रस्ताव 25 जुलाई से आधिपत्य लेने की शर्त पर किया गया किन्तु प्रतिग्रहण में आधिपत्य 1 अगस्त को देना स्वीकार किया जाए तो यह निष्पन्न संविदा नहीं मानी जा सकती[2] क्योंकि 25 जुलाई, संविदा की, मूलभूत शर्त का मर्म है। अस्तु, जहां प्रस्थापना और प्रतिग्रहण के शब्दों में ही कुछ हेर फेर हो किन्तु किसी मूलभूत शर्त के मर्म में किसी प्रकार का अन्तर न हो तो ऐसे हेरफेर का कोई महत्व नहीं है[3]।

प्रतिग्रहण की रीति के विषय में प्रस्थापक का दायित्व

भारतीय विधि में, वस्तुतः यह प्रस्थापक का दायित्व है कि वह प्रतिगृहीता को संसूचित करे कि प्रस्थापना किस प्रकार से प्रतिगृहीत की जानी है। यदि प्रस्थापक की ओर से प्रतिग्रहण का कोई विशेष प्रकार निर्दिष्ट नहीं है तो प्रतिगृहीता अपना प्रतिग्रहण किसी युक्तियुक्त और प्रायिक प्रकार से अभिव्यक्त कर सकता है।

एक विक्रेता ने प्रस्थापना के अपने पत्र में क्रेता को यह निर्देशित किया कि प्रतिग्रहण विक्रेता के अभिकर्ता को लिखित रूप में संसूचित किया जाए किन्तु क्रेता ने, विक्रेता के अभिकर्ता को संसूचित करने के स्थान पर, स्वयं विक्रेता के पास ही अपना संदेश वाहक भेज कर विक्रेता को ही संसूचित करना चाहा तो ऐसी दशा में, इस स्वीकृति को युक्तियुक्त और प्रायिक प्रकार का ही माना जाएगा[4]।

यद्यपि प्रस्थापक को यह तो स्वतन्त्रता है कि वह प्रतिग्रहण किस प्रकार से किया जाना है यह निर्दिष्ट कर दे किन्तु किसी भी दशा में, **मौन स्वीकृति लक्षण** वाली उक्ति विधिमान्य नहीं है। जहां प्रस्थापक यह कहे कि इस प्रस्थापना का कोई प्रत्युत्तर न आने पर इसे स्वीकृत समझा जाएगा, तो प्रस्थापना का यह प्रकार विधिसंगत नहीं कहा जा सकता। **हाजी मोहम्मद** बनाम **स्पिनर**[5] वाले मामले में, मुख्य न्यायाधिपति लार्ड जैन्किन्स ने कहा है कि यह किसी भी प्रस्थापक को अधिकार नहीं है कि प्रतिगृहीता पर प्रस्थापना को अस्वीकार करने की बाध्यता डाल दे जिसका फल यह हो कि वह यदि अस्वीकार न करे तो इसके दंड स्वरूप इसे स्वीकृति ही मान लिया जाए अथवा प्रतिगृहीता के मौन को ही उसकी स्वीकृति से संलग्न कर दे।

जहां इंग्लिश विधि में यह आवश्यक है कि प्रस्थापना का प्रतिग्रहण प्रस्थापक द्वारा विहित प्रकार से ही अभिव्यक्त होना चाहिए, वहां भारतीय विधि में तनिक अन्तर है, वह यह कि प्रस्थापक का स्वयं का यह दायित्व है कि प्रतिग्रहण के उसके द्वारा विहित रीति से न होने पर वह प्रतिगृहीता से आग्रह करे कि प्रतिग्रहण विहित रीति से ही किया जाए, अन्यथा नहीं, किन्तु यदि वह इस प्रकार का आग्रह नहीं करता अथवा वह प्रतिगृहीता के अन्य प्रकार से किये गए प्रतिग्रहण पर कोई आपत्ति नहीं करता तो यह माना जाएगा कि प्रतिगृहीता ने जिस प्रकार से भी प्रतिग्रहण किया है, वही प्रस्थापक को भी मान्य है।

---

[1] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 751 (1973) 2 एस० सी० सी० 360.

[2] राउटलेज **बनाम** ग्रांट, (1828) 130 इंग्लिश रिपोर्ट्स 920.

[3] हेवर्थ **बनाम** नाइट, (1864) 144 इंग्लिश रिपोर्ट्स 120.

[4] सुरेन्द्र नाथ **बनाम** केदार नाथ, ए० आई० आर०, 1936, कलकत्ता 97.

[5] 2 बाम्बे लॉ रिपोर्टर 691.

प्रस्थापना की शर्तों में परिवर्तन का प्रभाव

प्रतिगृहीता को प्रस्थापना की शर्तों में परिवर्तन करने का अधिकार है किन्तु इस परिवर्तन का प्रभाव एक प्रति प्रस्थापना को जन्म देना है और मूल प्रस्थापक की सहमति जब तक न हो, ऐसी प्रस्थापना से किसी संविदा का गठन नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में मूल प्रस्थापक की प्रस्थापना केवल प्रस्थापना के लिए आमन्त्रण मात्र रह जाती है जिसका प्रतिगृहीता की ओर से की गई प्रतिप्रस्थापना में विलयन हो जाता है और फिर मूल प्रस्थापक उसे न स्वीकार करे तो संव्यवहार यहीं समाप्त हो जाता है, किन्तु यदि मूल प्रस्थापक उस प्रति प्रस्थापना को स्वीकार कर लेता है तो मूल प्रस्थापना से प्रादुर्भूत संव्यवहार का एक नवीन संविदा में उदय हो जाता है। यह संव्यवहार का क्रम पक्षकारों की बातचीत के साथ अग्रसर होता रहता है और संविदा अन्ततः तभी गठित हो पाती है जब दोनों पक्षों का आत्यन्तिक मतैक्य हो जाए। भारतीय संविदा विधि का यह नियम कि प्रतिग्रहण आत्यन्तिक और बिना शर्त होना चाहिए[1], वस्तुतः पक्षकारों के मध्य मतैक्य और शर्तों के सुनिश्चय की दिशा में उद्दिष्ट है।

संविदा के गठन का क्षण

जहां संविदा का गठन पक्षकारों के मध्य वार्तालाप या पत्राचार के एक विस्तृत क्रम में अग्रसर हो और अन्ततः पक्षकारों के मध्य किसी विवाद का जन्म हो जाए, वहां न्यायालयों के समक्ष यह कठिनाई उपस्थित हो जाती है कि वस्तुतः पक्षकार किस समय और किन शर्तों के प्रति एकमत हुए थे। **संविदा की विषय-वस्तु पर पक्षकारों के मध्य जिस क्षण भी मतैक्य उपस्थित होने का ज्ञान हो, वही क्षण पक्षकारों के मध्य वास्तविक संविदा का है**[2]। प्रतिग्रहण के आत्यन्तिक और बिना शर्त होने का विधि का आग्रह इसी निमित्त है कि जिन शर्तों पर पक्षकार संव्यवहार के जिस चरण में एकमत हो सकें, वही संविदा का क्षण है। यह मतैक्य होते ही संविदा का अस्तित्व हो जाता है और संविदा के अस्तित्व के साथ ही पक्षकारों का प्रत्येक आगामी वार्तालाप अथवा पत्रव्यवहार महत्व का हो जाता है[3]। न केवल यह आगामी वार्तालाप महत्व का हो जाता है वरन् इस आगामी वार्तालाप से संविदा का स्वरूप विचलित नहीं होता और पक्षकारों को इसकी शर्त के दायित्व से बचना कठिन है[4]।

सशर्त प्रतिग्रहण की परख

कौनसा प्रतिग्रहण सशर्त है, इसके परीक्षण में भी प्रायः कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। यदि किसी माल के लिए किये गये आदेश (आर्डर) का प्रतिग्रहण इस संसूचना से किया जाए कि **"डाक द्वारा सम्पुष्टि के अधीन"** तो यह एक सशर्त स्वीकृति का उदाहरण है[5]। किसी नीलाम द्वारा किये गए विक्रय में यदि यह शर्त है कि जिस बोली के अधीन नीलाम किया गया है, वह किसी उच्चाधिकारी के अनुमोदनाधीन है तो वह सशर्त प्रतिग्रहण है[6]। **ओ ग्रेडी बनाम हवटविन**[7] वाले मामले में, प्रतिवादी ने एक घोड़े के विक्रय के लिए विज्ञापन निकाला जिसका वादी ने उत्तर दिया। पक्षकारों

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 7.

[2] हस्सी **बनाम** होम पेन, (1879) 4 ए० सी० 311.

[3] देखिये राधाकिशन **बनाम** शंकर, 100 आई० सी० 422; जय नारायण **बनाम** सूरजमल, ए० आई० आर० 1949 एफ० सी० 211.

[4] मिल स्टोर्स ट्रेडिंग कंपनी **बनाम** मथुरा दास, ए० आई० आर० 1920 नागपुर 161

[5] जुगल किशोर गुलाब सिंह **बनाम** पारस लाल, ए० आई० आर० 1930 लाहौर 325.

[6] भारत संघ **बनाम** नारायण सिंह, ए० आई० आर० 1953 पंजाब 274.

[7] 9 ए० एल० जे० 285.

के मध्य आगामी पत्राचार में, प्रतिवादी ने उस घोड़े के नीरोग होने का समर्थन किया और वादी उस घोड़े की नीरोगता के विषय में पशु चिकित्सक का प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए जाने पर, उस के क्रय के लिए सहमत हो गया। घोड़े के परिदान पर घोड़ा रुग्ण पाया गया किन्तु यह अवधारित हुआ कि वादी द्वारा घोड़े की नीरोगता की वारण्टी मांगने और प्रतिवादी द्वारा ऐसी वारण्टी प्रस्तुत करने के क्षण ही संविदा का गठन हो गया और ऐसे गठन के पश्चात् जो भी अन्य बातचीत पक्षकारों के मध्य हुई वह किसी भी प्रकार उस पशु की नीरोगता की गारण्टी का अधित्यजन नहीं माना जा सकता। किन्हीं दशाओं में सशर्त प्रतिग्रहण आत्यन्तिक प्रतिग्रहण बन सकता है। यदि कोई प्रस्थापना की जाए और उसे बिना शर्त स्वीकार कर लिया जाए तो उससे संविदा का गठन हो जाता है किन्तु यदि प्रस्थापना को सशर्त स्वीकार किया जाए तो वह प्रतिग्रहण न होकर केवल प्रतिप्रस्ताव है जिसे यदि प्रस्थापक प्रतिगृहीत न करे तो किसी संविदा का निर्माण नहीं हो सकता[1]। जहां रेलवे ने एक चैक पूर्ण संदाय मानते हुए भेजा किन्तु प्रतिगृहीता ने उसे आंशिक संदाय माना और ऐसा रेलवे को संसूचित कर दिया तो रेलवे द्वारा उसे आंशिक संदाय की प्रस्तावना का प्रतिग्रहण माना गया[2]। किन्तु यदि ऐसे किसी चैक को प्रतिगृहीता बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर ले और नगदी में भुना ले तो यह पूर्ण संदाय का आत्यन्तिक प्रतिग्रहण मान लिया जायेगा[3]।

विलेख द्वारा संविदा का गठन

जहां पक्षकारों में संविदा हो जाने पर भी यह सहमति हो कि संविदा का निष्पादन विधिवत् विलेख के द्वारा किया जाए, वहां भी प्रायः यह दुविधा उत्पन्न हो जाती है कि इन दशाओं में निश्चित विलेख के अभाव में संविदा का गठन हुआ भी या नहीं। इस विषय में दो सम्भावनायें हो सकती हैं—प्रथम यह कि या तो निश्चित विलेख द्वारा संविदा का निष्पादन, पक्षकारों की एक सहज वांछा थी, द्वितीय यह कि इस प्रकार विलेख द्वारा निष्पादन, संविदा की एक पुरोभाव्य शर्त थी। प्रथम दशा में संविदा का गठन हो चुकता है किन्तु द्वितीय दशा में, यह एक आवश्यक शर्त है और जब तक इस शर्त का पालन न हो जाए, संविदा का गठन नहीं हो सकता। यह वस्तुतः एक सूक्ष्म भेद है और परिस्थितियों के सांगोपांग परीक्षण से ही इसका विनिश्चय संभव है[4]। यदि किसी गृह सम्पत्ति के करार में यह शर्त हो कि सम्पत्ति के हक के सम्बन्ध में सालिसिटर के अनुमोदन पर कीमत का तुरन्त संदाय किया जाएगा, वहां यह माना जाएगा कि संविदा, सालिसिटर द्वारा हक के अनुमोदन किये जाने की शर्त के अधीन नहीं है, वरन् सालिसिटर द्वारा स्वत्व का अनुमोदन संविदा की पुरोभाव्य शर्त है जिसके पालन होते ही संविदा का गठन, हस्तान्तरण की बिना प्रतीक्षा किये ही, हो जाता है[5]।

आचरण, शर्त के पालन, अथवा परिस्थिति से प्रतिग्रहण

किसी प्रस्थापना की शर्तों का पालन या व्यतिकारी वचन के लिए, जो प्रतिफल किसी प्रस्थापना के साथ पेश किया गया हो, उसका प्रतिग्रहण, उस प्रस्थापना का प्रतिग्रहण है[6]।

---

1 भारत संघ बनाम बाबूलाल, ए० आई० आर० 1968 मुम्बई 294.

2 तदैव, फुटनोट सं० 68.

3 अमृत वनस्पति बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1966 इलाहाबाद 104.

4 सुबोध चंद्र बनाम हिमांशु वाला, (1955) 60 सी० डब्ल्यू० एन०, 423 तथा लावण्य रे बनाम पी० एम० मुखर्जी, (1963) 68 सी० डब्ल्यू० एन० 611.

5 मिश्री लाल बनाम निताई चंद्र, (1933) 58 सी० एल० जे० 513.

6 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 8.

कुछ मामले ऐसे होते हैं जहां प्रतिग्रहण के आत्यन्तिक और बिना शर्त होने का प्रतिगृहीता के आचरण से ही अनुमान किया जा सकता है। आचरण द्वारा प्रतिग्रहण, दो प्रकार से अभिव्यक्त हो सकता है—प्रथम, प्रस्थापना की शर्तों के विधिवत् पालन से; द्वितीय, जहां व्यतिकारी वचन हो वहां प्रस्थापना में निहित प्रतिफल के ग्रहण कर लिये जाने से।

ऐसे प्रस्ताव के प्रतिग्रहण में जिसमें कि प्रस्थापक ने प्रतिग्रहण के रूप में वचन ही चाहा है, और ऐसे प्रस्ताव के प्रतिग्रहण में जहां कि प्रस्थापना के वचन बन जाने की शर्त के रूप में, प्रतिगृहीता द्वारा प्रस्तावित कार्य के किए जाने की अपेक्षा हो, एक **तात्विक भेद** है। प्रथम दशा में, जहां प्रतिग्रहण प्रतिगृहीता के वचन द्वारा, किया जाना है, वहां उस वचन से प्रस्थापक को संसूचित किया जाना आवश्यक है। किन्तु द्वितीय दशा में जहां प्रतिग्रहण, प्रतिगृहीता के कार्य के रूप में ही संपूर्ण हो सकता हो, वहां प्रस्थापित कार्य के कर लिए जाने के अतिरिक्त प्रतिग्रहण की किसी अन्य संसूचना की आवश्यकता नहीं है। इस द्वितीय अवस्था में प्रतिगृहीता द्वारा प्रस्थापित कार्य का कर लिया जाना ही संसूचना के आशय से ओतप्रोत है और संसूचना का ही प्रभाव रखता है। विधि में किसी ऐसे कार्य या लोप को भी संसूचना के रूप में ही मान्यता प्राप्त है[1] जो कि संसूचना का आशय रखता हो या जो उसे संसूचित करने का प्रभाव रखता हो। जहां क और ख के मध्य यह करार हुआ कि यदि क द्वारा भेजी गई प्ररूपित संविदा को ख नहीं लौटाएगा तो इसे ख द्वारा प्रतिगृहीत माना जाएगा और ख ने, प्ररूपित संविदा रख ली तो यह माना जाएगा कि ख ने उसे अपने आचरण द्वारा प्रतिगृहीत कर लिया था।[2]

कार्लिल बनाम कार्बोलिक स्मोक बाल कम्पनी[3], वाले मामले में एक विज्ञापन द्वारा प्रस्थापना की गई थी कि जो व्यक्ति कार्बोलिक स्मोक बाल नामक औषधि की गोली दो सप्ताह प्रतिदिन तीन गोली खाकर भी इन्फ्लुएन्जा के संक्रामक रोग से ग्रस्त हो जाए, उसे 100 पौंड का पुरस्कार प्रदान किया जाएगा। इसमें वादी द्वारा विज्ञापित विधि के अनुसार निश्चित अवधि तक गोली का सेवन ही इस प्रस्थापना के प्रतिग्रहण की संसूचना मान ली गई।

समाचार पत्रों द्वारा इस विषय के विज्ञापन आदि में तथा किसी प्रतियोगिता आदि की सार्वजनिक घोषणा द्वारा की हुई, प्रस्थापनाओं के विषय में यही नियम है कि उनका प्रतिग्रहण, प्रस्थापना की शर्तों के पालन मात्र से ही, हो जाता है। आवश्यक इतना अवश्य है कि प्रतिगृहीता का वह कार्य स्वतः अथवा अन्य किसी परिस्थिति के प्रभाव से न होकर, अनन्यतः प्रस्थापना के पूर्व ज्ञान और तत्कथित शर्तों के अनुपालन के फलस्वरूप किया जाना चाहिए। **लालमन शुक्ला बनाम गौरीदत्त**[4] वाले मामले में, एक व्यक्ति ने अपने खोये हुए बालक की खोज के लिए पुरस्कार की घोषणा की किन्तु इस घोषणा से पूर्व ही वह अपने मुनीम को बालक की खोज में भेज चुका था और मुनीम उक्त पुरस्कार की घोषणा से अज्ञात रहा तथापि वह बालक को खोज लाया, वहां मुनीम को इनाम का हकदार नहीं माना गया, विशेषकर इसलिए कि वह तो अपने स्वामी के आदेशों का पालन करने के लिए वैसे भी दायित्वाधीन था, जिसमें उसका कार्य प्रस्थापना की शर्तों का अनुपालन न होकर अपने स्वामी के आदेश का अनुपालन था।

---

1 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 3.

2 घाती शरन माथुर गद्दरमल **बनाम** चंद्रभान, ए० आई० आर०, 1968, इलाहाबाद 212.

3 (1893) क्यू० बी० 256.

4 11 ए० एल० जे० 489.

मान लीजिए कि किसी क्षेत्र में किसी नृशंस पशु के उत्पात से पीड़ित होकर, वहां के अधिकारियों ने उस पशु के वध के लिए पुरस्कार की घोषणा की। अब कोई व्यक्ति, मार्ग में सहसा उसी पशु से आक्रान्त होकर, आत्म-रक्षा में उस पशु का वध करने में सफल हो जाता है तो वह पुरस्कार का हकदार नहीं होगा क्योंकि उसका यह कार्य प्रस्थापना की शर्तों के पालन में न होकर केवल परिस्थितिवश था।

प्रस्थापना के संज्ञान और प्रस्थापना की शर्तों के अनुपालन में विनिर्दिष्ट कार्य करने के पश्चात् प्रतिग्रहण की संसूचना अनिवार्य नहीं है। जैसे किसी पुस्तक विक्रेता को यह आदेश दिया जाए कि वह "सामण्ड के न्यायशास्त्र" पुस्तक की 50 प्रतियां पार्सल ट्रेन से भेज दे, तो पुस्तक विक्रेता द्वारा पुस्तकों को पार्सल ट्रेन से भेज देना ही प्रस्थापना की शर्तों का अनुपालन है। हां, यह पृथक् बात है कि प्रस्थापक ने स्वयं ही प्रतिग्रहण की संसूचना को प्रतिग्रहण की पुरोभाव्य शर्त बना दिया हो। ऐसी दशा में शर्त के अनुपालन से पूर्व, प्रतिग्रहण की संसूचना अनिवार्य होगी।

जहां प्रस्थापना उसमें विहित शर्तों के पालन द्वारा प्रतिगृहीत की जा सकती है, वहीं इस नियम का यह फल भी होगा कि **यदि प्रस्तावित शर्तों का पालन नहीं किया गया तो, प्रस्थापना का प्रतिग्रहण भी किसी भांति नहीं माना जा सकता। मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **फर्म गोरधन दास कैलाश नाथ**[1] वाले मामले में, वनों के प्रमुख संरक्षण अधिकारी द्वारा एक सूचना के प्रत्युत्तर से गोवर्धन दास कैलाश नाथ फर्म ने अपनी निविदा प्रस्तुत की जो सर्वाधिक उपयुक्त होने के कारण, स्वीकार कर ली गई; किन्तु वह फर्म, प्रारम्भ में ही, क्रय मूल्य के 25 प्रतिशत का निक्षेप, निर्धारित अवधि तक, करने में असफल रही जबकि ऐसा निक्षेप निविदा की स्वीकृति के लिए सूचना में ही एक पुरोभाव्य शर्त बताई गई थी। ऐसे निक्षेप के अभाव में जबकि सम्बन्धित अधिकारी में उस शर्त के अभित्यजन की शक्ति भी निहित नहीं थी, न्या० ज० एम० शलत ने, किसी बाध्यकारी और निष्पन्न (कनक्लूडेड) संविदा का गठन नहीं माना। **प्रतिग्रहण का अनुमान किसी मामले के तत्वों और परिस्थितियों के आधार पर भी किया जा सकता है।**[2]

प्रतिफल के ग्रहण से प्रतिग्रहण

व्यतिकारी वचन में, किसी प्रस्थापना के साथ पेश किये गये प्रतिफल को ग्रहण कर लेना ही उस प्रस्थापना की शर्तों का पालन है। इस प्रकार के प्रतिग्रहण के उदाहरण, सामान्यतः उन संविदाओं में उपलब्ध होते हैं जहां माल का विक्रय अनुमोदनाधीन होता है। ऐसे उदाहरणों में, माल, विक्रेता द्वारा क्रेता को परिदत्त कर दिया जाता है तथा विक्रय को क्रेता के अनुमोदन पर, सम्पूर्ण मान लिया जाता है। अब यदि क्रेता माल को, किसी निश्चित अवधि तक अथवा, जहां अवधि निर्धारित न हो, किसी युक्तियुक्त अवधि में, न लौटाये और माल को रख ले तो उसके द्वारा माल का रखना प्रतिफल के ग्रहण द्वारा प्रस्थापना का ही प्रतिग्रहण है जिसकी संसूचना की आवश्यकता नहीं है।[3]

---

1 ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1164;(1973) 1 एस० सी० डब्ल्यू० आर० 456;(1973)1 एस० सी० सी० 668-1973 एस० सी० डी० 598.

2 राव एंड संस **बनाम** विजय लक्ष्मी दास, ए०आई० आर० 1969 उड़ीसा 301, 304.

3 किरखाम **बनाम** अटेन बरो, (1877) 1 क्यू० बी० 201.

अभिव्यक्त और विवक्षित वचन

जहां किसी वचन की प्रस्थापना या उसका प्रतिग्रहण शब्दों में किया गया है वह वचन अभिव्यक्त कहलाता है किन्तु जहां ऐसी प्रस्थापना या प्रतिग्रहण शब्दों से अन्यथा किया जाता है, यह वचन विवक्षित कहलाता है ।[1]

शब्दों द्वारा अभिव्यक्त वचन दो प्रकार का हो सकता है एक लिखित अथवा दूसरा मौखिक । विवक्षित वचन को विवक्षित संविदा भी कहा जा सकता है । विवक्षित वचन पक्षकारों के पारस्परिक संव्यवहार तथा मामले की विशेष परिस्थितियों के परीक्षण से ही सिद्ध होने योग्य है तथा इसे पक्षकारों के आचरण से ही ज्ञात किया जा सकता है ।

अभिव्यक्त और विवक्षित वचनों में भेद केवल उन्हें परिसिद्ध करने के ढंग तक ही सीमित है । अभिव्यक्त वचन प्रत्यक्ष साक्ष्य से तथा विवक्षित वचन पारिस्थितिक साक्ष्य से परिसिद्ध किया जा सकता है किन्तु परिसिद्ध हो जाने पर, दोनों से उद्भूत विधिक परिणाम समान होते हैं।

विवक्षित वचन चार प्रकार से उद्भूत हो सकते हैं —

1. जहां कि प्रस्थापना में ही विहित हो कि उसे किस प्रकार प्रतिगृहीत किया जाना है और वह विहित प्रकार शब्दों में अभिव्यक्त किये जाने से किसी पृथक प्रकार का हो;[2]

2. जहां कि प्रतिग्रहण प्रस्थापना की शर्तों के पालन मात्र से ही हो जाए;[3]

3. जहां कि प्रतिग्रहण प्रस्थापना के साथ पेश किये गए प्रतिफल के प्रतिग्रहण से ही कल्पित हो;[4] तथा

4. जहां पक्षकारों का व्यवहार, सामान्य और प्रायिक व्यापारिक अथवा स्थानीय प्रथाओं के अधीन हो, वहां उन प्रथाओं के ज्ञान से ही पक्षकारों के मध्य वचन का अनुमान किया जा सकता है जबकि पक्षकारों का व्यवहार उन प्रथाओं के अन्तर्गत प्रचलित रहा है । उदाहरण के लिए जहां ऋण के सम्बन्ध में मिश्रधन व्याज का प्रचलन हो, वहां ऋण पर चक्रवृद्धि व्याज के विवक्षित वचन का अनुमान किया जा सकता है ।[5]

डाक, तार अथवा टेलीफोन की संसूचनाओं में संविदा गठन का स्थान

संविदा अधिनियम में अभिव्यक्ततः उस स्थान की चर्चा नहीं है जहां कि संविदा का गठन होना माना जाए । भारतीय संविदा अधिनियम में टेलीफोन के माध्यम से प्रस्थापना और प्रतिग्रहण की संसूचनाओं की कल्पना नहीं की गई है । अधिनियम की धारा 4 में डाक द्वारा संसूचनाओं की कल्पना अवश्य की गई है और प्रतिग्रहण और प्रतिसहरण दोनों ही प्रकार की संसूचनाओं के विषय में यह उपबन्ध किया गया है कि यह सम्बन्धित प्रस्थापक अथवा प्रतिसंहरण करने वाले के विरुद्ध तब सम्पूर्ण हो जाती है जबकि संसूचना को पारेषण के अनुक्रम में इस प्रकार कर दिया जाए कि वह सम्बन्धित व्यक्ति की शक्ति के बाहर हो जाए । धारा 4 की यह विवक्षा कदापि नहीं है कि संविदा का गठन प्रस्थापक के लिए किसी एक स्थान पर तथा प्रतिगृहीता के लिए किसी अन्य स्थान पर हो । डाक से की हुई

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 9.

[2] देखिये भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 7.

[3] देखिये भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 8.

[4] तदैव.

[5] अन्नामलाई बनाम दोरायसिंगम, ए० आई० आर० 1935 मद्रास 718.

संविदा वस्तुत: उसी स्थान पर और उसी क्षण गठित हो जाती है जबकि प्रतिगृहीता द्वारा प्रतिग्रहण की संसूचना को पारेषण के अनुक्रम में इस प्रकार कर दिया जाए कि वह प्रतिगृहीता की शक्ति से बाहर हो जाए। जहां प्रस्थापना और प्रतिग्रहण की संसूचना में तार द्वारा प्रेषित की जाए वहां इसी नियम को लागू किया जाएगा अर्थात संसूचनाय उसी क्षण और उसी स्थान पर सम्पूर्ण मानी जाएंगी जहां और जिस समय तार को पारेषण के अनुक्रम में इस प्रकार कर दिया जाए कि वह तारकर्ता की शक्ति से बाहर हो जाए। किन्तु टेलीफोन द्वारा प्रस्थापना अथवा प्रतिग्रहण की दशा में डाक अथवा तार की दशाओं से तनिक भेद है। डाक और तार में, डाक-तार विभाग जैसी एक पर-संस्था के अभिकरण और मध्यस्थता की आवश्यकता रहती है जबकि टेलीफोन की अवस्था में ध्वनितरंगों के माध्यम से पक्षकार एक दूसरे से साक्षात का अनुभव करते हैं और वैद्युत संयन्त्रों के अतिरिक्त अन्य कोई अभिकरण अथवा मध्यस्थ उस संव्यवहार में सम्मिलित नहीं होता। इंग्लैंड की विधि में इस सम्बन्ध में यह नियम है कि टलीफोन से की हुई संविदा उस स्थल पर, सम्पूर्ण हुई समझी जाएगी जहां प्रतिग्रहण की संसूचना प्रस्थापना करने वाले को प्राप्त हुई हो।[1] **भारतीय विधि में जहां किसी विषय में स्पष्ट उपबन्ध न हो, वहां इंग्लैंड की विधि का ही अनुसरण किया जाएगा।** भगवानदास गोवर्धनदास बनाम गिरधारी लाल पुरुषोत्तम दास[2] वाले मामले में, न्यायाधिपति जे० सी० शाह ने स्वयं तथा न्यायाधिपति के० एन० वांचू की ओर से उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए निर्णय में उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि जहां टेलीफोन द्वारा वादी ने अहमदाबाद से प्रस्थापना की जिसे प्रतिवादी ने खाम गांव से टेलीफोन पर प्रतिगृहीत किया और वादी ने इस संसूचना को टेलीफोन पर अहमदाबाद में ग्रहण किया, वहां यह मानना होगा कि संविदा का गठन अहमदाबाद में हुआ।

प्रतिवादी ने गोरखपुर से वादी को तार द्वारा फोरसेबगंज में किसी माल का भाव बताया और प्रतिवादी ने फोरसेबगंज से वादी को पत्र द्वारा माल क्रय करने का आदेश दिया और तब प्रतिवादी ने गोरखपुर से तार द्वारा माल क्रय करने की सूचना वादी को प्रेषित की तो माटन हेला बनाम महावीर इण्डस्ट्रीज[3] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि संविदा का गटन गोरखपुर में हुआ जहां कि प्रतिग्रहण की संसूचना पारेषण के अनुक्रम में कर दी गई।

नीलाम की संविदा में प्रस्थापना का प्रतिसंहरण

नीलाम द्वारा गठित होने वाली संविदाओं के सम्बन्ध में, **टी० लिंग गाउडर बनाम मद्रास राज्य**[4] वाले मामले में, विधि का कथन इस प्रकार किया गया है कि नीलाम द्वारा विक्रय में ऐसी किसी शर्त का कि बोली वापस नहीं ली जा सकेगी, कोई प्रभाव नहीं होता जब तक कि ऐसी शर्त किसी कानूनी प्राधिकार के बल पर न हो अथवा जब तक कि प्रतिफल बोली के साथ ही उद्‌भूत न हो चुका हो। नीलाम के संव्यवहार में प्रत्येक बोली लगाने वाला केवल प्रस्थापना करता है और यह दोनों पक्षों पर उस समय तक बाध्यकारी नहीं होती जब तक कि नीलामकर्ता उस बोली द्वारा की हुई प्रस्थापना को प्रतिग्रहण न कर ले, क्योंकि बहुधा नीलामकर्ता अपना यह अधिकार सुरक्षित रख लेता है कि वह सबसे ऊंची बोली को भी प्रतिगृहीत न करे। अत: **किसी बोली को जब तक नीलामकर्ता द्वारा आत्यन्तिक रूप से**

1 एंटोर्स लिमिटेड **बनाम** माइल्स फार ईस्ट कार्पोरेशन, (1955) 2 क्वींस बैंच 327.

2 ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 543.

3 ए० आई० आर० 1970 पटना 91, 94.

4 ए० आई० आर० 1971 मद्रास 28, 30.

प्रतिगृहीत न कर लिया जाए, तब तक बोली लगाने वाले को अपनी बोली के प्रतिसंहरण का अधिकार रहता है।

अब्दुल रहीम बनाम भारत संघ[1] वाले मामले में, नीलाम की बोली के प्रतिग्रहण की तीन रीतियां बताई गई हैं—(1) सशर्त प्रतिग्रहण, (2) अनन्तिम अथवा आरजी प्रतिग्रहण तथा (3) आत्यन्तिक प्रतिग्रहण जिसमें कि नीलामकर्ता को विक्रय की सम्पुष्टि करने का पूर्ण अधिकार है और हथौड़े की चोट के साथ ही विक्रय सम्पूर्ण हो जाता है, यद्यपि किसी-किसी मामले में बोली का प्रतिसंहरण करने के लिए किसी पृथक् करार द्वारा अवधि निर्धारित की जा सकती है, किन्तु प्रत्येक दशा में बोली को प्रतिगृहीत किए जाने से पूर्व उसे प्रतिसंहृत किया जा सकता है।

किसी वन की पट्टेदारी के नीलाम में सबसे ऊंची बोली लगाने वाले ने प्रतिभूति की राशि उसी दिन संदत्त कर दी, किन्तु सक्षम प्राधिकारियों द्वारा उस बोली का युक्तियुक्त समय के भीतर अनुसमर्थन नहीं किया गया और अनुसमर्थन से पूर्व बोली लगाने वाले ने अपने प्रस्ताव का प्रतिसंहरण कर लिया। इस मामले में यह निर्णीत किया गया कि बोली लगाने वाले को प्रतिसंहरण का अधिकार था।[2]

नीलाम की किसी बोली का आत्यन्तिक प्रतिग्रहण कब हुआ, यह सर्वथा किसी मामले के विशेष तथ्यों और उस मामले की विशेष परिस्थितियों पर निर्भर करता है। मद्रास राज्य बनाम रंगनाथम[3] वाले मामले में नीलाम की प्रमुख शर्त यह थी कि सबसे ऊंची बोली लगाने वाला सम्पूर्ण विक्रय धन का संदाय करने के साथ-साथ निश्चित प्रतिभूति की राशि भी निक्षिप्त करेगा जिसके पश्चात् बोली लगाने वाले को बोली के अनुमोदन की सूचना जाने पर उसे एक प्ररूपित करार-पत्र का निष्पादन करना होगा। बोली लगाने वाले ने विक्रय धन और प्रतिभूति की राशि निक्षिप्त कर दी किन्तु उसकी ओर बोली के अनुमोदन की लिखित संसूचना नहीं प्रेषित की गई जिसके फलस्वरूप करार निष्पादित नहीं हो पाया। इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसी अवस्था में अधिकारियों को बोली लगाने वाले की निक्षिप्त राशि का प्रतिसंदाय करने और उसी मामले में पुन: नीलाम करने का अधिकार था।

निविदा का प्रतिग्रहण

निविदा को स्थायी प्रस्ताव की संज्ञा दी गई है, किन्तु **निविदा केवल प्रस्थापना मात्र है।**[4] किन्तु इसे प्रस्थापना भी तभी माना जा सकता है जबकि प्रस्थापना में निविदा की सूचना की सभी आवश्यक शर्तों को पूरा किया गया हो। **रमन दयाराम शेट्टी** बनाम **इण्टरनेशनल एयरपोर्ट अथारिटी**[5] वाले मामले में, निविदा की सूचना की परम आवश्यक शर्त यह थी कि प्रस्थापक को द्वितीय श्रेणी के होटल चलाने का न्यूनतम पांच वर्ष का अनुभव हो। न्या० पी० एन० भगवती ने यह विनिश्चित किया कि पांच वर्ष से कम अनुभव वाला व्यक्ति निविदा प्रस्तुत करने में सक्षम ही नहीं था। **निविदा के द्वारा प्रस्थापना के प्रतिग्रहण का नियम यह है कि जब निविदा प्रस्तुत कर दी जाए और अधिकारियों**

[1] ए० आई० आर० 1968 पटना 433, 436-437.

[2] श्री दुर्गा सॉ मिल बनाम उड़ीसा राज्य, ए० आई० आर० 1978 उड़ीसा 41.

[3] ए० आई० आर० 1975 मद्रास 292.

[4] एस० पी० कान्सोलिडेटेड इंजीनियरिंग बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1966 कलकत्ता 259.

[5] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1628 (1634).

द्वारा उसके प्रतिग्रहण का पत्र पारेषण के अनुक्रम में कर दिया जाए तो उस पत्र के डाक में डालते ही, संविदा का गठन हो जाता है और ऐसे पत्र के डाले जाने के पश्चात् निविदा प्रस्तुत करने वाले पक्ष को अपनी निविदा के प्रतिसंहरण का अधिकार नहीं रहता, भले ही वह पत्र उसे प्रतिसंहरण का तार करते समय प्राप्त न हुआ हो।[1] सरकार से लोहे का माल क्रय करने के लिए एक व्यक्ति ने निविदा प्रस्तुत की जिसे सरकार ने प्रतिगृहीत कर लिया। यद्यपि क्रय मूल्य के एक अंश को अग्रिम के रूप में संदत्त करने की शर्त का पालन नहीं किया गया तो भी **देवी प्रसाद खण्डेलवाल बनाम भारत संघ**[2] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि निविदा के प्रतिगृहीत होते ही संविदा का गठन पूर्ण हो चुका था तथा अग्रिम की शर्त के कारण ही इसे सशर्त संविदा की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

यदि निविदा की मर्मभूत शर्तें निविदा के प्रतिग्रहण के समय तय हो चुकी हों तो संविदा का गठन निविदा के प्रतिग्रहण के समय ही माना जाएगा भले ही निविदा के प्रस्थापक पर यह बाध्यता हो कि वह निविदा के प्रतिग्रहण के पश्चात् एक लिखित करारनामे का भी निष्पादन करेगा।[3]

निविदा के प्रतिग्रहण के लिए यदि ऐसी कोई पुरोभाव्य शर्त हो कि निविदा प्रस्तुत करने वाला प्रतिग्रहण के पश्चात् निर्धारित अवधि में क्रय मूल्य के 25 प्रतिशत का निक्षेप कर देगा किन्तु निर्धारित अवधि में ऐसा निक्षेप नहीं किया गया तो, **मध्य प्रदेश राज्य बनाम फर्म गोरधन दास**[4] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में, जो न्या० जे० एम० शैलत द्वारा दिया गया, यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसी दशा में किसी बाध्यकारी संविदा का गठन नहीं हुआ।

□ □ □

---

1 **साधू लाल बनाम** मध्य प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1972 इलाहाबाद 137.

2 ए० आई० आर० 1969 बम्बई 163.

3 माहेश्वरी मैटल रिफाइनरी बनाम मद्रास राज्य, ए० आई० आर० 1974 मद्रास 39.

4 ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1164:(1973)1 एस० सी० डब्ल्यू० आर० 456:(1973)1 एस० सी० सी० 668.

अध्याय 4

संविदा के गठन की शर्तें

विधितः प्रवर्तनीय करार ही संविदा है

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(ज) के अनुसार, वह करार, जो विधितः प्रवर्तनीय हो, संविदा है। इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि करारों का एक गुण उनकी प्रवर्तनीयता है किन्तु कोई भी करार केवल प्रवर्तनीयता के गुण-धर्म के कारण ही संविदा नहीं हो जाता। **जब किसी करार की प्रवर्तनीयता, विधिमान्य हो, तभी उस करार में संविदा की सामर्थ्य उत्पन्न होती है।** इसीलिए, इस परिभाषा में, करार के प्रवर्तन की क्रिया को विधितः के क्रिया-विशेषण पद से विशेषित किया गया है। वे करार जो नैतिक अथवा शारीरिक बल से अथवा विधि के अतिरिक्त अन्य किसी युक्ति से प्रवर्तनीय हों, इस परिभाषा की विधिक सीमाओं के अन्तर्गत संविदाएं नहीं हैं। जब किसी करार का पक्षकारों की परस्पर सहमति से पालन सम्भव न रहे, तभी उनकी प्रवर्तनीयता का प्रश्न उत्पन्न हो सकता है।

किसी भी सभ्य समाज का एक मूलभूत लक्षण यह है कि वहां शक्ति का शासन न होकर, विधि का शासन अभिभावी होता है और विधि-शासन के आधार पर ही दायित्वों के पालन में पक्षकारों की उपेक्षा अथवा अरुचि के कारण, विधि-बल के हस्तक्षेप की आवश्यकता उत्पन्न होती है, किन्तु **संविदा से उद्भूत दायित्व के लिए विधि-बल का हस्तक्षेप तभी उपलब्ध है जबकि कथित दायित्व को जन्म देने वाली संविदा विधिमान्य हो।** अस्तु, विधिक उपचार तभी सम्भव है जबकि संविदा विधितः प्रवर्तनीय हो। इस प्रकार, वे करार जिनके प्रवर्तन के लिए विधि-बल का आश्रय नहीं लिया जा सकता, संविदा के स्तर तक नहीं पहुंच सकते। अमुक करार संविदा है, इस कथन का प्रत्यक्ष अर्थ यही है कि वह करार इस स्वरूप का है जिसकी प्रवर्तनीयता विधि बल के द्वारा सम्भव है अर्थात् वह विधितः प्रवर्तनीय करार है। अब प्रश्न यह उठता है कि विधितः प्रवर्तनीय करार कौन से हैं?

कौन सा करार विधितः प्रवर्तनीय है

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 10 में यह कहा गया है कि वे सब करार संविदाएं हैं, यदि वे संविदा करने के लिए सक्षम पक्षकारों की स्वतन्त्र सम्मति से किसी विधिपूर्ण प्रतिफल के लिए और किसी विधिपूर्ण उद्देश्य से किए गए हैं और संविदा अधिनियम द्वारा अभिव्यक्ततः शून्य घोषित नहीं किए गए हैं। इस कथन के साथ एक पूरक अभिव्यक्ति के रूप में यह भी कहा गया है कि इस कथन का भारत में प्रवृत्त और संविदा अधिनियम द्वारा अभिव्यक्ततः निरसित न की गई किसी ऐसी विधि पर, जिसके द्वारा किसी संविदा का लिखित रूप में या साक्षियों की उपस्थिति में किया जाना अपेक्षित हो, या किसी ऐसी विधि पर, जो दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण से सम्बन्धित हो, कोई प्रभाव नहीं होगा।

तदनुसार, विधितः प्रवर्तनीय करारों के निम्न गुण-धर्म सिद्ध होते हैं—

1. करार के लिए पक्षकारों की स्वतन्त्र सम्मति होनी चाहिए,
2. करार संविदा करने के लिए सक्षम पक्षकारों के मध्य होना चाहिए,
3. करार का प्रतिफल विधिपूर्ण होना चाहिए,

4. करार का उद्देश्य भी विधिपूर्ण होना चाहिए,

5. करार किए जाने में उस विधि के उपबन्धों का अनुपालन होना चाहिए जिसके अधीन किसी करार का लिखित, अनुप्रमाणित अथवा रजिस्ट्रीकृत होना आवश्यक हो।

किसी करार में यदि उपरोक्त गुणों में से किसी एक का भी लोप है तो वह विधितः प्रवर्तनीय करार नहीं है। यदि उसमें उपरोक्त सभी गुण विद्यमान हैं तो वह प्रवर्तनीय करार है, भले ही उस करार को किसी विशेष ढंग से प्ररूपित न किया गया हो। प्ररूपित करार के अभाव में भी संविदा की विधिमान्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता[1], किन्तु न्यायाधिपति रामस्वामी के अनुसार ऐसा तब होगा जब कि पक्षकारों का यह आशय ही न रहा हो कि प्ररूपित संविदा पर हस्ताक्षर हुए बिना उसकी पक्षकारों पर कोई बाध्यता नहीं होगी।[2]

प्रवर्तनीयता का अर्थ मनमाने ढंग से प्रवर्तनीयता नहीं है। करार का प्रवर्तन पक्षकारों के उद्देश्य के अनुसार ही सम्भव है। पक्षकारों के उद्देश्य का अनुमान उनके आचरण से ही हो जाता है और जब यह अनुमित किया जा सके कि अमुक पक्षकार का अमुक उद्देश्य था तो वह तदनुसार अपने वचन की पूर्ति के लिए आबद्ध होगा।[3] किसी भी पक्षकार के लिए, जैसा कि न्यायाधिपति पी० एस० कैलाशम् का अभिमत है—मनमाने ढंग से उद्देश्य में परिवर्तन करना भी सम्भव नहीं है तथा किसी भी द्विपक्षीय संविदा की शर्तों में कोई एक पक्ष अपनी इच्छा से परिवर्तन नहीं कर सकता।[4] करार की प्रवृत्ति में व्यतिकारी भाव का विद्यमान होना आवश्यक है जिससे कि एक पक्ष उसका दूसरे के विरुद्ध प्रवर्तन करा सके।[5] न्यायाधिपति मैथ्यू के अनुसार, पक्षकारों द्वारा संविदा के अन्तर्गत किया हुआ कार्य पक्षकारों के आशय का अच्छा प्रमाण है।[6]

न्यायाधिपति पी० एन० भगवती के शब्दों में, यदि कोई संविदा अविधिमान्य है तो उसमें अन्तर्विष्ट प्रत्येक बात; यहां तक कि किसी विवाद को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने की बात की, अविधिमान्य होगी।[7]

करार के लिए सक्षम पक्षकार—

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 11 के उपबन्धों के अनुसार, हर ऐसा व्यक्ति संविदा करने के लिए सक्षम है, जो उस विधि के अनुसार, जिसके वह अध्यधीन है, प्राप्तवय हो और जो स्वस्थचित्त हो और किसी विधि द्वारा, जिसके वह अध्यधीन है, संविदा करने से निरर्हित न हो। इस प्रकार, संविदा के लिए पक्षकारों की सक्षमता तीन बातों पर आधारित है।

1. प्राप्तवयता,
2. स्वस्थचित्तता, तथा
3. विधिक अर्हता।

---

[1] श्रीराम मैटल वर्क्स **बनाम** नेशनल इंडस्ट्रीज, ए० आई० आर० 1978 कर्नाटक 24.

[2] श्री. रामुलु **बनाम** टी० अश्वथनारायणा, ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 1028–[1968] 2 उम० नि० प० 19.

[3] विक्रम किशोर **बनाम** बेनुधर, ए० आई० आर० 1976, उड़ीसा 4.

[4] करनाल डिस्टिलरी **बनाम** भारत संघ, ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 509.

[5] केदारदास **बनाम** नंदलाल, ए० आई० आर० 1971 पटना, 253.

[6] गोरधा इलैक्ट्रिक कम्पनी **बनाम** गुजरात राज्य, ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 32-[1975] 1 उम० नि० प० 660.

[7] जयकिशन **बनाम** लच्छमी नारायण, ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1579.

अस्तु, यदि संविदा का कोई भी पक्षकार अप्राप्तवय हो, अथवा जो अस्वस्थचित्त हो, अथवा जो उस पर लागू होने वाली विधि द्वारा संविदा के लिए निर्रहित माना गया हो, उसके द्वारा की गई संविदा विधितः प्रवर्तनीय करार नहीं है और इसलिए वह विधिमान्य संविदा नहीं है।

प्राप्तवयता

इंग्लैण्ड की विधि के अनुसार, कोई व्यक्ति 21 वर्ष की वय प्राप्त करके ही प्राप्तवय हो सकता है। भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 की धारा 3 के अनुसार भारतवर्ष में अधिवसित व्यक्ति अपने जीवन के अठारह वर्षों को पूर्ण करने पर ही, वयस्क या प्राप्तवय समझा जाएगा, इससे पूव नहीं, परन्तु यदि किसी अवयस्क के अठारह वर्ष की वय पूर्ण होने के पूर्व ही किसी न्यायालय ने, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32 के अन्तर्गत किसी वाद के लिए, संरक्षक की नियुक्ति की दशा को छोड़-कर, स्वयं उसके लिए अथवा उसकी सम्पत्ति के लिए, किसी संरक्षक की नियुक्ति कर दी हो अथवा, संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 के अन्तर्गत उसकी सम्पत्ति को प्रतिपाल्य अधिकरण ने अपने संरक्षण में ले लिया हो, तो वह 21 वर्ष की वय पूर्ण करने पर ही वयस्क या प्राप्तवय होगा।

उक्त भारतीय वयस्कता अधिनियम की धारा 2 में, इस अधिनियम को विवाह, दत्तक, विवाह-विच्छेद और दहेज के विषय में लागू नहीं किया गया है जिसके कारण इन चार विषयों में कोई व्यक्ति उपरोक्त उपबन्ध के अनुसार प्राप्तवयता से पूर्व भी संविदा करने में सक्षम है किन्तु शर्त यह है कि वह हिन्दुओं के सम्बन्ध में हिन्दू विधि, मुसलमानों के सम्बन्ध में मुस्लिम विधि, तथा अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्तवय हो। हिन्दुओं के सम्बन्ध में विवाह के लिए प्राप्तवयता 1978 तक यथासंशोधित हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अनुसार वर के लिए 21 वर्ष तथा वधू के लिए 18 वर्ष है तथा मुसलमानों के विषय में 15 वर्ष, तथा ईसाइयों के लिए हिन्दुओं के समान है। यह स्मरण योग्य है कि मुसलमानों में, वैवाहिक सम्बन्धों का आधार भी संविदा है, अतः उनके विषय में, वैयक्तिक संविदाओं तथा अन्य प्रकार की संविदाओं की क्षमता में वय का अन्तर महत्वपूर्ण है।

संविदा अधिनियम में, संविदा के लिए सक्षमता की कोई वय निर्धारित नहीं की गई है वरन् यह कहा गया है कि हर ऐसा व्यक्ति संविदा करने के लिए सक्षम है, जो उस विधि के अनुसार, जिसके वह अध्यधीन है, प्राप्तवय हो। इस प्रकार, संविदा विधि में, प्राप्तवयता के आधार पर संविदा की सक्षमता के विषय में यही सुमान्य सिद्धान्त है कि संविदा के पक्षकारों की प्राप्तवयता उस स्थान की अधिवास विधि के अधीन है जहां के वे अधिवसित हों।[1]

अवयस्क द्वारा संविदा

अधिनियम की धारा 183 और 184 में, क्रमशः यह अभिव्यक्त किया गया है कि केवल प्राप्त-वय व्यक्ति को ही अभिकर्ता नियोजित करने का अधिकार है और कोई अप्राप्तवय, पर व्यक्तियों के लिए, किसी प्राप्तवय व्यक्ति के अभिकर्ता के रूप में तो कार्य कर सकता है किन्तु अभिकर्ता के रूप में उसका मालिक के प्रति कोई दायित्व नहीं है। इन धाराओं में अभिव्यक्त विधि के कारण, अवयस्क द्वारा अथवा उससे की हुई संविदाओं के प्रभाव के विषय में गम्भीर विवाद रहा और अन्ततः **मोहरी बीबी बनाम धरमोदास घोष**[2] वाले मामले में, प्रिवी काउन्सिल ने यह अभिनिर्धारित किया कि

[1] कूपर बनाम कूपर, 13 ए० सी० 88.

[2] आई० एल० आर० (1903) 30 कलकत्ता 539.

अवयस्क द्वारा की गई संविदा के प्रभाव का प्रश्न संविदा के अस्तित्व की पूर्व-कल्पना करता है, और चूंकि अधिनियम के अनुसार किसी अवयस्क के साथ संविदा के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती, अतः अवयस्क द्वारा या उससे की गई संविदा के प्रभाव का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अवयस्क के साथ किसी संविदा का गठन ही न हो सकने के कारण, ऐसी संविदा केवल शून्यकरणीय नहीं, वरन् आद्यतः शून्य है ।

मोहरी बीबी बनाम धरमोदास घोष[1] का मामला

मोहरी बीबी बनाम धरमोदास घोष वाले मामले में, प्रिवी काउन्सिल के समक्ष, की गई अपील, संविदा अधिनियम की धारा 10, 11, 64 व 65; साक्ष्य अधिनियम की धारा 115 तथा तत्कालीन विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 38 एवं 39 से सम्बन्धित थी । अपील में प्रमुख अवधारणीय प्रश्न यह था कि अवयस्क के साथ की गई संविदा शून्यकरणीय है अथवा शून्य ?

वादी-प्रत्यर्थी, धरमोदास घोष, हावड़ा स्थित, वादग्रस्त समस्त स्थावर सम्पत्ति का स्वामी था । उक्त धरमोदास अवयस्क था और अपनी माता, जोगेन्द्रनन्दिनी दासी के संरक्षण में रहता था । धरमोदास ने अपनी स्थावर सम्पत्ति, ब्रह्मोदत्त नामक एक साहूकार के पास बन्धक रखकर 20,000 रुपये का 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर के ब्याज से, ऋण लिया और दिनांक 20 जुलाई, 1895 को, इस आशय का एक बन्धक विलेख, ब्रह्मोदत्त के पक्ष में निष्पादित कर दिया । उक्त बन्धक के समय अवयस्क, धरमोदास वास्तव में 1895 के सितम्बर मास में वयस्क होने वाला था । इस समस्त कार्य-वाही के मध्य, ब्रह्मोदत्त कलकत्ता से अनुपस्थित रहा और यह समस्त संव्यवहार उसके अटर्नी केदार-नाथ मित्तर के द्वारा किया गया और धन का संदाय ब्रह्मोदत्त के स्थानीय प्रबन्धक, डेडराज, ने किया ।

जब धरमोदास और अटर्नी केदारनाथ के मध्य, बन्धक के विषय में, बातचीत का क्रम चल रहा था, तभी, धरमोदास की मां, जोगेन्द्रनन्दिनी दासी, ने दिनांक 15 जुलाई, 1895 को, अटर्नी भूपेन्द्रनाथ बोस द्वारा, अटर्नी केदारनाथ को एक नोटिस द्वारा यह सूचित किया कि धरमोदास अभी भी अवयस्क है; अतः कोई भी उसे ऋण न दे और दे तो वह स्वयं ही तदुत्पन्न विधिक परिणामों के लिए उत्तरदायी होगा ।

बन्धक निष्पादित करते समय, अटर्नी केदारनाथ ने, अवयस्क धरमोदास से, इस आशय की एक घोषणा पर हस्ताक्षर करवा लिए कि धरमोदास दिनांक 17 जून, 1895 को वयस्क हो चुका था । इस घोषणा को स्वयं केदारनाथ ने ही तैयार किया था ।

दिनांक 10 सितम्बर, 1895 को धरमोदास ने अपनी संरक्षिका मां के माध्यम से, ब्रह्मोदत्त के विरुद्ध इस आशय की घोषणा के लिए एक वाद संस्थित किया कि——

1. बन्धक होने के दिन धरमोदास अवयस्क था; अतः
2. वह करार शून्य है ; और
3. उसे अपास्त किया जाए ।

ब्रह्मोदत्त ने अपने प्रतिवाद में यह उत्तर दिया कि——

1. न तो स्वयं उसे और न ही उसके अटर्नी केदारनाथ को यह ज्ञात था कि धरमोदास बन्धक के दिन अवयस्क था ; और

[1] आई० एल० आर० (1903) 30 कलकत्ता 539.

2. यदि वह अवयस्क था तो उसने अपनी प्राप्तवयता के सम्बन्ध में जो घोषणा की थी वह कपटपूर्ण थी और फलतः धरमोदास किसी अनुतोष का अधिकारी नहीं है;

3. उपरोक्त घोषणा के आधार पर, धरमोदास वास्तव में वयस्क था ; और

4. प्रत्येक दशा में, धरमोदास ऋण की राशि का संदाय करने के लिए बाध्यताधीन था और ऐसा संदाय किये बिना वह किसी अनुतोष का अधिकारी नहीं है ।

विचारण-न्यायालय ने वादी धरमोदास के पक्ष में निर्णय दिया जिसके विरुद्ध, कलकत्ता उच्च न्यायालय में अपील की गई, किन्तु अपील खारिज कर दी गई जिसके विरुद्ध प्रतिवादी ब्रह्मोदत्त ने प्रिवी काउन्सिल में द्वितीय अपील की । इसी अवधि में, प्रतिवादी ब्रह्मोदत्त को मृत्यु हो गई और अपील उसकी विधवा पत्नी, मोहरी बीबी के नाम से चली । इस मामले में, मुख्य विवाद्यक इस प्रकार थे—

1. क्या भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 115 में वर्णित विबन्ध (एस्टॉपल) का सिद्धान्त ऐसे मामले में लागू नहीं होता जहां उस व्यक्ति को जो तथ्यों की सत्यता जानते हुए किसी वक्तव्य पर विश्वास कर लेता है, और क्या ऐसा व्यक्ति उस मिथ्या वक्तव्य के कारण भुलावे में नहीं आ सकता ?

2. क्या भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 64 व 65 इस मामले में लागू की जा सकती हैं ?

3. क्या संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 11 के अनुसार, ऐसा व्यक्ति जो अवयस्क होने के नाते संविदा करने के लिए सक्षम नहीं है, अधिनियम के अधीन संविदा नहीं कर सकता ?

प्रिवी कउन्सिल के विद्वान् न्यायाधीश सर फोर्ड नार्थ ने अपना सुचिन्तित निर्णय इस प्रकार दिया—

1. साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 115, ऐसे मामलों में लागू नहीं होती जहां एक व्यक्ति को मिथ्या-व्यपदेशन किया गया, किन्तु जिसे किया गया वह व्यक्ति यह जानता है कि यह मिथ्या है, अतः इस प्रकार का मिथ्या-व्यपदेशन उस प्रकार का कपट नहीं है जिसके आधार पर अवयस्कता के विशेषाधिकार को समाप्त किया जा सके । जहां मामले के तथ्यों की सत्यता दोनों पक्षों को विदित है, वहां कोई विबन्ध (एस्टॉपल) नहीं होता ।

2. संविदा अधिनियम की धारा 64 व 65 भी इस मामले में लागू नहीं होती क्योंकि इन धाराओं में किसी ऐसी संविदा के अस्तित्व की पूर्वकल्पना होती है जहां कि संविदा सक्षम पक्षकारों के मध्य हुई है । धारा 64 तब लागू होती है जबकि दो सक्षम पक्षकारों के मध्य की गई संविदा, उसके पश्चात् किसी एक पक्ष द्वारा शून्य कर दी जाए, और धारा 65 तब लागू होती है जबकि किसी संविदा के शून्य होने का ज्ञान तत्पश्चात् हो, किन्तु अवयस्क के साथ की गई संविदा, संविदा ही नहीं है, अतः उसके शून्य कर दिये जाने अथवा उसके तत्पश्चात् शून्य होने का ज्ञान होने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता ।

3. संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 11 के अनुसार अवयस्क व्यक्ति संविदा करने के लिए सक्षम ही नहीं है और वह अधिनियम के अन्तर्गत किसी संविदा का निष्पादन कर ही नहीं सकता । संविदा अधिनियम की धारा 11 के अनुसार संविदा करने वाला व्यक्ति वयस्क होना चाहिए । **अवयस्क के द्वारा की गई संविदा शून्यकरणीय न होकर आद्यतः शून्य है ।**

4. वादी धरमोदास द्वारा निष्पादित बन्धक विलेख अप्रवर्तनीय है, अतः वादी धरमोदास को ऋण की धनराशि का प्रतिसंदाय करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

5. संविदा अधिनियम की धारा 10 और 11 के उपबन्धों के अन्तर्गत, धरमोदास, अवयस्क, द्वारा की गई संविदा शून्य है क्योंकि अवयस्क संविदा करने के लिए अक्षम व्यक्ति है और उसके द्वारा की गई संविदा का कोई अस्तित्व ही नहीं माना जा सकता।

6. अपीलकर्ता का यह तर्क कि **जिसे साम्या की खोज है उसे स्वयं भी साम्या का व्यवहार करना चाहिए,** व्यर्थ है क्योंकि न्यायालय किसी भी ऐसे व्यक्ति को, उस करार के अन्तर्गत जिसे कि विधि द्वारा शून्य बनाया गया है, धनराशि के प्रतिसंदाय के लिए बाध्य नहीं कर सकता।

7. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम[1] की धारा 38 व 41 के अन्तर्गत न्यायालय को स्वविवेक अवश्य प्राप्त है किन्तु इस मामले में, संविदा आद्यतः शून्य होने के कारण, स्वविवेक के प्रयोग का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।

अवयस्क के दायित्व के सम्बन्ध में विचारणीय प्रश्न

(क) प्राप्तवयता पर अनुसमर्थन : अब यह सुस्थिर विधि है कि अवयस्क के साथ की गई संविदा नितान्त शून्य होने के कारण प्राप्तवयता पर उस संविदा के अनुसमर्थन का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अवयस्कता की अवधि में प्राप्त किये हुए ऋण के प्रतिफल में हस्ताक्षरित वचनपत्र के निपटारे के लिए प्राप्तवयता पर लिखे गए नवीन वचनपत्र को प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता। मद्रास न्यायालय ने इन्द्रन रामस्वामी बनाम अन्थप्पा चेट्टियार[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि ऐसा वचन पत्र प्रतिफल के अभाव में शून्य है। कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा कुन्दन बीबी बनाम नारायण[3] वाले मामले में एक व्यक्ति 'स' द्वारा अपनी प्राप्तवयता पर एक बन्धपत्र का निष्पादन करके 7,000 रु० के संदाय का, जो कि अवयस्कता की अवधि में उसे विक्रय की हुई वस्तुओं का मूल्य था, तथा 76 रु० के प्रतिसंदाय का जो कि उसे अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उधार दिया गया था, वचन दिया गया। वचनगृहीता ने वसूली का वाद संस्थित किया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि 'स' वसूली के लिए दायी था। न्यायालय की राय यह थी कि जिस संविदा के आधार पर वाद संस्थित किया गया था वह एक प्राप्तवय-प्रतिवादी द्वारा की गई थी और इस नवीन संविदा के लिए दो नवीन प्रतिफल उद्भूत हुए थे--प्रथम, यह कि वादी ने 76 रु० पृथक् से उधार दिए थे, तथा द्वितीय, यह कि वादी ने नवीन संविदा की तिथि पर जो रकम शोध्य हो चुकी थी, उसके विषय में एक वर्ष की अवधि तक वाद लाने से स्वयं को विवर्जित किया था। मद्रास वाले मामले में अवयस्कता के समय निष्पादित किए हुए वचनपत्र का प्राप्तवयता पर नवीकरण किया गया था जबकि कलकत्ता वाले मामले में अप्राप्तवयता के समय किसी प्रकार का वचनपत्र लिखा ही नहीं गया था और वचनपत्र का निष्पादन प्रथम बार प्राप्तवयता पर ही किया गया था। कलकत्ता वाले मामले में दिए गए निर्णय का मूल आधार वचन के लिए उस नवीन प्रतिफल का सृजन था जिसके बल पर प्रतिवादी पर वाद संस्थित किया गया था। **भेद स्पष्ट है, क्योंकि इस मामले में अप्राप्तवयता में की गई किसी संविदा का अनुसमर्थन नहीं था वरन् एक मौलिक संविदा में नवीन प्रतिफल के साथ भूतकालिक प्रतिफल का सम्मिश्रण मात्र था।**

---

[1] तत्कालीन 1877 का पहला अधिनियम.

[2] (1906) 16 एम० एल० जे० 422.

[3] (1906) 11 सी० डब्ल्यू० एन० 135.

(ख) अवयस्क द्वारा उठाए गए लाभ का प्रत्यास्थापन : इस प्रश्न पर दो दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है—1. साम्या के अन्तर्गत, तथा 2. अवयस्क के कपट या मिथ्या व्यपदेशन के कारण उसका दायित्व जो कि संविदा से पृथक स्वयं एक अनुयोज्य दावा है।

प्रथम प्रश्न का उत्तर स्वयं **मोहरी बीबी** बनाम **धरमोदास घोष**[1] वाले मामले में तथा **गुलाम** बनाम **चुन्नीलाल**[2] वाले मामले में यह कह कर दिया गया है कि अवयस्क द्वारा संविदा के अन्तर्गत उठाए गए किसी लाभ अथवा उसके द्वारा प्रतिगृहीत किसी सम्पत्ति के, अवयस्क के साथ की गई संविदा के रद्द कर दिए जाने पर, प्रत्यास्थापन का औचित्य प्रत्येक मामले की परिस्थिति पर निर्भर करता है। किन्तु यह स्मरण रखना है कि यह मात्र साम्या का सिद्धान्त है, संविदा के प्रवर्तन का न इससे कोई सम्बन्ध है और न संविदा विधि के अन्तर्गत इसका कोई लाभ है सिवाय उन परिस्थितियों के जिन पर संविदा अधिनियम की धारा 65 लागू की जा सके।

दूसरा प्रश्न भी **मोहरी बीबी** बनाम **धरमोदास घोष**[1] वाले मामले में इस रूप में उत्पन्न हुआ था कि क्या कोई अवयस्क जो कि अपनी प्राप्तवयता का मिथ्या व्यपदेशन कर चुका है, अपनी अवयस्कता के अभिकथन से विबन्धित या विवर्जित है ? किन्तु, इस प्रश्न का अवधारण नहीं किया गया था, कारण यह कि वहां जिससे मिथ्या व्यपदेशन किया गया था उसे भी यह ज्ञात था कि प्राप्तवयता का वक्तव्य मिथ्या व्यपदेशन है, यही नहीं वरन् वह मिथ्या व्यपदेशन उस अवयस्क से उसी व्यक्ति ने स्वयं प्राप्त किया था जोकि अब उस मिथ्या व्यपदेशन का लाभ उठाना चाहता था।

सादिक अली खां बनाम **जयकिशोर**[3] वाले मामले में प्रिवी काउन्सिल ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अवयस्क द्वारा निष्पादित विलेख शून्य है, अतः उसके आधार पर, अवयस्क के विरुद्ध विबन्ध का सिद्धान्त लागू नहीं किया जा सकता, किन्तु इसका अर्थ केवल यह है कि विबन्ध के सिद्धान्त के आधार पर, किसी शून्य विलेख को विधिमान्य नहीं बनाया जा सकता अथवा यह कि अवयस्क को विलेख के समय की अवयस्कता के अभिकथन से विवर्जित नहीं किया जा सकता।[4] किन्तु **अवयस्क को इस विधिक सुरक्षा का लाभ 'ढाल के रूप में प्राप्त है न कि तलवार के रूप में'**[5] जैसे किसी अवयस्क ने अपनी प्राप्तवयता के मिथ्या व्यपदेशन से कोई ऋण प्राप्त कर लिया तो क्या ऋण की उस लिखत के रद्द हो जाने पर, अवयस्क को उस ऋण के प्रतिकर के रूप में उतनी ही राशि प्रतिसंदाय करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, यद्यपि ऐसा करना भी उस शून्य संविदा का ही एक अन्य प्रकार से प्रवर्तन कराना है, क्योंकि मूल ऋण की धनराशि तो अब उसी रूप में, जो कि व्यय भी हो चुकी होगी, प्रत्यास्थापित की ही नहीं जा सकती और उतनी ही राशि केवल उसके प्रतिकर के रूप में ली जा सकती है।[6] वस्तुस्थिति यह है कि **प्रतिसंदाय और प्रत्यास्थापन में अन्तर है। प्रतिसंदाय धन का होता है, प्रत्यास्थापन किसी वस्तु का। इस प्रकार, प्रतिसंदाय से प्रत्यास्थापन समाप्त हो जाता है।**[7] अतः यह तो सत्य है कि अवयस्क को दिया हुआ धन प्रतिसंदत्त नहीं करवाया जा सकता।[8]

---

[1] आई० एल० आर० (1903) 30 कलकत्ता 539.

[2] 122 आई० सी० 266.

[3] ए० आई० आर० 1928 पी० सी० 152.

[4] मनमथ कुमार साहे **बनाम** एक्सचेंज लोन लिमिटेड, ए० आई० आर० 1936, कलकत्ता, 567.

[5] जैनिंग्स **बनाम** रण्डोल, 3 टर्म रिपोर्ट्स, 335.

[6] बाफन **बनाम** वान्डरस्टेजन, 2 ड्रेवरीज रिपोर्ट्स, 363.

[7] देखिए कालीपाकम **बनाम** चित्तूर, ए० आई० आर० 1933 मद्रास 94.

[8] टिक्की **बनाम** कोमल, ए० आई० आर० 1940 नागपुर 327.

परन्तु, ऐसी दशा में जहां कि किसी अवयस्क ने अपनी प्राप्तवयता के कपटपूर्ण मिथ्या व्यपदेशन के आधार पर किसी सम्पत्ति को प्राप्त कर लिया हो तो उस सम्पत्ति का प्रत्यास्थापन करवाया जा सकता है।[1] इस प्रकार **स्वयं के कपट द्वारा जो लाभ कोई अवयस्क प्राप्त कर ले, उस लाभ के प्रत्यावर्तन के लिए, प्रत्यास्थापन के इस साम्यात्मक सिद्धान्त का प्रयोग किया जा सकता है[2] किन्तु यह उसी दशा में जबकि अवयस्क द्वारा उठाया गया लाभ ऋण की धनराशि न हो।**[3] प्रत्यास्थापन के सिद्धान्त को लागू करने के लिए, अवयस्क द्वारा किया हुआ मिथ्या-व्यपदेशन कपटपूर्ण होना चाहिए।[4]

(ग) **अपकृत्य के लिए दायित्व :** उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है, कि कपट जैसे अपकृत्य के लिए अवयस्क दायी है। **अवयस्कता स्वयं में कोई प्रतिरक्षा नहीं है।** अवयस्क कार्य एवं चूक दोनों के लिए ही उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं। वयस्कों की भांति, अवयस्क भी, आक्रमण, मिथ्या कारावास, मानहानि, शीलभंग, अतिचार, कपट, गबन, उपताप आदि के लिए उत्तरदायी माने गए हैं। जहां संविदा एवं अपकृत्य का मिश्रण हो, वहां स्थिति कुछ बदल जाती है। इस प्रकार के दावे में अवयस्क की मानसिक दशा का स्तर भी बहुत कुछ विचारणीय प्रश्न है। इसमें विद्वेष भावना पर भी विचार किया जाएगा। एक 17 वर्ष के बालक को दुर्भावना के तत्व के आधार पर मानहानि का दोषी ठहराया गया था।[5]

मोहरी बीबी बनाम **धरमोदास**[6] वाले मामले के निर्णय का **यह अर्थ कदापि नहीं है कि अवयस्क पर वाद लाया ही नहीं जाता। अवयस्क पर संविदा के अन्तर्गत उपगत कोई बाध्यता नहीं थोपी जा सकती किन्तु यदि संविदा से स्वतन्त्र होकर अथवा संविदा से पृथक् कोई मामला अवयस्क के विरुद्ध अनुयोज्य है तो उस पर वाद लाया जा सकता है।** सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32 के उपबन्ध इस बात के प्रमाण हैं कि उन उपबन्धों का पालन करते हुए, अवयस्क के विरुद्ध कोई भी सिविल कार्यवाही संस्थित की जा सकती है। प्रिवी काउन्सिल द्वारा **मोहरी बीबी** बनाम **धरमोदास घोष**[6] वाले मामले में दिए गए निर्णय का प्रभाव केवल इतना है कि **अवयस्क के विरुद्ध किसी ऐसी बाध्यता का प्रवर्तन नहीं कराया जा सकता जो कि किसी संविदा के अधीन उपगत हुई हो।**

(घ) अवयस्क को प्रदाय की गई आवश्यक वस्तुओं के लिए दावा : संविदा अधिनियम की धारा 68 में अवयस्क के साथ उत्पन्न हुए कतिपय ऐसे संबंधों के विषय में वर्णन है जो कि संविदा द्वारा सृजित सम्बन्धों के सदृश हैं। अत: किसी अवयस्क को जो कि संविदा करने में असमर्थ है, या किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके पालन-पोषण के लिए वह वैध रूप से आबद्ध है, जीवन में उसकी स्थिति के योग्य यदि आवश्यक वस्तुएं किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रदाय की जाती हैं तो वह व्यक्ति जिसने ऐसे प्रदाय किये हैं, ऐसे अवयस्क व्यक्ति की सम्पत्ति से प्रतिपूर्ति पाने का हकदार है। यहां भी इस संविदा के सदृश्य सम्बन्ध की बाध्यता अवयस्क पर व्यक्तिगत न होकर, केवल उसकी सम्पत्ति तक ही सीमित है।

---

1 गुलाबचन्द **बनाम** चुन्नीलाल, 122 आई० सी० 266.

2 लैशली **बनाम** शील, (1914) 3 के० बी० 607.

3 हरिमोहन **बनाम** दूलू मिया, आई० एल० आर० (1934) 61 कलकत्ता 1075.

4 गंगानन्द **बनाम** सर रामेश्वर, 102 आई० सी० 449.

5 मून **बनाम** टावर्स, (1860) 8 सी०.बी०(एन० एस०) 611, देखिए शर्मन लाल अग्रवाल—अपकृत्य विधि, 1976 पृ० 85.

6 आई० एल० आर० (1903) कलकत्ता 539 (प्रिवी काउन्सिल).

(ङ) अवयस्क की भागीदारी : यद्यपि भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 की धारा 30 के अनुसार कोई अवयस्क किसी भागीदारी में लाभ प्राप्त कर सकता है तथापि उसे किसी फर्म का पूर्णरूपेण भागीदार नहीं बनाया जा सकता। **धरमवीर** बनाम **जगन्नाथ**[1] वाले मामले में, न्यायमूर्ति एस० के० कपूर का कथन यह है कि भागीदारी का उद्‌भव हैसियत से न होकर संविदा से होता है और भागीदारी का एक प्रमुख लक्षण यही है कि उसका सृजन पक्षकारों की स्वेच्छा या संविदा पर निर्भर करता है। यदि किसी करार के अधीन कोई पक्षकार विवक्षित अथवा अभिव्यक्त भागीदार बनकर अवयस्क को भागीदारी के समान अधिकारों सहित भागीदारी के करार में सम्मिलित कर लेते हैं तो ऐसी संविदा किसी बोधगम्य और कार्योचित संविदा के रूप में ठहर नहीं सकती तथा जहां तक अन्य भागीदारों से लेखा लेने का प्रश्न उपस्थित हो तो उन्हें अपने उस करार का पूर्णतः पुनर्लेखन करना होगा।

(च) विनिर्दिष्ट पालन : रामचन्द्र बनाम **मानिकचन्द**[2] वाले मामले में न्यायमूर्ति आर० जे० भावे का यह निर्णय है कि अवयस्क की सम्पदा के किसी प्रबन्धक अथवा अवयस्क के किसी संरक्षक को यह क्षमता प्राप्त नहीं है कि वह अचल सम्पत्ति के क्रय अथवा विक्रय की संविदा के द्वारा अवयस्क अथवा उसकी सम्पदा को बाध्यताधीन कर सके। हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 के प्रभावी होने के पश्चात् अवयस्क के नैसर्गिक संरक्षक का किसी विधिक आवश्यकता के आधार पर भी अवयस्क की सम्पत्ति को अन्तरित करने का अधिकार समाप्त कर दिया गया है और अब ऐसा अन्तरण न्यायालय द्वारा प्राप्त मंजूरी के पश्चात् ही किया जा सकता है। अतः यदि किसी अवयस्क का संरक्षक किसी अचल सम्पत्ति के क्रय अथवा विक्रय की संविदा कर भी ले तो उससे अवयस्क बाध्य नहीं हो सकता और न तो अवयस्क ही और न दूसरा पक्ष ही उस संविदा का विनिर्दिष्ट पालन करवा सकेगा। इस सम्बन्ध में प्रिवी काउन्सिल द्वारा **सुब्रमन्यम** बनाम **सुब्बाराव**[3] वाले मामले में दिया गया निर्णय **अब किसी भी भांति प्रभावी विधि नहीं माना जा सकता।**

(छ) कम्पनी के शेयरों का क्रय : यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि किसी अवयस्क का संरक्षक, संविदा द्वारा अवयस्क की ओर से किसी कम्पनी में शेयर क्रय करके, अवयस्क का नाम कम्पनी के सदस्यों के रजिस्टर में प्रविष्ट करवा सकता है अथवा नहीं। न्यायमूर्ति एस० के० कपूर ने **गोलकुण्डा इण्डस्ट्रीज** बनाम **कम्पनी के रजिस्ट्रार**[4] वाले मामले में इस प्रश्न को अनुत्तरित छोड़ दिया है।

(ज) पट्टेदारी अथवा अन्य व्यवसाय : जयकान्त बनाम **दुर्गाशंकर**[5] वाले मामले में, न्यायमूर्ति बी० आर० सोमपुरा ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अवयस्क का वास्तविक संरक्षक, अवयस्क के लिए किसी परिसर को न पट्टे पर ले सकता है और न उस पर कोई ऐसा व्यवसाय ही प्रारम्भ कर सकता है जिससे कि अवयस्क पर किसी दायित्व का अधिरोपण होता हो।

---

[1] ए० आई० आर० 1968 पंजाब 84 (86).

[2] ए० आई० आर० 1968 मध्य प्रदेश 150 (155).

[3] ए० आई० आर० 1948 प्रिवी कार्उन्सिल 95.

[4] ए० आई० आर० 1968 दिल्ली, 170.

[5] ए० आई० आर० 1970 गुजरात, 106 (108).

(झ) **अवयस्क और अन्य व्यक्तियों का संयुक्त वचनपत्र :** यदि किसी वचन-पत्र का निष्पादन एक अवयस्क ने अन्य व्यक्तियों के साथ संयुक्त रूप से किया हो तो अवयस्क की ऐसे दायित्व से मुक्ति से अन्य संयुक्त वचनदाता मुक्त नहीं होते।[1] निष्कर्ष यह कि **संयुक्त वचनदाताओं में जहां कोई अवयस्क भी हो तो उस वचन की प्रवर्तनीयता अवयस्क के विरुद्ध विवर्जित है जबकि अन्य व्यक्ति उस वचन के लिए दायी होंगे।**

(ञ) **अवयस्क वचनगृहीता :** विधिक स्थिति यह है कि अवयस्क वचन दाता नहीं हो सकता किन्तु वह वचनगृहीता हो सकता है। अवयस्क किसी संविदा के द्वारा लाभ उठाने में अक्षम नहीं है, यदि वह लाभ अवयस्क द्वारा किसी कपटपूर्ण मिथ्या-व्यपदेशन से न उठाया गया हो।

इस प्रकार, कोई भी अवयस्क दानगृहीता अथवा न्यासी बन सकता है जबकि दोनों ही प्रकार के संव्यवहारों में प्रतिग्रहण की आवश्यकता है।[2] अवयस्क किसी भी वचनपत्र को प्रतिगृहीत करने में सक्षम है।[3] किसी प्राप्तवय व्यक्ति द्वारा, किसी अवयस्क के पक्ष में, किसी ऋण की प्रत्याभूति के रूप में निष्पादित बन्धक पत्र शून्य नहीं है वरन् यह अवयस्क की ओर से प्रवर्तनीय है। इसका कारण यह है कि संविदा अधिनियम की धारा 2 (ङ) के अनुसार, हर एक वचन और ऐसे वचनों का संवर्ग जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल हो, करार हैं, अतः वचनों के किसी संवर्ग में यह तो संभव है कि एक दूसरे के लिए प्रतिफल वाले वचन व्यतिकारी-वचन बन सकें किन्तु प्रत्येक करार में व्यतिकारी वचनों का होना आवश्यक नहीं माना गया है। अस्तु, जिस करार में, अवयस्क की ओर से कोई व्यतिकारी वचन हो, वह संविदा तो शून्य है, किन्तु ऐसी संविदा, जिसमें अवयस्क अन्य किसी द्वारा किए गए वचन का वचनगृहीता है, और जिसका प्रतिफल अन्य पक्ष द्वारा पूर्ण किया जा चुका है, शून्य नहीं है।[4]

स्वस्थ चित्तता

संविदा विधि में **स्वस्थचित्तता का अर्थ, संविदा करने के प्रयोजनों के लिए स्वस्थचित्तता** ह अतः सामान्य अर्थों में, "स्वस्थचित्तता" से जो बोध होता है, वह विधिक स्वस्थचित्तता से पृथक् है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 12 में, स्वस्थचित्तता को परिभाषित करते हुए, इस प्रकार कहा गया है—

"कोई व्यक्ति संविदा करने के प्रयोजन के लिए स्वस्थचित्त कहा जाता है, यदि वह उस समय जब वह संविदा करता है उस संविदा को समझने में और अपने हितों पर उसके प्रभाव के बारे में युक्तिसंगत निर्णय लेने में समर्थ है।"

"जो व्यक्ति प्रायः विकृतचित्त रहता है किन्तु कभी-कभी स्वस्थचित्त हो जाता है, वह जब स्वस्थचित्त हो तब संविदा कर सकेगा।"

"जो व्यक्ति प्रायः स्वस्थचित्त रहता है किन्तु कभी-कभी विकृतचित्त हो जाता है, वह जब विकृतचित्त हो तब संविदा नहीं कर सकेगा।"

दृष्टांत के लिए—

क—पागलखाने का एक रोगी, जो अन्तरालों में स्वस्थचित्त हो जाता है, उन अन्तरालों के दौरान संविदा कर सकेगा।

---

1. सुलोचना बनाम पंडियान बैंक, ए० आई० आर० 1975 मद्रास, 70 (72).
2. देखिए सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, धारा 123.
3. रंगराजू बनाम वासप्पा, 24 एन० एल० जे० 363.
4. सत्यदेव बनाम द्विवेदी, 161 आई० सी० 579.

ख—वह स्वस्थचित्त मनुष्य, जो ज्वर से चित्त विपर्यस्त है या जो इतना मत्त है कि वह संविदा के निबन्धनों को नहीं समझ सकता या अपने हितों पर उसके प्रभाव के बारे में युक्तिसंगत निर्णय नहीं ले सकता तब तक संविदा नहीं कर सकता जब तक ऐसी विपर्यस्तता या मत्तता बनी रहे।

जो उपरोक्त मानक परिभाषा के अनुसार स्वस्थचित्त नहीं है, वह संविदा नहीं कर सकता अर्थात् ऐसे व्यक्ति से की गई संविदा नितान्त शून्य है।

इंग्लैण्ड की विधि में, ऐसी संविदा तभी शून्य है जबकि वादी को भी इस का ज्ञान हो। वहां की विधि में, मत्त व्यक्ति से की गई संविदा शून्यकरणीय है, शून्य नहीं, अतः मत्त व्यक्ति भी मत्तता की अवस्था में की गई संविदा का स्वस्थचित्तता की अवस्था प्राप्त कर लेने पर अनुसमर्थन कर सकता है[1] किन्तु **भारतीय विधि में स्वस्थचित्तता के ज्ञान या अज्ञान से स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता।** यदि संविदा करने के समय संविदा करने वाला स्वस्थचित्त था तो संविदा विधिमान्य है, किन्तु यदि वह संविदा करने के समय स्वस्थचित्त नहीं था तो संविदा शून्य है, भले ही वह संविदा करने से पूर्व और पश्चात् स्वस्थचित्त ही रहा हो।[2]

संविदा के प्रयोजन के लिए स्वस्थचित्त का अर्थ यह नहीं है कि संविदा करने वाला पक्ष संविदा की सभी शर्तों को समझता हो। इतना आवश्यक है कि वह व्यक्ति जीवन के सामान्य कलापों को समझने और उन कलापों को करने का ज्ञान रखता हो।[3]

व्यक्तिगत निरर्हता :

(क) विदेशी शत्रु की संविदा : युद्धकाल में, विदेशी शत्रु के साथ की हुई संविदा पूर्णतः शून्य और अविधिमान्य होती है। **विदेशी शत्रु** की प्रास्थिति उस व्यक्ति पर आरोपित की जाती है जो कि शत्रु राष्ट्र में अथवा शत्रु राष्ट्र के पूर्ण नियंत्रणाधीन किसी देश में स्वेच्छापूर्वक निवास अथवा कारबार कर रहा हो। इस प्रास्थिति का संविदा करने वाले पक्षकार की राष्ट्रीयता से कोई सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि यदि ऐसा व्यक्ति भी जिसकी राष्ट्रीयता भारतीय है, भारत के किसी शत्रु राष्ट्र अथवा ऐसे शत्रु राष्ट्र के अधीन किसी देश में स्वेच्छा से रह रहा अथवा कारबार कर रहा हो तो वह भी, भारत के नागरिकों के साथ संविदा करने के लिए सक्षम नहीं है।

(ख) अनिगमित निकाय की संविदा : अनिगमित निकाय को भी संविदा करने की क्षमता प्राप्त नहीं है। यदि ऐसे किसी अनिगमित निकाय की ओर से कोई व्यक्ति संविदा कर ले तो या तो स्वयं वही, अथवा उसे संविदा करने के लिए अधिकृत करने वाले व्यक्ति ही, उत्तरदायी हो सकते हैं।[4] कोई कम्पनी अथवा अन्य निगमित निकाय केवल उन्हीं शक्तियों के अन्तर्गत कार्य कर सकते हैं जो कि उनके परिनियमों द्वारा अभिव्यक्त अथवा विवक्षित रूप से प्रदत्त की गई हों। ऐसी शक्तियों से अन्यथा किये हुए कार्य अधिकारातीत और शून्य हैं।[5]

जो व्यक्ति ऐसी किसी कानूनी निरर्हता के अधीन हो, केवल अपनी निरर्हता की अवधि में संविदा करने के लिए अक्षम रहता है। अपनी निरर्हता के प्रारम्भ होने से पूर्व किये गए कारबार, अथवा

---

1 मैथ्यूज बनाम लैंकस्टर, एल० आर० 8 एक्सचेकर-कोर्ट्स 132.

2 जयनारायण बनाम महाबीर, 95 आई० सी० 857.

3 तिरुम्मगल बनाम रामस्वामी, 1 एम० एच० सी० आर० 214.

4 ब्रेडले एगफार्म लिमिटेड बनाम क्लिफर्ड (1943) 2, आल इंग्लैण्ड लॉ रिपोर्ट्स 378.

5 अटर्नी जनरल बनाम ग्रेट ईस्टर्न रेलवे कम्पनी, (1880) 5 ए० सी० 473

संव्यवहार को वह अपनी निरर्हता की समाप्ति पर पुनः ग्रहण करके, स्वयं को सम्पूर्ण कृत्य के लिए दायित्वाधीन कर सकता है ।[1]

(ग) **विवाहित स्त्री निरर्ह नहीं :** भारत में, विवाह के कारण किसी महिला की संविदा करने की क्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।[2] विवाहित स्त्री, अपने पति की अनुमति अथवा सहमति के बिना भी संविदा करने के लिए सक्षम है और ऐसी स्त्री द्वारा की हुई संविदा के लिए उसके पति पर कोई दायित्व नहीं आ सकता जब तक कि उस स्त्री ने अपने पति की अभिव्यक्त अथवा विवक्षित सहमति से ही संविदा न की हो । यदि किसी स्त्री व उसके पति, दोनों ने ही, संयुक्ततः और पृथकतः, किसी अन्य से संविदा की हो वह स्त्री केवल अपने स्त्री-धन की सीमा के अनुपात तक ही दायित्वाधीन होगी ।[3] पति की सहमति अथवा अनुमति से, किसी स्त्री द्वारा की हुई संविदा में, वह एक प्रकार से अपने पति के अभिकर्ता के रूप में कार्य करती है ।

सम्मति

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 13 के अनुसार, दो या दो से अधिक व्यक्ति सम्मत हुए तब कहे जाते हैं जबकि किसी एक बात पर एक ही भाव में सहमत हों । चूंकि प्रत्येक करार में ही, पारस्परिक सहमति का वर्तमान रहना अनिवार्य है, अतः वास्तविक सहमति अथवा मतैक्य के अभाव में कोई बाध्यकारी संविदा नहीं हो सकती । किन्तु **सहमति के इस भाव की सुसंगति करार करने के दिन से है न कि उस दिन से जिस दिन कि उसका पालन किया जाना है ।**[4] **किसी एक बात पर** से तात्पर्य सम्बन्धित करार की सम्पूर्ण विषयवस्तु से है और उस विषय वस्तु को **एक ही भाव में** ग्रहण किया जाना अनिवार्य है । जबकि पक्षकारों के मस्तिष्क पृथक्-पृथक् अथवा विपरीत उद्देश्यों से प्रेरित हों, अथवा जहां पक्षकारों ने करार के शब्दों के अर्थ ही भिन्न-भिन्न लगाए हों, उस अवस्था में संविदा का गठन नहीं माना जा सकता । ऐसी अवस्था **तीन प्रकार** से घटित हो सकती है–1. जबकि पक्षकारों को एक दूसरे की पहचान के विषय में भ्रम हो, 2. जबकि संव्यवहार की शर्तों के विषय में, अथवा 3. करार की विषय वस्तु के सम्बन्ध में भ्रम हो । **बोल्टन बनाम जोन्स**[5] वाले मामले में, जोन्स ने ब्राकलहर्स्ट को कुछ माल भेजने का आदेश दिया और उसकी कीमत के भुगतान के विषय में यह निदेश दिया कि ब्राकलहर्स्ट की ओर जोन्स का जो धन चाहिए, उसी में इसे मुजरा कर लिया जाए । ब्राकलहर्स्ट ने अपना व्यवसाय बोल्टन को अन्तरित कर दिया था और यह आदेश बोल्टन को ही प्राप्त हुआ और उसने वही माल भेज दिया जिसे जोन्स ने इसी विश्वास पर स्वीकार कर लिया कि वह ब्राकलहर्स्ट के द्वारा ही भेजा गया होगा । बोल्टन द्वारा उस माल की कीमत के विषय में वाद संस्थित किये जाने पर यह विनिश्चय हुआ कि पक्षकारों में परस्पर पहचान की भूल के कारण, यह संविदा शून्य थी ।

संव्यवहार के स्वरूप अथवा उसकी शर्तों में जहां मतभेद हो, उस विषय में सामान्य नियम यह है कि यदि किसी पक्षकार को करार के निबन्धनों के विषय में मिथ्या सूचना दी जाए और वह व्यक्ति अपने उस समय के प्रस्तुत और उपलब्ध साधनों से यह न जान सके कि अमुक सूचना मिथ्या है, तो ऐसी संविदा शून्य है, और यह नियम अशिक्षित अथवा दृष्टिहीन व्यक्तियों पर ही नहीं वरन् सामान्यतः

---

1. मगन बनाम रमन, ए० आई० आर० 1943 मुम्बई 362.
2. कन्हैया बनाम इन्दर, ए० आई० आर० 1947 नागपुर 84.
3. नरोतम बनाम नानका, (1881–82) आई० एल० आर० 6 मुम्बई 473.
4. रामचन्द बनाम आयशा बेगम, ए० आई० आर०, 1969 मद्रास 470.
5. 27 एल० जे० एक्सचेकर, 117.

सभी पर लागू होता है।[1] संविदा की विषयवस्तु के सम्बन्ध में मतभेद प्रायः तब उत्पन्न होता है जबकि एक ही नाम की दो विषय-वस्तुएं[2] हों अथवा विषय वस्तु की संख्याओं में मतैक्य न हो पाया हो[3] और दोनों ही अवस्थाओं में संविदा शून्य मानी जाएगी।

सम्मति की स्वतंत्रता का अर्थ

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 14 के अनुसार, सम्मति, स्वतंत्र तब कही जाती है जबकि वह कारित हो—

1. न तो प्रपीड़न द्वारा;
2. न असम्यक् असर द्वारा;
3. न कपट द्वारा;
4. न दुर्व्यपदेशन द्वारा; और
5. न भूल द्वारा।

उपरोक्त प्रकार से कारित सम्मति तब कही जाती है जबकि वह ऐसा प्रपीड़न, असम्यक असर, कपट, दुर्व्यपदेशन या भूल न होती तो न दी जाती।

एक विरोधाभास

संविदा अधिनियम में, भूल को छोड़कर स्वतंत्र सम्मति के इन सभी बाधक तत्वों को परिभाषित किया गया है और विशेषतः **भूल** द्वारा कारित संविदा की विधिमान्यता अथवा अविधिमान्यता को, अधिनियम की धारा 20, 21 व 22 के अध्यधीन रखा गया है। अधिनियम की धारा 10 में यह कहा गया है कि सब करार संविदायें हैं, यदि वे संविदा करने के लिए सक्षम पक्षकारों की स्वतंत्र सम्मति से किसी विधिपूर्ण प्रतिफल के लिए और किसी विधिपूर्ण उद्देश्य से किये गए हैं और जो अधिनियम द्वारा अभिव्यक्ततः शून्य घोषित नहीं किये गए हैं जिससे यह प्रतिध्वनित होता है कि यदि कोई क़रार, पक्षकारों की स्वतंत्र सम्मति के बिना हुआ है, तो वह संविदा ही नहीं है, अर्थात् स्वतन्त्र सम्मति के अभाव में किया गया करार आद्यतः शून्य है, परन्तु अधिनियम की धारा 19 और 19क में, उन करारों को, जिनके लिए किसी व्यक्ति की सम्मति, प्रपीड़न, कपट, दुर्व्यपदेशन अथवा असम्यक् असर द्वारा कारित हो, केवल शून्यकरणीय माना है।

सम्मति जब इस प्रकार से कारित हो कि दोनों ही पक्षकार तथ्य की बात सम्बन्धी भूल में हों, केवल तभी ऐसी सम्मति द्वारा गठित करार शून्य है अन्यथा केवल एक ही पक्ष की भूल से कारित संविदा को केवल ऐसी भूल के कारण शून्य नहीं माना गया है। साथ ही, ऐसी विधि के विषय में, जो भारत में प्रवृत्त न हो, किसी भूल को तथ्य की भूल के समक्ष रखकर उसे भी केवल इसी कारण से शून्य नहीं माना है। भूल क्या है, इसे परिभाषित भी नहीं किया गया।

स्वतन्त्र सम्मति के बाधक तत्वों की परिगणना से एक ओर तो यह धारणा होती है कि ऐसे बाधक तत्वों की उपस्थिति और उनके प्रभाव से कारित सम्मति स्वतन्त्र कही ही नहीं जा सकती और जब सम्मति स्वतन्त्र नहीं है तो, अस्वतंत्र सम्मति के आधार पर गठित करार संविदा भी नहीं है, परन्तु दूसरी ओर अधिनियम में ऐसे अनेक करारों को भी, जिनमें कि स्वतन्त्र सम्मति के उपरोक्त विनाशी तत्वों

---

[1] कार्लिस्ले बनाम बैग, (1911) एल० आर० के० बी० 489.

[2] रैफिलस बनाम विन्चेल हाल, 2 एच० एण्ड सी० 906.

[3] हेकिस बनाम पेप, एल० आर० 6 एक्सचेकर 7.

के प्रभाव से, स्वतन्त्र सम्मति का अपवर्जन हो चुका है, केवल शून्यकरणीय करार बताया गया है, जो एक स्पष्ट विरोधाभास है, क्योंकि ऐसे करारों को आद्यत: शून्य न मानकर, यह माना गया है कि वे केवल प्रभावित पक्षकार द्वारा तत्पश्चात् शून्य किए जा सकते हैं।

प्रपीड़न का अर्थ

इस आशय से कि किसी व्यक्ति से कोई करार कराया जाए, कोई ऐसा कार्य करना या करने की धमकी देना, जो भारतीय दण्ड संहिता द्वारा निषिद्ध है अथवा किसी व्यक्ति पर, चाहे वह कोई हो प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए किसी सम्पत्ति का विधि-विरुद्ध निरोध करना या निरोध करने की धमकी देना, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 15 के अनुसार, प्रपीड़न है। स्पष्टीकरण के तौर पर यह भी कहा गया है कि प्रपीड़न की स्थिति के विषय में, यह तत्वहीन है कि जिस स्थान पर प्रपीड़न का प्रयोग किया जाता है, वहां भारतीय दण्ड संहिता प्रवृत्त है या नहीं। इसका एक दृष्टांत यह है कि खुले समुद्र में एक अंग्रेजी पोत पर, ऐसे कार्य द्वारा, जो भारतीय दण्ड संहिता के अधीन आपराधिक अभित्रास की कोटि में आता है, 'ख' से 'क' एक करार कराता है। तत्पश्चात् 'क' संविदा भंग के लिए कलकत्ते में 'ख' पर वाद लाता है तो माना जाएगा कि 'क' ने प्रपीड़न का प्रयोग किया है, यद्यपि उसका कार्य इंग्लैण्ड की विधि के अनुसार अपराध नहीं है और यद्यपि उस समय जब, और उस स्थान पर, जहां कि, वह कार्य किया गया था; भारतीय दण्ड संहिता की धारा 506 प्रवृत्त नहीं थी।

प्रपीड़न और विबाध्यता (ड्यूरेस) में भेद

इंग्लैण्ड में प्रपीड़न का किसी संविदा पर प्रभाव तभी माना जाता है जब कि ऐसे प्रपीड़न का स्रोत संविदा का स्वयं कोई पक्षकार अथवा उसका ऐसा अभिकर्ता हो जो कि पक्षकार के ज्ञान और उसकी अनुमति के अन्तर्गत कार्य कर रहा हो और जबकि ऐसे प्रपीड़न का लक्ष्य संविदा का दूसरा पक्षकार हो अथवा उसका परिवार हो[1], और इस प्रकार किसी अन्य व्यक्ति के प्रति दी गई धमकी प्रपीड़न के अन्तर्गत नहीं मानी जाएगी, वहीं भारत में, यह आवश्यक नहीं कि प्रपीड़क कार्यवाही संविदा के किसी पक्षकार की ओर से ही अग्रसर हो[2], और न ही यह आवश्यक है कि ऐसे प्रपीड़न का लक्ष्य संविदा का दूसरा पक्षकार ही हो। इंग्लैण्ड में प्रपीड़न के पर्याय के रूप में विबाध्यता (ड्यूरेस) शब्द का प्रयोग होता है जो लगभग प्रपीड़न का ही समानार्थी है। **प्रपीड़न और विबाध्यता के भेद को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—**

1. विबाध्यता का लक्ष्य किसी व्यक्ति अथवा उसके परिवार के किसी सदस्य का जीवन या उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता होती है जबकि प्रपीड़न का लक्ष्य कोई व्यक्ति अथवा उसकी सम्पत्ति या उसका माल भी हो सकता है,

2. विबाध्यता का लक्ष्य संविदा का पक्षकार ही हो सकता है, जबकि प्रपीड़न का लक्ष्य कोई पर व्यक्ति भी हो सकता है **चाहे वह कोई हो** ऐसा भारतीय विधि में अभिव्यक्तत: कहा गया है,

3. विबाध्यता संविदा के किसी पक्षकार की ओर से उद्भूत होनी चाहिए जबकि प्रपीड़न किसी भी व्यक्ति की ओर से अग्रसरित हो सकता है,

4. विबाध्यता में हिंसा का तात्कालिक प्रदर्शन आवश्यक है किन्तु प्रपीड़न में धमकी मात्र यथेष्ट है, तथा

---

[1] विलियम्स बनाम बली, एल० आर० 1 हाउस ऑफ लार्ड्स, 200.

[2] अस्करी मिर्जा बनाम बीबी जयकिशोरी, 161 आई० सी० 344.

5. विबाध्यता इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे कोई सामान्य निश्चय अथवा स्थिरता वाला व्यक्ति विचलित हो सके जबकि प्रपीड़न के लिए इतना ही पर्याप्त है कि प्रपीड़क कार्यवाही ऐसी हो जो भारतीय दण्ड संहिता द्वारा निषिद्ध हो अथवा वह ऐसे निषिद्ध कार्य की धमकी हो अथवा किसी सम्पत्ति का विधि विरुद्ध निरोध या ऐसे निरोध की धमकी हो ।

'प्रपीड़न' के विस्तार का सम्यक् परीक्षण

यह बात कि अमुक संविदा प्रपीड़न द्वारा कारित है, एक तथ्यगत प्रश्न है[1] । आत्महत्या का प्रयास एक दण्डनीय अपराध है, अतः आत्महत्या की धमकी भी प्रपीड़न है[2], किन्तु किसी अपराध के विषय में अभियोजन की धमकी प्रपीड़न नहीं है[3] । जहां किसी विधि के उपबन्धों के द्वारा संविदा करने की बाध्यता हो, उसे भी प्रपीड़न नहीं कहा जा सकता । ऐसा न्या० आर० एस० बछावत ने अभिनिर्धारित किया है[4] ।

भारतीय संविदा विधि की प्रपीड़न के विषय में किसी प्रकार की स्पष्ट नीति नहीं प्रकट होती क्योंकि प्रपीड़न की वस्तुस्थिति को अधिकांशतः भारतीय दण्ड संहिता के आपराधिक मामलों से सम्बद्ध कर दिया गया है जो स्वयं में एक संहिताबद्ध विधि है ।

चूंकि किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान के कर्मचारियों द्वारा दी जाने वाली धमकी भारतीय दण्ड संहिता के द्वारा निषिद्ध नहीं है और न इससे सम्पत्ति अथवा माल का निरोध ही होता है, अतः ऐसी धमकी प्रपीड़न नहीं है भले ही कर्मचारियों का उद्देश्य उस उद्योगपति से किसी प्रकार का करार करवाना ही रहा हो ।[5]

'प्रपीड़न' शब्द का प्रयोग भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 72 में भी किया गया है और यह निर्दिष्ट किया गया है कि जिस व्यक्ति को प्रपीड़न के अधीन धन संदत्त किया गया है या कोई चीज परिदत्त की गई है, उसे उसका प्रतिसंदाय या वापसी करनी होगी, किन्तु धारा 72 में प्रयुक्त 'प्रपीड़न' का अर्थ प्रपीड़ित व्यक्ति से करार कराया जाना नहीं है, वरन प्रपीड़न के द्वारा अनधिकृत रूप से धन प्राप्त करना है[6] । धारा 72 में प्रयुक्त प्रपीड़न शब्द सामान्य अर्थ का वाहक है और इसका विस्तार प्रत्येक प्रकार की विवशता तक है, भले ही यह धारा 15 में परिभाषित प्रपीड़न की सीमा तक न पहुंचती हो ।[7]

धारा 72 में प्रयुक्त प्रपीड़न का उद्देश्य करार का कराना न होते हुए भी यह कल्पना कर ली गई है कि ऐसी अवस्था में जिसने भी प्रपीड़न के बल पर धन या वस्तु प्राप्त की है, उस पर उसे लौटाने का दायित्व संविदा के दायित्व के सश ही है । भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 15 में प्रपीड़न की जो परिभाषा दी है, उसके अनुसार प्रपीड़न का आशय किसी व्यक्ति से कोई करार कराया जाना है जिसका अभिप्राय करार के लिए सम्मति या प्रतिफल प्राप्त करना है, कारण यह कि किसी करार के लिए सम्मति देने का अर्थ वचन को प्रादुर्भूत करना है और वचन स्वयं प्रतिफल का प्रभाव रखता है ।

---

[1] श्रीमती मनिया **बनाम** डिप्टी डाइरेक्टर, चकबन्दी, ए० आई० आर० 1971 इलाहाबाद 151.

[2] पूरबी **बनाम** बासुदेव, ए० आई० आर० 1969 कलकत्ता 293.

[3] एल० एण्ड एल० इन्श्योरेन्स कं० **बनाम** बिनोय, ए० आई० आर० 1945 कलकत्ता 218.

[4] आन्ध्र शुगर लिमिटेड **बनाम** आन्ध्र प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 599.

[5] [illegible] टी एस्टेट के कर्मचारी **बनाम** औद्योगिक अधिकरण, ए० आई० आर० 1966 असम व नागालैण्ड 115.

[6] पी० बी० मिल्स **बनाम** भारत संघ, ए० आई० आर० 1970 गुजरात, 59.

[7] टी० जी० एम० आसदी **बनाम** काफी बोर्ड, ए० आई० आर० 1969 मैसूर 230.

यहां पुनः एक विरोधाभास प्रतीत होता है क्योंकि प्रपीड़न ऐसे कार्य को माना गया है जो भारतीय दण्ड संहिता द्वारा निषिद्ध हो और इस प्रकार ऐसे प्रपीड़न के बल पर प्राप्त प्रतिफल, संविदा अधिनियम की धारा 23 के अनुसार, विधि द्वारा निषिद्ध कहा जाएगा और फलतः अधिनियम की धारा 24 के अनुसार, किसी करार के प्रतिफल अथवा उसके किसी भाग का विधि-विरुद्ध होना ही करार को शून्य करने के लिए पर्याप्त है, किन्तु अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत प्रपीड़न द्वारा कारित सम्मति के आधार पर किया गया करार शून्य न होकर केवल शून्यकरणीय है, जिसका फल यह होगा कि यदि प्रपीड़ित पक्षकार, उस करार को विखंडित न करे तो जो करार आद्यतः शून्य होना चाहिए वह भी विधिमान्य हो जाएगा।

रंगनायकम्मा बनाम **अलवार शेट्टी**[1] वाले मामले में, एक 13 वर्ष की बाल विधवा से, अपने पति की ओर से एक पुत्र को दत्तक लेने की सम्मति, उसके पति के शव का दाह संस्कार न करने की धमकी के आधार पर प्राप्त की गई थी जिसे न्यायालय के विनिश्चय में प्रपीड़न माना गया। इस मामले में शव के दाह संस्कार न करने की धमकी को प्रपीड़न मानने का आधार भारतीय दण्ड संहिता की धारा 297 में खोजा जा सकता है जहां कि किसी शव के प्रति असम्मान प्रदर्शन या शवदाह के लिए एकत्रित व्यक्तियों को विक्षुब्ध करना अपराध माना गया है। साथ ही इस मामले से यह भी स्पष्ट होता है कि यह आवश्यक नहीं है कि धमकी संविदा के किसी पक्षकार की ओर से ही दी जाए क्योंकि इस मामले में दत्तक देने वाले दूसरे पक्ष की ओर से धमकी नहीं थी।

बन्सराज बनाम **सेक्रेटरी ऑफ स्टेट**[2] वाला मामला ऐसा उदाहरण है जहां धमकी का लक्ष्य संविदा का पक्षकार स्वयं न होकर उसके माता-पिता थे। इस मामले में एक व्यक्ति को उसके माता-पिता की सम्पत्ति की कुर्की की धमकी, उससे जुर्माना वसूल करने के आशय से दी गई थी।

कन्हैयालाल बनाम **नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया**[3] वाले मामले में; कुर्की के क्रम में, वादी को विधि-विरुद्ध रीति से उसकी सम्पत्ति से बेकब्जा करके, जबकि वादी को उस सम्पत्ति को विधिक उपचार द्वारा निर्मुक्त कराने का अवसर नहीं था, उससे डिक्री के धन को वसूल कर लिया गया था जिसके कारण उस धन का संदाय प्रपीड़न द्वारा प्राप्त माना गया।

असम्यक् असर का अर्थ

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 16 के अनुसार, कोई संविदा असम्यक् असर द्वारा वहां उत्प्रेरित कही जाती है जहां कि पक्षकारों के बीच विद्यमान सम्बन्ध ऐसे हैं कि उनमें से एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में है और उस स्थिति का उपयोग उस दूसरे पक्षकार से अऋजु फायदा अभिप्राप्त करने के लिए करता है। विशिष्टतया और इस सिद्धांत की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह बात भी है कि कोई व्यक्ति किसी अन्य की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में तब समझा जाता है जबकि वह—

(क) अन्य पर वास्तविक या दृश्यमान प्राधिकार रखता है या उस अन्य के साथ वैश्वासिक सम्बन्ध की स्थिति में है; अथवा

---

1 आई० एल० आर० 1889, 13 मद्रास 214.

2 1939 ए० डब्ल्यू० आर० 247.

3 आई० एल० आर० (1913) 40 कलकत्ता 598.

(ख) ऐसे व्यक्ति के साथ संविदा करता है जिसकी मानसिक सामर्थ्य पर आयु, रुग्णता या मानसिक या शारीरिक कष्ट के कारण अस्थायी या स्थायी रूप से प्रभाव पड़ा है।

साथ में यह भी है कि जहां कोई व्यक्ति, जो किसी अन्य की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में हो, उसके साथ संविदा करता है, और वह संव्यवहार देखने से ही या दिए गए साक्ष्य के आधार पर लोकात्मा-विरुद्ध प्रतीत होता है, वहां यह साबित करने का भार कि ऐसी संविदा असम्यक् असर से उत्प्रेरित नहीं की गई थी, उस व्यक्ति पर होगा जो उस अन्य की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में था, परन्तु इस बात का भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 111 के उपबन्धों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा।

असम्यक् असर की इस परिभाषा को निम्न दृष्टांतों से स्पष्ट किया गया है ——

(क) क जिसने अपने पुत्र ख को उसकी अप्राप्तवयता के दौरान धन उधार दिया था, ख के प्राप्तवय होने पर अपने पतृक असर के दुरुपयोग द्वारा उससे उस उधार धन की बाबत शोध्य राशि से अधिक रकम के लिए एक बन्धपत्र अभिप्राप्त कर लेता है। क असम्यक् असर का प्रयोग करता है।

(ख) रोग या आयु से क्षीण हुए मनुष्य क पर ख का, जो असर उसके चिकित्सकीय परिचारक के नाते है, उस असर से ख को उसकी वृत्तिक सेवाओं के लिए एक अयुक्तियुक्त राशि देने का करार करने के लिए क उत्प्रेरित किया जाता है। ख असम्यक् असर का प्रयोग करता है।

(ग) क अपने ग्राम के साहूकार ख का ऋणी होते हुए एक नई संविदा करके ऐसे निबन्धनों पर धन उधार लेता है जो लोकात्माविरुद्ध प्रतीत होते हैं। यह साबित करने का भार कि क की संविदा असम्यक् असर से उत्प्रेरित नहीं की गई थी, ख पर है।

(घ) क एक बैंकार से उधार के लिए ऐसे समय में आवेदन करता है, जब धन की बाजार में तंगी है। बैंकार ब्याज की अप्रायिक ऊंची दर पर देने के सिवाय उधार देने से इन्कार कर देता है। क उन निबन्धनों पर उधार प्रतिगृहीत करता है। यह संव्यवहार कारबार के मामूली अनुक्रम में हुआ है, और यह संविदा असम्यक् असर से उत्प्रेरित नहीं है।

असम्यक् असर की इस दृष्टान्तयुक्त परिभाषा के प्रारम्भिक भाग में, असम्यक् असर की सामान्य धारणा को व्यक्त किया गया है। इसके मध्य भाग में ऐसे व्यक्तियों की, वे विशेष कोटियां बताई गई हैं जिनके साथ की गई संविदाओं में असम्यक् असर की सम्भावना की उपधारणा की जा सके। अन्तिम भाग में इस बात को ध्यान में रखा गया है कि जो व्यक्ति किसी अन्य की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में होता है, वही प्रायः साक्ष्य के स्वरूप को भी अपने पक्ष में कर लेने में समर्थ होता है, अतः असम्यक् असर न होने के साक्ष्य का भार, उसी व्यक्ति पर डाला गया है। किन्तु यह भार तभी डाला जा सकेगा जबकि एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति के अतिरिक्त, किया गया संव्यवहार देखने मात्र से ही अथवा विषय को सिद्ध करने के क्रम में ही लोकात्माविरुद्ध प्रतीत हो। जिसका सीधा तात्पर्य यह है कि जो संविदा प्रकटतः लोकात्माविरुद्ध है, उसके विषय में उस व्यक्ति के प्रति असम्यक् असर द्वारा संविदा प्राप्त करने की उपधारणा कर ली जाएगी।

असम्यक् असर की स्थितियां

असम्यक् असर, कपट, दुर्व्यपदेशन आदि दोष सजातीय है, और भागतः कुछ दशाओं में अतिव्याप्त हो सकते हैं, तथापि विधि की दृष्टि से उन्हें भिन्न-भिन्न कोटियों में रखा गया है। पिता और बालक, संरक्षक और प्रतिपाल्य, न्यासी और हिताधिकारी, पति और पत्नी, चिकित्सक और रोगी, स्वामी और सेवक, अधिवक्ता और मुवक्किल आदि वे पारस्परिक सम्बन्ध हैं, जिनमें प्रथम पक्ष दूसरे पक्ष की इच्छा को अधिशासित करने की सहज और स्वाभाविक स्थिति में होता है।

यह सिद्धांत ऐसी स्थिति के सभी वर्गों पर लागू होता है जहां कि दाता और गृहीता के मध्य प्रवर्तित विश्वास के कारण असम्यक् असर के प्रयोग की सम्भावना विद्यमान हो।[1] इस सिद्धांत का उद्देश्य दुर्बल और असहाय व्यक्तियों को सुरक्षा करना है, अतः इसे किसी जाति या वर्ग विशेष में सीमित नहीं किया जा सकता।[2] **राम** बनाम **सीतल**[3] वाले मामले में प्रेमी और प्रेमिका के सम्बन्धों को भी इसी संवर्ग के अन्तर्गत माना गया है। **मन्नासिह** बनाम **उमादत्त**[4] वाले मामले में एक धर्मगुरु के पक्ष में शिष्य द्वारा किए गए दान के विलेख को असम्यक् असर द्वारा कारित माना गया है।

पर्दे में रहने वाली स्त्रियां प्रायः असम्यक् असर से ग्रस्त होती हैं, अतः उनसे की गई संविदाओं में इस सिद्धान्त का महत्व अधिक है। ऐसी स्त्रियों के सम्बन्ध में केवल करार को उन्हें पढ़कर सुना दिया जाना ही पर्याप्त नहीं होगा वरन् करार की विधिक विवक्षाओं की भी उन्हें व्याख्या करके बताना आवश्यक है।[5] यही नियम निरक्षर और अल्पबुद्धि स्त्रियों पर भी लागू होगा[6]। जो स्त्रियां अपेक्षाकृत शिक्षित हैं, समाचार पत्र पढ़ लेती हैं, अपने कार्यों की व्यवस्था कर लेती हैं और यदाकदा न्यायालयों में भी उपस्थित होती हैं, उन्हें पर्दे वाली स्त्रियों की कोटि में नहीं रखा जा सकता।[7] एक ऐसी महिला द्वारा जो कि अपने कारबार की स्वयं देखभाल करती थी, एक बन्धक किया गया। उस महिला का भाई बन्धकदार के असर में तथा उस महिला की इच्छा को भी अधिशासित करता था। किन्तु संव्यहार उस महिला और उसके भाई के बीच नहीं हुआ था। यह निर्णय हुआ कि असम्यक् असर का प्रश्न इस मामले में सुसंगत नहीं था।[8]

कपट, प्रपीड़न और असम्यक् असर वाली स्थितियां सभी के लिए समान हैं, चाहे वे पर्दे वाली महिलायें हों चाहे अन्य कोई[9]। **लक्ष्मी अम्मा व अन्य बनाम तेलंगला नारायण भट्ट**[10] वाले मामले में एक वयोवृद्ध, स्खलित-बुद्धि तथा मधुमेह व अन्य व्याधियों से ग्रस्त निष्पादक ने अपने पुत्रों व अन्य नातियों को अपवर्जित करते हुए अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को अपने एक नाती के पक्ष में व्यवस्थित कर दिया और अपनी तृतीय पत्नी, जिससे कि उसने अपनी पूर्व दो पत्नियों की मृत्यु के उपरांत विवाह किया था,

---

1 महबूब खां **बनाम** हकीम अब्दुल रहीम, ए० आई० आर० 1965 राजस्थान 250.

2 सोनिया **बनाम** शेख मौला, ए० आई० आर० 1955 कलकत्ता 17.

3 ए० आई० आर० 1948 पटना 130.

4 आई० एल० आर० 1890, 12 इलाहाबाद 523.

5 जंगबहादुर **बनाम** नवलकिशोर, ए० आई० आर० 1966 पटना, 342 (345).

6 कतारी **बनाम** केवल कृष्ण, ए० आई० आर० 1972 हिमाचल प्रदेश 177.

7 लाडलीप्रसाद **बनाम** करनाल डिस्टिलरी, ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1279.

8 कंवरानी मदनावती **बनाम** रघुनाथसिंह, ए० आई० आर० 1976 हिमाचल प्रदेश 41.

9 रवरबूजा कुंअर **बनाम** जंगबहादुर, ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1203.

10 ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1367.

के हित में कुछ व्यवस्था नहीं की और न ही उसे जीवनपर्यन्त निवास की सुविधा दी। यहां तक कि उसने स्वयं भी अपने जीवनकाल में उस सम्पत्ति से सम्बन्धित किसी संव्यवहार का अधिकार नहीं रखा। विलेख में लोकात्माविरुद्ध होने की सभी परिस्थितियां विद्यमान थीं और जिस नाती के पक्ष में निष्पादन हुआ था, वह यह सिद्ध नहीं कर पाया कि इस संव्यवहार में असम्यक् असर विद्यमान नहीं था। न्यायमूर्ति ए० एन० ग्रोवर ने इस स्थिति को असम्यक् असर की स्थिति ठहराया।

जो पक्षकार समान स्थिति में हो; उनके संव्यवहार भी अऋजु हो सकते हैं। अतः असम्यक् असर के सन्दर्भ में पक्षकारों का पारस्परिक सम्बन्ध एक सुसंगत तथ्य है। किन्तु केवल सम्बन्ध की विद्यमानता ही असम्यक् असर के प्रमाण के लिए पर्याप्त नहीं है[1]। **असर प्राप्त करने की स्थिति में होना, असर प्राप्त कर लेना और फिर उस असर का दुरुपयोग करना, ये तीन बातें असम्यक असर की स्थिति के संघटक तत्व हैं।** लार्ड किंग्सडाउन[2] ने कहा है कि "यह सिद्धान्त वहां लागू होता है जहां असर प्राप्त करके उसका दुरुपयोग किया जाए या जिसमें विश्वास हो वही उसे भंग करे।" **यह आवश्यक नहीं है कि असम्यक् असर का प्रयोग करने वाले को स्वयं को असम्यक् असर द्वारा कारित संव्यवहार से कोई लाभ ही हो।**[3]

असम्यक् असर का अभिवाक् व सबूत

न्या० आर० एस० सरकारिया के अनुसार, असम्यक् असर के तथ्य का वाद पत्र में पृथक् और स्पष्ट अभिवाक् होना चाहिए।[4] वादी की दीर्घकाल तक की चुप्पी असम्यक् असर के अभिवाक् के विरुद्ध मानी जाएगी[5]। **मोहम्मद** बनाम **हुसेनी**[6] वाले मामले में कहा गया है कि असम्यक् असर के मामले में **निम्न चार सूत्रों** के आधार पर विचार किया जाना चाहिए—

1. क्या यह संव्यवहार शुद्धात्मा से प्रेरित था अर्थात् क्या यह संव्यवहार ऐसा था जिसके किये जाने की किसी समुचित मस्तिष्क वाले व्यक्ति से अपेक्षा हो;
2. क्या इस संव्यवहार को अघटनीय कहा जा सकता है, अर्थात् क्या यह ऐसा अघटनीय था जिससे यह संकेत होता हो कि संविदा के समय दाता अपने मस्तिष्क का स्वयं स्वामी नहीं था और अपने कृत्य के प्रभाव को समझने में असमर्थ था;
3. क्या इस संव्यवहार से पूर्व किसी विधिक परामर्श की अपेक्षा थी;
4. क्या इस संव्यवहार में अन्तर्वलित संदान अथवा परिदान का विचार, दाता की ओर से उद्भूत न होकर गृहीता की ओर से उद्भूत हुआ?

एक मामले में साक्ष्य के आधार पर यह पाया गया कि सम्बन्धित ठहराव निष्पादन करने वाली महिला दृढ़ चरित्र एवम् सशक्त निश्चय वाली थी। न्या० चिन्नप्पा रेड्डी ने यह विनिश्चित किया कि अपेक्षाकृत अधिक बलवान साक्ष्य के अभाव में यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि ऐसी महिला असम्यक् असर अथवा दुर्व्यपदेशन के अधीन रही हो। **(अनन्त महन्तो बनाम उड़ीसा राज्य)**[7]

[1] **यक्काडी सैयद मोहम्मद बनाम** अहमद फातुम्मल, ए० आई० आर० 1973 मद्रास 302.

[2] **स्मिथ बनाम** के, 1859-7 क्लार्क्स रिपोर्ट्स, हाउस ऑफ लार्ड्स, 750 (779).

[3] **चिन्नम्मा बनाम** देगाव, ए० आई० आर० 1973 मैसूर, 338.

[4] **अफरशेख बनाम** सुलेमान बीबी, ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 163.

[5] **विष्णुप्रिया बनाम** वृषमानु, ए० आई० आर० 1976 उड़ीसा 163.

[6] 15 इंडियन अपील्स, 81.

[7] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1433.

असम्यक् असर और प्रपीड़न में भेद

असम्यक् असर और प्रपीड़न में एक सूक्ष्म सीमारेखा है। प्रपीड़न के अध्यधीन व्यक्ति जो कुछ करता है वह अपने शरीर, स्वास्थ्य, सम्पत्ति अथवा ख्याति के प्रति प्रदर्शित किसी भय, धमकी अथवा अन्य ऐसी विधि-विरुद्ध बाह्य अवस्थाओं के प्रभाव से करता है, जबकि असम्यक् असर के अध्यधीन व्यक्ति की इच्छा में ही अनुचित रूपान्तर होता है, इस प्रकार जब प्रपीड़न का लक्ष्य, किसी व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति की क्षति न होकर, उस व्यक्ति की मानसिक अवस्था होती है, तभी प्रपीड़न, असम्यक् असर बन जाता है। अस्तु असम्यक् असर में प्रपीड़न उपस्थित रहता ही है और कभी-कभी प्रपीड़न या कपट, दोनों विद्यमान हो सकते हैं। असर नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक या अन्य किसी भी प्रकार का हो, इसे असम्यक् तब कहा जाता है जबकि इसका प्रयोग करके एक व्यक्ति दूसरे की इच्छा को स्वयं के अनुकूल और अधीन कर ले।

कपट का अर्थ

कपट से अभिप्रेत और उसके अन्तर्गत आने वाले कार्य निम्नलिखित हैं —

1. जो बात सत्य नहीं है, उसका तथ्य के रूप में उस व्यक्ति द्वारा सुझाया जाना जो यह विश्वास नहीं करता कि वह सत्य है;
2. किसी तथ्य का ज्ञान या विश्वास रखने वाले व्यक्ति द्वारा उस तथ्य का सक्रिय छिपाया जाना;
3. कोई वचन जो उसका पालन करने के आशय के बिना दिया गया हो;
4. प्रवंचना करने योग्य कोई अन्य कार्य;
5. कोई एसा कार्य या लोप जिसका कपटपूर्ण होना विधि विशेषतः घोषित करे।

उपरोक्त में से कोई भी कार्य, कपट से अभिप्रेत और कपट के अन्तर्गत, तब माना जाएगा जबकि वह—

1. संविदा के एक पक्षकार द्वारा, या
2. उसकी मौनानुकूलता से, या
3. उसके अभिकर्ता द्वारा;

संविदा के—

(अ) किसी अन्य पक्षकार की; या

(ब) उसके अभिकर्ता की,

1. प्रवंचना; या
2. उसे संविदा करने के लिए उत्प्रेरित करने के आशय से किया गया हो।

मौन द्वारा कपट

क्या मौन भी कपट हो सकता है? संविदा विधि की धारा 17 के स्पष्टीकरण में इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया है—

"संविदा करने के लिए किसी व्यक्ति की रजामन्दी पर जिन तथ्यों का प्रभाव पड़ना संभाव्य हो, उनके बारे में केवल मौन रहना कपट नहीं है जब तक कि मामले की परिस्थितियां ऐसी न हों जिन्हें ध्यान में रखते हुए मौन रहने वाले व्यक्ति का यह कर्त्तव्य हो जाता हो कि वह बोले या जब तक कि उसका मौन स्वतः ही बोलने के तुल्य न हो।

कपट को परिभाषा को सोदाहरण स्पष्ट करने की दृष्टि से, संविदा अधिनियम में निम्न दृष्टान्तों का प्रयोग किया गया है—

(क) क नीलाम द्वारा ख को एक घोड़ा बेचता है जिसके बारे में क जानता है कि वह ऐबदार है। क घोड़े के ऐब के बारे में ख को कुछ नहीं कहता । यह क की ओर से कपट नहीं है।

(ख) क को पुत्री ख है जो अभी ही प्राप्तव्य हुई है। यहां पक्षकारों के बीच के सम्बन्ध के कारण क का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि यदि घोड़ा ऐबदार है तो ख को वह बता दे।

(ग) क से ख कहता है कि यदि आप इस बात का प्रत्याख्यान न करें तो मान लूंगा कि घोड़ा बे-ऐब है। क कुछ भी नहीं कहता है। यहां क का मौन बोलने के तुल्य है।

(घ) क और ख, जो व्यापारी हैं, एक संविदा करते हैं। क को कीमतों के परिवर्तन की निजी जानकारी है, जिससे संविदा करने के लिए अग्रसर होने की ख की रजामन्दी पर प्रभाव पड़ेगा। ख को यह जानकारी देने के लिए क आबद्ध नहीं है।

कपट वाले मामलों की मीमांसा

किसी पक्षकार के किसी कार्य को कपटपूर्ण तभी माना जा सकता है जबकि कपट के दोषी पक्षकार का, अपने कार्य के द्वारा दूसरे पक्ष की प्रवंचना करने का आशय हो। यदि प्रवंचना करने का आशय नहीं है तो भले हो उस कार्य से दूसरे पक्ष को हानि हुई हो तथापि वह कार्य कपटपूर्ण नहीं है। इस प्रकार कपट को किसी विधिक सिद्धान्त के रूप में न मानकर, एक तथ्य के रूप में माना गया है। कपट का विधिक परिवेश तो इसी बात से सम्पूर्ण हो जाता है, जब कोई व्यक्ति किसी ऐसी बात को तथ्य के रूप में सुझाये जो सत्य नहीं है और जिसके लिए सुझाने वाला व्यक्ति भी यह विश्वास नहीं करता कि वह सत्य है या तब भी जब वह व्यक्ति जो किसी तथ्य का ज्ञान या विश्वास रखता हो, उसे सक्रिय रूप से छिपा ले, किन्तु **इन बातों को तथ्य के रूप में कपट तभी माना जाएगा जब कि उस व्यक्ति का आशय प्रवंचना करना रहा हो।**

ऐसी भी घटनायें होती हैं जहां सत्य को छुपाने (सप्रेसियोवेरी) और असत्य को सुझाने (सजेशियोफाल्सी) के कार्यों का एक संव्यवहार में सम्मिश्रण हो, जैसे कि कोई ऐसा अवयस्क, जो प्रतिपाल्य अधिकरण के संरक्षण में हो ओर जो 21 वर्ष की वय प्राप्त करने पर वयस्क हो सकता हो, अपनी आयु 20 वर्ष की बताकर, ऋण के रूप में धन प्राप्त कर ले तो ऐसा कपट सत्य (प्रतिपाल्य अधिकरण के संरक्षण के तथ्य) को छुपाने और असत्य (20 वर्ष की वय पर ही वयस्क हो जाने) को सुझाने के द्वारा कपट माना जाएगा।[1]

विधि में कपट और **तथ्य में कपट** का यह भेद संविदा की दृष्टि से महत्व का है। जहां एक पक्ष के कपट के कारण, अन्य पक्ष को क्षति हो तो निश्चित ही, वह कपट सिविल वाद के लिए आधार बन सकेगा, जो कि अपकृत्य विधि के अन्तर्गत भी हो सकता है, किन्तु संविदा विधि के अन्तर्गत, जब तक किसी पक्षकार का आशय प्रवंचना करना न हो, तब तक उसका सत्य को छुपाने और असत्य को सुझाने का कार्य भी कपट की परिभाषा में नहीं आएगा। क्षति के अभाव में कपट और कपट के अभाव में क्षति, दोनों ही अनुयोज्य नहीं हैं, किन्तु संविदा विधि में इसकी अनुयोज्यता के लिए, कपट और क्षति के साथ-साथ प्रवंचना के आशय को भी सिद्ध करना आवश्यक है। यहां यह और स्मरणीय है कि जहां **तथ्य में कपट** सर्वदा कर्ता के आशय पर निर्भर करता है, वहीं यह आशय स्वयं भी एक तथ्य ही होता है। **ऐडगिंगटन बनाम फिट्ज मारिस**[2] वाले मामले में, न्यायमूर्ति लार्ड बोवेन ने यह अभिव्यक्त किया था कि

---

1 बुष्दा बनाम लक्ष्मीचन्द, आई० एल० आर० (1930) 11 लाहौर, 167.

2 एल० आर० (1885) 29 चान्सरी 459, 480, 483.

"किसी विद्यमान तथ्य के विषय में मिथ्योक्ति आवश्यक है, किन्तु किसी व्यक्ति के मस्तिष्क की स्थिति, उस व्यक्ति की पाचनक्रिया की स्थिति के समान हो स्वयं एक तथ्य है और किसी समय विशेष पर किसी व्यक्ति के मस्तिष्क की जो स्थिति हो, उसे परिसिद्ध करना कठिन ही सही, तथापि, यदि उसे निश्चय किया जा सके तो वह अन्य तथ्यों के समान एक तथ्य ही है।"

लार्ड बोवेन की उपरोक्त उक्ति से, **कपट के प्रश्न के अवधारण म निम्न सूत्रों का अवलम्ब** आवश्यक है—

1. आशय स्वयं एक तथ्य है, अत: तथ्य के रूप में सुझाये जाने योग्य भी है। अत: यदि किसी व्यक्ति का कोई आशय सत्य न हो तथापि वह उस आशय को तथ्य के रूप में सुझाये तो वह व्यक्ति कपट का दोषी हो जाएगा,

2. संविदा विधि में, कपट के आधार पर की जाने वाली कार्यवाही में, यह परिसिद्ध करना आवश्यक है—

(अ) कि कथन ऐसे तथ्य के विषय में किया गया था जो कि सत्य नहीं था, और

(ब) यह कि जिसने उस तथ्य का कथन किया, उसे भी उस तथ्य के सत्य होने का विश्वास नहीं था।

कोई बात सत्य हो या असत्य किन्तु असावधानीपूर्वक उसी का यदि सत्य मानने का विश्वास न होने पर भी कथन किया जाए तो कपट है किन्तु असावधानी से ऐसे तथ्य का कथन कर देना जो यद्यपि असत्य है तथापि उसका सत्य होने के विश्वास पर ही कथन किया गया है, कपट नहीं है। **यह उक्ति कपट के विनिश्चय का एक व्यावहारिक मानदण्ड है।**

उपरोक्त उक्ति के आधार पर, उपेक्षा यद्यपि कपट नहीं है तथापि वह कपट के साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त की जा सकती है, और कपट केवल उस घोर उपेक्षा को माना जा सकता है, जो बेइमानी की अनुकृति अथवा बेईमानी के अनुकूलनीय हो।[1]

डेरी बनाम पीक[2] वाला मामला, कपट में प्रवंचना के आशय की अनिवार्यता को स्पष्ट करता है। इस मामले में, प्रतिवादियों ने, जो कि एक ट्रामवे कम्पनी के संचालक थे एक विवरण-पत्रिका इस आशय की निकाली कि वे घोड़ों के स्थान पर वाष्प-चालित ट्रामगाड़ी चलाने के लिए अधिकृत हैं। जबकि वाष्प का प्रयोग "व्यापार परिषद्" की अनुज्ञा के बिना नहीं किया जा सकता था, संचालकों का विश्वास, तथापि, यह था कि परिषद् की अनुमति केवल एक औपचारिकता है और जिस प्रकार अन्य योजनाओं की स्वीकृति हुई उसी प्रकार, वाष्प के प्रयोग की भी, परिषद् से स्वीकृति प्राप्त हो ही जाएगी किन्तु परिषद् ने स्वीकृति दी नहीं, जबकि वादी ने विवरण पत्रिका के विश्वास पर ही, उस कम्पनी के कुछ अंश क्रय कर लिए थे। वाष्प की अनुमति के अभाव में, कम्पनी ठप्प हो गई तथा वादी ने प्रतिवादियों को कपट का दोषी बताकर, नष्टपरिहार (नुकसानी) के लिए एक वाद संस्थित किया जिसके निर्णय में, प्रतिवादियों को कपट का दोषी नहीं माना गया। लार्ड हरशल के अनुसार, **मिथ्या कथन को कपट तभी माना जाएगा जबकि वह कथन 1. जानबूझकर किया गया हो, 2. उसकी सत्यता में विश्वास हुए बिना किया गया हो, और 3. सत्य हो या असत्य, बिना सतर्कता या सावधानी के किया हो।**

---

[1] गंगप्पा बनाम इमामुद्दीन, 154 आई० सी० 904.

[2] (1889) 14 ए० सी० 337.

न्या० एस० एम० फजल अली के अनुसार, जब कोई व्यक्ति जिस पर कि कपट का प्रयोग किया गया हो, सम्यक् तत्परता बरतकर सत्य का ज्ञान करने की स्थिति में हो तो कपट साबित हुआ नहीं माना जा सकता।[1] अर्थात् जिस व्यक्ति के साथ कपट किया गया हो, यदि उसके समक्ष सारे तथ्य प्रकट थे अथवा वह उनका ज्ञान करने की स्थिति में था तो उसे कथन की गई बात मिथ्या होने पर भी उसे कपटवंचित हुआ नहीं कहा जा सकता।[2]

दस्तावेजों से सम्बन्धित कपटपूर्ण दुर्व्यपदेशन के सन्दर्भ में, दस्तावेज के स्वरूप और उसकी अन्तर्वस्तु में स्पष्ट भेद किया गया है। यदि दुर्व्यपदेशन दस्तावेज की अन्तर्वस्तु के बारे में है तो, न्या० पी० रामस्वामी के अनुसार वह संव्यवहार शून्यकरणीय होता है जबकि यदि दुर्व्यपदेशन दस्तावेज के स्वरूप के बारे में भी हो तो वह संव्यवहार शून्य होता है।[3]

कपट और दुर्व्यपदेशन में भेद

कपट और दुर्व्यपदेशन दोनों में ही किसी तथ्य का मिथ्या अथवा भ्रामक कथन है जिसे कोई वह पक्ष जिसे कि ऐसा कथन किया गया है, भुलावे में आ जाए, किन्तु इन दोनों में प्रमख अन्तर यह है कि कपट के मामले में जो व्यक्ति किसी बात को सुझाता है वह उसके सत्य होने में विश्वास नहीं करता जबकि दुर्व्यपदेशन के मामले में किसी तथ्य को सुझाने वाला व्यक्ति उसके सत्य होने में विश्वास करता है।[4] विस्तार के लिए शीर्षक 28 भी देखिए।

'क्रेता सावधान' का सूत्र

सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 55 के अनुसार स्थावर सम्पत्ति का विक्रेता उस सम्पत्ति में या विक्रेता के उस सम्पत्ति पर के हक में किसी ऐसी तात्विक त्रुटि को, जिसे विक्रेता जानता हो और क्रेता नहीं जानता हो और क्रेता जिसका पता मामूली सावधानी से नहीं लगा सकता हो, क्रेता को प्रकट कर दे। इस सिद्धान्त को **क्रेता सावधान रहे** (केविएट एंप्टर) के नाम से जाना जाता है।

परम विश्वास की स्थिति

ऊपर 21वें शीर्षक में यह कहा गया है कि मौन कपट के तुल्य तब होता है जब कि कोई व्यक्ति बोलने का कर्त्तव्य होते हुए भी मौन रहे। ऐसी विविध परिस्थितियां है, जहां किसी पक्ष पर बोलने का नैतिक दायित्व हो और यह प्राय: वहां होता है जहां कि पक्षकारों में ऐसे सम्बन्ध हों जिनमें एक पक्ष दूसरे के विश्वास पर सहज निर्भर करे अथवा यह दायित्व वहां होता है जहां पक्षकारों में एक के पास जानने के साधन हों और दूसरे के पास वे साधन नहीं हो। मालिक तथा अभिकर्ता, संरक्षक तथा प्रतिपाल्य, न्यासी तथा हिताधिकारी, चिकित्सक और रोगी, विधि-व्यवसायी तथा मुवक्किल आदि ऐसे सम्बन्ध हैं

[1] श्रीकृष्ण बनाम कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 376 : (1976) 2 एस० सी० आर० 722.

[2] कमलाकान्त बनाम प्रकाशदेवी, ए० आई० आर० 1976 राजस्थान 79.

[3] निगव्वा बनाम बाइरप्पा शिवद्प्पा, ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 956; प्रताप बनाम श्रीमती पुनिया, ए० आई० आर० 1977 म० प्र० 108.

[4] रतनलाल बनाम जय जितेन्द्र, ए० आई० आर० 1976 पंजाब-हरियाणा; 200 (202),

जिनके मध्य की हुई संविदाओं में, बोलने का दायित्व विद्यमान रहता है। इस प्रकार की संविदाओं को "यूबीरिमेफाइडी" या "**परम विश्वास**" की संविदा कहा जाता है। इस सम्बन्ध में इस सिद्धान्त को भी स्मरण रखना चाहिए कि "जहां किसी पर कुछ कथन करने का दायित्व हो, वहां यह दायित्व समुचित कथन का दायित्व होता है। "आंशिक प्रकटन, स्वयं भ्रामक हो सकता है। अतः यदि कोई व्यक्ति किसी बालक को अपना पुत्र बताकर प्रकट करे तो उससे यह बोध होगा कि पुत्र धर्मज है, किन्तु यदि पुत्र अधर्मज हो तो ऐसी दशा में पिता का कर्त्तव्य पुत्र को केवल पुत्र प्रकट करने से पूर्ण नहीं हो जाता वरन पिता का यह दायित्व है कि वह पूर्णतः प्रकट करते हुए, उसे अधर्मज पुत्र बताए।[1]

दुर्व्यपदेशन का अर्थ

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 18 में, दुर्व्यपदेशन से जो अभिप्रेत है और जो इसके अन्तर्गत आता है, वह निम्न प्रकार से बताया गया है—

(1) उस बात का जो सत्य नहीं है, ऐसे प्रकार से किया गया निश्चयात्मक प्राख्यान जो उस व्यक्ति की, जो उसे करता है, जानकारी से समर्थित न हो, यद्यपि वह उस बात के सत्य होने का विश्वास करता हो,

(2) कोई ऐसा कर्त्तव्य भंग, जो प्रवंचना करने के आशय के बिना उस व्यक्ति को, जो उसे करता है, या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाले किसी व्यक्ति को कोई फायदा किसी अन्य को ऐसा भुलावा देकर पहुंचाए, जिससे उस अन्य पर या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाले किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े,

(3) चाहे कितने ही सरल भाव से क्यों न हो, करार के किसी पक्षकार से उस बात के पदार्थ के बारे में जो उस करार का विषय हो, कोई भूल कराना।

दुर्व्यपदेशन की परिभाषा की समालोचना

उपरोक्त परिभाषा का प्रथम खण्ड भाषा की दृष्टि से विलक्षण प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें जो तथ्य जानकारी से समर्थित न हो, उसके सत्य होने का विश्वास करना भी सम्भव माना गया है। विश्वास सदैव जानकारी से ही उत्पन्न होता है। बिना जानकारी के किया हुआ किसी तथ्य के प्रति विश्वास एक कल्पना मात्र है। इस प्रकार की परिभाषा का तात्पर्य **दुर्व्यपदेशन** को **कपट** से पृथक् स्थान देना प्रतीत होता है। यद्यपि किसी कथन का जानकारी से समर्थित न होना और तब भी उसका सत्य समझा जाना केवल जानकारी लेने के दायित्व के प्रति उपेक्षा है, परन्तु वह कपट नहीं है जबकि साधारण सतर्कता के दायित्व को पूर्ण किए बिना किसी कथन का किया जाना घोर उपेक्षापूर्वक है जो डेरी बनाम **पोक**[2] वाले मामले के अनुसार कपट माना जा सकता है। तब, जानकारी से समर्थित किये बिना, किसी तथ्य के सत्य होने का विश्वास किस प्रकार किया जा सकता है? कल्पना और विश्वास में अन्तर यही है कि कल्पना निराधार होती है जबकि विश्वास साधार होता है अतः, जानकारी से समर्थित हुए बिना भी किसी तथ्य के सत्य होने का विश्वास तभी किया जा सकता है जब विश्वास करने का कोई आधार हो।

---

1 देखिए—विमलाबाई **बनाम** शंकरलाल, ए० आई० आर० 1959, मध्य प्रदेश, 8.

2 14 ए० सी० 339.

10—377 व्ही०एस०पी०/81

जो तथ्य स्वयं की जानकारी से समर्थित न हो, किन्तु वह तथ्य किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी से समर्थित हो तो उस अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी को कथन किये गए तथ्य के सत्य होने के विश्वास का आधार तो माना जा सकता है, किन्तु उसे **जानकारी से समर्थित** नहीं माना जा सकता। जब तक किसी विश्वास का आधार, सर्वोत्तम साधनों से उपलब्ध जानकारी न हो, तब तक उसे **जानकारी से समर्थित** नहीं माना जा सकता। अतः परिभाषा के प्रथम खण्ड में यद्यपि **विश्वास** के आधार का उल्लेख नहीं है, तथापि उसका आधार, एक सुसंगत तथ्य के रूप में अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि इस "आधार" से ही यह निश्चय हो सकेगा कि कोई तथ्य जानकारी से समर्थित है अथवा नहीं और तभी यह अवधारित किया जा सकेगा कि कोई कथन, दुर्व्यपदेशन है अथवा नहीं है।

इस प्रकार, अनुश्रुत जानकारी को स्वयं की जानकारी के क्षेत्र से पृथक् करना होगा क्योंकि यद्यपि ऐसी जानकारी, स्वयं की ही जानकारी है, तथापि वह सर्वोत्तम साधनों से प्राप्त जानकारी नहीं कही जा सकती, और अनुश्रुत जानकारी के आधार पर किया गया कथन, दुर्व्यपदेशन माना जाएगा। **मोहनलाल बनाम श्रीगंगाजी काटन मिल्स**[1] वाले मामले में अनुश्रुत जानकारी के आधार पर किए गए कथन को, मुख्य न्यायाधिपति मैक्लीन ने, दुर्व्यपदेशन माना है। इस मामले में **क** ने **ख** को यह कथन किया कि **ग** एक निगमित होने वाली कम्पनी का संस्थापक हो जाएगा, और इस कथन में विश्वास करके **ख** ने उस कम्पनी के कुछ अंश क्रय कर लिये। यहां **क** ने **ग** से जानकारी लिए बिना जो कथन **ख** से किया वह दुर्व्यपदेशन है, क्योंकि **क** का यह कथन जानकारी से समर्थित नहीं माना जा सकता।

परिभाषा का दूसरा खण्ड, उन समस्त परिस्थितियों का आकलन करता है, जो कपट न होते हुए भी **आन्वयिक कपट** (कन्सट्रक्टिव फ्राड) माने जा सकते हैं, अर्थात् जहां प्रवंचना का आशय यद्यपि नहीं है, तथापि परिस्थितियां ऐसी हैं कि उनसे प्रवंचना के आशय का अनुमान किया जा सकता है। जैसे, एक ऋणी अपने ऋणदाताओं से एक प्रशमन के विलेख पर उसे न्यास का विलेख बताकर हस्ताक्षर करा ले और यह न बताए कि उस विलेख में ऋणों का प्रशमन भी सन्निविष्ट है, तो यह कपट न होते हुए भी दुर्व्यपदेशन होगा।[2]

परिभाषा का तृतीय खण्ड, उन परिस्थितियों को लक्ष्य करता है जहां कि पक्षकारों के संव्यवहार में संव्यवहार की विषयवस्तु के सम्बन्ध में, एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष से कोई तात्विक भूल करा दी जाए। जैसे कोई व्यक्ति पैतृक सम्पत्ति के विक्रय के समय यह प्रकट न करे कि उसके अवयस्क पुत्र विद्यमान है, तो अपने हक की अपूर्णता का स्पष्ट कथन करने से वह व्यक्ति दुर्व्यपदेशन का दोषी होगा।[3]

दुर्व्यपदेशन तथा कपट में भेद

दुर्व्यपदेशन और कपट दोनों ही में, मिथ्या कथन होता है, किन्तु जब तक कि मिथ्याकथन में प्रवंचना का आशय न हो, वह दुर्व्यपदेशन रहता है और जैसे ही उसमें प्रवंचना का आशय भी आ जाए वह कपट हो जाता है। कपट और दुर्व्यपदेशन दोनों ही में, किसी तथ्य का अन्यथा कथन होता है, जिससे कि दूसरा पक्ष भुलावे में आ जाए, किन्तु

[1] (1899) 4 सी० डब्ल्यू० एन० 369.

[2] ओरिएन्टल बैंक कारपोरेशन बनाम फ्लैमिंग, आई० एल० आर० (1879) 3 मुम्बई 242.

[3] रतन बनाम नानिक, 109 आई० सी० 183.

कपट और दुर्व्यपदेशन में प्रमुख भेद यह है कि कपट में, किसी तथ्य को सुझाने वाला व्यक्ति स्वयं उस तथ्य की सत्यता में विश्वास ही नहीं करता जबकि दुर्व्यपदेशन में कथन करने वाला, कथित तथ्य के सत्य होने का, विश्वास करता है।[1] कपट और दुर्व्यपदेशन दोनों के ही लिए यह आवश्यक है कि वह अपने मर्म तथा तथ्य दोनों ही दृष्टियों से कपट या दुर्व्यपदेशन होना चाहिए।[2]

कपट के कारण, संविदा तो शून्यकरणीय हो ही सकती है, किन्तु कपट के आधार पर अपकृत्य विधि में नष्ट परिहार के लिए भी वाद चलाया जा सकता है जबकि दुर्व्यपदेशन के आधार पर केवल संविदा को ही विखण्डित किया जा सकता है। यदि दुर्व्यपदेशन के कारण किसी संविदा का विखण्डन किया जाता है तो विखण्डित करने वाले पक्षकार को जो फायदा उसने संविदा के अधीन प्राप्त किया है, उसे उस व्यक्ति को प्रत्यावर्तित करना होता है जिससे कि ऐसा फायदा प्राप्त किया गया था। कपट में इस बात का महत्व नहीं है कि जिससे कपट किया गया है वह व्यक्ति साधारण सावधानी का प्रयोग करके सत्यता का ज्ञान कर सकता था किन्तु दुर्व्यपदेशन में यह बात महत्व की है क्योंकि जिससे दुर्व्यपदेशन किया गया है, वह संविदा का विखण्डन तभी कर सकता है जबकि जिस तथ्य के बारे में दुर्व्यपदेशन किया गया है, उसका ज्ञान वह सामान्यतया नहीं प्राप्त कर सकता था। कपट और दुर्व्यपदेशन, दोनों ही में, इस बात का महत्व नहीं है कि मिथ्याकथन न करने से भी परिणाम वही होता जो कि मिथ्या कथन से हुआ है।

भूल

भूल को संविदा विधि में परिभाषित नहीं किया गया है, किन्तु **भूल का तात्पर्य विस्मृति नहीं है।** अंग्रेजी भाषा में भूल के लिए **मिस्टेक** शब्द का प्रयोग किया जाता है जो किसी विषय के विस्मरण को लक्ष्य न करके उस विषय के किसी एक या दूसरी ओर निर्णय लेने की स्थिति को लक्ष्य करता है। संविदा विधि[3] में, **चार प्रकार की** भूलों की कल्पना की गई है--1. दोनों पक्षकारों की भूल, 2. केवल एक पक्ष की भूल, 3. तथ्य की भूल, तथा 4. विधि के बारे में भूल। विधि के बारे में भूल को **पुनः दो वर्गों** में विभाजित किया जा सकता है--1. भारत में प्रवृत्त विधि के बारे की भूल, और 2. ऐसी विधि के बारे की भूल जो भारत में प्रवृत्त नहीं है। जो विधि भारत में प्रवृत्त नहीं है उसके बारे की भूल को तथ्य की भूल के समकक्ष माना गया है। दोनों पक्षकारों की भूल से कारित संविदा शून्य है यदि वह भूल करार के लिए किसी मर्मभूत तथ्य के बारे में है। यदि जिस तथ्य के बारे में भूल हुई है वह करार के लिए मर्मभूत नहीं है तो करार शून्य नहीं है किन्तु संविदा विधि में यह स्पष्ट नहीं किया गया कि ऐसे करार को किन परिस्थितियों में शून्यकरणीय और किन परिस्थितियों में बाध्यकारी माना जाए। जो संविदायें भारत में प्रवृत्त विधि के बारे में भूल द्वारा अथवा केवल एक पक्ष की तथ्य के विषय में भूल द्वारा कारित हैं वे केवल भूल के आधार पर ही शून्यकरणीय नहीं है अर्थात् यदि भूल के अतिरिक्त कोई अन्य कारण भी उपस्थित हो तो वे शून्यकरणीय हो सकती हैं।

1 रतनलाल **बनाम** जयजिनेन्द्र, ए० आई० आर० 1976 **पंजाब-हरियाणा**, 200.

2 आर० सी० ठक्कर **बनाम** बम्बई हाउसिंग बोर्ड, ए० आई० आर० 1973 गुजरात 34.

3 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 20, 21 व 22.

किन्तु यदि अन्य किसी कारण से संविदा शून्यकरणीय हो तो उपरोक्त भूल से ही किसी पक्षकार को क्या लाभ हानि हो सकती है; यह भी स्पष्ट नहीं है। इस विषय पर शून्यकरणीय संविदाओं के प्रसंग में विचार किया जा सकेगा।

सरकार के साथ संविदा विशेष की शर्तें

संविदा के गठन की उपरोक्त शर्तों के अतिरिक्त भारत की, अथवा भारत संघ के किसी राज्य की, सरकार से की जाने वाली संविदाओं की विशेष शर्तें भारत के संविधान के अनुच्छेद 299 में दी गई हैं। अनुच्छेद 299 के अनुसार—

1. संघ की अथवा राज्य को कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में की गई सब संविदायें, यथास्थिति राष्ट्रपति द्वारा अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा की गई कही जाएंगी तथा वे सब संविदायें और सम्पत्ति सम्बन्धी हस्तान्तरण-पत्र जो उस शक्ति के पालन में किए जाएं राष्ट्रपति या राज्यपाल की ओर से उसके द्वारा निदेशित या प्राधिकृत व्यक्तियों द्वारा और रीति के अनुसार लिखे जाएंगे।

2. न तो राष्ट्रपति और न किसी राज्य का राज्यपाल इस संविधान के प्रयोजन के हेतु, अथवा भारत सरकार विषयक इससे पूर्व प्रवर्तित किसी अधिनियमिति के प्रयोजनों के हेतु की गई अथवा लिखी गई किसी संविदा या हस्तान्तरण के बारे में वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी होगा और न वैसा कोई व्यक्ति ही इसके बारे में वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी होगा जिसने उनमें से किसी की ओर से ऐसी संविदा या हस्तान्तरण-पत्र किया या लिखा हो।

उपरोक्त उपबन्धों में **तीन बातें प्रमुख** हैं—

(1) ये संविदायें, यथास्थिति, राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल द्वारा विहित रीति के अनुसार लिखित और प्ररूपित होंगी,

(2) ये संविदायें, यथास्थिति, राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के नाम में किन्तु उस व्यक्ति द्वारा की जाएंगी जो कि राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल, जैसी भी स्थिति हो, द्वारा निदेशित अथवा प्राधिकृत हो, तथा

(3) ऐसी संविदा के कोई भी दायित्व सम्बन्धित सरकार के होंगे न कि राष्ट्रपति, राज्यपाल या उन द्वारा निदेशित या प्राधिकृत किसी व्यक्ति के।

अनुच्छेद 299 के उपबन्ध उसी मामले में लागू होंगे जिसमें कि भारतसंघ अथवा भारत के किसी राज्य द्वारा अपनी कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई संविदा की जाती है। यदि किसी सरकारी अधिकारी द्वारा कानून के अन्तर्गत निहित किसी शक्ति के प्रयोग में कोई कार्य किया जाता है तो संविधान के अनुच्छेद 299 के लागू होने का प्रश्न ही नहीं होता।[1]

संविधान के अनुच्छेद 299 के उपबन्ध आज्ञापक हैं तथा इन उपबन्धों के प्रतिकूल की हुई संविदा विधितः अप्रवर्तनीय है। उक्त अनुच्छेद की अनिवार्यताओं की पूर्ति तब हो पाती है जबकि—(1) संविदा का निष्पादन सरकार की ओर से उसे निष्पादित करने के लिए अधिकृत व्यक्ति द्वारा किया जाए, तथा (2) राज्यपाल की ओर से ऐसी संविदा का किया

1 दीवान माडर्न ब्रूअरीज बनाम पोस्ट मास्टर, जम्मू, ए० आई० आर० 1977 जम्मू-कश्मीर, 86.

जाना अभिव्यक्त हो। जो हो, ऐसी संविदा के निष्पादन के लिए, किसी औपचारिक दस्तावेज के निष्पादन की विवक्षा नहीं है । संविदा के गठित हो जाने का अनुमान उन मामलों में भी किया जा सकता है जहां कि प्रस्थापना लिखित में, उस व्यक्ति द्वारा की जाए जो कि सरकार अथवा राज्यपाल के लिए ऐसी प्रस्थापना करने के लिए अधिकृत हो । इसी प्रकार, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की हुई प्रस्थापना को सरकार द्वारा प्रतिगृहीत किया जाए तो यह प्रतिग्रहण, लिखित में सरकार द्वारा अधिकृत व्यक्ति के द्वारा किया जाना चाहिए तथा उस के लिए यह भी अभिव्यक्त करना आवश्यक है कि ऐसा प्रतिग्रहण सरकार के राज्यपाल के नाम से किया गया है । **(उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **मुमताज हुसेन)**[1]

अनुच्छेद 299 के अन्तर्गत संविदा का गठन तभी माना जा सकता है, जब कि संविदा के गठन की पुरोभाव्य शर्तें पूरी हो चुकी हों। एक मामले में आबकारी विभाग द्वारा शराब का ठेका नीलाम किया गया, किन्तु बोली स्वीकृत हो जाने पर भी ठेकेदार ने ठेके की राशि के 1/6 भाग का निक्षेप नहीं किया जिसके परिणामस्वरूप ठेका पुनः नीलाम किया गया तथा दुबारा नीलाम से राज्य सरकार को जो क्षति हुई उसे पूर्व में बोली लगाने वाले व्यतिक्रमी ठेकेदार से वसूल करने के लिए राज्य सरकार ने वाद संस्थित किया । मामले के उच्चतम न्यायालय में पहुंचने पर, न्या० ए० सी० गुप्ता ने यह विनिश्चय किया कि पूर्व के नीलाम में लगाई गई बोली को मंजूर नहीं किया जा चुका था और इस कारण संविदा का गठन ही नहीं हो पाया था, और संविदा के गठन के अभाव में व्यतिक्रमी को दायी नहीं माना जा सकता। (देखिए—**उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **किशोरीलाल मिनोचा**)[2]

□ □ □

---
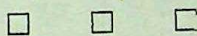
1 ए० आई० आर 1979 इलाहाबाद 174, 180.

2 ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 680.

अध्याय 5

शून्यकरणीय संविदा और शून्य करारों के विषय में

शून्यता और शून्यकरणीयता

भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2 में दिये गये निर्वचन खण्ड में चार प्रकार के करारों का उल्लेख है, अर्थात् 1. जो विधितः प्रवर्तनीय हों; 2. जो विधितः प्रवर्तनीय न हों; 3. जो केवल एक पक्षकार के विकल्प पर प्रवर्तनीय हों; तथा 4. जो आगे चलकर प्रवर्तनीय न रहें।

अधिनियम की धारा 65 में इन चार प्रकार के करारों के अतिरिक्त ऐसे करार का भी परिचय प्राप्त होता है जिसके **शून्य होने का पता चले।**

धारा 2(छ) में उन करारों की प्रकल्पना की गई है जो विधितः प्रवर्तनीय न हों, और वे सब करार जो विधितः प्रवर्तनीय नहीं हैं, शून्य करार कहे गये हैं क्योंकि ये करार आद्यतः शून्य हैं, अतः वे संविदा की अवस्था को प्राप्त करने में ही असमर्थ हैं। किसी करार को करने की यदि पक्षकारों में क्षमता ही न हो, अथवा वे करार जिनका उद्देश्य या प्रतिफल विधि विरुद्ध है, या वे करार जिन्हें कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 36 और 56 के अन्तर्गत, पूर्णतः या किसी सीमा तक या कुछ अपवादित अवस्थाओं के सिवाय, अभिव्यक्ततः शून्य घोषित किया गया है, ऐसे करार हैं जो आद्यतः शून्य हैं और फलतः प्रवर्तनीय भी नहीं हैं, और अपनी अप्रवर्तनीयता के लक्षण के कारण ही वे शून्य करारों की श्रेणी में आते हैं। इन्हीं सब करारों को, शून्य संविदायें कहा जा सकता है।

यद्यपि शुद्ध विधिक परिभाषा के आधार पर उन्हें संविदा की संज्ञा दी ही नहीं जा सकती, क्योंकि ऐसे करारों का संविदा की स्थिति तक कभी पहुंचना ही असम्भव है, तथापि परिभाषा की दुरूहता में न पड़ने के विचार से, सामान्य भाषा में इन्हीं को शून्य संविदा कह दिया जाता है। सरल बात यह है कि जिसे वास्तव में संविदा कहा जाए, वह आद्यतः शून्य होती ही नहीं है। **आद्यतः शून्य केवल करार हो सकता है।** हां, किसी करार के संविदा बन जाने के पश्चात् ऐसी अवस्थाएं आ सकती हैं, जिनके कारण वह शून्य हो जाए, जैसे कि संविदा अधिनियम की धारा 32 के अन्तर्गत, जो समाश्रित संविदायें किसी भावी अनिश्चित घटना के घटित होने पर ही प्रवर्तनीय हों, वे उस घटना के असम्भव होने पर शून्य हो जाती हैं, अथवा धारा 56 के अन्तर्गत, ऐसा कार्य करने की संविदा, जो संविदा के किये जाने के पश्चात् असम्भव हो जाए या राज्य की अधिनियमितियों द्वारा विधि विरुद्ध हो जाए, ऐसी असम्भाव्यता या विधि विरुद्धता के घटित होते ही, शून्य हो जाती है। जिन करारों में आद्यतः प्रवर्तनीयता का गुण विद्यमान है, वे सब, अधिनियम की धारा 2(ज) के अन्तर्गत संविदायें हैं, परन्तु पश्चात्वर्ती घटनाओं के कारण, ये प्रवर्तनीय नहीं रहतीं। अतः जब वे अप्रवर्तनीय हो जाएं, तभी इन्हें शून्य हुआ माना जाता है। अधिनियम की धारा 2(ञ) में संविदाओं के इसी वर्ग की प्रकल्पना की गई है।

यह नितान्त सम्भव है कि किसी भूल से या किसी भ्रामक विचार धारा के आधार पर या किसी विधि की अज्ञानता के कारण करार करते समय, पक्षकारों ने यह समझा हो कि उनका करार प्रवर्तनीय है, किन्तु तत्पश्चात् भूल, भ्रम अथवा अज्ञान का निवारण होने के पश्चात् वह करार शून्य हो, तो यह उस प्रकार का करार है जिसके **शून्य होने का पता चले**। अधिनियम की धारा 65 में उन करारों की प्रकल्पना की गई है जिनके शून्य होने का पता चलता है और इस धारा में उन करारों के प्रभाव का और उनके अधीन उत्पन्न बाध्यताओं का उल्लेख किया गया है। जो संविदायें शून्य न समझकर की गई हों, किन्तु जिनका शून्य होने का पता चले, वस्तुतः शून्य ही हैं, तथापि उनके अन्तर्गत ऐसे संव्यवहार हो चुके होते हैं, जो सद्भाव से, करार को प्रवर्तनीय मानकर किए गए हैं, अतः ऐसी संविदायें भी शून्य हो जाने वाली संविदाओं की श्रेणी में नहीं आतीं।

इन सबके अतिरिक्त संविदाओं का एक वर्ग ऐसा है जो आद्यतः प्रवर्तनीय थीं किन्तु उनके लिए, पक्षकारों में से किसी एक का विचार तत्पश्चात् उनके प्रवर्तन का नहीं रहा हो। इसी प्रकार वे संविदायें भी हैं, जिनमें कि किसी पक्षकार की सम्मति स्वतन्त्र भाव से नहीं दी गई है। जिस पक्षकार की सम्मति स्वतन्त्र रूप से नहीं दी गई है, वह पक्षकार चाहे तो, ऐसी संविदा का प्रवर्तन भी हो सकता है, किन्तु वह यदि न चाहे तो, ऐसी संविदा का प्रवर्तन नहीं कराया जा सकता। ऐसी दोनों प्रकार की संविदायें पक्षकारों में से केवल एक पक्ष के विकल्प पर प्रवर्तनीय होती हैं, किन्तु दूसरे पक्ष के विकल्प पर प्रवर्तनीय नहीं होती। अतः ये संविदाएं न तो उस श्रेणी के करार हैं जो आद्यतः शून्य हों और न ही उस श्रेणी के करारों के अन्तर्गत आती हैं जिनका शून्य होने का पता चले और न ही उस वर्ग में आती हैं, जो पश्चात्वर्ती असम्भाव्यता या विधि विरुद्धता के कारण शून्य हो जाएं। इन संविदाओं को उन वर्ग में रखा गया है जिनकी शून्यता वैकल्पिक है। अतः इन्हें शून्यकरणीय संविदाओं के नाम से एक पृथक् कोटि में रखा गया है। संविदा अधिनियम की धारा 2 (झ) के अन्तर्गत, इस कोटि को संविदाओं की प्रकल्पना करके, इन्हें इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि **वह करार जो उसके पक्षकारों में से एक या अधिक के विकल्प पर तो विधि द्वारा प्रवर्तनीय हो, किन्तु अन्य पक्षकार या पक्षकारों के विकल्प पर नहीं, शून्यकरणीय संविदा है।**

ऐसी संविदा में, जब तक वस्तुतः उसे शून्य न कर दिया जाए, प्रवर्तनीयता के सारे तत्व विद्यमान रहते हैं, अतः यह शून्यकरणीयता की स्थिति से पूर्व, एक उत्तम, और संविदा की कोटि में रखा जाने वाला, करार है, किन्तु शून्य कर दिए जाने के पश्चात् इसमें से प्रवर्तनीयता का गुण लुप्त हो जाता है। अतः जब यह प्रवर्तनीय नहीं रह जाती, तब इसे भी शून्य मान लिया जाता है। तब यह अधिनियम की धारा 2(ञ) के अन्तर्गत, शून्य हो जाने वाली संविदाओं के वर्ग में आ जाती है। आशय यह है कि **जिस पक्षकार के विकल्प पर, कोई संविदा शून्यकरणीय है, वह तब तक शून्य नहीं हो सकती जब तक कि अमुक पक्षकार अपने उपलब्ध विकल्प के प्रयोग द्वारा उसे वास्तव में शून्य न कर दे।**

शून्यकरणीयता और विखण्डनीयता

संविदा अधिनियम की धारा 10 के अन्तर्गत, केवल वही करार संविदायें हैं जो अन्य बातों के साथ-साथ पक्षकारों की स्वतन्त्र सम्मति से किये गए हों। पक्षकारों की सम्मति तब स्वतन्त्र कही जाती है जबकि वह **प्रपीडन, असम्यक् असर, कपट, दुर्व्यपदेशन** या **भूल द्वारा कारित न हो। अधिनियम**

की धारा 14 के अनुसार, सम्मति इन दोषों से युक्त तब मानी जाती है जब कि, यदि उपरोक्त अवस्थाओं में से कोई न हो, तब वह दी ही न जाती। इन सब अवस्थाओं के ज्ञान होने पर सम्मति नहीं दी जा सकती थी, अतः इन अवस्थाओं के प्रभाव से दी हुई सम्मति स्वतन्त्र नहीं हो सकती। जैसे ही किसी पक्षकार को यह विदित हो जाए कि किसी करार के लिए उसकी सम्मति कपट या दुर्व्यपदेशन की युक्ति से प्राप्त कर ली गयी थी अथवा जैसे ही वह ठीक समझे कि जिस सम्मति को उसके विपक्षी ने उससे असम्यक्तः और बल पूर्वक प्राप्त कर लिया था, उससे वह बाध्य नहीं रहना चाहता, उसे यह अधिकार हो जाता है कि वह अपनी सम्मति का प्रतिसंहरण कर ले और ऐसा करते ही एक पक्ष की सम्मति के समाप्त होने के साथ ही, वह करार भी समाप्त हो जाता है। कपट या दुर्व्यपदेशन से ग्रस्त करारों के विषय में यह विदित होने के पश्चात भी कि किसी एक पक्ष की सम्मति स्वतन्त्र नहीं थी, प्रभावित पक्षकार चाहे तो उस करार को स्थापित रख सकता है। करार की शून्यकरणीयता की यह एक ऐसी स्थिति है जो किसी पक्षकार द्वारा उसे यह विदित होने पर लाई जा सकती है कि उसकी सम्मति स्वतन्त्र रूप से नहीं दी गई थी।

दूसरे प्रकार की शून्यकरणीयता तब प्रभावी हो सकती है जबकि पक्षकारों की सम्मति हर प्रकार से स्वतंत्र रही थी और उनके बीच करार की विधिवत् स्थापना भी हो चुकी थी, और करार संविदा की अवस्था को प्राप्त भी हो चुका था, तथापि संविदा के पालन के क्रम में ही, किसी पक्षकार से कोई ऐसी चूक हो गई है जिसके कारण उस संविदा का दूसरा पक्षकार अब उसका पालन नहीं चाहता। जहां किसी एक पक्षकार की चूक हो, वहीं दूसरे पक्षकार को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह उस की हुई संविदा को विखण्डित करके, उस संविदा को ही समाप्त कर दे।

प्रथम प्रकार की शून्यकरणीयता एक प्रकार से करारों की शून्यकरणीयता है दूसरे प्रकार की शून्यकरणीयता संविदाओं की विखण्डनीयता है। एक में, संविदा का मूल आधार, सम्मति, ही शून्य हो जाती है और सम्मति के शून्य होने के कारण स्वयं करार भी शून्य हो जाता है, जबकि दूसरी म संविदा अपालनीय और विखण्डित हो जाने के कारण शून्य हो जाती है।

शून्यकरणीयता, जब भी यह ज्ञात हो कि सम्मति जब दी गई थी तब उपरोक्त अवस्थाओं में से किसी एक या अधिक कारणों से दूषित थी, तभी प्रयुक्त हो जाती है, किन्तु विखण्डनीयता, पालन के क्रम में, जिस समय पालन के सम्बन्ध में चूक हो, तभी प्रयुक्त होनी चाहिए। यदि चूक पर ध्यान न दिया जाए और संविदा का पालन हो चुके, तो फिर शून्यकरणीयता के लिए कोई अवसर नहीं रहता।

शून्य करणीयता को संविदा अधिनियम में दो वर्गों में रखा गया है— 1. प्रपीड़न, कपट या दुर्व्यपदेशन से प्राप्त सम्मति के कारण शून्यकरणीयता, जिसका उपबन्ध अधिनियम की धारा 19 में किया गया है, और 2. असम्यक् असर द्वारा प्राप्त सम्मति के कारण शून्यकरणीयता, जिसका उपबन्ध अधिनियम की धारा 19क में किया गया है। विखण्डनीयता, जो पालन के क्रम में संविदा को विखण्डित करने के अधिकार के प्रयोग से घटित होती है, तीन प्रकार की है जिनका उपबन्ध क्रमशः अधिनियम की धारा 39, 53 व 55 में किया गया है। विखण्डनीयता की स्थितियों का सम्बन्ध संविदा के पालन से होने के कारण, इन पर विचार संविदा के पालन के अध्ययन के अनुक्रम में किया जाएगा।

प्रपीड़न, कपट या दुर्व्यपदेशन द्वारा कारित करारों की शून्यकरणीयता

जबकि किसी करार के लिए सम्मति प्रपीड़न, कपट या दुर्व्यपदेशन से कारित हो तब वह करार ऐसी संविदा है जो उस पक्षकार के विकल्प पर शून्यकरणीय है जिसकी सम्मति ऐसे कारित हुई थी। इस कथन के साथ भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 19 में यह भी उपबन्ध है कि संविदा का वह

पक्षकार जिसकी सम्मति कपट या दुर्व्यपदेशन से कारित हुई थी, यदि वह ठीक समझे तो, आग्रह कर सकेगा कि संविदा का पालन किया जाए और वह उस स्थिति में रखा जाए जिसमें वह होता यदि किये गए व्यपदेशन सत्य होते।

इस नियम का एक अपवाद भी, इस प्रकार अधिनियमित है कि —

"यदि ऐसी सम्मति दुर्व्यपदेशन द्वारा या ऐसे मौन द्वारा जो संविदा अधिनियम की धारा 17 के अर्थ के अन्तर्गत कपटपूर्ण है, कारित हुई थी तो ऐसा होने पर भी संविदा शून्यकरणीय नहीं है, यदि उस पक्षकार के पास, जिसकी सम्मति इस प्रकार कारित हुई थी, सत्य का पता मामूली तत्परता से चला लेने के साधन थे।"

उपरोक्त अपवाद में, **कपटपूर्ण** शब्द **मौन** शब्द को विशेषित करता है, 'दुर्व्यपदेशन' को नहीं[1] यह कि यदि सम्मति दुर्व्यपदेशन अथवा कपटपूर्ण मौन द्वारा प्राप्त की गई है, तभी यह अपवाद लागू हो सकेगा। धारा 17 के अन्तर्गत आने वाले कपटपूर्ण दुर्व्यपदेशन के मामलों में यह अपवाद लागू नहीं होता वरन् यह उस मौन पर लागू होता है जो धारा 17 के अन्तर्गत कपटपूर्ण है। [तत्रैव]

इस सम्बन्ध में, एक स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि —

"वह कपट या दुर्व्यपदेशन, जिसने संविदा के उस पक्षकार की सम्मति कारित नहीं की, जिससे ऐसा कपट या दुर्व्यपदेशन किया गया था, संविदा को शून्यकरणीय नहीं कर देता।"

उपरोक्त उपबन्धों के सम्बन्ध में, निम्न पांच दृष्टांत दिए गए हैं —

(क) **ख** को प्रवंचित करने के आशय से **क** मिथ्या व्यपदेशन करता है कि **क** के कारखाने में पांच सौ मन नील प्रतिवर्ष बनाया जाता है और तद्द्वारा **ख** को वह कारखाना खरीदने के लिए उत्प्रेरित करता है। संविदा **ख** के विकल्प पर शून्यकरणीय है।

(ख) **क** दुर्व्यपदेशन द्वारा **ख** को गलत विश्वास कराता है कि **क** के कारखाने में पांच सौ मन नील प्रतिवर्ष बनाया जाता है। **ख** कारखाने के लेखाओं की पड़ताल करता है जो यह दर्शित करते हैं कि केवल चार सौ मन नील बनाया गया है। इसके पश्चात् **ख** कारखाने को खरीद लेता है। संविदा **क** के दुर्व्यपदेशन के कारण, शून्यकरणीय नहीं है।

(ग) **क** कपटपूर्वक **ख** को इत्तिला देता है कि **क** की सम्पदा विल्लंगममुक्त है। तब **ख** उस सम्पदा को खरीद लेता है। वह सम्पदा एक बन्धक के अध्यधीन है। **ख** या तो संविदा को शून्य कर सकेगा या यह आग्रह कर सकेगा कि वह क्रियान्वित की जाए और बन्धक ऋण का मोचन किया जाए।

(घ) **क** की सम्पदा में **ख** अयस्क की एक शिला का पता लगाकर, **क** से उस अयस्क के अस्तित्व को छिपाने के साधनों का प्रयोग करता है और छिपा लेता है। **क** के अज्ञान से **ख** उस सम्पदा को न्यून मूल्य पर खरीदने में समर्थ हो जाता है। संविदा **क** के विकल्प पर शून्यकरणीय है।

(ङ) **ख** की मृत्यु पर एक सम्पदा का उत्तराधिकारी होने का, **क** हकदार है। **ख** की मृत्यु हो जाती है। **ख** की मृत्यु का समाचार पाने पर, **ग** उस समाचार को **क** तक नहीं पहुंचने देता और **क** को इस तरह उत्प्रेरित करता है कि उस सम्पदा में अपना हित उसके हाथ में बेच दे। यह विक्रय **क** के विकल्प पर शून्यकरणीय है।

---

[1] लाइफ ईन्शोरेन्स कार्पोरेशन **बनाम** बैद्यनाथ, ए० आई० आर० 1978 पटना, 334, 337।

प्रपीड़न, कपट या दुर्व्यपदेशन के कारण शून्यकरणीयता पर टिप्पणी

प्रपीड़न, कपट या दुर्व्यपदेशन के आधार पर किसी संविदा की शून्यकरणीयता के इस अधिकार के अन्तर्गत, विक्रेता किसी विक्रय[1] को अथवा दाता किसी दान[2] को भी, शून्य करके अन्तरित सम्पत्ति के प्रत्यास्थापन का वाद ला सकता है। **कौटुम्बिक व्यवस्थापन भी एक संविदा है।** अतः आवश्यक है कि यह भी कपट, प्रपीड़न अथवा असम्यक् असर द्वारा कारित नहीं होना चाहिए।[3] जिस पक्षकार के विकल्प पर संविदा शून्यकरणीय होती है, उस पक्षकार के लिए यह आवश्यक है कि अपने इस विकल्प का यथाशीघ्र प्रयोग करे अर्थात् जैसे ही उसे यह विदित हो जाए कि उसकी सम्मति, सम्बन्धित संविदा के लिए, कपट, प्रपीड़न या दुर्व्यपदेशन से कारित थी, तो उसे ऐसे तथ्य का उद्घाटन होते ही अपने विकल्प का प्रयोग करके संविदा को शून्य कर देना चाहिए। जब तक वस्तुस्थिति यथावत् रहती है तब तक विलम्ब सारवान नहीं है और ऐसा विलम्ब न तो दूसरे पक्ष पर कोई प्रतिकूल प्रभाव ही डालता है और न यह उस विकल्प का अभित्यजन है और न ही उस विकल्प की उपमति है।[4] यदि समयानुसार, इस विकल्प का प्रयोग नहीं किया गया तो यह सम्भव है कि करार की विषयवस्तु में किसी तृतीयपक्ष का मूल्यार्थ और सद्भावयुक्त अधिकार सृष्ट हो गया हो और तब शून्यकरणीयता के विकल्प का कोई फल नहीं होगा, जिसका कारण यह है कि शून्यकरणीयता के पश्चात्, जिसके विकल्प पर संविदा शून्यकरणीय है, उसे उसी स्थिति में लाया जाना चाहिए जिसमें कि वह उस संव्यवहार से पूर्व था[5], और ऐसा तब सम्भव न रहेगा यदि संविदा की विषयवस्तु किसी ऐसे तृतीय पक्ष में निहित हो चुकी हो जिसका उस कपट या दुर्व्यपदेशन में कोई हाथ नहीं था। असम्यक असर, आदि द्वारा कारित किसी लिखत को अपास्त करने का वाद, उस लिखत की तिथि से तीन वर्ष के भीतर लाया जा सकता है।[6]

इस नियम में संविदा को शून्य करने के विकल्प का उपबन्ध है, संविदा के किसी भाग को शून्य करने का उपबन्ध नहीं है। अतः या तो संविदा पूर्णतः शून्यकरणीय हो सकती है या फिर शून्यकरणीय नहीं हो सकती है, किन्तु संविदा भागतः शून्यकरणीय नहीं होती।[7]

यदि संविदा का पक्षकार जिसकी सम्मति कपट या दुर्व्यपदेशन से कारित हुई थी, यह ठीक समझे और आग्रह करे कि संविदा का पालन किया जाएगा तो फिर वह शून्यकरणीयता के विकल्प के प्रयोग का हकदार नहीं रहता। कपट, दुर्व्यपदेशन, आदि के द्वारा कारित संविदायें, आद्यतः शून्य न होकर केवल शून्यकरणीय होती है, अतः वे, जिस पक्षकार पर कपट या दुर्व्यपदेशन का प्रभाव हो सकता है, उसी के विकल्प पर, शून्यकरणीय हो सकती हैं। अतः जिसने कपट या दुर्व्यपदेशन, आदि का आश्रय लेकर दूसरे पक्षकार की सम्मति प्राप्त की हो, उसके विकल्प पर वह संविदा शून्यकरणीय नहीं होती और इस प्रकार जिसकी सम्मति कपट या दुर्व्यपदेशन के आधार पर प्राप्त की गई है, वह उस संविदा के पालन का आग्रह कर सकता है और दूसरा पक्ष उसके पालन के लिए बाध्य होगा, जिससे कि सम्मति

---

1. श्रीमती कोजेब **बनाम** माखनसिंह, ए० आई० आर० 1973 मध्य प्रदेश 252.
2. परधान **बनाम** अमीनचन्द, ए० आई० आर० 1977 हिमाचल प्रदेश 94.
3. काले **बनाम** चकबन्दी के डिप्टी डाइरेक्टर, ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 807.
4. केदार **बनाम** मनु, 16 सी० डब्ल्यू० एन० 247.
5. अब्रम एस० एस० कम्पनी **बनाम** वेस्टविले, 1923 एस० सी० 773.
6. राजामणि **बनाम** भूरासामी, ए० आई० आर० 1974 मद्रास 36.
7. शेफील्ड नाइकेल कम्पनी **बनाम** अनविन, एल० आर० (1877) 2 क्यू० बी० डी० 214.

देने वाला पक्ष उसी स्थिति में रह सके जैसी कि कपट न करने अथवा व्यपदेशन के सत्य होने की दशा में होती ।[1]

कपट द्वारा कारित संविदा के परिवर्जन के लिए कपटवंचित पक्षकार के लिए किसी स्वतन्त्र वाद का संस्थित करना आवश्यक नहीं है, वरन् वह दूसरे पक्षकार द्वारा उस संविदा के प्रवर्तन का वाद संस्थित किए जाने पर, अपने लिखित कथ्य में कपट का अभिवाक प्रस्तुत करके प्रतिवाद कर सकता है ।[2]

नियम का जो अपवाद दिया गया है उसके अनुसार, दुर्व्यपदेशन या मौन द्वारा कपट से कारित संविदा को उस अवस्था में शून्य नहीं किया जा सकता यदि उस पक्षकार के पास, जिसकी सम्मति इस प्रकार कारित हुई थी, सत्य को मामूली तत्परता से जान लेने के साधन थे किन्तु उसने या तो तत्परता नहीं बरती या उन साधनों का प्रयोग नहीं किया । किन्तु यदि सम्मति मौन के रूप में कपट या दुर्व्यपदेशन द्वारा कारित न होकर, सक्रिय कपट के द्वारा कारित थी तो सत्य की जानकारी के साधनों का अथवा किसी तत्परता के होने न होने का कोई प्रभाव नहीं होता । सक्रिय कपट की अवस्था में, सत्य का ज्ञान होने के साधन होने पर भी, संविदा को शून्य किया जा सकता है ।[3]

नियम के साथ दिए गए स्पष्टीकरण का यह अर्थ है कि यदि सम्मति देने वाले पक्षकार ने कपट या दुर्व्यपदेशन को सत्य माना ही न हो और उस पर विश्वास ही न किया हो तो सम्मति देने के लिए वह स्वयं ही उत्तरदायी है और ऐसी दशा में संविदा शून्यकरणीय नहीं है ।[4]

दस्तावेजों से सम्बन्धित कपटपूर्ण दुर्व्यपदेशन के सम्बन्ध में दस्तावेज के स्वरूप और उसकी अन्तर्वस्तु में स्पष्ट भेद किया गया है । **गिनव्वा** बनाम **बाइरप्पा शिद्दप्पा**[5] वाले मामले में न्यायमूर्ति वी० रामस्वामी ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि दुर्व्यपदेशन दस्तावेज की अन्तर्वस्तु के बारे में है तो वह संव्यवहार शून्यकरणीय होता है जबकि यदि दुर्व्यपदेशन दस्तावेज के स्वरूप के बारे में भी हो तो वह संव्यवहार शून्य होता है ।

कपट के आधार पर, न्या० आर० एस० बछावत के अनुसार, किसी संविदा को शून्य करने के लिए संस्थित वाद में प्रतिवादी का यह बचाव हो सकता है कि वादी यदि तत्परता बरतता तो सत्य का पता उसे चल जाता किन्तु ऐसे बचाव का अभिवाक यथाशीघ्र नहीं किए जाने पर, इसका लाभ उच्चतम न्यायालय के समक्ष की गई अपील में नहीं उठाया जा सकता ।[6]

बीमा की संविदा परम विश्वास की संविदा है । ऐसी संविदा में बीमा कराने वाले ने सारवान तथ्यों के दुर्व्यपदेशन से यदि कोई पालिसी प्राप्त कर ली है तो उसे विखण्डित किया जा सकता है ।[7] किन्तु जहां एक निरक्षर बीमा कराने वाले के रोगग्रस्त होने का तथ्य उस चिकित्सकीय जानकारी में प्रकट

---

1 मोहम्मद हाजी वली मोहम्मद **बनाम** रामप्पा, ए० आई० आर० 1929 नागपुर 254.

2 गैस्टो विहारी राम **बनाम** रमेशचंद्र दास, ए० आई० आर०, 1978 कलकत्ता 235.

3 गवर्नर आफ उड़ीसा **बनाम** शिवप्रसाद, ए० आई० आर० 1963 उड़ीसा 217.

4 मैकालिफ **बनाम** विलसन, आई० एल० आर० (1899) 21 इलाहाबाद 209.

5 ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 956 जिसका अनुसरण प्रताप **बनाम** पुनिया, ए० आई० आर० 1977 म० प्र० 108 में किया गया.

6 मुथिया चेट्टियार **बनाम** शाण्मुधम, ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 552 (553).

7 हिन्दुस्तान जनरल इंश्योरेन्स **बनाम** सुब्रमण्यम, ए० आई० आर० 1975 मद्रास 162.

नहीं किया गया जो कि बीमाकर्ता ने गोपनीय ढंग से बीमा करने से पूर्व प्राप्त की, तो यह संविदा इस आधार पर शून्यकरणीय नहीं है कि बीमा कराने वाले ने अपने रोगी होने का तथ्य छुपा लिया था।[1] न्यायालय के समक्ष शपथ लेकर कथन की हुई बात के आधार पर गठित किसी करार को भी कपट, दुर्व्यपदेशन, आदि के आधार पर अपास्त किया जा सकता है।[2]

असम्यक् असर द्वारा कारित संविदा की शून्यकरणीयता

जबकि किसी करार के लिए सम्मति असम्यक् असर से कारित हो तब वह करार ऐसी संविदा है जो उस पक्षकार के विकल्प पर शून्यकरणीय है, जिसकी सम्मति इस प्रकार कारित हुई। इस कथन के साथ-साथ, संविदा अधिनियम की धारा 19क में यह भी उपबन्ध किया गया है कि—

> ऐसी कोई भी संविदा या तो आत्यन्तिकतः अपास्त की जा सकेगी या यदि उस पक्षकार ने, जो उसके शून्यकरण का हकदार हो, तदधीन कोई फायदा प्राप्त किया हो तो ऐसे निबन्धनों और शर्तों पर, जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हों।

अधिनियम में इसे दो दृष्टान्तों से समझाया गया है।

(क) क के पुत्र ने एक वचनपत्र पर ख के नाम की कूटरचना की है। क के पुत्र का अभियोजन करने की धमकी देकर क से कूट रचित वचनपत्र की रकम के लिए एक बन्ध पत्र ख अभिप्राप्त करता है। यदि ख उस बन्धपत्र पर वाद लाए तो न्यायालय उसे अपास्त कर सकेगा।[3]

(ख) एक साहूकार क एक कृषक ख को 100 रुपये उधार देता है और असम्यक् असर से ख को 6 प्रतिशत प्रतिमास ब्याज पर 200 रुपये का एक बन्धपत्र निष्पादित करने को उत्प्रेरित करता है। न्यायालय ऐसे ब्याज सहित जो न्यायसंगत प्रतीत हो, 100 रुपये के प्रतिसंदाय का आदेश ख को देते हुए बन्धपत्र अपास्त कर सकेगा।

असम्यक् असर से कारित संविदा की शून्यकरणीयता की सीमा

ऊपर बताया जा चुका है कि दूषित सम्मति के कारण किसी संविदा की शून्यकरणीयता को, अधिनियम की दो पृथक धाराओं 19 और 19 क में रखा गया है। प्रपीड़न, कपट और दुर्व्यपदेशन के आधार पर जिन संविदाओं में स्वीकृति दी गई थी, उन संविदाओं की शून्यकरणीयता को, एक वर्ग में मानकर, धारा 19 के अन्तर्गत रखा गया है, जबकि असम्यक् असर द्वारा दूषित सम्मति वाली संविदाओं की शून्यकरणीयता को एक पृथक वर्ग मानकर उन्हें धारा 19 क में स्थान दिया गया है। **कपट से कारित सम्मति वाली संविदा में, जिससे कपट किया गया है उसने भी यदि कपट का ज्ञान होने के पश्चात् लाभ उठा लिया है तो उसकी सम्मति में एक प्रकार से स्वतन्त्रता का थोडा पुट आ जाता है, क्योंकि यदि कपट का भेद खुलने पर भी वह आक्षेप नहीं करता तो उसकी इस कपट में विवक्षित सहमति है।** यह इस बात पर निर्भर करता है कि कपट का ज्ञान कब हुआ। किन्तु असम्यक् असर में यह बात नहीं है। असम्यक् असर में तो उस व्यक्ति पर ऐसा असर हुआ है वह प्रारम्भ से ही जानता है कि उसकी सम्मति स्वतन्त्र नहीं है। दृष्टान्त (ख) से यही बात स्पष्ट होती है। वहां ख प्रारम्भ से ही जानता

[1] लाइफ इंश्योरेंस कार्पोरेशन बनाम श्रीमती मंजुला, ए० आई० आर० 1975 उड़ीसा 116.

[2] वा झांबेबिल बनाम केरल राज्य, ए० आई० आर० 1967 केरल 16.

[3] यह दृष्टांत सर्वथा शुद्ध प्रतीत नहीं होता। कारण कि इस दृष्टांत पर असम्यक् असर की परिभाषा लागू नहीं होती क्योंकि यहां क और ख के बीच विद्यमान संबंध ऐसे नहीं है कि ख, क की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में नहीं है। यह प्रपीड़न की परिभाषा के अंतर्गत भी नहीं आता कारण कि अपराध के अभियोजन की धमकी भारतीय दंड संहिता द्वारा निषिद्ध है.

है कि वह 100 रुपये के स्थान पर 200 रुपये का बन्धपत्र स्वेच्छा से नहीं लिख रहा है, फिर भी 100 रुपये की तो उसे आवश्यकता है ही अतः जहां तक दोनों पक्षकारों की स्वतन्त्र सम्मति है, वहां तक का करार तो प्रवर्तनीय है, और 100 रुपये के प्रतिसंदाय के लिए ख को बाध्य किया जा सकता है, और इस अंश के लिए ख अपने शून्यकरणीयता के अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता। किन्तु यदि ख से 100 रुपये भी बिना दिये, 200 रुपये का बन्ध पत्र लिखा लेता तो, पूरा बन्ध पत्र ही अपास्त किया जाता। **यह दृष्टान्त उस सार्वलौकिक सत्य को प्रदर्शित करता है कि असम्यक् असर प्रायः उन लोगों पर बड़ी सरलता से डाला जा सकता है जो स्वयं किसी आवश्यकता में हों।** अतः असम्यक् असर से प्रभावित व्यक्ति भी अपनी आवश्यकता की सीमा तक एक प्रवर्तनीय संविदा से आबद्ध है। किस सीमा तक आबद्ध है, यह न्यायालय अवधारित करेगा।

संविदा के किसी पक्षकार ने यदि दूसरे पक्षकार पर असम्यक् असर स्वयं के लाभ के लिए न डालकर किसी अन्य व्यक्ति के लाभ के लिए डाला है तो संविदा उस अन्य व्यक्ति के विरुद्ध भी शून्यकरणीय है।[1] अब, यह एक सुस्थिर मत है कि जिस पक्षकार की सम्मति असम्यक् असर द्वारा कारित हुई है, उसके उत्तराधिकारी भी उसकी सम्मति से कारित संविदा को शून्य कर सकते हैं और ऐसा सुस्थिर मत होने के कारण मुस्लिम स्वीय विधि का इस मत पर कोई प्रभाव नही है।[2]

इससे सम्बन्धित शेष बातें वही हैं जिनका उल्लेख पृष्ठ 106 पर प्रारम्भ टिप्पणी में किया गया है।

करार पर भूल का प्रभाव

(क) **भूल का अर्थ :** संविदा विधि में 'भूल' शब्द की परिभाषा नहीं दी गई है। विधिक शब्दावली में भूल का अर्थ विस्मृति नहीं है। मनोविज्ञानशास्त्र में, भूल विस्मरण के अर्थ में ग्रहण की जाती है जिसका अंग्रेजी पर्याय **फारगेट** शब्द में प्राप्य है, जो एक मानसिक स्खलन की स्थिति का द्योतक है, किन्तु विधिशास्त्र में **भूल** मानसिक स्खलन न होकर, किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा विषय के अभिज्ञान का विपर्याय है। अंग्रेजी में इसका पर्याय **मिस्टेक** शब्द में प्राप्त होता है जिसका अर्थ, किसी विषय का अन्यथा बोध है। यह एक प्रकार की मानसिक त्रुटि है। त्रुटि को अंग्रेजी में **एरर** कहा जा सकता है, जिसकी प्रयोज्यता, मानसिक और व्यावहारिक दोनों क्षेत्रों में है। इस प्रकार **एरर** शब्द का अर्थ-बोध कुछ अधिक व्यापक है जबकि **मिस्टेक** मानसिक क्षेत्र तक सीमित है। मस्तिष्क द्वारा किसी व्यक्ति, विषय अथवा वस्तु के अभिज्ञान या पहचान में, की गई त्रुटि को, भूल कहा जा सकता है। **जिस विषय, वस्तु या व्यक्ति के विषय में, जिस ओर और जिस प्रकार का निर्णय लिया जाना चाहिए, वैसा न लिया जाकर, यदि अन्यथा निर्णय लिया जाए तो वह भूल कही जाएगी। जानबूझकर, अन्यथा निर्णय लेने अथवा अन्यथा निश्चय कर लेने की स्थिति को भूल नहीं कहा जा सकता।** भूल में जो मानसिक त्रुटि अन्तर्वलित होती है, वह निर्दोषिता युक्त होती है। भूल का क्षेत्र किसी व्यक्ति की समझ में है। जिन आधारों पर जो समझ होनी चाहिये, वह न होकर अन्यथा समझ हो तो वह भूल कही जाएगी। अतः भूल अज्ञान या नासमझी भी नहीं है। **किसी तथ्य, स्थिति अथवा प्रभाव के विषय में समझ का भेद या बोध का अन्तर ही भूल है।**

भूल एक पक्ष से भी हो सकती है तथा दोनों पक्षों की ओर से भी। जब दोनों पक्षों की ओर से हो, तभी यह निर्दोष भूल होती है। **केवल एक पक्ष की भूल में, एक पक्ष निर्दोष और दूसरा पक्ष दोषी होता**

---

1. लिगो **बनाम** दत्तात्रेय, 39 बाम्बे लॉ रिपोर्टर, 1233.
2. महबूब खां **बनाम** हकीम अब्दुल रहीम, ए० आई० आर० 1964 राजस्थान 250.

है। कपट अथवा दुर्व्यपदेशन के द्वारा, एक पक्ष, दूसरे पक्ष से भूल करवा सकता है, किन्तु प्रपीड़न अथवा असम्यक् असर में भूल का कोई स्थान नहीं है। प्रपीड़न अथवा असम्यक् असर के कारण कोई व्यक्ति भूल नहीं करता वरन् विरोधी प्रभाव के कारण बलात् कोई अन्यथा निर्णय लेता है।

(ख) संविदा अधिनियम में भूल सम्बन्धी उपबन्ध : किसी करार पर भूल के प्रभाव को भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 20, 21 व 22 के अधीन रखा गया है। धारा 20 में तथ्य की बात के बारे में दोनों पक्षों द्वारा की गई भूल के प्रभाव का उल्लेख है। धारा 21 में विधि के बारे में की गई भूल का उल्लेख है और विधि के बारे की भूल दो प्रकार की बताई गई है—एक उस विधि के बारे की भूल जो भारत में प्रवृत्त है तथा दूसरी उस विधि के बारे की भूल जो भारत में प्रवृत्त नहीं है। जो विधि भारत में प्रवृत्त नहीं है अर्थात् कोई विदेशी विधि है तो उसके बारे की भूल का वही प्रभाव है जो तथ्य के बारे की भूल का है। भारत में प्रवृत्त विधि की भूल के बारे में धारा 21 में यह कहा गया है कि केवल इसी भूल के आधार पर कोई संविदा शून्यकरणीय नहीं है अर्थात् **विधि की भूल के साथ-साथ यदि अन्य कोई स्थिति भी ऐसी हो, जिसका कि करार की प्रवर्तनीयता पर प्रभाव पड़ता हो तो, उस बात के साथ ही भारतीय विधि की भूल के आधार पर संविदा शून्यकरणीय हो सकती है,** किन्तु अकेले भारतीय विधि की भूल के आधार पर संविदा शून्यकरणीय नहीं है। विदेशी विधि और तथ्य के बारे की केवल एकपक्षीय भूल भी स्वयं अपने अकेले भाव में, संविदा की शून्यकरणीयता के लिए पर्याप्त नहीं है। किन्तु तथ्य के बारे की या विदेशी विधि के बारे की भूल का यदि अन्य किसी ऐसी स्थिति से संयोग हो, जैसे कपट या दुर्व्यपदेशन से, तो संविदा शून्यकरणीय हो सकती है। धारा 20 के अनुसार, करार की किसी मर्मभूत बात के लिए, तथ्य सम्बन्धी, या धारा 21 के अनुसार, विदेशी विधि के बारे में, यदि दोनों पक्षों से भूल हो जाए तो संविदा आद्यतः शून्य होती है। धारा 22 के अनुसार, कोई संविदा केवल इस कारण ही शून्यकरणीय नहीं है कि उसके पक्षकारों में से एक के किसी तथ्य की बात के बारे की भूल में होने से वह कारित हुई थी।

(ग) भूल सम्बन्धी कुछ अन्य बातें : लैटिन में एक कहावत इस प्रकार है **इग्नोरैंशिया फैक्टी एक्सक्यूसट, इग्नोरैंशिया ज्यूरिस नॉन एक्सक्यूसट** जिसका अर्थ यह है कि तथ्य की भूल क्षम्य है, किन्तु विधि के बारे की भूल क्षम्य नहीं है। किन्तु यह कहावत इस अन्य उक्ति पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति विधि का ज्ञान रखता है, अतः किसी भी व्यक्ति से विधि के बारे की भूल नहीं हो सकती। यह एक उपधारणा मात्र है जो कोई स्वयंसिद्ध बात नहीं है। अतः इस उपधारणा को स्वयं के देश में प्रवृत्त विधि के क्षेत्र तक ही सीमित रखा गया है। किसी भी व्यक्ति को विदेश में प्रवृत्त विधि का ज्ञान होना स्वाभाविक नहीं है, अतः **विदेशी विधि के बारे की भूल को तथ्य की भूल के समकक्ष ही माना गया है।**

भूल का प्रसंग, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 72 में भी आया है। वहां कहा गया है कि जिस व्यक्ति को भूल से या प्रपीड़न के अधीन धन संदत्त किया गया है या कोई चीज परिदत्त की गई है, उसे उसका प्रतिसंदाय या वापसी करनी होगी। किन्तु इस प्रसंग में विधि के बारे की भूल और तथ्य के बारे की भूल में किसी प्रकार का अन्तर नहीं किया गया है। इस धारा में, विधि के बारे की और तथ्य के बारे की, भूलों को क्षम्य मान लिया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि **विधि के बारे की भूल अक्षम्य होने की सामान्य उक्ति का एक अपवाद, केवल संदायों और वस्तुओं के परिदान के सम्बन्ध में, संविदा अधिनियम की धारा 72 में स्थापित किया गया है।**

संयुक्त राज्य अमेरिका में,[1] साधारण तौर पर, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि प्रतिकूल कानून के अभाव में, विधि की भूलों के अधीन स्वेच्छया संदाय किये गए कर जो तथ्यों की पूरी जानकारी होते हुए संदत्त किये गए हों, वापस वसूल नहीं किये जा सकते, जबकि तथ्य की भूल के अधीन संदत्त किये गए कर, मामूली तौर पर, वापस प्राप्त किए जा सकते हैं। **फ्रेडरिक पोलोक**[2] ने **माउले जे मटिण्डाल बनाम फॅकनर**[3] का प्रसंग देते हुए यह कहा है कि यद्यपि यह उपधारणा की जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति को विधि का ज्ञान है किन्तु यह बात सत्य को विस्मृत करने का एक अपरिष्कृत तरीका है कि विधि के बारे में अज्ञान (जानकारी न होना) साधारण तौर से माफी योग्य नहीं होता, अतः ऐसी कोई उपधारणा हो तो यह सामान्य समझबूझ और तर्क के विपरीत होगी। **मैसर्स डी० कावस जी एण्ड कम्पनी बनाम मैसूर राज्य**[4] वाले मामले में, उपरोक्त संप्रेक्षणों का अनुमोदन करते हुए, उच्चतम न्यायालय के निर्णय में, न्यायाधिपति के० के० मैथ्यू ने माना है कि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यदि यह कहावत, कि यह उपधारणा की जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति को विधि का ज्ञान होता है, लागू की जाए तो विधि के अधीन भूल से संदाय का कोई मामला हो सकता है जब तक कि पहले उस उपधारणा का खण्डन न कर दिया जाए, क्योंकि जिस क्षण यह अनुमान किया जाता है कि यह उपधारणा की जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति विधि जानता है तो यह स्पष्ट है कि विधि के सम्बन्ध में, कोई व्यक्ति भूल नहीं कर सकता।

संविदा के दृष्टिकोण से, कोई भूल क्षम्य है अथवा नहीं, इस बात का विशेष महत्व नहीं है। मान लीजिए, एक पक्ष को विधि की जानकारी है किन्तु दूसरे पक्ष को नहीं है, तो उन दोनों की सम्मति एक भाव में होना सम्भव नहीं है, किन्तु साथ ही यह उपधारणा भी है कि विधि का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होता ही है, अतः विधि की समझ न होते हुए भी जो व्यक्ति, जिसे विधि की समझ है, उसे सम्मति दे दे तो यही माना जाएगा कि दोनों की सम्मति एक बात पर एक ही भाव में है। इस विरोध का शमन भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 21 के इस उपबन्ध से हो जाता है कि कोई संविदा इस कारण ही शून्य नहीं है कि वह भारत में प्रवृत्त विधि के बारे की किसी भूल के कारण की गई थी। ऐसी भूल दोनों पक्ष भी कर सकते हैं। अतः पक्षकारों को यह अवसर है कि जहां उनमें से एक से या दोनों से, विधि के बारे की भूल हो गई है और वे संविदा का उन्मोचन भी चाहते हों, तो वे यह परिसिद्ध कर सकें कि उनकी सम्मति एक ही बात पर एक ही भाव में नहीं थी। इसके विपरीत, जहां तथ्य की बात के बारे में दोनों पक्षों से भूल हुई हो, वहां यह निर्विवाद है कि सम्मति एक ही बात पर एक भाव में नहीं थी, और इस प्रकार की सम्मति धारा 13 के अधीन सम्मति ही नहीं है और जो सम्मति है ही नहीं, उसके स्वतन्त्र होने न होने का प्रश्न ही नहीं उठता। फलतः सम्मति के अभाव के कारण ही, तथ्य के बारे में हुई उभयपक्षीय भूल द्वारा कारित संविदा को, अधिनियम की धारा 20 में शून्य घोषित किया गया है। इस प्रकार, संविदा अधिनियम की धारा 20, 21 व 22 में पृथक-पृथक भूलों के पृथक-पृथक प्रभावों को नियमबद्ध किया गया है।

(घ) तथ्य के बारे में उभयपक्षीय भूल : जहां किसी करार के दोनों पक्षकार ऐसी तथ्य की बात के बारे की, जो करार के लिए मर्मभूत है, भूल में हों, वहां करार शून्य होता है। संविदा अधिनियम की धारा 20 में कथित इस नियम का एक स्पष्टीकरण यह है कि जो चीज करार की विषय वस्तु हो, उसके मूल्य के बारे में गलत राय, तथ्य की बात के बारे में भूल नहीं समझी जाएगी।

---

1 कार्पस ज्यूरिस सैकंडम, जिल्द 84, पृ० 637.

2 ज्यूरिसप्रूडेन्स एंड लीगल ऐसेज, पृ० 89.

3 [1846] 2 सी० बी० 706, 719.

4 [1975] 1 उम० नि० प० 1355, 1365= ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 813.

इस नियम को आत्मसात करने में, निम्न दृष्टान्त भी सहायक होंगे—

क. माल के एक विनिर्दिष्ट स्थोरा को, जिसके बारे में यह अनुमान है कि वह इंग्लैण्ड से मुंबई को चल चुका है, **ख** को बेचने का करार **क** करता है। पता चलता है कि सौदे के दिन से पूर्व, उस स्थोरा को प्रवहण करने वाला पोत संत्यक्त कर दिया गया था और माल नष्ट हो गया था। दोनों में से किसी भी पक्षकार को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी। करार शून्य है।

ख. **ख** से अमुक घोड़ा खरीदने का करार **क** करता है। यह पता चलता है कि वह घोड़ा सौदे के समय मर चुका था, यद्यपि दोनों में से किसी भी पक्षकार को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी। करार शून्य है।

ग. **ख** के जीवन पर्यन्त के लिए एक सम्पदा का हकदार होते हुए **क** उसे **ग** को बेचने का करार करता है। करार के समय **ख** मर चुका था, किन्तु दोनों पक्षकार इस तथ्य से अनभिज्ञ थे। करार शून्य है।

(ङ) तथ्य की भूल के आवश्यक तत्व : इस नियम में, निम्न आवश्यक तत्व निहित हैं—

1. **भूल उभयपक्षीय होनी चाहिए।** एक पक्षीय भूल पर यह नियम लागू नहीं होता।[1] किसी 'पीयरलैंस' नाम के पोत से, मुंबई से लन्दन के लिए परिवहन की जाने वाली रुई के क्रय-विक्रय का करार दो व्यक्तियों के बीच किया गया, किन्तु पता यह चला कि उसी नाम के दो पोत, मुंबई से लन्दन की ओर प्रस्थान कर रहे थे। यह अभिनिर्धारित किया गया कि उभयपक्षीय भूल के कारण, करार शून्य था।[2] एक व्यापारी ने दूसरे व्यापारी को कुछ माल प्रेषित करने का आदेश दिया, किन्तु आदेश प्राप्त होने के समय दूसरे व्यापारी का व्यापार एक तीसरे व्यापारी को अन्तरित हो चुका था जिसने उस आदेश की पूर्ति में माल को प्रेषण कर दिया, किन्तु माल की कीमत मांगे जाने पर इस भूल का पता चला। भूल दोनों ही पक्षों की थी, अतः उनके मध्य किसी करार का अस्तित्व नहीं माना गया।[3]

2. **भूल करार की मर्मभूत बात के बारे में होनी चाहिए।** विक्रेता के सम्पत्ति में हक के बारे की भूल एक मर्मभूत भल है।[4]

3. **भूल किसी विद्यमान तथ्य के बारे में होनी चाहिए।** परिस्थितियों में भावी परिवर्तन की अनभिज्ञता के कारण करार शून्य नहीं हो सकता। ऊपर के दृष्टान्त (ख) और (ग) से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तथ्य के विषय में अनभिज्ञता करार के समय विद्यमान होनी चाहिए। जैसे किसी पट्टे पर दी जाने वाली भूमि का भाड़ा, उस भूमि के भाड़े के सरकारी निर्धारण के अनुपात से तय कर लिया जाए किन्तु तत्पश्चात् सरकारी निर्धारण में वृद्धि हो जाए तो, वह भूल विद्यमान तथ्य के विषय में भूल नहीं मानी जा सकती और इस आधार पर, करार शून्य नहीं हो सकता।[5]

4. **करार की विषय वस्तु के बारे में जो भूल हो वह तथ्य की भूल मानी जा सकती है,** किन्तु करार की विषय वस्तु की कीमत के बारे में जो राय हो, उसे तथ्य की भूल नहीं माना जा सकता। नियम से संलग्न स्पष्टीकरण से यही दर्शित होता है।

---

1. जम्मू-कश्मीर राज्य बनाम सन्नाउल्ला, ए० आई० आर० 1966, ज० का० 45.
2. रैफिल्स बनाम वाइचलपांस, (1864) 159 इंग्लिश रिपोर्टस् 375.
3. बोल्टन बनाम जोन्स, (1857) 157 इंग्लिश रिपोर्टस्, 232.
4. नरसिंहदास बनाम छेदूलाल, आई० एल० आर० (1923) 50 कलकत्ता, 615.
5. बाबसेट्टी बनाम वेंकटरमन, आई० एल० आर० (1978) 3 मुंबई, 154

5. **भूल यदि मर्मभूत बात के बारे में न हो, तो उसे परिशुद्ध किया जा सकता है।** हाजी अब्दुल रहमान बनाम **बाम्बे एण्ड परशिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी**[1] वाले मामले में वादी ने एक स्टीमर भाड़े पर लिया जिसके जिद्दा से मुंबई के लिए हज के 15वें दिन, 10 अगस्त को, प्रस्थान करने का करार किया गया किन्तु तत्पश्चात् यह पता चला कि हज के 15 वें दिन 19 जुलाई पड़ती थी। भूल दोनों पक्षों की नहीं थी, अतः परिशुद्धि के लिए संस्थित किये गए वाद में इस करार को शून्य अथवा शून्यकरणीय नहीं माना गया।

(च) विधि के बारे की भूल : संविदा अधिनियम की धारा 21 के अनुसार कोई संविदा इस कारण ही शून्यकरणीय नहीं है कि वह भारत में प्रवृत्त विधि के बारे की भूल के कारण की गई थी, किन्तु किसी ऐसी विधि के बारे की, जो भारत में प्रवृत्त नहीं है, किसी भूल का वही प्रभाव है जो तथ्य की भूल का है।

इस नियम के विषय में एक दृष्टान्त यह है कि यदि **क** और **ख** इस गलत विश्वास पर संविदा करते हैं कि एक विशिष्ट ऋण भारतीय परिसीमा विधि द्वारा वारित है तो ऐसी संविदा शून्यकरणीय नहीं है।

वादी ने मीन उद्योग का हक पट्टे पर प्रतिवादी से लिया किन्तु तत्पश्चात् यह पता चला कि वादी ने भूल से उस उद्योग का हक प्रतिवादी में निहित समझा था, जबकि वह वस्तुतः वादी में ही निहित था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि व्यक्तिगत हक के बारे की भूल, कानून के बारे की भूल न हो कर तथ्य की भूल के ही समान है।[2] यदि तथ्य और विधि के बारे की मिश्रित भूल के कारण व्यक्तिगत हक के बारे में गलत विश्वास हुआ हो तो यह बिलकुल विधि के बारे की भूल नहीं कही जा सकती।[3] जहां दोनों ही पक्षों की ओर से विधि की भूल हो, वहां केवल एक ही पक्ष को दोषी नहीं माना जा सकता।[4] यदि किसी व्यक्ति ने उचित मूल्य देकर किसी ऐसी सम्पत्ति को क्रय कर लिया है जो विधितः अन्तरित नहीं की जा सकती थी तो मूल्य दे देने मात्र से ही क्रेता का उस सम्पत्ति में हक नहीं माना जा सकता।[5]

(छ) कल्याणपुर लाइम वर्क्स[6] का मामला : प्रतिवादी क्रमांक 1, बिहार राज्य, शाहाबाद के सासाराम उपखण्ड में स्थित, मुरली पहाड़ियों का स्वामी था। इन पहाड़ियों का ऊपरी भाग, अपर मुरली तथा नीचे का भाग लोअर मुरली पहाड़ियों के नाम से जाना जाता था। 1 अप्रैल, 1928 को बिहार राज्य (प्रत्यर्थी सं० 1) ने मुरली पहाड़ियों के दोनों भागों को, कुचवार लाइम स्टोन कम्पनी को चूना व पत्थर निकालने के लिए, पट्टे के दो विलेखों द्वारा, 20 वर्ष के लिए पट्टे पर दिया। इन विलेखों में यह शर्त रखी गई थी कि सरकार की स्वीकृति के बिना, कम्पनी के पट्टा सम्बन्धी हकों को अन्तरित नहीं किया जा सकेगा।

जनवरी 1933 में, कुचवार कम्पनी, स्वेच्छया, समापन की स्थिति में हो गई तथा कम्पनी के समापकों ने सुबोध गोयल बोस को 30 सितम्बर, 1933 को अरजिस्ट्रीकृत लिखतों के द्वारा 35,000 रुपये पर कम्पनी के पट्टे सम्बन्धी हकों को अन्तरित करने का निश्चय किया तथा समनुदेशितो ने उक्त

---

1 आई० एल० आर० (1892) 16 मुंबई, 561.

2 कूपर **बनाम** फिल्स, (1867) 2 हाउस ऑफ लार्ड्स केसेज, 149.

3 अपोलो चेट्टियार **बनाम** साउथ इंडिया रेलवे कम्पनी, ए० आई० आर० 1929 मद्रास 177.

4 भारत संघ **बनाम** लालचंद एंड सन्स, ए० आई० आर० 1967 कलकत्ता, 310.

5 श्रीमती रामपत्तीदेवी **बनाम** रेवेन्यू बोर्ड, ए० आई० आर० 1973 इलाहाबाद, 288, 290.

6 ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 165.

8—377 व्हो. एस. पी./81

सम्पदा का 30 सितम्बर, 1933 को कब्जा ले लिया, परन्तु वह सरकार के आदेश दिनांक 8 दिसम्बर, 1933 के अधीन, खदानों में कार्य करने से रोक दिया गया, क्योंकि सरकार ने इस प्रकार के अन्तरण को करार का भंग होना माना जिसके अनुसार, पट्टेदार का पट्टा समपहृत हो जाना चाहिए।

25 जनवरी, 1934 को लाइम कम्पनी ने शाहाबाद के जिलाधीश को, मुरली पहाड़ियों को पट्टे पर दिये जाने के लिए, आवेदन किया। 27 मार्च, 1934 को, बिहार राज्य ने, कुचवार कम्पनी के पक्ष में किये गए पट्टे को समपहृत कर लिया। सरकार द्वारा पूर्व पट्टे के अपास्त किये जाने की घोषणा करने के पश्चात् 20 वर्ष के लिए विधिवत्, लाइम कम्पनी को पट्टा प्रदान कर दिया गया। लाइम कम्पनी ने 15 अप्रैल, 1934 को कब्जा ले लिया तथा 15 मई, 1934 से खदान में खुदाई का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

24 सितम्बर, 1934 को, कुचवार कम्पनी ने तत्कालीन सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया के विरुद्ध इस आशय की घोषणा के लिए एक वाद प्रस्तुत किया कि उनके पक्ष में दिया हुआ पट्टा विधितः समहृत नहीं हुआ है तथा उसे किसी अन्य व्यक्ति को पट्टे पर न दिये जाने हेतु, आदेश जारी किया जाए तथा इस सम्बन्ध में उन्हें प्रतिकर भी दिलाया जाए।

विचारण न्यायालय द्वारा, वाद खारिज कर दिया गया। परन्तु पटना उच्च न्यायालय द्वारा वाद डिक्री किया गया। प्रिवी काउन्सिल के समक्ष अपील किये जाने पर, उच्च न्यायालय द्वारा किये गए निर्णय को कायम रखा गया। परिणामस्वरूप, कुचवार कम्पनी को पुनः कब्जा प्राप्त हो गया जो, उसके पट्टे की अवधि, 31 मार्च, 1948 तक, उसी के पास रहा। अवधि समाप्त होने के पश्चात्, कुचवार कम्पनी ने, सरकार के प्रति कब्जे का अभ्यर्पण कर दिया।

लाइम कम्पनी, अपीलकर्ता वादी ने, बिहार शासन से पूर्व के करार का पालन करने तथा पट्टे के रजिस्ट्रीकरण के लिए अनुरोध किया, परन्तु सरकार ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और 2 जून, 1949 को अपीलकर्ता वादी को यह सूचित किया कि सरकार, मुरली पहाड़ियों का पट्टा डालमिया जैन कम्पनी, प्रत्यर्थी प्रतिवादी सं० 2 को दे चुकी है। तदुपरान्त अपीलकर्ता वादी ने बिहार राज्य तथा डालमिया जैन एण्ड कम्पनी के विरुद्ध, संविदा के विनिर्दिष्ट पालन, सम्पदा पर कब्जा देने तथा नुकसानी दिलाने के लिए वाद संस्थित किया। विचारण न्यायालय ने वाद को डिक्री किया किन्तु उच्च न्यायालय द्वारा वाद खारिज किया गया और उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध, अपीलकर्ता वादी ने, उच्चतम न्यायालय में अपील प्रस्तुत की। अपील में अन्य विवाद्यकों के साथ-साथ निम्न विवाद्यक, जो संविदा विधि से सम्बन्धित थे, निम्न रूप में विचारण के लिए प्रस्तुत हुए—

1. क्या संविदा अधिनियम की धारा 20 के अधीन, संविदा, दोनों पक्षों की तथ्य सम्बन्धी भूल के कारण, शून्य थी?

2. क्या संविदा अधिनियम की धारा 21 के अधीन, रजिस्ट्रीकरण की भूल विधि के बारे की भूल है?

यह अभिनिर्धारित किया गया कि—

1. किसी भी पक्षकार की, संविदा के लिए किसी मर्मभूत बात के बारे में, कोई भूल नहीं थी। दोनों पक्षकारों को विदित था कि कुचवार कम्पनी ने बोस नामक एक व्यक्ति के नाम अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज के द्वारा, समनुदेशन कर रक्खा था और दोनों ही पक्षकार यह भी जानते थे कि पट्टे की शर्तों के अधीन, पट्टेदार द्वारा, पट्टाकर्ता की सम्मति के बिना किया गया समनुदेशन पट्टेदार के हक को समपहृत करवा सकता है।

2. यदि कोई भूल थी तो वह केवल अरजिस्ट्रीकृत समनुदेशन विलेख की मान्यता के बारे में थी और अधिक से अधिक यह भूल विधि के बारे की भूल कही जा सकती है और संविदा अधिनियम की धारा 21 के अधीन, इसी कारण संविदा शून्य नहीं होगी।

अपील स्वीकार करते हुए, अपीलकर्ता को नुकसानी का हकदार माना गया। पट्टे का पर्यवसान समीप होने के कारण, विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री नहीं दी गई।

(ज) तथ्य के बारे में एकपक्षीय भूल : भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 22 के अनुसार, कोई संविदा इस कारण ही शून्यकरणीय नहीं है कि उसके पक्षकारों में से एक के किसी तथ्य की बात के बारे की भूल होने से वह कारित हुई थी।

नियम यह है कि **अपनी भूल के लिए पक्षकार स्वयं उत्तरदायी है।** तथ्य के बारे की एकपक्षीय भूल के कारण संविदा शून्यकरणीय नहीं होती। यह बात पृथक है कि भूल करने वाले पक्षकार की भूल किसी दूसरे पक्ष के कपट, दुर्व्यपदेशन, आदि द्वारा कारित हो, ऐसी स्थिति में संविदा अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत, जिससे भूल कराई गई है, उस पक्षकार के विकल्प पर संविदा शून्यकरणीय है। विदेश में प्रवृत्त विधि के बारे की भूल तथ्य के बारे की भूल के समान ही है, अतः **विदेश में प्रवृत्त विधि के बारे की भूल यदि उभयपक्षीय है तो, जो करार ऐसी भूल द्वारा कारित हो, वह शून्य है।**[1]

एक महिला से मुख्तारनामे का दस्तावेज बताकर, विनिमय और दान के विलेख पर हस्ताक्षर प्राप्त कर लिये गए। यह अभिनिर्धारित किया गया कि दस्तावेज शून्य था[2]। एक नेत्रहीन व्यक्ति, समझौता पत्र समझकर, वास्तव में अन्य व्यक्ति के कथन पर विश्वास करके, एक निर्मुक्ति पत्र पर हस्ताक्षर कर बैठा। निर्मुक्ति पत्र शून्य माना गया[3]। कैसिस्टो नाम के एक व्यक्ति ने अपने आप को कैसिस्टो का भाई लुई बताकर एक सम्पत्ति का, इस्माइल नाम के व्यक्ति के पक्ष में, बन्धक निष्पादित कर दिया। पता चलने पर, बन्धक को शून्य माना गया[4]।

उपरोक्त मामलों से यह भली-भांति दर्शित होता है कि इन सबमें एकपक्षीय भूल अन्य पक्ष के कपट के द्वारा कारित थी, जिससे सिद्ध होता है, कि तथ्य की एक पक्षीय भूल संविदा को शून्य करने के लिए एकाकी आधार नहीं हो सकता[5]।

(झ) भूल के प्रभाव का सारांश: भूल के किसी करार पर प्रभाव का सार संक्षेप इस प्रकार है—

1. तथ्य के बारे की दोनों पक्षों की भूल से कारित संविदा शून्य है, यदि यह भूल करार के लिए मर्मभूत बात के बारे में हो, जैसे कि पक्षकारों का या संविदा की विषय वस्तु का अभिज्ञान, विषयवस्तु में निहित हक के बारे में अनभिज्ञता अथवा विषयवस्तु के करार के समय अस्तित्व या अनस्तित्व की अनभिज्ञता, आदि,

2. विदेश में प्रवृत्त विधि के बारे की उभयपक्षीय भूल से कारित संविदा शून्य है,

3. भारत में प्रवृत्त विधि के बारे की भूल का, साधारण तौर से संविदा पर कोई प्रभाव नहीं होता।

4. तथ्य के बारे में एकपक्षीय भूल का तब तक कोई प्रभाव नहीं होता जब तक कि वह किसी अन्य के कपट, दुर्व्यपदेशन आदि द्वारा कारित न हो।

---

1 अयेकपाम अगलसिंह **बनाम** भारत संघ, ए० आई० आर० 1970 मणिपुर 16.
2 शरतचन्द्र **बनाम** कनाईलाल, (1921) 16 सी० डब्ल्यू० एन० 479.
3 हेमसिंह **बनाम** भगवत, ए० आई० आर० 1925 पटना 140.
4 इस्माइल **बनाम** दत्तात्रेय, आई० एल० आर० (1916) 40 मुंबई 638.
5 स्टेट आफ जम्मू-कश्मीर **बनाम** सनाउल्लामीर, ए० आई० आर० 1966 जम्मू-कश्मीर 45.

उद्देश्य अथवा प्रतिफल की विधिविरुद्धता के कारण शून्य करार

(क) विधि विरुद्ध प्रतिफल और विधि विरुद्ध उद्देश्यः भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 10 के अनुसार, वे सब करार संविदायें हैं, यदि वे किसी विधिपूर्ण प्रतिफल के लिए और किसी विधि पूर्ण उद्देश्य से किये गये हैं। यहां **प्रतिफल** और **उद्देश्य** में भेद किया गया है। अधिनियम की धारा 25 में यह भी कहा गया है कि **प्रतिफल के बिना किया गया करार शून्य है** जो एक सामान्य प्रतिपादना है और जिसके कुछ अपवादों को भी विनिर्दिष्ट किया गया है। जहां एक ओर करार के लिए प्रतिफल का अस्तित्व आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर उस प्रतिफल का विधिपूर्ण होना भी आवश्यक है। अधिनियम की धारा 10 व 25, दोनों में ही, प्रतिफल की विधिपूर्णता और उसके अस्तित्व की अनिवार्यता, करार के निमित्त मानी गई है जबकि अधिनियम की धारा 2 (घ) में **प्रतिफल** को **करार** के निमित्त न मानकर, केवल **वचन** के निमित्त माना गया है। धारा 2 (ङ) में **वचन** को **करार** के निमित्त माना गया है और करार की प्रवर्तनीयता को संविदा के निमित्त। **संविदा की संरचना में, ये सब उत्तरोत्तर चरण हैं। प्रतिफल से वचन, वचन से करार और करार की प्रवर्तनीयता से संविदा का गठन होता है।**

संविदा के इन चरणों के क्रमिक विश्लेषण से, यह विदित होगा कि संविदा का निमित्त न प्रतिफल होता है और न उद्देश्य। **संविदा का निमित्त केवल प्रवर्तनीयता है जबकि उद्देश्य करार का और प्रतिफल केवल वचन का, निमित्त होता है।** यदि **क** किसी भूमिखण्ड को 50,000 रुपये में **ख** को विक्रय करने के लिए सहमत होता है तो, **क** का उस भूमिखण्ड को **ख** को हस्तान्तरित करने का वचन **ख** द्वारा **क** को 50,000 रुपये का मूल्य देने के वचन का प्रतिफल है और इसी प्रकार, **ख** का **क** को 50,000 रुपये देने का वचन **क** के **ख** को भूमिखण्ड हस्तान्तरित करने के वचन का प्रतिफल है, किन्तु **क** और **ख** के मध्य किए गए इस संव्यवहार की सम्पूर्णता के दृष्टिकोण से स्थावर सम्पत्ति के अन्तरण को इस संविदा का उद्देश्य कहा जा सकता है। स्पष्ट है कि, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 के अन्तर्गत स्थावर सम्पत्ति का अन्तरण, तत्सम्बन्धित विधि-विहित अन्य औपचारिकताओं का पालन कर दिए जाने पर, स्वयं में विधिपूर्ण है और यह अन्तरण स्वयं में उद्देश्य है।

कल्पना उन मामलों की भी की जा सकती है, जहां सम्पत्ति का यह अन्तरण, स्वयं में उद्देश्य न होकर, केवल प्रतिफल हो। जैसे **क** ने अपना भूमिखण्ड **ख** को अन्तरित करने का वचन दिया जिसके प्रतिफल में **ख** ने **क** को यह वचन दिया कि वह **क** के पुत्र की नियुक्ति किसी लोक सेवा में अधिकारी के पद पर करवा देगा। यहां उद्देश्य **क** के सुपुत्र की लोक सेवा में नियुक्ति है जबकि भूमिका अन्तरण और नियुक्ति के लिए वैयक्तिक असर का प्रयोग दोनों परस्पर प्रतिफल हैं। यहां करार का उद्देश्य और **ख** की ओर से उद्भूत प्रतिफल दोनों अवैध हैं।

अब मान लीजिये, **क** ने **ख** से माल विक्रय का करार किया और **ख** ने दिवालिया हो जाने के कारण उस करार के लाभ को अपने सम्बन्धी **ग** को 100 रुपये के प्रतिफल पर समनुदेशित कर दिया और **ख** और **ग** का उद्देश्य **ख** के लेनदारों को कपटवंचित करने का रहा, तो यद्यपि 100 रुपये के लिए समनुदेशित करने का प्रतिफल, विधिपूर्ण है, तथापि उद्देश्य विधिपूर्ण नहीं है, क्योंकि इस उद्देश्य से दिवालिया अधिनियम के उपबन्ध विफल हो जाते हैं।

यदि प्रतिफल धन के मूल्य का न होकर केवल वचन ही हो, तो ऐसा प्रतिफल दो प्रकार से अवैध हो सकता है। प्रथम, वचन इस प्रकार का हो सकता है कि उसका पालन ही अवैध हो, जैसे किसी व्यक्ति का अपहरण अथवा उस व्यक्ति का सदोष परिरोध। यहां वचन का पालन ही उद्देश्य भी है, अतः

करार का ऐसा उद्देश्य अवैध है, किन्तु दूसरी ओर, वे मामले भी हैं, जहां वचन का पालन अवैध न होते हुए भी, उन वचनों के दायित्व विधित: प्रवर्तनीय नहीं माने जाते, जैसे किसी विधिपूर्ण वृत्ति, व्यापार या कारबार करने वाले वचनों में, अवरोध की सीमा के अन्तर्गत आने वाले दायित्व, या पंणयम के तौर के वचनों से उद्भूत दायित्व, जो कि उद्देश्य के अवैध न होते हुए भी बाध्यकारी नहीं है। अब यदि वचन के पालन के दृष्टिकोण से देखा जाए तो, उद्देश्य अवैध नहीं है किन्तु दायित्वों के सृजन के दृष्टिकोण से देखा जाए तो उद्देश्य अवैध है।

इस प्रकार प्रतिफल और उद्देश्य में, किसी न किसी रूप में, यह अतिव्याप्तता और संदिग्धार्थता अपरिहार्य है। प्रतिफल और उद्देश्य का यह भेद करार के गठन से पूर्व का है। करार के हो जाने के पश्चात् दोनों की विधिपूर्णता करार को संविदा बनाने के निमित्त होती है। यही कारण है कि संविदा विधि में, प्रतिफल और उद्देश्य दोनों की ही विधिपूर्णता किसी संविदा के लिए अनिवार्य मानी गई है।

(ख) शून्यता और विधि-विरुद्धता में भेद और साम्पार्श्विक करारों पर प्रभाव : विधि-विरुद्ध उद्देश्यों के विषय में कोई उपधारणा नहीं की जा सकती, अत: ये करार जो प्रथमदृष्टया विधित: पालनीय हैं, उनमें किसी वचन को अवैध रीति से पालन करने के एक पक्षकार के किसी अप्रकट उद्देश्य का दूसरे पक्षकार द्वारा करार को प्रवर्तित कराने के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं होगा और ऐसी दशा में यदि संविदा के अर्थान्वयन में कोई दुविधा भी हो तो उसी अर्थान्वयन को अधिमान दिया जाएगा जो करार की प्रवर्तनीयता के अनुकूल हो। चूंकि प्रतिफल और उद्देश्य की वैधता ही उपधारणीय है, अत: संविदा विधि में केवल उन अवस्थाओं का वर्णन किया गया है जिनके कारण कोई प्रतिफल या करार विधि-विरुद्ध हो जाए। इस प्रकार, विधि-विरुद्ध करारों और उन करारों में जिन्हें शून्य माना गया है, भेद है। प्रथम प्रकार के करार इसलिए शून्य हैं कि उनके उद्देश्य विधि द्वारा प्रतिषिद्ध और दण्डनीय हैं जबकि दूसरे करारों का केवल प्रवर्तन नहीं कराया जा सकता। **जो संविदा अपने उद्देश्य या प्रतिफल की विधि-विरुद्धता के कारण शून्य है, उसे पक्षकारों द्वारा पालन कर लिए जाने पर भी विधिमान्य नहीं किया जा सकता।**[1]

उदाहरण के लिए किसी समझौते के आधार पर पारित डिक्री में अन्तर्विष्ट किसी शर्त के विधि अथवा लोकनीति के विरुद्ध होने पर भी डिक्री शून्य नहीं है और वह शर्त पूर्व न्याय और विबन्ध के सिद्धान्तों पर सम्बन्धित पक्षकारों पर उस समय तक, बाध्यकारी है जब तक कि उसे उपयुक्त न्यायिक कार्यवाही द्वारा अपास्त न कर दिया जाये[2]। न्या० मैथ्यू ने तो यह अभिनिर्धारित किया है कि किराया नियन्त्रण और निष्कासन सम्बन्धी किसी अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार किसी भवन के आवंटन आदेश के अभाव में भी पक्षकारों के मध्य किरायेदारी की संविदा अवैध अथवा शून्य नहीं है[3]। अत: यदि किसी संविदा में अन्तर्विष्ट किसी बात से विधि के किसी उपबन्ध का उल्लंघन होकर उससे कोई दण्ड उपगत होता है तो यह नहीं कहा जा सकता कि संविदा आवश्यक रूप से विधि-विरुद्ध होकर शून्य भी है[4]।

---

1 गौरीदत्त **बनाम** बंधु पांडे, ए० आई० आर० 1929 इलाहाबाद, 394.

2 भीमराव **बनाम** अब्दुल रशीद, ए० आई० आर० 1968 मैसूर 184.

3 मुरलीधर अग्रवाल **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1974, एस० सी० 1924 (1927); मणिकांत तिवारी **बनाम** बाबूराम दीक्षित, ए० आई० आर० 1978 इलाहाबाद 144 भी देखिए.

4 सी० सी० कपूर **बनाम** आयकर आयुक्त, आई० एल० आर० (1973) इलाहाबाद 293.

किसी करार के उद्देश्य या प्रतिफल के विधिविरुद्ध होने तथा स्वयं किसी प्रसंविदा के द्वारा ही किसी बात को वर्जित कर दिए जाने में भी भेद है। एक पट्टे में यह शर्त थी कि पट्टेदार पट्टाधृति का अन्तरण राज्य सरकार की मंजूरी के बिना नहीं कर सकेगा किन्तु पट्टेदार द्वारा पट्टाधृति का पर-व्यक्ति को अन्तरण कर दिए जाने पर, यह अभिनिर्धारित किया गया कि यद्यपि ऐसा कार्य प्रसंविदा द्वारा वर्जित था तथापि यह विधि द्वारा निषिद्ध नहीं था।[1]

उपरोक्त मामले में, करार शून्य नहीं कहा जा सकता यद्यपि सम्बन्धित पक्षकार संविदा भंग के लिए दायी हो सकता है।

किसी प्रस्ताव को केवल तुच्छ और नगण्य सी बातों के आधार पर शून्य नहीं बताया जा सकता, जैसा कि यदि किसी निविदा के आमन्त्रण के लिए किए गए प्रस्ताव में, माप का विवरण भी हर प्रणाली में न देकर फुट और इन्चों में दे दिया गया है तो इसे विधिविरुद्ध नहीं कहा जा सकता।[2]

विधि की परिभाषा के अन्तर्गत किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश भी आ जाता है। अतः किसी सक्षम प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध की गई संविदा भी विधिविरुद्ध संविदा होकर शून्य होगी।[3]

ऐसा साम्पार्श्विक करार जो स्वयं विधिविरुद्ध नहीं है किन्तु जो किसी अन्य करार, जो कि शून्य होते हुए भी विधि विरुद्ध नहीं है, के उद्देश्यों के अनुसरण में सहायक है, वह विधिविरुद्ध नहीं है और उसका साम्पार्श्विक करार के रूप में प्रवर्तन कराया जा सकता है। इसे सुस्थिर माना गया है कि किसी करार के उद्देश्य को निषिद्ध अथवा अविधिपूर्ण केवल इसी आधार पर नहीं कहा जा सकता कि उसके द्वारा सर्जित करार एक शून्य करार है। शून्य करार भी अन्य तथ्यों के साथ ऐसे संव्यवहार का भाग बन सकता है जिससे विधिक अधिकारों की सृष्टि हो सके किन्तु यह बात उस दशा में लागू नहीं होती जबकि उसका उद्देश्य ही निषिद्ध हो, किन्तु वे साम्पार्श्विक करार जो अन्य किसी ऐसे करार, जो कि न केवल शून्य ही हैं वरन् विधि-निषिद्ध भी हैं, के अनुसरण में किए गए हैं, वे स्वयं भी शून्य हैं।[4]

(ग) किन विधिविरुद्ध उद्देश्य या प्रतिफल के कारण करार शून्य होता है : भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 23 के अनुसार किसी करार का उद्देश्य या प्रतिफल तब विधिविरुद्ध माना जाता है जबकि वह--(1) विधि द्वारा निषिद्ध हो, अथवा (2) ऐसी प्रकृति का हो कि उसे यदि अनुज्ञात किया जाए तो वह किसी विधि के उपबन्धों को विफल कर देगा, अथवा (3) वह कपटपूर्ण हो, अथवा (4) उसमें किसी अन्य के शरीर या सम्पत्ति को क्षति अन्तर्वलित या विवक्षित हो; अथवा (5) न्यायालय उसे अनैतिक या लोकनीति के विरुद्ध माने।

इन दशाओं में से हर एक में करार का प्रतिफल या उद्देश्य विधि विरुद्ध कहलाता है और हर एक करार, जिसका उद्देश्य या प्रतिफल विधिविरुद्ध हो, शून्य होता है।

इस विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ दृष्टान्त इस प्रकार हैं --

(क) क अपना गृह 10,000 रुपये में ख को बेचने का करार करता है। यहां 10,000 रुपये देने का ख का वचन गृह बेचने के क के वचन के लिए प्रतिफल है, और गृह बेचने का क का वचन 10,000 रुपये देने के ख के वचन के लिए प्रतिफल है। ये विधिपूर्ण प्रतिफल हैं।

---

1 मोहम्मद सैयद बाबा **बनाम** यूनीवर्सल टिम्बर ट्रेडर्स, ए० आई० आर० 1976 जम्मू-कश्मीर 9.
2 योगेन्द्र कुमार जालान **बनाम** भारत संघ, ए० आई० आर० 1972 दिल्ली 234.
3 अब्दुल हमीद **बनाम** मोहम्मद इशाक, ए० आई० आर० 1975 इलाहाबाद 166.
4 फर्म प्रतापचंद नोपाजी **बनाम** फर्म कोट्रिक वेंकट शेट्टी एण्ड संस, ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1223 (1228).

(ख) क यह वचन देता है कि यदि ग, जिसे ख को 1,000 रुपये देना है, उसे देने में असफल रहा तो वह ख को छह मास के बीतते ही 1,000 रुपये देगा। ख तदनुसार ग को समय देने का वचन देता है। यहां हर एक पक्षकार का वचन दूसरे पक्षकार के वचन के लिए प्रतिफल है और ये विधिपूर्ण प्रतिफल हैं।

(ग) ख द्वारा उसे दी गई किसी राशि के बदले क यह वचन देता है कि यदि ख का पोत अमुक समुद्र-यात्रा में नष्ट हो जाए तो क उसके पोत के मूल्य की प्रतिपूर्ति करेगा। यहां क का वचन ख के संदाय के लिए प्रतिफल है, और ख का संदाय क के वचन के लिए प्रतिफल है, और ये विधिपूर्ण प्रतिफल हैं।

(घ) ख के बच्चे का भरण-पोषण करने का क वचन देता है और ख उस प्रयोजन के लिए क को 1,000 रुपये वार्षिक देने का वचन देता है। यहां हर एक पक्षकार का वचन दूसरे पक्षकार के वचन के लिए प्रतिफल है। ये विधिपूर्ण प्रतिफल हैं।

(ङ) क, ख और ग अपने द्वारा कपट से अर्जित किये गए या किये जाने वाले अभिलाभों के आपस में विभाजन के लिए करार करते हैं। करार शून्य है क्योंकि उसका उद्देश्य विधिविरुद्ध है।

(च) ख के लिए लोक-सेवा में नियोजन अभिप्राप्त करने का वचन क देता है और क को ख 1,000 रुपये देने का वचन देता है। करार शून्य है क्योंकि उसके लिए प्रतिफल विधिविरुद्ध है।

(छ) क, जो एक भूस्वामी का अभिकर्ता है, अपने मालिक के ज्ञान के बिना अपने मालिक की भूमि का एक पट्टा ख के लिए अभिप्राप्त करने का करार धन के लिए करता है। क और ख के बीच का करार शून्य है क्योंकि उससे यह विवक्षित है कि क ने अपने मालिक से छिपाव द्वारा कपट किया है।

(ज) क उस अभियोजन को, जो उसने लूट के बारे में ख के विरुद्ध संस्थित किया है, छोड़ देने का ख को वचन देता है, और ख ली गई चीजों का मूल्य लौटा देने का वचन देता है। करार शून्य है क्योंकि उसका उद्देश्य विधिविरुद्ध है।

(झ) क की सम्पदा का राजस्व की बकाया के लिए विक्रय विधान मण्डल के एक ऐसे अधिनियम के उपबन्धों के अधीन किया जाता है, जो व्यतिक्रम करने वाले को वह भू-सम्पदा खरीदने से प्रतिषिद्ध करता है। क के साथ बात तय करके ख क्रेता बन जाता है और यह करार करता है कि वह क से वह कीमत मिलने पर, जो ख ने दी है, वह सम्पदा क को हस्तान्तरित कर देगा। करार शून्य है क्योंकि उसका यह प्रभाव है कि वह संव्यवहार व्यतिक्रम करने वाले द्वारा किया गया क्रय बन जाता है और इस प्रकार उससे विधि का उद्देश्य विफल हो जाएगा।

(ञ) क, जो ख का मुख्तार है, उस असर को जो उस हैसियत में उसका ख पर है ग के पक्ष में प्रयुक्त करने का वचन देता है और क को 1,000 रुपये देने का वचन ग देता है। करार शून्य है, क्योंकि वह अनैतिक है।

(ट) ख अपनी पुत्री को उपपत्नी के रूप में रखे जाने के लिए ख को भाड़े पर देने के लिए करार करता है। करार शून्य है क्योंकि वह अनैतिक है, यद्यपि इस प्रकार भाड़े पर दिया जाना भारतीय दण्ड संहिता के अधीन दण्डनीय न हो।

उपरोक्त पांच अवस्थाओं को, जिनमें कि किसी करार का प्रतिफल या उद्देश्य विधिविरुद्ध हो जाता है, पृथक-पृथक समझ लेना आवश्यक है।

(ब) विधि निषिद्धता और तत्कारण शून्य करार: यह एक सुस्थापित सिद्धान्त है कि यदि किसी विधि द्वारा प्रतिषिद्ध बात को क्रियाशील करने के उद्देश्य से कोई संविदा की जाती है तो उसके प्रवर्तन के लिए किसी न्यायालय की सहायता प्राप्त नहीं की जा सकती[1]। मूल प्रश्न यह है कि क्या संविदा इस प्रकृति की है जिसे किसी विधि द्वारा अभिव्यक्ततः या विवक्षित रूप से प्रतिषिद्ध किया गया है? यदि हाँ, तो ऐसे विषय को आधार बनाकर की गई संविदा प्रवर्तनीय नहीं है क्योंकि वह संविदा शून्य है[2]। साथ ही ऐसे करार के लिए संदत्त प्रतिफल की वापसी का वाद भी नहीं लाया जा सकता[3]। विधि निषिद्धता के कारण करारों की शून्यता के कुछ उदाहरण निम्न हैं—

1. यदि संविदा की विषयवस्तु कोई एसा कृत्य है जो कि आपराधिक विधि के अन्तर्गत किसी अपराध की परिभाषा में आता है, तो ऐसा कृत्य संविदा के उद्देश्य या करार के प्रतिफल के रूप में विधि-निषिद्ध माना जाएगा।

2. यदि संविदा की विषयवस्तु कोई ऐसा कृत्य है जो कि किसी विधि द्वारा अभिव्यक्ततः प्रतिषिद्ध है तो, संविदा के आधार पर, न्यायालय उस विधि का उल्लंघन नहीं कर सकते। न्यायमूर्ति वशिष्ठ भार्गव के अनुसार, वे संव्यवहार जो किसी विधि के उपबन्धों के विरुद्ध हैं, वहां संविदा के पक्षकार उन संव्यवहारों से निर्मित संविदाओं के अन्तर्गत किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकते।[4]

3. जहां संविदा की विषय-वस्तु कोई ऐसा कृत्य है जिस पर कि किसी विधि द्वारा कोई शास्ति अधिरोपित की गई हो तो वहां यह भेद करना होगा कि—

(i) क्या ऐसी शास्ति केवल राजस्व में वद्धि के उद्देश्य से अधिरोपित की गई है अर्थात् क्या वह शास्ति इस प्रकृति की है अथवा उस शास्ति को अधिरोपित किया जाना इसलिए अशमनीय है कि जिस व्यक्ति पर वह अधिरोपित की जाए वह उस राजस्व के संदाय के लिए बाध्य रहे, अथवा,

(ii) क्या उस शास्ति की प्रकृति किसी ऐसे प्रतिषेध को स्थापित करने की है जिसके द्वारा कोई विनिर्दिष्ट कृत्य अथवा उस विधि के अतिक्रमण में किये गये किसी व्यवहार को अविधिमान्य करने के सामान्य निबन्धन प्रस्तुत किये गये हों, अथवा

(iii) क्या ऐसी शास्ति प्रत्येक विनिर्दिष्ट कृत्य या व्यवहार पर अधिरोपित की गई है?

यदि शास्ति की प्रकृति तीसरे अर्थात् (iii) प्रकार की है तो उससे प्रतिषेध का सृजन माना जाएगा और उस प्रकार के कार्य से पक्षकारों के मध्य किया गया संव्यवहार शून्य हो जाएगा। **भीकनभाई बनाम हीरालाल**[5] वाले मामले में चुंगी के कलक्टर ने चुंगी की एक संविदा को पर-व्यक्ति के नाम अन्तरित कर दिया और पट्टे की रकम के लिए उस पर वाद संस्थित किया जबकि पट्टे की शर्तों के अनुसार ऐसा अन्तरण निषिद्ध था और अन्तरण के

[1] सर्वेश बनाम हरी, 5 आई० सी० 236.
[2] मांट्रीयल ट्रस्ट बनाम सी० एन० रेलवे, एल० आर० (1939) ए० सी० 613.
[3] कलकत्ता नेशनल बैंक बनाम रंगरून टी कंपनी, ए० आई० आर० 1969 कलकत्ता 578.
[4] कोटेश्वर बनाम के० आर० बी० एंड कंपनी, ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 504.
[5] आई० एल० आर० (1900) 24 मुम्बई 622.

विरुद्ध शर्त के उल्लंघन पर 200 रुपए की शास्ति का उपबन्ध था। ऐसी संविदा की प्रवर्तनीयता का प्रश्न उपस्थित होने पर यह अभिनिर्धारित किया गया कि विधि द्वारा उपरोक्त प्रतिषेध केवल राजस्व की प्रतिभूति के निमित्त था और उस प्रकार उपपट्टे का करार अवैध न होकर प्रवर्तनीय था। इसी प्रकार, पारघाट परिवहन के हक के सम्बन्ध में एक ठेकेदार ने अपने उपठेकेदार के विरुद्ध उपपट्टे के अधीन दायित्व के लिए एक वाद संस्थित किया जिसमें यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या विधि के अन्तर्गत ऐसा समनुदेशन विधिमान्य था और उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि यद्यपि सरकार के विरुद्ध ऐसा समनुदेशन अविधिमान्य था तथापि पक्षकारों के मध्य वह विधिमान्य और प्रवर्तनीय था।[1]

4. बाल विवाह का प्रतिषेध, बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1929 द्वारा मान्यता प्राप्त है। अतः 14 वर्ष की बालिका का विवाह सम्पन्न करना आपराधिक दायित्व है और उसके विधि द्वारा प्रतिषिद्ध होने के कारण इसमें होने वाले व्यय की पूर्ति के लिए सम्पत्ति का विक्रय-विलेख शून्य है।[2]

5. दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत जो अपराध शमनीय हैं उनके अभियोजन के प्रत्याहरण के प्रतिफल में किए गए करार वैध किन्तु अशमनीय अपराधों के अभियोजन का प्रत्याहरण दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा निषिद्ध होने के कारण अवैध प्रतिफल माना जाएगा।[3]

6. किसी मोटर यान के परिवहन की अनुज्ञा को परिवहन प्राधिकारी की मंजूरी बिना अन्तरित नहीं किया जा सकता। अतः ऐसा अन्तरण विधि निषिद्ध होगा।[4]

7. केन्द्रीय आवश्यक प्रदाय (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम 1946 द्वारा प्रतिषिद्ध अग्रिम संविदायें विधि-निषिद्ध कही जाएंगी। (न्यायाधिपति एम० एच० बेग)[5]

8. यदि किसी संविदा की विषयवस्तु कोई ऐसा कृत्य हो जिसके करने पर विधि ने कोई शास्ति अधिरोपित न की हो तथापि उसके अन्तर्गत प्रादुर्भूत अधिकारों को कोई विधिक मान्यता न प्रदान की हो तो वह कृत्य भी विधि-निषिद्ध माना जाएगा।[6] किन्तु जहां न विधि द्वारा कोई शास्ति ही अधिरोपित की गई हो और न उस कृत्य के अन्तर्गत सृजित दायित्वों को अविधिमान्य ही किया हो तो ऐसे कृत्य को विषयवस्तु मानकर की हुई संविदा विधि-निषिद्ध नहीं मानी जाएगी। वन अधिनियम के अन्तर्गत जारी की गई एक अनुज्ञप्ति में एक शर्त यह थी कि ठेकेदार अपने ठेके की संविदा कलक्टर की अनुमति के बिना किसी पर व्यक्ति को समनुदेशित नहीं करेगा, किन्तु ऐसे समनुदेशन के प्रति कोई शास्ति अथवा अविधिमान्यता का उपबन्ध नहीं था, अतः ठेकेदार द्वारा बिना ऐसी अनुमति ठेके की संविदा के समनुदेशित कर

---

1. अब्दुल्ला बनाम मम्मोद, आई० एल० आर० (1903) 26 मद्रास 156.
2. महेश्वरदास बनाम साखी देई, ए० आई० आर० 1978 उड़ीसा 84.
3. श्रीमती सुमित्रा देवी बनाम श्रीमती सुलेखा, ए० आई० आर० 1976 कलकत्ता 196.
4. इंदरजीतसिंह बनाम सुंदरसिंह, ए० आई० आर० 1969 राजस्थान 155.
5. फर्म प्रतापचंद्र नोपाजी बनाम कोट्रिक वेंकट शेट्टी एंड संस, [1975]2 उम० नि० प० 639-ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1223, 1227,1229, 1232.
6. री महमूद एंड इस्पाहनी, एल० आर० (1921) 2 के० बी० 716.

भागीदारी का सृजन कर लेने पर, यह अभिनिर्धारित किया गया कि संविदा का उद्देश्य विधि-निषिद्ध नहीं था ।[1]

9. यदि किसी संविदा की विषयवस्तु ऐसा कृत्य हो जिसे करने पर, विधि द्वारा शास्ति, राजस्व की वृद्धि के दृष्टिकोण से न होकर, दण्ड के रूप में अधिरोपित की गई हो तो, ऐसे कृत्य को विषय वस्तु मानकर की हुई संविदा का उद्देश्य विधि-निषिद्ध माना जाएगा । आबकारी के एक अनुज्ञप्तिधारी ने कलक्टर की बिना आज्ञा अपने ठेके की संविदा को एक पर व्यक्ति को समनुदेशित कर दिया, किन्तु ऐसा समनुदेशन न केवल प्रतिषिद्ध वरन् उत्पादशुल्क अधिनियम के अन्तर्गत दण्डनीय भी था अतः यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसे समनुदेशन की संविदा विधि-निषिद्ध होने के साथ-साथ इस प्रकृति की भी थी जिससे कि उत्पाद शुल्क विधि के उपबन्ध विफल हो रहे थे ।[2]

10. जिन विषयों का स्वीय विधि में कहीं प्रतिषेध नहीं है, जैसे कि आपराधिक अभियोजन से परित्राण के लिए सम्पत्ति में अपने भाग के समपहरण का करार[3], अथवा अधर्मज बालक के भरण-पोषण का करार[4], वे विधि-निषिद्ध नहीं कहे जा सकते ।

विधि के उपबन्धों को विफल कर देने वाले शून्य करार

विधि के उपबन्धों से तात्पर्य (1) किसी अधिनियमिति, (2) प्रवृत्त विधि के किसी नियम, और (3) स्वीय विधि के नियमों से है । ऐसा कोई कृत्य जो किसी विधि के उपबन्धों को विफल कर दे, किसी संविदा की विषय वस्तु नहीं बन सकता, चाहे वह कृत्य विधि द्वारा अभिव्यक्ततः या विवक्षित रूप से प्रतिषिद्ध न हो । स्वीय विधि के अन्तर्गत ऐसे कृत्यों के उदाहरण प्रायः उपलब्ध होते हैं । जैसे हिन्दू विधि का यह सुस्थिर नियम है कि हिन्दू पत्नी को अपने पति के साथ रहना अनिवार्य है, भले ही पति किसी भी स्थान पर निवास करना चाहे । अब यदि पति और पत्नी के मध्य यह संविदा हुई हो कि पति अपनी पत्नी को पत्नी के माता-पिता के गृह से पृथक नहीं करेगा अथवा अपने गृह पर नहीं लाएगा तो यह संविदा हिन्दू[5] तथा मुस्लिम[6] दोनों विधियों के विवाह सम्बन्धी उपबन्धों को विफल कर देगी, यद्यपि ऐसी संविदा विधि निषिद्ध अथवा विधि द्वारा दण्डनीय नहीं है । किराएदार की बेदखली के लिए यदि किसी विधि में किसी प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति का उपबन्ध हो तो, संविदा में उस उपबन्ध का लाभ न उठाने की शर्त विधि के उपबन्धों को विफल कर देगी[7], किन्तु यदि भूस्वामी को विधि द्वारा कोई छूट दी गई है तो उसका अधित्यजन विधि के उपबन्धों को विफल नहीं करेगा[8] ।

उद्देश्य अथवा प्रतिफल की कपटपूर्णता से शून्य करार

जिस संविदा का उद्देश्य या प्रतिफल कपटपूर्ण हो, वह शून्य संविदा है । एक व्यक्ति, किसी स्त्री और उसके पति के कामकाज की कुछ समय पूर्व से देखभाल करते रहने के कारण, एक वैश्वासिक

---

1 नाजरअली बनाम बाबा मिया, आई० एल० आर० (1916) 40 मुम्बई 64.
2 देवीप्रसाद बनाम रूपराम, आई० एल० आर० (1888) 10 इलाहाबाद 577.
3 मु० हलीमन बनाम मोहम्मद मनीर, ए० आई० आर० 1971 पटना 385.
4 सुक्खा बनाम निन्नी, ए० आई० आर० 1966 राजस्थान 163.
5 टेकायत मोन मोहिनी जमादेई बनाम बसंत कुमारसिंह, आई० एल० आर० (1901) 28 कलकत्ता 751.
6 अब्दुल बनाम हुसैनी, (1904) 6 बाम्बे लॉ रिपोर्टर 728.
7 मुरलीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1924.
8 लच्छूमल बनाम राधेश्याम, ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 2213-[1971] 2 उम० नि० प० 199.

स्थिति प्राप्त कर चुका था तथा उस महिला की भू-सम्पत्ति का उस महिला के लाभ के दृष्टिकोण से विक्रय करने का काम उसे सौंपा गया था किन्तु उस व्यक्ति ने 5 प्रतिशत कमीशन के प्रतिफल के करार पर एक भावी क्रेता से बाजारी कीमत से कम कीमत पर उस क्रेता के पक्ष में उस महिला से भूमि का विक्रय निष्पादित करा दिया। फिर कमीशन की राशि के लिए उस व्यक्ति द्वारा उस क्रेता के विरुद्ध वाद संस्थित किए जाने पर यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस करार का उद्देश्य और प्रतिफल कपटपूर्ण था।[1] किसी पुस्तक के लेखन में किसी लेखक का कोई योगदान न होने पर भी उसी लेखक के नाम से पुस्तक के प्रकाशन की संविदा कपटपूर्ण उद्देश्य के कारण शून्य है।[2]

शरीर अथवा सम्पत्ति को क्षतिकारी करार शून्य है

दो भाइयों ने एक व्यक्ति से अधिक ब्याज की दर पर 100 रुपये का ऋण लेकर एक बन्धपत्र निष्पादित किया और उनमें से एक भाई ने ऋणदाता के यहां दो वर्ष तक बिना वेतन सेवा करने का वचन दिया और सेवा भंग की दशा में बन्धपत्र के तुरन्त संदेय हो जाने का ठहराव हुआ तो वहां यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह करार लगभग दासता के समान था और इसमें एक व्यक्ति के शरीर को क्षति अन्तर्वलित होने के कारण, यह करार शून्य था।[3] एक बालक को दत्तक देने के प्रतिफल में, उस बालक के नैसर्गिक माता-पिता को वार्षिक भत्ते के रूप में एक धनराशि देने का करार इस कारण शून्य माना गया कि इस करार में उस दत्तक पुत्र के शरीर और सम्पत्ति दोनों की क्षति अन्तर्वलित थी क्योंकि यदि यह परिसिद्ध हो जाए कि यह दत्तक न होकर बालक का क्रय करने का करार था और यह दत्तक अपास्त हो जाए तो उस बालक की न केवल अपने दत्तक पिता के परिवार में प्रतिष्ठा ही समाप्त हो जाएगी, वरन् अपने नैसर्गिक पिता की सम्पत्ति में उसका उत्तराधिकार का हक भी समाप्त हो जाएगा।[4]

अनैतिकता

अनैतिक शब्द वैसे तो अर्थ विस्तार की दृष्टि से अति व्यापक है तथा जीवन के सामान्य स्तर से स्खलित किसी भी व्यवहार या किसी भी प्रकार की पथ-भ्रष्टता को अनैतिक कहा जा सकता है, किन्तु सामान्य जीवन के अधिकांश दुराचार तो आपराधिक विधि के अन्तर्गत अपराधों की श्रेणी में ही आ जाते हैं जो वैसे भी विधि निषिद्ध होने के कारण किसी संविदा की विषयवस्तु नहीं बन सकते। अस्तु, **संविदा विधि के प्रयोजन से अनैतिकता को केवल यौन दुराचरण के अर्थ तक ही सीमित माना गया है।**[5]

अनैतिकताग्रस्त करार शून्य है

यदि कोई भूस्वामी किसी वेश्या को वेश्यावृत्ति के लिए अपना परिसर भाटक पर उठा दे तो वह उस भाटक की वसूली के लिए वाद नहीं ला सकता क्योंकि भाटक का करार अनैतिक व्यापार के दृष्टिकोण से किया गया है।[6] किन्तु यदि भूस्वामी को ऐसे अनैतिक व्यापार का ज्ञान न हो तो वह भाटक वसूल कर सकता है[7]। **पीयर्स** बनाम **बुड्रुक** वाले मामले में, एक वेश्या को कुछ माल इस आशय से

---

1 मनिक्का मूप्पनार **बनाम** पेरियो मुनायंदी पंडियम, ए० आई० आर० 1936 मद्रास 541.

2 पोस्ट **बनाम** मार्श, एल० आर० 16 चांसरी 395.

3 सतीशचंद्र **बनाम** काशी साहू, 46 आई० सी० 418.

4 एशानकिशोर **बनाम** हरिशचंद्र, (1874) 13 बाम्बे ला रिपोर्टर 42.

5 देखिए घेरुलाल पारेख **बनाम** महादेवदास, ए० आई० आर० 1959 एस० सी० 781.

6 मोली बख्श **बनाम** गुलिला, (1876) पंजाब रेकार्डस् सं० 64.

7 अल्ला बख्श **बनाम** चुनिया, (1877) पंजाब रेकार्डस् सं० 26.

बेचा गया था कि वेश्या उस सामान के उपयोग से अपने अनैतिक उद्देश्य का भली प्रकार प्रदर्शन कर सके। इसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि उस माल की कीमत की वसूली के लिए वाद नहीं लाया जा सकता[1]। किन्तु किसी वेश्या, गायिका या नर्तकी को नृत्य या गान सम्बन्धी शिक्षा देने का करार अथवा ऐसी शिक्षा के लिए प्राप्त ऋण के संदाय का करार प्रवर्तनीय माना जाएगा क्योंकि इस शिक्षा का अनैतिक व्यापार से कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं हो सकता[2]।

भूतकालिक सहवास के मामले

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(घ) के अनुसार किसी व्यक्ति द्वारा पूवकाल में किया गया कार्य भी किसी करार के लिए उत्तम प्रतिफल माना गया है। अतः इस सम्बन्ध में कुछ अनूठे प्रश्न इस प्रकार के उत्पन्न हुये हैं कि क्या स्त्री-पुरुषों के भूतकालिक अनैतिक संबंध किसी करार के लिए उचित प्रतिफल माने जा सकते हैं? इंगलैण्ड की विधि में भूतकालिक सहवास को उचित प्रतिफल नहीं माना जाता जब तक कि वह करार किसी बन्धपत्र या सील के अन्तर्गत की गई संविदा न हो[3]। भारतीय विधि में भूतकालिक सहवास, जो वैवाहिक सम्बन्धों की परिधि से परे है किन्तु जो अन्यथा कोई अपराध नहीं है, किसी संदाय के लिए उचित प्रतिफल है तथापि यदि यह परस्त्रीगमन या जारकर्म की कोटि का है तो इसे विधि विरुद्ध कहा जाएगा क्योंकि विधि का उद्देश्य वैवाहिक सम्बन्धों की पवित्रता का सम्मान करना है[4]। इस सम्बन्ध में भारतीय विधि की स्थिति पर, **डी० नागरलम्बा** बनाम **कुनकु रमय्या**[5] वाले मामले में न्यायाधिपति आर० एस० बछावत ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। एक अविभक्त हिन्दू परिवार में एक पिता और उसके चार पुत्र थे। पिता परिवार का कर्ता था। पिता ने विक्रय के आशय के दो विलेखों द्वारा अविभक्त परिवार की स्थावर सम्पत्ति का अपनी स्थायी उपपत्नी के पक्ष में अन्तरण कर दिया। कालान्तर में, अविभक्त परिवार विच्छिन्न होने के कारण, परिवार के सदस्यों की अविभक्त प्रास्थिति में भी विच्छेद हुआ। सम्पत्ति के इस अन्तरण का उद्देश्य भावी अनैतिक सहवास नहीं था। साक्ष्य के आधार पर यह माना गया कि अन्तरिती की सेवायें अन्तरक की समान प्रकार की सेवाओं के विनिमय के रूप में थीं और अन्तरिती की इन सेवाओं के बदले में अन्तरक ने भी सेवा का ही वचन दिया था न कि सम्पत्ति के अन्तरण का। अतः अन्तरिती की भूतकालिक सेवायें अन्तरक के पूर्ववर्ती वचन का प्रतिफल के रूप में प्रवर्तित हो चुकने के कारण, उन सेवाओं को, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(घ) के अन्तर्गत, अन्तरक के तत्पश्चात् दिये गए वचन के लिए अस्तित्वयुक्त प्रतिफल नहीं माना गया। भूतकालिक सेवाओं को, प्रतिफल न मानकर केवल अन्तरण का हेतु माना गया। बिना प्रतिफल के इस अन्तरण को दान माना गया और इसे अन्तरक के लिए अन्तरिती द्वारा स्वेच्छया पहले ही कर दी गई बात के लिए प्रतिकर के रूप में मानते हुए, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 6(ज) के प्रतिबन्ध से भी युक्त मान लिया गया तथापि इस दान को इसलिए शून्य माना गया कि अन्तरित की गई सम्पत्ति स्वयं अन्तरक की नहीं थी वरन् अविभक्त परिवार की थी जिसमें से कि अन्तरक अपने अविभक्त हित का दान

---

[1] एल० आर० (1866) एक्सचेकर 213.

[2] खूबचंद बनाम बेरम, आई० एल० आर० (1889) 13 मुम्बई 150.

[3] वाफ बनाम मारिस, एल० आर० 8 क्यू० बी० 202, 207.

[4] मनिका गाउंडर बनाम मुनियाम्माल, ए० आई० आर० 1968 मद्रास 392.

[5] ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 253.

करने में भी सक्षम न था और परिवार की तत्पश्चात् विच्छिन्नता से वह अविधिमान्य दान किसी प्रकार विधिमान्य नहीं हो सकता। इस मामले के आधार पर **निम्न निष्कर्ष** सुविधापूर्वक निकाले जा सकते हैं—

1. भूतकालिक सहवास किसी करार के लिए समुचित प्रतिफल[1] है। किन्तु,

2. यह अस्तित्वयुक्त प्रतिफल होना चाहिए अर्थात् यह ऐसा न हो जो पूर्व में ही किसी अन्य व्यतिकारी वचन द्वारा निःशेष हो चुका हो।

3. भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 के द्वितीय अपवाद के अन्तर्गत, बिना प्रतिफल भी, किसी पहले ही की जा चुकी सेवा के प्रतिकार के रूप में, सम्पत्ति का अन्तरण किया जा सकता है और भूतकालिक सहवास को वचनदाता के लिए स्वेच्छया पहले ही की गई सेवा के रूप में माना जा सकता है।

4. किन्तु ऐसे प्रतिफल के लिए अविभक्त परिवार की सम्पत्ति का अन्तरण नहीं किया जा सकता।[2]

5. यदि भूतकालिक सहवास जारकर्म के रूप का हो तो उसे अनैतिक ही नहीं वरन् विधिनिषिद्ध माना जाएगा क्योंकि जारकर्म, आपराधिक विधि के अन्तर्गत अपराध माना जाता है।[3]

6. केवल भूतकालिक सहवास ही समुचित प्रतिफल माना जा सकता है, अतः भविष्य में अनैतिक सहवास किये जाने का वचन, अनैतिक है और इसे समुचित प्रतिफल नहीं माना जा सकता।[4]

लोकनीति—प्रतिकूलता

(क) **परिभाषा में कठिनाई** : लोकनीति की परिभाषा करना कठिन है। फर्म प्रतापचन्द बनाम फर्म कोट्रिक वेकंट सेट्टी वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय के निर्णय में न्यायमूर्ति एम० एच० बेग ने[5] **चेशमपर** तथा **फ्लिट्ट**[6] के एक सम्प्रेक्षण को इस प्रकार उद्धृत किया है—

> "जिस लोकहित की संरक्षा करने का इसका उद्देश्य है वह बहुत अधिक व्यापक तथा विषम है तथा इस बारे में कोई मत कायम करना कठिन है कि उसके लिए क्या खतरनाक है, यह सब आवश्यक रूप से सामाजिक तथा नैतिक विश्वासों से बहुत अलग है, और कभी-कभी अलग-अलग न्यायाधीशों की राजनैतिक दृष्टि से भी इतना अलग होता है कि यही एक विधिक विनिश्चय के अस्थायी तथा भ्रामक आधार की संरचना करता है।"

इसी मामले में, उच्चतम न्यायालय ने, लोकनीति के विस्तार के सम्बन्ध में, कुछ आश्वासनों के साथ दो सम्प्रेक्षण, पृथक से इस प्रकार किये हैं —

(i) "पूर्व निर्णयों से प्रतिष्ठित नियम को यद्यपि परिवर्तनशील संसार की नई स्थितियों के अनुसार बदला जा सकता है, किन्तु न्यायालयों के लिए अब यह विधि नहीं रह गया है कि वह लोकनीति के नये शीर्षकों का अनुसन्धान करे। एक न्यायाधीश इस बात के लिए स्वतन्त्र

---

[1] नांबेरुमल **बनाम** वीरपेरुमल, (1930) 59 एम० एल० जे० 596.

[2] लीलूराम **बनाम** रामपियारी, ए० आई० आर० 1952 पंजाब 293.

[3] एलिस मेरी हिल **बनाम** विलियम क्लार्क, आई० एल० आर० (1905) 27 इलाहाबाद 266.

[4] चन्द्रकली **बनाम** शम्भू, 151 आई० सी० 333.

[5] [1975] 2 उम० नि० प० 639-ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1223.

[6] **लॉ** आफ कान्ट्रेक्ट, तृतीय संस्करण, पृ० 280.

नहीं है कि वह अपने मत के अनुसार, समाज के हित के सम्बन्ध में अनुमान लगाता रहे। उसको इस बात से ही सन्तुष्ट हो जाना चाहिए कि वह पूर्व विनिश्चयों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का या तो प्रत्यक्षत: या परिलक्षित रूप से अनुसरण करे। उसको इस विशेष विधि की शाखा का स्पष्टीकरण करना चाहिए न कि उसका विस्तार।"

(ii) "चाहे संविदा इस प्रकार की हो जो प्रथमदृष्टया लोकनीति के किसी भी मान्य शीर्षक के अन्तर्गत आती हो, यह अवैध अभिनिर्धारित नहीं की जाएगी, जब तक कि इसके हानिप्रद गुण अविवादित न हों। लार्ड एटकिन ने एक मुख्य मामले में यह उल्लेख किया था कि यह सिद्धान्त केवल ऐसे स्पष्ट मामले में ही अपनाया जाना चाहिए जिसमें जनता को हानि सारवान रूप से अविवादित हो और जिसमें इस प्रकार की हानि किसी भी न्यायिक विचार के काल्पनिक अनुमानों पर निर्भर नहीं करती।"

इस सन्दर्भ में उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि **लोकप्रिय भाषा में, संविदा को सन्देह का लाभ दिया जाना चाहिए।** तात्पर्य यह है कि जब तक किसी कृत्य से जनता को **सारवान** और **अविवादित** हानि न पहुंचती हो, तब तक उस कृत्य को लोकनीति के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता।[1] अत: किसी संविदा की विषयवस्तु से जनता को सारवान और अविवादित हानि पहुंचने में यदि तनिक भी सन्देह हो तो, उस विषयवस्तु को लोकनीति के प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता। ऐसे सन्देह का लाभ किसी की हुई संविदा को प्राप्त होगा और जब तक उसके प्रश्नगत प्रतिफल या उद्देश्य के द्वारा होने वाली सार्वजनिक हानि, युक्तियुक्त सन्देह की सीमा से परे परिसिद्ध न कर दी जाए, तब तक उस संविदा के उद्देश्य या प्रतिफल को लोकनीति के प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता। अस्तु, अल्प और नगण्य सी हानि के आधार पर ही किसी उद्देश्य अथवा प्रतिफल को लोकनीति के विरुद्ध, अवैध या विधिनिषिद्ध नहीं माना जा सकता। इस विषय में, यह कहा जा सकता है कि **लोकनीति से प्रतिकूल कही जाने वाली बात में निहित अवैधता इतनी गंभीर होनी चाहिए कि जिससे स्वयं न्यायालय का अन्तःकरण भी विचलित हो जाए**[2]। लोकनीति को न्यायमूर्ति रामप्रसाद के शब्दों में, प्राय: बिगड़ैल घोड़े की उपाधि दी गई है जिसके आरोहण में यथेष्ट सावधानी न बरतने से न्यायालय प्राय: दुर्गम और अज्ञात क्षेत्रों में पहुंच जाते हैं[3]।

(ख) परिभाषा में विस्तार की आवश्यकता : लोकनीति के विरुद्ध किए गए करार शून्य हैं और लोकनिगम भी ऐसी संविदाओं को प्रवर्तित नहीं करा सकते।[4]

इस विषय में यह स्मरण रखना चाहिए कि विकासशील समाज में, लोकनीति स्थिर नहीं रह सकती। **नागले बनाम फील्डेन और अन्य**[5] वाले मामले में, अब इंग्लैण्ड तक की विधि में यह माना जाने लगा है कि लोकनीति **अपरिवर्तित नहीं रह सकती और परिवर्तन की हवा उसे प्रभावित करती है।** ऐसी दशा में भारत जैसे विकासशील समाज में, **यह स्थिर क्यों रहेगी, जहां संविधान में प्रकल्पित राज्य की सामाजिक-आर्थिक नीति की अन्तर्वस्तु, उत्पादन साधनों के सामाजिक नियन्त्रण पर आधारित है और जहां उद्योग, व्यापार और वाणिज्य में काम करनेवाले लोगों में चरित्र का प्राय: पूर्ण अभाव है, राज्य को राजस्व से व्यापक रूप में कपटवंचित किया जाता है और**

---

[1] घेरुलाल पारख **बनाम** महादेवदास, ए० आई० आर० 1959 एस० सी० 781 देखिए.

[2] केदारनाथ **बनाम** प्रहलादराय, ए० आई० आर० 1960 एस० सी० 213, 218.

[3] एम० केशव गाउंडर **बनाम** डी० सी० राजन, ए० आई० आर० 1976 मद्रास 102 (108).

[4] उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद **बनाम** लक्ष्मीदेवी, ए० आई० आर० 1977 इलाहाबाद 499.

[5] 1966 (2) क्यू० ई० 633, 650.

काली अर्थव्यवस्था का बढ़ता हुआ घातक प्रभाव (राष्ट्र की) समस्त व्यवस्थ को इस सीमा तक कुप्रभावित कर रहा है। ऐसी स्थिति में लोकनीति की सीमारेखाओं का इंग्लैण्ड में निर्मित पुराणपन्थी सीमाओं तक सीमित रहना आवश्यक नहीं है और उनमें ऐसे आमूल परिवर्तन होने चाहिएं, ताकि वे नई स्थितियों का मुकाबला कर सकें। कुछ भी हो यह स्पष्ट हो गया कि कोई लोकनीति की संकल्पना पर चाहे जिस दृष्टि से विचार करे, ऐसी संविदा, जिसका उद्देश्य (राष्ट्र को) राजस्व से कपटवंचित करना हो या काला धन पैदा करना या उसका उपयोग करना हो, इतनी दूषित समझी जाएगी कि ऐसी संविदा पर आधारित वादकर्ता न्यायालय में किसी अनुतोष से निर्रहित हो जाएगा।[1]

रतनचन्द बनाम अक्सर[2] वाले मामले में न्यायमूर्ति चिन्नप्पा रेड्डी ने भी यही उद्घोष किया कि विधि को स्थिर नहीं रखा जा सकता तथा तीव्रतर परिवर्तनशील सामाजिक मूल्यों के सन्दर्भ में आधुनिक विकासशील समाज में लोकनीति के आवश्यकतानुसार नये शीर्षों का निर्माण समीचीन होगा क्योंकि विधि की गति समाज के साथ है। इस मामले में राज्य सरकार के मन्त्रियों पर प्रभाव डालकर किसी मृत नवाब के वारिस घोषित कर दिये जाने के लिए किन्हीं पक्षकारों के मध्य किया गया करार लोकनीति के प्रतिकूल माना गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसे मामलों में यह प्रश्न सार्थक नहीं है कि मन्त्रीगण प्रभाव में आ सकेंगे अथवा नहीं वरन् महत्व इस बात का है कि ऐसा करार राज्य में निर्णय लेने वाली संस्थाओं को दूषित करने की ओर उन्मुख रहा।

(ग) लोकनीति के प्रतिकूल कुछ सुपरिचित शीर्षक : विधि का उद्देश्य जिन करारों को लोकनीति के हित में निवारित करना है, उनके वर्गीकरण में, कुछ मान्यताप्राप्त शीर्षक इस प्रकार हैं[3]— 1. वे करार जो कि विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों के लिए क्षतिकारी हैं, 2. लोकसेवाओं को क्षति पहुंचाने की प्रवृत्ति वाले करार, 3. न्यायिक कार्यों में बाधक करार,[4] 4. विधिक प्रक्रिया के दुरुपयोग संबंधी करार, 5. सदाचार के प्रतिकूल करार, तथा 6. व्यापार स्वातन्त्र्य में बाधक करार।

इसके अतिरिक्त लोकनीति के प्रतिकूल कुछ शीर्षक और भी हैं— जैसे, वैवाहिक दलाली के करार, सम्पत्ति में शाश्वतता के[5] करार अर्थात् वे करार जो सम्पत्ति को शाश्वतता के लिए अन्तरित करके उसके भावी अन्तरण को अबद्ध करने की प्रकृति के हों, व्यापार के अवरोधक करार, सट्टा अथवा पद्यम अर्थात द्यूत या जुआ के प्रकार के करार, तथा शत्रु देश को सहायता देने वाले करार।

ये सब करार इसलिए विधि विरुद्ध नहीं माने गये हैं कि किसी न्यायालय को अपने मत में इन्हें लोकनीति के प्रतिकूल घोषित करने की क्षमता प्राप्त है, वरन् ये इसलिए विधिविरुद्ध होते हैं कि सामान्य विधि के दृष्टिकोण से ही इन्हें अयुक्तियुक्त और जनहित के विरुद्ध समझा गया है। इस प्रकार **देश के सामान्य हित अथवा राज्य की सामान्य नीतियों को कुंठित करने वाले सभी करार लोकनीति के प्रतिकूल माने जाएंगे।** उदाहरण के लिए, परिवार नियोजन के द्वारा बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने की एक देशव्यापी नीति है, अतः ऐसा करार जो इस नीति में अवरोध उपस्थित करे अथवा इसे जनता म अप्रिय बनाने की प्रकृति का हो, शून्य माना जाएगा। इसी प्रकार, महिलाओं को सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान ही अग्रसर करने की अथवा पिछड़े वर्गों को समुन्नत करने की राष्ट्रीय नीतियां हैं, और इन नीतियों को किसी भी भांति शिथिल करने वाले करार, शून्य माने जायेंगे।

---

1 आनंदप्रकाश ओमप्रकाश बनाम ओसवाल ट्रेडिंग एजेन्सी, नि० प० 1976 दिल्ली 522.

2 ए आई० आर० 1976 आन्ध्र प्रदेश 112.

3 देखिए बालकिशन बनाम देवीसिंह, 52 आई० सी० 153.

4 गुलाबचंद बनाम कुदीलाल, ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 1734 (1738).

5 संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 14 देखिए.

(घ) लोकनीति के प्रतिकूल अन्य शीर्षक : लोकनीति के प्रतिकूल कुछ अन्य शीर्षकों को नीचे संक्षेप में विवचना की जा रही है।

(1) **अभियोजन को कुंठित करना**—अभियोजन को कुंठित करने का तात्पर्य किसी व्यक्ति द्वारा आपराधिक न्याय की क्षमता को बिगाड़ना अथवा न्याय की गति को मन्द करना है।[1] अभियोजन की धमकी के बल पर किसी व्यक्ति से किसी करार की सहमति प्राप्त करना, अभियोजन को कुंठित करने से पृथक है। अभियोजन की धमकी से सहमति प्राप्त करना, कभी-कभी प्रपीडन माना जा सकता है अथवा असम्यक असर के शीर्षक में आ सकता है, किन्तु अभियोजन को कुंठित करने का अर्थ अभियोजन नहीं किया जाना है। ऐसा करार जिसके द्वारा अभियोजन की अवस्थाओं को छुपाकर अथवा अपराध को प्रकाश में न लाकर, कुछ लाभ उठाने का अभिप्राय हो, अभियोजन को कुंठित करने वाला करार है। **अभियोजन की धमकी के बल पर किया हुआ करार केवल शून्यकरणीय है किन्तु अभियोजन न करने का करार शन्य है।**

सिद्धान्त यह है कि **अपराध को व्यापार की वस्तु नहीं बनाया जा सकता।** यह ज्ञात हो जाए कि कोई अपराध किया गया है, तो उसे कोई व्यक्ति स्वयं के लाभ के स्रोत में सम्परिवर्तित नहीं कर सकता।[2]

भारत की, दण्ड प्रक्रिया संहिता में शमनीय और अशमनीय अपराधों की तालिका दी हुई है। शमनीय अपराध भी दो प्रकार के हैं, एक वे जो अभियोक्ता और अभियुक्त के परस्पर सहमत हो जाने पर शमनीय हैं तथा दूसरे वे जो केवल न्यायालय की अनुमति से ही शमनीय हैं। जब तक किसी न्यायालय में कोई अभियोजन लम्बित है और अभियोजन में अन्तर्वलित अपराध, न्यायालय की अनुमति से ही शमनीय है, तो अनुमति उपलब्ध होने के समय तक अपराध अशमनीय ही रहता है[3]। शमनीय अपराधों के विषय में समझोते की सम्भावना को प्रोत्साहन देने की नीति है, अतः **शमनीय अपराधों के विषय में समझौता करना, लोकनीति के प्रतिकूल नहीं है।**

जब करार ऐसा हो कि किसी अपराध के लिए अभियोजन नहीं किया जाएगा, तभी वह शून्य होगा। किसी करार को करने के हेतु और उसके प्रतिफल में सतर्कता से भेद करने की आवश्यकता है, विशेषतः वहां जहां कि कोई विद्यमान सिविल दायित्व भी अन्तर्वलित हो, जैसे कि गबन या दुर्विनियोग के मामलों[4] में, जहां कि धन के दायित्व का किसी करार द्वारा उन्मोचन किया जा सकता है, भले ही किसी न्यायालय में उसी संबंध में आपराधिक मामला समसामयिकतः चल रहा हो[5]। इस संबंध में, निम्नलिखित दो सामान्य सिद्धान्त सहायक हो सकते हैं[6]—(1) जहां किसी वचन का प्रतिफल, किसी अशमनीय अपराध का अभियोजन न करने के लिए है तो वह करार शून्य है, (2) किन्तु, प्रतिफल जब स्पष्टतः इसी प्रकार का हो तभी इससे संविदा की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध माना जाएगा, अन्यथा नहीं।

---

1 देखिए वीरेंद्र **बनाम** वसंत, 91 आई० सी० 624.

2 विलियम्स **बनाम** बेली, एल० आर० (1866) II हाउस आफ लार्ड्स, 200, 220.

3 राधाकृष्ण चिन्तामन **बनाम** चापाभीम, ए० आई० आर० 1963 मध्य प्रदेश 139.

4 जंगलिया **बनाम** गया, 1960 एम० पी० एल० जे० 1374.

5 सुखदेव **बनाम** मंगल, 2 पी० एल० जे० आर० 630, सुधींद्र **बनाम** गणेश, ए० आई० आर० 1938 कलकत्ता 840, महोम्मद **बनाम** आबिल, 151 आई० सी० 1025.

6 सायम्मा **बनाम** पुनमचन्द, 35 बाम्बे लॉ रिपोर्टर, 850.

(2) **वैवाहिक दलाली :** जो करार दो व्यक्तियों का विवाह करवा दिये जाने या उनके विवाह उपाप्त करने के प्रतिफल पर किये जाते हैं, वे वैवाहिक दलाली के करार माने जाते हैं। इन करारों का यह दोष नहीं है कि ऐसे करारों में वर या वधू एक दूसरे के लिए अयोग्य या अनुपयुक्त हों किन्तु दोष यह है कि इन करारों से दाम्पत्य संबंधों को पवित्र प्रथा धन के प्रतिफल के प्रवेश के कारण कलुषित होती है। इस विषय में निर्णयज विधि का समाकलन करते हुए **बख्शीदास बनाम नादूदास**[1] वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **कुछ सूत्रों का संकलन** किया है जो इस प्रकार हैं—

(i) किसी पर-व्यक्ति को दो व्यक्तियों के परस्पर विवाह संबंध को तय कराने के प्रतिफल में किसी प्रकार का शुल्क या पुरस्कार देने का करार लोकनीति के प्रतिकूल है और ऐसा करार प्रवर्तनीय नहीं है।

(ii) किसी वर अथवा वधू के माता-पिता या संरक्षक को विवाह की अनुमति देने के प्रतिफल में किसी धन के संदाय का करार अनिवार्यतः लोकनीति के प्रतिकूल नहीं है। ऐसा करार लोकनीति के प्रतिकूल तभी कहा जाएगा जबकि उन्होंने वर अथवा वधू के रूप में किसी अपात्र का चुनाव किया हो या तब जबकि वधू के लिए अनिष्ट करके भी माता-पिता या संरक्षक ने धन का स्वयं के लाभ के लिए अर्जन किया हो।

(iii) जब कि ऐसी परिस्थितियां हों जिनमें कि माता-पिता या संरक्षक द्वारा विवाह की अनुमति के प्रतिफल में धन लेना न अनैतिक कहा जा सके और न लोकनीति के विरुद्ध माना जा सके, तो ऐसा करार प्रवर्तनीय होगा तथा इसके भंग होने की दशा में नष्ट परिहार का वाद संस्थित किया जा सकेगा।

(iv) यदि इस प्रकार के करार के भंग होने की दशा में, विवाह सम्पन्न न हो पाए तो आशयित वर अथवा वधू को प्रदत्त की गई मूल्यवान वस्तुओं अथवा आभूषणों के मूल्य की वापसी के लिए वाद लाया जा सकता है।

(v) यद्यपि वर अथवा वधू के माता-पिता या संरक्षक द्वारा ऐसे करार में अन्तर्वलित धन के प्रतिफल के संदाय का करार लोकनीति के प्रतिकूल होने के कारण प्रवर्तनीय नहीं है तथापि यदि ऐसे करार के अनुसरण में विवाह सम्पन्न हो तो जिस माता-पिता या संरक्षक को ऐसा धन प्रतिफल के रूप में संदत्त किया जा चुका है, उसकी वापसी का वाद लाया जा सकता है।

(vi) जिस किसी पक्ष का यह आक्षेप हो कि ऐसा करार लोकनीति के प्रतिकूल है तो उन विशेष परिस्थितियों को, जिनसे कि वह करार अविधिमान्य होता हो, प्रकट और परिसिद्ध करने का भार उसी पक्ष पर रहेगा।

जो सिद्धान्त वैवाहिक दलाली के करारों में लागू होंगे वे ही दत्तक की दलाली के संबंध में भी लागू होंगे, किन्तु इन करारों में करार की शून्यता धन के प्रतिफल की सीमा तक ही है। यदि दत्तक हो जाए तो, उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।[2]

(3) **चयांशभागिता और पोषण :** इंगलैण्ड की विधि में पोषण (मेन्टेनेन्स) का अर्थ मुकदमेबाजी में एक प्रकार का सट्टा माना जाता है और यह उन मामलों तक सीमित है जहां कोई व्यक्ति अनुचित रूप से केवल मुकदमेबाजी और विवादों को प्रोत्साहन देने अथवा किसी मुकदमे में अनधिकार प्रतिवाद को बढ़ावा देने के दृष्टिकोण से, उस मुकदमे में स्वयं का कोई

1. 1 सी० एल० जे० 261.
2. थूरी कोथंडा **बनाम** थेलू रेड्डियार, 27 एम० एल० जे० 416.

हित न होते हुए भी धन लगाता है, किन्तु इसकी परिधि में वे मामले नहीं आते जहां कि कोई व्यक्ति किसी साधनहीन व्यक्ति को विधिक उपचार प्राप्त करने में धन से सहायता करता हो।[1] पोषण का उद्देश्य जब यह हो कि मुकदमे में किसी पर-व्यक्ति के द्वारा लगाये गए धन के प्रतिफल में, धन लगाने वाला व्यक्ति, मुकदमे के उस पक्षकार से जिसे धन की सहायता दी गई है, उस मुकदमे में उसके सफल हो जाने पर, मुकदमे की सफलता के द्वारा प्राप्त सम्पत्ति या लाभ में से कुछ भाग या अंश प्राप्त करने का करार करे तो पोषण का करार **जयांशभागिता** (चैम्पर्टी) कहलाता है। दोनों ही का उद्देश्य न्याय की गति को दूषित करना माना गया है, और इंग्लैण्ड में दोनों ही लोकनीति के प्रतिकूल हैं।[2] किन्तु जब धन लगाने वाले का उद्देश्य केवल शुद्ध सहायता करना हो और मुकदमे की उपलब्धियों में से भाग प्राप्त करना न हो अथवा धन की सहायता, कारबार की सामान्य नीतियों के अनुसरण में केवल ऋण के रूप में दी गई हो तो इसे अवैध माना नहीं जाता। न्यायमूर्ति लार्ड डोनोवैन[3] ने इस विषय में यह मत व्यक्त किया है कि जब किसी बैंक ने, ऋण देने के अपने मामूली कारबार के क्रम में, मुकदमे के किसी पक्षकार को ब्याज पर धन प्रदान किया हो तो उस कार्य को, किसी अन्य के मुकदमे में **साग्रह दखलन्दाजी** नहीं माना जा सकता और इसी प्रकार यदि कोई मित्र, जिसका कि मुकदमे में संयुक्त हित न हो, अथवा अन्य कोई व्यक्ति पुण्यार्थ अथवा पारिवारिक बन्धनों के आधार पर, मुकदमे के किसी पक्षकार को आर्थिक सहायता प्रदान करे तो उसे अवैध नहीं कहा जा सकता।

भारतीय विधि में, पोषण और जयांशभागिता के विरुद्ध कोई विनिर्दिष्ट नियम नहीं है, अतः यह माना गया है कि इस क्षेत्र में इंग्लैण्ड की विधि लागू नहीं होती है और न ही भारत की विधि इस क्षेत्र में इंग्लैण्ड के समान हो सकती है।[4] अतः जो करार इंग्लैण्ड में जयांशभागितापूर्ण माना जाए वह भारत में प्रवर्तनीय और बाध्यकारी माना जा सकता है[5]। **रामकुमार बनाम चन्दरकान्तो**[4] वाले मामले में, प्रिवी काउन्सिल ने यह अभिनिर्धारित किया है, कि किसी वाद को चलाने के लिए धन देने का कोई भी ऋजु करार, वाद की सफलता की दशा में प्राप्त सम्पत्ति के किसी भाग के प्रतिफल में किया गया हो तो भी इसे केवल इसी आधार पर लोकनीति के प्रतिकूल नहीं माना जा सकता, किन्तु ऐसे करारों का सावधानी से परीक्षण किया जाना चाहिए, और यदि करार उद्दापनीय, अऋजु अथवा लोकात्मा विरुद्ध पाये जाएं या वे सद्भावना पर आधारित न हों या न्यायपूर्ण न हों या उनका उद्देश्य मुकदमे के प्रति सट्टे की भावना का रहा हो, तो ऐसे करारों को प्रभावी नहीं माना जा सकता। जो पक्ष ऐसे करार के आधार पर धन वसूल करना चाहे, उसी पर इस करार को ऋजु परिसिद्ध करने का भार है।[6]

(4) **रामस्वरूप बनाम कोर्ट आफ लार्ड्स्** का मामला : **लाला रामस्वरूप बनाम कोर्ट आफ लार्ड्स्**[7] वाले मामले में, एक जयांशभागिता के करार को चुनौती दी गई थी। मामला इस प्रकार प्रारम्भ हुआ कि वादी लाला रामस्वरूप व लाला अलोपीप्रसाद ने डिस्ट्रिक्ट जज दिल्ली के न्यायालय में, 6 अक्टूबर, 1928 को एक वाद संस्थित किया। यह वाद दो अक्टूबर, 1920 के एक

---

1. फिडन **बनाम** पार्कर, 11 मीसन एण्ड वैल्स बोज, रिपोर्ट्स 675.
2. गाई **बनाम** चर्चिल, एल० आर० 40 चांसरी 481.
3. इन री ट्रैपका माइंस लिमिटेड, (1962) 3 डब्ल्यू० एल० आर० 955.
4. रामकुमार **बनाम** चन्दरकान्तो, 4 आई० ए० 23.
5. गोसाई **बनाम** गोसाई, 14 सी० डब्ल्यू० एन० 191.
6. बाबू **बनाम** राम, ए० आई० आर० 1934 इलाहाबाद 1024.
7. ० आई० आर० 1940 प्रिवी काउंसिल 19.

जयांशभागिता के करार पर आधारित था जो वादियों ने एक सलीम मोहम्मद शाह नाम के व्यक्ति से किया था।

उपरोक्त सलीम, डिस्ट्रिक्ट जज, दिल्ली की अदालत में, 26 जनवरी, 1920 से मुगल वंश के एक वैभव सम्पन्न शाहजादे, मिर्जा सोरिया के पुत्र के रूप में अपनी धर्मजता की घोषणा के लिए मुकदमा चला रहा था। उपरोक्त सोरिया के, सलीम के अतिरिक्त, दो पुत्रियां और एक विधवा भी उत्तराधिकार के हकदार थे। सोरिया की सम्पदा पर, प्रतिपाल्य अधिकरण का 1913 में ही संरक्षण हो गया था और सलीम को भत्ते के रूप में एक राशि दी जा रही थी। प्रतिपाल्य अधिकरण ने ही, सलीम को अपने हक के लिए सिविल न्यायालय से डिक्री प्राप्त करने का निर्देश दिया था। इस निर्देश के पालन में, सलीम ने अकिंचन के रूप में, वाद प्रस्तुत किया किन्तु वाद की कार्यवाही की मन्द गति से निराश होकर, सलीम ने, उपरोक्त लाला रामस्वरूप व आलोधी प्रसाद, महाजनों से, उपरोक्त करार के आधार पर, उस मुकदमे में धन लगवा कर, न्यायालय की फीस पूरी कर दी और मुकदमा अकिंचन के रूप में न चलकर साधारण मुकदमे की भांति चलने लगा। धन लगाने का यह करार एक रजिस्ट्रीकृत विलेख था और उसमें ये उपबन्ध थे कि उपरोक्त साहूकार लोग उस मुकदमे के सम्पूर्ण व्यय का भार वहन करेंगे और प्रतिफल में वाद के डिक्री हो जाने पर, सम्पत्ति में से प्रति रुपया तीन आने का भाग पाने के हकदार होंगे और यदि मुकदमा प्रिवी काउन्सिल तक गया तो यह भाग प्रति रुपया चार आना हो जाएगा। सलीम के विकल्प पर यह छोड़ा गया कि वह साहूकारों को संदेय राशि का, चाहे सम्पत्ति का विभाजन करवा के, चाहे सम्पत्ति के बाजार मूल्य के अनुसार साहूकारों के भाग में आने वाले मूल्य की राशि का नकद भुगतान कर दे। उपरोक्त साहूकार, अन्त तक मुकदमे का सम्पूर्ण व्यय उठाते रहे और सलीम अन्ततः उस सम्पत्ति में 14/32 भाग का हकदार घोषित कर दिया गया। तदुपरान्त 17 सितम्बर, 1925 को सलीम की मृत्यु हो गई और उसकी विधवा और उसकी एक पुत्री उसके उत्तरजीवी होकर सामने आए और उन्होंने उपरोक्त साहूकारों के सलीम से किए हुए करार पर आधारित हक को अंगीकार नहीं किया और फलतः उपरोक्त साहूकारों के लिए, उस करार के आधार पर, करार के विनिर्दिष्ट पालन का वाद संस्थित करना आवश्यक हुआ। विचारण न्यायालय ने साहूकारों का, करार के आधार पर, सम्पत्ति में भाग न मानकर उन्हें केवल उस मुकदमे के वास्तविक व्यय, 8440 रुपये की डिक्री का हकदार माना जिसके विरुद्ध अपील किये जाने पर, प्रिवी काउन्सिल की ज्युडिशियल कमेटी ने, यह अभिनिर्धारित किया कि किसी भी मुकदमे का परिणाम सदैव अनिश्चित होता है किन्तु यदि उसमें धन लगाने वाला व्यक्ति मुकदमे की असफलता की दशा में अपना धन खो देने की जोखिम उठाता है तो सफलता की दशा में, उसे कुछ असामान्य लाभ भी प्राप्त होना चाहिए। मामले की परिस्थितियों और सलीम की दीन अवस्था की दृष्टि से, साहूकारों से किया गया उसका करार, न तो उद्दापनीय था और न लोकात्मा विरुद्ध, वरन् सहायतार्थ और न्यायसंगत था, जबकि साहूकारों ने स्पष्टतः यह जोखिम ली थी कि सलीम यदि मुकदमे में असफल रहता है तो वे अपना धन खो देंगे किन्तु यदि वह सफल हो जाय तभी उसकी सम्पत्ति में से निबन्धित भाग प्राप्त करेंगे।

(5) **अधिवक्ता और मवक्किल के मध्य करार :** जयांशभागिता और पोषण के क्षेत्र में यह ध्यान रखने योग्य है कि विधि व्यवसायी अपने मुवक्किलों से ऐसा करार नहीं कर सकते कि अपने मुवक्किल की सफलता पर वे मुकदमे की सम्पत्ति में से कुछ अंश प्राप्त कर सकेंगे। हाँ वे केवल

ऐसा करार कर सकते हैं कि मुकदमे में असफलता की दशा में, वे अपने मुवक्किल से अपनी फीस अथवा मुकदमे में व्यय किया गया धन नहीं लेंगे। एक सीनियर अधिवक्ता ग[1] के मामले में, उसके मुवक्किल ने बड़ोदा थियेटर लिमिटेड पर अपने 9,400 रुपये के दावे के सम्बन्ध में, वसूल हो जाने वाली राशि के 50 प्रतिशत के संदाय का करार करके 200 रुपये का अग्रिम अभिदाय भी ग को दे दिया था। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि जयांशभागिता का इंग्लैण्ड में प्रचलित कठोर सिद्धान्त, भारत में लागू नहीं होता, किन्तु यह सिद्धान्त विधि व्यवसायियों के साथ किए गए करारों पर लागू होगा क्योंकि ऐसा करार विधि व्यवसायियों के व्यावसायिक आचार के विरुद्ध होता है।

भागतः विधि-विरुद्ध करार

जहां किसी करार का उद्देश्य अथवा प्रतिफल विधि-विरुद्ध पाया जाए, वहां यह करार शून्य होता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि करार को शून्य कर देने वाला उद्देश्य या प्रतिफल अपने पूर्णांश में विधि-विरुद्ध हो। **यदि प्रतिफल या करार भागतः भी विधि-विरुद्ध हो तो सम्पूर्ण करार शून्य माना जाएगा।** इस सम्बन्ध में भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 24 में अभिव्यक्ततः यह कहा गया है कि यदि एक या अधिक उद्देश्यों के लिए किसी एकल प्रतिफल का कोई भाग, या किसी एक उद्देश्य के लिए कई प्रतिफलों में से कोई एक या किसी एक का कोई भाग विधि-विरुद्ध हो तो करार शून्य है।

एक दृष्टान्त देकर इसे स्पष्ट किया गया है कि **क** नील के वैध विनिर्माण का और अन्य वस्तुओं में अवैध दुर्व्यापार का **ख** की ओर से अधीक्षण करने का वचन देता है। **ख** 10,000 रुपये वार्षिक संबलम **क** को देने का वचन देता है। यह करार इस कारण शून्य है कि **क** के वचन का उद्देश्य और **ख** के वचन के लिए प्रतिफल भागतः विधि-विरुद्ध है।

जिन करारों का प्रतिफल या उद्देश्य पूर्णतः विधि-विरुद्ध है, वे शून्य हैं, साथ ही जिनका प्रतिफल या उद्देश्य भागतः विधि-विरुद्ध है, वे करार भी शून्य हैं, किन्तु एक तीसरा विकल्प यह भी हो सकता है जहां कि एक ही प्रतिफल द्वारा एक से अधिक वचन समर्थित हों और उन वचनों में से कुछ विधि-विरुद्ध और कुछ विधिमान्य हों और केवल विधिमान्य वचनों के पालन के लिए ही वाद संस्थित किया जाए और प्रतिफल विधिमान्य हो। ऐसे मामलों में, **यदि करार का विधिमान्य भाग करार के विधि-विरुद्ध भाग से पृथक किया जाने योग्य हो तो वह करार विधिमान्य भाग की सीमा तक प्रवर्तनीय माना जाएगा[2]। जहां ऐसा पृथक्करण सम्भव न हो सके वहां सम्पूर्ण करार शून्य है।**[3] जहां एक ही प्रतिफल से समर्थित कोई सम्पूर्ण करार हो, वहां ऐसा पृथक्करण सम्भव नहीं है, जैसे कि एक ही संव्यवहार के लिए यदि दो विलेख परस्पर पूरक के रूप में और एक दूसरे के भाग के रूप में हों तो एक की विधि-विरुद्धता से दूसरा स्वतः विधि-विरुद्ध हो जाएगा और सम्पूर्ण करार शून्य माना जाएगा।[4] कोई करार अपने गठन में स्वयं एक ही और सम्पूर्ण इकाई के रूप में है जिसमें वचनों के पृथक्करण की सम्भावना नहीं है अथवा उसमें विधि-विरुद्ध भाग को विधि-मान्य भाग से पृथक्करण की सम्भावना है, यह प्रश्न पृथक्-पृथक् मामलों की पृथक्-पृथक् परिस्थितियों के आधार पर ही अवधारणीय है[5], और इस सम्बन्ध में किसी निश्चित सिद्धान्त का प्रतिपादन सम्भव नहीं है।

---

1. ए० आई० आर० 1955 एस० सी० 557.
2. सौंडत्ती बनाम श्रीपाद, ए० आई० आर० 1933 मुम्बई 132.
3. भगवत बनाम आनन्द राव, 86 आई० सी० 515.
4. काशीराम बनाम बरकमा, 77 आई० सी० 46.
5. बशेसर बनाम भीखराज, 133 आई० सी० 280.

समदोषिता का सिद्धान्त

समदोषिता (पैरीडेलिक्टो) के सिद्धान्त का सामान्य अर्थ यह है कि यदि किसी अवैध करार के आधार पर किसी वस्तु का परिदान या धन का संदाय करने का वचन दिया गया है तो न तो उस करार के आधार पर वस्तु के परिदान अथवा धन के संदाय के लिए किसी पक्षकार को बाध्य ही किया जा सकता है और यदि उस करार के अन्तर्गत किसी वस्तु का परिदान अथवा धन का संदाय कर दिया गया है तो न ही उसकी वापसी के लिए किसी पक्षकार को बाध्य किया जा सकता है। अतः यदि किसी संस्थित वाद में इस सिद्धान्त को लागू किया जाए तो वादी का पक्ष प्रतिवादी की अपेक्षा दुर्बल होता है।

उच्चतम न्यायालय के कुजु कोलियरीज लिमिटेड व अन्य बनाम झारखण्ड माइन्स लिमिटेड और अन्य[1] वाले मामले में, हैदराबाद उच्च न्यायालय के निम्न सम्प्रेक्षण[2] का न्यायाधिपति अलगिरिस्वामी द्वारा अनुमोदन किया गया है—**समान रूप से दोषी होने की स्थिति में प्रतिवादी की स्थिति अधिक अनुकूल होती है।**

तात्पर्य यह है कि न्यायालय उस व्यक्ति की सहायता नहीं करते जो कि स्वयं अपराध से सम्बद्ध हो। अतः वह व्यक्ति जिसने अवैध प्रयोजन से धन संदत्त किया अथवा सम्पत्ति अन्तरित की है वह उसे अन्तरिती से वापस नहीं ले सकता भले ही अवैध प्रयोजन निष्पादित हो जाए और भले ही यह भी विदित हो कि अन्तरक और अन्तरिती समान रूप से दोषी थे।

एक बुद्धिमान, अनुभवी, विवाहित, सन्ततिवान, धनवान राजनीतिज्ञ ने एक रखैली के पक्ष में विक्रय-विलेख निष्पादित कर दिया किन्तु तत्पश्चात् उसने उस सम्पत्ति के प्रत्यास्थापन का वाद इस आधार पर संस्थित किया कि इस संव्यवहार का उद्देश्य भावी सहवास था जो उद्देश्य की अवैधता के कारण प्रवर्तमान नहीं रह सकता। **कमरबाई** बनाम **बद्रीनारायण**[3] वाले मामले में उस व्यक्ति की भर्त्सना करते हुए यह कहा गया "तुम्हारी विषय वासना ने सम्पत्ति को जहां पहुंचा दिया है, वह वहीं रहेगी। तुमने अपने पाप का फल भोगा है तो उस स्त्री को भी अपने पाप का लाभ उठाने दो। उस स्त्री को अपने यौवन, आकर्षण और सद्गुणों से वंचित करने के पश्चात् तुम उस अभागी को अब और किसी वस्तु से वंचित नहीं कर सकते।"

काले धन का संव्यवहार

मैसर्स आनन्द प्रकाश ओम प्रकाश बनाम मैसर्स ओस्वाल ट्रेडिंग एजेन्सीज[4] वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कोई संविदा केवल इसी आधार पर अविधिमान्य नहीं होगी कि उसका कार्यान्वयन ऐसे धन द्वारा किया जाना आशयित है, जिसका लेखा-जोखा, खुले आम नहीं दिया जाता है। इस मामले में वादी का दावा था कि उसने प्रतिवादी को चिटों के आधार पर माल का प्रदाय किया था, जिसमें से आंशिक कीमत प्राप्त हुई थी और शेष कीमत प्राप्त नहीं हुई थी। प्रतिवादी का उत्तर था कि उक्त संव्यवहार के आधार पर वादी को कोई धन देय नहीं था। इस मामले

---

1 [1975] 1 उम० नि० प० 189 : ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1892.

2 बुधा लाल बनाम डैक्कन बैंकिंग कम्पनी, ए० आई० आर० 1955 हैदराबाद 69.

3 ए० आई० आर० 1977 मुम्बई, 228 (240).

4 ए० आई० आर० 1976 दिल्ली, 24.

में, पक्षकारों के बीच किया हुआ संव्यवहार खुले बाजार का संव्यवहार था, जिसका कार्यान्वयन ऐसे धन द्वारा, जिसका लेखा-जोखा नहीं दिया जाता, आशयित था। विचारार्थ प्रश्न यह उठा कि क्या ऐसे संव्यवहार से उद्भूत दावा, जो पक्षकारों के बीच चोर बाजार में किया गया हो और जिसका आशय लोक राजस्व को कपट वंचित करना हो तथा जिसका अनुपालन ऐसे धन की सहायता से किया जाना आशयित हो जिसके सम्बन्ध में कोई लेखा-जोखा नहीं दिया जाता तथा जिसे लोग कालाधन कहते हैं, संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 23 के अधीन लोकनीति के विरुद्ध होने के आ ार पर अविधिमान्य और अप्रवर्तनीय है?

यह अभिनिर्धारित किया गया कि स्पष्टतः इस करार में उद्देश्य कारबार करना ा। जहां तक विक्रेता का सम्बन्ध है, माल बेचना और जहां तक क्रेता का सम्बन्ध है, आगे विक्रय के लिए माल खरीदना और इस प्रक्रिया में आय का उपार्जन करना। अतः न तो लेखे-जोखे के धन के उपभोग को और न ही उत्पादन को और न ही राजस्व के कपटवंचन को करार का उद्देश्य कहा जा सकता है। किन्तु कभी-कभी उद्देश्य को परिकल्पना का विस्तृत अर्थ दिया जाता है, किन्तु इनमें से कोई भी करार के लिए परिकल्पना गठित नहीं कर सकता क्योंकि सारवान परिकल्पना भी कारबार करने के लिए ही थी। इसे अधिक से अधिक उस रीति से प्राप्त किये जाने के लिए करार का आनुषंगिक प्रयोग कहा जा सकता है, जिसमें दोषरहित करार को क्रियान्वित किया जाना था। किन्तु यदि यह मान लिया जाए कि विधि-विरुद्धता का दोष करार से जुड़ जाता है, भले ही वह प्रत्यक्षतः वैध हो, किन्तु आशय अनुचित साधनों द्वारा क्रियान्वित किया जाना हो तो भी वादी का दावा उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित पृथक्करणीयता के सिद्धान्त के आधार पर बच सकता है क्योंकि वह दोष स्पष्टतः मुख्य करार से पृथक्करणीय है, क्योंकि जिन परिस्थितियों के कारण वाद संस्थित किया गया था उनसे बाध्य होकर वादी को मूल परिकल्पना से वापस हटना पड़ा। वह दोष इस अर्थ में पृथक्करणीय है कि जब वादी अपने द्वारा किए गए माल के विषय के लिए न्यायालय की डिक्री द्वारा वसूली का दावा करता है तो वह संविदा के निर्दोष भाग के सम्बन्ध में ही वाद चलाता है।

विद्यालय में प्रवेश के लिए धन का उपदान

यदि क ने ख को अमुक धनराशि, ऋण के तौर पर न देकर अपने पुत्र के लिए चिकित्सीय महाविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने के लिए दी हो और ख प्रवेश न दिलवा पाया हो, तो क वह राशि ख से वाद संस्थित करके वापस प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि यह संव्यवहार लोकनीति के प्रतिकूल कहा जाएगा। (देखिए **एन०वी०पी० पंडियान बनाम एम० एम० राय**[1])

न्यायिक पृथक्करण के वाद में भरणपोषण का करार

न्यायिक पृथक्करण के मामले में पति द्वारा पत्नी तथा सन्तान के भरण-पोषण के करार को कलकत्ता उच्च न्यायालय ने लोकनीति के प्रतिकूल नहीं माना (**श्रीमती संध्या चटर्जी बनाम सलिल चन्द्र चटर्जी**)[2]।

लोकनीति के प्रतिकूल न होने वाले दो उदाहरण

पत्नी द्वारा एक मुश्त राशि के प्रतिफल के आधार पर भरण-पोषण के लिए दावा न करने का करार लोकनीति के विरुद्ध नहीं है[3]। डिक्री धन के संदाय के लिए एक मास का समय दिए जाने के प्रतिफल में डिक्री के विरुद्ध अपील न करने का करार लोकनीति के विरुद्ध नहीं है[4]।

---

[1] ए० आई० आर० 1979 मद्रास 42.

[2] ए० आई० आर० 1980 कलकत्ता 244

[3] मुनियाम्मल बनाम राजा ए० आई० आर० 1978 मद्रास, 103.

[4] गौस मोहिद्दीन बनाम अप्पासाहेब, ए० आई० आर० 1976 कर्नाटक 90.

करारों की शून्यता का प्रभाव

जो करार शून्य हैं, उनके अन्तर्गत कोई भी पक्ष दायी नहीं है और न उन्हें कोई भी पक्ष प्रवर्तित करा सकता है और न ही उनके अन्तर्गत करार की गई किसी वस्तु का परिदान या धन का संदाय ही कराया जा सकता और न उनके अन्तर्गत परिदत्त किसी वस्तु या संदत्त धन की वापसी ही कराई जा सकती है[1]।

प्रतिफल के अभाव में करार की शून्यता

(क) सामान्य सिद्धान्त : इंग्लैण्ड की विधि के अनुसार, करार केवल दो प्रकार के होते हैं—विशिष्टतः करार तथा वाचिक करार (एग्रीमैन्ट बाई स्पेशलिट तथा एग्रीमैंट बाई परोल)। विशिष्टतः करार को प्ररूपित (फार्मल) या मुहरबन्द (अन्डर सील) करार भी कहा जाता है। ऐसे करार बिना प्रतिफल हो सकते हैं—जो मुहरबन्द करार नहीं होते हैं, वे भले ही लिखित हों, उन्हें वाचिक करार ही कहा जाएगा और उन करारों के लिए प्रतिफल की अनिवार्यता है। इंग्लैण्ड की विधि में ऐसे प्ररूपित करार जो कि केवल अपने प्ररूप के बल पर ही बाध्यकारी हैं प्रतिफल के सिद्धान्त से प्राचीनतर हैं।

वैसे स्वयं प्रतिफल के सिद्धान्त को करार का प्ररूप ही माना जा सकता है, किन्तु यह एक संगतिहीन कथन है क्योंकि प्रतिफल का सार दो स्वतन्त्र मूल्यों का विनिमय मात्र है जिसे किसी प्ररूप की अपेक्षा नहीं होती, किन्तु भारत की विधि में, इस भेद का कोई महत्व नहीं है। **भारत की विधि में करार लिखित हो अथवा वाचिक, सामान्य सिद्धान्त यह है कि, प्रत्येक करार की विधिमान्यता के लिए प्रतिफल आवश्यक है।** भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 में कहा गया है कि प्रतिफल के बिना किया गया करार शून्य है। उदाहरण के लिए ख को किसी प्रतिफल के बिना 1000 रुपये देने का क वचन देता है तो यह करार शून्य है। इस सिद्धान्त के केवल तीन अपवाद हैं और जो करार इन अपवादों में से किसी के भी अन्तर्गत आ सके, केवल उन्हीं करारों को बिना प्रतिफल किये जाने की स्वतन्त्रता है। इन तीनों अपवादों का भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 में ही उल्लेख है। सामान्य सिद्धान्त और अपवादों के एक साथ और अभिव्यक्त उल्लेख के कारण, अधिनियम की यह धारा निःशेषी है[2]। अतः जो करार प्रतिफल रहित हैं, यदि वे अधिनियम की धारा 25 में उल्लिखित अपवादों के अन्तर्गत प्रवर्तनीय नहीं हैं तो वे किसी भी दशा में और कभी भी प्रवर्तनीय नहीं हो सकते।

करार का प्रादुर्भाव वचन देने और वचन के ग्रहण करने पर ही होता है। अतः प्रतिफल का महत्व वस्तुतः वचन के दृष्टिकोण से है। **बिना प्रतिफल के करार शून्य होता है, इस कथन का वास्तव में अर्थ यह है कि बिना प्रतिफल के दिया हुआ वचन, वचन नहीं है। वचन के लिए प्रतिफल की अनिवार्यता को प्राचीनकाल से ही मान्यता प्राप्त है।** ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं में, जहां नरेशों अथवा देवताओं द्वारा वरदान स्वरूप जो वचन किसी व्यक्ति को दिये जाते थे, उन सबमें, किसी व्यक्ति द्वारा पूर्व में की गई किसी विशिष्ट सेवा अथवा तपश्चर्या का प्रतिफल विद्यमान रहता था। अयोध्या के महाराजा दशरथ द्वारा अपनी रानी कैकेयी को दिए गए दो इतिहास प्रसिद्ध वचनों के लिए, कैकेयी की दशरथ के प्रति युद्धभूमि में की गई पूर्व सेवाओं के रूप में पर्याप्त प्रतिफल विद्यमान था।

---

1 कुजू कोलियरीज लिमिटेड **बनाम** झारखण्ड माइन्स, ए० आई० आर० 1976 पटना 72, जो इसी अभिधान ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1892 में उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट हुआ.

इंद्रनन रामस्वामी **बनाम** अन्वप्पा चेट्टियार, (1906) 16 एम०एल०जे० 422, 426.

जब तक वचनदाता इस प्रतिफल को स्वीकार न करे, तब तक उस प्रतिफल से वचनदाता को बाध्य नहीं किया जा सकता, किन्तु प्रतिफल को अंगीकार करके दिया हुआ वचन बाध्यकारी हो जाता है। **बिना प्रतिफल के दिए गए वचनों को अनुग्रह अथवा स्वेच्छा कहा जा सकता है, और अनुग्रह या स्वेच्छा पर कहीं भी कोई बाध्यता नहीं हो सकती।** आनुग्रहिक और स्वेच्छया कहे गए वचन, केवल कथन मात्र हैं जो बहुधा अविचार और उतावली के प्रभाव में प्रकट हो जाते हैं, और यदि उन्हें बिना किसी प्रतिफल के भी, बाध्यकारी बना दिया जाए तो मनुष्य का सामान्य जीवन ही अनेक विषमताओं और असुविधाओं से ग्रस्त हो जाए, और मनुष्य उन सब कार्यों को करने के लिए भी बाध्य हो जाए जिन्हें करने का कभी उसका वास्तविक आशय ही नहीं था।

(ख) प्रतिफल का चमत्कार : **यदि बिना प्रतिफल के इस प्रकार के आनुग्रहिक और स्वेच्छया कथनों को बाध्यकारी बना दिया जाए तो, अनेक वास्तविक प्रतिफलयुक्त और बाध्यकारी वचनों को गम्भीर हानि पहुंचने की सम्भावना है, क्योंकि एक ओर जहां आनुग्रहिक वचन हो और दूसरी ओर प्रतिफल युक्त वचन हो, और दोनों की मान्यता समान हो तो स्वार्थीजन किसी भी अन्य आनुग्रहिक वचन का आश्रय लेकर प्रतिफलयुक्त वचन को नकार दें।** उदाहरण के लिए क एक ओर ख से यह कहे कि "मेरा गृह तुम्हारा ही है, और तुम इसे अपना ही समझो" तथा दूसरी ओर ग से यह कहे कि, "तुम मुझे 50,000 रुपये दे दो और मेरा यह गृह तुम्हारा हो जायेगा" और यदि **ग** क को, 50,000 रुपये दे दे या देने का वचन दे दे तो **क** अपने **ख** को दिये गए वचन के अधिमान से ग को दिए गए वचन को सहज ही नकार सकता है, किन्तु विधि के अन्तर्गत **क** ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र नहीं है, और इसीलिए विधि ने प्रतिफल रहित करारों को मान्यता ही प्रदान नहीं की, जिसका स्पष्ट कारण यही है कि वचन के निर्वाह का दायित्व प्रतिफल के कारण ही है। यदि प्रतिफल नहीं है तो वचन के पालन का दायित्व भी नहीं है। **यह प्रतिफल का ही चमत्कार है जो वचन को दायित्व में परिणत करके वचनदाता को अपने वचन के पालन के लिए बाध्य करता है।**

बिना प्रतिफल के स्वेच्छा से दिए हुए वचन का एक उदाहरण **पुष्पबाला रे बनाम लाइफ इन्शोरेंश कारपोरेशन**[1] वाले मामले में प्राप्त होता है। इस मामले में, प्रतिवादी ने दिनांक 2 जुलाई, 1948 को यह प्रस्ताव किया—"सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव हुआ कि प्रबन्ध संचालक श्री राय द्वारा दिसम्बर, 1947 तक के अपने व्यक्त पारिश्रमिक की 26,000 रु० की राशि उन्हें एकमुश्त अथवा एक या एक से अधिक किस्तों में, या एक से अधिक वर्षों में, जब भी कम्पनी ऐसा करने की स्थिति में हो, संदत्त कर दी जाए।

न्यायमूर्ति श्रीमती मंजुला बोस ने इस प्रस्ताव को बिना प्रतिफल के शून्य करार कर दिया।

स्पष्ट है कि प्रस्ताव में यह शब्द कि **जब भी कम्पनी ऐसा करने की स्थिति में हो** इस वचन को बिना प्रतिफल आनुग्रहिक और स्वेच्छा से दिए हुए वचन का स्वरूप प्रदान करते हैं, जिसमें अनिश्चय और अस्पष्टता का भाव भी विद्यमान है।

(ग) लिखित वचन और प्रतिफल : कोई वचन यदि लिखित रूप में हो अथवा जिसका लिखित रूप में ही होना अनिवार्य है, उसके लिए भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह तो लिखित वचन है, इसके लिए प्रतिफल की क्या आवश्यकता है। ऐसा केवल तब तक कहा जा सकता है जबकि वह वचन उन अपवादों में से कोई हो जिनके लिए भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 में बिना प्रतिफल किए जाने का उपबन्ध है। अधिनियम की धारा 10 में अन्य बातों के साथ-साथ भारत में प्रवृत्त और इस

---

[1] ए० आई० आर० 1978 कलकत्ता 221.

अधिनियम द्वारा अभिव्यक्ततः निरसित न की गई किसी ऐसी विधि की भी कल्पना की गई है जिसके द्वारा किसी संविदा का लिखित रूप में या साक्षियों की उपस्थिति में किया जाना अपेक्षित हो या जिनका रजिस्ट्रीकरण अनिवार्य हो ।

उदाहरण के लिए, कम्पनी अधिनियम, 1913 की धारा 9 के अन्तर्गत संगम अनुच्छेदों और ज्ञापन का तथा धारा 19 के अन्तर्गत, कम्पनी द्वारा किसी भी करार का, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 54 के अन्तर्गत, स्थावर सम्पत्ति के विक्रय का, धारा 59 के अन्तर्गत, ऐसी सम्पत्ति के बन्धक का, धारा 109 के अन्तर्गत, ऐसी सम्पत्ति के पट्टे का, धारा 118 के अन्तर्गत ऐसी सम्पत्ति के विनिमय की, धारा 123 के अन्तर्गत ऐसी सम्पत्ति के दान का, तथा धारा 130 के अन्तर्गत, विनियोज्य दावों के अन्तरण के करार का, न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 5 के अन्तर्गत, न्यास के सृजन का, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 18 के अन्तर्गत, परिसीमावारित ऋण की अभिस्वीकृति का तथा माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 9 के अन्तर्गत किसी मामले को माध्यस्थम् के लिए समर्पित करने का करार, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 299 के अन्तर्गत भारत संघ अथवा उसके किसी राज्य की सरकार से संविदा, उपरोक्त अधिनियमितियों के उपबन्धों के अधीन यथास्थिति लिखित रूप में ही होनी चाहिए । इसी प्रकार, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट करारों का लिखित में ही नहीं बरन उनका रजिस्ट्रीकरण होना भी अनिवार्य कर दिया गया है । किन्तु **इन सब करारों के लिए भी, यदि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 में उल्लिखित कोई अपवाद लागू न होता हो तो प्रतिफल का होना आवश्यक है ।**

यह भी स्मरणीय है कि किसी भी प्रकार के प्रतिफल की विद्यमानता के कारण ही, कोई करार संविदा नहीं बन जाता । संविदा अधिनियम के अनुसार, उसी प्रतिफल के आधार पर करार किया जा सकता है जो अधिनियम की धारा 23 के अन्तर्गत विधिविरुद्ध न हो । जिन तीन अपवादित मामलों में, किसी करार के लिए प्रतिफल का होना आवश्यक नहीं माना गया है, वहां भी यह आवश्यक है कि उन करारों का उद्देश्य विधि-विरुद्ध न हो ।

(घ) आनुग्रहिक कार्य के प्रतिकर का वचन और प्रतिफल : प्रतिफल की इस मीमांसा से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिफल के बिना दिया हुआ वचन केवल आनुग्रहिक होता है, किन्तु यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि **आनुग्रहिक दिये गये वचन और आनुग्रहिक किये गए कार्य में अन्तर है ।** अन्तर यह है कि आनुग्रहिक वचन बाध्यकारी नहीं है, किन्तु आनुग्रहिक कार्य के प्रतिफल में दिया हुआ वचन बाध्यकारी है । इसे एक दृष्टान्त से भली-भांति समझा जा सकता है । माना जाए कि **क** के जल में डूबते हुए पुत्र को **ख** बचा लेता है और **ख** उस कार्य के लिए **क** को 500 रुपये देने का वचन देता है, तो यह एक संविदा है । ऐसी दशा में आनुग्रहिक किया हुआ कार्य प्रतिकर देने के वचन के प्रभाव से प्रतिफल में सम्परिवर्तित हो जाता है । यदि **ख** का उपरोक्त कार्य **क** की वांछा पर किया जाता तो वह स्वयमेव प्रतिफल था । यद्यपि भूतकालिक प्रतिफल समुचित प्रतिफल है, तथापि भूतकाल में किया हुआ कोई कार्य प्रतिफल तभी माना जाएगा जबकि वह वचनदाता की वांछा पर किया जाए, क्योंकि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(घ) के अनुसार, प्रतिफल का वचनदाता की वांछा से अटूट संबंध है, किन्तु जहां पूर्व में, स्वेच्छा से किये गये कार्य के प्रतिकर के रूप में कोई वचन दे दिया जाता है तो वह वचनदाता की वांछा पर किये हुए कार्य के तुल्य ही है, और इसी कारण वह दिये गये वचन का समुचित प्रतिफल है । भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 के अन्तर्गत दिया दृष्टान्त (ग) और (घ) कुछ इसी प्रकार के हैं । दृष्टान्त (ग) के अनुसार, **ख** की थैली **क** पड़ी पाता है और उसे उसको दे देता है । **क** को **ख** 50

रुपये देने का वचन देता है। यह संविदा है। इसी प्रकार दृष्टान्त (घ) के अनुसार, ख के शिशु पुत्र का पालन क करता है। वैसा करने में हुए क के व्ययों के संदाय का ख वचन देता है। यह संविदा है। उपरोक्त दृष्टान्तों का आशय उसी तथ्य को प्रदर्शित करता है कि आनुग्रहिक अथवा स्वेच्छया किये हुए कार्य को भी, जिसके प्रति वह कार्य किया गया है, उसके वचन के बल पर प्रतिफल माना या बनाया जा सकता है।

प्रतिफल की इस महिमा के अन्तर्गत आनुग्रहिक किये गए और स्वेच्छया किये गये कार्यों में भी अन्तर करना आवश्यक है। **प्रत्येक आनुग्रहिक कार्य स्वेच्छया किया हुआ कार्य है, किन्तु प्रत्येक स्वेच्छया किया हुआ कार्य आनुग्रहिक नहीं कहा जा सकता।** क्या आनुग्रहिक है और क्या आनुग्रहिक नहीं है, इस विषय में किसी मामले की परिस्थितियां और पक्षकारों का आशय ही प्रमाण हो सकता है, किन्तु प्रतिफल के दृष्टिकोण से आनुग्रहिक और स्वेच्छया किये गये कार्य में अन्तर महत्व का है। **आनुग्रहिक किया हुआ कार्य तभी प्रतिफल बन सकता है जबकि वचनदाता ने उस कार्य के प्रतिकर के रूप में कुछ देने या करने का संकल्प व्यक्त किया हो, किन्तु जो कार्य एक पक्ष द्वारा स्वेच्छया किया गया हो और करने का उद्देश्य विधि विरुद्ध न हो और उसमें अनुग्रह का भाव न हो, और दूसरा पक्ष उस कार्य का फायदा उठा ले तो, दूसरे पक्ष के वचन के बिना भी वह कार्य प्रतिफल बनकर, दूसरे पक्ष को उस कार्य का प्रतिकर देने के लिए बाध्य करेगा।** यहां उस प्रथम पक्ष द्वारा किये हुए कार्य का फायदा उठाने में ही दूसरे पक्ष द्वारा उसका प्रतिकर देने का वचन विवक्षित है। प्रतिफल की इस क्षमता से, जो संव्यवहार प्रारम्भ में संविदा नहीं था, वह भी संविदा के सदृश दायित्व उत्पन्न करने में सक्षम हो जाता है।

यह भेद, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 के साथ दिए गए उपरोक्त दृष्टान्त (ग) और (घ) को इस अधिनियम की धारा 70 के साथ पठन करने से स्पष्ट हो जाता है। संविदा अधिनियम की धारा 70 में यह कहा गया है कि जहां कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई बात या उसे किसी चीज का परिदान आनुग्रहिकतः करने का आशय न रखते हुए, विधिपूर्वक करता है और ऐसा अन्य व्यक्ति उसका फायदा उठाता है, वहां वह पश्चात्कथित व्यक्ति, उस पूर्वकथित व्यक्ति को ऐसे की गई बात या परिदत्त चीज के बारे में प्रतिकर देने या उसे प्रत्यावर्तित करने के लिए आबद्ध है। ऐसी विधिक बाध्यता इसलिए उत्पन्न नहीं हो जाती कि कोई बात कर दी गई है, वरन इसलिए उत्पन्न होती है कि उस की हुई बात को प्रतिगृहीत कर लिया गया है[1]।

(ङ) व्यतिकारी वचन और प्रतिफल : यद्यपि भारतीय संविदा अधिनियम में यह कहीं अभिव्यक्ततः नहीं कहा गया है कि किसी वचन के विनिमय में दिया गया वचन स्वयं भी प्रतिफल है, तथापि, अधिनियम की धारा 2(ङ) और (च) में यह स्वीकार किया गया है कि हर एक वचन और ऐसे वचनों का हर एक संवर्ग, जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल हो, करार है, और ये वचन जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल या प्रतिफल का भाग हों, व्यतिकारी वचन कहलाते हैं। इन अभिव्यक्तियों से यह निष्कर्ष स्वतः उदित होता है कि **चाहे किसी करार में वचन का प्रतिफल वचन ही क्यों न हो, किन्तु करार में प्रवर्तनीयता की शक्ति का सृजन करने के लिए प्रतिफल का होना अनिवार्य है**, और अधिनियम की धारा 25 में इसी सामान्य सिद्धान्त को अभिव्यक्त किया गया है कि प्रतिफल के बिना किया गया करार शून्य है। इस नियम का लाभ उठाकर कोई भी पक्षकार यह परिसिद्ध कर सकता है कि अमुक करार बिना प्रतिफल के था या उसका प्रतिफल असम्भव हो गया था या प्रतिफल अपूर्ण था या जो बताया गया था वह नहीं था[2]।

---

1 स्टेट आफ वेस्ट बंगाल बनाम बी० के० मोण्डल एण्ड सन्स, ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 779.

2 पांडुरंग बनाम विश्वनाथ, ए० आई० आर० 1939 नागपुर 20.

(च) अपर्याप्त प्रतिफल : संविदा अधिनियम की धारा 25 के अनुसार बिना प्रतिफल के किए गये करार शून्य हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि पर्याप्त अथवा यथायोग्य प्रतिफल के बिना किया गया करार शून्य है। तथापि, **प्रतिफल की अपर्याप्तता उस समय सुसंगत होती है जहां प्रतिफल की अपर्याप्तता से यह अनुमान होता हो कि ऐसे करार में किसी पक्षकार की सम्मति स्वतन्त्र भाव से नहीं दी गई होगी।** अधिनियम की धारा 25 के साथ दिए गए द्वितीय स्पष्टीकरण में ही यह कथन कर दिया गया है कि कोई करार, जिसके लिए वचनदाता की सम्मति स्वतन्त्रता से दी गई है, केवल इस कारण शून्य नहीं है कि प्रतिफल अपर्याप्त है, किन्तु इस प्रश्न को अवधारित करने में कि वचनदाता की सम्मति स्वतन्त्रता से दी गई थी या नहीं, प्रतिफल की अपर्याप्तता न्यायालय द्वारा गणना में भी ली जा सकेगी। उपरोक्त धारा के साथ दिए गए दृष्टान्त (च) और (छ) से यह भेद स्पष्ट होता है। दृष्टान्त (च) और (छ) इस प्रकार हैं—

(च) क 1,000 रुपये के मूल्य के घोडे को 10 रुपये में बेचने का करार करता है। इस करार के लिए क की सम्मति स्वतन्त्रता से दी गई थी। प्रतिफल अपर्याप्त होते हुए भी यह करार संविदा है।

(छ) क 1,000 रुपये के मूल्य के घोड़े को 10 रुपये में बेचने का करार करता है। क इससे इन्कार करता है कि इस करार के लिए उसकी सम्मति स्वतन्त्रता से दी गई थी प्रतिफल की अपर्याप्तता ऐसा तथ्य है, जिसे न्यायालय को यह विचारने में गणना में लेना चाहिए कि क की सम्मति स्वतन्त्रता से दी गई थी या नहीं।

अतः प्रतिफल की अपर्याप्तता का यदि संविदा की किसी विषय वस्तु के यथार्थ मूल्य के दुराव किये जाने, अथवा किसी दुर्व्यपदेशन, कपट, उपताप, धन की तत्काल आवश्यकता, संविदा करने वाले पक्षकार की अज्ञानता अथवा मानसिक दुर्बलता से भी संयोग हो चुका हो, तो यह एक ऐसा तत्व होगा जो साम्या के अन्तर्गत न्यायालय पर यह विचार करने के लिए कि ऐसी संविदा को अपास्त किया जाए अथवा उसका विनिर्दिष्ट पालन करवाया जाए, भारी पड़ेगा[1]। क्या कोई प्रतिफल नितान्त भ्रामक, मिथ्या, संदिग्ध अथवा आघातकारी है जिससे कि यह सिद्ध हो रहा हो कि वास्तव में प्रतिफल की अपर्याप्तता प्रतिफल न होने के तुल्य है, इस विषय में पृथक-पृथक मामलों की विशेष परिस्थितियों के आधार पर ही कुछ अवधारित किया जा सकता है, तथा इस विषय में किसी सार्वलौकिक नियम का प्रतिपादन सम्भव नहीं है।

(छ) ठीक प्रतिफल और मूल्यवान प्रतिफल : संविदा विधि के दृष्टिकोण से ठीक अथवा अच्छे प्रतिफल और मूल्यवान प्रतिफल में भेद किया जा सकता है।

मूल्यवान प्रतिफल विधिक दायित्वों का एकमात्र आधार है। यह धन अथवा धन के मूल्य की कोई अन्य वस्तु या बात हो सकती है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 (घ) के अनुसार, कुछ करना या करने से प्रविरत रहना किसी भी वचन के लिए प्रतिफल है। किसी भी वचन के लिए कुछ करना या करने से प्रविरत रहना, उस वचन के लिए स्वयं में एक मूल्य है। अतः किसी कार्य का करना या करने से प्रविरत रहना, मूल्यवान प्रतिफल है, भले हीं वह धन अथवा धन के रूप में कोई अन्य वस्तु न हो।

---

[1] रास बिहारी बनाम हरीपाद, 59 कलकत्ता ला जर्नल, 387.

स्ट्राउड के न्यायिक शब्द कोश में मूल्यवान प्रतिफल का अर्थ धन अथवा धन के मूल्य की किसी वस्तु से है तथा **मूल्यवान** को जो **भ्रामक** अथवा **नगण्य** है, से भिन्न करके समझना होगा किन्तु इसका अर्थ यथायोग्य नहीं है। प्रतिफल यदि किसी सम्पत्ति के आकलन के सन्दर्भ में देखा जाए तो तभी मूल्यवान होगा जबकि यह अतितुच्छ अथवा नगण्य हो[1]।

वे सभी प्रतिफल जो पर्याप्त हों अथवा अपर्याप्त, यदि वे संविदा अधिनियम की धारा 23 के अन्तर्गत विधिपूर्ण हैं, तो ठीक अथवा अच्छे प्रतिफल माने जाएंगे। इसके साथ ही, **संविदा अधिनियम की धारा 25 में बिना प्रतिफल किए गए जिन करारों को भी विधिमान्य किया गया है वे प्रतिफल न होते हुए भी ठीक प्रतिफल माने जा सकते हैं।** यथा, निकट सम्बन्ध वाले पक्षकारों के बीच नैसर्गिक प्रेम अथवा स्नेह अथवा किसी द्वारा पूर्व में स्वेच्छया ऐसी की हुई बात जिसके प्रतिकर देने का अन्य पक्ष बचन दे, वर्तमान अथवा वर्तमान प्रतिफल न होते हुये भी ठीक प्रतिफल है। भूत-कालिक प्रतिफल को वर्तमान बचन के लिए ठीक प्रतिफल होने की प्रकल्पना संविदा अधिनियम की धारा 2 (घ) में 'प्रतिफल' शब्द की परिभाषा करते समय ही कर ली गई है।

ए०सी० दत्त[2] ने **गुलो** बनाम **एक्सेंटर**[3] के विशप वाले मामले का सन्दर्भ देकर ठीक प्रतिफल और मूल्यवान प्रतिफल के भेद को इस प्रकार व्यक्त किया है कि ठीक प्रतिफल के आधार पर कोई लिखत उस लिखत के पक्षकारों के मध्य ठीक मान ली जाती है जबकि मूल्यवान प्रतिफल के आधार पर किसी हस्तान्तरण को पश्चात्वर्ती क्रेता के प्रति ठीक मान लिया जाता है।

कतिपय बिना प्रतिफल वाले करारों की विधिमान्यता

(क) नैसर्गिक स्नेह अथवा प्रेमवश किया गया लिखित रजिस्ट्रीकृत करार : भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 से संलग्न प्रथम अपवाद के अनुसार प्रतिफल के बिना किया गया वह करार शून्य नहीं है जो—

(अ) लिखित रूप में अभिव्यक्त हो; और

(ब) दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण के लिए तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत हों, और

(स) एक दूसरे के साथ निकट सम्बन्ध वाले पक्षकारों के बीच किया गया हो, और

(द) नैसर्गिक प्रेम और स्नेह के कारण किया गया हो।

बिना प्रतिफल किये गए करार म उपरोक्त सभी आवश्यक तत्व विद्यमान हों, तभी ऐसा करार प्रवर्तनीय हो सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि नैसर्गिक प्रम और स्नेह के कारण किया गया प्रत्येक करार रजिस्ट्रीकृत हो वरन् केवल वे करार ही रजिस्ट्रीकृत होने चाहिए जिनका रजिस्ट्रीकरण तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन आवश्यक माना गया हो[1]। किन्तु इसका लिखित होना अनिवार्य है। ऐसा करार हर एक प्रकार के पक्षकारों के बीच नहीं किया जा सकता। ऐसा करार निकट सम्बन्ध वाले पक्षकारों के बीच ही किया जा सकता है। ऐसे पक्षकारों के बीच केवल किसी प्रकार की नातेदारी का विद्यमान होना ही पर्याप्त नहीं है। नातेदारी हो तो और न हो तो भी, इस अपवाद का लाभ तभी उठाया जा सकता है, जबकि पक्षकारों के बीच सम्बन्ध निकट का हो। किसी मुसलमान महिला के

---

[1] पी०के० बनर्जी **बनाम** मंगल प्रसाद, ए० आई० आर० 1932 इलाहाबाद 243.

[2] आन कांट्रैक्ट ऐक्ट, 1969 ईस्टर्न लॉ हाउस कलकत्ता, पृ० 306.

[3] 109 इंगलिश रिपोर्ट्स 568 : 10 बार्नेवाल एण्ड क्रैसवैल्स रिपोर्ट्स 584, 606.

[4] न्यायमूर्ति रन० के० दत्त—ललित मोहन **बनाम** वासुदेव, ए० आई० आर० 1976 कलकत्ता 430.

पिता और उसके पति के बीच का सम्बन्ध निकट का सम्बन्ध माना जा सकता है, यदि उनमें परस्पर प्रेम और स्नेह भी हो।[1] अपने श्वसुर के विभाजित भाई की विधवा से किसी व्यक्ति का सम्बन्ध निकट का नहीं माना जा सकता।[2]

सम्पत्ति का अन्तरण अन्तर्वलित करनेवाले इस प्रकार के करार दान की श्रेणी में आते हैं। सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882, की धारा 122 में दी गई दान की परिभाषा का मर्म यही है कि दान का संव्यवहार प्रतिफल के उस स्वरूप के बिना ही सम्भव है जैसा कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 (घ) में परिभाषित है। (न्यायमूर्ति पी० एन० सिंघल–श्रीमती शकुन्तला बनाम हरियाणा राज्य[3])

एक भाई ने दूसरे भाई के विरुद्ध, भू-सम्पत्ति में अपने भाग के लिए वाद संस्थित किया जो खारिज हो गया, किन्तु तत्पश्चात् उसी भाई ने लिखित और रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज के द्वारा उसी सम्पत्ति का आधा भाग दूसरे भाई को देने का करार कर लिया। ऐसा करार नैसर्गिक प्रेम और स्नेह के कारण किया हुआ माना गया।[4] एक भाई के द्वारा दूसरे भाई के ऋण को चुकाने का करार, बिना प्रतिफल के किन्तु नैसर्गिक प्रेम और स्नेह के आधार पर विधि मान्य होगा, यदि वह रजिस्ट्रीकृत हो।[5] किसी पुत्री को उसके पिता द्वारा किया हुआ सम्पत्ति का दान, ऐसी परिस्थितियों में जबकि पुत्री ने पिता की सेवा और सुश्रूषा भी पर्याप्त की, इसी अपवाद के अन्तर्गत, विधिमान्य माना गया।[6]

इस अपवाद का लाभ उठाने के लिए, पक्षकारों का केवल निकट का सम्बन्ध ही पर्याप्त नहीं है। निकट के सम्बन्ध के अतिरिक्त, उनमें नैसर्गिक प्रेम और स्नेह का संचार भी आवश्यक है। अतः, यदि करार किसी परिवार के विवादरत सदस्यों के बीच, पारस्परिक कलह के शमन करने और पारिवारिक शान्ति की लब्धता के उद्देश्य से किया गया हो तो, उस करार में इस अपवाद का लाभ नहीं उठाया जा सकता।[7]

सामान्यतया, पति और पत्नी के बीच का सम्बन्ध नैसर्गिक प्रेम और स्नेह का ही रहता है तथापि यदि यह प्रकट हो कि उस दम्पति में प्रेम और स्नेह का लेश भी नहीं था तो उन दोनों के बीच किसी करार के लिए, इस अपवाद का लाभ नहीं उठाया जा सकता।[7]

नैसर्गिक प्रेम और स्नेह के अस्तित्व का उल्लेख लिखित करार में अभिव्यक्त होना आवश्यक नहीं है। पक्षकारों के वास्तविक सम्बन्ध और उनके बीच नैसर्गिक प्रेम और स्नेह की दशाओं के आधार पर, इस तथ्य की पुष्टि में साक्ष्य ग्रहण किया जा सकता है।[1]

(ख) पहले ही की गई बात के प्रतिकर का करार : संविदा अधिनियम की धारा 25 में दिए गए दूसरे अपवाद के अनुसार बिना प्रतिफल के किया गया करार शून्य नहीं है, यदि वह किसी ऐसे व्यक्ति को पूर्णतः या भागतः प्रतिकर देने के लिए वचन हो, जिसने,

(i) वचनदाता के लिए स्वेच्छया पहले ही कोई बात कर दी हो; अथवा

---

1. निसार **बनाम** रहमत, 100 आई० सी० 350.
2. तरुना **बनाम** गोपाल, ए० आई० आर० 1943 मद्रास, 591.
3. ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 843 (844).
4. शिवा **बनाम** शिवराम, 1 बाम्बे लॉ रिपोर्टर 495.
5. लाला **बनाम** जंग, ए० आई० आर० 1937 अवध 254.
6. सरोज **बनाम** ज्ञानदा, 36 सी० डब्ल्यू० एन० 555.
7. राजलक्ष्मी **बनाम** भूतनाथ, (1900) 4 सी० डब्ल्यू० एन० 488.

(ii) ऐसी कोई बात कर दी हो जिसे करने के लिए वचनदाता वैध रूप से विवश किए जाने का दायी था।

उपरोक्त (i) और (ii) में वर्णित दशाओं को समझने के लिए दो दृष्टान्त इस प्रकार हैं:—

(i) ख की थैली क पड़ी पाता है और उसे उसको दे देता है। क को ख 50 रुपये देने का वचन देता है। यह संविदा है;

(ii) ख के शिशु पुत्र का पालन क करता है। वैसा करने में हुए क के व्ययों के संदाय का ख वचन देता है। यह संविदा है।

इस अपवाद का लाभ उठाने के लिए निम्न अवस्थाओं का विद्यमान होना आवश्यक है—

(i) पहले ही की हुई बात, करने वाले व्यक्ति द्वारा, स्वेच्छया की जानी चाहिए। यदि वह वचनदाता की वांछा पर की गई हो तो इस अपवाद का लाभ नहीं उठाया जा सकता।[1]

वचनदाता की वांछा पर किया हुआ कार्य, चाहे वह पहले ही किया जा चुका हो, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 (घ) के अन्तर्गत, वैसे ही उपयुक्त प्रतिफल है, अतः उस दशा में, उस पहले ही किये हुए कार्य को स्वेच्छया नहीं कहा जा सकता।

(ii) पहले ही की हुई बात के समय वचनदाता का अस्तित्व में होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए किसी कम्पनी के निगमित हो जाने से पूर्व ही, उसके सम्प्रवर्तकों द्वारा पहले ही की हुई किसी बात के लिए प्रतिकर देने का वचन यदि कम्पनी के ज्ञापन और संगम अनुच्छेदों में उल्लिखित कर दिया जाए तो भी, उस वचन से तत्पश्चात निगमित हुई कम्पनी के संचालक या अंशधारक बाध्य नहीं हो सकते।[2]

(iii) पहले ही की हुई बात के समय, वचनदाता संविदा करने के लिए सक्षम होना चाहिए।[3] यदि पहले ही की हुई बात के समय वचनदाता अवयस्क रहा हो तो वह अवयस्क, प्राप्तवय होने पर, उस की हुई बात के लिए प्रतिकर देने का वचन नहीं दे सकता किन्तु यदि प्राप्तवयता पर, उस पूर्व में की हुई बात के अतिरिक्त कोई अन्य नवीन प्रतिफल भी उद्भूत किया गया हो तो उस नवीन प्रतिफल की सीमा तक दिया हुआ वचन बाध्यकारी होगा।[4] किन्तु यदि वह पूर्व में किया हुआ कार्य संविदा करने में किसी असमर्थ व्यक्ति को या किसी ऐसे व्यक्ति को जिसका पालन-पोषण करने के लिए वह वैध रूप से आबद्ध हो, जीवन में उसकी स्थिति के योग्य आवश्यक वस्तुएं प्रदान करने की प्रकृति का रहा हो तो वह व्यक्ति, जिसने ऐसे प्रदाय किए हैं ऐसे असमर्थ व्यक्ति से व्यक्तिगत रूप में तो नहीं, किन्तु उस असमर्थ व्यक्ति की सम्पत्ति से प्रतिपूर्ति पाने का हकदार होगा[5], और ऐसी स्थिति में, उस असमर्थ व्यक्ति द्वारा, तत्पश्चात समर्थ होने या न होने की, दोनों ही, दशाओं में प्रतिकर का वचन दिये जाने की या पूर्व में उसके प्रति की गई किसी बात को अनुसमर्थित करने की आवश्यकता भी नहीं रहती।

(iv) प्रतिकर देने का ऐसा वचन वचनदाता के लिए पहले ही की जा चुकी किसी बात के प्रतिकर देने के रूप में होना चाहिए और तदनुसार, भविष्य में की जाने वाली किसी बात के लिए

---

1. सावबा बनाम यमन अप्पा, 35 बाम्बे लॉ रिपोर्टर 345.
2. अहमदाबाद जुबिली कंपनी बनाम छोटालाल, (1908) 10 बाम्बे ला रिपोर्टर, 141.
3. इंद्रन रामस्वामी बनाम अन्थप्पा चेट्टियार, (1906) 16 एम० एल० जे० 422.
4. नरेंद्र बनाम हृषीकेश : 16 आई० सी० 765.
5. भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 68.

प्रतिकर देने का वचन इस अपवाद के अन्तर्गत नहीं आ सकता[1], अतः किसी भावी बात के लिए प्रतिकर देने के वचन के लिए प्रतिफल की आवश्यकता रहेगी।

(ग) परिसीमा विधि वारित ऋण के संदाय का करार : भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 के तृतीय अपवाद के अनुसार बिना प्रतिफल के किया हुआ करार, ऐसी अवस्था में भी शून्य नहीं है जबकि वह करार,

(i) ऐसे ऋण के संदाय के लिए है जिसका संदाय लेनदार करा सकता, यदि वह ऋण परिसीमा विधि द्वारा, करार के समय, वारित न हो गया होता; और

(ii) उपरोक्त प्रकृति के ऋण के पूर्णतः या भागतः संदाय के लिए है; और

(iii) जिसे उस वचन से भारित किया जाना है, या तो उसके द्वारा या उस व्यक्ति की ओर से तन्निमित्त साधारण या विशेष रूप से प्राधिकृत किसी अभिकर्ता द्वारा किया गया है; और

(iv) लिखित और हस्ताक्षरित है।

(1) 'ऋण' का अर्थ : पीपुल बनाम आरगेलो[2] वाले मामले में, कैलीफोर्निया की सुप्रीम कोर्ट ने 'ऋण' की व्याख्या इस प्रकार की है—"ऋण शब्द तत्काल शोध्य और संदेय राशि को जितना लागू है, उतना ऐसी धनराशि को लागू नहीं होता जिसके बारे में भविष्य में कभी संदाय करने का वचन दिया गया हो"।

केशोराम इण्डस्ट्रीज बनाम धनकर आयुक्त[3] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने (न्यायाधिपति के० सुब्बाराव, (जैसा कि वे तब थे) के निर्णय में, उपरोक्त संप्रेक्षण का अनुमोदन किया, और पुनः **भारत संघ बनाम** रमण आयरन फाउन्ड्री[4] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने **वेब बनाम स्टेन्टन**[5] वाले मामले के निम्न अवतरण को अनुमोदित किया है—

> "ऋण ऐसी धनराशि है जो अब शोध्य है अथवा वह जो वर्तमान बाध्यता के कारण भविष्य में संदेय हो जाएगी। ऋण वर्तमान में होना चाहिये, उसकी उतराई भले ही वर्तमान में हो अथवा भविष्य में, जो महत्वपूर्ण नहीं है। धनराशि का संदाय वर्तमान में अथवा भविष्य में करने की अस्तित्वयुक्त बाध्यता होनी चाहिये।"

उपरोक्त **भारत संघ** बनाम **रमण आयरन फाउन्ड्री**[1] वाले मामले में, न्यायाधिपति पी०एन०भगवती ने सारांश के रूप में यह संप्रेक्षित किया है कि जब किसी भविष्यवर्ती तारीख में किसी धनराशि के संदाय करने की बाध्यता है तो यह ऋण को स्वीकार करना है किन्तु जब वर्तमान में धनराशि को संदाय करने की बाध्यता है तो यह शोध्य ऋण है। इस प्रकार, संविदा भंग के कारण नुकसानी की राशि तब तक ऋण नहीं है, जब तक न्यायालय यह अवधारित न कर दे कि "भंग की शिकायत करने वाला पक्षकार, नुकसानी का हकदार है"। **नुकसानी न्यायालय द्वारा निर्धारित हो जाने पर ऋण हो जाती है।**

इस प्रकार, नुकसानी के वाद में पारित डिक्री भी यदि परिसीमा वारित हो चुकी हो तो, उपरोक्त, अपवाद के अन्तर्गत ऋण की परिभाषा में मानी जाएगी।

---

1. वसंत **बनाम** मदन, 46 आई० सी० 282.
2. 1869 : कैलीफोर्निया 524.
3. 1966 : 2 एस० सी० आर० 688 : ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 1370.
4. [1974] 2 उम० नि० प० 310, 326-327 : ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1265.
5. 1833 : 11 क्यू० बी० डी० 518

(2) ऐसे करार के सम्बन्ध में अन्य बातें : इस अपवाद का लाभ उठाने के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं --

(i) ऋण इस प्रकार का होना चाहिये, जो यदि परिसीमा विधि द्वारा समय-वर्जित न होता तो लेनदार उसका संदाय करा लेता। उदाहरण के लिए क ने ख से एक मशीन क्रय की तथा ख को पत्र द्वारा सूचित किया कि वह कीमत के संदाय का प्रबन्ध कर रहा है। क के इस कथन को मशीन के उस मूल्य के संदाय का जो परिसीमा-विधि से वारित हो चुका था; लिखित और हस्ताक्षरित वचन माना गया।[1]

(ii) ऐसे ऋण का किसी अन्य दायित्व में सम्परिवर्तन हो गया हो तो, यह नियम लागू नहीं होगा। उदाहरण के लिए यदि परिसीमा विषयक विधि द्वारा वारित किसी ऋण के संदाय की प्रतिभूति में किसी ऋणी ने अपनी सम्पत्ति का बन्धक कर दिया हो तो ऐसे बन्धक से ऋण के बदले बन्धक की हुई सम्पत्ति में बन्धकदार के हित का सृजन हो जाता है तथा इससे लेनदार और देनदार के मध्य बन्धकदार और बन्धककर्ता के नवीन सम्बन्धों की स्थापना हो जाती है और ऋण के संदाय में सम्पत्ति का अन्तरण हो जाता है।[2]

(iii) इस नियम में तथा परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 18 में कथित नियम में एक महत्वपूर्ण भेद है। यद्यपि दोनों से ही परिसीमा की एक नवीन अवधि का सूत्रपात होता है, यदि वह वचन पक्षकार या उसके प्राधिकृत अभिकर्ता द्वारा लिखित और हस्ताक्षरित हो तथापि भेद यह है कि परिसीमा विधि के अन्तर्गत यह वचन परिसीमा की अवधि के समाप्त होने से पूर्व किया जाना चाहिए जबकि संविदा विधि के अन्तर्गत ऐसा वचन परिसीमा की अवधि के व्यतीत होने पर भी किया जा सकता है।[3]

(iv) यह नियम तभी लागू होगा जब कि संदाय का वचन अभिव्यक्त हो।[4] यदि किसी वचन में लेनदार और देनदार के सम्बन्धों का वचन में प्रयुक्त भाषा से स्पष्ट परिज्ञान नहीं होता हो तो ऐसे वचन पर न संविदा विधि का यह अपवाद लागू होगा और न ही परिसीमा विधि की धारा 18 लागू होगी।[5]

ऐसा वचन उसी व्यक्ति द्वारा दिया जाना चाहिये जिसे उस वचन से भारित किया जा सके। चूंकि हिन्दू पिता द्वारा लिये गए ऋण से पुत्रों को, पिता से उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति की सीमा तक भारित किया जा सकता है, अतः पिता के लिये हुये परिसीमा विधि वारित ऋण के संदाय का वचन पुत्रों द्वारा, उत्तराधिकार में प्राप्त संपत्ति की सीमा तक, इस अपवाद के अधीन, दिया जा सकता है[6] किन्तु यदि मुवक्किल की ओर से उसका अधिवक्ता ऐसा वचन दे तो वह इस अपवाद के अन्तर्गत नहीं आएगा।[7]

---

1. श्री राम मेटल वर्क्स **बनाम** नेशनल इण्डस्ट्रीज, ए० आई० आर० 1978 कर्नाटक 24 (28).
2. मनोजकुमार **बनाम** नवद्वीप चन्द्र, ए० आई० आर० 1978 कलकत्ता 111.
3. एन० एथिराजुलू **बनाम** के० आर० चिन्नीकृष्ण, ए० आई० आर० 1975 मद्रास 333.
4. जीवराज **बनाम** लालचन्द्र, ए० आई० आर० 1969 राजस्थान 192.
5. गौरीन्निना **बनाम** एस० जे० कीरमनि, ए० आई० आर० 1974 मद्रास 191.
6. पैस्तोनजी **बनाम** मेहरबाई, 112 आई० सी० 740.
7. बन्शीधर **बनाम** बाबूलाल, 75 आई० सी० 309.

ऐसे वचन की बाध्यता के लिए ऋण की केवल अभिस्वीकृति पर्याप्त नहीं है, वरन उसके संदाय का असंदिग्ध लिखित और हस्ताक्षरित वचन होना चाहिए ।[1] अतः न्यायालय में साक्ष्य के क्रम में यदि किसी व्यक्ति ने ऐसे ऋण को अभिस्वीकार कर लिया हो तो, वह इस अपवाद के अन्तर्गत नहीं आएगा ।[2]

ऋण से तात्पर्य किसी निश्चित संदेय और शोध्य राशि से है । अतः, किसी चालू या खुले खाते में, जमा खाते की और नामे लिखी हुई प्रविष्टियों की परस्पर मुजराई करके, बाकी की राशि के संदाय का वचन इस अपवाद के अन्तर्गत नहीं आएगा ।[3]

बिना प्रतिफल दान की विधिमान्यता

प्रतिफल के बिना किया गया करार शून्य है, किन्तु भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 के प्रथम स्पष्टीकरण के अनुसार यह बात, वस्तुतः दिये गए किसी दान की विधिमान्यता पर, जहां तक कि दाता और आदाता के बीच का सम्बन्ध है, प्रभाव नहीं डालेगी ।

जहां संव्यवहार दान की कोटि में आता हो, जो कि दो पक्षकारों के बीच संविदा न होकर, सम्पत्ति के एकपक्षीय अन्तरण का संव्यवहार है, वहां प्रति ल के बिना किये गए करार की शून्यता का सिद्धान्त लागू नहीं होगा । अतः यदि दाता को दान के प्रतिसंहरण का अधिकार है तो जब तक ऐसे प्रतिसंहरण का कार्य अभिव्यक्त न हो तब तक दाता और आदाता के मध्य दान केवल इसीलिए शून्य नहीं होगा कि दाता ने उसी सम्पत्ति का हस्तान्तरण, तत्पश्चात् किसी अन्य व्यक्ति को कर दिया है और ऐसी दशा में आदाता से व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाले व्यक्ति दान के विलेख का प्रवर्तन करा सकते हैं ।[4]

कतिपय अवरोधक करारों की शून्यता

(क) अवरोधक करारों की शून्यता का ध्येय : **विवाह, व्यवसाय और व्यवहार की तीन प्रथाएं किसी भी सुसंस्कृत समाज म सभ्यता के अनवरुद्ध प्रवाह की सरणियां हैं । व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की द्योतक ये तीनों प्रथाएं समुन्नत समाज की मेरुदण्ड हैं ।** सामाजिक समागम, इन्हीं प्रथाओं की उन्मुक्त क्रियाशीलता पर आधारित है । इन्हीं प्रथाओं के स्वतन्त्र संचालन से व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं की आपूर्ति और अपनी प्रतिभा का उन्नयन करता है। ये प्रथायें प्रारम्भ से ही मानव के व्यक्तित्व के विकास की आधारभूमि और मानवीय गरिमा की अधिष्ठात्री रही हैं । व्यवहार के व्यापक परिवेश में धर्म का सांगोपांग स्वरूप सन्निविष्ट है । व्यक्तियों के स्वतन्त्र समागम, पारस्परिक आदान-प्रदान और श्रम या वस्तुओं के विनिमय, व्यवहार के अन्तर्गत प्रतिष्ठित रह कर; संविदा की विभिन्न विधाओं का सन्निर्माण करते हैं । विवेक, सदाचार, संगठन स्नेह, सौजन्य, सहनशीलता, त्याग, मान-मर्यादा और स्थायित्व जैसी सद्वृत्तियां वैवाहिक प्रथा की देन हैं। यही कारण है कि विधि ने इन प्रथाओं की स्वतन्त्र संक्रिया की ओर समुचित ध्यान दिया है । संविदा विधि में, इन तीनों प्रथाओं के कलापों में अवरोध उपस्थित करने वाले करारों को कुछ परिस्थितियों में युक्तियुक्त और आंशिक अवरोध की अनिवार्यता के अतिरिक्त शून्य घोषित किया है ।

इन प्रथाओं के गौरव को लक्ष्य करते हुए, संविदा विधि में, इन्हें अभिव्यक्त और विनिर्दिष्ट सुरक्षा प्रदान की गई है । इन प्रथाओं को सामाजिक दृढ़ता के प्रमुख स्तम्भ मानकर, भारतीय

1. देवी बनाम भगवती, ए० आई० आर० 1943 इलाहाबाद 63.
2. सम्पय्या बनाम शमशेर खां, ए० आई० आर० 1963 आन्ध्र प्रदेश 337.
3. सिक्केरिया बनाम नोरोन्हा, ए० आई० आर० 1934 प्रिवी काउंसिल 144.
4. लाल महोमद बनाम आया, 30 आई० सी० 20

संविदा अधिनियम, 1872 की 26वीं, 27वीं और 28वीं धाराओं का अधिनियमन, एसे करारों का वारण करने के उद्देश्य से हुआ है जो कि इन प्रथाओं के वास्तविक अभीष्ट में अवरोधक हो सकते हैं।

(ख) सामाजिक न्याय और संविदा की स्वतंत्रता : यद्यपि उपरोक्त तीनों प्रथाओं के अवरोधक करार शून्य होंगे, तथापि मानव की निरंकुश स्वच्छन्दता, इन प्रथाओं को अमर्यादित और विशृंखल कर सकती है। अत: सार्वजनिक प्रभाव की दृष्टि से, इन प्रथाओं से सम्बन्धित कलापों पर, राज्य द्वारा कुछ यक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित किया जाना सर्वथा उचित है। ऐसे निर्बन्धनों के अभाव में, समाज में दुराचार, अनियमितता और शोषण के प्रसार का भय है जिसके कारण स्वयं इन प्रथाओं की प्रणाली ही दूषित हो सकती है।

उदाहरण के लिए, विवाह, मानवी अन्त:करण का विषय है तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 में अन्त:करण की स्वतन्त्रता को एक मूल अधिकार माना गया है किन्तु प्रत्येक नागरिक के अन्त:-करण की स्वतन्त्रता के अधिकार को अक्षुण्ण मानते हुए भी, सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के हित में, राज्य को ऐसी विधि बनाने के अधिकार को मान्यता दी गई है जो धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक अथवा किसी प्रकार की लौकिक क्रियाओं का विनियमन अथवा निर्बन्धन करती हो अथवा सामाजिक कल्याण या सुधार उपस्थित करती हो। अत: बहुपत्नीत्व या बहुपतित्व की प्रथा को, या प्रतिषिद्ध पीढ़ियों में विवाह करने की उच्छृंखलता को, प्रतिषिद्ध करने के लिए, व्यक्ति के विवाह करने की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया जाना अनिवार्य है।

इसी प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 19 (च) और (छ) के अन्तर्गत, सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का तथा कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का, प्रत्येक नागरिक को मौलिक अधिकार प्राप्त है, तथापि इन अधिकारों से सम्बन्धित कोई बात साधारण जनता के हितों में, राज्य की विधि द्वारा लगाये गए या लगाये जाने वाले युक्तियुक्त निर्बन्धनों के लिए कोई रुकावट न डालेगी। अत: जन-कल्याण और सामाजिक न्याय की प्राप्ति के अभीष्ट से, नागरिकों की वृत्ति, व्यापार या कारबार करने की संविदाओं पर युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित किये जा सकते हैं। संविधान के अनु-च्छेद 39 में, इसी उद्देश्य से अन्य बातों के साथ यह अभिव्यक्त किया गया है कि समुदाय की भौतिक संपत्ति का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो कि जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो, आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि जिससे धन और उत्पादन साधनों का सर्व-साधारण के लिए अहितकारी केन्द्रण न हो, पुरुषों और स्त्रियों दोनों के लिये समान कार्य के लिए समान वेतन हो, श्रमिक पुरुषों और स्त्रियों का स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो तथा आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगार में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों।

राज्य के उपरोक्त नीति निदेश के आधार पर, नागरिक अपने व्यापार, कारबार या वृत्ति के क्षेत्र में, श्रमिकों से मनमानी, अन्यायकारी या अमानवीय संविदाएं करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। संविधान के अनुच्छेद 42 में यह निर्दिष्ट किया गया है कि राज्य, काम की यथोचित और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने का उपबन्ध करेगा, साथ ही संविधान के अनुच्छेद 43 में यह भी निर्दिष्ट है कि उपयुक्त विधान या आर्थिक संघटन द्वारा अथवा और किसी दूसरे प्रकार से, राज्य कृषि के, उद्योग के, या अन्य प्रकार के, सब श्रमिकों को, काम, निर्वाह-मजदूरी, शिष्ट जीवन-स्तर तथा अवकाश का, संपूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं तथा सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवसर प्राप्त करने का प्रयास करेगा।

इस प्रकार, वृत्ति, व्यवसाय या कारबार के क्षेत्र में, **श्रम की संविदायें, वर्तमान सांविधानिक उपबन्धों के आधार पर, सामाजिक न्याय के अध्यधीन हैं।** "लैसीफेयर" का, मध्ययुगीन सिद्धान्त, जिसका आधार यह था कि राज्य, कार्य और श्रम के क्षेत्र में नियोजक और कर्मचारियों के बीच की गई संविदाओं की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप न करे, वर्तमान में, समाज-कल्याण के दायित्व के आधार पर, अमान्य किया जा चुका है। संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान, 1787 के अनुच्छेद 1, धारा 10; खण्ड (1) में संविदाओं द्वारा उद्भूत दायित्वों में अहस्तक्षेप की नीति, भारत के संविधान के उपबन्धों में मान्य नहीं है, और फलतः भारत में श्रम की संविदाओं के क्षेत्र में, व्यवसाइयों और कारबारियों को, आत्यन्तिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। श्रम की संविदाओं के विषय में, भारत की नीति, जमाखोरी, मुनाफाखोरी और मानवी श्रम के शोषण के विरुद्ध है। यद्यपि यह नीति किसी नियोजक द्वारा स्वयं की शर्तों के अधीन, श्रम को भाड़े पर लेने की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेपकारी है, परन्तु सामाजिक न्याय की यह पुकार है कि नियोजक के इस अधिकार को नियन्त्रण में रखा जाए। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अधिनियमित हो जाने से, अब किसी नियोजक को न्यूनतम मजदूरी की दर से कम मजदूरी पर, किसी श्रमिक से काम लेने का अधिकार नहीं है। कारखाना अधिनियम, मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, 1978 व बोनस संदाय अधिनियम, 1965 आदि विविध अधिनियमों द्वारा, श्रम की संविदाओं पर युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित किये गये हैं जिनसे श्रमिकों की दशा में सुधार होकर सामाजिक न्याय का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

संविदाय, सामाजिक न्याय का आधार नहीं हैं, वरन् सामाजिक न्याय संविदाओं का आधार हैं। भारतीय गणतन्त्र में, संविदाओं की सहायता के बिना भी सामाजिक न्याय गतिशील है। अतएव श्रम और सेवा के यथोचित मामलों में न केवल किसी विद्यमान संविदा को अधिक्रान्त ही किया जा सकता है, वरन् किसी विद्यमान संविदा को, औचित्य और अनौचित्य या ऋजुता और अऋजुता के दृष्टिकोण से, अन्य नवीन संविदा से प्रतिस्थापित भी किया जा सकता है।[1] अतः, यद्यपि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 27 में पक्षकारों के बीच संविदा करने की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई है तथापि कोई भी पक्षकार सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों के प्रतिकूल संविदा करने के लिए स्वतन्त्र नहीं है।

(ग) विवाह के अवरोधक करार की शून्यता : भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 26 के अनुसार, ऐसा हर करार शून्य है जो अप्राप्तवय से अन्य किसी व्यक्ति के विवाह के अवरोधार्थ हो।

इंग्लैण्ड की विधि में, विवाह के अवरोध में अधिरोपित शर्त शून्य है, किन्तु बहुधा यही अवधारित किया गया है कि विवाह के अवरोध में लगाई गई ऐसी शर्त जो कि विवाह के समय, विवाह के स्थान अथवा विवाह में वरण किये जाने वाले व्यक्ति के स्तर के सम्बन्ध में हो, अविधिमान्य नहीं है।[2] उदाहरण के लिए यह शर्त कि यदि वसीयतदार किसी स्कॉच व्यक्ति से या भृत्य से, विवाह कर ले तो उसकी वसीयत सम्पदा समपहृत हो जायगी, समुचित शर्त है।[3]

किसी व्यक्ति-विशेष से ही विवाह करने के वचन और किसी व्यक्ति-विशेष को छोड़ कर अन्य किसी से भी विवाह न करने के वचन में भारी अन्तर है, और इन दोनों वचनों में से केवल पश्चात कथित वचन को, विवाह का अवरोधक होने के कारण शून्य माना गया है। एक महिला ने एक पुरुष

---

1. देखिए, राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ बनाम अपोलो मिल्स, ए० आई० आर० 1960 एस० सी० 819.
2. राव बनाम गुलाब, ए० आई० आर० 1942 इलाहाबाद 351.
3. देखिए, जैनर बनाम टर्नर, एल० आर० 16 चान्सरी 188.

से यह करार किया कि वह पुरुष उस महिला के अतिरिक्त अन्य किसी से विवाह नहीं करेगा और करने की दशा में, उस स्त्री को 1,000 पौण्ड देगा। उस व्यक्ति ने अन्य स्त्री से विवाह कर लिया और उस महिला द्वारा 1,000 पौण्ड की वसूली का वाद लाये जाने पर, उस करार को शून्य माना गया।[1]

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 26 में वर्णित नियम, इंग्लैण्ड की विधि के नियम से अपेक्षाकृत कठोर है। भारतीय विधि में, अवयस्क के विवाह पर लगाये गए किसी अवरोध के अतिरिक्त, अन्य किसी भी व्यक्ति के विवाह का अवरोधक करार शून्य है और इस नियम में न किसी अपवाद की प्रकल्पना की गई है और न आंशिक और पूर्ण अवरोध में ही भेद किया गया है। किसी प्राप्त वय व्यक्ति को उसकी स्वेच्छानुसार विवाह करने के अवरोध में किया हुआ किसी भी प्रकार का करार शून्य है।[2]

विवाह का अवरोधक करार और विवाहोपरान्त अवरोधक करार में भेद किया गया है।[3] उदाहरण के लिए—किसी मुस्लिम पति का अपनी पत्नी को, पति द्वारा द्वितीय विवाह करने की दशा में, तलाक लेने का अधिकार देने का करार शून्य नहीं है[4]।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के उपबन्धों के बल पर, हिन्दुओं में तो बहु-विवाह की प्रथा समाप्त ही हो चुकी है, अतः इस प्रकार के करारों का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हो सकता।

(घ) व्यापार के अवरोधक करार की शून्यता : भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 27 के अनुसार, हर करार जिससे कोई व्यक्ति किसी प्रकार की विधि पूर्ण वृत्ति, व्यापार या कारबार करने से अवरुद्ध किया जाता हो, उस विस्तार तक शून्य है।

उपरोक्त नियम विधिपूर्ण वृत्ति, व्यापार या कारबार करने से अवरुद्ध करने वाले करार को शून्य घोषित करता है, और इस नियम के अन्तर्गत यह भेद नहीं किया गया है कि लगाया गया अवरोध, सामान्य है अथवा विशेष, आंशिक है या पूर्ण विराम विशेषित, अविशेषित चाहे जैसा भी हो और चाहे किसी भी परिमाण का हो, यदि वह अवरोध है तो शून्य है। इस नियम के अन्तर्गत इंग्लैण्ड की विधि में पूर्ण अवरोध और अंशतः अवरोध में किए गए अन्तर को समाप्त करके, प्रत्येक अवरोध को ही शून्य माना गया है।[5]

धारा 27 के पाठ में ऐसी कोई बात नहीं है कि यह नियम किसी सीमित अवधि तक अथवा किसी सीमित क्षेत्र में वर्तमान रहने वाले अवरोध पर लागू नहीं होगा। अतः अंशतः अवरोध वाले करार उसी सीमा तक प्रभावी होंगे जिस सीमा तक कि करार के तथा धारा के साथ दिए गए अपवाद में आ सकें। [देखिए **सुपरिन्टेन्डेन्स कम्पनी आफ इण्डिया बनाम कृष्ण मुरगाई**[6] ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1717 (1724) न्यायमूर्ति ए०पी०सेन का विनिश्चय अपवाद के लिए नीचे का उपशीर्ष (च) देखिए]

1. **लोवे बनाम पीयर्स**, 1768 : 18 इंग्लिश रिपोर्ट्स 160.
2. **शाहजादा बनाम** महोमद, 148 आई० सी० 1051.
3. **लताफत बनाम** शहराब, ए० आई० आर० 1932 अवध 108.
4. **बादू बनाम** बदरन्निसा, 29 सी० एल० जे० 230.
5. **खेम बनाम** दयाल, ए० आई० आर० 1942 सिंध 114.
6. ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1717 (1724).

इस नियम में, व्यापार के अवरोधक करार को केवल **उस विस्तार तक** शून्य माना गया है। अतः यदि किसी करार को पृथक-पृथक भागों में विभक्त करना सम्भव हो तो जो भाग व्यापार के अवरोध में है, वही शून्य होगा और शेष करार विधिमान्य होगा। किन्तु यदि किसी करार को इस प्रकार विभक्त करना संभव न हो तो सम्पूर्ण करार ही शून्य हो जाएगा[1]।

निरंजन शंकर बनाम सेन्चुरी स्पिनिंग और मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में न्यायाधिपति जे० एम० शैलत ने इस नियम के क्षेत्र को परिभाषित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि वृत्ति अथवा व्यापार की किसी चालू संविदा में ऐसा कोई अवरोध हो कि उस संविदा के वर्तमान रहने की अवधि में कोई पक्षकार अन्यत्र कहीं वृत्ति या व्यापार नहीं करेगा तो यह अवरोध इस नियम के अन्तर्गत शून्य नहीं होगा। ऐसी कोई नकारात्मक प्रसंविदा जिसके आधार पर कोई नियोक्ता अपने कर्मचारी को निर्बन्धित कर दे कि उसके सेवाकाल की अवधि में, कर्मचारी अनन्यतः उसी की सेवा में रहेगा और अन्यत्र कहीं अपनी सेवायें अर्पित नहीं करेगा, किसी भी प्रकार शून्य नहीं हैं। किन्तु शर्त यह है कि इस प्रकार की नकारात्मक प्रसंविदा, उसी सेवा के प्रवर्तन की अवधि तक के लिए हो और लोकात्मा के विरुद्ध अत्यधिक कठोर और एकपक्षीय न हो[2]। किन्तु यदि ऐसी नकारात्मक प्रसंविदा, सेवा की समाप्ति के पश्चात् भी किसी कर्मचारी को अन्यत्र अपनी सेवा अर्पित करने या किसी व्यवसायी को किसी एक संविदा के अधीन किये गए व्यवसाय की समाप्ति पर उसी प्रकार का व्यवसाय करने के विरुद्ध किसी प्रकार का निर्बन्धन अधिरोपित करे तो वह प्रसंविदा शून्य मानी जाएगी[3]।

(ङ) व्यापार समुच्चय : व्यापार नीतियों के आधार पर दो या दो से अधिक व्यापारियों का परस्पर यह तय कर लेना कि कोई माल किसी निर्धारित दर से नीचे विक्रय नहीं किया जाएगा, व्यापार का अवरोधक करार न होकर **व्यापार समुच्चय** है। व्यापार-समुच्चय के हित में, किसी माल के प्रदाय को या माल की कीमत को विनियमित करने वाले करारों को सार्वजनिक हितों के प्रतिकूल नहीं माना जाता।[4] किन्तु किन्हीं दो व्यापारियों का किसी तीसरे की केवल हानि करने के उद्देश्य से किया गया व्यापार-समुच्चय विधि-विरुद्ध कहा जाएगा।[5]

(च) गुडविल के विक्रय द्वारा स्थापित वृत्ति : वह व्यक्ति, जो किसी कारबार की **गुडविल** का विक्रय करे, क्रेता से यह करार कर सकेगा कि वह विनिर्दिष्ट स्थानीय सीमाओं के अन्दर तब तक तत्सदृश कारबार चलाने से विरत रहेगा जब तक क्रेता या कोई ऐसा व्यक्ति, जिसे उससे गुडविल का हक व्युत्पन्न हुआ हो, उन सीमाओं में तत्सदृश कारबार चलाता रहे, परन्तु यह तब जबकि उस कारबार की प्रकृति की दृष्टि से सीमायें न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत हों। उपरोक्त कथन भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 27 का एक अपवाद है जिसके लागू होने के लिए निम्न आधार हैं—

1. यह केवल किसी कारबार की गुडविल के विक्रय में ही लागू होता है,
2. यह केवल दो व्यापारों की सादृश्यता की दशा में ही लागू होता है,
3. यह केवल विनिर्दिष्ट स्थानीय सीमाओं के अन्दर ही लागू होता है,

---

1. पारस उल्ला बनाम चन्द्रकान्ता, 21 सी० डब्ल्यू० एन० 979.
2. ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 1098, 1104–1105.
3. ब्रह्मपुत्र टी कम्पनी बनाम स्कार्थ, आई० एल० आर० 1885 : 11 कलकत्ता 545.
4. भोलानाथ बनाम लछमी नारायन, आई० एल० आर० 1931, 53 इलाहाबाद 316.
5. सोरेल बनाम स्मिथ, एल० आर० 1925 : ए० सी० 700.

4. यह केवल उसी समय तक लागू रहता है जब तक गुडविल का क्रेता गुडविल के विक्रेता के सदृश कारबार चलाता रहे, और केवल तब जबकि,

5. पक्षकारों में परस्पर तय की हुई शर्तें और सीमायें युक्तियुक्त भी हों, और

6. कौन-सी शर्तें या सीमायें, युक्तियुक्त हैं, यह न्यायालय द्वारा अवधारित किया जाएगा।

गुडविल, व्यापार के क्षेत्र में किसी व्यापारी की प्रतिष्ठा का नाम है। इससे किसी चालू प्रतिष्ठान की व्यापार प्रतिष्ठा का प्रतिनिधित्व होता है तथा यह किसी भी फर्म की आस्तियों का एक भाग है जो किसी व्यापारिक संस्थान द्वारा किए गए व्यय और वर्षों के परिश्रम का लाभ है।[1]

(छ) विधिक कार्यवाहियों के अवरोधक करार की शून्यता :

(1) नियम का कथन : हर करार जिससे उसका कोई पक्षकार किसी संविदा के अधीन या बारे में अपने अधिकारों को मामूली अधिकरणों में प्रायिक विधिक कार्यवाहियों द्वारा प्रवर्तित कराने से आत्यन्तिकत: अवरुद्ध किया जाता हो या जो उस समय को, जिसके भीतर वह अपने अधिकारों को इस प्रकार प्रवृत्त करा सकता है, परिसीमित कर देता हो, उस विस्तार तक शून्य है।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 28 में अन्तर्विष्ट इस नियम का उद्देश्य न्यायालय की अधिकारिता का निर्माण या बहिष्कार करने वाले करारों को शून्य घोषित करना है। इस सम्बन्ध में दो विकल्प हो सकते हैं—

1. जहां किसी विवाद के विचारण की अधिकारिता, सामान्य विधि में किसी एक न्यायालय को प्राप्त हो, वहां पक्षकार ऐसा करार कर लें कि उस विवाद के विचारण के लिए उक्त न्यायालय के अपवर्जन में, किसी अन्य न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त होगी,

2. जहां पक्षकार केवल यह करार करें कि संविदा का पालन अमुक स्थान पर होगा, अर्थात वाद-हेतुक की उत्पत्ति अमुक स्थान पर ही मानी जाएगी जिससे अमुक विवाद के विचारण के लिए अमुक स्थान पर स्थित न्यायालय की ही अधिकारिता होगी।

भारत के मुख्य न्यायाधिपति, जे० सी० शाह ने हाकमसिंह बनाम **गैमन इण्डिया लिमिटेड**[2] वाले **मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि पक्षकारों द्वारा किसी न्यायालय को ऐसा अधिकार क्षेत्र प्रदत्त नहीं किया जा सकता जो कि उस न्यायालय को किसी विधि के अन्तर्गत उपलब्ध नहीं किया गया हो तथापि जहां किसी वाद अथवा विधिक कार्यवाही के परीक्षण का अधिकार क्षेत्र विधि के अन्तर्गत दो अथवा दो से अधिक न्यायालयों को प्राप्त हो तो पक्षकारों द्वारा किया गया ऐसा करार कि उनके मध्य उत्पन्न होने वाले विवाद का पुनरीक्षण उन सक्षम न्यायालयों में से किसी एक ही न्यायालय में किया जाएगा, लोकनीति के विरुद्ध नहीं है।** मध्य प्रदेश की एक बीमा कम्पनी ने पश्चिम बंगाल के एक कारखाने से जो कि ग न्यायालय के प्रादेशिक अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत था, माल का परिदान ग्रहण किया था किन्तु पक्षकारों के मध्य यह करार भी था कि क के विरुद्ध किसी भी प्रकार की विधिक कार्यवाही केवल मध्य प्रदेश के दुर्ग स्थान के न्यायालय में ही संस्थित की जा सकेगी। ऐसी दशा में यह माना गया कि उस कारखाने द्वारा बीमा कम्पनी के विरुद्ध संस्थित विधिक कार्यवाही ग न्यायालय में चलने योग्य नहीं है।[3]

---

1. राजस्थान राज्य बनाम बूंदी इलेक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी, ए० आई० आर० 1970 राजस्थान 36(41).
2. ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 740 (741).
3. बालसुख रिफैक्टरी बनाम हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड, ए० आई० आर० 1977 कलकत्ता 20(24).

ऐसे मामलों में, जहां कि किसी एक न्यायालय की अधिकारिता के अपवर्जन में अन्य न्यायालय की अधिकारिता मान्य की गई हो, यह सिद्धान्त है कि अधिकारिता के अपवर्जन का न कोई सुगम अनुमान किया जा सकता है और न ही उसकी कोई विधिक उपधारणा । ऐसे अपवर्जन की अपरिहार्य विवक्षा अथवा उसके अभिव्यक्त वचन को साबित करना आवश्यक है। अतः, पक्षकारों के संव्यवहार में, व्यवहृत किसी क्रयादेश पर मुद्रित यह शर्त कि यह संव्यवहार किसी अमुक न्यायालय की अधिकारिता के अधीन होगा, वादी की स्पष्ट हस्ताक्षरित सहमति के अभाव में, अन्य सक्षम न्यायालयों की अधिकारिता के अपवर्जन की विवक्षा नहीं मानी जा सकती [**मैसर्स सूरजमल्ल शिव भगवान** बनाम **मैसर्स कलिंग आयरन वर्क्स**[1]]।

इसी प्रकार कोई ऐसा करार कि किसी विनिर्दिष्ट घटना के घटित होने पर, किसी पक्षकार को किसी संविदा के अन्तर्गत उपलभ्य संविदा के प्रवर्तन का अधिकार निर्वापित हो जाएगा, प्रतिषिद्ध नहीं है । जहां किसी करार के अन्तर्गत कोई अधिकार निर्वापित हो गया हो, वहां अधिकार के प्रवर्तन का प्रश्न ही शेष नहीं रहता[2] । अतः कोई भी व्यक्ति यह करार कर सकता है कि किसी विशेष घटना के घटित होने पर उसके सम्पूर्ण हक समाप्त मान लिये जायेंगे । किसी विशेष दशा में किसी अधिकार को निर्वापित मान लेने वाले करार प्रायः बीमा कम्पनियों की पालिसियों में सन्निविष्ट होते हैं । किसी बीमा की पालिसी में जहां यह खण्ड अन्तर्विष्ट है कि बीमा कम्पनी द्वारा किसी दावे को खारिज कर देने के तीन मास की अवधि में यदि वाद नहीं लाया गया तो, पालिसी के अधीन सभी फायदे समपहृत हो जायेंगे, या यह कि किसी भी दशा में कम्पनी कोई हानि अथवा नुकसान होने के बारह मास के बीत जाने पर उस हानि अथवा नुकसान के लिए दायित्वाधीन नहीं होगी जब तक कि उस हेतु दावा किसी लम्बित कार्यवाही अथवा माध्यस्थम का विषय नहीं है, तो वहां ऐसी शर्त या ऐसा खण्ड अविधिमान्य नहीं है ।[3]

(2) **नियम के दो अपवाद** : विधिक कार्यवाहियों के अवरोधक करारों को शून्य घोषित करने वाले नियम के दो निम्न अपवाद हैं —

> **प्रथम अपवाद**—यह नियम उस संविदा को अवैध नहीं कर देगा जिसके द्वारा दो या अधिक व्यक्ति करार करें कि किसी विषय के या विषयों के किसी वर्ग के बारे में, जो विवाद उनके बीच पैदा हो वह माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा और यह कि ऐसे निर्दिष्ट विवाद के बारे में केवल वह रकम वसूलीय होगी जो ऐसे माध्यस्थम् में अधिनिर्णीत हो ।
>
> **द्वितीय अपवाद**—और न यह नियम किसी ऐसी लिखित संविदा को अवैध कर देगा जिससे दो या अधिक व्यक्ति किसी प्रश्न को, जो उनके बीच पहलेही पैदा हो चुके हों, माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने का करार करे, और न ही यह नियम माध्यस्थम विषयक निर्देशों के बारे में किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के किसी उपबन्ध पर प्रभाव डालेगा ।

दोनों अपवादों में कोई सारवान अन्तर नहीं है । प्रथम अपवाद में, उन करारों की व्यावृत्ति है जो पक्षकारों के बीच पैदा होने वाले विवादों को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने के लिए किये गए हों, और माध्यस्थम द्वारा अधिनिर्णीत राशि को ही अन्तिम मानने के विषय में हों । द्वितीय अपवाद में, पक्षकारों के मध्य पहले से पैदा हुये विवादों को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने के करार और माध्यस्थम् के लिए प्रवृत्त विधि के उपबन्धों की व्यावृत्ति की गई है। **माध्यस्थम अधिनियम, 1940 की अधिनियमिति के पश्चात् द्वितीय अपवाद का महत्व नगण्य सा है** । माध्यस्थम अधिनियम, 1940 के उपबन्ध पक्षकारों

1. ए० आई० आर० 1979 उड़ीसा 126.
2. पृथ्वीनाथ **बनाम** भारत संघ, ए० आई० आर० 1962 जम्मू-कश्मीर 15.
3. रूबी जनरल इन्श्योरेन्स कम्पनी **बनाम** भारत बैंक, ए० आई० आर० 1950 ईस्ट पंजाब 352.

के बीच उत्पन्न हुये विवाद को स्वेच्छया माध्यस्थम के लिए निर्देशित करने के करार के सम्बन्ध में है, किन्तु इस अधिनियम के अतिरिक्त ऐसी अन्य अधिनियमितियां भी हैं जैसे सहकारी समितियों से सम्बन्धित अधिनियमितियां, जिनमें किसी विवाद को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करने की कानूनी अनिवार्यता हो। **द्वितीय अपवाद केवल इन दो दशाओं को इंगित करता है।**

प्रथम अपवाद उन मामलों की ओर संकेत करता है जहां कि पक्षकारों ने ऐसा करार कर रखा हो कि किसी विषय या विषयों के किसी वर्ग के बारे में, जो विवाद उनके बीच पैदा हो, वह माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा और यह कि ऐसे निर्दिष्ट विवाद के बारे में केवल वह रकम वसूलीय होगी जो ऐसे माध्यस्थम् में अधिनिर्णीत हो, जिसका तात्पर्य यह है कि पक्षकारों में ऐसा करार पूर्व से विद्यमान हो जिसके अन्तर्गत उत्पन्न हुये विवाद में वसूलीय रकम के लिए अन्य किसी विधिक कार्यवाही को प्रारम्भ करने से पूर्व, रकम के विनिश्चय के लिए माध्यस्थम् द्वारा पंचाट का अभिप्राप्त किया जाना एक पुरोभाव्य शर्त हो। **प्रथम अपवाद का आशय यह है कि जहां पंचाट अभिप्राप्त करने की ऐसी कोई पुरोभाव्य शर्त किसी करार में लगी हो, वहां विधिक कार्यवाहियों के अवरोधक करार की शून्यता का नियम लागू नहीं होगा।**

(3) **स्काट बनाम ऐवरी खण्ड :** करार में पंचाट को किसी विधिक कार्यवाही अथवा वाद के लिए उपलभ्य किसी अधिकार की पुरोभाव्य शर्त बनाने वाला खण्ड, प्रथमतः स्काट बनाम ऐवरी[1] वाले मामले में विचारार्थ प्रस्तुत हुआ और तब से किसी करार में अन्तर्विष्ट ऐसे खण्ड को, "**स्काट बनाम ऐवरी खण्ड**" कहा जाने लगा है। इस बारे में, साधारणतः यह निष्कर्ष रहा है कि यदि करार में अन्तर्विष्ट माध्यस्थम् खण्ड ऐसी व्यापक भाषा में है जिसकी परिधि में करार के अधीन उत्पन्न होने वाला किसी प्रकार का कोई विवाद आता है, तो माध्यस्थम द्वारा पंचाट का अभिप्राप्त किया जाना किसी अन्य विधिक कार्यवाही को शुरू करने की पुरोभाव्य शर्त है। **ऐसे खण्डों के बारे में बारम्बार यही अभिनिर्धारित किया गया है कि वे विधिमान्य हैं।** रसल[2] ने यह कहा है कि ऐसे खण्डों का अत्यधिक प्रभाव केवल उस दशा में नहीं है जहां न्यायालय यह आदेश देता है कि माध्यस्थम् करार किसी विशेष विवाद के सम्बन्ध में प्रभावी नहीं रह गया है, वहां, इसे, इसके अतिरिक्त, यह आदेश देने का विवेकाधिकार प्राप्त है कि स्काट बनाम ऐवरी खण्ड भी प्रभावी नहीं रह गया है।

स्काट बनाम ऐवरी[1] वाले मामले में, प्रतिपादित मत यह था—"विधि का यह नियम है कि पक्षकार अपनी प्राइवेट संविदा द्वारा न्यायालय की अधिकारिता को समाप्त नहीं कर सकते किन्तु यह अभिनिर्धारित किया गया है कि तो भी संविदा के पक्षकार इस बात का करार कर सकते हैं कि उसके आधार पर कोई वाद-हेतुक तब तक उत्पन्न नहीं होगा जब तक कि उनके बीच विवादास्पद किसी विषय का माध्यस्थम् द्वारा अवधारण नहीं हो जाता और उसके पश्चात् केवल मध्यस्थों के पंचाट पर ही वाद-हेतुक उद्भूत होगा।"

न्यायाधिपति मैथ्यू द्वारा विनिश्चित **वैनगार्ड फायर एण्ड जनरल इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड, मद्रास बनाम एन० आर० श्रीनिवास अय्यर**[3] वाले मामले में, **विनी बनाम बिनगोल्ड**[4] वाले मामले की नजीर देते हुए, ऐसा कहा गया है—

"इस शर्त से या तो यह अभिप्रेत हो सकता है कि मध्यस्थों को इस प्रश्न का विनिश्चय करना है कि क्या संविदा के अधीन कोई दायित्व है भी अथवा यह कि उन्हें उस दायित्व की मात्रा को

---

1. 1956/25, एल० जे० एक्स 308 : 5 डी० एल० सी० 811.
2. आन आर्बिट्रेशन, 18वां संस्करण, पृ० 57-58.
3. ए० आई० आर० 1963 केरल 270.
4. 1888/20 क्वीन्स बैंच डिवीजन 171.

विनिश्चत करना है । किसी भी दशा में, मध्यस्थों द्वारा पंचाट दिया जाना कार्यवाही के किसी अधिकार की पुरोभाव्य शर्त है । उस मामले के, जिसमें मध्यस्थों को स्वयं दायित्व के प्रश्न का विनिश्चय करना होता है और उस मामले के बीच कोई अन्तर नहीं है जिसमें उन्हें उस दायित्व की मात्रा के प्रश्न को विनिश्चित करना होता है । दोनों ही दशाओं में, यदि संविदा मध्यस्थों के विनिश्चय को एक पुरोभाव्य शर्त बनाती है तो वाद के संस्थित किये जाने से पूर्व उसको पूरा करना होगा ।"

बड़ौदा स्पिनिंग एण्ड वीविंग कम्पनी लिमिटेड बनाम शिवनारायण मैरिन फायर एण्ड इन्श्योरेंस कम्पनी,[1] तार मोहम्मद बदर्स बनाम क्वीन्सलैण्ड इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड,[2] और रुबी जनरल इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड बनाम भारत बैंक[3] वाले मामलों में भी यही अभिनिर्धारित किया गया है कि जिन मामलों में करार द्वारा विवादों के माध्यस्थम् द्वारा विनिश्चित किए जाने की शर्त लगी हो, वहां संविदा अधिनियम की धारा 28 में वर्णित, विधिक कार्यवाहियों के अवरोधक करारों की शून्यता का सिद्धान्त लागू न होकर, उस धारा का प्रथम अपवाद लागू होगा । परन्तु, उपरोक्त प्रथम अपवाद केवल उन्हीं दशाओं में लागू होता है, जहां कि किसी करार में अन्तर्विष्ट माध्यस्थम् खण्ड प्रभावी होता हो । जहां किसी करार में, माध्यस्थम् खण्ड लागू ही नहीं होता हो वरन् करार में ऐसा कोई खण्ड अन्तर्विष्ट हो जिसमें दावेदार का दावा एक बार कम्पनी द्वारा खारिज कर दिये जाने पर, कम्पनी के दायित्व को सिद्ध करने के लिए, दावेदार को किसी विहित अवधि में ही वाद संस्थित करने का अधिकार दिया गया हो तो ऐसी दशा में, यदि दावेदार अपना दावा खारिज हो जाने के पश्चात् विहित अवधि में विधिक कार्यवाही न प्रारम्भ करे तो, विधिक कार्यवाही का अधिकार ही निर्वापित हो जाता है और फिर वहां माध्यस्थम् खण्ड का भी लाभ नहीं उठाया जा सकता अर्थात् **विधिक कार्यवाही के अधिकार का एक बार निर्वापन हो जाने के पश्चात् न तो विवादास्पद विषय पर कोई विधिक कार्यवाही ही की जा सकती और न फिर उसे माध्यस्थम् के लिए ही निर्देशित किया जा सकता है ।**

वल्कन इन्श्योरेन्स कंपनी बनाम महाराज सिंह[4] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष, एक बीमा पालिसी का ऐसा खण्ड विचारार्थ प्रस्तुत हुआ जिसमें अन्य बातों के साथ एक शर्त यह भी थी कि यदि दावेदार द्वारा कम्पनी में प्रस्तुत दावा नामंजूर कर दिया जाए तो ऐसी नामंजूरी के पश्चात् तीन मास के भीतर कोई कार्यवाही शुरू न करने अथवा वाद न लाने की दशा में, उस पालिसी के अधीन सभी फायदे समपहृत कर लिये जायेंगे ।

इस मामले में दावेदार का कम्पनी में प्रस्तुत किया हुआ दावा नामंजूर कर दिया गया था किन्तु ऐसी नामंजरी के पश्चात् कम्पनी के दायित्व को सिद्ध करने के लिए दावेदार ने विहित तीन मास के भीतर नियमित वाद संस्थित नहीं किया । ऐसी दशा में, न्यायाधिपति एन० एल० उंटवालिया द्वारा दावेदार का अधिकार निर्वापित हुआ माना गया जिसे माध्यस्थम् खण्ड भी लागू नहीं हो सकता ।

जिन संविदाओं में माध्यस्थम् का सामान्य खण्ड लागू हो, वहां भी, जब तक कि पक्षकारों के मध्य यह स्पष्टतः अनुबन्धित न हो कि किसी विवाद को विधि के प्रश्न के निर्णय के लिए भी माध्यस्थम् के लिए

1. आई० एल० आर० 38 मुम्बई 344.
2. ए० आई० आर० 1949 कलकत्ता 390.
3. ए० आई० आर० 1950 ईस्ट पंजाब 352.
4. [1976] 3 उम० नि० प० 559 : ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 287.

निर्दिष्ट किया जाएगा, मात्र विधि के प्रश्न को लेकर, विवाद को निर्णय के लिए, सिविल न्यायालय में लाया जा सकता है। [देखिए **जगधात्री भण्डार व जगधात्री आइल मिल्स बनाम कर्माशयल युनियन एश्योरेन्स**[1]]

अनिश्चितता के कारण शून्य करार

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 29 में यह उपबन्ध है कि वे करार जिनका अर्थ निश्चित नहीं है या निश्चित किया जाना शक्य नहीं है, शून्य हैं। इसे स्पष्ट करने के लिए निम्न दृष्टांत दिए गए हैं—

(क) ख को क "एक सौ टन तेल" बेचने का करार करता है। उसमें यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि किस तरह का तेल आशयित था। यह करार अनिश्चितता के कारण शून्य है।

(ख) ख को क विनिर्दिष्ट वर्णन का एक सौ टन तेल बेचने का करार करता है जो एक वाणिज्यिक वस्तु के रूप में ज्ञात है। यहां कोई अनिश्चितता नहीं है जिससे करार शून्य हो जाए।

(ग) क जो केवल नारियल के तेल का व्यवसायी है, ख को "एक सौ टन तेल" बेचने का करार करता है। क के व्यापार की प्रकृति इन शब्दों का अर्थ उपदर्शित करती है, अतः क ने एक सौ टन नारियल के तेल के विक्रय की संविदा की है।

(घ) क "रामनगर में मेरे धान्य भण्डार में का सारा धान्य" ख को बेचने का करार करता है। यहां कोई अनिश्चितता नहीं है जिससे करार शून्य हो जाए।

(ङ) ख को "ग द्वारा नियत की जाने वाली कीमत पर एक हजार मन चावल" बेचने का करार क करता है। कीमत निश्चित की जा सकती है, इसलिये यहां कोई अनिश्चितता नहीं है जिससे करार शून्य हो जाए।

(च) ख को क "मेरा सफेद घोडा पांच सौ रुपए या एक हजार रुपए के लिए" बेचने का करार करता है। यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि इन दो कीमतों में से कौन-सी दी जानी है। करार शून्य है।

दृष्टांत (ङ) से यह अभिप्रेत है कि करार की शर्तें चाहे तत्काल निश्चित न हो सकी हों, किन्तु यदि इतना निश्चित हो चुका है कि शर्तें भविष्य में किसी विनिर्दिष्ट रीति से निश्चित की जानी हैं तो भी करार में अनिश्चितता नहीं है। धारा 29 में, अर्थ की निश्चितता में, अर्थ के निश्चित किए जाने की शक्यता भी सम्मिलित की गई है परन्तु अर्थ के निश्चित किए जाने की शक्यता में अनिश्चय की भावना नहीं होनी चाहिए। अधिनियम की धारा 2(घ) के अनुसार किसी कार्य को भविष्य में करने या उसे करने से प्रविरत रहने का वचन भी उचित प्रतिफल है। किन्तु धारा 29 के अर्थों में, ऐसा भविष्यलक्षी वचन भी निश्चित होना चाहिए। उदाहरणार्थ न्यायमूर्ति मंजुला बोस ने किसी बीमा कम्पनी का यह प्रस्ताव कि वह अपने प्रबन्ध संचालक के पारिश्रमिक के बकाया की राशि का संदाय कम्पनी के समर्थ होने पर कर देगी, अनिश्चितता के कारण शून्य माना है।[2]

1. ए० आई० आर० 1979 कलकत्ता 56.
2. पुष्पबाला बनाम एल० आई० सी० आफ इण्डिया, ए० आई० आर० 1978 कलकत्ता 221 (223).

किसी स्थावर सम्पत्ति के विक्रय के करार में यदि— 1. सम्पत्ति की कीमत निश्चित हो जाए, 2. सम्पत्ति का विवरण निश्चित हो, 3. क्रेता को सम्पत्ति का कब्जा भी परिदत्त हो जाए, 4. कीमत का किसी विनिर्दिष्ट तिथि से पूर्व संदाय कर दिया जाना भी तय हो जाए, 5. उस तिथि से पूर्व प्रत्येक संदाय को, तय की हुई कीमत के लिए, विनियोग किया जाना तय हो जाए, और 6. नियत तिथि से पूर्व शेष कीमत का संदाय हो जाने पर, विक्रेता द्वारा विक्रय के विलेख का निष्पादित कर दिये जाने का करार हो तो ऐसे करार को निश्चित अर्थ वाला करार माना जाएगा,[1] चाहे विक्रय विलेख का निष्पादन करार होने की तिथि से आगामी तिथि पर ही किया जाना अभिप्रेत हो। जहां प्रथम करार में कोई एक शर्त हो, किन्तु तत्पश्चात् पक्षकारों की सहमति से उस शर्त को किसी अन्य शर्त द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया हो तथा दोनों पक्षकारों को ही नवीन शर्त का ज्ञान हो, वहां करार को अनिश्चितता के कारण शून्य नहीं माना जा सकता ।[2]

जहां तक सम्भव हो सके, न्यायालय किसी करार का ऐसा अर्थ ग्रहण करेगा जिससे उसकी प्रवर्तनीयता में सहायता प्राप्त हो सके, अतः जहां तक सम्भव हो उसे निश्चित अर्थ प्रदान करने, और उसकी प्रवर्तनीयता के अनुरूप ही अर्थान्वियन करने का प्रयास किया जाएगा। व्यापारिक संविदाओं के अर्थान्वियन में सदैव ही उदारता का दृष्टिकोण रखा जाना चाहिए और यदि किसी करार का युक्तियुक्त अर्थान्वियन किया जा सकता हो तो, ऐसे अर्थान्वियन का हर सम्भव प्रयास किया जाएगा और ऐसी परिस्थितियों से जिनमें कि कोई करार निरर्थक या अप्रभावी हो जाए, करार को बचाने का प्रयास किया जाएगा, किन्तु कोई भी न्यायालय पक्षकारों में किए गए मूल करार को किसी नवीन करार के द्वारा प्रतिस्थापित करने का दायित्व अपने ऊपर नहीं लेगा । ऐसे अर्थान्वियन के सिद्धान्तों को हाउस आफ लार्डस द्वारा विनिश्चित **एडमस्टोन शिपिंग कम्पनी** बनाम **एंग्लोसेक्सन पैट्रोलियम कम्पनी** के मामले में[3] प्रतिपादित किया गया है, जिन्हें भारत में उच्चतम न्यायालय द्वारा **धनराजमल** बनाम **शामजी** वाले मामले में अनुमोदित किया गया है ।[4]

पंद्यम के तौर के करार की शून्यता

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 30 में पंद्यम के करार के लिए ऐसा उपबन्ध किया गया है—

"पंद्यम के तौर के करार शून्य हैं और किसी ऐसी चीज की वसूली के लिए कोई वाद न लाया जाएगा जो पंद्यम पर जीती गई अभिकथित हो, या जो किसी व्यक्ति को किसी ऐसे खेल या अन्य अनिश्चित घटना के, जिसके बारे में कोई पंद्यम किया गया हो, परिणाम के अनुसार व्ययनित की जाने को न्यस्त की गई हो ।"

यह धारा ऐसे चन्दे या अभिदान को या चन्दा देने या अभिदाय करने के ऐसे करार को विधि-विरुद्ध बना देने वाली न समझी जाएगी जो किसी घुड़दौड़ के विजेता या विजेताओं को प्रदेय किसी ऐसी प्लेट, पारितोषिक या धनराशि के लिए या मद्धे दिया या किया जाए, जिसका मूल्य या रकम पांच सौ रुपये या उससे अधिक हो ।

इस धारा की कोई भी बात घुड़दौड़ से सम्बन्धित किसी ऐसे संव्यवहार को, जिसे भारतीय दण्ड संहिता की धारा 294क लागू है, वैध बना देने वाली नहीं समझी जाएगी ।

---

1. श्रीमती सोहवत देई **बनाम** देवीफल व अन्य, ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 2192.
2. धनराज मल **बनाम** शामजी, ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 1285,
3. 1959 ए० सी० 133.
4. ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 1285.

पंद्यम का स्वरूप

संविदा अधिनियम में "पंद्यम" की परिभाषा नहीं की गई है । पंद्यम के तौर के सभी करारों को शून्य घोषित किया गया है । सर विलियम एन्सन[1] ने पंद्यम की परिभाषा करते हुए कहा है कि यह "किसी अनिश्चित घटना के पर्यवसान अथवा उसके अभिनिश्चित किये जाने पर, धन या धन-तुल्य मूल्य देने का वचन होता है ।" पंद्यम के गठन के लिए, "पक्षकार अनिश्चित घटना के पर्यवसान को अनुध्यात करते हैं," और इसी, अनिश्चित घटना, पर ही उनकी जोखिम आश्रित होती है और यही उनकी संविदा की एकमात्र शर्त होती है । न्यायमूर्ति वर्डवुड[2] ने ऐसा कहा है कि यदि अनुध्यात अनिश्चित घटना "किसी एक भी पक्षकार के हाथ में हो" तो वहां पंद्यम के आवश्यक तत्व का अभाव है । न्यायमूर्ति जेन्किन्स[3] ने कहा है कि "जिस अनिश्चित, या अनभिनिश्चेय घटना के संदर्भ में कोई जोखिम या सम्भावना (चान्स) ली जाती है, उसीके अनुसार किसी की हार या जीत ही पंद्यम का मर्म है ।"

पंद्यम और सट्टे में भेद

पंद्यम को सट्टे से प्रभेदित किया गया है । पक्के आढ़ती की एक फर्म को एक प्रतिवादी द्वारा जो कि अन्तरों के सम्बन्ध में सट्टा करना चाहता था, इस बात के लिए प्राधिकृत किया गया था कि वह माल को बेच दे और फिर पुनः लाभ के लिए बेच दे और उसमें यह पाया गया था कि चूंकि वादी के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि उसे कुछ हानि हुई अथवा लाभ हुआ था, इसलिए इस प्रकार से कीमतों में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप, मालिक तथा अभिकर्ता में पंद्यम की प्रकृति का समझौता हुआ नहीं कहा जा सकता, चाहे मालिक का जो भी आशय रहा हो । इन तथ्यों से युक्त, **भगवानदास परसराम बनाम बरजोरी रतनजी बोमन जी**[4] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पंद्यम की किसी संविदा में इस अर्थ में एक पारस्परिकता होनी चाहिए कि जब एक पक्षकार को हानि होगी तो दूसरे पक्षकार को कुछ अनिश्चित घटनाओं के घटित होने पर जो कि इस पंद्यम की विषय वस्तु है, नुकसान होगा । वहां यह बात कही गई थी—

> "सट्टा आवश्यक रूप से पंद्यम की संविदा को अन्तर्वलित नहीं करता और इस प्रकार की संविदा का निर्माण करने के लिए पंद्यम का आशय आवश्यक है ।"

घेरूलाल पारेख बनाम महादेवदास मसूय्या[5] वाले मामले में, एक भागीदारी की संविदा का उद्देश्य अग्रिम संविदा (फारवर्ड कान्ट्रेक्ट) करना था जो गेहूं खरीदने और बेचने के सम्बन्ध में थी, जिससे कि भविष्य में गेहूं की कीमत की बढ़ोतरी और कमी के सम्बन्ध में सट्टा किया जा सके । उसमें भागीदार के उद्देश्य को, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 23 के अर्थ के अन्तर्गत अवैध अभिनिर्धारित नहीं किया गया था, हालांकि वह कारबार, जिसके सम्बन्ध में भागीदारी निर्मित की गई थी, पंद्यम को अन्तर्वलित करने वाला अभिनिर्धारित किया गया था । उपरोक्त मामले में किया गया विवेचन, निम्नलिखित परिणामों को दर्शाता है—

1. इंग्लैण्ड की सामान्य विधि के अधीन पंद्यम संविदा विधिमान्य है । अतः दोनों, अर्थात् प्रारम्भिक संविदा तथा उसके सम्बन्ध में जो सांपार्श्विक करार (कोलेटरल एग्रीमैण्ट) किया जाता है, प्रवर्तनीय है,

---

1. ला ऑफ कान्ट्रेक्ट, 11वां संस्करण, पृ० 207.
2. डाया भाई त्रिभुवनदास बनाम लक्ष्मीचन्द, आई० एल० आर० (1885) 9 मुम्बई 358, 363.
3. सैसून बनाम टोकरसी, आई० एल० आर० 1904 : 28 मुंबई 616, 621.
4. 45 इण्डियन अपील्स, 29, 33.
5. 1959 2 सप्लीमेंट एस० सी० आर० 406, 431.

2. गेमिंग ऐक्ट 1845 के पश्चात् इंग्लैण्ड में पंद्यम को शून्य बना दिया गया है, किन्तु इस अर्थ में कि वह विधि निषिद्ध है, अवैध नहीं किया गया और उसके बाद से पंद्यम का प्रारम्भिक करार शून्य होता है, किन्तु सांपार्श्विक करार प्रवर्तनीय होता है,

3. इस प्रश्न पर विवाद था कि क्या गेमिंग ऐक्ट की धारा 18 का दूसरा भाग ऐसे धन अथवा मूल्यवान वस्तुओं की व्याप्ति के मामले को सम्मिलित करता है जो उन्हीं पक्षकारों के बीच में प्रस्थापित संविदा के अधीन किसी पंद्यम पर उसको जीत लेते हैं। हाउस आफ लार्ड्स ने हिल्ज के मामले में[1] इस विवाद को अन्तिम रूप से यह अभिनिर्धारित करते हुए तय किया था कि इस प्रकार का दावा कायम किए जाने योग्य है, चाहे वह पंद्यम की मौलिक संविदा के अधीन किया गया हो अथवा पक्षकारों के बीच में प्रस्थापित समझौते के अन्तर्गत किया गया हो,

4. गेमिंग ऐक्ट, 1892 के अधीन, उसकी विस्तृत एवं व्यापक शब्दावली की दृष्टि से सांपार्श्विक संविदायें भी, जो कि भागतः करार को भी सम्मिलित करती हैं, प्रवर्तनीय नहीं हैं,

5. भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 30 इंग्लैंड के गेमिंग अधिनियम की धारा 18 के उपबन्धों पर आधारित है तथा हालांकि पंद्यम एक शून्य और अप्रवर्तनीय करार है, किन्तु यह विधि निषिद्ध नहीं है, इसलिए सांपार्श्विक करार का उद्देश्य संविदा अधिनियम की धारा 23 के अधीन अवैध नहीं है, तथा

6. भागीदारी, जो कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 23 के अर्थ में एक करार है अवैध नहीं है, हालांकि उसका उद्देश्य पंद्यम संव्यवहारों को क्रियान्वित करना है।

पंद्यम के आवश्यक तत्व

पंद्यम के स्वरूप का बोध वस्तुतः जटिल है। **निम्नलिखित आवश्यक तत्वों के आधार पर इसका** बोध करने में सुगमता हो सकती है—

1. पंद्यम में, एक निश्चित धन अथवा उतने ही मूल्य की कोई वस्तु चुकाने का वचन होता है,

2. धन अथवा उसके मूल्य की कोई वस्तु चुकाने का वचन दोनों पक्षों की ओर से होता है, एक पक्ष का किसी अनिश्चित घटना के घटने पर और दूसरे पक्ष का वह अनिश्चित घटना न घटने पर,

3. इसमें दोनों पक्षों के वचन प्रतिकूल विचारों पर आधारित होते हैं, एक का घटना न घटने के विचार पर और दूसरे का घटना के घटने के विचार पर,

4. चूंकि वचन दोनों से होता है, अतः घटना विनिर्दिष्ट किन्तु अनिश्चित तथा पक्षकारों के नियन्त्रण से परे होनी चाहिए,

5. दोनों पक्ष केवल सम्भावना (चान्स) पर निर्भर रहते हैं और दोनों ही जोखिम उठाते हैं,

6. घटना के घटित होते ही, दांव पर रक्खी धनराशि या वस्तु की हार-जीत होती है, एक पक्ष की हार, दूसरे पक्ष की जीत है या एक पक्ष की हानि और दूसरे पक्ष को लाभ अवश्यम्भावी है,

7. अनिश्चित घटना के घटित हो जाने तक अनिर्णय की स्थिति रहती है।

---

1. 1921 : 2 के० बी० 351.

8. पक्षकारों को स्वयं को किसी कार्य को करने या करने से प्रविरत रहने की आवश्यकता नहीं होती, केवल घटना के इस ओर या उस ओर हो जाने पर ही उसके परिणाम से बाध्य होना पड़ता है।

संविदा अधिनियम की धारा 30 की शब्दावली में **पंद्यम** को नहीं, किन्तु **पंद्यम के तौर के करार** को शून्य माना गया है। अतः शून्यता पक्षकारों के ज्ञान अथवा उद्देश्य पर निर्भर नहीं होती वरन् संव्यवहार की प्रकृति पर निर्भर करती है। इससे दो निष्कर्ष निकलते हैं—

1. पक्षकारों के उद्देश्य का कोई महत्व नहीं है,

2. संव्यवहार की प्रकृति से ही शून्यता अथवा प्रवर्तनीयता का बोध हो सकने के कारण, मूल करार और सांपार्श्विक करार में स्वतः भेद उत्पन्न हो जाता है और करार में जितना **पंद्यम के तौर** का है, उतना ही शून्य होकर उसका सांपार्श्विक करार प्रवर्तनीय हो सकता है। इस दृष्टि से सांपार्श्विक करार के स्वरूप को भी समझ लेना आवश्यक है।

पंद्यम से युक्त सांपार्श्विक करार

फर्म प्रतापचन्द नोपाजी बनाम **फर्म कोट्रिक वेंकट सेट्टी एण्ड सन्स**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में न्यायाधिपति एम० एच० बेग ने पंद्यम के तौर की मूल संविदा में उसके किसी सांपार्श्विक करार को शून्य न मानते हुए, सांपार्श्विक करार के विषय में, यह अभिनिर्धारित किया है—

"यदि कोई करार किसी दूसरे करार के लिए केवल सांपार्श्विक है अथवा किसी ऐसी सहायता को प्रदान करता है जो कि दूसरे करार के उद्देश्य को पूरा करने में सुविधा दे, जोकि हालांकि शून्य है, किन्तु संविदा अधिनियम की धारा 23 के अर्थ में अपने आप निषेध नहीं है तो उस स्थिति में उसे सांपार्श्विक समझौते के रूप में प्रवर्तित किया जा सकता है। यदि दूसरी ओर यह किसी ऐसे कार्य-व्यापार का भाग है जो विधि द्वारा निषिद्ध उद्देश्य को असफल करना चाहता है तो न्यायालय ऐसे दावे को जो करार पर आधारित है पुष्ट नहीं करेगा क्योंकि यह अवैधता से युक्त होगा। यह सुस्थापित है कि किसी भी करार के उद्देश्य के बारे में केवल इस बात पर कि वह करार एक शून्य संविदा में परिणत होता है, यह नही कहा जा सकता कि वह निषिद्ध है अथवा अवैध है। एक शून्य करार जब अन्य तथ्यों से सम्बद्ध होता है तो किसी ऐसे संव्यवहार का भाग हो सकता है जो कि विधिक अधिकारों का सृजन करता है, किन्तु यह उस स्थिति में नहीं हो सकता, यदि उसका उद्देश्य ही निषिद्ध हो अथवा वह स्वतः दोषपूर्ण हो।"

पंद्यम और सांपार्श्विक करार का भेद एक उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगा। किसी द्यूतगृह में जाकर द्यूत पर दांव में लगाये हुए धन की वापसी का या दांव में जीती हुई राशि की वसूली का वाद संस्थित नहीं किया जा सकता, किन्तु यदि किसी व्यक्ति को द्यूत में दांव पर लगाने के लिए ऋण दिया जाए,[2] या द्यूत में हारे हुए दांव को चुकाने के लिए ऋण लिया जाए,[3] तो ऐसा ऋण केवल सांपार्श्विक करार कहा जाएगा और ऐसे ऋण की वसली का वाद लाया जा सकता है। मद्रास उच्चन्यायालय ने यद्यपि एक मामले में[4] यह अभिनिर्धारित किया है कि हारने वाला, दांव पर रक्खा हुआ धन

1. [1975] 2 उम० नि० प० 639, 650 : ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1223.
2. प्रागलाल बनाम रतनलाल, 131 आई० सी० 546.
3. रामलिंग बनाम मुथू, 29 आई० सी० 573.
4. रतनकली बनाम वाचलपू, ए० आई० आर० 1928 मद्रास 439.

जीतने वाले को संदाय किये जाने से पूर्व, वापस ले सकता है, परन्तु स्वयं दांव पर लगाये गए धन को सांपाश्विक माने जाने में सन्देह है। मद्रास उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के आधार में यह कहा कि संविदा अधिनियम की धारा 30 में केवल पंद्यम पर जीती गई अभिकथित किसी चीज की वसूली के लिए वाद नहीं लाया जा सकता, किन्तु हारने वाला पक्ष, दांव पर लगाया गया धन, जीतने वाले को संदाय किये जाने से पूर्व वापस ले सकेगा, किन्तु उपरोक्त धारा 30 के एक खण्ड में ही यह भी कहा गया है कि किसी व्यक्ति को किसी ऐसे खेल या अन्य अनिश्चित घटना के, जिसके बारे में कोई पंद्यम किया गया है, परिणाम के अनसार व्ययनित की जाने को जो राशि न्यस्त की गई हो, उसकी वसूली के लिए भी कोई वाद नहीं लाया जाएगा। दांव पर रखा हुआ धन अनिश्चित घटना के परिणाम के अनुसार व्ययनित करने के लिए न्यस्त राशि है, जिसकी वापसी भी इस धारा के अन्तर्गत प्रवारित की गई है।

यदि मूल संविदा स्वयं विधि निषिद्ध है तो उसके सांपाश्विक करार को भी प्रवर्तनीय नहीं माना जा सकता। फर्म प्रतापचन्द नोपाजी बनाम फर्म कोट्रिक वेंकट सेट्टी एण्ड सन्स[1] में के उपरोक्त अवतरण से, यही निष्कर्ष फलित होता है।

कीमतों में अन्तर का सट्टा

पंद्यम के संव्यवहारों के अनेक रूप होते हैं। इसका एक रूप जो प्रायः न्यायालयों के समक्ष विवादास्पद होता है, वह इस प्रकार का होता है जिसमें किसी माल का वास्तविक परिदान न होकर, माल की कीमतों के अन्तर का संदाय होता है। इसे कीमतों के अन्तर का सट्टा कहा जाता है। **फर्म प्रतापचन्द बनाम फर्म कोट्रिक वेंकट सेट्टी**[2] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचाराधीन संविदायें वास्तविक परिदान के लिए नहीं थीं और न वादी ने इस प्रकार की कोई भी विशिष्ट संविदा किसी वास्तविक परिदान के लिए दर्शित ही की थी तथा जो संविदायें प्रदर्शित की गई थीं वे **बदला** संव्यवहार के लिए थीं, जो वस्तुतः वास्तविक परिदान के लिए संविदायें नहीं समझी जा सकती थीं। ऐसी संविदाओं के वास्तविक परिदान के लिए न होने का प्रमाण यही था कि इन संविदाओं के अन्तगत माल का परिवहन ऐसे स्थान को किया जाना आशयित था जहां कि उस माल को बाहर से मंगवाने की बजाय उसका वहां से निर्यात किया जाना था। इस प्रकार वे संविदायें "उल्टे बांस बरेली को" ले जाने वाली लोकोक्ति के समान थीं जिनसे माल के परिदान की मांग का उद्देश्य अवधारित नहीं हो पा रहा था। अतः ये संविदायें, कीमतों में आये हुए अन्तर के सट्टे के समान थीं जिनसे वास्तविक रूप से आशयित परिदान की शर्त की पूर्ति नहीं होती थी और वे न केवल शून्य थीं वरन् इस अर्थ में भी अवैध थीं कि उनके उद्देश्य मुम्बई अग्रिम संविदा नियन्त्रण अधिनियम, 1947 तथा केन्द्रीय आवश्यक प्रदाय (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम, 1946 के उपबन्धों के अधीन प्रतिषिद्ध थे।

तजी मंदी के संव्यवहार

तेजी-मन्दी के संव्यवहार यद्यपि पंद्यम की संविदा को अन्तर्वलित नहीं करते, किन्तु यदि ऐसे संव्यवहारों में पक्षकारों का उद्देश्य माल के वास्तविक परिदान का न होकर, केवल कीमतों में आये हुए अन्तर के संदाय का रहा हो, तो इस प्रकृति के संव्यवहार भी पंद्यम के तौर पर होने के कारण शून्य माने जाएंगे। यदि यह परिसिद्ध हो जाए कि पक्षकारों का उद्देश्य केवल कीमतों में आये हुए अन्तर को

1. [1975] 2 उम० नि० प० 639, 650-ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1223.
2. वही, 639, 665 : ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1223.

तय करना है तो ऐसे क्रय-विक्रय की संविदाओं में किसी पक्षकार द्वारा माल के प्रदाय की मांग के अधिकार के उल्लेख मात्र से ही ऐसे संव्यवहार के स्वरूप में अन्तर नहीं आता क्योंकि ऐसे निबन्धन केवल पंद्यम के स्वरूप पर पर्दा डालने के उद्देश्य से भी बना लिए जाते हैं जिससे कि पक्षकार शून्य करारों के विषय में वाद लाने में समर्थ हो सकें।[1] अतः न्यायालयों को निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए, प्रश्नगत संविदा की शर्तों को न देखकर, पक्षकारों के वास्तविक उद्देश्य पर ध्यान देना चाहिए।

पक्की और कच्ची आढ़त

पक्की आढ़त कहे जाने वाले वे संव्यवहार भी जहां कि पक्षकारों का उद्देश्य, माल के परिदान के लिये कभी नहीं रहा हो, पंद्यम के तौर के होने के कारण शून्य माने जाएंगे। पक्की आढ़त कहे जाने वाले संव्यवहारों में भले ही माल का वास्तविक परिदान, पक्षकारों के मध्य नहीं हुआ हो, किन्तु इन्हें पंद्यम के तौर का तभी माना जा सकता है जबकि इनकी प्रकृति से यह दर्शित हो कि पक्षकारों का अधिकार माल के वास्तविक परिदान की मांग करना कभी आशयित ही नहीं है वरन् केवल कीमतों के अन्तर के ही भुगतान का दायित्व दर्शित हो रहा है।[2]

पक्की आढ़त और कच्ची आढ़त में अन्तर यह है कि पक्की आढ़त् में दो आढ़तिये परस्पर मालिक (प्रिन्सिपल) के तौर पर संव्यवहार करते हैं जबकि कच्ची आढ़त में, कोई आढ़तिया किसी दूसरे पक्ष का अभिकर्ता होकर, तीसरे पक्ष से संव्यवहार करता है। इस प्रकार, कच्ची आढ़त के संव्यवहार अभिकरण की प्रकृति के होने के कारण पंद्यम के तौर पर करार नहीं हो सकते, जब तक कि कच्चे आढ़तियों के माध्यम से मालिक और तृतीय पक्ष का संयुक्त उद्देश्य परस्पर केवल कीमतों में आये हुए अन्तर का सट्टा करना ही न हो।[3]

अग्रिम संविदा

अग्रिम संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1952 (1952 का 74 वां अधिनियम) की धारा 2 के अनुसार **अग्रिम संविदा** का अर्थ उस संविदा से है जो किसी भी वस्तु का आगे की तारीख में परिदान के लिए होती है और जो तुरन्त परिदान संविदा नहीं होती और इसी धारा के अनुसार **तुरन्त परिदान संविदा** से ऐसी संविदा अभिप्रेत है जो परिदान तथा कीमत की देनगी के लिए उपबन्ध करती है, चाहे वह तात्कालिक हो अथवा इतने दिनों के भीतर की जाए जो कि संविदा किए जाने के ग्यारह दिन से अधिक की नहीं होगी। ऐसी संविदा विनिर्दिष्ट माल को भविष्य की तारीख में दिये जाने की संविदा है और **स्टॉक एक्सचेंज** की शब्दावली में इसे **जारी रखना और आगे बढ़ाना** के नाम से भी जाना जाता है। इन अग्रिम संविदाओं पर भी बदला या सट्टा किया जाना, **आगे बढ़ाना** की रीति के संव्यवहारों का अर्थ, हाल्सबरीज लाज आफ इंग्लैण्ड[4] में इस प्रकार दिया गया है—

> "यदि प्रतिभूतियों का कोई खरीददार किसी संव्यवहारकाल में अपनी खरीददारी को पूरा नहीं करना चाहता, तो आगे आने वाले व्यवस्थापन-काल के दौरान वह चालू खाते के लिए उन प्रतिभूतियों को पुनः बेचने की व्यवस्था कर सकता है जिनको कि वह उस लेखा के अधीन खरीदने के लिए तत्पर हो गया था और जो नए लेखा के लिए वह खरीद सकता है। इसके

1. यूनियन एण्ड ग्रेन एक्सचेंज लिमिटेड बनाम पंजाब राज्य, ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 268.
2. मुरलीधर बनाम किशोरी लाल, ए० आई० आर० 1960 राजस्थान 296.
3. देखिए, सोभाग्यमल बनाम मुकुन्दचन्द, आई० एल० आर० (1927) 51 मुंबई 1. प्रिवी काउंसिल.
4. तृतीय संस्करण जिल्द 36 पृ० 547 पेरा 842.

विपरीत, प्रतिभूतियों का बेचने वाला जो कि बाद के संव्यवहार में वस्तु को नहीं देना चाहता, वह चालू लेखा के लिए प्रतिभूतियों को पुनः खरीदने की व्यवस्था कर सकता है जिसे कि वह एक बार बेचने के लिए स्वीकृति दे चुका है और जिसे उसने नए लेखे के लिए बेचने की स्वीकृति भी दे दी है। इस प्रकार की व्यवस्था को जारी रखने या आगे बढ़ाने की संज्ञा दी गई है।

"जारी रखना अथवा आगे बढ़ाना, दोनों ही अपने स्वरूप तथा विधि में, यथास्थिति एक विक्रय अथवा पुनः खरीददारी है अथवा एक खरीददारी अथवा पुनः विक्रय है। यह एक नई संविदा है और यह केवल पुरानी संविदा को पूरा करने के लिए और अधिक समय की मांग नहीं है।"

चूंकि पुनः खरीददारी और विक्रय की ऐसी संविदा, मूल रूप से बेचने वाले को बेची हुई वस्तु का पुनः स्वामी बना देती है, अतः यह उधार नहीं है, वरन इसमें पक्षकारों के बीच कीमत अथवा उसी कीमत के समान प्रतिभूतियों को देने की बाध्यता होती है और इस प्रकार बेची गई प्रतिभूतियों पर होने वाले लाभ को पक्षकार रख सकते हैं।[1]

अग्रिम संविदा पंद्यम के तौर की संविदा नहीं कही जा सकती, यदि इसमें परिदान और संदाय की शर्तें समवर्ती हों। परन्तु अग्रिम संविदा पंद्यम के तौर की तब हो जाती है जबकि पक्षकार अपने संयुक्त भाव से, बाजार के चढ़ते और उतरते भावों के अन्तर का सट्टा करने का उद्देश्य रखते हों और जहां किसी भी पक्षकार ने माल के वास्तविक परिदान को कभी अनुध्यात न किया हो और जो ऐसा संव्यवहार हो जिसमें केवल कीमतों पर लगाया हुआ दांव या कीमतों के अन्तर का केवल जुआ हो।[1] किसी अग्रिम संविदा के पंद्यम के स्वरूप का होना इस बात पर निर्भर करता है कि करार का सार क्या था और उसका बाह्य स्वरूप क्या था और न्यायालयों को संविदा के संपूर्ण स्वरूप का परीक्षण करके पक्षकारों के वास्तविक उद्देश्य का अभिनिश्चय इस आधार पर करना होगा कि क्या पक्षकारों का माल में बिना कोई हित हुए उनके मध्य केवल कीमत के अन्तर का जुआ हुआ है।[2]

चिटफण्ड, लाटरी और बीमा

मद्रास प्रैसीडेंसी में चिटफण्ड अधिक लोकप्रिय है। ऐसे संव्यवहारों को पंद्यम माना जाए या न माना जाए; इस विषय में गम्भीर मतभेद रहा है तथा **नारायण** बनाम **बेल्लाचमी**[3] के मामले में इन संव्यवहारों को, मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा पंद्यम के तौर का नहीं माना गया किन्तु तत्पश्चात् **शेष अय्यर** बनाम **कृष्ण अय्यर**[4] वाले मामले में, पांच न्यायमूर्तियों से गठित एक पूर्ण न्यायपीठ ने, ऐसे संव्यवहारों को शून्य घोषित कर दिया।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 294क के अन्तर्गत, राज्य की अथवा राज्य द्वारा प्राधिकृत लाटरी के सिवाय, अन्य लाटरियां दण्डनीय अपराध हैं। अतः लाटरी के संव्यवहार, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 23 के अन्तर्गत, स्पष्टतः विधि विरुद्ध होने के कारण शून्य माने जायेंगे। लॉटरी एक संयोग और सम्भावना पर आधारित खेल है। किसी टिकट को लॉट द्वारा

---

[1] वीर जी डाह्या बनाम रामकृष्ण, ए० आई० आर० 1956 मद्रास 110.

[2] हरफूल चन्द बनाम किशोरी लाल, आई० एल० आर० (1961) 11 राजस्थान 390.

[3] आई० एल० आर० (1927) 50 मद्रास 696.

[4] ए० आई० आर० 1936 मद्रास 225.

निकाल कर, किसी को विजेता घोषित करना, जहां कि विजेता की प्रतिभा या कौशल का उपयोग न हुआ हो, पंद्यम के तौर का संव्यवहार है।[1] ऐसी वर्ग पहेली जहां सम्पादक, पूर्व से शुद्ध हल स्वयं के पास रखकर, किसी एक या एक से अधिक शब्दों के समूह में से चयन किये हुए शब्दों द्वारा वर्ग की पूर्ति करने पर, शुद्ध हल से यथार्थ अथवा निकटतम अनुरूपता पर पारितोषिक प्रदान करने की सहमति दे, लाटरी मानी गई है।[2] किन्तु चित्र पहेली को प्रतिभा का खेल माना गया है।[3]

भारतीय विधि में, पंद्यम के करारों को केवल शून्य बताया गया है, विधि-विरुद्ध नहीं। जहां दो व्यक्ति लाटरी के टिकटों के विक्रय से धन एकत्रित कर लें किन्तु परस्पर एक दूसरे के भाग का संदाय करने से मुकर जाएं तो उनमें जो भागीदारी का करार हुआ है, वह प्रवर्तनीय है और जिस व्यक्ति को अपने भाग का धन नहीं प्राप्त हुआ है, वह उसकी वसूली के लिए वाद ला सकता है।[4] जहां क ने ख के माध्यम से लाटरी का टिकट लिया और ख ने उस टिकट पर विजित धन प्राप्त किया और क को संदाय करना चाहा, किन्तु ग ने आकर यह दावा किया कि क भी स्वयं टिकट का स्वामी न होकर, ग की ओर से ही टिकट लेने के लिए निर्देशित था, वहां ग द्वारा उस धन के क को संदाय किये जाने के विरुद्ध व्यादेश का वाद लाया जाना सक्षम माना गया।[5]

बीमा के करार, भारतीय संविदा अधिनियम के अध्याय 8 के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति के करार माने गए हैं, और यद्यपि ऐसे करार भावी अनिश्चित घटनाओं पर आधारित होते हैं तथापि इनसे पक्षकारों के वास्तविक हित का सृजन होता है, जबकि पंद्यम में हित वास्तविक न होकर केवल दांव पर निर्भर करता है। इस प्रकार **बीमा के करार पंद्यम के तौर के करार नहीं हैं।** किन्तु यदि किसी बीमा के करार से, करार के किसी पक्षकार का स्वयं का हित सृष्ट न होकर, किसी तीसरे व्यक्ति के हित की सृष्टि हुई हो, वहां इस प्रकार का करार अवैध है।[6]

□ □ □

---
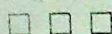
1. कालूराम बनाम राम, 3 आई० सी० 55.
2. कोल्स बनाम ओधमस प्रेस, 1 क० बी० 416.
3. विटी बनाम वर्ल्ड सर्विसेज, एल० आर० 1936 चान्सरी 303.
4. मुथूस्वामी बनाम वीरस्वामी, ए० आई० आर० 1936 मद्रास 486.
5. चौधरी बनाम चटर्जी, आई० एल० आर० (1937) 63 कलकत्ता 1234.
6. मनीशंकर बनाम ए० सन्स लिमिटेड, 193 आई० सी० 155.

अध्याय 6

समाश्रित संविदाएं

समाश्रित संविदा का स्वरूप

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 31 में समाश्रित संविदा की परिभाषा में यह कहा गया है कि यह वह संविदा है जो ऐसी संविदा से साम्पार्श्विक किसी घटना के घटित होने या न होने पर किसी बात को करने या न करने के लिए हो।

इस विषय में एक दृष्टान्त है कि ख से क संविदा करता है कि यदि ख का गृह जल जाए तो वह ख को 10,000 रुपये देगा। यह समाश्रित संविदा है।

हाल्सबरी[1] का एक सम्प्रेक्षण उद्धृत करते हुए, **चन्दूलाल हरजीवन दास बनाम आयकर आयुक्त**[2] वाले मामले में, न्यायाधिपति वी० रामस्वामी ने यह कथन किया है कि व्यापक अर्थ में जीवन बीमा की संविदा जिसमें कि एक पक्ष जीवन की अवधि पर समाश्रित किसी विशेष घटना के घटित होने पर अन्य पक्ष द्वारा किसी तात्कालिक लघु संदाय अथवा कालिक संदायों के प्रतिफल पर कोई निर्धारित राशि के संदाय के लिए वचनबद्ध होता है, समाश्रित संविदा है।

समाश्रित संविदा और सशर्त करार

इंग्लैण्ड की विधि में समाश्रित संविदा **सशर्त करार** (कन्डीशनल एग्रीमेंन्ट) की श्रेणी में आते हैं। किन्तु भारतीय विधि में, समाश्रित संविदाओं को एक पृथक् कोटि में रखा गया है।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 7 में कहा गया है कि प्रस्थापना को वचन में संपरिवर्तित करने के लिए प्रतिग्रहण आत्यन्तिक और अविशेषित होना चाहिए और ऐसा प्रतिग्रहण किसी प्रायिक और युक्तियुक्त प्रकार से अभिव्यक्त होना चाहिए। यदि प्रतिग्रहण आत्यन्तिक और अविशेषित है तो संविदा, उसी समय सम्पूर्ण या निष्पादित हो जाती है किन्तु यदि प्रतिग्रहण किसी शर्त के अधीन हो तो जब तक वह शर्त पूरी न हो जाए, संविदा निष्पादित नहीं बन पाती। शर्त के पूर्ण होते ही, सशर्त संविदा निष्पादित संविदा हो जाती है। शर्त जब तक पूर्ण न हो तब तक वह संविदा केवल निष्पाद्य, अर्थात् निष्पादित बन जाने योग्य, है।

उदाहरण के लिए, भूमि का अन्तरण करने के करार में, विधि के अनुसार, किसी प्राधिकारी की पूर्व अनुज्ञा प्राप्त करना विहित हो तो, करार विवक्षित शर्त के अधीन माना जाएगा।[3] किसी नीलाम; में, यदि यह शर्त हो कि अन्तिम बोली, किसी प्राधिकारी की अनुज्ञा प्राप्त करने पर ही आत्यन्तिक हो सकेगी तो यह सशर्त करार का उदाहरण है जिसमें प्रतिग्रहण आत्यंतिक न होकर, प्राधिकारी की

---

[1] लाज आफ इंग्लैण्ड, तृतीय संस्करण, खण्ड 22, पृ० 273.

[2] ए० आई० आर० 1967 एस०सी० 816.

[3] भारत संघ **बनाम** राजधानी ग्रेन्स एण्ड जैगरी एक्सचेंज, [1975] 3 उम० नि० प० 627.

अनुज्ञा के अधीन रहता है ।[1] नीलाम की बोली का सशर्त प्रतिग्रहण निष्पादित संविदा नहीं है ।[2] किन्तु यह निष्पादित बन सकती है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय संविदा विधि में सशर्त करार और समाश्रित संविदाओं में भेद करने का विचार रहा है। जहां प्रतिग्रहण बिना किसी शर्त के और अविशेषित होता है, वहां संविदा का गठन प्रतिग्रहण पूरा होते ही हो जाता है और वह तत्काल अथवा पक्षकारों द्वारा विनिर्दिष्ट समय पर पालनीय होता है, जबकि सशर्त संविदा में संविदा का गठन ही तब होता है जब कि कोई अभिव्यक्त या विवक्षित शर्त पूरी हो जाए । किन्तु **समाश्रित संविदा, जैसा कि उसकी उपरोक्त परिभाषा से प्रकट होता है, किसी शर्त के अधीन न होकर, किसी घटना के घटित होने या न होने के अधीन होती है । ऐसे करारों में, वह विनिर्दिष्ट घटना ही शर्त होती है, किन्तु वह घटना संविदा के गठन की शर्त न होकर, वचन के पालन की शर्त होती है ।** यदि सशर्त संविदा में, वचन का पालन भी किसी घटना के घटने न घटने के अधीन हो तो, वह संविदा सशर्त और समाश्रित, दोनों प्रकार की संविदाओं का मिश्रण होगी। इस प्रकार समाश्रित संविदाओं में संविदा का गठन नहीं वरन् केवल संविदा के अधीन वचन का पालन समाश्रित होता है ।

"साम्पार्शिवक" शब्द का प्रयोग अस्पष्ट

समाश्रित संविदा की परिभाषा में, **साम्पार्शिवक** शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है, यह स्पष्ट नहीं है, क्योंकि जो दृष्टान्त दिया गया है, उसमें गृह के जल जाने पर धन देने के वचन की बात है और इस प्रकार गृह जल जाना, किसी भी भांति साम्पार्शिवक न होकर, करार में विनिर्दिष्ट एकमात्र और प्रमुख घटना है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि समाश्रित करारों का प्रतिफल क्या है? संविदा अधिनियम की धारा 2 (ख) के अनुसार, जबकि वचनदाता की वांछा पर, वचनग्रहीता या अन्य व्यक्ति कुछ कर चुका है या करने से प्रविरत रहा है, या करता है या करने से प्रविरत रहता है या करने का या करने से प्रविरत रहने का वचन देता है, तब ऐसा कार्य या प्रविरति या वचन, उस वचन के लिए प्रतिफल कहलाता है। किन्तु **ख** से **क** को इस संविदा में, कि यदि **ख** का गृह जल जाए तो **क**, **ख** को 10,000 रुपये देगा, **क** जो कि वचनदाता है, की यह वांछा नहीं है कि गृह जल जाए वरन् वांछा केवल 10,000 रुपये देने की है, परन्तु **क** की इस 10,000 रुपये देने की वांछा पर भी **ख** अथवा अन्य कोई व्यक्ति गृह को जलाने या जलाने से प्रविरत रहने का कोई कार्य नहीं करता। गृह के जलने या न जलने में **ख** का कोई कार्य या प्रविरति किसी भी भांति सहायक नहीं है। इस प्रकार, इन **समाश्रित करारों में, वचनदाता और वचनगृहीता दोनों की ही वांछा और दोनों के ही किसी कार्य या प्रविरति से भी पृथक् और स्वतंत्र किसी विनिर्दिष्ट घटना के घटने या न घटने की ही, प्रतिफल के रूप में कल्पना कर ली गई है**, अथवा यों कहा जा सकता है कि **ख** की सहमति कि वह **क** से 10,000 रुपये की तभी मांग करेगा जबकि उसका गृह जल जाए, यही 10,000 रुपये के संदाय के वचन का प्रतिफल है। उपरोक्त दृष्टान्त और आग के बीमा के एक सामान्य उदाहरण में भेद है क्योंकि बीमा की प्रत्येक संविदा में ही बीमाकर्ता द्वारा आग अथवा अन्य किसी दुर्घटना के घटित होने पर निर्धारित राशि के संदाय के वचन के प्रतिफल में बीमा कराने वाला निश्चित राशि का तात्कालिक अथवा कालिक संदाय करता है । यह माना जा सकता है कि घटना पक्षकारों के स्वेच्छाधीन नहीं है, यही उस घटना की साम्पार्शिवकता है। उदाहरण के लिए इन्जीनियरिंग और स्थापत्य कार्य

[1] देखिए यूनियन आफ इण्डिया **बनाम** भीमसेन **विलायती राम,** ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 2295:[1970]. 2 एस० सी० आर० 594.

[2] हरिद्वार सिंह **बनाम** बगुन सुम्ब्रुई, ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 1242.

से सम्बन्धित संविदाओं में प्रायः यह शर्त रहती है कि निर्माण कार्य के मूल्य का संदाय, उस कार्य के किसी प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किये जाने पर ही किया जा सकेगा अतः ऐसा अनुमोदन, संदाय के लिए एक साम्पार्श्विक घटना है जिसके घटित होने पर संदाय के वचन की बाध्यता उत्पन्न होती है।

व्यतिकारी वचन और समाश्रित संविदा

व्यतिकारी वचनों में, तो प्रायः सभी करारों को समाश्रित माना जा सकता है। जैसे क ख से यह करार करता है, कि यदि ख, क के कक्ष में झाड़ू लगा देगा तो क, ख को, एक रुपया देगा, तो यहां क का एक रुपया देने का वचन ख द्वारा झाड़ू लगाने की घटना पर समाश्रित है। इसी प्रकार जहां क यह संविदा करता है कि जब ग से ख विवाह कर लेगा तो ख को, क एक नियत धनराशि देगा, तो यहां भी निश्चित धनराशि देना, विवाह की घटना पर समाश्रित है। दोनों संविदाओं में स्पष्ट भेद कुछ भी नहीं है फिर भी द्वितीय उदाहरण भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 32 में समाश्रित संविदा के एक दृष्टान्त के रूप में प्रयुक्त हुआ है। दोनों ही उदाहरणों में, दोनों पक्षों द्वारा कोई कार्य किया जाना स्पष्टतः दर्शित है जबकि गृह जल जाने के उदाहरण में, जिसका गृह जले, उसे कुछ नहीं करना है, वरन् यदि दुर्भाग्य से गृह जल जाए तो केवल धन की मांग करनी है। गृह न जलने की दशा में, धन की मांग न करना, एक प्रकार की प्रविरति है, तथा गृह जल जाने की दशा में, धन की मांग करना एक प्रकार का कार्य है। समाश्रित संविदाओं में, ऐसे कार्य और ऐसी प्रविरति को ही प्रतिफल मान लिया गया है। यहां दोनों पक्षों के ही कार्य या प्रविरति का अवसर, ऐसी घटना के घटने या न घटने पर निर्भर है जो कि दोनों पक्षों में से किसी भी पक्ष की स्वेच्छा से शासित नहीं है।

घटना के घटित होने पर प्रवर्तनीय संविदा

उन समाश्रित संविदाओं का प्रवर्तन, जो किसी अनिश्चित भावी घटना के घटित होने पर किसी बात को करने या न करने के लिए हों, विधि द्वारा नहीं कराया जा सकता, यदि और जब तक वह घटना घटित न हो गई हो, और यदि वह घटना असम्भव हो जाए तो ऐसी संविदायें शून्य हो जाती हैं। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 32 में, इस नियम को निम्न दृष्टान्तों से स्पष्ट किया गया है—

(क) ख से क संविदा करता है कि यदि ग के मरने के पश्चात् क जीवित रहा तो वह ख का घोड़ा खरीद लेगा[1]। इस संविदा का प्रवर्तन विधि द्वारा नहीं कराया जा सकता यदि और जब तक क के जीवनकाल में ग मर न जाए।

(ख) ख से क संविदा करता है कि यदि ग ने, जिससे घोड़ा बेचने की प्रस्थापना की गई है, उसे खरीदने से इन्कार कर दिया तो वह ख को वह घोड़ा विनिर्दिष्ट कीमत पर बेच देगा, इस संविदा का प्रवर्तन विधि द्वारा नहीं कराया जा सकता यदि और जब तक ग घोड़ा खरीदने से इन्कार न कर दे।

(ग) क यह संविदा करता है कि जब ग से ख विवाह कर लेगा तो ख को क एक नियत धनराशि देगा। ख से विवाह हुए बिना ग मर जाती है। संविदा शून्य हो जाती है।

बशीर अहमद बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य[1] का मामला

बशीर अहमद और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य[1] के मामले में, निजाम हैदराबाद की सरकार ने वादी द्वारा लिखित यूनानी औषधि के निर्माण की रीतियों की पुस्तक, क्रय करके, लिमिटेड कम्पनी के रूप में, एक फैक्टरी चालू करने की योजना का एक फरमान इन शर्तों के अधीन जारी किया

[1] ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1089.

कि वादी को 50,000 रुपए नकद दिया जाकर, डेढ़ लाख रुपए उसकी ओर से कारखाने में लगाए जाएं। वादी द्वारा लिखित पुस्तक तोहफाओ उस्मानिया, वादी को 50,000 रुपए देकर क्रय कर ली गई किन्तु कारखाना चालू नहीं किया जा सका, यद्यपि वादी को, फरमान के अनुसार 800 रुपए प्रतिमास सन् 1953 तक संदत्त होते रहे जो 1953 में बन्द कर दिया गया और पुस्तक वादी को वापस की जाने लगी जो कि वादी ने लेने से इन्कार कर दिया। वादी ने 1,40,000 रुपये और बकाया की राशि के संदाय के लिए आन्ध्र प्रदेश राज्य के विरुद्ध एक वाद संस्थित किया जिसमें राज्य की ओर से 50,000 रुपये की वापसी का एक प्रतीप-दावा इस आधार पर प्रस्तुत किया गया कि वादी की ओर से प्रस्तावित धन कारखाने में नहीं लगाए जाने के कारण, कारखाना खोलने का कार्य असंभव हो गया और इस प्रकार वह करार, जो कि वादी द्वारा धन लगाने पर समाश्रित था शून्य माना जाने योग्य था।

उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में न्यायाधिपति एस० एम० सीकरी द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि सरकार उस करार का शनैः शनैः पालन करने को उद्यत थी और वादी की पुस्तक का स्वत्व सरकार में अन्तरित हो चुका था और क्रय के अग्रिम धन के तौर पर 50,000 रुपए वादी को संदत्त भी किए जा चुके थे और 1,50,000 रुपए का धन भी वादी की ओर से सरकार को ही लगाना था, अतः इन आधारों पर वादी और सरकार के बीच की हुई संविदा समाश्रित संविदा नहीं थी और सरकार द्वारा कारखाना चालू न करने की दशा में भी वादी संविदा का प्रवर्तन कराके शेष धन वसूल करने का हकदार था।

घटना के घटित न होने पर प्रवर्तनीय संविदा

उन समाश्रित संविदाओं का प्रवर्तन, जो किसी अनिश्चित भावी घटना के घटित न होने पर किसी बात को करने या न करने के लिए हों, तब कराया जा सकता है जब उस घटना का घटित होना असम्भव हो जाए, उससे पूर्व नहीं। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 33 में इस नियम के एक दृष्टान्त के तौर पर यह कहा गया है कि जहां क करार करता है कि यदि अमुक पोत वापस न आये तो वह ख को एक धनराशि देगा और वह पोत डूब जाता है, तो, संविदा का प्रवर्तन पोत के डूब जाने पर कराया जा सकता है।

यह नियम, उपरोक्त उन संविदाओं की, जो घटना के घटित होने पर समाश्रित हों, प्रवर्तनीयता के नियम का विलोम है।

भावी आचरण पर समाश्रित घटना कब असम्भव मानी जाए

यदि वह भावी घटना, जिस पर कोई संविदा समाश्रित है, इस प्रकार हो जिस प्रकार से कोई व्यक्ति किसी अविनिर्दिष्ट समय पर कार्य करेगा तो वह घटना असम्भव हुई तब समझी जाती है जब ऐसा व्यक्ति कोई ऐसी बात करे जो किसी भी परिमित समय के भीतर, या उत्तरभावी आकस्मिकता के बिना उस व्यक्ति द्वारा वैसा किया जाना असम्भव कर दे। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 34 में अभिव्यक्त इस नियम का स्पष्टीकरण, निम्न दृष्टान्त से होगा—

> **क** करार करता है कि यदि **ग** से **ख** विवाह करे तो वह **ख** को एक धनराशि देगा। **घ** से **ग** विवाह कर लेती है। अब **ग** से **ख** का विवाह असम्भव समझा जाना चाहिए, यद्यपि यह सम्भव है कि **घ** की मृत्यु हो जाए और तत्पश्चात् **ख** से **ग** विवाह कर ले।

नियत समय में घटनीय घटनाओं पर समाश्रित संविदाओं को शून्यता और प्रवर्तनीयता की स्थिति

समाश्रित संविदाएं जो किसी विनिर्दिष्ट अनिश्चित घटना के किसी नियत समय के भीतर घटित होने पर किसी बात को करने या न करने के लिए हों, शून्य हो जाती हैं, यदि उस नियत समय के अवसान पर ऐसी घटना घटित न हुई हो या यदि उस नियत समय से पूर्व ऐसी घटना असम्भव हो जाए।

समाश्रित संविदाएं, जो किसी विनिर्दिष्ट अनिश्चित घटना के किसी नियत समय के भीतर घटित न होने पर किसी बात को करने या न करने के लिए हों, विधि द्वारा तब प्रवर्तित कराई जा सकेंगी, जब उस नियत समय का अवसान हो गया हो और ऐसी घटना घटित न हुई हो या उस नियत समय के अवसान से पूर्व यह निश्चित हो जाए कि ऐसी घटना घटित नहीं होगी।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 35 में उल्लिखित उपरोक्त दोनों नियम निम्नलिखित दो दृष्टान्तों से स्पष्ट हो सकेंगे--

(क) क वचन देता है कि यदि अमुक पोत एक वर्ष के भीतर वापस आ जाए तो वह ख को एक धनराशि देगा। यदि पोत उस वर्ष के भीतर वापस आ जाए तो संविदा का प्रवर्तन कराया जा सकेगा और यदि पोत उस वर्ष के भीतर जल जाए तो संविदा शून्य हो जाएगी।

(ख) क वचन देता है कि यदि अमुक पोत एक वर्ष के भीतर न लौटे तो वह ख को एक धनराशि देगा। यदि पोत उस वर्ष के भीतर न लौटे या उस वर्ष के भीतर जल जाए तो संविदा का प्रवर्तन कराया जा सकेगा।

असम्भव घटनाओं पर समाश्रित करारों की शून्यता

समाश्रित करार, जो किसी असम्भव घटना के घटित होने पर ही कोई बात करने या न करने के लिए हों, शून्य हैं, चाहे घटना की असंभवता करार के पक्षकारों को उस समय ज्ञात थीं, या नहीं जब करार किया गया था।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 36 में वर्णित इस नियम से सम्बन्धित, निम्न दो दृष्टान्त हैं--

(क) क करार करता है कि यदि दो सरल रेखायें किसी स्थान को घेर लें तो वह ख को 1,000 रुपये देगा। करार शून्य है।

(ख) क करार करता है कि यदि क की पुत्री ग से विवाह कर ले तो वह ख को 1,000 रुपये देगा। करार के समय ग मर चुकी थी। करार शून्य है।

अधिनियम की धारा 36 और धारा 56

भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 56 में असम्भव कार्य करने के करार को शून्य माना गया है जबकि अधिनियम की धारा 36 में, पक्षकारों के असम्भव घटना पर समाश्रित करार को शून्य माना गया है। **धारा 56 में वर्णित शून्य करारों और धारा 36 में वर्णित शून्य करारों में केवल यह अन्तर है कि प्रथम में पक्षकार उन कार्यों को स्वयं करने का करार करते हैं जिनका किया जाना असम्भव है अर्थात् वे उन कार्यों को करने के करार हैं जिनमें असम्भाव्यता स्वयं उस कार्य में ही**

अन्तर्निहित है, जबकि द्वितीय में, पक्षकारों का करार स्वयं द्वारा किसी असम्भव कार्य को करने का करार नहीं होता वरन् करार ऐसी घटना पर समाश्रित होता है, जिसका घटना भौतिक अथवा व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव हो ।

समाश्रित करार और पंद्यम के तौर के करार

इन दो प्रकार के करारों में भेद इस प्रकार है—

1. पंद्यम के तौर के करार अपने स्वरूप के कारण ही शून्य हैं जबकि समाश्रित करार केवल असम्भव घटनाओं पर समाश्रित होने के कारण शून्य हैं ।

2. पंद्यम के करार आद्यत: शून्य होते हैं जबकि समाश्रित करार किसी घटना के विनिर्दिष्ट समय में घटने या न घटने के कारण शून्य हो जाते हैं ।

3. पंद्यम के तौर के करार पारस्परिक वचनों पर आधारित होते हैं और प्रत्येक पक्ष के वचन का पालन किसी अज्ञात घटना के अधीन होता है, परन्तु समाश्रित करारों में पारस्परिक वचनों का होना आवश्यक नहीं है ।

4. पंद्यम के करारों में, किसी अनिश्चित घटना के पर्यवसान को पक्षकार अपने करार की शर्त के रूप में अनुध्यात करते हैं, किन्तु समाश्रित करारों में पक्षकारों द्वारा अनुध्यात घटना करार से साम्पार्श्विक होती है ।

5. पंद्यम के करार में कोई भी पक्षकार स्वयं संविदा के पालन का आशय नहीं रखता अपितु अपने-अपने दांव के अन्तर का भुगतान करने का वचन देते हैं, और इन में एक पक्ष की हानि दूसरे पक्ष का लाभ होती है, जबकि समाश्रित करार में दोनों ही पक्षकार, अनुध्यात घटना के घटने या न घटने की दशा में, करार के प्रवर्तन का आशय रखते हैं ।

□ □ □

अध्याय 7

संविदाओं के पालन के विषय में

परिचायक टिप्पणी

संविदा की बाध्यता वचन के कारण है और वचन की बाध्यता का ध्येय वचन का पालन है। अतः **संविदा के पालन का अर्थ, पक्षकारों द्वारा अपने-अपने वचन का पालन है।** संविदा के पालन से सम्बन्ध रखने वाले उपबन्धों को, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 के चौथे अध्याय में अधिनियमित किया गया है। इस अध्याय में अधिनियम की धारा 37 से 67 पर्यन्त धाराओं का समावेश है।

पालन के सकारात्मक और नकारात्मक दृष्टिकोण से, संविदाओं को दो वर्गों में रखा गया है। एक वे संविदाएं जिनका पालन करना होगा जिनके उपबन्ध धारा 37 से 39 तक में किये गए हैं तथा दूसरी वे संविदाएं जिनका पालन करने की आवश्यकता नहीं है और जिनके उपबन्ध धारा 62 से 67 तक अधिनियमित किए गए हैं। संविदा के पालन के दो अन्य आवश्यक पक्षों में से प्रथम में यह अनुध्यात किया गया है कि संविदा का पालन किसे करना होगा जिसे अधिनियम की धारा 40 से 45 तक के उपबन्धों में सूत्रबद्ध किया गया है तथा दूसरे पक्ष में पालन के लिए समय और स्थान की विवेचना की गई है जिसके लिए अधिनियम की 46 से 50 तक की धारायें प्रयुक्त हुई हैं। अधिकतर संविदाओं में किसी न किसी प्रकार से संदाय का वचन अन्तर्विष्ट होता है। अतः संदायों के विनियोग के निमित्त अधिनियम की 59 से 61 तक की धाराओं की रचना की गई है। अनेक संविदाओं का स्वरूप व्यतिकारी होता है जिनमें प्रत्येक पक्ष को एक दूसरे के लिए अपने-अपने वचन का पालन करना होता है। अतः अधिनियम की 51 से 58 तक की धाराओं में व्यतिकारी वचनों के पालन के उपबन्धों का निर्देश है।

पालन और विनिर्दिष्ट पालन

जैसा कि संविदा का उद्देश्य वचन का पालन होता है, अतः पक्षकारों द्वारा अपने-अपने वचन के पालन के पश्चात् संविदा का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है और फिर किसी प्रकार की बाध्यता शेष न रहने के कारण संविदा पर्ण हो जाती है। इस **पालन से संविदा का सोपान पूरा हो जाता है। संविदा का पालन ही संविदा की सफलता है। संविदा अपालन के द्वारा भी समाप्त हो जाती है किन्तु यह उसकी असफल समाप्ति है। इस प्रकार संविदा के पालन का अर्थ संविदा की सफल समाप्ति है। पालन का अर्थ, पक्षकारों के मध्य जो वचन हुए हैं, उनका उसी रूप में पालन करना है।** अतः, वचन में अनुध्यात किसी बात के समकक्ष अन्य कोई बात अथवा उससे अधिक मूल्यवान किसी बात का कर देना भी संविदा का पालन नहीं कहा जा सकता।[1] **संविदाओं का नितान्त उसी रूप में पालन किया जाना और उससे अन्यथा उनका किसी भी रूप में पालन न किया जाना विनिर्दिष्ट पालन कहा जाता है।** विनिर्दिष्ट पालन के योग्य संविदाओं और उनके विनिर्दिष्ट पालन से सम्बन्धित उपबन्धों को विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) नाम के एक पृथक् स्टेट्यूट में अधिनियमित किया गया है।

---

[1] फारमैन एण्ड कम्पनी बनाम लिडिल्सडेल, एल० आर० (1900) ए० सी० 19.

संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के वाद में वादी के लिए यह अभिवाक् करने की, कि वह संविदा के अन्तर्गत अपने वचन का विनिर्दिष्ट पालन करने के लिए अभी तक तत्पर और इच्छुक है, अनिवार्यता है।[1]

विनिर्दिष्ट पालन की संविदा में प्रायः स्थावर सम्पत्ति का अन्तरण किसी लिखत के द्वारा करारित होता है जिसमें ऐसी दशा की भी सम्भावना रहती है कि उसमें एक से अधिक वचनदाता हों किन्तु लिखत पर हस्ताक्षर केवल कुछ वचनदाताओं ने किए हों और कुछ ने न किये हों। ऐसी स्थिति में उत्पन्न होने वाले प्रश्न कि क्या उस संविदा के विनिर्दिष्ट पालन की बाध्यता हस्ताक्षर करने वाले पक्षकारों पर अनिवार्यतः होगी, के उत्तर में **सेतु पार्वती अम्माल बनाम बज्जी श्रीनिवासन**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह पक्षकारों के उद्देश्य पर निर्भर करता है अर्थात् इस बात पर कि क्या उन्होंने उस संविदा को हस्ताक्षर न करने वाले पक्षों के विरुद्ध अपूर्ण और अप्रवर्तनीय माना था अथवा उनका यह उद्देश्य रहा था कि यदि हस्ताक्षर न करने वाले पक्षों को यदि संयुक्त न किया जाता तो वे स्वयं भी उस करार को निष्पादित न करते। विनिश्चय यह किया गया कि प्रथम दशा में हस्ताक्षर करने वाले पक्षों पर उस संविदा के पालन की बाध्यता होगी।

संविदा के पक्षकारों की बाध्यता

संविदा के पक्षकारों को या तो अपने-अपने वचनों का पालन करना होगा या करने की प्रस्थापना करनी होगी जब तक कि ऐसे पालन से संविदा अधिनियम के या किसी अन्य विधि के उपबन्धों के अधीन अभिमुक्ति या माफी न दे दी गई हो।

वचन, उनके पालन से पूर्व वचनदाताओं की मृत्यु हो जाने की दशा में, ऐसे वचनदाताओं के प्रतिनिधियों को आबद्ध करते हैं, जब तक कि तत्प्रतिकूल कारण संविदा से प्रतीत न हों।

उपरोक्त उपबन्ध, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 37 में किए गए हैं तथा इन उपबन्धों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए निम्न दो दृष्टान्तों का भी प्रयोग किया गया है--

(क) क 1,000 रुपये का संदाय किये जाने पर ख को अमुक दिन माल परिदत्त करने का वचन देता है। क उस दिन से पहले ही मर जाता है। क के प्रतिनिधि ख को माल परिदत्त करने के लिए आबद्ध हैं और क के प्रतिनिधियों को ख 1,000 रुपये देने के लिए आबद्ध है।

(ख) क अमुक कीमत पर अमुक दिन तक ख के लिए एक रंगचित्र बनाने का वचन देता है। क उस दिन से पहले ही मर जाता है। यह संविदा क के प्रतिनिधियों द्वारा या ख द्वारा प्रवर्तित नहीं कराई जा सकती।

नियम का सार यह है कि किसी संविदा के पक्षकार तथा संविदा में हित रखने वाले व्यक्ति संविदा से सर्वथा बाध्य हैं जब तक कि संविदा विधि अथवा अन्य किसी विधि के उपबन्धों द्वारा उन्हें माफी न दे दी गई हो। इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति पट्टे में पट्टेदार कहा गया है तो उस व्यक्ति को यह प्रतिरोध करने का अधिकार नहीं है कि पट्टे की बाध्यता उस पर न होकर उसके पिता पर है।[3]

संविदा का समनुदेशन

जब तक कि विवक्षित अथवा अभिव्यक्त रूप में पक्षकारों का कोई अन्यथा उद्देश्य न रहा हो, सामान्य नियम यह है कि संविदा की बाध्यता उस संविदा के पक्षकारों और उनके प्रतिनिधियों, जिनके अन्तर्गत पक्षकारों के अन्तरिती और समनुदेशिती भी आते हैं, पर होती है।[4]

---

[1] जोसेफ वर्गीस बनाम जोजेफ एलो, [1970] एस० सी० आर० 921 : (1970) 2 एस० सी० जे० 703.
[2] ए० आई० आर० 1972 मद्रास 222 (227).
[3] रन विजय बनाम बालाप्रसाद, ए० आई० आर० 1978 पटना 91 (93).
[4] रामबरन प्रसाद बनाम राममोहित हाजरा, ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 744 (746).

यद्यपि भारतीय संविदा अधिनियम में, संविदा के समनुदेशन का अन्यत्र कहीं कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं है, किन्तु **अधिनियम की धारा 40 के उपबन्धों में, ऐसे समनुदेशन का अधिकार विवक्षित है,** जहां यह कहा गया है कि यदि संविदा की विषय-वस्तु ऐसी नहीं है जिसका कि पालन स्वयं वचनदाता द्वारा ही किया जा सके तो उसका पालन वचनदाता के प्रतिनिधि द्वारा या अन्य किसी सक्षम व्यक्ति का नियोजन करके, उस अन्य व्यक्ति द्वारा भी, कराया जा सकता है। **पालन के निमित्त अन्य व्यक्ति का नियोजन करने का अधिकार ही, संविदा के समनुदेशन के अधिकार का संकेत है,** जिसमें इन दोनों बातों की विवक्षा है कि—(1) पक्षकार स्वयं दायित्वाधीन रह कर भी, अपने वचन का पालन, अपने किसी प्रतिनिधि द्वारा करा सकता है, और (2) पक्षकार अपने स्वयं के दायित्व और संविदा के लाभ का सम्पूर्ण समनुदेशन भी किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में कर सकता है और ऐसी दशा में वह समनुदेशिती ही उस पक्षकार का प्रतिनिधि बन जाता है। ऐसे समनुदेशन में भी **निम्न बातों का ध्यान** रखना होगा—

(1) संविदा का समनुदेशन स्वयं एक संविदा है, अतः समनुदेशिती के लिए भी यह आवश्यक है कि वह संविदा करने के लिए सक्षम हो तथा समनुदेशन का प्रतिफल और उद्देश्य किसी भी भांति विधिविरुद्ध न हो।

(2) जहां संविदा के अधीन वचन का पालन किसी पक्षकार द्वारा स्वयं ही करने की शर्त हो, जैसे कि वचन का पालन वचनदाता के व्यक्तिगत कौशल या प्रतिभा पर ही निर्भर हो, तो ऐसी संविदा का समनुदेशन नहीं किया जा सकता।[1]

(3) समनुदेशन किसी एक पक्षकार द्वारा अपने लाभ तक ही सीमित होना चाहिए। अतः समनुदेशन द्वारा समुदेशक केवल अपने लाभ का समनुदेशन कर सकता है। दूसरे पक्ष की पूर्वानुमति बिना संविदा के अधीन अपने दायित्व का समनुदेशन कोई पक्षकार नहीं कर सकता। हां, दोनों पक्षों की सहमति से ऐसा हो सकता है, किन्तु ऐसी दशा में वह संविदा के नवीकरण से पृथक् कुछ नहीं है।[2]

(4) नियोजक और सेवक के बीच की हुई सेवा की संविदा का एकपक्षीय समनुदेशन नहीं किया जा सकता और जहां सेवा की संविदा का समनुदेशन हुआ भी हो तो वहां समनुदेशिती को उस सेवक की सेवायें समाप्त करने का अधिकार नहीं है।[3]

(5) संविदा के समनुदेशितों को संविदा के प्रवर्तन का क्या और किस सीमा तक अधिकार रहता है, यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, रेलवे द्वारा माल के परेषण में, परेषक, परेषिती के पक्ष में रेलवे रसीदों का पृष्ठांकन कर देता है जो माल की प्राप्ति के लिए ठीक समनुदेशन है। **डोमिनियन ऑफ इण्डिया** बनाम **गया प्रसाद गोपाल नारायण**[4] वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति किदवई का यह विनिश्चय था कि माल में हुई किसी क्षति के लिए रेलवे रसीद के समनुदेशिती को नुकसानी का वाद लाने का अधिकार है। **भैयालाल रामरतन** बनाम **बी० एन० रेलवे**[5] वाले मामले नागपुर के तत्कालीन उच्च न्यायालय

1 हिन्दुस्तान स्टील वर्क्स लि० **बनाम** भारत स्पन पाइप कम्पनी, ए० आई० आर० 1975 कलकत्ता 8.

2 खरादा कम्पनी लिमिटेड **बनाम** रेमन एंड कम्पनी, ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 810.

3 प्यारचन्द केसरीमल बीड़ी फैक्टरी **बनाम** ओंकार लक्ष्मन, ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 823 में न्या० जे० एम० शैलत का निर्णय.

4 ए० आई० आर० 1956 इलाहाबाद 338.

5 ए० आई० आर० 1944 नागपुर 362.

ने यह अभिनिर्धारित किया था कि ऐसी दशा में समनुदेशिती के माल का परिदान प्राप्त करने तथा नुकसानी का वाद लाने का दोनों ही अधिकार होंगे। **इब्राहीम बनाम भारत संघ**[1] वाले मामले में गुजरात उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति एन० एम० मियाभाय ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के गया प्रसाद गोपाल नारायन वाले उपरोक्त मामले में किए गए विनिश्चय से तथा साथ ही नागपुर उच्च न्यायालय के भैयालाल रामरतन के मामले में किए गए इस विनिश्चय से, कि समनुदेशिती को नुकसानी का वाद लाने का भी अधिकार है, विसम्मति प्रकट की है और यह अभिनिर्धारित किया है कि समनुदेशिती द्वारा समनुदेशन में माल के परिदान वाले अंश का प्रवर्तन कराने के अधिकार में तो कोई सन्देह है ही नहीं किन्तु वह नुकसानी का वाद उसी दशा में ला सकता है यदि समनुदेशन के आधार पर समनुदेशिती को परेषित माल में स्वत्व भी अन्तरित हो चुका हो। इस अभिमत की पुष्टि **गवर्नर जनरल-इन-काउंसिल** बनाम **जयनारायन रीतोलिया**[2] वाले मामले में दिए गए पटना उच्च न्यायालय के निर्णय से भी होती है। अतः **मतभेद की इस अवस्था में, गुजरात उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण ठीक प्रतीत होता है।**

(6) समनुदेशन की स्थिति संविदा के किसी पक्षकार द्वारा ही लाई जाए, यह आवश्यक नहीं है। ऐसी स्थिति किसी राज्य कार्य या विधिक प्रक्रिया द्वारा भी लाई जा सकती है और ऐसी स्थिति में संविदा की विषयवस्तु जिस पर भी न्यागत हो, वही तत्सम्बन्धित पक्षकार का समनुदेशिती माना जाएगा। ठेके की एक संविदा के अधीन, एक ठेकेदार ने एक चिकित्सालय के लिए, चिकित्सालय कमेटी के आदेश पर, भवन का निर्माण किया किन्तु उस चिकित्सालय का प्रबन्ध सरकार ने अधिगृहीत करके नगरपालिका के सुपुर्द कर दिया तो इस मामले में संविदा की शर्तों के अनुसार ठेकेदार को अभिवृद्ध दरों पर संदाय करने के वचन का दायित्व सरकार और नगरपालिका का माना गया।[3]

व्यक्तिगत प्रकार के वचन की बाध्यता किस पर

यदि संविदा की प्रकृति से ही यह प्रतीत हो कि इसका पालन स्वयं वचनदाता के द्वारा ही किया जाना है और पालन से पूर्व वचनदाता की मृत्यु हो जाए तो ऐसी व्यक्तिगत प्रकृति की संविदाओं से वचनदाता के प्रतिनिधि बाध्य नहीं होते और वचनगृहीता उस वचन के पालन के लिए वचनदाता के प्रतिनिधि को बाध्य भी नहीं कर सकता। अधिनियम की धारा 37, जिसका पाठ ऊपर दिया जा चुका है, के साथ दिए गए दृष्टान्त ख से यह बात भलीभांति स्पष्ट हो जाती है। किन्तु यदि वचनदाता ने वैयक्तिक प्रकार की संविदा के अधीन कोई फायदा उठा लिया हो और वचन के पालन से पूर्व वचनदाता की मृत्यु हो जाए तो उस फायदे को वचनदाता के प्रतिनिधियों या उत्तराधिकारियों से प्रत्यावर्तित कराया जा सकता है या नहीं, इस विषय में संविदा अधिनियम में कहीं कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं है। इस सन्दर्भ में अधिनियम की धारा 65 उल्लेखनीय है जिसमें यह उपबन्ध है कि जब कोई संविदा शून्य हो जाए तब वह व्यक्ति जिसने ऐसी संविदा के अधीन कोई फायदा प्राप्त किया हो, वह फायदा उस व्यक्ति को जिससे उसने उसे प्राप्त किया था,

---

1 ए० आई० आर० 1966 गुजरात 8(14).

2 ए० आई० आर० 1948 पटना 36.

3 पन्नालाल बनाम डिप्टी कमिश्नर, भंडारा, ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1174.

प्रत्यावर्तित करने या उसके लिए प्रतिकर देने को बाध्य होगा। मृत्यु की घटना संविदा को असम्भव बना देती है और ऐसी असंभाव्यता के कारण, अधिनियम की धारा 56 के अनुसार वह शून्य हो जाती है और ऐसी शून्य हो जाने वाली संविदा पर धारा 65 के उपबन्ध लागू हो जाएंगे। धारा 65 में वर्णित इस नियम में, फायदे के प्रत्यावर्तन या प्रतिकर देने का दायित्व, पक्षकार पर ही नहीं वरन् उस व्यक्ति पर भी है जिसने वह फायदा उठाया हो।[1] अतः सामान्यतः यह विवक्षित है कि वचनगृहीता की ओर से दिए गए फायदे को प्रत्यावर्तित करने के लिए, वचनदाता के प्रतिनिधियों को दो दशाओं में बाध्य किया जा सकता है--(1) जबकि वह फायदा स्व वचनदाता के प्रतिनिधियों के निमित्त रहा हो, अथवा (2) जबकि वह फायदा, वचनदाता की सम्पदा का भाग बन चुका हो और ऐसी दशा में, वचनदाता के उत्तराधिकारियों के हाथ में आई हुई वचनदाता की सम्पति की सीमा तक उस फायदे के प्रत्यावर्तन की बाध्यता हो सकती है।

इसी प्रकार, पालन के पश्चात् वचनदाता की मृत्यु हो जाए तो संविदा के अधीन होने वाला लाभ, वचनदाता की सम्पदा का भाग बन जाता है और वचनदाता के प्रतिनिधि या उत्तराधिकारी, उसे वचनगृहीता या उसके प्रतिनिधियों से वसूल कर सकते हैं।[2]

व्यक्तिगत प्रकार के वचन के सम्बन्ध में भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 40 में इस प्रकार का उपबन्ध है--"यदि मामले की प्रकृति से यह प्रतीत हो कि किसी संविदा के पक्षकारों का यह आशय था कि उसमें अन्तर्विष्ट किसी वचन का पालन स्वयं वचनदाता द्वारा किया जाना चाहिए तो ऐसे वचन का पालन वचनदाता को ही करना होगा। अन्य दशाओं में, वचनदाता या उसके प्रतिनिधि उसका पालन करने के लिए किसी सक्षम व्यक्ति को नियोजित कर सकेंगे।"

इस उपबन्ध के साथ अधिनियम में निम्न दो दृष्टांत दिए गए हैं--

(क) ख को एक धनराशि देने का वचन क देता है। क इस वचन का पालन ख को वह धन स्वयं देकर या उसे किसी और के द्वारा दिलवा कर कर सकेगा। यदि संदाय के लिए नियत समय से पूर्व क मर जाए तो उसके प्रतिनिधियों को वचन का पालन करना होगा या उसके पालन के लिए किसी उचित व्यक्ति को नियोजित करना होगा।

(ख) ख के लिए एक रंगचित्र बनाने का वचन क देता है। क को इस वचन का पालन स्वयं करना होगा।

उपरोक्त दृष्टान्त (ख) की, अधिनियम की धारा 37 के साथ दिए गए दृष्टान्त (ख) से तुलना करना आवश्यक है। धारा 37 का दृष्टान्त (ख) इस प्रकार है कि क, अमुक कीमत पर, अमुक दिन तक, ख के लिए, एक रंगचित्र बनाने का, वचन देता है, किन्तु क उस दिन से पहले ही मर जाता है, तो फिर यह संविदा क के प्रतिनिधियों द्वारा या ख द्वारा प्रवर्तित नहीं कराई जा सकती।

---

[1] भले ही वह कोई भी हो, देखिए गिरराज बख्श बनाम काजी हामिद अली, आई० एल० आर० (1886) 9 इलाहाबाद, 340.

[2] स्टब्स बनाम होलीवैल, एल० आर० (1867) 2 एक्स चैकर 311.

दोनों ही दृष्टान्तों से यह स्पष्ट है कि क द्वारा रंगचित्र बनाना, उसकी व्यक्तिगत प्रतिभा या उसके स्वयं के कौशल या उसकी स्वेच्छा के अधीन है। ऐसी संविदा का पालन क की मृत्यु के साथ ही असम्भव हो चुका है, अतः यह संविदा, अधिनियम की धारा 56 के अन्तर्गत असम्भाव्यता के कारण शून्य हो चुकी है। धारा 56 के साथ दिया हुआ दृष्टान्त (ख) भी इसी प्रकार का है जहां कहा गया है कि क और ख आपस में विवाह करने की संविदा करते हैं किन्तु विवाह के लिए नियत समय से पूर्व क पागल हो जाता है। संविदा शून्य हो जाती है।

ऐसी शून्यता का तात्पर्य केवल यह है कि फिर यह संविदा, अधिनियम की धारा 2(ञ) के अनुसार प्रवर्तनीय भी नहीं रहती। अतः ऐसी संविदा के पालन का दायित्व मृतक वचनदाता के प्रतिनिधियों पर नहीं डाला जा सकता, किन्तु मृतक वचनदाता ने जो फायदा वचन का पालन किए बिना उठाया है, उसके लिए, सामान्य विधि में, उस मृतक की सम्पदा पर, उसके प्रत्यावर्तन का दायित्व है और ऐसी सम्पदा मृतक के जिन उत्तराधिकारियों के हाथ में आई है, वहां तक उस सम्पत्ति में से उस फायदे को प्रत्यावर्तित करने के लिए वे दायी होने चाहिएं क्योंकि यह फायदा मृतक पर एक ऋण के समान है जो उसकी मृत्यु के पश्चात् भी उसकी सम्पदा से वसूल किया जा सकता है। किन्तु जिस संविदा में व्यक्तिगत तत्व अन्तर्वलित हो, उसके लिए नष्टपरिहार का वाद, मृतक वचनदाता के उत्तराधिकारियों पर नहीं लाया जा सकता।[1]

वचनदाता के व्यक्तिगत कौशल के तत्व को अन्तर्वलित करने वाली संविदा, कौन-सी है और कौन-सी नहीं है, यह बात, **ब्रिटिश वैगन कम्पनी** बनाम **ली**[2] वाले मामले में प्रतिपादित सिद्धान्त से भलीभांति स्पष्ट हो सकती है। इस मामले में, **रॉबसन एण्ड शार्प** बनाम **ड्रमाण्ड**[3] वाले मामले में किए गए विनिश्चय की एक प्रकार से आलोचना की गई है। रॉबसन एण्ड शार्प बनाम ड्रमाण्ड वाले मामले में, ड्रमाण्ड नाम के एक व्यक्ति ने शार्प नाम के एक गाड़ी निर्माता से एक गाड़ी पांच वर्ष की अवधि के लिए लेने का करार किया और तीन वर्ष तक उस गाड़ी को रखा। तीन वर्ष के पश्चात्, ज्यों ही शार्प ने अपना व्यवसाय रॉबसन नाम के व्यक्ति को अन्तरित किया, वैसे ही ड्रमाण्ड ने वह गाड़ी शार्प को वापस कर दी और संविदा का शेष अवधि के लिए पालन करने से इन्कार कर दिया। रॉबसन और शार्प, दोनों द्वारा ही ड्रमाण्ड के विरुद्ध संविदा के पालन के लिए वाद संस्थित किए जाने पर, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ड्रमाण्ड को संविदा के पालन के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। **ब्रिटिश वैगन कम्पनी** बनाम **ली**[2] वाले मामले में, उक्त **रॉबसन**[3] वाले मामले में किए गए विनिश्चय की आलोचना इस आधार पर की गई कि इस मामले में, नियम का उसकी अन्तिम सीमा तक अर्थ लगाया गया है।

शार्प, वास्तव में, एक गाड़ी निर्माता था और उसकी जैसी ही कुशलता वाले अन्य गाड़ी निर्माता भी हो सकते थे और इस प्रकार गाड़ी के निर्माण की कुशलता ऐसा तत्व नहीं है जो रॉबसन और शार्प में समान रूप से विद्यमान हो सके, जबकि नियम केवल इतना ही

---

1 भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 की धारा 268 देखिए.

2 (1880) 5 क्यू० बी० डी० 149.

3 (1831) 109 इंग्लिश रिपोर्ट्स 1156.

है कि जहां किसी व्यक्ति को किसी कार्य के सम्पादन के लिए, मात्र इसी आधार पर चुना जाता है कि उसकी क्षमता, दक्षता अथवा अर्हताएं ही संविदा का मर्म हों, वहां उस व्यक्ति द्वारा उस संविदा के पालन किए जाने की अवस्था में संविदा पूरी हो जाती है और किसी पर-व्यक्ति से न वह कार्य करवाया जा सकता है और न किसी पर-व्यक्ति पर उसे पूरा करने का दायित्व ही डाला जा सकता है। गाड़ी के रंगे जाने या उसकी मरम्मत आदि के ऐसे कार्य नहीं हैं जिनके लिए, किसी कर्मकार के स्थान पर दूसरे को अधिमान दिया जाना आवश्यक हो। भारतीय विधि में, इस नियम में कोई संदिग्धता नहीं है। ऐसे व्यक्तिगत कौशल के मामलों में, पक्षकारों के आशय पर ही, इस बात को अवधारित किया जा सकता है कि करारित कार्य वचनदाता द्वारा स्वयं ही करणीय था या उसे अन्य किसी या उसके प्रतिनिधियों द्वारा भी करवाये जाने का विचार रहा था। एक पट्टे के मामले में, पट्टेदार द्वारा सरकार से कोई संविदा कर ली गई और पट्टेदार की बाध्यता को एक वाद में पट्टाकर्ता पर अधिरोपित किया गया किन्तु इस मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि पट्टेदार के दायित्व के लिए पट्टाकर्ता के विरुद्ध पारित डिक्री अपास्त किए जाने योग्य थी।[1]

पालन की प्रस्थापना के प्रतिग्रहण से इन्कार का प्रभाव

जब किसी वचनदाता ने वचनगृहीता से पालन की प्रस्थापना की हो और वह प्रस्थापना प्रतिगृहीत न की गई हो तो वचनदाता अपालन के लिए उत्तरदायी नहीं है और न तद्द्वारा वह संविदा के अधीन के अपने अधिकारों को खो देता है।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 38 में उल्लिखित इस नियम के अनुसार ऐसी हर प्रस्थापना को निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी होंगी—

1. वह अशर्त ही होगी;

2. उसे उचित समय और स्थान पर और ऐसी परिस्थितियों के अधीन करना होगा कि उस व्यक्ति को, जिससे वह की जाए, यह अभिनिश्चित करने का युक्तियुक्त अवसर मिल जाए कि वह व्यक्ति जिसके द्वारा वह की गई है, वह समस्त जिसे करने का वह अपने वचन द्वारा आबद्ध है, वहीं और उसी समय करने के लिए योग्य और रजामन्द है;

3. यदि वह प्रस्थापना, वचनगृहीता को कोई चीज परिदत्त करने के लिए हो तो वचनगृहीता को यह देखने का युक्तियुक्त अवसर मिलना ही चाहिए कि प्रस्थापित चीज वही चीज है जिसे परिदत्त करने के लिए वचनदाता अपने वचन द्वारा आबद्ध है।

कई संयुक्त वचनगृहीताओं में से एक से की गई प्रस्थापना के विधिक परिणाम वे ही हैं जो उन सबसे की गई प्रस्थापना के।

उपरोक्त उपबन्धों के साथ निम्न दृष्टान्त दिया गया है—

ख को उसके भाण्डागार में एक विशिष्ट क्वालिटी की रुई की 100 गांठें 1873 की मार्च की पहली तारीख को परिदत्त करने की संविदा **क** करता है। इस

---

[1] नन्दकिशोर प्रसाद **बनाम** बिहार राज्य, ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1988.

उद्देश्य से कि पालन की ऐसी प्रस्थापना की जाए जिसका प्रभाव वहां हो, जो उपरोक्त धारा में कथित है, क को वह रुई नियत दिन को, ख के भाण्डागार में ऐसी परिस्थितियों के अधीन लानी होगी कि ख को अपना यह समाधान कर लेने का युक्तियुक्त अवसर मिल जाय कि प्रस्थापित चीज उस क्वालिटी की रुई है जिसकी संविदा की गई है और यह कि 100 गांठें हैं।

पालन की प्रस्थापना का अर्थ

पालन की प्रस्थापना के लिए उक्त शर्तों का पालन तो आवश्यक है ही, साथ ही यह भी आवश्यक है कि पालन की प्रस्थापना, वचन के समस्त पालन की प्रस्थापना होनी चाहिए न कि उसके किसी भाग की। यदि वचन के पूरे पालन की प्रस्थापना न हो तो, वचन-गृहीता उससे इन्कार कर सकता है।[1] किन्तु जहां पालन किस्तों में किए जाने की संविदा रही हो, वहां, वचन के उतने भाग की पालन की प्रस्थापना, समुचित प्रस्थापना है। जहां नकद भुगतान की संविदा हो, या नकद का ही आशय रहा हो, वहां चैक से भुगतान की प्रस्थापना, पालन की प्रस्थापना नहीं है।[2]

बॉम्बे हाउसिंग बोर्ड बनाम करभासे नायक एण्ड कम्पनी[3] वाला मामला उस स्थिति पर प्रकाश डालता है जहां कि वचनदाता ने प्रस्थापना करने से पूर्व अपने वचन के कुछ भाग का पालन कर दिया हो। भवन निर्माण की एक संविदा में एक शर्त यह थी कि यदि ठेकेदार को उन कार्यों के अतिरिक्त जिनकी कि दर अनुसूचित दरों में सम्मिलित है कोई अन्य अथवा भिन्न कार्य करने का आदेश उस कार्य के लिए उचित दरों के निश्चित करने से पूर्व ही दिया जाय तो ठेकेदार इच्छित दरों की सूचना देगा और ऐसी दरों को भारसाधक अभियन्ता स्वीकार न करे तो वह उस वर्ग के कार्य का आदेश रद्द कर सकेगा तथा इससे पूर्व उस वर्ग का जितना कार्य कर दिया गया है, ठेकेदार को उसके मूल्य का संदाय भार-साधक अभियन्ता द्वारा निर्धारित दरों पर कर दिया जाएगा। अवधारणीय प्रश्न यह था कि क्या ठेकेदार उस अतिरिक्त अथवा अन्य कार्य के लिए स्वयं द्वारा प्रस्थापित दर पर मूल्य पाने का हकदार है। न्यायाधिपति के० के० मैथ्यू ने यह अभिनिर्धारित किया कि ठेकेदार द्वारा निश्चित दरों की प्रस्थापना का प्रतिग्रहण न हो पाने के कारण, ठेकेदार पर उस कार्य को करने की कोई बाध्यता नहीं थी और केवल इसीलिए कि भारसाधक अभियन्ता ने आदेश को रद्द नहीं किया, ठेकेदार स्वयं द्वारा प्रस्थापित दरों पर संदाय किये जाने का हकदार नहीं था क्योंकि ठेकेदार की प्रस्थापना का प्रतिग्रहण न होने के कारण उन दरों पर कोई संविदा नहीं थी। संविदा अधिनियम की धारा 38 में पालन की प्रस्थापना को प्रतिगृहीत करने से इन्कार के प्रभाव का उपबन्ध है किन्तु इसमें प्रस्थापना के संयुक्त वचनगृहीताओं में से किसी एक के द्वारा प्रतिगृहीत किये जाने के परिणाम का उल्लेख नहीं है। यह धारा उन मामलों में लागू नहीं की जा सकती जहां किसी दायित्व से मुक्ति पाने के लिए वचनदाता ने संयुक्त वचनगृहीताओं में से किसी एक को संदाय कर दिया हो और ऐसी दशा में यह नहीं माना जा सकता कि वचनदाता ने वचन का पालन सभी वचनगृहीताओं के प्रति कर दिया है।[4]

---

1 अब्दुल बनाम अली, 123 आई० सी० 58.

2 केशव मिल्स बनाम इन्कम टैक्स कमिश्नर, ए० आई० आर० 1950 मुंबई 166.

3 ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 763 (766).

4 गोविन्दलाल बनाम फर्म ठाकुरदास ए० आई० आर० 1974 मुम्बई, 164.

पूर्णतः पालन से इन्कार का प्रभाव

जब किसी संविदा के पक्षकार ने अपने वचन का पूर्णतः पालन करने से इन्कार कर दिया हो या ऐसा पालन करने के लिए अपने को निर्योग्य बना लिया हो तब वचनगृहीता संविदा का अन्त कर सकेगा, यदि उसने उसको चालू रखने की शब्दों द्वारा या आचरण द्वारा अपनी उपमति संज्ञापित न कर दी हो।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 39 में अन्तर्विष्ट इस नियम के लिए, दो दृष्टान्त हैं—

(क) एक गायिका क एक नाट्यगृह के प्रबन्धक ख से अगले दो मास के दौरान, प्रति सप्ताह में दो रात उसके नाट्यगृह में गाने की संविदा करती है और ख उसे हर रात के गाने के लिए 100 रुपये देने का वचनबन्ध करता है। छठी रात को क नाट्यगृह से जानबूझ कर अनुपस्थित रहती है। ख संविदा का अन्त करने के लिए स्वतन्त्र है।

(ख) एक गायिका, क, एक नाट्यगृह के प्रबन्धक, ख से अगले दो मास के दौरान प्रति सप्ताह में दो रात उसके नाट्यगृह में गाने की संविदा करती है और ख उसे प्रति रात के लिए 100 रुपये की दर से संदाय करने का वचनबन्ध करता है। छठी रात को क जानबूझकर अनुपस्थित रहती है। ख की अनुमति से क सातवीं रात गाती है। ख ने संविदा के जारी रहने के लिए अपनी उपमति संज्ञापित कर दी है और अब वह उसका अन्त नहीं कर सकता। किन्तु छठी रात को क के न गाने से उठाये गए नुकसान के लिए वह प्रतिकर का हकदार है।

इस नियम के लागू होने के लिए दो बातें आवश्यक हैं—

1. पालन के लिए इन्कारी या निर्योग्यता वचनदाता की ओर से होनी चाहिए। अतः वचनगृहीता अपनी ओर से इन्कारी करके संविदा का विखण्डन नहीं कर सकता और यह परिसिद्ध करने का भार कि वचनदाता की ओर से इन्कारी या निर्योग्यता है, स्वयं संविदा को विखण्डित करने वाले वचनगृहीता का है, और वचनगृहीता केवल इस बहाने से, कि वचनदाता की ओर से वचन के पालन के लिए अपने साधनों को प्रकट नहीं किया गया संविदा को विखण्डित नहीं कर सकता।[1]

2. इन्कारी या निर्योग्यता वचन के पूर्णतः पालन के लिए होनी चाहिए और **पूर्णतः** का अर्थ वचन के सार से है, उसके किसी भाग से नहीं।[2] इन्कारी या निर्योग्यता का प्रभाव वचन के किसी भाग पर नहीं, वचन के मर्मभूत आशय पर पड़ना चाहिए। महत्व इस बात का है कि वचन किस आशय से किया गया था न कि इस बात का कि वचन के पालन से इन्कारी का क्या आशय था। भूसे को कीमत पर क्रय करने के एक करार में, वादी ने भूसे के कुछ भारों का नकद भुगतान किया किन्तु एक भार का मूल्य सदैव आरक्षण में रखना चाहा और प्रतिवादी ने भूसे का प्रदाय बन्द कर दिया तो यह अभिनिर्धारित किया गया कि नकद भुगतान करना

1 कलियाना गाउन्डर **बनाम** पालानी गाउन्डर, ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1942:[1970] 2 एस० सी० आर० 455.

2 सुल्तान चन्द **बनाम** शिलर, आई० एल० आर० (1878) 4 कलकत्ता 252.

संविदा का सार था, अतः वादी ने नकद मूल्य न देकर, संविदा के पालन से पूर्णतः इन्कारी कर दी थी और प्रतिवादी संविदा को विखण्डित करने का हकदार था।[1]

यह नियम उन दशाओं में आकृष्ट नहीं होगा जहां कि वचनदाता अनुबद्ध समय में अपने वचन का पालन न कर पाया हो, किन्तु तत्पश्चात् पालन कर दिया हो और वचनगृहीता ने उसे स्वीकार कर के अपने आचरण द्वारा वचन के चालू रहने के प्रति अपनी उपमति प्रदर्शित कर दी हो। ऐसी उपमति के संज्ञापन के पश्चात् वचनगृहीता संविदा का अन्त नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए, सैनिकों के लिए चारपाइयों के प्रदाय की एक संविदा में वचनदाता अनुबद्ध समय में चारपाइयों का प्रदाय नहीं कर पाया किन्तु ऐसा प्रदाय विलम्ब से कर देने पर और प्रदाय अनुबद्ध मात्रा से न्यून होने पर भी, वचनगृहीता ने उस प्रदाय को स्वीकार कर लिया, तो ऐसी दशा में, वचनगृहीता की उपमति मानी जाएगी और संविदा का अन्त नहीं किया जा सकेगा। [**भारत संघ** बनाम **एस० केसर सिंह**[2]]।

प्रत्याशित वचन भंग

जहां वचनदाता अपने आपको वचन के पालन के लिए निर्योग्य कर लेता है, वहां वचनगृहीता संविदा को तुरन्त विखण्डित कर सकता है, किन्तु निर्योग्यता का अर्थ, अयोग्यता या असमर्थता नहीं है। **निर्योग्यता का अर्थ वचनदाता के उस कृत्य से है जिससे यह विदित हो सके कि वह संविदा को अग्रसर नहीं करना चाहता**। निर्योग्यता का अभिव्यक्त कथन आवश्यक नहीं है। इसका अनुमान किसी कार्य या किसी चूक के आधार पर किया जा सकता है। प्रकाशन की संविदा में प्रकाशक द्वारा रायल्टी के लेखा का प्रस्तुत न करना और रायल्टी का संदाय न करना ऐसा कार्य है जिसे लेखक प्रकाशक की ओर से अपने वचन का पूर्णतः पालन करने से इन्कारी मान सकता है।[3] विषयवस्तु ही अन्तरित कर दी जाए या वचनदाता ने ऐसा कोई अन्य कार्य स्वीकार कर लिया हो जिसके कारण वचन पालन समसामयिक रूप में हो ही न सके। **सिंगे** बनाम **सिंगे**[4] के मामले में, प्रतिवादी ने अपनी आशयित पत्नी (वादी) से यह करार किया कि दोनों के विवाहित हो जाने पर प्रतिवादी, वादी को जीवनपर्यन्त के लिए भूमि और गृह की वसीयत कर देगा किन्तु विवाह के पश्चात् उसने सम्पत्ति विक्रय के द्वारा एक अन्य व्यक्ति को अन्तरित कर दी। यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिवादी की ओर से वचन के पालन की निर्योग्यता उपस्थित हो चुकी थी और वादी को तत्काल ही नुकसानी के लिए वाद संस्थित करने का हक हो गया था।

जहां वचनदाता वचन के पालन में निर्योग्य न हुआ हो किन्तु उसने पालन में अपनी इन्कारी दर्शित की हो, वहां वचनगृहीता को **दो प्रकल्प** प्राप्त हैं—प्रथम यह कि वह चाहे तो संविदा को तुरन्त विखण्डित कर के उसका अन्त कर सकता है और ऐसी दशा में उसे वचन के पालन का समय आने तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। इस नियम को **वचन भंग की प्रत्याशा** या **प्रत्याशित वचन-भंग** का सिद्धान्त कहा जाता है। दूसरे यह कि वचनगृहीता चाहे तो वचनदाता की इन्कारी के आशय की सूचना के पश्चात् भी पालन के समय तक प्रतीक्षा करके वचनदाता को पालन के लिए अवसर दे सकता है और समय व्यतीत होने पर सम्पूर्ण नुकसानी के लिए वाद ला सकता है।[5] सार यह है कि कोई

---

[1] विटर बनाम रेनोल्ड्स, (1831) 2 बार्नेवाल एण्ड एडोल्फस रिपोर्ट्स 882.

[2] ए० आई० आर० 1978 जम्मू-कश्मीर 102.

[3] मिश्र बन्धु कार्यालय बनाम शिवरतनलाल, ए० आई० आर० 1970 मध्य प्रदेश 261.

[4] (1894) 1 Q. B. 466

[5] फ्रास्ट बनाम नाइट, एल० आर० (1872) 7 एक्सचेकर 111.

भी एक पक्ष किसी संविदा को समाप्त करने में सक्षम नहीं है। पालन की इन्कारी से संविदा स्वतः नहीं समाप्त हो जाती वरन् इससे पीड़ित पक्षकार के लिए उस संविदा को समाप्त कर देने का विकल्प उपस्थित होता है।[1]

अन्य व्यक्ति द्वारा किए गये पालन के प्रतिग्रहण का प्रभाव

जबकि वचनगृहीता किसी अन्य व्यक्ति से पालन प्रतिगृहीत कर लेता है तब वह तत्पश्चात् उसे वचनदाता के विरुद्ध प्रवर्तित नहीं करा सकता।[2]

यह नियम तभी लागू किया जा सकता है जबकि वचन का पालन पर-व्यक्ति द्वारा कर दिया गया हो और वचनगृहीता द्वारा उसे प्रतिगृहीत कर लिया गया हो तथा पालन पूर्णरूपेण हो गया हो। आंशिक पालन, इस नियम के अन्तर्गत पालन नहीं माना जा सकता।[3] पर-व्यक्ति द्वारा किए गए आंशिक संदाय को दावे की पूर्ण तुष्टि के रूप में स्वीकार कर लेने पर मूल वचनदाता के विरुद्ध कोई वाद नहीं लाया जा सकता।[4]

संयुक्त वचनों में न्यागमन के सिद्धान्त

जबकि दो या अधिक व्यक्तियों ने कोई संयुक्त वचन दिया हो, तब यदि तत्प्रतिकूल आशय संविदा से प्रतीत न हो तो यह वचन ऐसे सब व्यक्तियों को अपने संयुक्त जीवनों के दौरान और उनमें से किसी की मृत्यु के पश्चात् उसके प्रतिनिधि को उत्तरजीवी या उत्तरजीवियों के साथ संयुक्ततः और अन्तिम उत्तरजीवी की मृत्यु के पश्चात् सबके प्रतिनिधियों को संयुक्ततः पूरा करना होगा।

संविदा अधिनियम की धारा 42 में दिए गए उपरोक्त नियम का आधार यह है कि संयुक्त वचनों में, दायित्व सदैव ही संयुक्त और पृथक्-पृथक् रहता है किन्तु पक्षकारों द्वारा इस नियम के प्रतिकूल संविदा की जा सकती है। इस नियम में तीन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की प्रकल्पना की गई है—

1. जबकि संयुक्त वचनदाता, सभी जीवित रहे, तो इस वचन से सभी वचनदाता बाध्य हैं और वचन का पालन किसी के द्वारा किया जा सकता है या किसी के द्वारा किये हुए पालन को प्रतिगृहीत किया जा सकता है।

2. जबकि संयुक्त वचनदाताओं में से कुछ मर जाएं और कुछ जीवित रहें, तो मृतक वचनदाताओं के प्रतिनिधियों के साथ जो वचनदाता जीवित हों, वे सब, अर्थात् उत्तरजीवी वचनदाता और मृतक वचनदाता या वचनदाताओं के सभी प्रतिनिधि, समान रूप से दायित्वाधीन हैं।

3. जबकि सभी वचनदाताओं की मृत्यु हो जाय तो प्रत्येक और सभी वचनदाताओं के प्रतिनिधि संयुक्ततः दायित्वाधीन हो जाते हैं।

उपरोक्त नियम का अनुशीलन संविदा अधिनियम की धारा 45 के उपबन्धों के साथ करना चाहिए। संविदा अधिनियम की धारा 45 इस प्रकार है—

"जबकि किसी व्यक्ति ने दो या अधिक व्यक्तियों को संयुक्ततः वचन दिया हो, तब यदि संविदा से तत्प्रतिबद्ध आशय प्रतीत न हो तो उसके पालन के लिए दावा करने का

---

[1] मिश्र बन्धु कार्यालय बनाम शिवरतन लाल, ए० आई० आर० 1970 मध्य प्रदेश 261.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा, 41.

[3] चन्द्रशेखर बनाम विट्ठल भण्डारी, ए० आई० आर० 1966 मैसूर 84.

[4] लाला कपूरचन्द गोधा बनाम आजमा, ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 250.

अधिकार, जहां तक कि उसका और उनका सम्बन्ध है, उनके संयुक्त जीवनों के दौरान उनको और उनमें से किसी की मृत्यु के पश्चात् ऐसे मृत व्यक्ति के प्रतिनिधि को उत्तरजीवी या उत्तरजीवियों के साथ संयुक्ततः और अन्तिम उत्तरजीवी की मृत्यु के पश्चात् उन सबके प्रतिनिधियों को संयुक्ततः होता है ।"

इस नियम के साथ निम्न दृष्टान्त है—

क अपने को ख और ग द्वारा उधार दिए गए 5,000 रुपयों के प्रतिफल में, संयुक्ततः ख और ग को वह राशि ब्याज समेत विनिर्दिष्ट दिन प्रतिसंदत्त करने का वचन देता है । ख मर जाता है । पालन का दावा करने का अधिकार ग के जीवन के दौरान ख के प्रतिनिधियों को ग के साथ संयुक्ततः और ग की मृत्यु के पश्चात् ख और ग के प्रतिनिधियों को संयुक्ततः होता है ।

पक्षकारों के बीच की हुई संविदा और इस नियम में यदि कोई प्रतिकूलता हो तो, पक्षकारों के बीच की गई संविदा की शर्तें ही प्रभावी होंगी । इस नियम में भी, अधिनियम की धारा 42 के समान ही, तीन अवस्थाओं की प्रकल्पना की गई है—

1. यदि सभी वचनगृहीता जीवित हों तो, संविदा के अधीन वचन के पालन के लिए दावा करने का अधिकार, किसी एक वचनगृहीता को न होकर, संयुक्ततः सभी वचनगृहीताओं को होगा;

2. यदि वचनगृहीताओं में से कुछ मर जाएं और कुछ जीवित रहें तो केवल उत्तरजीवी वचनदाता भी अकेले उस संविदा के पालन का दावा नहीं कर सकते वरन् दावा करने के लिए, उत्तरजीवी वचनगृहीता को मृतक वचनगृहीताओं के प्रतिनिधियों को सम्मिलित करके ही दावा करना होगा ;

3. यदि सभी वचनगृहीता मर जाएं तो, किसी एक मृतक वचनदाता के प्रतिनिधि उस संविदा के पालन के लिए दावा नहीं कर सकते वरन् यदि दावा करना हो तो सभी मृतक वचनदाताओं के प्रतिनिधियों को उस दावे में सम्मिलित करना आवश्यक है ।

सामान्यिक अभिधारी और संयुक्त अभिधारी का भेद

जब किसी वचन के अधीन एक से अधिक व्यक्तियों के दायित्व हों अथवा एक से अधिक व्यक्तियों के हित हों तो दायित्वों या हितों की ऐसी संयुक्तता की दशा दो प्रकार की हो सकती है—1. या तो उन व्यक्तियों के निकाय को **सामान्यिक अभिधारी** (टैनेण्ट्स-इन-कामन) माना जा सकता है, या 2. उस निकाय को **संयुक्त अभिधारी** (ज्वाइन्ट टैनेण्ट्स) माना जा सकता है । दोनों ही अवस्थाओं में, इस निकाय की प्रसंगतियां भिन्न-भिन्न होती हैं ।

जब संयुक्त व्यक्तियों का निकाय, सामान्यिक अभिधारी के रूप में होता है तो उनके प्रत्येक के हित अभिनिश्चित और परिनिश्चित तो होते हैं किन्तु वे हित निश्चित भागों में विभक्त नहीं होते । इसके विपरीत जब वह निकाय संयुक्त अभिधारी के रूप में होता है, तो वे सहदायिकों के रूप में रहते हैं और उनके भाग न अभिनिश्चित होते हैं और न परिनिश्चित और ऐसा अभिनिश्चय या परिनिश्चय केवल विभाजन के समय ही सम्भव है । सामान्यिक अभिधारियों में से, यदि किसी एक की मृत्यु हो जाए तो, उस मृतक के भाग का उत्तराधिकार, उस मृतक के स्वयं के उत्तराधिकारियों को न्यागत होता है, किन्तु संयुक्त अभिधारियों में से एक की मृत्यु हो जाने पर, उस मृतक का हित, मृतक के

उत्तराधिकारियों को न्यागत न होकर, उत्तरजीवी अभिधारियों को न्यागत होता है । इस प्रकार संयुक्त अभिधारियों में, संयुक्त निकाय के किसी भी सदस्य का कोई पृथक और अभिनिश्चित हित नहीं होता वरन् सभी सदस्य उस संयुक्त हित को एक साथ धारण करते हैं ।

सामान्यिक अभिधारियों के हित और दायित्व संयुक्त और पृथक्-पृथक् दोनों प्रकार के होते हैं जबकि संयुक्त अभिधारियों में हित और दायित्व केवल संयुक्त होते हैं । इस भेद का स्पष्ट प्रभाव यह है कि सामान्यिक अभिधारियों में से किसी एक अभिधारी के मरते ही, उसके प्रतिनिधि उसके स्थान पर प्रतिस्थापित हो जाते हैं किन्तु संयुक्त अभिधारियों में, एक की मृत्यु हो जाने से मृतक के प्रतिनिधि प्रतिस्थापित नहीं होते, केवल अन्तिम उत्तरजीवी अभिधारी की मृत्यु के पश्चात् उस अन्तिम मृतक अभिधारी के ही प्रतिनिधि प्रतिस्थापित होंगे ।

इंग्लैण्ड की संविदा विधि में, संयुक्त वचनदाता हों तो, और संयुक्त वचनगृहीता हों तो भी, सामान्यिक अभिधारियों वाले नियम को अधिमान दिया गया है, जहां जो-जो अभिधारी मरते जाएं उन्हीं के प्रतिनिधि सम्बन्धित मृतकों के स्थान पर प्रतिस्थापित होते रहते हैं । यदि एक ही वचनगृहीता हो और उसकी मृत्यु के पश्चात् एक से अधिक प्रतिनिधि हों तो वे सब सामान्यिक अभिधारी होंगे और उन्हें वचन के पालन के लिए एक साथ वाद लाना होगा और जो वादी न बन सकें उन्हें प्रतिवादी बनाना होगा ।[1] अर्थात् संयुक्त वचनगृहीताओं में से कोई एक वचनगृहीता भी अन्य वचनगृहीताओं को प्रतिवादी की श्रेणी में आलिप्त करके वाद ला सकता है ।[2]

अधिनियम की 42वीं और 45वीं धाराओं में अन्तर

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 42 और धारा 45 दोनों में ही संयुक्त वचनों के न्यागमन के सिद्धान्त की प्रतिपादना की गई है । अन्तर यह है कि धारा 42 में संयुक्त वचनदाताओं के संबंध में होने के कारण, उसमें संयुक्त दायित्वों के विषय में उपबन्ध किया गया है जबकि धारा 45 में संयुक्त वचनगृहीताओं से सम्बन्धित होने के कारण, उसमें संयुक्त हितों या संयुक्त अधिकारों के विषय में उपबन्ध किया गया है । पूर्वकथित धारा के अन्तर्गत, वचनगृहीता, संयुक्त वचनदाताओं में से किसी को भी, समस्त वचन के पालन के लिए बाध्य कर सकता है, जो स्थिति भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 43 के उपबन्धों से भी स्पष्ट है । धारा 45 सहभागीदारों, सहहिस्सेदारों और सहदायिकों पर समान रूप से लागू होती है ।

संयुक्त वचन में प्रत्येक वचनदाता की विवशता

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 42 के अनुसार, संयुक्त वचनदाताओं में, उनका दायित्व, उनके संयुक्त जीवनों के दौरान में संयुक्त और उनमें से किसी की भी मृत्यु के पश्चात् मृतक के प्रतिनिधियों और उत्तरजीवियों के साथ संयुक्त और अन्तिम उत्तरजीवी की मृत्यु के पश्चात्, सभी वचनदाताओं के प्रतिनिधियों के साथ संयुक्त माना गया है, किन्तु अधिनियम की धारा 43 में वचनगृहीता को यह स्वतन्त्रता दी गई है कि वह संयुक्त वचनदाताओं में से, जिसको चाहे, उसी को वचन के पालन के लिए बाध्य कर सकता है । धारा 43 के उपबन्ध इस प्रकार हैं —

"जबकि दो या अधिक व्यक्ति कोई संयुक्त वचन दें, तब तत्प्रतिकूल अभिव्यक्त करार के अभाव में, वचनगृहीता, ऐसे संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक या अधिक को समग्र वचन के पालन के लिए विवश कर सकेगा ।

---

1 आइशा बीबी **बनाम** अब्दुल कादर, आई० एल० आर० (1902) 25 मद्रास 26.

2 जाहर राय **बनाम** प्रेमजी भीमजी, ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 2439.

"दो या अधिक संयुक्त वचनदाताओं में से हर एक अन्य संयुक्त वचनदाता को वचन के पालन में अपने समान अभिदाय करने के लिए विवश कर सकेगा, जब तक कि तत्प्रतिकूल आशय संविदा से प्रतीत न हो।
"यदि दो या अधिक संयुक्त वचनदाताओं में से कोई एक ऐसा अभिदाय करने में व्यतिक्रम करे तो शेष संयुक्त वचनदाताओं को ऐसे व्यतिक्रम से उद्भूत हानि को समान अंशों में सहन करना होगा।"

मूल ऋणी और उसके प्रतिभू के दायित्व को इन उपबन्धों से, एक स्पष्टीकरण के द्वारा, व्यावृत्त किया गया है। स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

"इस धारा की कोई भी बात किसी प्रतिभू द्वारा मूल ऋणी की ओर से किए गए संदायों को अपने मूल ऋणी से उस प्रतिभू को वसूल करने से निवारित नहीं करेगी और न मूल ऋणी द्वारा किए गए संदायों के कारण उसे उस प्रतिभू से कुछ भी वसूल करने का हकदार बनाएगी।'

इन उपबन्धों के लिए, अधिनियम में चार दृष्टान्त निम्न प्रकार से दिये गए हैं —

(क) क, ख और ग 3,000 रुपये घ को देने का संयुक्ततः वचन देते हैं। घ चाहे क या ख या ग को विवश कर सकेगा कि वह उसे 3,000 रुपये दे।

यह दृष्टान्त वचनगृहीता की उस स्वतन्त्रता को लक्ष्य करता है जिसके अनुसार वह अपने वचन का समग्रतः पालन, संयुक्त वचनदाताओं में से अपनी स्वेच्छानुसार, किसी से भी करवा सकता है।

(ख) क, ख और ग 3,000 रुपये घ को देने का संयुक्ततः वचन देते हैं। ग पूर्ण राशि देने के लिए विवश किया जाता है। क दिवालिया है, किन्तु उसकी आस्तियां उसके ऋणों के अर्धांश के चुकाने के लिए पर्याप्त हैं। क की सम्पदा से, 500 रुपये और ख से 1,250 रुपये पाने का ग हकदार है।

यह दृष्टान्त वचनदाताओं में से प्रत्येक को समान अभिदाय करने के दायित्व को लक्ष्य करता है।

(ग) घ को, 3,000 रुपये देने का संयुक्त वचन क, ख और ग ने दिया है। ग कुछ भी देने के लिए असमर्थ है, और क पूर्ण राशि देने के लिए विवश किया जाता है। ख से क 1,500 रुपये पाने का हकदार है।

इस दृष्टान्त से यह स्पष्ट होता है कि समान अभिदाय का नियम केवल उन वचनदाताओं पर लागू होता है जो वचन के पालन में समर्थ हों।

(घ) घ को 3,000 रुपये देने का संयुक्त वचन क, ख और ग ने दिया है। ग के लिए क और ख प्रतिभू मात्र हैं। ग रुपयों के संदाय में असफल रहता है। क और ख पूर्ण राशि देने के लिए विवश किये जाते हैं। वे उसे ग से वसूल करने के हकदार हैं।

यह दृष्टान्त, धारा 43 में के स्पष्टीकरण के उपबन्धों को लक्ष्य करता है। यद्यपि, अधिनियम की धारा 128 के अनुसार प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी को, संयुक्त वचनदाता होने के उपरान्त भी, समान अभिदाय वाले नियम से मुक्त किया गया है। अतः प्रतिभू को वचन के समग्र पालन

के लिए तो विवश किया जा सकता है किन्तु जहां तक मूल ऋणी और प्रतिभू के बीच का सम्बन्ध है, समान अभिदाय का नियम उन पर लागू नहीं होता और प्रतिभू, वचन के पालन में स्वयं द्वारा किये गये संदाय के लिए मूल ऋणी को प्रतिसंदाय के लिए बाध्य कर सकता है।

इसी प्रकार यदि संयुक्त वचनगृहीताओं में से, वचन के पालन के निमित्त संस्थित किए जाने वाले किसी वाद में, कुछ वचनगृहीता वादी के रूप में प्रस्तुत न हों, तो उन्हें, वाद संस्थित करने वाले वचनगृहीताओं द्वारा प्ररूपिक प्रतिवादी बनाकर वाद चलाया जा सकता है। [पोन्नू स्वामी बनाम रामा बोयन [1]]

सामर्थ्यानुपात का सिद्धान्त

समान अभिदाय का दायित्व किस सीमा तक होता है, यह प्रत्येक मामले की पृथक्-पृथक् परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित किया जाएगा, और इस विषय में कोई सामान्य सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता। किस वचनदाता का समान अभिदाय के लिए किस सीमा तक दायित्व है, इसके संकेत उपरोक्त, दृष्टांत ख और ग में दिये गए हैं और इन संकेतों के आधार पर समान अभिदाय, सामर्थ्यानुपात के दायित्व के अध्यधीन है।

संयुक्त दायित्व और पृथक्-पृथक् दायित्व

संयुक्त वचनदाताओं के दायित्व संयुक्त और पृथक्-पृथक्, दोनों प्रकार के होते हैं। समान अभिदाय का नियम इसी का द्योतक है; जिसके आधार पर यद्यपि वचनगृहीता प्रत्येक वचनदाता का पृथक् दायित्व मानकर समग्र वचन के पालन के लिए किसी एक ही वचनदाता को बाध्य कर सकता है, तथापि इससे अन्य वचनदाताओं का पृथक्-पृथक् दायित्व समाप्त नहीं हो जाता और जिस वचनदाता ने समग्र वचन का पालन कर दिया है, वह अन्य वचनदाताओं को, पालित वचन के प्रति, समान अभिदाय के लिए विवश कर सकता है। किसी एक वचनदाता को ही समग्र वचन के पालन के लिए विवश होने के लिए वचन का संयुक्त होना पर्याप्त है, भले ही लिखत में उनके दायित्व को परिनिश्चित कर दिया गया हो और ऐसा परिनिश्चय कि किस वचनदाता का कितना दायित्व है, उनमें परस्पर समान अभिदाय की सीमा का द्योतक है न कि इस बात का द्योतक कि वचनगृहीता किस वचनदाता से किस अनुपात में वचन का पालन करवाए जब तक कि संविदा में ही वचनगृहीता के लिए ऐसा कोई स्पष्ट निदेश न हो।

एक संयुक्त पट्टे में, यद्यपि प्रत्येक पट्टेदार द्वारा भारक के दाय के दायित्व को पृथक्तः दर्शित कर दिया गया था तथापि पट्टे में यह उपबन्ध था कि भारक के संदाय में लगातार दो वर्ष के व्यतिक्रम के आधार पर पट्टा समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार के मामले में न्या० आर० एस० बद्दावत द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि संयुक्त पट्टेदार, संयुक्ततः और पृथक्तः दोनों ही प्रकार से दायित्वाधीन थे।[2] न्या० ए०एन० ग्रोवर के अनुसार, संयुक्त वचनदाताओं के विरुद्ध पारित डिक्री में यह निर्देश नहीं दिया जा सकता कि डिक्री का निष्पादन, प्रथम चरण में केवल एक निर्णीत ऋणी के विरुद्ध करके जो डिक्रीत धन शेष रहे उसे अन्य निर्णीत ऋणी से तत्पश्चात् वसूल किया जाए।[3] डिक्रीदार, किसी भी एक निर्णीत ऋणी से, समस्त डिक्रीत धन वसूल कर सकता है और निर्णीत ऋणी, परस्पर समान अभिदाय की बाध्यता के लिए वाद ला सकते हैं।

संयुक्त वचन में एक वचनदाता की निर्मुक्ति

जबकि दो या दो से अधिक व्यक्तियों ने एक संयुक्त वचन दिया हो, वहां वचनगृहीता द्वारा ऐसे संयुक्त वचनदाताओं में से एक की निर्मुक्ति अन्य संयुक्त वचनदाता या संयुक्त वचनदाताओं को

1 ए० आई० आर० 1979 मद्रास 130.

2 रमाशंकर बनाम श्यामलता, ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 716: [1969] 2 एस० सी० आर० 360.

3 भगवानदास बनाम स्टेट बैंक आफ हैदराबाद, ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 449. भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 44. जैन्किन्स बनाम जन्किन्स, एल० आर० (1928) 2 के० बी० 501.

उन्मोचित नहीं करती, और न वह ऐसे निर्मुक्त संयुक्त वचनदाता को अन्य संयुक्त वचनदाता या संयुक्त वचनदाताओं के प्रति उत्तरदायित्व से ही मुक्त करती है।[1]

इंग्लैंड की विधि में, संयुक्त वचन में, एक वचनदाता की निर्मुक्ति से सभी वचनदाता निर्मुक्त हो जाते हैं जब तक कि अन्य वचनदाताओं के विरुद्ध वचन के पालन के उपचार को अभिव्यक्ततः सुरक्षित न रखा जाय।[2] परन्तु. भारतीय विधि में इसे उपान्तरित कर दिया गया है।

वचनदाताओं की संयुक्तता का दोहरा प्रभाव

जिस संविदा में संयुक्त वचनदाता हों, उसका **दोहरा प्रभाव** होता है। एक ओर तो ऐसी संविदा संयुक्त वचनदाताओं को वचनगृहीता के प्रति बाध्य करती है तथा दूसरी ओर वह वचनदाओं को, वचन के पालन में परस्पर ऐसे समान अभिदाय के लिए बाध्य करती है जिसका उपबन्ध, संविदा अधिनियम की धारा 43 में किया गया है। इस प्रकार, वचनगृहीता यदि संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक को वचन के पालन से निर्मुक्त कर दे तो उस निर्मुक्त होने वाले वचनदाता की वचनगृहीता के प्रति, वचन के पालन की बाध्यता तो समाप्त हो जाती है किन्तु धारा 43 के उपबन्धों के अनुसार, उसकी अन्य वचनदाताओं के प्रति, समान अभिदाय की बाध्यता समाप्त नहीं होती। अतः जिन संयुक्त वचनदाताओं को उस वचन के पालन के लिए विवश होना पड़े, वे वचनगृहीता द्वारा निर्मुक्त किये गए, वचनदाता को समान अभिदाय के लिए बाध्य कर सकते हैं।

यह नियम संविदा के भंग से पूर्व या भंग के पश्चात् कभी भी लागू किया जा सकता है।[3]

पालन का समय, स्थान और उसका प्रकार

क. स्थान और समय आदि का महत्व : घटना में, यही बातें परम महत्व की होती हैं कि वह कब घटी, किस स्थान पर घटी और किस प्रकार घटी। **संविदा का पालन, संविदा की, अन्तिम घटना है। अतः इसमें भी, पालन का समय, पालन का स्थान और पालन का प्रकार, संविदा के वे तत्व हैं जो प्रत्येक संविदाकार के लिए परम महत्व के, यहां तक कि अविस्मरणीय हैं।** स्वयं संविदा में, पालन का समय, स्थान और प्रकार विनिर्दिष्ट भी हो सकता है और विवक्षित भी, और समय, स्थान अथवा प्रकार में से, कोई बात विनिर्दिष्ट, और कोई भी बात, केवल विवक्षित हो सकती है। संविदा भंग के क्या और किस मात्रा में परिणाम हुए, यह अवधारित करना भी इन्हीं बातों पर निर्भर करता है कि पालन का समय क्या था, स्थान क्या था और पालन किस प्रकार किया जाना था क्योंकि **समय, स्थान या उसके प्रकार से अन्यथा किया हुआ पालन संविदा को भंग करने के ही तुल्य हैं।**

न्यायाधिपति वी० डी० तुलजापुरकर के अनुसार, यह प्रश्न कि समय संविदा का सार है अथवा नहीं, संविदा के पक्षकारों के आशय पर निर्भर करता है और पक्षकारों के आशय का अनुमान संविदा की शर्तों के आधार पर किया जा सकता है। [**मेसर्स हिंद कन्स्ट्रक्शन कान्ट्रैक्टर्स** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4]]।

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 44.

[2] जैन्किस बनाम जैन्किस, एल० आर० (1928) 2 के० बी० 501.

[3] कीर्तिचन्दर बनाम स्ट्रुपर्स, आई० एल० आर० (1878) 4 कलकत्ता 336.

[4] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 720, 724.

ख. अधिनियम के पांच उपबन्ध : संविदा अधिनियम में, इस विषय में, पांच उपबन्ध किए गए हैं, जो इस प्रकार हैं —

1. युक्तियुक्त समय का नियम अर्थात् जब समय विनिर्दिष्ट न हो—

जहां कि संविदा के अनुसार वचनदाता को अपने वचन का पालन वचनगृहीता द्वारा आवेदन किए जाने के बिना करना हो और पालन के लिए कोई समय विनिर्दिष्ट न हो वहां वचनबन्ध का पालन युक्तियुक्त समय के भीतर करना होगा ।[1]

इस उपबन्ध के साथ एक स्पष्टीकरण यह है कि **युक्तियुक्त समय** क्या है, यह प्रश्न हर एक विशिष्ट मामले में तथ्य का प्रश्न है ।

न्या० के० के० मैथ्यू ने अवधारित किया है कि जब पालन के लिए कोई समय विनिर्दिष्ट न हो तो यह विवक्षित माना जाएगा कि संविदा का पालन युक्तियुक्त समय के भीतर किया जाना है ।[2]

युक्तियुक्त समय क्या है, इस पर विचार इस दृष्टिकोण से करना होगा कि अमुक संविदा किस प्रकृति की है, उसके पक्षकारों की क्या स्थिति है, कौन सी बात किन परिस्थितियों में हुई है और अमुक स्थान की क्या प्रथाएं हैं? किसी एक मामले में एक माह का समय युक्तियुक्त माना जा सकता है तो किसी अन्य मामले में एक वर्ष का समय युक्तियुक्त समझा जा सकता है। जैसे, एक मामले में, वादी को उसकी ओर से एक अन्य व्यक्ति को शोध्य ऋण के उन्मोचन का वचन प्रतिवादी ने दिया हो और व्यतिक्रम की दशा में यह भी तय किया हो कि वह वादी को व्यतिक्रम से पहुंचने वाली हानि के लिए प्रतिकर भी देगा किन्तु यह न तय किया गया हो कि उस ऋण का उन्मोचन किस समय तक किया जाएगा, वहां यह अवधारित हुआ कि इस मामले में तीन वर्ष का समय युक्तियुक्त समय था ।[3]

अचल संपत्ति के हस्तान्तरण की डिक्री के निष्पादन की नियत अवधि व्यतीत न होने की दशा में, परिसीमा विधि द्वारा विहित अवधि, हस्तान्तरण के विलेख के निष्पादन के लिए युक्तियुक्त समय मानी जाएगी। [**श्रीमती ज्ञानदा देवी** बनाम **नाथ बेंक लि०**[4]]

यह स्मरण रहे कि यह नियम तभी लागू होगा जबकि वचन का पालन वचनगृहीता के आवेदन के बिना किया जाना हो । यह भी स्मरण रहे कि **अचल संपत्ति के अन्तरण की संविदाओं में उपधारणा यह है कि समय संविदा का सार नहीं है** और ऐसे मामलों में यह तथ्य कि समय संविदा का सार है अथवा नहीं, सम्बधित संविदा के अनुबन्धों और मामले की विशेष परिस्थितियों पर निर्भर करेगा । [**गोविन्द लाल चावला** बनाम **सी० के० शर्मा**[5]]

2. जब समय विनिर्दिष्ट हो—

जबकि किसी वचन का पालन अमुक दिन किया जाना हो और वचनदाता ने वचनगृहीता द्वारा आवेदन किये जाने के बिना उसका पालन करने का वचन दिया हो तब कारबार के प्रायिक घण्टों के दौरान

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 46.

[2] हंगर फोर्ड इनवेस्टमेण्ट **बनाम** हरिदास मुंदड़ा, ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 1826.

[3] दरायसिंह **बनाम** अरुंचला, आई० एल० आर० (1899) 23 मद्रास 441.

[4] ए० आई० आर० 1979 कलकत्ता 246, 248.

[5] ए० आई० आर० 1978 इलाहाबाद 446.

म किसी भी समय ऐसे दिन और उस स्थान पर, जिस पर उस वचन का पालन किया जाना चाहिए, वचनदाता उसका पालन कर सकेगा ।[1]

एक दृष्टान्त है कि जैसे क वचन देता है कि वह पहली जनवरी को ख के भाण्डागार में माल परिदत्त करेगा और यह भी कि जैसे उस दिन क माल को ख के भाण्डागार में लाता भी है, किन्तु वह माल को उस समय लाता है जब कि ख का भाण्डागार अपने प्रायिक कार्यकाल के पश्चात् बन्द हो चुका हो, तो यही माना जायगा कि क ने संविदा का पालन नहीं किया।

उपरोक्त उपबन्ध 1 और 2 इस बात में तो समान हैं कि दोनों में ही वचनदाता ने वचनगृहीता के आवेदन के बिना ही, वचन के पालन का भार स्वयं अपने ही ऊपर रखा है, किन्तु इन दोनों नियमों में भिन्नता यह है कि—उपबन्ध 1 में पालन का समय विनिर्दिष्ट नहीं है और उपबन्ध 2 में तिथि विनिर्दिष्ट है किन्तु यह फिर भी विनिर्दिष्ट नहीं है कि वचन का पालन उस तिथि के किस भाग में किया जाना है। इंग्लैण्ड की विधि में, संविदा में तिथि विनिर्दिष्ट होने की दशा में, संविदा का पालन उस तिथि को मध्य रात्रि तक किया जा सकता है किन्तु जहां माल को "जनवरी के प्रारम्भ में" परिदत्त करने की संविदा हो, वहां 13 जनवरी को माल का परिदत्त करना, जनवरी के प्रारम्भ में परिदत्त करना नहीं माना जा सकता।[2] किन्तु भारतीय विधि में, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि **जहां तिथि विनिर्दिष्ट हो, वहां उस तिथि को कार्य व्यवहार के प्रायिक घण्टों में संविदा का पालन किया जा सकता है। उस तिथि को यदि अवकाश का दिन हो तो या तो उस तिथि से एक दिन पूर्व या एक दिन पश्चात् जैसी भी व्यापारिक प्रथा हो, संविदा का पालन कर दिया जाना चाहिए।**[3]

3. जब पालन आवेदन पर किया जाना हो—

जब कि किसी वचन का पालन अमुक दिन किया जाना हो और वचनदाता ने यह भार अपने ऊपर न ले लिया हो कि वह वचनगृहीता के आवेदन के बिना उसका पालन करेगा तब वचनगृहीता का यह कर्तव्य है कि पालन के लिए आवेदन उचित स्थान पर कारबार के प्रायिक घण्टों के भीतर करे ।[4]

उचित समय और स्थान क्या है, यह प्रश्न हर एक विशिष्ट मामले में, तथ्य का प्रश्न है।

उपरोक्त उपबन्ध 2 और 3 में यह अन्तर है कि उपबन्ध 2 के अन्तर्गत तिथि विनिर्दिष्ट होती है किन्तु पालन के लिए वचनगृहीता द्वारा आवेदन नहीं किया जाता है, तो उस दशा में, विनिर्दिष्ट तिथि को कारबार के प्रायिक घण्टों में, वचनदाता को संविदा का पालन कर देना चाहिए, किन्तु उपबन्ध 3 में तिथि विनिर्दिष्ट होती है किन्तु पालन के लिए वचनगृहीता द्वारा आवेदन किया जाता है, और ऐसी दशा में, वचनगृहीता के लिए आवश्यक है कि वह पालन के लिए आवेदन, उस विनिर्दिष्ट तिथि को, वचनदाता के कारबार के प्रायिक घण्टों में, करे।

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 47.
[2] फिन्डले बनाम नरसी, 9 आई० सी० 460.
[3] मोटूमल बनाम रतनजी, 24 आई० सी० 883.
[4] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 48.

उचित स्थान के विषय में, सामान्य सिद्धान्त यह है कि **पालन के लिए आवेदन वहां करना होता है जहां कि वचनगृहीता उपलब्ध हो** । यदि पालन के लिए दो स्थान नियत हों तो वचनगृहीता के लिए स्थान को विनिर्दिष्ट करना आवश्यक है और जब तक वह स्थान का चुनाव स्वयं न करे, पालन दोनों में से किसी भी स्थान पर किया जा सकता है।[1]

4. देनदार, लेनदार की खोज करे अर्थात् जब स्थान नियत न हो और आवेदन न किया जाना हो—

जबकि किसी वचन का पालन वचनगृहीता के आवेदन के बिना किया जाना हो और पालन के लिए कोई स्थान नियत न हो तब वचनदाता का कर्तव्य है कि वह वचन के पालन के लिए युक्तियुक्त स्थान नियत करने के लिए वचनगृहीता से आवेदन करे और ऐसे स्थान में उसका पालन करे।[2]

इस विषय में एक दृष्टान्त है कि जैसे **क** एक हजार मन पटसन **ख** को एक नियत दिन परिदत्त करने का वचन देता है तो **क** को **ख** से आवेदन करना होगा कि वह उसे लेने के लिए युक्तियुक्त स्थान नियत करे और ऐसे स्थान पर, जो नियत किया जाय, पटसन परिदत्त करना होगा।

इस नियम में यह स्पष्ट है कि जब संविदा में पालन का स्थान नियत किया हुआ हो तो, संविदा का पालन उस नियत स्थान पर ही किया जाय किन्तु जहां समय अभिव्यक्ततः नियत न हो, वहां पालन का स्थान क्या होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि संविदा की प्रकृति और उसकी शर्तों के अनुसार पालन करने का स्थान पक्षकारों के बीच क्या आशयित था।[3] यह भी स्पष्ट है कि जहां संविदा में स्थान न नियत हो वहां, वचनदाता को वचनगृहीता से स्थान नियत करने का आवेदन करना चाहिए, क्योंकि यह नियम तभी लागू होगा जबकि वचनदाता ने वचनगृहीता से आवेदन किया हो । यदि वचनगृहीता, वचनदाता के आवेदन पर भी स्थान नियत न करे तथा मामले की अन्य परिस्थितियों से भी यह अवधारित करना कठिन हो कि पक्षकारों का पालन के स्थान के विषय में क्या आशय था, तो सामान्य सिद्धान्त यह है कि **देनदार को लेनदार की खोज करनी चाहिए**[4] अर्थात् वचनदाता को वचन वहां पूरा करना चाहिए जहां वचनगृहीता उपलब्ध हो। यह नियम माल के परिदान और धन के संदाय के उन सभी मामलों पर लागू होता है जहां कि वचन के पालन में माल का परिदान या धन का संदाय अन्तर्वलित हो।

देनदार लेनदार की खोज करे यह नियम बैंक और साहूकारों पर लागू नहीं होता।[5] इन दशाओं में लेनदार को देनदार के पास पहुंच कर आवेदन करना होता है। **देनदार, लेनदार की खोज करे,** यह नियम इंग्लैण्ड की सामान्य विधि की देन है जो भारत में उपयुक्त मामलों पर लागू होता है।[6] भारत में इस नियम की उपयोगिता, परिदान या संदाय के स्थान के अवधारण में पक्षकारों के आशय का अनुमान करने के लिए है।[7]

---

1 देखिए, हाल्डेन **बनाम** जानसन, 22 लॉ जर्नल (इंग्लैण्ड) एक्सचैकर, 264.

2 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 49.

3 रेनोल्ड्स **बनाम** कौलमैन, एल० आर० (1887) 36 चान्सरी 453.

4 बन्सीलाल अबीरचन्द **बनाम** गुलाम मेहताब, ए० आई० आर० 1925 पी० सी० 290.

5 विनियथीयल आछी **बनाम** चिदाम्बरम, ए० आई० आर० 1972 मद्रास 238.

6 एच० एस० सोभासिंह **बनाम** सौराष्ट्र आइरन फाउन्ड्री, ए० आई० आर० 1968 गुजरात 276.

7 मनोहर आइल मिल्स **बनाम** भवानीदीन, ए० आई० आर० 1971 इलाहाबाद 326.

5. जब समय और प्रकार वचनगृहीता द्वारा विहित हो—

किसी भी वचन का पालन उस प्रकार से और उस समय पर किया जा सकेगा, जिसे वचनगृहीता विहित या मंजूर करे ।[1]

इस नियम को समझने के लिए निम्न चार दृष्टांत सहायक होंगे—

(क) क को ख 2,000 रुपये का देनदार है । क चाहता है कि ख उस रकम को एक बैंककार ग यहां क के खाते में जमा करा दे । ख का भी ग के यहां खाता है और वह यह आदेश देता है कि वह रकम उसके खाते में से अन्तरित करके क के नाम जमा कर दी जाय और ग ऐसा कर देता है । तत्पश्चात् और उस अन्तरण का ज्ञान क को होने से पूर्व ग का कारबार बैठ जाता है । ख का संदाय ठीक है ।

(ख) क और ख परस्पर ऋणी हैं । क और ख एक मद को दूसरी में से मुजरा करके लेखा का परिनिर्धारण पर जो धन उससे शोध्य बाकी निकलता है, उसे क को ख देता है । यह क और ख द्वारा एक दूसरे को देय राशियों का संदाय क्रमशः एक दूसरे को हो जाता है ।

(ग) ख का क 2,000 रुपये का देनदार है । उस ऋण में कमी करने के लिए क का कुछ माल ख प्रतिगृहीत करता है । माल के परिदान से भागिक संदाय हो जाता है ।

(घ) क यह चाहता है कि ख, जो उसे 100 रुपये का देनदार है, उसे डाक द्वारा 100 रुपये का नोट भेजे । जैसे ही ख उस नोट सहित चिट्ठी को, जिस पर क का पता सम्यक् रूप से लिखा है, डाक में डालता है वैसे ही ऋण का सम्मोचन हो जाता है ।

दृष्टान्त (क) में खाते की प्रविष्टियों के अन्तरण द्वारा पालन विहित किया गया था, और जैसे ही खाते की प्रविष्टियों का अन्तरण हो चुका वैसे ही वचन का पालन भी पूर्ण हो गया, भले ही उस बैंककार का कारबार बैठ जाए जिसके खातों में उभय पक्षों के लेखों की प्रविष्टियों का अन्तरण हुआ था ।

दृष्टान्त (ख) में, वचन का पालन शोध्य बाकी की रकमों को पक्षकारों द्वारा परस्पर लेखा की प्रविष्टियों के अन्तरण द्वारा मुजरा करके और मुजराई के बाद जो अतिशेष हो उसका संदाय करके वचन का पालन ठीक माना गया है ।

दृष्टान्त (ग) में, धन के बदले माल लेकर वचन का पालन मान लिया गया है ।

दृष्टान्त (घ) में, धन के संदाय के लिए डाक द्वारा प्रेषित करने का ढंग विहित किया गया है । अतः पालन तभी माना जाएगा जबकि विहित प्रकार का सम्यक् अनुसरण किया गया हो । इस दृष्टान्त का यह आशय है कि यदि यह विहित हो कि पालन किस प्रकार से किया जाना है तो उसमें परिवर्तन करना या उसके स्थान पर पालन का अन्य प्रकार प्रतिस्थापित करके वचन का पालन करना, पालन नहीं माना जा सकता ।[2] धन के

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 50.

[2] फर्म बच्छराज अमोलकचन्द बनाम फर्म नन्दलाल सीताराम, ए० आई० आर० 1966 मध्य प्रदेश 145.

संदाय द्वारा वचन का पालन वचनगृहीता के अभिकर्ता को धन संदत्त करके किया जा सकता है, किन्तु यदि अभिकर्ता इस निमित्त प्राधिकृत नहीं है तो, उसे किया हुआ संदाय पालन नहीं माना जा सकता।[1] जहां यह तय हो कि संदाय डाक से चैक भेजकर करना है, वहां जिस स्थान पर चैक को डाक में डाला जाता है, वही वचन के पालन का स्थान है और वही स्थान संदाय का भी है, क्योंकि न्या० जे० एम० शैलत के मत में ऐसी अवस्था में, विहित प्रकार से वचन को पूरा कर देना ही उसका पालन है और उतना करने से ही दायित्व का उन्मोचन हो जाता है।[2]

व्यतिकारी वचनों का पालन

(क) पालन और उसकी तीन अवस्थाएं

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(ड) के अनुसार हर एक वचन और ऐसे वचनों का हर एक संवर्ग, जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल हो, व्यतिकारी वचन कहलाते हैं।

व्यतिकारी वचनों में, प्रत्येक पक्षकार वचनदाता और साथ ही वचनगृहीता भी होता है। इसके साथ ही, प्रतिफल भी प्रत्येक पक्षकार के हाथ में होता है क्योंकि एक पक्षकार द्वारा वचन का धारण, दूसरे पक्षकार के प्रतिफल को प्रतिधारित करना है। विनिर्दिष्ट पालन की संविदा व्यतिकारी वचनों से युक्त होती है। अतः संविदा के विनिर्दिष्ट पालनार्थ यदि यह साबित कर दिया जाय कि वह संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तत्पर और इच्छुक रहा तो, न्या० पी० एन० सिंघल के अनुसार, विनिर्दिष्ट पालन मंजूर कर दिया जाना चाहिए।[3]

व्यतिकारी वचनों में, वचन के पालन का अर्थ प्रतिफल का संक्रान्त होना है। ऐसे वचनों के पालन की **तीन अवस्थाएं** हो सकती हैं—

1. जब प्रतिफल दोनों ओर से एक साथ संक्रान्त होना हो : माल विक्रय की संविदाएं ऐसी अवस्था के प्रायिक उदाहरण हैं, 2. जब यह संविदा में ही विनिर्दिष्ट हो कि प्रथम किस पक्ष को ओर से प्रतिफल संक्रान्त होगा, और 3. जब एक पक्ष की ओर से प्रतिफल संक्रान्त न होने तक दूसरे पक्ष की ओर से भी प्रतिफल संक्रान्त न हो और यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें एक पक्षकार अपने वचन को जो कि दूसरे पक्षकार का प्रतिफल है, उस दूसरे पक्षकार द्वारा वचन पालन किये जाने तक के लिए प्रतिभूति के तौर रख सकेगा, जो तभी उन्मुक्त होगी जबकि दूसरा पक्ष अपने वचन का पालन कर दे। इन्हीं तीन नियमों को भारतीय संविदा अधिनियम में निम्न प्रकार से उपबन्धित किया गया है—

(ख) तीनों अवस्थाओं का विवेचन

1. **ज़ब साथ-साथ पालन किया जाना हो**—जबकि कोई संविदा साथ-साथ पालन किये जाने वाले व्यतिकारी वचनों से गठित हो तब किसी भी वचनदाता के लिए अपने वचन का पालन करना आवश्यक नहीं है जब तक कि वचनगृहीता अपने व्यतिकारी वचन का पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द न हो।[4]

इसे दृष्टान्तों के आश्रय से समझा जा सकता है—

(i) **क** और **ख** संविदा करते हैं कि **ख** को **क** माल परिदत्त करेगा जिसके लिए संदाय माल के परिदान पर ख़ द्वारा किया जायगा।

---

[1] मैकेन्जी **बनाम** शिवचन्दर, (1874) 12 बाम्बे लॉ रिपोर्टर 360.

[2] हनुमानप्रसाद **बनाम** हीरालाल, ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 206=[1970] 3 एस० सी० आर० 788.

[3] हाजी शराफत हुसन **बनाम** बद्रीविशाल धनधनिया, ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 2325.

[4] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 51.

माल का परिदान करना क के लिए आवश्यक नहीं है जब तक कि ख परिदान पर माल के लिए संदाय करने को तैयार और रजामन्द न हो।

माल के लिए संदाय करना ख के लिए आवश्यक नहीं है जब तक कि संदाय पर माल को परिदत्त करने के लिए क तैयार और रजामन्द न हो।

(ii) क और ख संविदा करते हैं कि क किस्तों में दी जाने वाली कीमत पर ख को माल परिदत्त करेगा, और पहली किस्त परिदान पर दी जानी है।

माल का परिदान करना क के लिए आवश्यक नहीं है जब तक कि ख परिदान पर पहली किस्त देने के लिए तैयार और रजामन्द नहीं हो।

पहली किस्त देना ख के लिए आवश्यक नहीं है जब तक कि क पहली किस्त के संदाय पर माल परिदत्त करने के लिए तैयार और रजामन्द न हो।

इस नियम में नकारात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। इसे यदि सकारात्मक बना दिया जाए तो अर्थ यह होगा कि किसी भी वचनगृहीता द्वारा अपना व्यतिकारी वचन पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द होते ही, दूसरे पक्षकार के लिए अपना वचन पालन करना आवश्यक हो जाएगा, और यदि एक पक्ष की ऐसी तैयारी और रजामन्दी के पश्चात् भी दूसरा पक्ष अपने वचन का पालन न करे तो यह दूसरे पक्षकार द्वारा प्रथम पक्षकार को अपने वचन का पालन करने से निवारित करने के तुल्य होगा और इस आधार पर भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 53 के अन्तर्गत प्रथम पक्षकार के विकल्प पर वह संविदा शून्यकरणीय हो सकती है। ऐसी संविदाओं में संविदा के पालन का समय किसी भी पक्षकार की तैयारी और रजामन्दी से ही निश्चित हो जाता है अर्थात् जैसे ही एक पक्ष अपनी तैयारी और रजामन्दी संसूचित करे, दूसरे पक्ष को अपना वचन पालन करने के लिए कार्यवाही प्रारम्भ कर देनी चाहिए। अतः कोई भी पक्ष, इसमें दूसरे पक्ष से किसी भी समय पालन के लिए आवेदन कर सकता है, और चूंकि किसी भी पक्ष को वचन पालन की तब तक आवश्यकता नहीं है, जब तक कि दूसरा पक्ष अपने वचन के पालन के लिए तैयार और रजामन्द न हो तो जिस पक्षकार को भी पालन की शीघ्रता है, वही दूसरे से उसके वचन के पालन का आवेदन कर सकता है।

इस बात पर विचार करने के लिए कि कोई व्यक्ति संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए इच्छुक है या नहीं, उस क्रम को, जिसमें संविदा के अधीन बाध्यताओं का पालन किया जाना है, ध्यान में रखा जाना चाहिए। अतः, न्या० जे० सी० शाह के मत में, यदि संविदा के निबन्धनों के अधीन पक्षकारों द्वारा बाध्यताओं का किसी निश्चित क्रम में पालन किया जाना है तो संविदा का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार से, सर्वप्रथम संविदा में स्वयं अपने भाग का पालन किये बिना जिसका बाध्यताओं के क्रम में उसके द्वारा पहले पालन किया जाना हो, बाध्यताओं के पालन करने की अपेक्षा नहीं कर सकता।[1] जहां पालन का क्रम अभिव्यक्त हो, वहां —

2. पालन किस क्रम में किया जाय—जहां कि वह क्रम जिससे व्यतिकारी वचनों का पालन किया जाना है, संविदा द्वारा अभिव्यक्ततः नियत हो वहां उनका पालन उसी क्रम से

[1] नाथूलाल बनाम फूलचन्द, [1975] 3 उम० नि० प० 1033=ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 546.

किया जायगा और जहां कि वह क्रम संविदा द्वारा अभिव्यक्ततः नियत न हो वहां उनका पालन उस क्रम से किया जायगा जो उस संव्यवहार की प्रकृति द्वारा अपेक्षित हो।[1]

इस विषय में, दो दृष्टान्त इस प्रकार हैं—

(क) क और ख संविदा करते हैं कि क नियत समय पर ख के लिए एक गृह बनवायेगा। क को गृह बनाने के वचन का पालन ख द्वारा उसके लिए संदाय के वचन के पालन से पहले करना होगा।

(ख) क और ख संविदा करते हैं कि क अपना व्यापार-स्टाक एक नियत कीमत पर ख को देगा और ख धन के संदाय के लिए प्रतिभूति देने का वचन देता है। क के वचन का पालन किया जाना तब तक आवश्यक नहीं है जब तक प्रतिभूति न दे दी जाय; क्योंकि इस संव्यवहार की प्रकृति यह अपेक्षा करती है कि अपने व्यापार-स्टाक का परिदान करने से पूर्व क को प्रतिभूति मिलनी चाहिए।

3. **नाथूलाल बनाम फूलचन्द वाला मामला**—उच्चतम न्यायालय के न्या० जे० सी० शाह द्वारा **नथूलाल बनाम फूलचन्द**[2] वाला मामला, इस नियम के लागू होने का अत्युत्तम उदाहरण है। इस मामले में नाथूलाल अपीलार्थी एक प्लाट पर निर्मित एक जिनिंग कारखाने का स्वामी था और कारखाना जिस प्लाट पर था वह उसके भाई छित्तरमल के नाम दर्ज था। नाथूलाल ने उक्त भूमि और कारखाना 43,011 रुपये में फूलचन्द को 26-2-1951 को बेचने का करार किया। उसे 22,011 रुपये का आंशिक संदाय प्राप्त हो गया था और सम्पत्ति का कब्जा फूलचन्द को दे दिया गया था। फूलचन्द शेष रकम का तारीख 7-5-1951 को या इससे पूर्व संदाय करने के लिए सहमत हो गया था। नाथूलाल ने छित्तरमल का नाम कटवाकर राजस्व अभिलेखों को परिशुद्ध कराये जाने का अभिव्यक्त रूप से जिम्मा लिया था और यह भी जिम्मा लिया था कि वह संबंधित कानून के अन्तर्गत अन्तरण के लिए कलक्टर से मंजूरी प्राप्त करेगा। इस प्रकार, इस मामले में नाथूलाल की ओर से पालन किये जाने वाले दो व्यतिकारी वचन थे और पालन के क्रम में, इन दो वचनों का पहले नाथूलाल द्वारा ही पालन किया जाना था जबकि फूलचन्द को शेष रकम, 7-5-51 को या इससे पूर्व, संदाय करने के वचन का पालन, तभी करना था जबकि नाथूलाल 7-5-51 से पूर्व अपने उपरोक्त वचनों का पालन कर दे। नाथूलाल द्वारा, अपने दो वचनों में से, प्रथम का 6 अक्तूबर, 1952 तक पालन नहीं किया गया और दूसरे का कभी पालन किया ही नहीं गया। फिर भी नाथूलाल ने 8 अक्तूबर, 1951 को संविदा विखण्डित कर दी और भूमि तथा कारखाने के कब्जे और परिदान की तारीख से कब्जा दिलाये जाने तक अन्तःकालीन लाभ की डिक्री के लिए वाद प्रस्तुत कर दिया।

इस मामले में, यह अभिनिर्धारित हुआ कि—1. फूलचन्द से शेष रकम का संदाय करने की केवल उस समय ही अपेक्षा की जा सकती थी जब नाथूलाल संविदा के अपने भाग का पालन कर दे, 2. फूलचन्द संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए **तैयार और रजामन्द** था क्योंकि उसने नाथूलाल को संदाय करने के लिए अपने को समर्थ बनाने के लिए अपने बैंककार के साथ एक असाधारण व्यवस्था कर रखी थी, और

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 52.

[2] [1975] 3 उम० नि० प० 1033=ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 546.

3. स्वयं को तत्पर और इच्छुक साबित करने के लिए किसी क्रेता को धन पेश करने अथवा संव्यवहार की वित्त व्यवस्था करने के लिए किसी निश्चित स्कीम का साक्ष्य देने की कोई आवश्यकता नहीं है।[1]

4. **पहले पालन होने वाले वचन में व्यतिक्रम का प्रभाव**—जबकि कई संविदा ऐसे व्यतिकारी वचनों से गठित हो जिनमें से एक का पालन या पालन का दावा तब तक नहीं किया जा सके जब तक दूसरे का पालन न कर दिया जाय और अन्तिम वर्णित वचन का वचनदाता उसका पालन करने में असफल रहे तब ऐसा वचनदाता व्यतिकारी वचन के पालन का दावा नहीं कर सकता और उसे संविदा के दूसरे पक्षकार को, किसी भी हानि के लिए जो ऐसा दूसरा पक्षकार संविदा के अपालन से उठाए, प्रतिकर देना होगा।[2]

इस नियम के आशय को समझने के लिए निम्न दृष्टान्त सहायक होंगे—

(क) ख के पोत को क अपने द्वारा दिए जाने वाले स्थोरा को भरने और कलकत्ते से मौरिशस तक प्रवहण करने के लिए भाड़े पर लेता है। उसके प्रवहण के लिए ख को अमुक ढुलाई मिलनी है। क पोत के लिए कोई स्थोरा नहीं देता। ख के वचन के पालन का दावा क नहीं कर सकता और ख को, उस हानि के लिए, जो ख उस संविदा के पालन से उठाये, प्रतिकर देना होगा।

(ख) क एक नियत कीमत पर कोई निर्माण कर्म निष्पादित करने के लिए ख से संविदा करता है, उस कर्म के लिए आवश्यक पाड़ और काष्ठ ख द्वारा दिया जाना है। । ख पाड़ या काष्ठ देने से इन्कार करता है, और कर्म निष्पादित नहीं किया जा सकता। कर्म का निष्पादन करना क के लिए आवश्यक नहीं है, और क को किसी भी हानि के लिए जो उस संविदा के अपालन से कारित हो, प्रतिकर देने के लिए ख आबद्ध है।

(ग) ख से क संविदा करता है कि वह उस वाणिज्या को जो एक ऐसे पोत पर है, जो एक मास तक नहीं पहुंच सकता, विनिर्दिष्ट कीमत पर उसे परिदत्त करेगा, और ख संविदा की तारीख से एक सप्ताह के भीतर उस वाणिज्या के लिए संदाय करने का वचनबन्ध करता है। ख उस सप्ताह के भीतर संदाय नहीं करता।

परिदान करने के क के वचन का पालन आवश्यक नहीं है और ख को प्रतिकर देना होगा।

(घ) ख को क वाणिज्या की सौ गांठें बेचने का वचन देता है जिनका परिदान अगले दिन किया जाने वाला है और उनके लिए एक मास के भीतर संदाय करने का वचन क को ख देता है। क अपने वचन के अनुसार परिदान नहीं करता। संदाय करने के, ख के, वचन का पालन आवश्यक नहीं है और क को प्रतिकर देना होगा।

पालन के सम्बन्ध में आस्थान परिदान और बिल्टीकर परिदान का भेद

उपरोक्त दृष्टान्त में संदाय और परिदान करने के व्यतिकारी वचन हैं। परिदान सम्बन्धी मामलों में **आस्थान परिदान** और **बिल्टीकर परिदान** का भेद महत्वपूर्ण है।

[1] बैंक ऑफ इण्डिया लिमिटेड बनाम जमशेदजी, ए० आई० आर० 1950 पी० सी० 90.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 54.

फर्म बच्छराज अमोलक चन्द बनाम फर्म नन्दलाल सीताराम[1] वाले मामले में, न्यायमूर्ति एस० पी० भार्गव ने इस भेद को व्यक्त करते हुए इस प्रकार कहा है कि आस्थान परिदान में माल के मूल्य की दर में उसे आस्थान तक पहुंचा देने का व्यय सम्मिलित होता है किन्तु माल के परेषण की रेलवे रसीद बनवाना विक्रेता का दायित्व नहीं होता जबकि बिल्टीकर संव्यवहार में संविदा के अन्तर्गत अपने दायित्व के निर्वाह के लिए माल की रेलवे रसीद तैयार करवाना विक्रेता का कर्तव्य है जिसका अर्थ यह है कि रेलवे भाड़ा क्रेता द्वारा संदेय होता है जो मार्ग की जोखिम अपने ऊपर लेकर, अपने ही स्थान पर रेलवे रसीद के विरुद्ध कीमत के संदाय के लिए वचनबन्ध करता है।

एक पक्ष का दूसरे पक्ष को पालन से निवारित करने का प्रभाव

जब कि किसी संविदा में, व्यतिकारी वचन अन्तर्विष्ट हों और संविदा का एक पक्षकार दूसरे को उसके वचन का पालन करने से निवारित करे तब वह संविदा इस प्रकार निवारित किए गए पक्षकार के विकल्प पर शून्यकरणीय हो जाती है और वह किसी भी हानि के लिए जो संविदा के अपालन के परिणामस्वरूप उसे उठानी पड़े, दूसरे पक्षकार से प्रतिकर पाने का हकदार है।[2]

इस नियम को निम्नलिखित दृष्टान्त से समझा जा सकता है—क और ख संविदा करते हैं कि ख एक हजार रुपये के बदले क के लिए अमुक काम निष्पादित करेगा। ख उस काम को तदनुसार निष्पादित करने के लिए तैयार और रजामन्द है, किन्तु क उसे वैसा करने से निवारित करता है। संविदा ख के विकल्प पर शून्यकरणीय है, और यदि वह उसे विखंडित करने का निश्चय करे तो वह किसी भी हानि के लिए, जो उसने अपालन से उठाई हो, क से प्रतिकर वसूल करने का हकदार है।

यह नियम केवल व्यतिकारी वचनों पर लागू होता है और इस सिद्धान्त पर आधारित है कि जिस व्यक्ति ने स्वयं अपने ही किसी कृत्य या अकृत्य से किसी बात का होना सम्भव कर दिया हो, वह उस बात के करने में दूसरे के असफल रहने के कारण, परिवाद नहीं कर सकता। मैके बनाम डिक[3] वाले मामले में, लार्ड ब्लैक बर्न ने इस सामान्य सिद्धान्त का कथन इस प्रकार किया है—

> "जहां किसी काम को करने की संविदा में दोनों पक्षों की यह सहमति रही हो कि वैसा कार्य दोनों पक्षों के सहयोग के बिना प्रभावी रूप से नहीं किया जा सकता, वहां संविदा का अर्थान्वयन इस भांति किया जाएगा कि उस कार्य को करने के लिए प्रत्येक ने ही अपने-अपने भाग के आवश्यक कार्य की पूर्ति करने का वचन दिया है, भले ही ऐसे वचन शब्दों में अभिव्यक्त न हों, प्रत्येक पक्ष का क्या और कितना भाग है, यह मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।"

एक व्यक्ति ने रेलवे कम्पनी को भूसे के प्रदाय का वचन दिया और तत्पश्चात् मौखिक करार के आधार पर भूसे के लिए वैगन देने का वचन रेलवे कम्पनी ने दिया, किन्तु रेलवे कम्पनी ने वैगनों की व्यवस्था नहीं की तो यह अवधारित हुआ कि रेलवे कम्पनी अपनी स्वयं की उपेक्षा के कारण उस व्यक्ति को भूसे के प्रदाय से प्रविरत रहने के कारण दायी नहीं मान सकती, भले ही वैगनों की व्यवस्था का करार मौखिक ही रहा हो और लिखित में इस व्यवस्था का वचन न हो।[4]

---

[1] ए० आई० आर० 1966 मध्य प्रदेश 145.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 53.

[3] एल० आर० (1881) 6 ए० सी० 251, 253.

[4] डोमिनियन ऑफ इण्डिया बनाम रामरखामल, ए० आई० आर० 1957 पंजाब 141.

16—377 व्ही एस पी/एन०डी०/81

शून्यकरणीय संविदा के विखण्डन आदि की संसूचना

शून्यकरणीय संविदा का विखण्डन उसी प्रकार और उन्हीं नियमों के अध्यधीन संसूचित या प्रतिसंहृत किया जा सकेगा जो प्रस्थापना की संसूचना या प्रतिसंहरण को लागू हैं ।[1]

प्रस्थापनाओं की संसूचना या प्रतिसंहरण के नियम, भारतीय संविदा अधिनियम की 3 से 9 पर्यन्त धाराओं में दिये गये हैं । वे ही नियम संविदा के विखण्डन की संसूचना या विखण्डन के प्रतिसंहरण की संसूचना पर भी लागू होंगे । इस नियम से यह स्पष्ट हो जाता है, संविदा को विखण्डित करने वाला पक्षकार अपने विखण्डन करने की संसूचना को प्रतिसंहृत कर सकता है, अतः प्रतिसंहरण की सम्पूर्णता भी उपरोक्त नियमों के अध्यधीन होगी ।

पालन के समय की विवेचना

क. अधिनियम की धारा 55 के अन्तर्गत तीन आकस्मिकताएं —

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 55 में संविदाओं के पालन में समय के महत्व की विवेचना की गई है । इस धारा के उपबन्ध इस प्रकार हैं—

जबकि किसी संविदा का एक पक्षकार किसी बात को विनिर्दिष्ट समय पर या उससे पूर्व, या किन्हीं बातों को विनिर्दिष्ट समयों पर या उनसे पूर्व करने का वचन दे और ऐसी किसी भी बात को उस विनिर्दिष्ट समय पर या उससे पूर्व करने में असफल रहे, तब वह संविदा या उसमें से उतनी, जितनी का पालन न किया गया हो, वचनगृहीता के विकल्प पर शून्यकरणीय हो जायगी, यदि पक्षकारों का आशय यह रहा हो कि समय संविदा का मर्म होना चाहिए ।

यदि पक्षकारों का यह आशय न रहा हो कि समय संविदा का मर्म होना चाहिए तो संविदा ऐसी बात को विनिर्दिष्ट समय पर या उससे पूर्व करने में असफल रहने से शून्यकरणीय नहीं होगी, किन्तु वचनगृहीता ऐसी असफलता से उसे हुई किसी भी हानि के लिए वचनदाता से प्रतिकर पाने का हकदार है ।

यदि ऐसी संविदा की दशा में, जो करारित समय पर वचन के पालन में वचनदाता की असफलता के कारण शून्यकरणीय हो, वचनगृहीता ऐसे वचन का करारित समय से भिन्न किसी समय पर किया गया पालन प्रतिगृहीत कर ले तो वचनगृहीता करारित समय पर वचन के अपालन से हुई किसी भी हानि के लिए प्रतिकर का दावा नहीं कर सकेगा जब तक कि उसने ऐसे प्रतिग्रहण के समय अपने ऐसा करने के आशय की सूचना वचनदाता को न दे दी हो ।

इस नियम में तीन आकस्मिकताओं की कल्पना की गई है—

1. जबकि समय संविदा का मर्म हो और वचनदाता विनिर्दिष्ट समय पर अथवा उससे पूर्व वचन का पालन करने में असफल रहे तो वचनगृहीता संविदा को या यदि उसके कुछ भाग का पालन हो चुका हो तो, संविदा के अपालित अवशिष्ट को, विखण्डित कर सकता है ।

2. जबकि समय संविदा का मर्म न हो तो वचनदाता द्वारा विनिर्दिष्ट समय पर या उससे पूर्व पालन की असफलता की दशा में, वचनगृहीता संविदा को विखण्डित नहीं कर सकता किन्तु यदि समय पर संविदा के पालन न किये जाने से वचनगृहीता को कोई हानि हुई हो तो वह वचनदाता से प्रतिकर पाने का हकदार है ।

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 66.

3. यदि वचनदाता संविदा का पालन समय पर या उससे पूर्व करने में असफल रहे किन्तु करारित समय से भिन्न समय पर पालन कर दे और वचनगृहीता उस पालन को प्रतिगृहीत कर ले तो वह ऐसे समयोपरान्त पालन से हुई हानि के लिए प्रतिकर पाने का तभी हकदार हो सकेगा जबकि उसने समयोपरान्त पालन को प्रतिग्रहण करते समय अपनी हानि के प्रतिकर लेने का आशय लिखित सूचना द्वारा वचनदाता पर प्रकट कर दिया हो। प्रतिकर प्राप्त करने के आशय की लिखित सूचना न देकर वचनगृहीता वचन के समयोपरांत पालन को प्रतिग्रहण करके, अपने प्रतिकर प्राप्त करने के अधिकार को समाप्त कर देता है।

ख. समय संविदा का मर्म कब होता है--

1. सामान्य संविदाओं में--जहां पक्षकारों का आशय यह रहा हो कि समय संविदा का मर्म होगा तथा समय को संविदा का मर्म बनाने वाली शर्त संविदा में आज्ञापक रूप से अभिव्यक्त हो तो, न्यायालय द्वारा उस शर्त में साम्या का आश्रय लेकर किसी प्रकार का उपांतरण नहीं किया जा सकता।[1]

समय संविदा का सार है अथवा नहीं, यह प्रश्न मूलतः संविदा की शर्तों तथा पक्षकारों के आशय पर निर्भर है। न्या० वी० डी० तुलजापुरकर के अनुसार, जहां पक्षकारों ने समय को संविदा का सार बनाया हो, वहां भी इसे संविदा के अन्यान्य उपबंधों के साथ ही लक्ष्य किया जायगा। [**मैसर्स हिन्द कांस्ट्रक्शन कांट्रेक्टर्स** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2]]

2. व्यापारिक संविदाओं में--यह बात कि व्यापारिक संव्यवहारों के समय संविदा का सार है अथवा नहीं, पक्षकारों के आशय पर निर्भर करती है तथा ऐसे आशय का अनुमान उस मामले की विभिन्न परिस्थितियों से किया जायगा।[3]

3. स्थावर संपत्ति के अंतरण की संविदा में--समय किसी संविदा का मर्म है अथवा नहीं, यह इस बात पर निर्भर नहीं करता कि संविदा के पालन के लिए कोई समय अनुबंधित था। अचल संपत्ति के विक्रय की संविदा में सामान्यतया यह उपधारणा की जाएगी कि समय संविदा का मर्म नहीं है। अतः ऐसी संविदा में समय को मर्म बनाने वाली परिस्थिति इतनी प्रबल होनी चाहिए जिससे इस उपधारणा का खंडन हो सके कि समय संविदा का मर्म नहीं है।[4] जब तक संविदा में इसका उल्लेख न हो, ऐसी संविदाओं में समय संविदा का मर्म नहीं होता।[5]

4. पट्टे के नवीकरण की संविदा में--इस सम्बन्ध में सामान्य कानून और साम्या दोनों के ही अन्तर्गत, समय संविदा का मर्म होता है क्योंकि नवीकरण हक न होकर विशेषाधिकार है जिसका लाभ परिसीमित अवधि में ही उठाया जा सकता है। [न्या० पी० एस० कैलासम[6]]

---

[1] कातिकचन्द्र **बनाम** भूषणचन्द्र, ए० आई० आर० 1977 कलकत्ता 52(55).

[2] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 720 (724–725).

[3] आन्ध्र प्रदेश राज्य विद्युत परिषद **बनाम** पटेल एण्ड पटेल, ए० आई० आर० 1977 आन्ध्र प्रदेश 172.

[4] गोविन्दप्रसाद **बनाम** हरिदत्त, ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 1005 (1009); गोमथी नायगम पिल्लई **बनाम** पालानी स्वामी नाडार, ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 868, 871.

[5] पुडीलेजारस **बनाम** जानसन पडवार्ड, ए० आई० आर० 1976 आन्ध्र प्रदेश 243.

[6] कालटैक्स इण्डिया लिमिटेड **बनाम** भगवान देई, ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 405.

5. स्थावर सम्पत्ति के प्रतिहस्तान्तरण की संविदा में—ऐसी संविदा में समय संविदा का मर्म होता है । (न्या० आर० एस० बछावत[1])

जिन मामलों में समय संविदा का मर्म हो, वहां वचनगृहीता को इस आधार पर प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए कि उसने संविदा को इसलिए शून्य नहीं किया और उसे इसलिए वर्तमान मानता रहा कि इससे उसे प्रतिकर की राशि भारी मात्रा में प्राप्त होगी[2] ।

पालन के क्रम में सन्दायों के विनियोग

ब्याज सहित ऋण के संदाय के विषय में, सामान्य नियम यह है कि ऋणी द्वारा किया हुआ किसी भी प्रकार का संदाय प्रथमतः ब्याज की, तथा तत्पश्चात्, मूलधन की, तुष्टि में माना जाएगा। [मेका व्यंकटाद्री अप्पाराव बनाम पार्थसारथी अप्पाराव[3]], मेघराज बनाम बयाबाई[4] वाले मामले में, न्यायाधिपति जे० सी० शाह ने, उक्त नियम को सम्पुष्ट किया है । अस्तु, यदि देनदार संदाय के समय किसी प्रकार का निर्देश न दे, तो लेनदार स्वयं के विवेकानुसार, ऐसे संदाय का किसी भी विधितः शोध्य राशि की तुष्टि में विनियोग करने का अधिकारी होगा । अतः, देनदार द्वारा संदाय के समय लेनदार को यह विनिर्दिष्ट किया जाना आवश्यक है कि अमुक संदाय का अमुक प्रकार से विनियोग किया जाए । यदि देनदार का निर्देश यह हो कि अमुक संदाय का विनियोग, मूलधन की तुष्टि में किया जाएगा, तो भी लेनदार उसका विनिर्दिष्ट रीति से विनियोग करने के लिए बाध्य नहीं है, किन्तु ऐसी दशा में उसे वह राशि वापस कर देनी चाहिए । [लाइफ इन्शोरेन्स कारपोरेशन बनाम समरेन्द्रनाथ राय[5]; कुमारी ओमती कलिमा देवी बनाम रघुनाथ प्रसाद[6], देखिए । एक मामले में ब्याज सहित धन की डिक्री हुई तथा निर्णीत ऋणी ने डिक्री किया हुआ धन न्यायालय में जमा कर दिया जिसके साथ यह निर्देश नहीं था कि उसका विनियोग किस भांति किया जाए । यह अवधारित हुआ कि डिक्रीदार उस राशि का प्रथमतः ब्याज में विनियोग करने का अधिकारी है । [लाइफ इन्शोरेन्स कार्पोरेशन बनाम गदाधर डे[7] ।]

पक्षकारों के किन्हीं चालू संव्यवहारों में यह सम्भव है कि उनके बीच लेन-देन के एक से अधिक और सुभिन्न खाते हों तो यह कठिनाई उत्पन्न हो सकती है कि देनदार द्वारा किसी एक बार के किए हुए संदाय का कौन-से खाते में विनियोग किया जाए । ऐसे सुभिन्न खातों में देनदार की ओर से किये गये संदाय के, लेनदार द्वारा, विनियोग की **तीन अवस्थायें** हो सकती हैं—1. जबकि देनदार की ओर से या अन्य परिस्थितियों से यह स्पष्ट हो कि किसी एक समय किए हुए संदाय का विनियोग अमुक खाते में किया जाना है, 2. जबकि देनदार की ओर से या अन्य परिस्थितियों से यह स्पष्ट न हो कि किस अमुक खाते में विनियोग होना है और लेनदार स्वयं अपने विवेकानुसार उसे किसी भी खाते में उपयोजित करे, और 3. विनियोग की वह रीति जबकि न देनदार की ओर से यह स्पष्ट हो कि किस खाते में

---

[1] हसमनरूनी मालक बनाम मोहनसिंघ, ए० आई० आर० 1974 बम्बई 136.

[2] एन० सुन्दरेस्वरन बनाम श्रीकृष्ण रिफाइनरी, ए० आई० आर० 1977 मद्रास 109 में न्या० मू० रामप्रसादराव का निर्णय

[3] ए० आई० आर० 1922 प्रिवी काउन्सिल 230.

[4] ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 161.

[5] ए० आई० आर० 1979 कलकत्ता 243, 244, 245.

[6] ए० आई० आर० 1979 पटना 115.

[7] ए० आई० आर० 1978 कलकत्ता 419.

विनियोग होना है, और न लेनदार ही स्वविवेक से किसी विशिष्ट खाते में विनियोग करे। इन तीनों अवस्थाओं के लिए, भारतीय संविदा अधिनियम में, तीन पृथक्-पथक् नियमों का उपबन्ध किया गया है।

संदायों के विनियोग के तीन उपबन्ध—

(क) जबकि विनियोग का निर्देश उपदर्शित हो—जहां कि कोई ऋणी, जिस पर एक व्यक्ति के कई सुभिन्न ऋण हों, उस व्यक्ति को या तो इस अभिव्यक्त प्रज्ञापना सहित या ऐसी परिस्थितियों में जिनसे विवक्षित हो कि वह संदाय किसी विशिष्ट ऋण के उन्मोचन के लिए उपयोजित किया जाना है, कोई संदाय करता है वहां, उस संदाय को, यदि वह प्रतिगृहीत कर लिया जाए, तदनुसार उपयोजित करना होगा[1]।

निम्न दो दृष्टान्त इसी नियम के अन्तर्गत आते हैं—

(i) अन्य ऋणों के साथ-साथ एक वचनपत्र पर, जो पहली जून को शोध्य है, ख का क 1,000 रुपये का देनदार है। वह ख को उसी रकम के किसी अन्य ऋण का देनदार नहीं है। पहली जून को ख को क 1,000 रुपये देता है। यह संदाय वचनपत्र का उन्मोचन करने के लिए उपयोजित किया जाना है।

(ii) अन्य ऋणों के साथ-साथ ख को क 567 रुपये का देनदार है। क से ख इस राशि के संदाय की लिखित मांग करता है। ख को क 567 रुपये भेजता है। यह संदाय उस ऋण के उन्मोचन के लिए उपयोजित किया जाना है जिसके संदाय की मांग ख ने की थी।

ऊपर के दोनों दृष्टान्तों में, उन मामलों की परिस्थिति से ही यह विवक्षित है कि संदाय किस विशिष्ट ऋण के उन्मोचन के लिए उपयोजित किया जाना है। इसी प्रकार, जनवरी की किस्त के बकाया के लिए जब कलक्टर के यहां से एक नोटिस आया कि 28 मार्च से पूर्व संदाय न किये जाने पर भूमि का विक्रय कर दिया जाएगा और व्यतिक्रमी ने 28 मार्च को ही संदाय कर दिया किन्तु कलक्टर ने उसका विनियोग मार्च की किस्त में कर लिया तो वह विनियोग इस नियम के प्रतिकूल या नगण्य माना गया क्योंकि विनियोग जनवरी की किस्त के लिए ही किया जाना था[2]।

यह नियम उसी दशा में लागू होता है जबकि एक से अधिक ऋण हों किन्तु उन मामलों में लागू नहीं होता जहां एक ही ऋण किस्तों में चुकाया जाना हो। अतः एक ही ऋण की जब एक से अधिक किस्तें बाकी हों तो, लेनदार, देनदार के निर्देशानुसार विनियोग करने के लिए बाध्य नहीं है[3]।

(ख) लेनदार के विवेकानुसार विनियोग—जहां कि ऋणी ने यह प्रज्ञापित नहीं किया है और कोई अन्य ऐसी परिस्थितियां नहीं हैं जिनसे यह उपदर्शित होता हो कि वह संदाय किस ऋण के लिए उपयोजित किया जाना है वहां लेनदार स्वविवेकानुसार उसे ऐसे किसी विधिपूर्ण ऋण मद्धे उपयोजित कर सकेगा जो ऋणी द्वारा उसे वस्तुतः शोध्य और देय हो, चाहे उसकी वसूली वादों की परिसीमा सम्बन्धी तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा वारित हो या न हो[4]।

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 59.

[2] जोगेन्द्रमोहन सेन बनाम उमानाथ गुहा, आई० एल० आर० (1908) 35 कलकत्ता 636.

[3] फजल हुसैन बनाम जीवनअली, (1906) इलाहाबाद डब्ल्यू० एन० 135.

[4] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 60.

न्या॰ जे॰ सी॰ शाह के अनुसार[1] सामान्य नियम यह है कि ऋण के मद्धे किया हुआ संदाय प्रथम ब्याज की ओर और तत्पश्चात्, यदि अवशेष रहे तो, मूलधन की ओर उपयोजित किया जाएगा, जब तक कि देनदार यह स्पष्ट न कर दे कि मूलधन की ओर उपयोजित किया जाना है।

इस नियम के अनुसार, लेनदार को देनदार द्वारा किए हुए संदाय को स्वविवेकानुसार उपयोजित करने का अधिकार तो है किन्तु, नियम में यह अभिव्यक्ततः निर्दिष्ट है कि लेनदार, देनदार द्वारा किए हुये संदाय को, किसी अविधिपूर्ण ऋण के मद्धे उपयोजित नहीं कर सकता। इस नियम का तात्पर्य केवल यह है कि देनदार को संदाय के समय ही यह निर्दिष्ट करना चाहिए, या परिस्थितियों से उपदर्शित होना चाहिए कि संदाय का उपयोजन किस विशिष्ट ऋण के मद्धे करना है, अन्यथा यह अधिकार कि उपयोजन किस ऋण के मद्धे किया जाना है, लेनदार को न्यागत हो जाता है और लेनदार ऐसे अधिकार का किसी भी क्षण प्रयोग कर सकता है[2]।

(ग) कालक्रमानुसार या अनुपाततः उपयोजन—जहां कि दोनों पक्षकारों में से कोई भी विनियोग नहीं करता वहां वह संदाय समय क्रमानुसार ऋणों के उन्मोचन में उपयोजित किया जाएगा, चाहे वे ऋण वादों की परिसीमा सम्बन्धी तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा वारित हों या न हो। यदि ऋण समकालिक हैं तो संदाय हर एक उन्मोचन में अनुपाततः उपयोजित किया जाएगा[3]।

यह नियम **दो विकल्पों** की कल्पना करता है—1. जब ऋण समकालिक न होकर कुछ पूर्व और कुछ पश्चात् के हों तो, संदाय का विनियोग पूर्वातिपूर्व ऋण के मद्धे किया जाएगा, और 2. जहां सभी ऋण समकालिक हों, वहां एक ही संदाय का सभी ऋणों के अनुपात से विनियोग किया जाएगा। मामले की परिस्थितियां और पक्षकारों के संव्यवहार का प्रायिक ढंग भी इस विषय में सहायक हो सकता है।

असम्भव कार्य करने का करार

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 56 में, असम्भव कार्य करने के करारों के विषय में, इस प्रकार कथन किया गया है—

> "वह करार, जो ऐसा कार्य करने के लिए हो, जो स्वतः असंभव है, शून्य है। ऐसा कार्य करने की संविदा, जो संविदा के किए जाने के पश्चात् असंभव या किसी ऐसी घटना के कारण, जिसका निवारण वचनदाता नहीं कर सकता था, विधिविरुद्ध हो जाय तब शून्य हो जाती है जब वह कार्य असंभव या विधिविरुद्ध हो जाए।"

जहां कि एक व्यक्ति ने ऐसी कोई बात करने का वचन दिया हो जिसका असंभव या विधिविरुद्ध होना वह जानता था या युक्तियुक्त तत्परता से जान सकता था और वचनगृहीता नहीं जानता था, वहां जो कोई हानि ऐसे वचनगृहीता को उस वचन के अपालन से हो, उसके लिए ऐसा वचनदाता ऐसे वचनगृहीता को प्रतिकर देगा।

इस नियम के विषय में, अधिनियम में निम्न पांच दृष्टान्त दिये गये हैं—

(क) जादू से गुप्त निधि का पता चलाने का ख से क करार करता है। यह करार शून्य है।

---

[1] मेघराज बनाम बयाबाई, ए॰ आई॰ आर॰ 1970 एस॰ सी॰ 161.

[2] कमिश्नर, इनकम टैक्स बनाम महाराजा दरभंगा, आई॰ एल॰ आर॰ 12 पटना, 318.

[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 61.

(ख) क और ख आपस में विवाह करने की संविदा करते हैं, विवाह के लिए नियत समय से पूर्व क पागल हो जाता है। संविदा शून्य हो जाती है।

(ग) क, जो पहले से ही ग से विवाहित है और जिसके लिए बहुपत्नीत्व उस विधि द्वारा, जिसके वह अध्यधीन है, निषिद्ध है, ख से विवाह करने की संविदा करता है। उसके वचन के अपालन से ख को हुई हानि के लिए क को उसे प्रतिकर देना होगा।

(घ) क संविदा करता है कि वह एक विदेशी पत्तन पर ख के लिए स्थोरा भरेगा। तत्पश्चात् क की सरकार उस देश के विरुद्ध जिसमें वह पत्तन स्थित है, युद्ध की घोषणा कर देती है। संविदा तब शून्य हो जाती है, जब युद्ध घोषित किया जाता है।

(ङ) ख द्वारा अग्रिम दी गई राशि के प्रतिफल पर छह मास के लिए एक नाट्यगृह में अभिनय करने की संविदा क करता है। अनेक अवसरों पर क बहुत बीमार होने के कारण अभिनय नहीं कर सकता। उन अवसरों पर अभिनय करने की संविदा शून्य हो जाती है।

असम्भाव्यता के सिद्धान्त का सामान्य अर्थ

(क) अधिनियम की धारा 32 और धारा 56 का भेद--करार की असम्भाव्यता के सिद्धान्त को इंग्लैण्ड की विधि में **डाक्ट्रिन ऑफ फ्रस्ट्रेशन** के नाम से जाना जाता है। **फ्रस्ट्रेशन** का शाब्दिक अर्थ नैराश्य, वैफल्य, भग्नता आदि है। अस्तु, असम्भाव्यता के सिद्धान्त को वैफल्य, नैराश्य या भग्नता के सिद्धान्त का नाम भी दिया जा सकता है।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 56 में एक सकारात्मक विधि को स्थान दिया गया है जिसका अर्थ यह है कि असम्भाव्यता के अर्थ का अवधारण पक्षकारों के आशय पर निर्भर नहीं करता। तात्पर्य यह है कि जहां पक्षकारों का अभिव्यक्त अथवा विवक्षित आशय स्वयं संविदा के ही किसी निबन्धन में इस प्रकार अनुध्यात हो कि किसी विशेष घटना के घटित होने पर संविदा का उन्मोचन हो जाएगा और संविदा अपालनीय हो जाएगी, वहां संविदा पक्षकारों के आशय के अनुसरण में समाप्त होगी न कि धारा 56 के अन्तर्गत। जहां संविदा के पालन की असम्भाव्यता संविदा के ही किसी निबन्धन के कारण हो, वह भारत में समाश्रित संविदाओं के वर्ग में आती है जिस पर संविदा अधिनियम की धारा 56 न लागू होकर धारा 32 लागू होगी जबकि इंग्लैण्ड की विधि में ऐसे समाश्रित करारों पर भी **फ्रस्ट्रेशन** के सिद्धान्त को लागू किया जाता है। यह सिद्धान्त उच्चतम न्यायालय के न्या० जे० एम० शैलत द्वारा दिये गये निर्णय में प्रतिपादित हुआ है[1]।

(ख) आन्वयिक कपट के अर्थ में असम्भाव्यता--यह उस क्षेत्र की असम्भाव्यता है जहां किसी प्रचलित विधि के उपबन्धों के कारण किसी कार्य का होना असम्भव हो किन्तु अज्ञानवश करार को विफल करने वाली विधि निषिद्ध अवस्थाओं को विदित न किया जा सका हो अथवा वहां जहां कि करार को विफल बनाने वाली विधि निषिद्ध अवस्थाएं एक पक्ष को ज्ञात किन्तु दूसरे को अज्ञात हों। धारा 56 के दृष्टान्त (ग) में वर्णित, पूर्वत: विवाहित व्यक्ति का किसी अन्य से विवाह करने का वचन, जबकि बहुपत्नीत्व विधि निषिद्ध हो और एक पक्ष के पूर्वत: विवाहित होने का तथ्य दूसरे पक्ष को ज्ञात न हो, इसी प्रकार की असम्भाव्यता का उदाहरण है। यह एक प्रकार का आन्वयिक कपट है, अत: इस कपट के आधार पर की हुई प्रस्थापना या उसका प्रतिग्रहण न केवल अपालनीय है, वरन

---

1 नैहाटी जूट मिल्स बनाम खयालीराम जगन्नाथ, ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 522 (527).

कपट के दोषी पक्षकार को, इस कपट के दण्ड-स्वरूप जिससे कपट किया गया है, उस पक्षकार को प्रतिकर देने की बाध्यता का उपबन्ध किया गया है। ऐसे आन्वयिक कपट की उपधारणा केवल निम्न अवस्थाओं में ही सम्भव है—

(i) यह किसी एक पक्ष के तथ्यगत ज्ञान और दूसरे पक्ष के तथ्यगत अज्ञान के कारण प्रोद्भूत होना चाहिए। जहां दोनों पक्षों से ही करारगत तथ्य अज्ञात हो, वहां करार, असम्भाव्यता के कारण, संविदा अधिनियम की धारा 56 के अन्तर्गत शून्य न होकर, अधिनियम की धारा 20 के अन्तर्गत दोनों पक्षों की तथ्य संबंधी भूल के कारण शून्यकरणीय होगा।

(ii) यह विधिविषयक अज्ञान न हो। उपरोक्त दृष्टान्त (ग) में यदि क और ख दोनों को अपने विवाह का करार करते समय क के पूर्णतः ग से या अन्य किसी से भी विवाहित होने का ज्ञान हो, किन्तु दोनों को ही या किसी एक को भी, बहुपत्नीत्व की विधिनिषिद्धता के उपबन्ध का ज्ञान न हो तो करार, अधिनियम की धारा 56 के अन्तर्गत असम्भाव्यता के कारण शून्य न होकर, धारा 23 के अन्तर्गत, करार के उद्देश्य का विधिनिषिद्ध होने के कारण शून्य होगा और इस अन्तर का प्रभाव यह होगा कि ख क को कोई प्रतिकर देने के लिए बाध्य नहीं कर सकेगा।

(ग) असम्भाव्यता के आधारों का वर्गीकरण—असम्भाव्यता के सिद्धांत के लागू होने के आधारों का सुविधाजनक वर्गीकरण, इस प्रकार किया जा सकता है—

1. **दैहिक आधार**—जिसमें बीमारी, अंग-भंग और अन्य शारीरिक दोष की वे अवस्थाएं सम्मिलित हैं जिनके कारण करार का पालन सम्भव न रहे।

2. **दैविक आधार**—जिसमें पागलपन, मानसिक विक्षिप्तता, बाढ़, भूकम्प, अग्निकांड, दुर्भिक्ष या अन्य ऐसी विभीषिकायें सम्मिलित हैं, जिनसे करार का पालन सम्भव न रहे।

3. **भौतिक आधार**—जिसमें भौतिक आधार अथवा नैसर्गिक नियमों के प्रतिकूल किये जाने वाले कार्य या वे कार्य जो मानवी सामर्थ्य से परे हों, सम्मिलित हैं। यहां, असम्भाव्यता पूर्वतः और आद्योपान्त विद्यमान रहती है।

4. **राजनैतिक आधार**—जिसमें युद्ध, आन्दोलन, या अन्य आकस्मिक राजनीतिक परिवर्तन की अवस्थाएं में सम्मिलित हैं।

5. **विधिक आधार**—इसमें राज्य की अधिनियमितियों द्वारा अधिरोपित वे अवस्थाएं सम्मिलित हैं जिनके कारण कोई पूर्व में किया गया करार, पश्चात्‌वर्ती किसी अधिनियमिति की संक्रिया के कारण अविधिमान्य हो जाए।

असम्भाव्यता के मामलों में आवश्यक तत्व—

बालम जी लाल जी बनाम अनिलचरन[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति सेन गुप्ता ने भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 56 के अन्तर्गत अनुतोष प्राप्त करने के लिए निम्न शर्तें आवश्यक बताई हैं—

(i) वचनदाता और वचनगृहीता के मध्य किसी विधिमान्य संविदा का अस्तित्ववान होना आवश्यक है।

(ii) यह आवश्यक है कि ऐसी संविदा अथवा उसके किसी भाग का पालन किया जाना शेष रहा हो। **निजाम ज्वैलरी ट्रस्ट वाले मामले**[2] में मूल्यवान रत्नों के विक्रय

[1] ए० आई० आर० 1975 कलकत्ता 93 (97).

[2] ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 17.

की संविदा के निमित्त निविदा में आमन्त्रित की गई थीं। प्रस्थापकों को निविदा के साथ अग्रिम के रूप में क्रय मूल्य का अंश प्रस्तुत करना था तथा निविदा के स्वीकार कर लेने के पश्चात् प्रस्थापक द्वारा शेषक्रय मूल्य का संदाय करने पर रत्नों का परिदान किए जाने की शर्त थी। इसी बीच न्यायालय में वाद संस्थित हो जाने के कारण न्यायालय ने एक अन्तरिम आदेश द्वारा विक्रय का अन्तिम कार्य प्रतिषिद्ध कर दिया। न्या० ए० पी० सेन ने यह विनिश्चित किया कि विक्रय की संविदा असम्भाव्यता के सिद्धान्त पर विफल हो गई।

(iii) यह आवश्यक है कि संविदा किए जाने के पश्चात् उसका पालन असम्भव हो गया हो।

असम्भाव्यता के अर्थ का विस्तार

संविदा करने के पश्चात् करारगत कार्य के असम्भव हो जाने के अर्थ में अनुध्यात असम्भाव्यता, युक्तियुक्त व्यापारिक अर्थ में वास्तविक असम्भाव्यता है जो केवल, अनुमान, प्रेरणा अथवा कल्पना पर आधारित न हो जैसे, विवाह के करार में, वधू यह घोषणा कर दे कि अब उसे विवाह से अरुचि हो गई है अथवा वर या वधू के माता-पिता यह घोषणा कर दें कि उनकी सन्तान उनके अनुशासन में नहीं है, तो यह वास्तविक असम्भाव्यता नहीं मानी जा सकती[1]। इस प्रकार, **असम्भाव्यता, भौतिक, दैहिक, या विधिक प्रकार की होनी चाहिए न कि वचनदाता की क्षमता अथवा उसकी स्थिति पर आधारित।** अतः वचन के पालन में अत्यधिक या अननुमानित व्यय की सम्भाव्यता, वचन के पालन की असम्भाव्यता नहीं मानी जा सकती[2]। वचनदाता को दायित्व से मुक्त करने वाली असम्भाव्यता ऐसी होनी चाहिए कि जिससे कि वचनदाता द्वारा वचन का समयानुसार पालन असम्भव हो गया हो अथवा ऐसी भीषण कठिनाई आ गई हो जिसके कारण पालन न किया जा सके।

न्यायमूर्ति वी० रामस्वामी के अनुसार असम्भाव्यता का अर्थ, आत्मोत्प्रेरित असम्भाव्यता कदापि नहीं है[3]। किन्तु यदि दूसरा पक्ष, करारगत कार्य को असम्भव बना दे तो, इसे असम्भाव्यता माना जाएगा। यदि करार पश्चात्वर्ती किसी ऐसी घटना से विधिविरुद्ध हो जाए जिस पर कि वचनदाता का वश नहीं था, तो उसे संविदा अधिनियम की धारा 56 के दूसरे पैरा के अन्तर्गत, असम्भाव्यता माना जाएगा किन्तु, यदि करार को विधिविरुद्ध बना देने वाली घटना वचनदाता के वश में रही हो और वह उसे विधिविरुद्ध होने से बचाने की अवस्था में रहा हो तो वह असम्भाव्यता का आधार नहीं है। किन्तु यह विधिविरुद्धता के कारण उद्‌भूत असम्भाव्यता के विषय में है। विधिविरुद्धता की परिस्थिति से अन्य किसी परिस्थिति के कारण उत्पन्न असम्भाव्यता के क्षेत्र में कार्य के स्वतः असम्भव हो जाने में और किसी पक्षकार द्वारा उसे असावधानी या उपेक्षा से असम्भव बना दिये जाने में, कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता। **हर प्रसाद चौबे बनाम भारत संघ**[4] वाले मामले में, वादी ने रेलवे के कोयले का नीलाम इस विश्वास पर क्रय किया कि उसे इस माल का परिवहन करने दिया जाएगा, किन्तु कोल कमिश्नर के उपेक्षापूर्ण व्यवहार के कारण वादी उसका परिवहन न कर सका जिसके परिणामस्वरूप कोयले की मात्रा में क्षति हो गई और रेलवे ने उसे अल्प कीमत पर देने से इंकार कर दिया कि उनके पास अब कोयले की क्षति के लिए कारण बताना सम्भव नहीं रहा। उच्चतम न्यायालय के निर्णय में, न्या० ए० अलगिरिस्वामी

---

1 देखिए राजाराम बनाम डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, तन्जोर, 8 आई० सी० 565.

2 टैनेन्ट्स बनाम विलसन, 1917 ए० सी० 495.

3 बुर्बलिंग एजेंसी बनाम वी० टी० सी० पोरियास्वामी नाडार, ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 110.

4 ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 2380.

ने यह अभिनिर्धारित किया कि इस मामले में नैराश्य सिद्धान्त लागू होता है तथा वादी निक्षिप्त राशि की वापसी का हकदार है ।

निष्पादित संविदा पर असम्भाव्यता लागू नहीं

असम्भाव्यता का यह सिद्धान्त केवल करार के विषय में लागू होता है, अस्तु जहां करार के आधार पर या करार के स्थान पर कोई कार्य सम्पन्न हो चुका हो, जैसे कि स्थावर संपत्ति का अन्तरण, तो **पट्टे पर अन्तरित की गई सम्पत्ति के संपूर्ण हुये कृत्य पर यह सिद्धांत लागू नहीं होता ।** अतः पट्टे पर उठाये गए भवन के विनष्ट हो जाने से, पट्टेदारी का करार शून्य नहीं हो जाता और न ही ऐसी अवस्था में, उस करार का उन्मोचन हो जाता है । (थॉमस **बनाम** मोरममार बैसिलियस ओगेव आई० कैथोलिक्स, मैट्रोपोलिटन, मालंकार[1]), असम्भाव्यता के सिद्धान्त को लागू करने के लिए, यह आवश्यक है कि आगन्तुक या अदृष्य घटना के कारण करार का आधार ही नष्ट या समाप्त हो गया हो अर्थात् जिसके कारण करार का मूल ही क्षत-विक्षत हो गया हो ।

श्रीमती सुशीला देवी बनाम **हरीसिंह**[2] वाले मामले में न्या० के० एस० हेगडे ने तथा **एच० वी० राजन बनाम सी० एन० गोपाल**[3] वाले मामले में न्या० जगनमोहन रेड्डी ने यह अभिनिर्धारित किया है कि **असम्भाव्यता का सिद्धांत पट्टेदारी पर लागू नहीं होता, जिसका कारण यह है कि पट्टेदारी की संविदा एक सम्पूरित संविदा है तथा इसके आधार पर सम्पत्ति का अन्तरण तात्कालिक होता है । तात्पर्य यह है कि असम्भाव्यता का सिद्धान्त निष्पादित संविदाओं पर लागू न होकर केवल निष्पाद्य संविदाओं पर लागू हो सकता है,** क्योंकि निष्पन्न (कनक्लूडेड) हस्तान्तरण और निष्पाद्य संविदाओं में भेद है तथा जिन घटनाओं से कोई सम्पूरित संविदा का उन्मोचन हो सकता है उनसे कोई निष्पन्न हस्तान्तरण अविधिमान्य नहीं हो जाता । **सत्यव्रत घोष बनाम मगनीराम**[4] वाले मामले में, यह स्पष्टतः कहा गया था कि असम्भाव्यता का सिद्धान्त संविदा के उन्मोचन की विधि का भाग है और किसी अपरिमेय असम्भाव्यता अथवा अवैधता के आधार पर इसका प्रयोग भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 56 की विषयवस्तु है तथा यह धारणा सही नहीं है कि यह सिद्धान्त केवल भौतिक असम्भाव्यता के क्षेत्र तक सीमित है और न ही यह कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 56 के अन्तर्गत असम्भाव्यता का सिद्धान्त निःशेषी नहीं है । न्या० जे० सी० शाह (जैसा कि वह तब थे) का अभिमत यह है कि यह सिद्धान्त भारतीय विधि में निःशेषी है जिसे इंग्लैण्ड की विधि में समाहित अन्य किसी सदृश्यता के आधार पर विस्तृत नहीं किया जा सकता[5] ।

असम्भाव्यता की सीमा

उपरोक्त सुशीला देवी वाले मामले में यह विनिश्चित किया गया है कि धारा 56 में जिस असम्भाव्यता को अनुध्यात किया गया है वह ऐसी किसी बात तक सीमित नहीं है जो मानवीय दृष्टि से असम्भव हो गई हो । **यदि संविदा का पालन उसके उद्देश्य और अभिप्राय से जो कि पक्षकारों का करार के समय रहा था, अव्यवहार्य अथवा व्यर्थ हो जाता है तो यह मानना होगा कि संविदा का पालन असम्भव हो गया है परन्तु जो भी अपरिमेय घटना हो वह ऐसी होनी चाहिए जिससे कि संविदा का आधार ही समाप्त हो जाए अर्थात् जो संविदा के मूल पर प्रहार करें ।**

---

[1] ए० आई० आर० 1979 केरल 156.

[2] ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 1756.

[3] ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 261; श्रीमती श्यामाकुमारी बनाम एजाज अहमद, ए० आई० आर० 1977 इलाहाबाद 376 भी देखिए.

[4] ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 44.

[5] ध्रुवदेव चन्द बनाम हरमोहिन्दर सिंह, ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 1024.

समझौते की डिक्री पर असम्भाव्यता लागू नहीं

रानी प्रभावती बनाम **संलेश नाथ**[1] वाले मामले में पक्षकारों के मध्य समझौता हो जाने पर न्यायालय द्वारा पारित की गई डिक्री की एक शर्त के अनुसार एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को संदेय, वसीयत धन का भार समझौते से संलग्न एक अनुसूची में वर्णित अचल सम्पत्तियों पर रखा गया था, किन्तु कालान्तर में वे अचल सम्पत्तियां पाकिस्तान राज्य में निहित हो गई और वसीयत धन का संदाय करने की बाध्यता धारण करने वाले पक्षकार को उन सम्पत्तियों से होने वाली आय समाप्त हो गई तथा उनका प्रतिकर भी प्राप्त नहीं हुआ। यह निर्णीत हुआ कि वसीयत धन के संदाय का सम्बन्धित पक्ष पर व्यक्तिगत दायित्व था। अतः ऐसी दशा में असंभाव्यता का सिद्धांत समझौते की डिक्री पर लागू नहीं होता क्योंकि समझौते के आधार पर डिक्री पारित हो जाने पर, समझौता संविदा मात्र न रहकर न्यायालय की मुद्रा से संपुष्ट एक डिक्री में परिणत हो जाता है और जब तक किसी विधिक कार्यवाही से वह डिक्री अपास्त न हो जाए तब तक वह पक्षकारों पर बाध्यकारी होती है।

असम्भाव्यता सम्बन्धी दो अन्य दृष्टान्त

दृष्टान्त : र ने, जो कि किसी कृषि भूमि और उस पर स्थित एक बंगले का स्वामी था, उस सबको विक्रय करने की संविदा क से की तथा हक के विलेखों का परिदान कर के संविदा के भागिक पालन में उस संपत्ति का आधिपत्य भी क को दे दिया। दोनों पक्षों ने क्रय-विक्रय की अनुमति के लिए प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया जिसे कि प्रांत अधिकारी ने इस आधार पर मंजूर नहीं किया कि क्रेता के पास जिलाधिकारी का यह प्रमाण पत्र नहीं था कि वह इस भूमि का कृषि के लिए व्यक्तिगत रूप से प्रयोग करेगा। क ने तत्पश्चात् जिलाधिकारी को प्रार्थनापत्र देकर उक्त प्रमाणपत्र प्राप्त कर लिया तथा इस आधार पर क्रय-विक्रय की मंजूरी भी प्राप्त हो गई किन्तु र ने संविदा का यह कहकर निराकरण करना चाहा कि संविदा का पालन प्रांत अधिकारी की नामंजूरी के समय ही असंभव हो चुका था तथा जिलाधिकारी के प्रमाणपत्र की तत्पश्चात् कोई विधिमान्यता नहीं रही थी। न्या० जसवंतसिंह ने इस मामले में यह निर्णय दिया कि प्रांत अधिकारी की नामंजूरी से संविदा का पालन असंभव नहीं हुआ था तथा जिलाधिकारी द्वारा दिया गया प्रमाण-पत्र विधिमान्य था[2]।

2. भूमि के विक्रय के करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए संस्थित किए गए एक वाद में प्रतिवादी का अभिवाक् यह था कि चकबंदी के क्रम में, उसे करारित भूमि के बदले नए प्लाट आबंटित किए जाने के कारण करार का विनिर्दिष्ट पालन संभव नहीं रहा। अंततः उच्चतम न्यायालय के न्या० पी० एन० सिंघल द्वारा यह निर्णीत किया गया कि वादी का वाद खारिज होने योग्य था[3]।

सत्यव्रत घोष बनाम मगनीराम का मामला

सत्यव्रत घोष बनाम **मगनीराम**[4] में प्रतिवादी कंपनी जो कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपरोक्त मामले में प्रत्यर्थी हुई, बृहत्तर कलकत्ता में धुकरिया झील के समीपवर्ती क्षेत्र में स्थित, भूमि के बहुत बड़े भाग की स्वामिनी थी। कंपनी ने इस भूमि को, निवास-स्थल के योग्य बनाने के आशय से एक योजना, लेक-कालोनी स्कीम नं० 1 के नाम से चालू की तथा इस योजना को अग्रसर करने की दृष्टि से भूमि के पूरे क्षेत्र को बहुत से भू-भागों (प्लाट्स) में विभाजित किया तथा उनके विक्रय के हेतु, इच्छुक क्रेताओं से, प्रस्थापनायें आमंत्रित कीं। भूमि के इन भू-भागों के विक्रय के लिए, कंपनी की योजना यह थी कि वह विभिन्न क्रेतागणों से, करार करे तथा करार के विलेख के समय, कुछ अग्रिम धन ले। इसी दौरान, कंपनी ने उक्त भूमि पर, सड़क व नालियां आदि बनाने का कार्य प्रारंभ कर दिया।

---

[1] ए० आई० आर० 1978 कलकत्ता 147.

[2] गोविन्द भाई बनाम गुलाम अब्बास, ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 1019.

[3] प्यारेलाल बनाम होरिलाल, ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 1226.

[4] ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 44.

5 अगस्त 1940 को, विजय कृष्णराव, प्रतिवादी सं० 2 ने उक्त भूमि के भू-भागों के क्रय के लिए 101 रुपया अग्रिम धन देकर, कंपनी के साथ क्रय का करार किया। 30 नवम्बर, 1941 को करार के आशय के हेतु क्रेता ने अपीलार्थी (वादी) सत्यव्रत घोष को, अपना समनुदेशिती नियुक्त किया। 12 नवम्बर, 1941 को, चौबीस-परगना के जिलाधीश ने भारत प्रतिरक्षा नियम के नियम 79 के अधीन, उक्त स्कीम की कुछ भूमि का एक आदेश द्वारा सैन्य उपयोग के लिए अधिग्रहण कर लिया। भूमि का शेष भाग भी, 20 दिसम्बर 1941 के एक अन्य आदेश द्वारा, कुछ समय पश्चात् अधिगृहीत कर लिया गया।

नवम्बर, 1943 में, कंपनी ने, उक्त विजय कृष्ण राव को, इस आशय की, लिखित सूचना दे दी कि उक्त भूमि पर सड़क व नालियों का कार्य, युद्ध के दौरान नहीं कराया जा सकता तथा यदि वे चाहें तो करार को विखंडित मानकर अपना अग्रिम धन वापस ले सकते हैं, अथवा जिस दशा में, भूमि है, उसका अंतरण करा लें। इन परिस्थितियों में, पूर्व की शर्तों का पालन करना कंपनी के लिए संभव नहीं बताया गया। वादी-अपीलार्थी ने, प्रतिवादी कंपनी की बात को नहीं माना और पूर्व के ही अनुबंधों का पालन करने हेतु, भूमि के अंतरण का आग्रह किया। प्रतिवादी द्वारा असमर्थता प्रकट करने पर, वादी ने कंपनी के विरुद्ध, 5 अगस्त 1940 के करार के अस्तित्वयुक्त होने, और करार में लिखित शर्तों के ही अनुसार, शेष, विक्रय धन देकर भूमि के अपने पक्ष में, सड़क व नालियों का प्रतिवादी द्वारा निर्माण कराया जाकर अंतरित किये जाने के हक की घोषणा के लिए एक वाद संस्थित कर दिया। इस वाद में विजय कृष्ण राव को भी प्रतिवादी बनाया गया।

प्रतिवादी का मुख्य बचाव यह था कि करार का, असम्भाव्यता के कारण, उन्मोचन हो गया क्योंकि युद्ध की आकस्मिक घटनाओं से अनुबन्ध का मुख्य भाग, अपालनीय हो चुका था। विचारण और प्रथम अपील न्यायालय ने, असम्भाव्यता के अभिवाक् को स्वीकार नहीं किया किन्तु द्वितीय अपील में, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने असम्भाव्यता के अभिवाक् को स्वीकार करके, वाद खारिज कर दिया। वादी ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत की जिसमें भारत के महान्यायवादी की ओर से तीन तर्क ये उठाये गए कि 1. इंग्लैण्ड की विधि में असम्भाव्यता का अर्थ, भारत की विधि में लागू नहीं होता, कि 2. यदि इंग्लैण्ड का सिद्धान्त लागू भी होता हो तो भूमि के विक्रय के करारों पर, वह सिद्धान्त लागू नहीं माना जा सकता और यह कि 3. मामले में स्वीकृत तथ्यों के आधार पर ऐसी कोई असम्भाव्यता थी ही नहीं जिससे कि करार का उन्मोचन हो सकता हो।

मुख्य विचारणीय प्रश्न ये थे—

1. क्या भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 56 के उपबन्धों के होते हुए, इंग्लैण्ड की विधि का असम्भाव्यता सिद्धान्त भारत में लागू हो सकता है और यदि हो सकता हो तो क्या वह भूमि के विक्रय के करार पर भी लागू होता है ?

2. तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर, क्या अन्तरण का निष्पादन करना, संविदा के पालन का आधार है और क्या असम्भाव्यता तथा अन्य कारणों से अब पालन सम्भव नहीं रहा है ?

न्या० बी० के० मुखर्जी ने अपने निर्णय में, इस प्रकार अभिनिर्धारित किया—

1. संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 56 के अधीन, [असम्भाव्यता का सिद्धान्त संविदा भंग के नियमों का ही एक भाग है और इस धारा के अधीन यह आवश्यक है कि करारगत कार्य का किया जाना असम्भव हो गया हो। **असम्भाव्यता** शब्द का उपयोग, भौतिक

अथवा शाब्दिक असमर्थता में नहीं किया गया है। किसी भी कार्य का सम्पादन शाब्दिक अर्थ से असम्भव नहीं हो सकता वरन् वह व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव होना चाहिए तथा जब तक कि कथित असम्भाव्यता, उस आशय एवं उद्देश्य, जो पक्षकारों द्वारा अनुध्यात रहा है, तथा उस मूल को ही, जिस पर कि पक्षकारों की संविदा निर्भर है, क्षत-विक्षत न कर दे, पूर्णरूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वचनदाता के लिए उस कार्य को जिसे कि उसने करने का वचन दिया है, करना ही असम्भव हो गया है।

2. संविदा के मूल को ही समाप्त करने वाली घटना अथवा परिस्थिति, उत्पन्न होने पर, केवल न्यायालय ही यह अवधारित कर सकता है कि क्या उस असम्भाव्यता के कारण, संविदा का उन्मोचन हो गया है। संविदा के उपबन्ध या परिस्थिति, संविदा के पालन की सीमा या संविदा का किस समय तक पालन हो अथवा संविदा सारतः पालन के योग्य है, आदि प्रश्नों का निर्धारण होने तक यह नहीं कहा जा सकता कि संविदा पालन के योग्य नहीं रही अथवा उसका पालन असम्भव हो गया।

3. इंग्लैण्ड की विधि के असम्भाव्यता सिद्धान्त का मूल भी निष्पादन की असम्भाव्यता में निहित है। भारतीय विधि के अनुसार, जैसा कि सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 54 में निहित है, भूमि के विक्रय का करार, स्वयं उस सम्पत्ति में जो कि करार की विषय-वस्तु है, कोई हित सृष्ट नहीं करता। भूमि के विक्रय के करार के अधीन दायित्व, अन्य करारों के अधीन उत्पन्न होने वाले दायित्वों के ही समान हैं। अतः भारतवर्ष में भूमि के विक्रय के करार पर असम्भाव्यता सिद्धान्त लागू होता है[1]। इंग्लैण्ड की विधि इस सम्बन्ध में भिन्न है। वहां भूमि के विक्रय का करार होते ही, क्रेता, साम्या के अन्तर्गत, भूमि का स्वामी हो जाता है, अतः इंग्लण्ड की विधि में, ऐसे क़रार पर भी यह सिद्धान्त लागू नहीं होता।

4. सरकार द्वारा विवादास्पद भूमि का सैन्य कार्य के लिए अधिग्रहण, अस्थायी स्वरूप का था। अतः उस अधिग्रहण का, प्रश्नगत संविदा के मूलभूत आधारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अतः इस मामले पर असम्भाव्यता का सिद्धान्त लागू नहीं हो सकता।

उपरोक्त कम्पनी की इसी भूमि के विषय में, ऐसी ही एक अन्य संविदा को लेकर एक मामला **मगनीराम** वनाम **गुरुबचन**[2] भी उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ था। उसमें उच्चतम न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी अवधारित किया कि वास्तव में पक्षकारों को करार के समय, तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञान था, अतः उनके मस्तिष्क में यह बात भी रही थी कि सैन्य कार्य के लिए अधिग्रहण जसी कोई अवस्था आ सकती थी और इसी लिए भूमि पर सड़क या नालियों के निर्माण का कोई समय विनिर्दिष्ट नहीं किया गया था। इस मामले में भी, करार पर, असम्भाव्यता का सिद्धान्त लागू नहीं किया गया।

---

1 इसका तात्पर्य यह है कि यह सिद्धान्त करारों पर समान रूप से लागू होता है, किन्तु जहां सम्पत्ति का अन्तरण हो चुका हो जैसे पट्टपर, अथवा वास्तविक विक्रय के द्वारा, वहां इस सिद्धान्त के लागू होने का प्रश्न नहीं है। जब तक किसी पट्टे के आधार पर भूमि का वास्तविक अन्तरण न हो तब तक वह पट्टा भी अन्तरण का करार ही है, किन्तु हस्तान्तरण के पश्चात् वह करार नहीं रहता। देखिए, राजा ध्रुवदेवसिंह **बनाम** हरमोहिन्दर, ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 1024.

2 ए० आई० आर० 1965 एस० सी० 1523.

उपरोक्त **सत्यव्रत घोष** बनाम **मगनीराम** के मामले में, यह भी संप्रेक्षित किया गया कि इंग्लैण्ड की निर्णयज विधि का, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 56 के प्रयोग में, कोई आश्रय नहीं लिया जा सकता क्योंकि उपरोक्त धारा 56 एक सारवान् कानून का उपबन्ध करती है और मामले को पक्षकारों के आशय के अनुसार विनिश्चित करने के लिए नहीं छोड़ती। यह भी संप्रेक्षित किया गया कि इंग्लैण्ड की निर्णयज विधि का केवल प्रेरणात्मक बल है और उसकी उपयोगिता केवल इतना देखने तक है कि समान तथ्यों वाले मामलों में, इंग्लैण्ड की विधि के अनुसार क्या अवधारित किया गया।

इसी मामले में एक सामान्य सिद्धान्त के रूप में यह प्रतिपादित किया गया है कि पट्टेदारी के करार को, उन दशाओं में जबकि पट्टे पर दी गई सम्पत्ति, आग, बाढ़, सैन्य कार्यवाही अथवा अन्य किसी अप्रतिरोधित शक्ति के कारण पूर्णत: विनष्ट हो जाए अथवा स्थायी रूप से उपयोग के अनुपयुक्त हो जाए, पट्टेदार शून्य कर सकता है जिसके लिए सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 108 (ड) में विशेष उपबन्ध है किन्तु यदि सम्पत्ति पूर्णत: विनष्ट नहीं हुई हो अथवा उपयोग के लिए स्थायी रूप से अनुपयुक्त नहीं हुई हो वहां पट्टेदार केवल इस आधार पर कि वह सम्पत्ति का ऐसा उपयोग नहीं कर रहा अथवा नहीं कर पा रहा जिस प्रयोजन से कि वह पट्टे पर दी गई थी उस करार को शून्य नहीं कर सकता।

उस करार का पालन जिसमें वैध और अवैध दोनों बातों का मिश्रण हो

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 57 में, यह उपबन्ध है कि जहां कोई व्यक्ति प्रथमत: कुछ ऐसी बातें करने का, जो वैध हों, और द्वितीयत:, विनिर्दिष्ट परिस्थितियों में, कुछ अन्य बातें करने का, जो अवैध हों, व्यतिकारी वचन देते हैं, वहां वचनों का प्रथम संवर्ग, संविदा है किन्तु द्वितीय संवर्ग शून्य करार है।

दृष्टान्त के लिए, क और ख करार करते हैं कि ख को एक गृह क 10,000 रुपये में बेचेगा किन्तु ख उसे एक द्यूतगृह के उपयोग में लाये तो क को उसके लिए 50,000 रुपये देगा।

इन व्यतिकारी वचनों को, अर्थात् गृह को बेचने का और उसके लिए 10,000 रुपये देने का प्रथम वचन-संवर्ग एक संविदा है, किन्तु द्वितीय संवर्ग एक विधि विरुद्ध उद्देश्य के लिए है, अर्थात् इस उद्देश्य के लिए है कि ख उस गृह को द्यूत-गृह के रूप में उपयोग में लाए और इसलिए वह शून्य करार है।

उस अनुकल्पी वचन का पालन जिसकी एक शाखा अवैध हो

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 58 में, इस सम्बन्ध में यह उपबन्ध किया गया है कि किसी ऐसे अनुकल्पी वचन की दशा में जिसकी एक शाखा वैध हो और दूसरी अवैध, केवल वैध शाखा का ही प्रवर्तन कराया जा सकता है।

एक दृष्टान्त द्वारा इसे स्पष्ट किया गया है कि जैसे क और ख करार करते हैं कि ख को क 1,000 रुपये देगा जिसके लिए क को ख तत्पश्चात् या तो चावल या तस्करित अफीम परिदत्त करेगा। इसमें चावल परिदत्त करने की संविदा विधिमान्य है किन्तु अफीम के बारे में करार शून्य है।

संविदाओं का उन्मोचन अर्थात् वे संविदायें जिनका पालन आवश्यक न रहा हो

(क) उन्मोचन का अर्थ— भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 में **संविदा का उन्मोचन** नामक शीर्षक कहीं नहीं है, किन्तु संविदा विधि के कुछ सुप्रसिद्ध लेखकों जैसे लीक और विलियम एन्सन ने इसे प्रमुख शीर्षक मानकर संविदा की समाप्ति के भिन्न-भिन्न प्रकारों को ही, इस शीर्षक के

अन्तर्गत उप-शीर्षों के रूप में प्रयोग किया है। उक्त लेखकों ने, संविदा के पालन द्वारा, विखण्डन द्वारा, या उसके पक्षकारों की सहमति या विधि की संक्रिया द्वारा समाप्त होने की अवस्थाओं को संविदा के उन्मोचन के विभेदों के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु अधिनियम की स्कीम से ऐसा प्रतीत होता है कि संविदा के पालन द्वारा समाप्ति की अवस्था में भेद किया गया है।

संविदा के उन्मोचन का अर्थ, संविदा अधिनियम की धारा 37 के उपबन्धों से ग्रहण किया जा सकता है। धारा 37 में यह कथित किया गया है कि संविदा के पक्षकारों को या तो अपने-अपने वचनों का पालन करना होगा या पालन करने की प्रस्थापना करनी होगी, जब तक कि ऐसे पालन से स्वयं संविदा अधिनियम के या अन्य किसी विधि के उपबन्धों के अधीन अभिमुक्ति या माफी न दे दी गई हो। वस्तुतः, **अभिमुक्ति** या **माफी** दे देना ही **उन्मोचन** करना है।

भारत सरकार के विधि मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित **विधि शब्दावली**[1] में अंग्रेजी के **डिस्चार्ज** शब्द का अर्थ **उन्मोचन** दिया गया है और किसी दायित्व, बाध्यता या अवरोध से मुक्त करने वाले कार्य को **डिस्चार्ज** शब्द के अर्थ में ग्रहण किया गया है। अधिनियम की धारा 37 में **अभिमुक्ति** या **माफी** शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनका अर्थ, उपरोक्त विधि शब्दावली[2] में, **डिस्पेंन्स विद** शब्द के लिए, **किसी कार्य को करने से माफी** माना गया है। इस प्रकार, संविदा के पक्षकारों को अपने-अपने वचन का पालन करने से अभिमुक्ति या माफी की अवस्था को ही संविदा के उन्मोचन की अवस्था माना जा सकता है। पक्षकारों का अपने-अपने वचन की बाध्यता से मुक्त हो जाना ही, संविदा का उन्मोचन है। वचन की बाध्यता से मुक्त हो जाने का स्पष्ट अर्थ यही है कि अब उस संविदा के पालन की आवश्यकता नहीं है। भारतीय संविदा अधिनियम की 63 से 67 पर्यन्त धाराओं को वस्तुतः यही शीर्षक प्रदान किया गया है, अर्थात् **वे संविदायें जिनका पालन करने की आवश्यकता नहीं हैं।**

संविदा अधिनियम की धारा 37 के अनुसार, पक्षकारों को अपने-अपने वचनों का पालन करने से अभिमुक्ति, संविदा अधिनियम के, या अन्य किसी विधि के, उपबन्धों के अधीन प्राप्त हो सकती है। **अन्य किसी विधि** के अन्तर्गत वादों की परिसीमा सम्बन्धी तत्समय प्रवृत्त विधि भी हो सकती है, क्योंकि परिसीमा विधि द्वारा विहित अवधि के व्यतीत हो जाने पर, किसी पक्षकार द्वारा संविदा की प्रवर्तनीयता का अधिकार ही समाप्त हो जाता है।

इसी प्रकार, दिवालिया होने की कुछ अवस्थाओं में भी, संविदा के पक्षकारों को वचन पालन करने की आवश्यकता नहीं रहती[3]।

संविदा के उन्मोचन की अवस्था इस प्रकार उन अवस्थाओं में से एक है जिनमें कि कोई संविदा समाप्त हो जाती है, किन्तु पालन के पश्चात् समाप्त हो जाने वाली और शून्य होकर समाप्त हो जाने वाली संविदाओं में भेद यह है कि प्रथम कथित स्थिति संविदा की सफल समाप्ति है जबकि पश्चात् कथित स्थिति उसकी विफल समाप्ति है।

संविदा की विफल समाप्ति की अवस्था के ही दो विभेद और किये जा सकते हैं, प्रथम वह अवस्था जिसमें संविदा के अधीन किसी वचन का किसी पक्षकार द्वारा पालन न किए जाने से संविदा का भंग होता है और ऐसी अवस्था में संविदा-भंग के कारण, संविदा जिसकी ओर से भंग हुई हो उस पक्षकार

---

[1] 1979 के संस्करण का पृष्ठ 74.

[2] वही पृष्ठ 76.

[3] प्रान्तीय दिवाला अधिनियम, 1920 देखिए.

द्वारा उसके वचन-भंग से, दूसरे पक्ष को उत्पन्न हुई हानि के लिए उस दूसरे पक्ष को प्रतिकर देना होता है, अर्थात् वचन के पालन के स्थान पर प्रतिकर देने की बाध्यता प्रतिस्थापित हो जाती है और द्वितीय अवस्था में, वचन के पालन का दायित्व ही समाप्त हो जाता है, अतः पक्षकार अभिमुक्त हो जाते हैं और न किसी को हानि उत्पन्न हुई कही जा सकती है और न प्रतिकर देने की बाध्यता उत्पन्न हो सकती है। यह द्वितीय अवस्था ही संविदा के उन्मोचन की अवस्था है।

यद्यपि भारतीय संविदा अधिनियम की 62 से 67 तक की धाराओं को एक ही शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है तथापि अधिनियम की धारा 62, धारा 63 भागतः, धारा 64 तथा धारा 67 में ही संविदा के उन्मोचन की अवस्थाओं का उपबन्ध किया गया है। धारा 65 उस व्यक्ति की बाध्यता के विषय में उपबन्ध करती है जिसने शून्य करार या शून्य हो गई संविदा के अधीन कोई फायदा प्राप्त किया हो जिसका अध्ययन उन्मोचन की अवस्थाओं से पृथक् एक स्वतन्त्र शीर्षक के रूप में किया जाएगा। धारा 66 शून्यकरणीय संविदा के विखंडन की संसूचना या प्रतिसंहरण की रीति के सम्बन्ध में है जिसका उल्लेख इसी अध्याय में ऊपर एक पृथक शीर्षक में किया जा चुका है।

(ख) उन्मोचन की अवस्थायें

1. **नवीयन, विखंडन या परिवर्तन द्वारा उन्मोचन**—यदि किसी संविदा के पक्षकार उसके बदले एक नई संविदा प्रतिस्थापित करने या उस संविदा को विखण्डित या परिवर्तित करने का करार करें तो, मूल संविदा का पालन करने की आवश्यकता नहीं होगी[1]।

नीचे तीन दृष्टान्त दिये गए हैं जिनमें से प्रथम दो में संविदा का उन्मोचन हुआ है किन्तु तृतीय में उन्मोचन नहीं हुआ है—

(क) क एक संविदा के अधीन ख को धन का देनदार है। क, ख और ग के बीच यह करार होता है कि ख तत्पश्चात् क के बजाय ग को अपना ऋणी मानेगा। क पर ख के पुराने ऋण का अन्त हो गया है और ग पर ख के एक नए ऋण की संविदा हो गई है।

(ख) ख का क 10,000 रुपये का देनदार है। ख से क ठहराव करता है और ख को 10,000 रुपये के ऋण के बदले 5,000 रुपये के लिए क की सम्पदा बन्धक करता है। यह एक नई संविदा है और पुरानी को निर्वापित कर देती है।

(ग) क एक संविदा के अधीन ख को 1,000 रुपए का देनदार है। ग का ख 1,000 रुपये का देनदार है। क को ख आदेश देता है कि वह अपनी बहियों में ग के नाम 1,000 रुपये जमा कर दे, किन्तु ग इस ठहराव के लिए अनुमति नहीं देता। ख अब भी ग का 1,000 रुपये का देनदार है और कोई नई संविदा नहीं की गई है।

दृष्टान्त (क) संविदा के नवीयन का उदाहरण है जबकि दृष्टान्त (ख) संविदा को परिवर्तित करने का उदाहरण है। संविदा के नवीयन और परिवर्तन में पक्षकारों के दायित्व की दृष्टि से अन्तर है, प्रभाव की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों ही दशाओं में पूर्व संविदा का उन्मोचन होकर उसके पालन की आवश्यकता नहीं रहती। यह आवश्यक है कि नवीयन द्वारा रचित संविदा विधितः प्रवर्तनीय हो।

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 62.

2. **नवीयन का स्वरूप**—ऊपर के शीर्षक के दृष्टान्त (क) से यह स्पष्ट है कि संविदा के नवीयन में संविदा के मूल पक्षकारों में से कम-से-कम किसी एक का प्रतिस्थापन आवश्यक है। **के० अप्पूकुट्टन पनिकर बनाम एस० के० आर० ए०के० आर० अथप्पा चेट्टियार**[1] वाले मामले में नवीयन के अर्थ और तत्व को दर्शाते हुए यह कहा गया है कि नवीयन का अर्थ पूर्व में की हुई संविदा की शर्तों के निर्वापन द्वारा नवीन पक्षकारों के मध्य, जिनमें से कम-से-कम एक पक्षकार मूल संविदा के पक्षकारों में से न होकर कोई पर-व्यक्ति होना चाहिए, एक नवीन संविदा का सृजन है तथा नवीयन के सिद्धान्त के लागू होने के लिए मूल संविदा के पक्षकारों तथा उस पर-व्यक्ति की सम्मति आवश्यक है।

3. **परिवर्तन का अर्थ सारवान् परिवर्तन**—परिवर्तन द्वारा संविदा के उन्मोचन के लिए यह आवश्यक है कि संविदा की शर्तों या संविदा की विषयवस्तु में सारवान् परिवर्तन होना चाहिए। **हाल्सबरीज लॉज आफ इंग्लैण्ड**[2] में सारवान् परिवर्तन के विषय में इस प्रकार कहा गया है—

"वह परिवर्तन सारवान् है जिससे पक्षकारों के, विलेख की मूल अवस्था में, अभिनिश्चित अधिकारों, दायित्वों अथवा उनकी विधिक स्थिति में परिवर्तन हुआ हो अथवा जिससे मूलतः अभिव्यक्त लिखत के विधिक प्रभाव में अन्यथा परिवर्तन हुआ हो अथवा जिससे मूलतः किसी अनभिनिश्चित उपबन्ध, जिसकी अनिश्चितता के कारण वह उपबन्ध शून्य होता, में निश्चितता लाई गई हो, अथवा वह कोई ऐसी बात है जिससे कि मूलतः निष्पादित विलेख द्वारा बाध्य किसी पक्षकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

किसी बाध्यताधीन पक्षकार की सम्मति के बिना किए गए नवीयन का प्रभाव विलेख को रद्द करने के तुल्य है।"

कलियाना गाउन्डर बनाम पलानी गाउन्डर[3] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में न्यायमूर्ति जे० सी० शाह ने उपरोक्त संप्रेक्षण का अनुमोदन किया है। किन्तु सद्भाव के आधार पर पक्षकारों के वास्तविक अभिप्राय को प्रभावशील बनाने के उद्देश्य से किसी विलेख में किया गया परिवर्तन सारवान् परिवर्तन नहीं माना जा सकता[4]।

4. **वचनदाता को परिहार या अभिमुक्ति देकर उन्मोचन**—हर वचनगृहीता अपने को दिए गए किसी वचन के पालन से अभिमुक्ति या उसका परिहार पूर्णतः या भागतः देकर कर सकेगा या ऐसे पालन के लिए समय बढ़ा सकेगा, या उसके स्थान पर किसी तुष्टि को, जिसे वह ठीक समझे, प्रतिगृहीत कर सकेगा[5]।

इस नियम को समझने के लिए निम्न पांच दृष्टान्त सहायक होंगे :

(क) ख के लिए क एक रंगचित्र बनाने का वचन देता है। तत्पश्चात् ख उससे वैसा करने का निषेध कर देता है। क उस वचन के पालन के लिए अब आबद्ध नहीं है।

(ख) ख का क 5,000 रुपये का देनदार है। क उस समय और उस स्थान पर, जिस पर 5,000 रुपये देय थे, ख को 2,000 रुपये देता है और ख सम्पूर्ण ऋण की तुष्टि में उन्हें प्रतिगृहीत कर लेता है। सम्पूर्ण ऋण का उन्मोचन हो जाता है।

---

[1] ए० आई० आर० 1966 केरल 303 (305).

[2] जिल्द 2, अनुच्छेद 599 पृ० 368 तृतीय संस्करण.

[3] ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1942 (1945).

[4] विजयकृष्ण बनाम कालीचरन, ए० आई० आर० 1978 कलकत्ता 153 (157).

[5] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 63.

17—377 व्ही एस पी/81

(ग) ख का क 5,000 रुपये का देनदार है। ख को ग 1,000 रुपये देता है और ख उन्हें क पर अपने दावे की तुष्टि में प्रतिगृहीत कर लेता है। यह संदाय, सम्पूर्ण दावे का उन्मोचन है।

(घ) क एक संविदा के अधीन ख का ऐसी धनराशि का देनदार है जिसका परिमाण अभिनिश्चित नहीं किया गया है। क परिमाण अभिनिश्चित किए बिना, ख को 2,000 रुपये देता है और ख उसे उसकी तुष्टि में प्रतिगृहीत कर लेता है। यह सम्पूर्ण ऋण का उन्मोचन हैं चाहे उसका परिमाण कुछ भी हो।

(ङ) ख का क 2,000 रुपये का देनदार है और अन्य लेनदारों का भी ऋणी है। ख समेत अपने लेनदारों से क उनकी अपनी-अपनी मांगों का प्रशमन करने के लिए उन्हें रुपए में आठ आने देने का ठहराव करता है। ख को 1,000 रुपये का संदाय ख की मांग का उन्मोचन है।

यह स्पष्ट है कि इस नियम के अन्तर्गत वचनगृहीता द्वारा वचनदाता को अपने वचन से अभिमुक्ति दी जा सकती है अथवा वचन का परिहार किया जा सकता है अथवा वचनगृहीता करार के अन्तर्गत अपने किसी अधिकार का अधित्यजन कर सकता है[1]। **जगदबन्धु चटर्जी** बनाम **श्रीमती नीलिमा रानी**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने इसे अधित्यजन के ही तुल्य माना है। किन्तु यह आवश्यक है कि वचन की पूर्ण तुष्टि के विषय में दोनों ही पक्षकारों का आशय स्पष्ट रहा हो[3]। इस नियम को **परिहार** अथवा **तुष्टि** का नियम कहा जा सकता है जिसे अंग्रेजी में **एकॉर्ड एण्ड सैटिसफैक्शन** का नाम दिया गया है। इस सम्बन्ध में कुछ मामलों का नीचे उल्लेख किया जा रहा है।

5. **एकॉर्ड एण्ड सैटिसफैक्शन के कुछ मामले**—बरार के राजा ने वादी कपूरचन्द जौहरी से विभिन्न रत्नों का क्रय करके 13 लाख रुपये का एक वचन-पत्र निष्पादित कर दिया। उस वचन-पत्र के आधार पर कपूरचन्द को 27 लाख रुपये देय हो चुके थे। हैदराबाद के सैन्य अधिभोग (मिलिटरी आक्युपेशन) के पश्चात् शासन द्वारा गठित ऋण व्यवस्थापन कमेटी ने, कपूरचन्द से यह प्रस्थापना की कि वह 20 लाख रुपये लेकर वचन-पत्र पर पूर्ण तुष्टि पृष्ठांकित कर दे। कुछ आक्षेपों के पश्चात् कपूरचन्द ने 20 लाख रुपये पूर्ण तुष्टि के रूप में प्रतिगृहीत कर तो लिए परन्तु तत्पश्चात् उसने 7 लाख के अवशेष के लिए राजा के विरुद्ध वाद संस्थित कर दिया। यह अवधारित हुआ कि वादी ने 7 लाख का परिहार देकर ऋण की पूर्ण तुष्टि में 20 लाख का संदाय प्रतिगृहीत कर लिया था, अतः उसे अब वाद लाने का हक नहीं रहा[4]। परन्तु जहां देनदार ने लेनदार को डाक से एक चैक, जो कि ऋण की वास्तविक राशि से न्यून राशि का था, भेजकर यह चाहा कि इसे ऋण की पूर्ण तुष्टि के रूप में प्रतिगृहीत कर लिया जाए, किन्तु लेनदार ने पत्रोत्तर में यह सूचित किया कि उसने चैक को स्वीकार करके भागतः तुष्टि मानी है, वहां यह अवधारित हुआ कि ऋण की पूर्ण तुष्टि नहीं हुई थी, क्योंकि प्रतिग्रहण का अर्थ पक्षकारों के आशय और संव्यवहार की प्रकृति के अनुसार लगाया जाएगा और ऐसी अवस्था में केवल चेक का ग्रहण कर लेना ही प्रतिग्रहण के अर्थ में निश्चायक नहीं है[5]।

---

[1] किसनलाल बनाम बलीदा सुल्तान, ए० आई० आर० 1977 एन० ओ० सी० 159 (कलकत्ता).

[2] [1970] 2 एस० सी० आर० 925.

[3] अमरनाथ चंद प्रकाश बनाम भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स, ए० आई० आर० 1972 इलाहाबाद 176.

[4] लाला कपूरचन्द बनाम हिमायत अली खां, ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 250.

[5] श्यामनगर टिन फैक्टरी बनाम स्नोव्हाइट फुड कम्पनी, ए० आई० आर० 1965 कलकत्ता, 541; भारत संघ बनाम गंगाराम भगवानदास, ए० आई० आर० 1977 मध्य प्रदेश 215.

5क. **अधित्यजन का सिद्धान्त** —अधित्यजन का आशय इतना मात्र है कि कोई व्यक्ति अपनी अधिकारोचित मांग का आग्रह न करे। अधिकार की पूर्ति का आग्रह न करना ही अधिकार का अधित्यजन है। **लाईफ इन्श्योरेन्स कार्पोरेशन** बनाम **रामदास अग्रवाल**[1] वाले मामले में पटना के उच्च न्यायालय ने यह अवधारित किया है कि अधित्यजन का अर्थ ऐसा कृत्य है जिसमें अधित्यजन का भाव साशय और ज्ञानपूर्वक हो। उपरोक्त मामले में बीमे की एक संविदा की शर्तों में, एक शर्त यह भी थी कि यदि प्रीमियम की राशि का संदाय अनुग्रह-दिवसों में न कर दिया जाए तो पॉलिसी का पर्यवसान हो जाएगा और ऐसी पर्यवसित पालिसी को पुनरुज्जीवित करने के लिए असंदत्त प्रीमियम और अनुबन्धित ब्याज का संदाय विहित अवधि में कर देना होगा, किन्तु जहां बीमा कम्पनी ने, ऐसे मामले में, ब्याज की मांग की ही न हो और प्रीमियम स्वीकार कर लिया हो तो वहां ब्याज प्राप्त करने के अधिकार का अधित्यजन माना जाएगा।

इंग्लैण्ड की विधि में, अधिक राशि के ऋण का उन्मोचन कम राशि के संदाय के द्वारा नहीं हो सकता, जब तक कि ऐसे करार के लिए प्रतिफल न हो अथवा जबतक कि करार सीलबन्द न हो[2] किन्तु भारतीय विधि में, न्या० एस०एन० द्विवेदी द्वारा संविदा अधिनियम की धारा 63 के अन्तर्गत, इंग्लैण्ड की विधि का यह नियम स्वीकार नहीं किया गया है। भारतीय विधि में, वचनगृहीता अपने को दिए गए वचन के पालन से, वचनदाता को, पूर्णतः या भागतः छूट दे सकता है और ऐसी छूट के लिए प्रतिफल का होना अनिवार्य नहीं है[3]।

6. **शून्यकरणीय संविदा के विखण्डन द्वारा उन्मोचन** —जबकि कोई व्यक्ति, जिसके विकल्प पर कोई संविदा शून्यकरणीय है, उसे विखंडित कर देता है, तब उसके दूसरे पक्षकार को, उसमें अन्तर्विष्ट किसी वचन का, जिसका वह वचनदाता है, पालन करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु यदि ऐसी संविदा को विखण्डित करने वाले पक्षकार ने उस संविदा के अधीन किसी दूसरे पक्षकार से कोई फायदा प्राप्त किया हो तो, उसे वह फायदा, उस व्यक्ति को, जिससे वह प्राप्त किया गया था, यथासम्भव प्रत्यावर्तित करना होगा[4]।

ऊपर के शीर्षक 1 में यह कहा गया है कि अधिनियम की धारा 62 संविदा के नवीयन के अन्तर्गत संविदा के नवीयन अथवा उसके परिवर्तन अथवा विखण्डन के करार द्वारा किसी विद्यमान संविदा का उन्मोचन हो जाता है, किन्तु **विखण्डन के करार और इस नियम के अन्तर्गत किए गए विखण्डन में अन्तर है**। धारा 62 में कथित विखण्डन दोनों पक्षों की सहमति से होता है और ऐसा विखण्डन अपने आप में एक करार है, और उसे करार की सभी शर्तों को पूरा करना होगा, जबकि इस नियम के अन्तर्गत किसी विद्यमान संविदा का एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष की किसी चूक के कारण शून्यकरणीयता के विकल्प के प्रयोग द्वारा विखण्डन किया जाता है।

यह नियम साम्या पर आधारित है जिसके अनुसार यदि विखण्डन को मंजूर किया जाता है तो पक्षकारों को पूर्व की यथास्थिति में लाया जाना अभीष्ट है[5]। फायदे के प्रत्यावर्तन से पक्षकार उस स्थिति में आ जाते हैं जैसे कि कोई संविदा हुई ही न हो।

---

1 ए० आई० आर० 1979 पटना 124.

2 फोक्स बनाम बीयर, 9 ए० सी० 605.

3 हरिचन्द मदनगोपाल बनाम पंजाब राज्य, [1973] 1 उम० नि० प० नि० सा० 12, 14=ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 381.

4 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 64.

5 सुरेन्द्रनाथ बनाम लोहितचन्द्र, ए० आई० आर० 1975 गौहाटी 58.

7. वचनगृहीता की ओर से सौकर्य में उपेक्षा द्वारा विखण्डन —यदि कोई वचनगृहीता किसी वचनदाता को उसके वचन के पालन के लिए युक्तियुक्त सौकर्य (फैसिलिटी) देने में उपेक्षा या देने से इन्कार करे तो एतद्द्वारा कारित किसी अपालन के बारे में ऐसी उपेक्षा या इन्कार के कारण वचनदाता की माफी हो जाती है[1]।

इस नियम के लागू होने का एक सरल सा दृष्टान्त यह है—ख के गृह की मरम्मत करने की ख से क संविदा करता है। जिन स्थानों में उसके गृह की मरम्मत अपेक्षित है, ख उन्हें क को बताने में उपेक्षा या बताने से इन्कार करता है। संविदा के अपालन के लिए क की माफी हो जाती है, यदि वह ऐसी उपेक्षा या इन्कार से कारित हुआ हो।

यह नियम तभी लागू होता है जब कि वचनदाता की ओर से अपने वचन का पालन न करने का मात्र यही कारण रहा हो कि वचनगृहीता ने वचनदाता को वचन का पालन करने में उपेक्षा की हो या इन्कार किया हो। उदाहरण के लिए, जैसे क ख से ख के गृह की पुताई करने की संविदा करता है जिसके लिए कि पुताई की सामग्री ख द्वारा प्रदान करनी है और ख वह सामग्री नहीं प्रदान करता या ऐसा करने में उपेक्षा करता है तो क ख के गृह की पुताई करने के वचन से अभिमुक्त हो जाता है।

सामान्य नियम यह है कि जहां संविदा की प्रकृति से ऐसा प्रतीत हो कि संविदा के अन्तर्गत किया जाने वाला कार्य ऐसा है जो दोनों पक्षकारों के सहयोग के बिना ठीक प्रकार से सम्पन्न नहीं हो सकता, वहां उन दोनों का परस्पर सहयोग करने का वचन, अभिव्यक्त न होते हुए भी, विवक्षित माना जाएगा और प्रत्येक को ही, करारित कार्य के अपने-अपने भाग का पालन करना अनिवार्य है[2]।

संविदा के शून्य हो जाने या संविदा की शून्यता का पता चलने का परिणाम

ऐसे परिणाम का उपबन्ध भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 65 में इस प्रकार किया गया है—

> "जबकि किसी करार के शून्य होने का पता चले या कोई संविदा शून्य हो जाए तब वह व्यक्ति जिसने ऐसे करार या संविदा के अधीन कोई फायदा प्राप्त किया हो वह फायदा उस व्यक्ति को जिससे उसने उसे प्राप्त किया था, प्रत्यावर्तित करने या उसके लिए प्रतिकर देने को आबद्ध होगा।"

इस नियम को स्पष्ट करने के दृष्टिकोण से निम्न चार दृष्टान्त भी अधिनियमित किये गये हैं—

(क) ख के यह वचन देने के प्रतिफलस्वरूप कि वह क की पुत्री ग से विवाह कर लेगा, ख को क, 1,000 रुपये देता है। वचन के समय ग मर चुकी है। करार शून्य है, किन्तु ख को वे 1,000 रुपये क को प्रतिसंदत्त करने होंगे।

(ख) ख से क उसे एक मई के पूर्व 250 मन चावल परिदत्त करने की संविदा करता है। क उस दिन के पूर्व केवल 130 मन परिदत्त करता है और तत्पश्चात् कुछ नहीं। ख उस 130 मन को एक मई के पश्चात् रखे रखता है। वह क को उसके लिए संदाय करने को आबद्ध है।

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 67,
देखिए मैके बनाम डिक, 6 ए० सी० 251,

(ग) एक गायिका क, एक नाट्यगृह प्रबन्धक, ख से अगले दो मास में प्रति सप्ताह में दो रात उसके नाट्यगृह में गाने की संविदा करती है और ख उसे हर रात के गाने के लिए एक सौ रुपये देने के लिए वचनबद्ध होता है। छठी रात को क उस नाट्यगृह से जानबूझकर अनुपस्थित रहती है और परिणामस्वरूप उस संविदा को ख विखण्डित कर देता है। ख को उन पांचों रातों के लिए जिनमें क ने गाया था, उसे संदाय करना होगा।

(घ) क एक संगीत समारोह में, 1,000 रुपये पर, जो अग्रिम दिये जाते हैं, ख के लिए गाने की संविदा करती है। क इतनी रुग्ण है कि गा नहीं सकती। क उन लाभों की हानि के लिए प्रतिकर देने को आबद्ध नहीं है जो ख को होते यदि क गा सकती—किन्तु उसे अग्रिम दिये गए 1,000 रुपये ख को लौटाने होंगे।

यह नियम सरकार और स्थानीय निकायों पर भी लागू होता है

सरकार के साथ की हुई संविदा, संविधान के अनुच्छेद 299 के उपबन्धों के अनुसार होनी चाहिए किन्तु वह उन उपबन्धों के अधीन न की जाने के कारण शून्य हो तो भी सरकार को संविदा के अन्तर्गत संदत्त अग्रिम धन की सरकार से वापसी का वाद इस नियम के अन्तर्गत लाया जा सकता है[1]।

यदि किसी टाउन एरिया कमेटी द्वारा अधिरोपित कर अवैध करार दे दिया गया हो तो ऐसी दशा में भी कमेटी ने जिस व्यक्ति को कर वसूल करने का ठेका दिया था, उस व्यक्ति पर ठेके की शोध्य राशि के बकाया को कमेटी को संदत्त करने की बाध्यता है। क्योंकि ठेकेदार द्वारा वसूल किया हुआ कर शून्य करार के अधीन प्राप्त किया हुआ ऐसा फायदा है जिसे कि वह कमेटी को प्रत्यावर्तित करने के लिए आबद्ध है[2]। मध्य प्रदेश नगरपालिका अधिनियम, 1961 की धारा 110 (4) के उपबन्धों के अपालन में निष्पादित करार यद्यपि शून्य है तथापि उस करार के अधीन, नगरपालिका के लिए किये गए कार्य के लिए प्रतिकर का वाद संस्थित किया जा सकता है तथा नगरपालिका ने उस करार के अधीन किए गए कार्य से जो फायदा प्राप्त किया है उसके बारे में, वह भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 65 तथा 70 दोनों के ही अन्तर्गत, प्रतिकर देने के लिए बाध्य है[3]।

करार की शून्यता का पता चलने और संविदा के शून्य हो जाने की स्थितियां

ऐसे मामले में जहां कि किसी करार के पक्षकारों को करार करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि करार विधितः प्रवर्तनीय नहीं है तथा ऐसे मामले में जहां कि करार के समय करार प्रवर्तनीय था किन्तु पश्चात्वर्ती घटनाओं के कारण प्रवर्तनीय नहीं रहा, कोई भेद नहीं है। किन्तु ये दोनों प्रकार के मामले उस प्रकार के मामले से भिन्न हैं जहां कि करार करते समय ही पक्षकारों को यह ज्ञान हो कि करार शून्य है। **उच्चतम न्यायालय के दो मामलों में इस भेद को भली प्रकार दर्शाया गया है। रामाज्ञाप्रसाद बनाम मुरलीप्रसाद**[4] वाले मामले में कुछ व्यक्तियों ने भागीदारी का करार करके एक विद्युत उपक्रम क्रय करने का निश्चय किया और सभी इस बात पर सहमत हुए कि विक्रय तथा अनुज्ञप्ति दोनों ही मुरलीप्रसाद भागीदार के नाम में होंगे यद्यपि प्रत्येक भागीदार को समान भाग से पूंजी लगानी थी जिसका अभिदाय प्रत्येक ने उसी भांति किया। विद्युत अधिनियम और उसके अधीन निर्मित किए गए नियमों के अनुसार

---

1 उड़ीसा राज्य बनाम राजवल्लभ मिश्र, ए० आई० आर० 1976 उड़ीसा, 19.

2 टाउन एरिया कमेटी बनाम राजेन्द्रकुमार, ए० आई० आर० 1978 इलाहाबाद, 103.

3 छक्कूलाल बनाम नगरपालिका, मुरैना, ए० आई० आर० 1978 एन० ओ० सी० 19 (मध्य प्रदेश).

4 ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1320.

किसी अनुज्ञप्तिधारी द्वारा अनुज्ञप्ति का समनुदेशन अथवा उपक्रम अथवा उसके किसी भाग का विक्रय-बन्धक अथवा अन्य किसी भांति से अन्तरण राज्य सरकार की लिखित स्वीकृति के बिना प्रतिषिद्ध किया गया था जिस कारण से उन व्यक्तियों की भागीदारी का करार अवैध था। न्या० पी० जगनमोहन रेड्डी ने यह अभिनिर्धारित किया कि करार के समय पक्षकारों को यह किसी भी भांति ज्ञात नहीं था कि भागीदारी अवैध है और इस अवैधता का ज्ञान तत्पश्चात् उस समय हुआ जबकि सरकार ने एक अधिसूचना द्वारा अनुज्ञप्ति का प्रतिसंहरण कर लिया। अस्तु, जिन भागीदारों ने उस उपक्रम में अपने-अपने भाग की पूंजी का अभिदाय किया था, वे उसे अपने-अपने भाग के अनुसार वसूल करने के हकदार थे।

फुजू कोलियरी बनाम झारखण्ड माइन्स[1] वाले मामले में एक खान के पट्टे के सम्बन्ध में किया हुआ करार खनिज विनियमों के प्रतिकूल होने के कारण आद्यतः शून्य था। इस मामले में न्या० अलगिरिस्वामी ने यह अभिनिर्धारित किया कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 65 में करार और संविदा में भेद किया गया है और इसी लिए इस धारा के प्रारम्भ के उपबन्ध में यह बताया गया है कि जब किसी करार के शून्य होने का पता चले जिसका अर्थ यह है कि करार शून्य था यद्यपि पक्षकारों को करार के समय यह ज्ञात नहीं था कि करार विधितः प्रवर्तनीय नहीं है और इस बात का ज्ञान उन्हें तत्पश्चात् हुआ, जबकि इस धारा के आगामी उपबन्ध में उस स्थिति की व्यवस्था की गई है जबकि कोई संविदा शून्य हो जाए जिसका अर्थ यह है कि ऐसा करार जबकि मूलतः किया गया तब प्रवर्तनीय था और प्रवर्तनीयता के कारण संविदा के स्वरूप में था किन्तु वही पश्चात्वर्ती घटनाओं के कारण शून्य हो गया। इन दोनों दशाओं में ही जिस व्यक्ति ने ऐसे करार या संविदा के अधीन कोई फायदा प्राप्त किया हो वह फायदा उस व्यक्ति को जिससे उसने प्राप्त किया था, प्रत्यावर्तित करने या उसके लिए प्रतिकर देने को बाध्य होगा परन्तु जहां करार के समय दोनों ही पक्षों को यह विदित था कि करार विधिपूर्ण नहीं है तथा शून्य है, वहां वह करार, करार ही रहता है और उसे संविदा का स्वरूप प्राप्त ही नहीं हो पाता और ऐसे मामले उस प्रकार के नहीं हैं जहां यह कहा जा सके कि इसके शून्य होने का पता तत्पश्चात् चला और न ही यह उस प्रकार की संविदा कही जा सकती है जो कि पश्चात्वर्ती घटनाओं से शून्य हो गई हो। इस प्रकार के मामले में धारा 65 लागू नहीं होती और उसके उपबन्धों का कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता। निष्कर्ष यह है कि **जहां किसी करार के शून्य होने का ज्ञान तत्पश्चात् हो और करार के समय पक्षकार करार की विधिक स्थिति से अनभिज्ञ हों, तो ऐसी दशा में, संविदा अधिनियम की धारा 65 के अन्तर्गत, प्रत्यावर्तन अथवा प्रतिकर का वाद चलाया जा सकेगा[2]।**

जब कोई संव्यवहार किसी अधिनियम अथवा नियमों के अधीन प्रतिषिद्ध हो तो उस संव्यवहार पर आश्रित संविदा आद्यतः शून्य होती है और ऐसी संविदा के अन्तर्गत संदत्त धन के प्रत्यावर्तन के लिए वाद संस्थित नहीं किया जा सकता। [देखिए भास्करराव जागेश्वरराव बनाम सारूजाधाराव[3]]

"फायदा" के तात्पर्य में अग्रिम धन के निक्षेप का प्रत्यावर्तन संभव नहीं

फायदा शब्द के लिए, भारतीय संविदा अधिनियम 1872 की धारा 64 के अंग्रेजी पाठ में **बैनीफिट** शब्द का तथा धारा 65 के अंग्रेजी पाठ में **एडवान्टेज** शब्द का प्रयोग किया गया है, किन्तु हिन्दी पाठ में इन दोनों का अर्थ एक ही शब्द **फायदा** में अभिहित किया गया है। अतः जहां तक

---

[1] [1975] 1 उप० नि० प० 189-ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1892.

[2] पी०एन० वोराइराज बनाम एन० जी० राजन, ए० आई० आर० 1977 मद्रास 243, 246.

[3] ए० आई० आर० 1978 मुम्बई 322.

फायदे का निर्धारण किया जाना है, दोनों धाराओं में, फायदे के दृष्टिकोण से, कोई अन्तर नहीं है। **फायदा** शब्द का क्या तात्पर्य हैं, इस सम्बन्ध में एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या अग्रिम धन के निक्षेप को भी फायदा माना जा सकता है ?

मुरलीधर चटर्जी बनाम इन्टरनेशनल फिल्म कम्पनी[1] वाले मामले में, प्रिवी काउन्सिल की न्यायिक समिति ने यह अवधारित किया था कि फायदा के अर्थ में प्रयुक्त किये गए, **एडवान्टेज** और **बेनीफिट** दोनों ही शब्दों का अर्थ लाभ (प्राफिट) नहीं है, और लाभ न होने के कारण, यह केवल ऐसा फायदा है जो संविदा के अधीन प्राप्त किया गया है और, संविदा के अधीन जब एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को रुपया दिया जाता है तो वह संविदा के अधीन प्राप्त किया गया फायदा है और इस सम्बन्ध में यह अर्थपूर्ण नहीं है कि फायदा पाने वाले पक्षकार ने इस रुपये से क्या किया। अतः हर दशा में वह रुपया उसे, जिस पक्षकार से उसने लिया है, उसे धारा 64 के अन्तर्गत प्रत्यावर्तित करना होगा, और यदि जिस पक्षकार से फायदा प्राप्त किया है, उसी पक्षकार से दूसरा पक्षकार प्रतिकर भी पाने का हकदार है तो उस पूर्वप्राप्त फायदे की रकम को वह प्रतिकर की रकम में मुजरा कर सकता है।

हनुमान कॉटन मिल्स और अन्य बनाम टाटा एयरक्राफ्ट लिमिटेड[2] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गए न्या० सी०ए० वैद्यलिंगम के निर्णय के अनुसार अग्रिम धन के निक्षेप को समपहृत किया जा सकता है और उसे प्रत्यावर्तित करने की बाध्यता नहीं होती। **मुरलीधर चटर्जी बनाम इन्टर-नेशनल फिल्म कम्पनी**[1] वाले मामले में जो धन दिया गया था वह प्रतिफल की आंशिक पूर्ति के रूप में दिया गया धन था, अग्रिम धन नहीं था। अग्रिम धन का प्रश्न केवल विक्रय की संविदाओं में ही सुसंगत होता है। उपरोक्त **हनुमान काटन मिल्स** बनाम **टाटा एयर क्राफ्ट** वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अवधारित किया है कि क्रेता द्वारा किए गए निक्षेप को अग्रिम धन मानने के लिए यह आवश्यक है कि अग्रिम धन संविदा निश्चित किये जाने के समय संदत्त किया गया हो क्योंकि अग्रिम धन इस बात की गारन्टी होती है कि संविदा का पालन किया जाएगा अर्थात् अग्रिम धन संविदा को पक्का करने के लिए दिया जाता है, किन्तु संविदा की शर्तों के अनुसार जब संव्यवहार पूरा हो जाए तब अग्रिम धन को आंशिक संदाय मानते हुए उसे क्रय-धन के प्रति समायोजित किया जाता है और जब तक संव्यवहार पूरा न हो, उसके समायोजन का प्रश्न ही नहीं उठता और इस प्रकार, उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयानुसार **यदि संविदा क्रेता के व्यतिक्रम के कारण निष्फल हो जाए तो विक्रेता उसे समपहृत करने का हकदार होता है। सारांश यह है कि अग्रिम धन, संविदा अधिनियम की धारा 64 या 65 के अर्थों में फायदा नहीं है।**

शून्य करार के अधीन संदत्त धन का प्रत्यावर्तन

अधिनियम की धारा 65 में यह अधिकथित किया गया है कि जबकि किसी करार के शून्य होने का पता चले या कोई संविदा शून्य हो जाए तब वह व्यक्ति जिसने ऐसे करार या संविदा के अधीन कोई फायदा प्राप्त किया हो, वह फायदा उस व्यक्ति को, जिससे उसने उसे प्राप्त किया था, प्रत्यावर्तित करने या उसके लिए प्रतिकर देने को आबद्ध होगा।

---

1 एल० आर० (1942-43) 70 आई० ए० 35=ए० आई० आर० 1943 प्रिवी काउंसिल 34.

2 [1974] 3 उम० नि० प० 398=ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1986=(1970) 2 एस० सी० जे० 420=(1970) 2 एस० सी० ए० 482.

प्रश्न यह है कि क्या किसी ऐसे करार, जो कि भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 23 या 24 के अन्तर्गत उद्देश्य या प्रतिफल की विधिविरुद्धता के कारण शून्य है, के अधीन संदत्त धन को **फायदा** माना जा सकता है ?

बुधलाल बनाम **डेक्कन बैंकिंग कम्पनी लिमिटेड**[1] वाले मामले में, हैदराबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ को इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर मिला था कि जहां कोई धन किसी ऐसी लिखत के अधीन संदत्त किया जाए जो शून्य अभिनिर्धारित की गई हो, तो क्या उसके अधीन संदत्त धन वसूल किया जा सकेगा। भारत में निर्णयज विधि का **हरनाथ कौर** बनाम **इन्दर बहादुर सिंह**[2] वाले मामले में प्रिवी कांउसिल के माननीय न्यायाधीशों के विनिश्चय का और **पोलक तथा मुल्ला**[3] के इस भाव के व्यक्त किये गये मत का पुनर्विलोकन करने के पश्चात् कि "भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 65 ऐसे करार को लागू नहीं होती जो विधिविरुद्ध प्रतिफल या उद्देश्य होने के कारण धारा 24 के अधीन शून्य है, और अधिनियम में कोई भी ऐसा उपबन्ध नहीं है जिसके अधीन विधिविरुद्ध प्रयोजन के लिए संदत्त धन को पुनः वसूल किया जा सकता हो, तथा इस सम्बन्ध में इंग्लिश लॉ का विश्लेषण सर्वोत्तम मार्गदर्शक होगा", उस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि ऐसी परिस्थितियों में संदत्त धन वसूल किया जा सकता है। विद्वान् लेखकों ने अपने दृष्टिकोण के समर्थन में जो कारण दिये हैं, उन्हें हैदराबाद उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय में इस प्रकार कथित किया गया है कि "यदि प्रिवी कांउसिल का मत सही है अर्थात् यह कि 'किसी करार के शून्य होने का पता चले' ऐसे सभी करारों को लागू होता है जो कि आरम्भ से शून्य हैं और इसके अन्तर्गत ऐसे करार भी आते हैं जो विधिक प्रतिफल पर आधारित हैं तो इससे यह परिणाम नहीं निकलता है कि ऐसा व्यक्ति जिसने किसी अवैध प्रयोजन के लिए किसी दूसरे व्यक्ति को धन संदत्त किया है या सम्पत्ति अन्तरित की है, वह इस धारा के अधीन अन्तरितियों से उसे वापस ले सकता है, चाहे अवैध प्रयोजन को निष्पादित भी किया जा चुका हो और अन्तरक और अन्तरिती दोनों ही **समदोषी** (पैरीडैलिक्टो) हों," इस तर्क की बावत, उपरोक्त हैदराबाद वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है—

> "हमारी राय में, इन विद्वान् लेखकों के मत का न तो प्रिवी कांउसिल के किसी पश्चात्वर्ती विनिश्चय से समर्थन होता है और न वह धारा 65 के उपबन्धों के स्वाभाविक अर्थ से संगत है। इस धारा में 'किसी करार के शून्य होने का पता चले' शब्दों का प्रयोग करने से यह अभिप्रेत है कि जब वादी को यह पता चले कि करार शून्य है। 'पता चलना' शब्द से किसी ऐसी बात का पूर्व अस्तित्व विवक्षित है जिसका तत्पश्चात् पता चले और यह कहा जा सकता है कि करार के शून्य होने की जानकारी प्रत्यास्थापना की एक पूर्व अपेक्षा है और करार के शून्य होने का पता चलने के भाव में उसका प्रयोग किया गया है। यदि जानकारी एक आवश्यक अपेक्षा है तो आरम्भ से शून्य करार का तत्पश्चात् शून्य होना पता चल सकता है। ऐसे भी मामले हो सकते हैं जहां पक्षकार यह समझते हुए ईमानदारी से कोई करार करते हैं कि यह पूर्णतया वैध करार है और जहां उनमें से कोई एक पक्षकार दूसरे पर वाद लाता है या दूसरे से उस

---

[1] ए० आई० आर० 1955 हैदराबाद 69, 75.

[2] ए० आई० आर० 1922 पी० सी० 403.

[3] इंडियन कान्ट्रेक्ट ऐक्ट एण्ड स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट, 7वां संस्करण, पृष्ठ 346-347.

पर कोई कार्य कराना चाहता है, तभी उसे इस बात का पता चलता है कि वह शून्य है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 65 में ऐसी कोई भी विनिर्दिष्ट बात नहीं है जो उन्हें ऐसे मामले में लागू न हो सकने वाला बनाती हो।"

उपरोक्त हैदराबाद उच्च न्यायालय द्वारा **बुधलाल** बनाम **डेक्कन बैंकिंग कम्पनी**[1] वाले मामले में किये गए विनिश्चय का अनुमोदन करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने **रामाज्ञाप्रसाद** बनाम **मुरलीप्रसाद**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि जब किसी करार के शून्य होने का पता चले या कोई संविदा शून्य हो जाए तब वह व्यक्ति जिसने ऐसे करार या संविदा के अधीन कोई फायदा प्राप्त किया हो वह फायदा उस व्यक्ति को जिससे उसने उसे प्राप्त किया था, प्रत्यावर्तित करने या उसके लिए प्रतिकर देने को आबद्ध होगा।

सारांश यह निकलता है कि जहां करार आरम्भ से ही शून्य हो किन्तु पक्षकारों को उसके शून्य होने का पता करार के समय नहीं था और करार उन्होंने ईमानदारी से किया था किन्तु तत्पश्चात् पालन के क्रम में, उस करार के शून्य होने का पता चलता है तो ऐसे करार के अधीन संदत्त धन प्रत्यावर्तित कराया जा सकता है, किन्तु यह नियम उन मामलों में लागू नहीं होगा जहां पक्षकार प्रारम्भ से ही जानते हों कि जो करार उनके बीच हुआ है, वह शून्य है। इस विषय में, अधिक स्पष्ट होने के लिए **पता चले** शब्दों की न्यायिक व्याख्या को ध्यान में रखना आवश्यक होगा।

"पता चले" शब्दों की व्याख्या

कुजू कोलियरिज लिमिटेड और अन्य बनाम **झारखण्ड माइन्स लिमिटेड और अन्य**[3] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने **पता चले** शब्दों की व्याख्या के प्रसंग में यह अभिनिर्धारित किया है कि धारा 65 किसी करार और संविदा के बीच प्रभेद करती है। संविदा अधिनियम की धारा 2 के अनुसार वह करार जो विधितः प्रवर्तनीय हो, संविदा है और वह करार, जो प्रवर्तनीय न हो, शून्य कहलाता है। इसलिए जब धारा का पूर्ववर्ती भाग यह उल्लेख करता है कि **ऐसे करार का पता चले, जो शून्य हो** तो इसका अभिप्राय यह है कि वह करार अप्रवर्तनीय है और इसलिए संविदा नहीं है। इससे यह अभिप्रेत है कि वह शून्य था। यह सम्भव है कि करार के पक्षकारों, अथवा किसी एक पक्षकार को यह बात ज्ञात नहीं थी, जब करार किया गया हो, कि वह करार विधितः प्रवर्तनीय नहीं था। यह हो सकता है कि उन्हें बाद में पता चला हो कि करार प्रवर्तनीय नहीं था। धारा का दूसरा भाग शून्य हो जाने वाली संविदा के प्रति निर्देश करता है। वह ऐसे मामले के प्रति निर्देश है जहां कोई करार जो आद्यतः प्रवर्तनीय था और इसलिए संविदा था, किन्तु पश्चात्वर्ती घटनाओं के कारण शून्य हो जाता है। इन दोनों ही मामलों में, ऐसा कोई व्यक्ति जिसने ऐसे करार या संविदा के अधीन फायदा उठाया हो, वह फायदा उस व्यक्ति को जिससे उसने प्राप्त किया था, प्रत्यावर्तित करने या उसके लिए प्रतिकर देने को बाध्य है। किन्तु जहां उस समय भी, जब करार किया गया हो, दोनों पक्षकारों को यह ज्ञात था कि वह वैध नहीं है और इसलिए शून्य है तो वहां कोई संविदा नहीं होती बल्कि केवल एक करार होता है और वह ऐसा मामला नहीं है जहां उसके शन्य होने का **पता चले**, और न ही यह पश्चात्वर्ती घटनाओं के कारण शून्य हो जाने वाली संविदा का मामला है। अतः संविदा अधिनियम की धारा 65, ऐसे मामलों को लागू नहीं होती।

---

[1] ए० आई० आर० 1955 हैदराबाद 69, 75.

[2] [1974] 2 उम० नि० प० 1049, 1072-73=ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1320.

[3] [1975] 1 उम० नि० प० 189=ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1892, 1893-94.

शिवरामकृष्णय्या बनाम वेंकट नरहरि राव[1] वाले मामले में किये गए हैदराबाद उच्च न्यायालय के एक और विनिश्चय का अनुमोदन करते हुए उच्चतम न्यायालय का, उपरोक्त **कुजू कोलियरीज लिमिटेड बनाम झारखण्ड माइन्स लिमिटेड**[2] वाले मामले में, न्या० ए० अलगिरि स्वामी का यह विनिश्चय रहा है कि **धारा 65 का आश्रय लेने के लिए यह आवश्यक है कि संविदा अथवा करारों की अविधिमान्यता का पता उसके किये जाने के बाद चले।** इसका फायदा उन पक्षकारों द्वारा नहीं लिया जा सकता जिन्हें उसकी अवैधता की जानकारी शुरू से ही थी। यह केवल ऐसे मामलों को लागू होता है जहां कोई एक पक्षकार इस विश्वास के अधीन करार करता है कि वह वैध करार है अर्थात् इस जानकारी के बिना कि वह करार विधि द्वारा प्रतिषिद्ध अथवा लोकनीति के विरुद्ध है और इस रूप में अवैध है। धारा 65 का प्रभाव यह है कि ऐसी स्थिति में वह ऐसे व्यक्ति को जो समान रूप से दोषी नहीं है, प्रत्यावर्तन का दावा करने के लिए समर्थ बनाती है और क्योंकि वह अवैध संविदा पर आधारित नहीं है बल्कि उससे असंबद्ध है। यह इस धारा के कारण अनुज्ञेय है, क्योंकि वह कार्य ऐसी कार्यवाहियों पर केवल यथा-पूर्वस्थिति का प्रत्यावर्तन चाहता है। धारा 65 भी किसी संविदा के लोकनीति अथवा नैतिकता के विरुद्ध होने के कारण, उसके अवैध होने के और अन्य कारणों से संविदा के शून्य होने के बीच प्रभेद नहीं करती। यहां तक कि ऐसे करार भी जिनके अनुपालन किए जाने के शास्तिक परिणाम हैं, धारा 65 के प्रविषय के बाहर नहीं हैं। साथ ही न्यायालय ऐसे व्यक्तियों की सहायता नहीं करेंगे जो अबोध पक्षकारों को उस प्रकृति की संविदायें करने के लिए, उन पर किए गए कपट से इसलिए प्रेरित करते हैं जिससे वे उस फायदे को प्रतिधारित कर सकें जिसने उन्हें अपने दोषपूर्ण कार्य से अभिप्रेत किया है।

□ □ □ □

---

[1] ए० आई० आर० 1960 आन्ध्र प्रदेश, 186.

[2] [1975] 1 उम० नि० प० 189=ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1892, 1895.

अध्याय 8

संविदा के सदृश सम्बन्धों के विषय में

परिचयात्मक

भारतीय संविदा अधिनियम के अध्याय 5 में 68 से 72 पर्यन्त धाराओं में कुछ इस प्रकार के दायित्वों का उल्लेख किया गया है जिनके अनुसार एक पक्ष को, दूसरे पक्ष द्वारा किए गए किसी कार्य के लिए अथवा किसी प्रकार उठाई गई क्षति के लिए समुचित धन का संदाय करना पड़ता है अथवा किसी वस्तु का परिदान या उसकी वापसी करनी पड़ती है। ये ऐसे संव्यवहार होते हैं जो सारतः संविदा की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते और न इनमें कोई प्रस्थापना या प्रतिग्रहण ही होता है। इनमें किसी प्रकार का प्रकट वचन भी नहीं होता किंतु वचन का आभास मात्र होता है ऐसे संव्यवहारों के बल से एक पक्ष पर, दूसरे पक्ष के प्रति, दायित्वों की सृष्टि तब होती है जबकि एक पक्षकार के व्यवहार में ऐसा विवक्षित हो कि उसने कोई वचन दिया है, जबकि वस्तुतः उसने कोई वचन नहीं दिया। ऐसे संव्यवहारों में दोनों पक्षकारों के बीच कोई संविदात्मक संबंध पूर्णतः नहीं होते, किंतु जब किसी व्यक्ति ने दूसरे के लिए कोई कार्य कर दिया हो अथवा उसके लिए कुछ व्यय कर दिया हो अथवा उसके निमित्त कुछ क्षति उठाई हो, तो केवल साम्या के आधार पर उन दोनों के संबंध संविदा के सदृश संबंधों में परिणत होकर, उन संव्यवहारों को संविदा के समान ही व्यवस्थित स्वरुप प्रदान कर दिया जाता है।

इन संव्यवहारों में वास्तविक संविदा नहीं होती किंतु व्यवहार वास्तविक होते हैं, और व्यवहारों की वास्तविकता के आधार पर ही विधि की दृष्टि से, पक्षकारों के बीच एक संविदा की स्थापना समझ ली जाती है। भारतीय संविदा अधिनियम में, इन्हें, **संविदा द्वारा सर्जित संबंधों के सदृश,** संबंधों की संज्ञा दी गई है। इन्हीं को, **सदृश-संविदा, कल्प-संविदा** या **आभास-संविदा** भी कहा जा सकता है। अंग्रेजी में इन्हें **क्वासी-कांट्रैक्ट्स** कहा गया है।

असमर्थ व्यक्ति को प्रदाय की गई वस्तुओं के लिए प्रतिपूर्ति

यदि ऐसे व्यक्ति को, जो संविदा करने में असमर्थ है या किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके पालन-पोषण के लिए वह वैध रूप से आबद्ध हो, जीवन में उसकी स्थिति के योग्य आवश्यक वस्तुयें किसी अन्य द्वारा प्रदाय की जाती हैं तो वह व्यक्ति जिसने ऐसे प्रदाय किये हैं, ऐसे असमर्थ व्यक्ति की सम्पत्ति से प्रतिपूर्ति पाने का हकदार है।

संविदा अधिनियम की धारा 68 में उल्लिखित इस नियम को समझने के लिए निम्न दृष्टान्त हैं :—

क. **ख** को जो पागल है, जीवन में उसकी स्थिति के योग्य आवश्यक वस्तुओं का प्रदाय **क** करता है। **ख** की सम्पत्ति से **क** प्रतिपूर्ति पाने का हकदार है।

क. **ख** की, जो पागल है, पत्नी और बच्चों को जीवन में उनकी स्थिति के योग्य आवश्यक वस्तुओं का प्रदाय **क** करता है। **ख** की सम्पत्ति से **क** प्रतिपूर्ति पाने का हकदार है।

मोहरी बीबी बनाम **धरमोदास घोष**[1] वाले मामले में, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि अवयस्क, व्यक्ति, इस नियम में वर्णित **असमर्थ** व्यक्ति की श्रेणी में आता है।

---

[1] आई० एल० आर० (1903) 30 कलकत्ता 593 पी० सी०=लॉ रिपोर्ट्स 30 इण्डियन अपील्स 114.

इस नियम में, असमर्थ व्यक्ति, व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी न होकर, केवल उसकी सम्पत्ति ही दायी है। असमर्थ व्यक्ति संविदा करने में सक्षम नहीं है। अतः व्यक्तिगत रूप से उस पर संविदा के सदृश संबंध भी लागू नहीं होते।

इस नियम के अन्तर्गत प्रदाय की गई वस्तुयें ऐसी होनी चाहिए जो—1. आवश्यक हों तथा 2. उस असमर्थ व्यक्ति या जिस किसी के पालन-पोषण के लिए वह असमर्थ व्यक्ति आबद्ध है, उसके जीवन में उसकी स्थिति के योग्य हों। आवश्यकता से अधिक या स्थिति से ऊपर प्रदाय की हुई वस्तुओं की प्रतिपूर्ति, इस नियम के अन्तर्गत अनुध्यात नहीं है। जैसे वस्त्रों में बटन आवश्यक हो सकते हैं किंतु हीरे से जड़े बटन आवश्यकता की वस्तु नहीं हो सकते।

आवश्यकताओं की वस्तुओं में, भोजन, वस्त्र, आवास व शिक्षा संबंधी वस्तुयें ही सम्मिलित नहीं हैं, वरन् सिविल प्रकार के[1] वाद या आपराधिक अभियोजनों[2] में बचाव करना भी आवश्यक वस्तुओं के अन्तर्गत है।

हितबद्ध व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति से शोध्य किसी धन के संदाय कर दिए जाने पर प्रतिपूर्ति

वह व्यक्ति जो उस धन के, जिसके संदाय के लिए कोई अन्य व्यक्ति विधि द्वारा आबद्ध है, संदाय में हितबद्ध है और इसलिए उसका संदाय करता है, उस अन्य से प्रतिपूर्ति पाने का हकदार है।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 69 में वर्णित इस नियम को निम्न दृष्टान्त से भली प्रकार समझा जा सकता है।

जमींदार के द्वारा अनुदत्त पट्टे पर ख बंगाल में भूमि धारण करता है। क द्वारा सरकार को देय राजस्व के बकाया में होने के कारण उसकी भूमि सरकार द्वारा विक्रय के लिए विज्ञापित की जाती है। ऐसे विक्रय का राजस्व-विधि के अधीन परिणाम ख के पट्टे का बातिल किया जाना होगा। ख विक्रय को और उसके परिणामस्वरूप अपने पट्टे को बातिल किये जाने को निवारित करने के लिए क द्वारा शोध्य राशि सरकार को सन्दत्त करता है। क इस प्रकार संदत्त रकम की ख को प्रतिपूर्ति करने के लिए आबद्ध है।

इस नियम के लागू होने के लिए, दो बातें आवश्यक हैं :—

1. जिस व्यक्ति की ओर से किसी अन्य द्वारा धन संदाय किया गया है, वह प्रथम व्यक्ति उस धन के लिए विधितः आबद्ध होना चाहिए अर्थात् उसके विरुद्ध कोई विधिक मांग अस्तित्व-युक्त होनी चाहिए।

2. जिस व्यक्ति ने संदाय किया हो वह उस संदाय में हितबद्ध होना चाहिए। ऐसी हितबद्धता, नैतिक, भावनात्मक अथवा सामाजिक स्वरूप की न होकर, ऐसी होनी चाहिए, जिसमें ऐसी क्षति अथवा असुविधा की आशंका निहित हो जिसका मूल्य ऐसा हो जिसका धन की राशि से अनुमान न किया जा सके। दृष्टान्त में अन्तर्विष्ट, भूमि से निष्कासन की क्षति, इसी प्रकार की क्षति है।

---

[1] वाटकिन्स बनाम धन्नू बाबू, आई० एल० आर०. (1881) 7 कलकत्ता, 140.

[2] रामचरनमल बनाम चौधरी देविया सिंह, आई० एल० आर० (1894) 21 कलकत्ता, 872.

यह नियम उस अवस्था में लागू नहीं होता जहां संदाय करने वाला व्यक्ति हितबद्ध न होकर, संदाय के लिए आबद्ध हो[1] अथवा जहां प्रतिपूर्ति की बात न होकर, समान अभिदाय की बात हो।

समान अभिदाय उन व्यक्तियों के बीच होता है जो संदाय के लिए समान रूप से आबद्ध हों जबकि प्रतिपूर्ति उन व्यक्तियों के बीच होती है, जिनमें से केवल एक संदाय करने के लिए विधितः आबद्ध हो और दूसरा जिसने संदाय किया हो, वह आबद्ध न होकर केवल हितबद्ध हो[2]। हितबद्ध होने का आशय यह है जिस व्यक्ति ने संदाय किया हो उसे स्वयं अपने हित की सुरक्षा के लिए संदाय करना आवश्यक लगा हो। यदि संदाय करने वाले व्यक्ति का स्वयं का कोई हित न हो और उसने आबद्ध व्यक्ति की सहायतार्थ या उस पर अनुग्रह करके संदाय किया हो तो इस नियम का लाभ नहीं उठाया जा सकता।[3]

अनानुग्रहिक कार्य का फायदा उठाने वाले व्यक्ति की बाध्यता

क. संविदा अधिनियम की धारा 70:—जहां कि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई बात या उसे किसी चीज का परिदान आनुग्रहिकतः करने का आशय न रखते हुए विधिपूर्वक करता है और ऐसा व्यक्ति उसका फायदा उठाता है, वहां वह पश्चात्‌कथित व्यक्ति, उस पूर्वकथित व्यक्ति को ऐसे की गई बात या परिदत्त चीज के बारे में प्रतिकर देने या उसे प्रत्यावर्तित करने के लिए आबद्ध है।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 70 में उल्लिखित इस नियम को दो दृष्टान्तों के द्वारा समझा जा सकता है—

क—एक व्यापारी **क** कुछ माल **ख** के गृह पर भूल से छोड़ जाता है **ख** उस माल को अपने माल के रूप में बरतता है। उसके लिए **क** को संदाय करने के लिए वह आबद्ध है।

ख—**ख** की सम्पत्ति को **क** आग से बचाता है। यदि परिस्थितियां दर्शित करती हों कि **क** का आशय आनुग्रहिकतः कार्य करने का था, तो वह **ख** से प्रतिकर पाने का हकदार नहीं है।

ख. धारा 70 का विस्तार :—इस धारा के अनुसार, उस व्यक्ति को जो किसी अन्य के लिए कोई बात या उसे किसी चीज का परिदान आनुग्रहिकतः करने का आशय न रखते हुए करता है यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह उस अन्य व्यक्ति से जिसने उस बात या उस चीज से फायदा उठाया है, प्रतिकर वसूल कर सके। न्या० एम० एच० बेग, (जैसा कि वे तब थे) के मतानुसार इस दायित्व का आधार कोई अभिव्यक्त करार या संविदा न होकर केवल साम्यात्मक है[4]। यह नियम प्रत्यास्थापना के उस साम्या सिद्धान्त पर आधारित है जिसका उद्देश्य अऋजु फायदे का निवारण है[5]। यदि एक पक्ष ने दूसरे पक्ष को माल का प्रदाय किया हो और दूसरे पक्ष ने उस माल को स्वीकार करके उसकी कीमत का आंशिक संदाय कर दिया हो, किंतु 90,000 रुपए की राशि देय रह गई हो, तो ऐसी दशा में, न्यायाधिपति ऊंटवालिया के अनुसार, पक्षकारों के मध्य विधि के अर्थ में समझी जाने वाली किसी प्रकार की अभिव्यक्त संविदा न होने पर भी इसे पक्षकारों के आचरण द्वारा कारित विवक्षित संविदा माना जाएगा।[6]

---

[1] नाइकैन **बनाम** चेट्टी, ए० आई० आर० 1950 मद्रास 343.

[2] देखिए नन्दलाल **बनाम** राम, ए० आई० आर० 1950 पटना, 212.

[3] आसुतोष **बनाम** सरोजिनी, 35 सी० डब्ल्यू० एन० 1136.

[4] हंसराज गुप्ता **बनाम** भारत संघ, ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 2724.

[5] पश्चिमी बंगाल राज्य **बनाम** बी० के० मोंडल, ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 779.
उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** चन्द्रगुप्त एण्ड कम्पनी, ए० आई० आर० 1977 इलाहाबाद, 28.

[6] मोहम्मद ईशाक **बनाम** मोहम्मद इकबाल, ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 799.

यह बात स्मरणीय है कि **जहां कोई हानि या नुकसान किसी पक्षकार को स्वयं अपने ही किसी व्यतिक्रम से पहुंचा हो तो उसे किसी दूसरे पक्ष से कोई प्रतिकर प्राप्त करने का अधिकार नहीं है।** माल लादने की एक संविदा में डैमरेज की राशि के दावे का आधार करार की वह शर्त थी जिसके अधीन माल को लादने की सुविधा स्वयं अपीलकर्ता को ही देनी थी और उसने स्वयं ही अपने इस दायित्व का भंग किया तो ऐसी दशा में न्यायमूर्ति एम० एच० बेग (जैसा कि वे उस समय थे) ने यह माना कि माल लादने में होने वाले विलम्ब से उद्भूत हानि के लिए प्रत्यर्थी दायी नहीं था।[1] किंतु न्या० (जैसा कि वे तब थे) ए० एन० रे के मत में यदि प्रतिवादी को फायदा वादी के किसी कार्य से न पहुंचकर, सरकारी नीतियों के किसी परिवर्तन के कारण पहुंचा हो तो ऐसे फायदे के लिए वादी प्रतिवादी से प्रतिकर की मांग नहीं कर सकता[2]।

ग. धारा 70 के आवश्यक तत्व :—भारत के मु० न्या० ए० एन० रे के मत में धारा 70 के अन्तर्गत वाद लाने के लिए **तीन बातें** आवश्यक हैं—1. यह कि किसी व्यक्ति को चीज का परिदान अथवा उस व्यक्ति के लिए कोई कार्य विधिपूर्वक किया गया था, 2. यह कि चीज का परिदान अथवा किया हुआ कोई कार्य आनुग्रहिक नहीं था, और 3. यह कि जिस व्यक्ति को चीज का परिदान या जिस व्यक्ति के लिए कार्य किया गया हो, उसने उस चीज अथवा उस किए गए कार्य से फायदा उठाया हो।[3]

मु० न्या० ने अपने एक अन्य निर्णय में यह संप्रेक्षण किया कि यदि वाद में इस प्रकार का स्पष्ट अभिवाक् नहीं किया गया है तो वाद-पत्र ग्रहण नहीं किया जा सकता।[4]

इस धारा के अन्तर्गत वाद तभी चल सकता है जबकि दावेदार किसी चीज को देने अथवा किसी सेवा को करने के लिए किसी पूर्वत: वर्तमान दायित्व के अधीन नहीं था। यदि वादी पर कोई ऐसा दायित्व नहीं था जिससे बाध्य होकर उसने कोई चीज दी अथवा कोई सेवा की हो तो वह प्रतिकर का अधिकारी है किंतु तभी जबकि उसका आशय उस चीज को देने अथवा उस सेवा को करने में आनुग्रहिकत: नहीं रहा हो।[5]

विधिपूर्वक शब्द किसी भी भांति अधिशेष (सरप्लस) नहीं है, वरन् यह इस नियम का मर्म है।[6] विधिपूर्वक का अर्थ यह है कि किए गए कार्य या किसी वस्तु के परिदान का उद्देश्य संविदा अधिनियम की धारा 23 के अन्तर्गत विधि-विरुद्ध न हो।

घ. धारा 70 सरकार और निकायों पर भी लागू होगी : —सरकार तथा अन्य निगमित निकाय भी इस नियम की संक्रिया से परे नहीं हैं। यह अभिमत उच्चतम न्यायालय के न्या० ए० अलगिरि स्वामी का है।[7]

सरकार के साथ की गई संविदा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 299 (1) के उपबन्धों के अनुसार न होने की स्थिति में भी भारतीय संविदा विधि का यह उपबन्ध लागू होगा कि जहां कोई व्यक्ति किसी अन्य के प्रति कोई बात या किसी चीज का परिदान आनुग्रहिकत: न करके विधिपूर्वक करता है

---

1 टिम्ब्लु इरमाओस बनाम जार्ज ग्रानीबाल माटोस सिक्वेरिया, ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 734.

2 श्रीनिवास एण्ड कम्पनी बनाम इन्डेन वाइसेलर्स, ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 2224 (2228).

3 भारत संघ बनाम सीताराम, ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 329.

4 देवी सहाय पल्लीवाल बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 2082.

5 मदासामी नाडार बनाम नगरपालिका, विरुध नगर, ए० आई० आर० 1977 मद्रास 147 (152).

6 किशोरीलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1977 राजस्थान, 101.

7 पन्नालाल बनाम डिप्टी कमिश्नर, भण्डारा, ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1174.

और उस अन्य द्वारा, भले ही वह सरकार हो, उसका फायदा उठा लिया जाता है, वहां वह पश्चात्-कथित पक्ष, पूर्वकथित पक्ष को ऐसे की गई बात या परिदत्त चीज के बारे में प्रतिकर देने या उसे प्रत्यावर्तित करने के लिए बाध्य है[1]। वादी द्वारा अपने वाद में उपरोक्त उपबन्ध के आधार पर प्रतिकर के विषय में वैकल्पिक मामला प्रस्तुत न किए जाने पर भी वादी का वाद खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि यदि अभिलेख से यह स्पष्ट हो रहा हो कि वादी इस उपबन्ध के अन्तर्गत अनुतोष पाने का हकदार है तो उसे इसका लाभ मिल सकेगा[2]। भारत सरकार द्वारा एक कम्पनी को गैस प्लांट के निर्माण के लिए स्टील का प्रदाय किया गया। कम्पनी के पास स्टील का कुछ अंश निर्माण के पश्चात् बच रहा। भारत सरकार के निर्देश पर कम्पनी ने बचे हुये माल को सरकार द्वारा नामित अन्य कम्पनी को अन्तरित कर दिया। स्टील के मूल्य का संदाय न किये जाने पर कम्पनी ने सरकार के विरुद्ध वाद संस्थित किया। न्या० ए० डी० कौशल ने यह विनिश्चित किया कि सरकार ने इस संव्यवहार के अन्तर्गत फायदा उठा लिया था ; अतः सरकार, मूल्य के संदाय के लिए दायी थी। [**भारत संघ** बनाम मैसर्स जे० के० गैस प्लान्ट[3], **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम बी० के० मोंडल**[4], अवलम्बित]

ङ. प्रत्यावर्तन का अर्थ :—धारा 70 में प्रयुक्त **प्रत्यावर्तन** से यह तात्पर्यित नहीं है कि प्रतिवादी वादी को उस चीज का जिससे कि उसने फायदा उठाया है, वास्तविक परिदान करके प्रत्यावर्तन करे। मु० न्या० ए० एन० रे ने यह संप्रेक्षित किया है कि यदि प्रतिवादी ने वादी को यह सूचित कर दिया है कि वह अपनी चीज वापस ले सकता है तो प्रत्यावर्तन के आशय के लिए ऐसी सूचना पर्याप्त है[5]।

धारा 70 के अन्तर्गत आने वाले मामले में, वादी किसी संविदा के विनिर्दिष्ट पालन का वाद नहीं ला सकता, न ही वह संविदा भंग के आधार पर नुकसानी का ही वाद ला सकता है जिसका स्पष्ट कारण यह है कि इस मामले में कोई संविदा होती ही नहीं। अस्तु, जब कोई व्यक्ति इस धारा के अन्तर्गत प्रतिकर का वाद लाता है तो उसका न्यायिक आधार न किसी संविदा से उद्भूत होता है और न ही किसी अपकृत्य से वरन यह विधि में ऐसा एक अन्य कोटि का आधार है जिसे सदृश संविदा अथवा प्रत्यावर्तन का नाम दिया गया है। ऐसा न्या० वी० रामस्वामी ने अवधारित किया है[6]।

च. अधिकारोचित प्रतिकर या क्वान्टम मैरिअट का सिद्धान्त :—धारा 70 के अन्तर्गत प्रतिकर के लिए संस्थित वाद में, वादी प्रतिकर की ऐसी राशि का हकदार होगा जो कि समुचित हो। **समुचित प्रतिकर** के इस सिद्धान्त को अंग्रेजी में **क्वान्टम मैरिअट** का नाम दिया गया है। **पीलूधनजी शाह** बनाम **नगरपालिका, पूना**[7] वाले मामले में, न्यायाधिपति जे० सी० शाह ने यह अवधारित किया है कि सामान्यतः प्रतिकर की राशि परिदत्त वस्तु का बाजार-मूल्य होगी।

---

[1] पश्चिम बंगाल राज्य **बनाम** बी० के० मोंडल, ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 779, न्यू मैराइन कोल कम्पनी **बनाम** भारत संघ, ए० आई० आर० 1964 एस० सी० 152, मूलचन्द **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 1218.

[2] भारत संघ **बनाम** साहब सिंह, ए० आई० आर० 1977 इलाहाबाद 277 (278).

[3] ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1330.

[4] ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 779.

[5] भारत संघ **बनाम** सीताराम, ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 329.

[6] मूलचन्द **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 1218 (1222).

[7] ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1201 (1205).

क्वान्टम मेरिअट का आधार सदृश संविदा है और यह किसी अभिव्यक्त करार से उद्भूत न होकर विवक्षित संविदा से उद्भूत होता है । जहां कोई दावा संविदा के किसी निबन्धन पर आधारित हो, वहां क्वान्टम मैरिअट के सिद्धान्त का आश्रय नहीं लिया जा सकता[1] ।

क्वान्टम मरिअट का अर्थ प्रतिकर की युक्तियुक्त राशि से है । एक करार के अधीन क का दायित्व एक सरकारी डिपो पर आने वाले वाहनों में से माल को उतारने और उनमें माल लदवाने का तथा खाद्य निदेशक द्वारा दिए गए आदेशों का ततपरता से पालन करने का था । इस कार्य के लिए श्रम के प्रदाय के लिए नियत की हुई दरें, करार से संलग्न एक अनुसूची में, दे दी गई थी । किंतु डिपों के द्वार से माल को दुकानदारों द्वारा नियोजित लारियों तक पहुंचाये जाने के दर विनिर्दिष्ट नहीं थे जबकि माल को लारियों तक ले जाने की क्रिया संविदा के अधीन अन्य दायित्वों के निर्वहन के लिए आवश्यक थी । क ने वह माल दुकानदारों की लारियों में लदवा भी दिया और इस प्रकार क ने दुकानदारों के लिए एक अतिरिक्त कार्य किया जिसे करने के लिए वह करार के अधीन बाध्य न था । सरकार ने माल को लारियों में लदवाने के मूल्य का संदाय करने से इंकार कर दिया और ऐसे संदाय के लिए क द्वारा वाद संस्थित किये जाने पर यह प्रतिवाद किया कि क अनुसूची में विनिर्दिष्ट दरों पर के मूल्य के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त करने का अधिकारी नहीं था । **के० सी० कुन्दू** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[2] वाले मामले में न्यायमूर्ति अजय कुमार बोस ने यह अभिनिर्धारित किया कि क प्रतिकर का अधिकारी था क्योंकि सरकार ने क द्वारा किए हुए कार्य का फायदा उठाया था जबकि क का आशय इस कार्य को आनुग्रहिकत: करने का नहीं था । यह भी कि प्रतिकर जिस दर पर निश्चित किया जाए, वह युक्तियुक्त होनी चाहिए ।

पड़े माल के ग्रहण का दायित्व

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 71 के अनुसार वह व्यक्ति जो किसी, अन्य का माल पड़ा पाता है और उसे अपनी अभिरक्षा में लेता है, उसी उत्तरदायित्व के अध्यधीन है जिसके अधीन उपनिहिती होता है ।

उपनिधान का वर्णन भारतीय संविदा अधिनियम के नवें अध्याय में किया गया है तथा उपनिहिती द्वारा बरती जाने वाली सतर्कताओं का उल्लेख धारा 131 व 152 में किया गया है । अस्तु, पड़ा हुआ माल पाने वाला और उसे अभिरक्षा में लेने वाला, उक्त धाराओं में उल्लिखित दायित्वों के अधीन रहता है । यह आवश्यक है कि इस धारा के अन्तर्गत पड़े माल को पाने वाला व्यक्ति उसे अपनी अभिरक्षा में रखे तभी वह विधित: उपनिहिती की कोटि में माना जा सकता है । यदि वह उस माल को अभिरक्षा में न रखकर, उसे उपयोग में संपरिवर्तित कर लेता है तो वह भारतीय दण्ड संहिता की धारा 403 के अन्तर्गत आपराधिक दुर्विनियोग के लिए भी दण्डनीय है ।

यह नियम इस सिद्धान्त पर आधारित है कि **पड़ा माल पाने वाला उस माल के वास्तविक स्वामी के अतिरिक्त उस माल का अन्य सारे जगत के लिए स्वामी के ही तुल्य है ।** इस का कारण है कि पाने वाला व्यक्ति, यदि उस माल की अभिरक्षा या सुरक्षा के लिए कुछ व्यय करता है तो, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 158 के अन्तर्गत, वास्तविक स्वामी से उस व्यय का प्रतिसंदाय करा सकता है ।

---

1 पटेल इंजीनियरिंग कम्पनी बनाम इण्डियन आइल कारपोरेशन, ए० आई० आर० 1975 पटना 212 (220).

2 ए० आई० आर० 1977 नोट 21 (कलकत्ता).

भूल या प्रपीड़न द्वारा प्राप्त संदाय का दायित्व

क. संविदा अधिनियम की धारा 72 :—जिस व्यक्ति को भूल से या प्रपीड़न के अधीन धन संदत्त किया गया है या कोई चीज परिदत्त की गई है, उसे उसका प्रतिसंदाय या वापसी करनी होगी।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 72 में वर्णित इस नियम के लिए निम्न दो दृष्टान्त हैं:—

क—**क** और **ख** संयुक्ततः **ग** के 100 रुपये के देनदार हैं। अकेला **क** ही **ग** को वह रकम संदत्त कर देता है और इस तथ्य को न जानते हुए, **ग** को **ख** 100 रुपए फिर संदत्त कर देता है। इस रकम का **ख** को प्रतिसंदाय करने के लिए **ग** आबद्ध है।

ख—एक रेल कम्पनी परेषिती को अमुक माल, जब तक कि वह उसके वहन के लिए अवैध प्रभार न दे, परिदत्त करने से इंकार करती है। परेषिती माल को अभिप्राप्त करने के लिए प्रभार की वह राशि संदत्त कर देता है। वह उस प्रभार में से उतना वसूल करने का हकदार है जितना अविधितः अधिक था।

ख. "भूल" शब्द की मीमांसा :— इस सन्दर्भ में तथ्य की भूल तथा विधि के बारे की भूल दोनों हैं। अतः यदि विधि के बारे की भूल से सरकार को किसी कर का संदाय कर दिया गया है तो वह संदाय करने वाला व्यक्ति सरकार से उस धन के प्रतिसंदाय या वापसी का हकदार होगा।[1] किंतु यह कहना सही नहीं है कि भूल से किया हुआ प्रत्येक संदाय वसूली के योग्य है, चाहे परिस्थितियां कुछ भी रही हों। किन परिस्थितियों में भूल से किया हुआ संदाय वसूल नहीं किया जा सकता है, यह बताया जाना सम्भव नहीं है किंतु यदि ऐसा अर्थ लगाया जाए कि परिस्थितियां विबन्ध के सिद्धान्त के अन्तर्गत आती हैं अथवा वसूली साम्या के विरुद्ध होगी, तो ऐसी दशा में धारा 72 के अन्तर्गत वसूली असफल सिद्ध होगी।[2] धारा 72 में वर्णित नियम उन्हीं मामलों में लागू होता है जहां धन का संदाय ऐसे विश्वास के साथ किया गया है कि संदत्त धन विधितः वसूली के योग्य है जबकि ऐसा विश्वास सही नहीं है, किन्तु जहां धन का संदाय आगापीछा सोच समझ कर और समस्त परिस्थितियों का ज्ञान रखते हुए किया गया हो, और जहां भूल का प्रश्न ही न हो वहां यह नियम लागू नहीं होता। [देखिए **लोहिया ट्रेडिंग कम्पनी बनाम सैंट्रल बैंक ऑफ इंडिया**[3]]

भूल यदि किसी संविदा से उद्भूत नहीं हुई हो तो इस धारा का लाभ नहीं उठाया जा सकता। अस्तु, भूल का आधार कोई संविदा होना चाहिए।[4]

भूल का महत्व उस सीमा तक है जहां कि इसके द्वारा बिना प्रतिफल के कोई संदाय कर दिया गया हो। सही सिद्धान्त यह है कि जहां कोई पक्षकार विधि के बारे में की भूल के कारण अन्य पक्ष को ऐसे धन का संदाय कर दे जो कि संविदा के अधीन शोध्य नहीं है तो उसे प्रतिसंदत्त करना होगा। भारतीय विधि में **यह स्पष्ट विधिक उपबन्ध है जिसमें साम्या के किसी सिद्धान्त का समावेश नहीं है।** दोनों पक्षों द्वारा विधि की भूल से कारित संविदा पर संविदा अधिनियम की धारा 72 लागू न होकर धारा 21

---

1 सेल्स टैक्स आफिसर बनाम कन्हैया लाल, ए० आई० आर० 1959 एस० सी० 135, रामनाथ पुरम मार्केट कमेटी बनाम ईस्ट इण्डिया कार्पोरेशन, ए० आई० आर० 1976 मद्रास 233.

2 यूनाइटेड बैंक बनाम ए० टी० अलीहुसेन, ए० आई० आर० 1978 कलकत्ता 169.

3 ए० आई० आर० 1978 कलकत्ता 468.

4 भारत संघ बनाम बालचन्द एण्ड सन्स, ए० आई० आर० 1967 कलकत्ता 310.

लागू होगी। मु० न्या० ए० एन० रे के निर्णय में धारा 21 में यह अधिनियमित किया गया है कि यदि संविदा का गठन विधि के बारे में किसी भूल से हुआ है तो वह संविदा केवल उसी आधार पर शून्य-करणीय नहीं है और यदि जैसी संविदा के अधीन धन का संदाय कर दिया गया है तो यह नहीं कहा जा सकता है कि संदाय भूल से हो गया है क्योंकि इस अवस्था में धन का संदाय एक विधिमान्य संविदा के अधीन शोध्य होने के कारण किया गया है जो यदि नहीं किया जाता तो संविदा के प्रवर्तन से कराया जा सकता था[1]। भूल से संदत्त धन का विनियोग एकपक्षीय रूप में लेनदार द्वारा देनदार के किसी अन्य दायित्व में नहीं किया जा सकता क्योंकि पक्षकारों की सहमतियुक्त करार के बिना समायोजन सम्भव नहीं होता।[2]

इस नियम में विधि के बारे की भूल और तथ्य के बारे की भूल में अन्तर नहीं किया गया है। अतः विधि के बारे की भूल होने के कारण भी संदत्त किये हुए धन या परिदत्त की हुई वस्तु, की वापसी करवाई जा सकती है। उच्चतम न्यायालय के समक्ष, **मैसर्स डी० कवास जी एण्ड कम्पनी और अन्य बनाम मैसूर राज्य और अन्य**[3] के मामले में न्यायमूर्ति के० के० मैथ्यू ने यह अभिनिर्धारित किया है कि कामन ला (सामान्य कानून) की यह उपधारणा कि प्रत्येक व्यक्ति को विधि का ज्ञान होता है, इस नियम में लागू नहीं की जा सकती। यदि यह उपधारणा कि प्रत्येक व्यक्ति को विधि का ज्ञान होता है, लागू की जाए तो विधि की भूल के अधीन संदाय करने का कोई मामला होना सम्भव ही नहीं है क्योंकि जिस क्षण यह उपधारणा की जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति विधि जानता है तो विधि के सम्बन्ध में कोई व्यक्ति भूल कर हो नहीं सकता। तथापि **भूल से संदत्त कर की वसूली एक लम्बी अवधि व्यतीत होने के पश्चात् नहीं की जा सकती।**

ग. प्रपीड़न का अर्थ :—भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 15 के अन्तर्गत प्रपीड़न का आशय किसी व्यक्ति से कोई करार कराया जाना या ऐसा कोई कार्य करना या करने की धमकी देना है, जो भारतीय दंड संहिता द्वारा निषिद्ध है अथवा किसी व्यक्ति पर चाहे वह कोई हो, प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए किसी सम्पत्ति का विधि विरुद्ध निरोध करना या निरोध करने की धमकी देना है। किंतु धारा 72 में, **प्रपीड़न** को सामान्य अर्थ में लिया गया है, जिसके अन्तर्गत ऐसी कोई भी परिस्थिति हो सकती है जो किसी व्यक्ति को अनिच्छापूर्वक धन का संदाय करने के लिए बाध्य करे। नेशनल बैंक ऑफ इंडिया ने दिल्ली काटन मिल्स लिमिटेड के विरुद्ध एक वाद डिक्री करा लिया और डिक्री के निष्पादन के क्रम में कन्हैयालाल की कपडा मिल को कुर्क करा लिया और अपने निष्कासित होने की अवस्था का निवारण करने के लिए, कन्हैयालाल को डिक्री का रुपया चुका देना पड़ा। तत्पश्चात, कन्हैयालाल द्वारा नेशनल बैंक ऑफ इंडिया के विरुद्ध वाद संस्थित किये जाने पर यह अवधारित हुआ कि कन्हैयालाल स्वयं द्वारा संदत्त धन की वापसी का हकदार था, क्योंकि इस नियम के अन्तर्गत प्रपीडन का वह अर्थ नहीं है जो कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 15 के अन्तर्गत बताया गया है, वरन् इस सन्दर्भ में, प्रपीड़न का अर्थ मामूली तौर पर, किसी विवशता अथवा असम्यक दबाव से है[4]।

न्या० के० एस० हेगडे के निर्णय में **अविधितः वसूल किये गए करों की वापसी के लिए इस नियम के अन्तर्गत वाद लाया जा सकता है**[5]। □ □ □

---

[1] धान्य लक्ष्मी राइस मिल्स बनाम कमिश्नर, सिविल सप्लाईज, ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 2243.

[2] केसोराम इण्डस्ट्रीज बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1977 कलकत्ता 459.

[3] [1975] 1 उम० नि० प०, 1365, 1365, 1366 : ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 813.

[4] कन्हैयालाल बनाम नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया, 17 सी० एल० जे० 478=18 आई० सी० 949=15 बाम्बे ला रिपोर्टर 472=25 एम० एल० जे० 104=11 ए० एल० जे० 113=17 सी० डब्ल्यू० एन० 541.

[5] वल्लभदास मथरा दास बनाम म्युनिसिपल कमेटी, ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 846.

अध्याय 9

संविदा भंग के परिणामों के विषय में

संविदा भंग का अर्थ

भारतीय संविदा अधिनियम के अध्याय 6 में, जिसमें कि अधिनियम की धारा 73, 74 व 75 का समावेश है, संविदा भंग के परिणामों के संबंध में उपबन्ध किये गए हैं, किन्तु **अधिनियम में कहीं भी संविदा भंग को परिभाषित नहीं किया गया** । अधिनियम के अध्याय 4 में जिसमें कि 37 से 67 पर्यन्त धारायें हैं, संविदा के पालन के विषय में अनेक सिद्धान्तों का अधिनियमन किया गया है और यह कहा जा सकता है कि किसी पक्षकार का, इन सिद्धातों के प्रतिकूल आचरण ही संविदा का भंग है । अधिनियम की धारा 37 में कहा गया है कि पक्षकारों को अपने-अपने वचनों का पालन करना होगा या करने की प्रस्थापना करनी होगी, जब तक कि ऐसे पालन से अधिनियम के या किसी अन्य विधि के उपबन्धों के अधीन अभिमुक्ति या माफी न दे दी गई हो । **संविदा भंग** का अर्थ इसी धारा के अर्थान्वियन में विवक्षित माना जा सकता है। इस धारा के अन्तिम चरण से, यह ग्रहण किया जा सकता है कि कौन-सी बात **संविदा भंग** नहीं है । संविदा के अधीन किसी वचन का पालन करने से, संविदा अधिनियम या अन्य किसी विधि के अधीन अभिमुक्ति या माफी दे दी गई हो तो ऐसी दशा में वचनदाता द्वारा वचन का पालन न किया जाना संविदा का भंग नहीं है । परन्तु, यदि ऐसी अभिमुक्ति या माफी नहीं दी गई हो तो वचनदाता को अपने वचन का पालन करना होगा अथवा पालन करने की प्रस्थापना करनी होगी । इस प्रकार, धारा 37 के प्रथम चरण से यह अर्थ घटित होता है कि जब कोई पक्षकार न तो अपना वचन ही पालन करे और न ही पालन करने की प्रस्थापना करे तो वह संविदा का भंग करता है । किन्तु यदि वह पालन की प्रस्थापना करे और वह प्रस्थापना, अधिनियम की धारा 38 के अनुसार, समुचित प्रस्थापना हो, किन्तु उस प्रस्थापना को संविदा का दूसरा पक्षकार प्रतिगृहीत न करे तो, प्रस्थापना करने वाला पक्षकार संविदा भंग का दोषी नहीं है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि **विधिविहित अभिमुक्ति या माफी के बिना, किसी पक्षकार द्वारा अपने वचन का पालन न करना ही संविदा भंग है ।**

संविदा भंग और संविदा का प्रत्याशित भंग

हेनैन बनाम डारविन्स[1] वाले मामले में, संविदा भंग की **तीन अवस्थाओं** का चित्रण इस प्रकार किया गया है—1. जबकि कोई पक्षकार संविदा के अधीन अपने दायित्व का त्यजन कर दे, 2. अथवा अपने ही किसी कृत्य से, अपने दायित्व का पालन असम्भव बना दे, अथवा 3. संविदा के पूर्णतः या भागतः पालन में असफल हो जाए । प्रथम दो अवस्थायें, संविदा के पालन के समय से पूर्व या पालन के समय उत्पन्न होती है जबकि तृतीय अवस्था संविदा के पालन के समय या पालन के दौरान उत्पन्न हो सकती है।

इनमें से **तृतीय अवस्था संविदा का वास्तविक भंग है जबकि प्रथम और द्वितीय अवस्थायें, संविदा के प्रत्याशित भंग की अवस्थायें हैं** । भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 39 में इन दो अवस्थाओं का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—1. जबकि किसी संविदा के एक पक्षकार ने अपने वचन का पूर्णतः पालन करने से इन्कार कर दिया हो, या 2. ऐसा पालन करने के लिए अपने को निर्योग्य बना लिया हो।

[1] एल० आर० (1942) एस० सी० 356, 397.

जहां वचनदाता वचन के पालन में निर्योग्य न हुआ हो किन्तु उसने पालन के लिए केवल इन्कारी-दर्शित की हो, वहां वचनगृहीता को दो विकल्प प्राप्त हैं—1. वह चाहे तो संविदा को तुरन्त विखण्डित करके उसका अन्त कर सकता है और ऐसी दशा में, उसे वचन के पालन का समय आने तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है और वह तत्काल ही वचनदाता की पालन से इन्कारी के द्वारा स्वयं को पहुंची हानि के लिए प्रतिकर का वाद ला सकता है, तथा 2. यदि वह चाहे तो, वचनदाता की इन्कारी के आशय की सूचना के पश्चात् भी पालन के समय तक प्रतीक्षा करके वचनदाता को पालन के लिए अवसर दे सकता है; और पालन का समय व्यतीत होने तक भी पालन न होने पर, अपनी नुकसानी का वाद ला सकता है । **संविदा भंग और संविदा के प्रत्याशित भंग के परिणामों में अन्तर केवल यह है कि प्रथम में, वह पक्षकार जो संविदा भंग से क्षति उठाता है, भंग करने वाले पक्षकार से ऐसा प्रतिकर पाने का हकदार है, जो घटनाओं के प्रायिक अनुक्रम में प्रकृत्या ऐसे भंग से उद्भूत हुआ हो जबकि प्रत्याशित भंग के मामले में संविदा को विखण्डित करने वाला पक्षकार ऐसे प्रतिकर का हकदार है जो उसने संविदा के पालन न करने से उठाया हो ।**

संविदा भंग की दशा में विधिक उपचार

संविदा भंग के कारण क्षति उठाने वाला पक्षकार **चार प्रकार के विधिक उपचारों** का आश्रय ले सकता है—

(i) विनिर्दिष्ट पालन—विनिर्दिष्ट पालन से तात्पर्य यह है कि संविदा का जिस ढंग से पालन किया जाना आशयित था, उसका पालन ठीक उसी ढंग से किया जाना चाहिए । उदाहरण के लिए, स्थावर सम्पत्ति के विक्रय की संविदा में करारित सम्पत्ति का वास्तविक अन्तरण ही उसका विनिर्दिष्ट पालन कहा जायेगा । उन संविदाओं में जहां कि संविदा के अपालन से उत्पन्न हानि के लिए समुचित प्रतिकर देकर, उस हानि की पूर्ति सम्भव हो, वहां न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट पालन का आदेश नहीं दिया जा सकता ।

(ii) व्यादेश—यदि संविदा का एक पक्षकार अपने वचन को भंग करने का आशय रखता है, वहां दूसरा पक्षकार, न्यायालय में व्यादेश का वाद लाकर या किसी लाये हुए वाद में व्यादेश का आवेदन करके, उस पक्षकार को अपने वचन का भंग करने से प्रतिषिद्ध करा सकता है । उदाहरण के लिए, **क** ने अपनी स्थावर सम्पत्ति के विक्रय की संविदा **ख** से की किन्तु तत्पश्चात् उसी सम्पत्ति को अन्तरित करने का करार वह **ग** से भी कर लेता है, तो **क**, **ख**, और **ग** के विरुद्ध, यह वाद ला सकता है कि **ख** उसका अन्तरण **ग** के पक्ष में न कर सके और **ग** उसे अन्तरित न करा सके।

(iii) अधिकारोचित प्रतिकर—अंग्रेजी में इसे **क्वान्टम मेरिअट** का सिद्धान्त कहा जाता है जिसका अर्थ **प्रतिकर की अधिकारोचित मात्रा** होता है । यह एक प्रकार से उचित पारिश्रमिक या उचित प्रतिमूल्य की मांग है । इसका आशय केवल इतना है कि जब एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के कार्य से या उसकी किसी वस्तु से कोई फायदा उठाया हो तो उस प्रथम व्यक्ति को उस फायदे के अनुपात से, दूसरे व्यक्ति को प्रतिकर देना होगा । चार प्रकार के मामलों पर, यह नियम लागू होता है—

(क) शून्यकरणीय संविदा को विखण्डित करने वाले पक्षकार ने यदि ऐसी संविदा के किसी दूसरे पक्षकार से तद्धीन कोई फायदा प्राप्त किया है, तो वह ऐसा

फायदा, उस व्यक्ति को, जिससे वह प्राप्त किया गया था, 'यथा सम्भव' प्रत्यावर्तित कर देगा ।[1] **यथा सम्भव** शब्द **क्वान्टम मेरियट** का संकेत है ।

(ख) जब कि किसी करार के शून्य होने का पता चले या कोई संविदा शून्य हो जाए तब वह व्यक्ति जिसने ऐसे करार या संविदा के अधीन कोई फायदा प्राप्त किया हो वह फायदा उस व्यक्ति को जिससे उसने उसे प्राप्त किया था, प्रत्यावर्तित करने या उसके लिए प्रतिकर देने को आबद्ध होगा ।[2] यहां यदि उस फायदे को प्रत्यावर्तित करना सम्भव न हो तो, प्रतिकर की माता, उठाये गए फायदे की माता के समान होनी चाहिए ।

(ग) जहां कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई बात या उसे कोई चीज का परिदान आनुग्रहिकतः (अर्थात् निःशुल्क) करने का आशय न रखते हुए, विधिपूर्वक करता है और ऐसा अन्य व्यक्ति उसका फायदा उठाता है, वहां वह पश्चात्-कथित व्यक्ति, उस पूर्वकथित व्यक्ति को ऐसे की गई बात या परिदत्त चीज के बारे में प्रतिकर देने या उसे प्रत्यावर्तित करने के लिए आबद्ध है ।[3]

(घ) जहां करारित कार्य का कुछ भाग नहीं किया गया हो, किन्तु शेष किया गया हो, वहां नहीं किये गए भाग से पहुंची हुई क्षति के लिए प्रतिकर देने की बाध्यता है । जैसे कि संविदा अधिनियम की धारा 39के दृष्टांत (ख) में बताया गया है कि एक गायिका एक नाट्य गृह के प्रबन्धक से अगले दो मास के दौरान में प्रति सप्ताह दो रात, उसके नाट्य गृह में गाने की संविदा करती है और प्रबन्धक उसे प्रति रात के गाने के लिए 100 रुपए की दर से संदाय करने का वचन बन्ध करता है । छठी रात को गायिका जानबूझकर अनुपस्थित रहती है । प्रबन्धक की अनुमति से गायिका सातवीं रात को गाती है । छठी रात को गायिका के न गाने से उठाये गए नुकसान के लिए, प्रबन्धक हकदार है । इस उदाहरण में,माना जाए कि गायिका के छठी रात अनुपस्थित रहने से,प्रबन्धक संविदा को विखण्डित कर दे तो भी, उसे गायिका को पांच रातों के गाने के लिए संदाय करना होगा ।[4] इसका कारण यह है कि प्रबन्धक ने प्रति रात गाने के लिए संदाय करने का वचन दिया है । यदि संदाय का वचन प्रति रात गाने के लिए न होकर सम्पूर्ण दो मास के लिए होता तो गायिका पांच रातों के गाने के लिए संदाय की हकदार न होती और प्रबन्धक को न गाने से हुई हानि के लिए प्रतिकर भी देने को बाध्य होती । न्यायमर्ति पी० जगनमोहन रेड्डी के अनुसार, क्वान्टम मेरिअट का सिद्धान्त, जो संविदा भंग करे, उस पक्षकार को लाभ नहीं पहुंचा सकता, चाहे, भंग करने वाले ने, संविदा के कुछ भाग का पालन ही क्यों न कर दिया हो ।[5] किन्तु जहां यह प्रतिज्ञा विवक्षित हो, जैसे उपरोक्त गायिका के उदाहरण में, कि भागतः पालन का भी संदाय होगा, वहीं संविदा भंग के पश्चात् भागतः पालन का प्रतिकर लिया जा सकता है, अन्यथा प्रतिकर लेने के स्थान पर देने का दायित्व आ सकता है ।

(iv) हानि या नुकसान के लिए प्रतिकरः—संविदा भंग से जिस व्यक्ति को क्षति पहुंची है, वह उतनी ही माता में प्रतिकर पाने के लिए वाद ला सकता है । यहां **प्रतिकर का सम्बन्ध क्षति से है, अधिकारिता से नहीं है** । यदि नुकसान विशेष है तो प्रतिकर सारवान (सब्स्टैन्शल) होगा किन्तु यदि नुकसान स्वल्प है तो प्रतिकर नाममात्र का (नामिनल) होगा ।

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 64.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 65.

[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 70.

[4] अधिनियम की धारा 65 दृष्टान्त (ग).

[5] पूरनलाल साह बनाम स्टेट आफ उत्तर प्रदेश, ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 712.

प्रतिकर का अर्थ और अधिकारोचित प्रतिकर तथा नुकसान के लिए प्रतिकर में अन्तर

प्रतिकर का अर्थ, वह धनराशि है जो संविदा भंग द्वारा कारित हानि या नुकसान के मद्धे किसी व्यक्ति को संदेय हो ।[1] प्रतिकर के दो रूप हैं—अधिकारोचित प्रतिकर अर्थात् क्वान्टम मैरिअट तथा नुकसान के लिए प्रतिकर। न्या० पी० जगनमोहन रेड्डी के अभिमत में, क्वान्टम मैरियट अर्थात् अधिकारोचित प्रतिकर का उपचार किसी व्यक्ति द्वारा किये हुए किसी कार्य के मूल्य की ऐसी प्रतिपूर्ति है जो उस व्यक्ति को उस स्थिति में प्रत्यावर्तित कर दे जैसी कि उसकी होती यदि संविदा न की जाती जबकि हानि अथवा नुकसान के लिए प्रतिकर नुकसानी के लिए ऐसा उपचार है जिसका उद्देश्य व्यथित पक्षकार को यथासम्भव उस स्थिति में ला देना है जिसमें वह होता यदि दूसरे पक्षकार ने संविदा का पालन कर दिया होता ।[2] **किसी संविदा के अधिकारपूर्ण विखंडन करने या संविदा के प्रत्याशित भंग के कारण या सदृश-संविदा की दशा में या संविदा के शून्य हो जाने की दशा में, एक पक्ष द्वारा उठाये गए फायदे के बदले दूसरे पक्षकार को जो प्रतिकर दिया जाए वह, व्यथित पक्षकार को संविदा से पूर्व की स्थिति में ला देने के उद्देश्य से अधिकारोचित प्रतिकर होता है, जबकि नुकसान के लिए प्रतिकर संविदा के वास्तविक भंग के कारण क्षतिग्रस्त पक्षकार को दिया जाने वाला वह धन है जो उसे ऐसी स्थिति में ला दे जैसी कि संविदा के पालन के पश्चात् होती ।**

संविदा विधि के अन्तर्गत प्रतिकर के उपचार

उपरोक्त वर्णित चार उपचारों में से प्रथम दो, अर्थात् विनिर्दिष्ट पालन और व्यादेश, के उपचार, विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 के अन्तर्गत, तथा अन्तिम दो उपचार, अर्थात् अधिकारोचित प्रतिकर और नुकसान के लिए प्रतिकर, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 के अन्तर्गत उपलब्ध है। इन उपचारों का उपबन्ध, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 73, 74 व 75 में किया गया है।

संविदा अधिनियम की धारा 73 और उसके दृष्टान्त

जबकि कोई संविदा भंग कर दी गई है तब वह पक्षकार, जो ऐसे भंग से क्षति उठाता है, उस पक्षकार से, जिसने संविदा भंग की है, अपने को तद्द्वारा कारित किसी ऐसी हानि या नुकसान के लिए प्रतिकर पाने का हकदार है जो ऐसी घटनाओं के प्रायिक अनुक्रम में प्रकृत्या ऐसे भंग से उद्भूत हुआ हो, जिसका संविदा भंग का संभाव्य परिणाम होना पक्षकार उस समय जानते थे जब उन्होंने संविदा की थी।

ऐसा प्रतिकर उस भंग के कारण उठाई गई किसी दूरस्थ और परोक्ष हानि या नुकसान के लिए नहीं दिया जाना है ।

जबकि कोई बाध्यता, जो संविदा द्वारा सर्जित बाध्यताओं के सदृश हो, उपगत कर ली गई है और उसका निर्वहन नहीं किया गया है तब कोई भी व्यक्ति, जिसे उसके निर्वहन में असफलता से क्षति हुई हो, व्यतिक्रम करने वाले पक्षकार से वही प्रतिकर पाने का हकदार है मानो ऐसे व्यक्ति ने उस बाध्यता का निर्वहन करने की संविदा की हो, और उसने अपनी उस संविदा का भंग किया हो।

उपरोक्त उपबन्धों के साथ एक स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया गया है—

किसी संविदा भंग से उद्भूत हानि या नुकसान का प्राक्कलन करने में उन साधनों को दृष्टि में रखना होगा जो संविदा के अपालन से हुई असुविधा का उपचार करने के लिए वर्तमान थे।

---

[1] धापई बनाम दल्ला, ए० आई० आर० 1970 इलाहाबाद, 206 (209).

[2] पूरनलाल साह बनाम स्टेट आफ उत्तर प्रदेश, ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 712.

संविदा अधिनियम में, इन उपबन्धों की सम्यक् व्याख्या के निमित्त, अनेक दृष्टान्त दिये गए हैं और ये मूल उपबन्धों के समान ही **अति महत्व** के हैं जिनका सावधानीपूर्वक पर्यावलोचन आवश्यक है। वे दृष्टान्त निम्न प्रकार हैं—

क—क संविदा करता है कि वह अमुक कीमत पर ख को 50 मन शोरा बेचेगा और परिदत्त करेगा, और कीमत उसके परिदान पर संदत्त की जाएगी। क अपने वचन को भंग कर देता है। ख प्रतिकर के रूप में क से उतनी राशि, यदि कोई हो, पाने का हकदार है, जितनी से संविदा वाली कीमत उस कीमत से कम है जितनी पर ख वैसी क्वालिटी का 50 मन शोरा उस समय अभिप्राप्त कर सकता था जिस समय वह शोरा परिदत्त किया जाना चाहिए था।

ख—ख के पोत को मुम्बई जाने और वहां पहली जनवरी को क द्वारा उपबन्धित किया जाने वाला स्थोरा भरने और कलकत्ता लाने के लिए क भाड़े पर लेता है। ढुलाई उपार्जित होने पर दी जानी है। ख का पोत मुम्बई नहीं जाता, किन्तु वैसे ही फायदाप्रद निर्बन्धनों पर, जिन पर क ने वह पोत भाड़े पर लिया था, उस स्थोरा के लिए उपयुक्त प्रवहण यान उपाप्त करने के अवसर क को प्राप्त हैं। क उन अवसरों का उपयोग करता है किन्तु उसे वैसा करने में कष्ट और व्यय उठाना पड़ता है। क ऐसे कष्ट और व्यय के लिए ख से प्रतिकर पाने का हकदार है।

ग—ख से कथित कीमत पर 50 मन चावल खरीदने की संविदा क करता है। चावल के परिदान के लिए कोई समय नियत नहीं है। तत्पश्चात् ख को क यह जतला देता है कि चावल निविदत्त किया गया तो वह उसे प्रतिगृहीत नहीं करेगा। क से ख प्रतिकर के रूप में उतनी रकम, यदि कोई हो, पाने का हकदार है जितनी से संविदा-कीमत उस कीमत से अधिक है जो ख उस समय चावल के लिए अभिप्राप्त कर सकता हो जिस समय ख को जतलाता है कि वह चावल प्रतिगृहीत नहीं करेगा।

घ—ख के पोत को 60,000 रुपए पर खरीदने की संविदा क करता है, किन्तु अपना वचन भंग कर देता है। क प्रतिकर के रूप में ख को वह अधिकाई, यदि कोई हो, देगा जितनी से संविदा कीमत उस कीमत से अधिक हो, जो ख वचन भंग के समय पोत के लिए अभिप्राप्त कर सकता था।

ङ—क जो एक नौका का स्वामी है, विनिर्दिष्ट दिन प्रस्थापना करके मिर्जापुर को वहां विक्रय के लिए पटसन के स्थोरा को ले जाने की ख से संविदा करता है। किसी परिहार्य हेतुक से नौका नियत समय पर प्रस्थान नहीं करती जिससे वह स्थोरा मिर्जापुर में उस समय के पश्चात् पहुंचता है जिस समय वह पहुंचता यदि उस नौका ने संविदा के अनुसार प्रस्थान किया होता। उस तारीख के पश्चात् और स्थोरा के पहुंचने से पूर्व पटसन की कीमत गिर जाती है। क द्वारा ख को देय प्रतिकर का परिमाण वह अन्तर है जो उस कीमत का, जो स्थोरा के लिए ख मिर्जापुर में उस समय अभिप्राप्त कर सकता था जबकि वह पहुंचता यदि वह सम्यक् अनुक्रम में भेजा गया होता, उस कीमत से है, जो उस समय, उस स्थोरा की बाजार में हो, जब वह वास्तव में पहुंचा।

च—ख के गृह की मरम्मत अमुक प्रकार से करने के लिए संविदा क करता है और उसके लिए संदाय अग्रिम पाता है। क गृह की मरम्मत करता है किन्तु संविदा के अनुसार नहीं। ख वह खर्चा क से वसूल करने का हकदार है जो इसलिए करना हो कि मरम्मत संविदा के अनुरूप हो जाए।

छ—क अपना पोत अमुक भाड़े पर ख को पहली जनवरी से एक वर्ष के लिए देने की संविदा करता है। ढुलाई की दरें चढ़ जाती हैं और पहली जनवरी को पोत के लिए अभिप्राप्य भाड़ा संविदा भाड़े से उंचा है। क अपना वचन-भंग करता है। उसे संविदा-भाड़े और उस भाड़े के बीच के अन्तर के बराबर की राशि ख को प्रतिकर के रूप में देनी होगी। जिस पर ख पहली जनवरी को और उससे एक वर्ष के लिए वैसे ही पोत को भाड़े पर ले सकता है।

ज—ख को लोहे की अमुक मात्रा ऐसी नियत कीमत पर प्रदाय करने की संविदा क करता है जो उस कीमत से ऊंची है जिस पर क उस लोहे का उपापन और परिदान कर सकता है। ख उस लोहे को लेने से सदोष इन्कार कर देता है। लोहे की संविदा-कीमत और उस राशि के बीच का अन्तर, जिस पर क उस लोहे को अभिप्राप्त और परिदत्त कर सकता है, क के प्रति, प्रतिकर के रूप में, ख को देना होगा।

झ—ख को, जो सामान्य वाहक है, क एक मशीन क की मिल तक अविलम्ब प्रवहित किए जाने के लिए यह जानकारी देकर परिदत्त करता है कि उस मशीन के अभाव में क की मिल रुकी पड़ी है। ख मशीन के परिदान में अयुक्तियुक्त विलम्ब करता है और सरकार के साथ होने वाली लाभदायक संविदा क के हाथ से, उसके परिणाम स्वरूप, निकल जाती है। क, प्रतिकर के रूप में ख से उस औसत लाभ की रकम पाने का हकदार है जो उस समय के दौरान जिसमें उसका परिदान विलम्बित हुआ, मिल के चालू रहने से हुआ होता, किन्तु सरकार के साथ होने वाली संविदा के हाथ से निकल जाने से हुई हानि के लिए प्रतिकर पाने का हकदार नहीं है।

ञ—ख से क यह संविदा करता है कि वह 100 रुपये प्रति टन दर से 1,000 टन लोहा, जो कथित समय पर परिदत्त किया जाएगा, उसे प्रदाय करेगा। वह ग को यह बतलाकर कि मैं ख के साथ हुई अपनी संविदा का पालन करने के प्रयोजन से तुमसे संविदा कर रहा हूं उससे 80 रुपए प्रति टन की दर से 1,000 टन लोहा लेने की संविदा करता है। क के साथ अपनी संविदा का पालन करने में ग असफल होता है। क दूसरा लोहा उपाप्त नहीं कर सकता और उसके परिणामस्वरूप ख संविदा का विखण्डन कर देता है। क के प्रति ग को 20,000 रुपए देने होंगे जो उस लाभ की रकम है जो ख से अपनी संविदा का पालन करने पर क प्राप्त करता।

ट—क अमुक मशीनरी को विनिर्दिष्ट कीमत पर, नियत दिन तक बनाने और परिदत्त करने की ख से संविदा करता है। क उस मशीनरी को विनिर्दिष्ट समय पर, परिदत्त नहीं करता और इसके परिणामस्वरूप ख उसकी कीमत से, जो वह क को देने वाला था, ऊंची कीमत पर कोई दूसरी मशीनरी उपाप्त करने के लिए विवश हो जाता है, और उस संविदा का पालन नहीं कर सकता जो क के साथ की गई अपनी संविदा के समय ख ने एक पर-व्यक्ति से की थी (किन्तु जिसकी सूचना उसने तब तक क को नहीं दी थी) और उस संविदा के भंग के लिए प्रतिकर देने को विवश किया जाता है। संविदा द्वारा नियत मशीनरी की कीमत और ख द्वारा किसी दूसरी मशीनरी के लिए दी गई राशि के बीच का अन्तर प्रतिकर के रूप में, ख के प्रति, क को देना होगा किन्तु वह राशि नहीं, जो ख द्वारा पर-व्यक्ति को प्रतिकर के रूप में दी गई थी।

ठ—एक निर्माता क पहली जनवरी तक एक गृह निर्मित और पूरा करने की संविदा करता है जिससे ग को, जिसे उस गृह का भाटक पर देने की ख ने संविदा की है, ख उसका कब्जा उस समय दे सके। ख और ग के बीच की संविदा की जानकारी क को दे दी जाती है। क गृह को इतनी बुरी तरह से निर्मित करता है कि पहली जनवरी से पूर्व वह गिर जाता है और ख को उसका

पुनर्निर्माण करना पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप वह उस भाटक को, जो उसे ग से मिलता हानि उठाता है और ग को अपनी संविदा के भंग के लिए प्रतिकर देने को बाध्य हो जाता है। गृह पुनर्निर्माण के खर्चे के लिए, भाटक की हानि के लिए और ग को दिए गए प्रतिकर के लिए ख के प्रति ग को प्रतिकर देना होगा।

ड—ख को क कुछ वाणिज्य यह वारन्टी देते हुए बेचता है कि वह एक विशिष्ट क्वालिटी की है और इस वारन्टी के भरोसे ख वैसी ही वारन्टी पर उसे ग को बेच देता है। वह माल वारन्टी के अनुसार साबित नहीं होता और ग को ख एक धनराशि प्रतिकर के रूप में देने का दायी हो जाता है। ख इस राशि की क द्वारा प्रतिपूर्ति का हकदार है।

ढ—क विनिर्दिष्ट दिन ख को एक धनराशि देने की संविदा करता है। क वह धन उस दिन नहीं देता। उस दिन धन न पाने के परिणामस्वरूप ख अपने ऋण के संदाय में असमर्थ रहता है और पूर्णतः बरबाद हो जाता है। ख को संदाय करने के दिन तक के ब्याज सहित उस मूल राशि के सिवाय जिसके संदाय की उसने संविदा की थी, ख की अन्य कोई प्रतिपूर्ति करने के लिए क दायी नहीं है।

ण—क अमुक कीमत पर पचास मन शोरा पहली जनवरी को ख को परिदत्त करने की संविदा करता है। तत्पश्चात् ख पहली जनवरी से पूर्व उस शोरे को पहली जनवरी की बाजार-कीमत से ऊंची कीमत पर ग को बेचने की संविदा करता है। क अपना वचन-भंग करता है। क द्वारा ख को देय प्रतिकर का प्राक्कलन करने में पहली जनवरी की बाजार-कीमत, न कि वह लाभ, जो ख को क के हाथ बेचने से मिलता, गणना में लिया जाना है।

त—क रुई की 500 गांठें ख को बेचने और एक नियत दिन पर परिदत्त करने की संविदा करता है। ख के अपने कारबार के संचालन के ढंग के बारे में क कुछ नहीं जानता। क अपना वचन भंग करता है और ख रुई न होने के कारण अपनी मिल बन्द करने के लिए विवश हो जाता है। मिल बन्द होने से ख को कारित हानि के लिए ख के प्रति क उत्तरदायी नहीं है।

थ—अमुक कपड़ा, जिससे ख ऐसी विशिष्ट किस्म की टोपियां बनाने का आशय रखता है जिसके लिए उन दिनों के सिवाय और कभी कोई मांग नहीं होती, ख को बेचने और पहली जनवरी को परिदत्त करने की संविदा क करता है। वह कपड़ा नियत समय के पश्चात् तक परिदत्त नहीं किया जाता और टोपियां बनाने में उस वर्ष उसे उपयोग में नहीं लाया जा सकता। कपड़े की संविदा-कीमत और परिदान के समय उसके बाजार-दाम के अन्तर को प्रतिकर के रूप में क से ख पाने का हकदार है किन्तु वह न तो उन लाभों को पाने का हकदार है जिनको वह टोपियां बनाने से अभिप्राप्त करने की आशा करता था, और न उन व्ययों को, जो टोपियां बनाने के लिए की गई तैयारी में उसे करने पड़े हों।

द—क, जो एक पोत का स्वामी है, ख से संविदा करता है, कि वह उसे पहली जनवरी को यात्रारम्भ करने वाले पोत में कलकत्ते से सिडनी ले जाएगा और यात्रा भाड़े का आधा भाग निक्षेप के रूप में क को दे देता है। वह पोत पहली जनवरी को यात्रारम्भ नहीं करता और उसके परिणामस्वरूप कुछ समय के लिए कलकत्ता में रुके रहने और उस कारण कुछ व्यय उठाने के पश्चात् ख एक अन्य जलयान में सिडनी के लिए प्रस्थान करता है और परिणामस्वरूप सिडनी देर से पहुंचने के कारण कुछ धनराशि की हानि उठाता है। ख को ब्याज सहित उसका निक्षेप, और वे व्यय जो उसे कलकत्ते में रुके रहने के कारण उठाने पड़े और पहले पोत

के लिए करार पाये गए भाड़े से दूसरे पोत के लिए दिए गए यात्रा भाड़े की अधिकाई, यदि कुछ हो, प्रतिदत्त करने का क दायी है किन्तु वह उस धन के लिए दायी नहीं है जिसकी हानि ख ने सिडनी में देर से पहुंचने के कारण उठाई है।

धारा 73 के दृष्टान्तों और निर्णयज विधि के आधार पर प्रतिकर के प्राक्कलन के कतिपय सिद्धान्त

उपरोक्त उपबन्धों और इनके साथ दिए गए इन दृष्टान्तों व कतिपय न्यायिक निर्णयों के आधार पर प्रतिकर के प्राक्कलन के लिए निम्न **मूलभूत सिद्धान्त** निष्कर्ष के रूप में ग्रहण किए जाते हैं—

1. प्रतिकर ऐसी हानि या नुकसान के लिए होना चाहिए जो संविदा-भंग के कारण सम्बन्धित घटनाओं के प्रायिक अनुक्रम में प्रकृत्या उद्भूत हुआ हो। यह साधारण नुकसानी का सिद्धान्त है जो दो बातों पर आधारित है—

अ—नुकसान संविदा-भंग का स्वाभाविक परिणाम होना चाहिए।

ब—नुकसान संविदा भंग का वह सम्भाव्य परिणाम होना चाहिए जिसे कि पक्षकार संविदा करने के समय जानते थे।

2. प्रतिकर संविदा-भंग के कारण उठाई गई किसी दूरस्थ और परोक्ष हानि या नुकसान के लिए नहीं दिया जाता। यह दूरस्थता या परोक्षता का सिद्धान्त है।

3. प्रतिकर विशेष भी हो सकता है जबकि उन विशेष परिस्थितियों की, जिनके कारण प्रतिकर की मात्रा पर प्रभाव पड़ता है, दूसरे पक्षकार को सूचना दी गई हो। यह विशेष प्रतिकर का सिद्धान्त कहलाता है। ऊपर के दृष्टान्त (ञ) और (ट) में जो अन्तर है, उससे यह स्पष्ट होता है कि यदि दूसरे पक्षकार को उन विशेष परिस्थितियों की सूचना नहीं हो तो विशेष प्रतिकर प्राप्त नहीं किया जा सकता और केवल साधारण प्रतिकर ही देय होगा। सूचना के अभाव में, विशेष प्रतिकर की मांग तब तक की जा सकती है जबकि वह हानि जिसके लिए प्रतिकर की मांग की गई है, संविदा भंग का सम्भाव्य और प्रत्यक्ष परिणाम था। दृष्टान्त (द) में यही बात दर्शायी गई है।

4. मूल उपबन्धों के साथ जो स्पष्टीकरण दिया गया है, उसके आधार पर प्रतिकर में कमी की जा सकती है। इसे प्रतिकर में कमी करने का सिद्धान्त कहा जा सकता है।

मुरलीधर चिरंजीलाल बनाम **हरिश्चन्द्र**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रथमतः प्रतिकर के प्राक्कलन का सिद्धान्त यह है कि जहां तक सम्भव हो और जहां तक धन से सम्भव हो सके, संविदा-भंग से व्यथित पक्षकार को ऐसी स्थिति में लाया जाना चाहिए जिसमें कि वह हो सकता, यदि दूसरा पक्षकार संविदा का पालन कर देता, किन्तु साथ ही यह सिद्धान्त एक अन्य सिद्धान्त से विशेषित है जो उस व्यथित पक्षकार पर यह दायित्व अधिरोपित करता है कि वह संविदाभंग के कारण सम्भाव्य हानि में कमी करने के लिए स्वयं भी युक्तियुक्त प्रयत्न करे और यह सिद्धान्त उस पक्षकार को प्रतिकर के उस भाग की, जो उसके प्रयत्न करने में की गई उपेक्षा के कारण है, मांग करने से विवर्जित करता है।

---

[1] ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 367.

5. सामान्यतया **प्रतिकर का नियम नुकसान की प्रतिपूर्ति के लिए है, लाभ की पूर्ति के लिए नहीं।** अतः संविदा-भंग से जिस पक्षकार को जितनी हानि हुई उसी की मांग की जा सकती है किन्तु जिस लाभ से वह वंचित हो गया उसकी मांग नहीं की जा सकती जब तक कि स्वयं संविदा में ही यह दर्शित न हो कि संविदा का उद्देश्य अमुक लाभ है। दृष्टान्त (ञ) में यही दर्शाया गया है। प्रतिकर के प्राक्कलन में, लाभ से वंचित रहने और नुकसान सहन करने का यह अन्तर अति महत्व का है। वैसे, प्रत्याशित लाभ के अर्जन की निष्फलता धारा 73 के प्रथम चरण की अभिव्यक्ति **तद्द्वारा कारित किसी ऐसी हानि या नुकसान के लिए** में समाविष्ट है। [देखिए **भारत संघ** बनाम **एस० केसरसिंह**[1], यदि क्रेता, विक्रेता द्वारा प्रस्तावित माल को अस्वीकार करके संविदा भंग कर दे, तो प्रतिकर का परिणाम उस माल की संविदा कीमत और वास्तविक कीमत का अन्तर होना चाहिए जैसा कि धारा 73 के उपबन्धों और उससे संलग्न दृष्टान्तों से ध्वनित होता है। (तत्रैव)]

6. प्रतिकर का उद्देश्य प्रत्यास्थापित या प्रतिपूर्ति है और इसका उद्देश्य संविदा-भंग करने वाले पक्षकार को दण्ड देना नहीं है। अतः प्रतिकर का मापदण्ड वास्तविक हानि या नुकसान है और प्रतिकर उदाहरणीय या आदर्शवान (एक्जेम्पलरी) नहीं हो सकता तथा ऐसा उदाहरणीय प्रतिकर केवल विवाह आदि की संविदा-भंग के ऐसे मामलों में देय हो सकता है जहां कि पक्षकारों की भावनाओं का अनुमान युक्तियुक्त प्रतीत हो[2]। विवाह की संविदा-भंग से यदि किसी पक्षकार को विवाह की संभावनाओं में ह्रास हुआ हो तो, उससे नुकसान गुरुतर बन जाता है और ऐसे मामलों में असाधारण या उदाहरणीय प्रतिकर, जो साधारण प्रतिकर से अपवृद्ध हो, दिलाया जा सकता है।[3] सारांश यह है कि उदाहरणीय प्रतिकर गुरुतर क्षति वाले मामलों में ही दिलाया जा सकता है। सामान्यतया भावनाओं को ठेस पहुंचाने के लिए प्रतिकर अपकृत्य विधि का विषय है।

7. माल के प्रदाय की संविदा-भंग के मामलों में सामान्य नियम यह है कि प्रतिकर की राशि माल की संविदा-कीमत पर और संविदा भंग की तिथि पर माल की न्यूनतम बाजार-कीमत के अन्तर के बराबर होगी। दृष्टान्त (क) इस सम्बन्ध में स्पष्ट है। **एम० एन० गंगप्पा** बनाम **ए० एन० सेट्टी एण्ड कम्पनी**[4] वाले मामले में न्या० ए० एन० ग्रोवर ने यह कहा है कि यह सिद्धान्त न तो अयुक्तियुक्त है और न ही यह अवैध है।

8. माल के प्रदाय की एक संविदा के आधार पर, माल के आधे भाग का प्रदाय किया गया तथा शेष के प्रदाय न किये जाने पर नुकसानी का वाद संस्थित किया गया। मामले के उच्चतम न्यायालय में पहुंचने पर, न्या० कृष्ण अय्यर ने यह विनिश्चित किया कि प्रतिकर की राशि का प्राक्कलन माल प्रदाय किये जाने की तिथि पर वैसे माल की प्रचलित बाजार-कीमत के आधार पर किया जाएगा।

[**भारत संघ** बनाम **मैसर्स जॉली स्टील इंडस्ट्रीज (प्राइवेट) लिमिटेड**][5]

---

[1] ए० आई० आर० 1978 जम्मू व कश्मीर 102.

[2] **फ्रास्ट** बनाम **नाइट,** एल० आर० 7 एक्सचैकर 111.

[3] **बेरी** बनाम **डाकोस्टा,** (1866) एल० आर० 1 कामन प्लीज 331.

[4] ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 696 (700).

[5] ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1346.

9. प्रतिकर न केवल संविदा के अधीन बाध्यता के पालन में हुए व्यतिक्रम के कारण देय होता है, वरन् ऐसी बाध्यता, जो संविदा द्वारा सर्जित बाध्यताओं के सदृश उपगत कर ली गई हो और जिसका निर्वहन नहीं किया गया है, के मामलों में भी व्यतिक्रम करने वाले पक्षकार से उस पक्षकार को देय होगा जिसे ऐसी बाध्यता के निर्वहन में असफलता से क्षति हुई हो।

सेक्रेटरी आफ स्टेट बनाम जी० टी० सरीन एण्ड कम्पनी[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ऐसे मामलों में, अपने पक्ष में प्रवर्तनीय संविदा वाला व्यक्ति, जिसने दूसरे पक्ष को कोई माल प्रदाय किया हो, प्रदाय की गई तारीख को प्रचलित दर पर निर्धारित रूप में परिदत्त माल के समतुल्य धनराशि का हकदार है। इसी सिद्धान्त का अनुमोदन करते हुए, **पीलूवु न जी शॉ सिधवा बनाम नगर निगम, पूना**[2] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय के निर्णय में न्या० जे० सी० शाह ने यह अभिनिर्धारित किया है कि कोई व्यक्ति जो किसी अन्य व्यक्ति को विधिपूर्वक माल परिदत्त करता है और ऐसा करने में उसका आशय आनुग्रहिक नहीं है, वह मांग करने का हकदार है कि परिदत्त माल उसे वापस किया जाए अथवा माल के बदले प्रतिकर दिया जाए और ऐसा प्रतिकर सामान्यतः माल का बाजार मूल्य होगा, साथ ही यह भी कि माल वापस करने से इन्कार करके वह व्यक्ति जिसे माल परिदत्त किया गया है, अपनी स्थिति में कोई सुधार नहीं कर सकता क्योंकि माल के प्रदाय के दिन के बाजार मूल्य से कम का संदाय करने का वह प्रयत्न नहीं कर सकता वरन् जिस दिन माल प्रदाय हुआ हो उसके एक मास पश्चात् की तारीख से वाद संस्थित किये जाने तक और वाद संस्थित किये जाने की तारीख से भुगतान की तारीख तक उसे 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज भी देना होगा।

10. जहां संविदा का भंग न होकर किसी पक्षकार की ओर से संविदा को केवल विखंडित कर दिया गया हो, वहां कोई प्रतिकर संविदा को इस प्रकार विखण्डित करने वाले पक्षकार की ओर से देय नहीं होगा जब तक कि वादी यह सिद्ध न कर दे कि प्रतिवादी ने संविदा का विखण्डन दोषतः किया था। यह सिद्धान्त न्या० जी० के० मित्तर ने, **फर्म जी० एल० कौलिकर बनाम केरल राज्य**[3] वाले मामले में प्रतिपादित किया है।

11. सेवा की संविदाओं में नियोजक के विरुद्ध विनिर्दिष्ट पालन का वाद नहीं लाया जा सकता और नियोजक किसी भी समय और किसी भी कारण से और बिना किसी कारण भी, अपने सेवक की सेवायें समाप्त कर सकता है किन्तु यदि नियोजक ने सेवक के साथ की हुई सेवा की संविदा को भंग करते हुए उसकी सेवायें समाप्त कर दी हैं तो सेवक संविदा भंग के कारण सदोष सेवा समाप्ति के लिए प्रतिकर का वाद ला सकता है।[4] किन्तु यदि किसी कानूनी उपबन्ध के आधार पर किसी निश्चित सेवाधृति से पूर्व या किसी विधिक प्रक्रिया का अनुसरण किये बिना किसी की सेवायें समाप्त नहीं की जा सकती हों और फिर भी सेवायें समाप्त कर दी गई हों, वहां न्या० सी० ए० वैद्यलिगम के निर्णय में, सेवक प्रतिकर का हकदार न होकर अपने वेतन और पद पर पुनः स्थापन का हकदार है।[5]

---

[1] ए० ग्राई० ग्रार० 1930 लाहौर 364.

[2] [1974] 3 उम० नि० प० 868-ए० ग्राई० ग्रार० 1970 एस० सी० 1201 (1204).

[3] ए० ग्राई० ग्रार० 1971 एस० सी० 1196 (1198-1200).

[4] रिज बनाम वाल्डविन, एल० ग्रार० (1964) एस० सी०.

[5] उत्तर प्रदेश राज्य भाण्डागार निगम की कार्यकारिणी बनाम चन्द्रकिरण त्यागी, ए० ग्राई० ग्रार० 1970 एस० सी० 1244(1252).

12. संविदा से उत्पन्न किसी भी दायित्व को भंग करने के कारण, प्रतिकर के लिए वाद लाने का हक उत्पन्न हो जाता है और इसके लिए वास्तविक क्षति के साक्ष्य की आवश्यकता नहीं होती। उपरोक्त दृष्टान्त (त) में, क द्वारा रुई का परिदान न करने से ख को अपनी मिल बन्द करनी पड़ती है और उसे मिल बन्द होने से कारित हानि की प्रतिपूर्ति क से पाने का हक नहीं माना गया है, किन्तु फिर भी वह वास्तविक हानि का साक्ष्य देकर, अपनी हानि, यदि कुछ हुई हो तो, प्रतिकर प्राप्त कर सकता है। जहां हानि हुई ही न हो अथवा हानि दूरस्थ हो अथवा संविदा के समय पक्षकारों ने उस हानि की कल्पना ही न की हो, उस हानि के लिए प्रतिकर प्राप्त नहीं किया जा सकता, किन्तु जहां हानि को परिसिद्ध किया जा सके, वहां चाहे कितना ही नाम मात्र का ही प्रतिकर क्यों न हो, वास्तविक हानि की प्रतिपूर्ति के लिए प्रतिकर देने की बाध्यता होती है।

संविदा भंग के कारण सहन की गई क्षति की सीमा ही प्रतिकर की राशि का समुचित मापदण्ड है। यदि क्षति को परिसिद्ध नहीं किया जा सके तो भी प्रतिकर देने की बाध्यता उन सभी मामलों में होती है जहां कि संविदा के अधीन किसी दायित्व का भंग किया गया हो। प्रतिकर के लिए क्षति की राशि का प्रत्यक्ष साक्ष्य आवश्यक नहीं है और न यह आवश्यक है कि क्षति का आत्यन्तिक निश्चय यथावत् और गणित के आंकड़ों की भांति किया जाए, वरन् आवश्यक केवल इतना है कि जो क्षति हुई है उसे ऐसे युक्तियुक्त निश्चय के साथ परिसिद्ध किया जाए जिससे कि किसी युक्तियुक्त व्यक्ति के मस्तिष्क में, संविदा-भंग से उद्भूत संभाव्य क्षति के विषय में सन्देह न रहे।[1]

13. जहां किसी संविदा का पर्यवसान उसकी नियत अवधि से पूर्व कर दिया जाए तो नियम यह है कि कथित पक्षकार द्वारा नुकसानी का वाद केवल अनवसित अवधि में होने वाली क्षति के लिए ही लाया जा सकता है। [**वीरेन्द्रनाथ धर बनाम फूड कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया[2]**]

हैडले बनाम बैक्सेन्डेल

ऊपर दिये गए, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 73 के उपबन्ध और उनके साथ दिए गए दृष्टान्तों का आधार, हैडले बनाम **बैक्सेन्डेल[3]** वाला मामला है। अतः इस मामले में किए गए अभिनिर्धारण को भली प्रकार से समझ लेना आवश्यक है।

वादी हैडले, मिल चलाने का कारबार करता था। 11 मई को उनकी मिल का क्रैंक शैफ्ट, जिससे मिल चलती थी, टूट गया और मिल बन्द हो गई और शैफ्ट को, ग्रीनविच में, इसके निर्माताओं के पास, इसी नमूने का नया शैफ्ट बनाने के लिए, प्रतिवादी, जो कि एक सामान्य वाहक था, के द्वारा भेज दिया गया। प्रतिवादी को यह सूचना दे दी गई थी कि मिल बन्द पड़ी है और शैफ्ट का तुरन्त ही ग्रीनविच पहुंचाया जाना आवश्यक है। प्रतिवादी ने यह परिवचन कर लिया कि यदि शैफ्ट दोपहर पूर्व प्राप्त हो गया तो, दूसरे ही दिन ग्रीनविच पहुंच जाएगा। प्रतिवादी को दोपहर पूर्व शैफ्ट परिदत्त कर दिया गया किन्तु फिर भी प्रतिवादी ने अपनी असावधानी के कारण शैफ्ट को समयानुसार ग्रीनविच नहीं पहुंचाया और नए शैफ्ट के आने में अत्यधिक विलम्ब हुआ जिसके कारण मिल कई दिनों तक बन्द रखनी पड़ी। वादी ने प्रतिवादी के विरुद्ध, इस विलम्ब से उत्पन्न हुई, मिल द्वारा होने वाली लाभ की

---

1 देखिए फ्रेडरिक टामस किंग्सले बनाम सेक्रेटरी आफ स्टेट, 36 सी० एल० जे० 271.

2 ए० आई० आर० 1978 कलकत्ता 362.

3 156 ई० आर० 145; एल० आर० (1854) 9 एक्सचेकर, 341.

हानि के लिए, प्रतिकर प्राप्त करने का वाद संस्थित किया, जिसमें यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या मिल बन्द रहने के कारण जो लाभ प्राप्त नहीं किया जा सका, उसकी क्षति की, प्रतिकर के प्राक्कलन में, गणना की जा सकती थी ?

इस मामले के तथ्य, ऊपर दिये गए दृष्टान्त (झ) के समान हैं और दोनों में ही सामान्य वाहक को यह स्पष्ट कर दिया गया था कि मिल रुकी पड़ी है। फिर भी, इस मामले में, सामान्य वाहक को यह नहीं कहा गया था कि केवल क्रैंक शैफ्ट के ही कारण मिल रुकी पड़ी है।

विचारण के समय जूरी ने वादी का दावा स्वीकार किया किंतु अपील होने पर, अपनिदेश के आधार पर, मामले को पुन: विचारण के लिए, प्रतिप्रेषित कर दिया गया। अपील न्यायालय ने निम्न दो सकारात्मक व एक नकारात्मक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया—

1. असाधारण और विशेष प्रतिकर तभी वसूल किया जा सकता है जबकि यह युक्तियुक्त रूप से विचारा जा सके कि दोनों पक्षकारों ने संविदा के समय, संविदा-भंग की दशा में, ऐसे सम्भाव्य परिणाम की परिकल्पना की थी।

2. जब वादी केवल इतना ही परिसिद्ध कर सके कि संविदा-भंग से उसने जो क्षति उठाई है, वह ऐसी घटनाओं के प्रायिक अनुक्रम में प्रकृत्या ऐसे भंग से उद्‌भूत हुई थी, तो केवल साधारण प्रतिकर ही वसूली के योग्य होता है।

3. वह नुकसान जो घटनाओं के प्रायिक अनुक्रम में प्रकृत्या ऐसे भंग से उद्‌भूत न हुआ हो वरन् जो किसी मामले की असाधारण या विशेष परिस्थितियों के कारण उद्‌भूत हुआ हो, वसूल नहीं किया जा सकता।

सारांश में, प्रतिकर की मात्रा जो भी हो, केवल दो दशाओं में वसूल की जा सकती है, अर्थात्—

1. जब वह ऐसे नुकसान की प्रतिपूर्ति हो जो संविदा भंग के कारण स्वाभाविक रूप में, अर्थात् घटनाओं के सामान्य अनुक्रम में, उत्पन्न हुआ हो,

2. जब वह ऐसे नुकसान की प्रतिपूर्ति हो जिसके बारे में युक्तियुक्त रूप से यह माना जा सके कि ये संविदा करते समय ही, पक्षकारों द्वारा संविदा भंग के सम्भाव्य परिणाम के रूप में परिकल्पित किया गया हो।

इस मामले में, अपील न्यायालय ने यह माना था कि प्रतिवादी को संसूचित की गई परिस्थितियां यह नहीं दर्शाती कि शैफ्ट देने में विलम्ब हो जाने के कारण मिल के लाभ में नुकसान हो जाएगा। यह भी माना जा सकता है कि वादी के पास अन्य शैफ्ट हो सकता था तब वाहक द्वारा उसके परिदान किये हुए विलम्ब के कारण मिल के अन्तरिम लाभ पर कोई प्रभाव न पड़ता, या यह भी माना जा सकता है कि वाहक को शैफ्ट देते समय, मिल की मशीन में कोई अन्य खराबी होती तो भी वही परिणाम निकला होता। अत: इस मामले में, मिल चल जाने से जो लाभ होता और नहीं हो सका, वह युक्तियुक्त रूप से संविदा भंग का ऐसा परिणाम नहीं समझा जा सकता जिसे कि दोनों पक्षकारों ने संविदा करते समय युक्तियुक्त रूप से स्पष्टत: परिकल्पित किया हो।

जमाल बनाम मुल्ला दाऊद एण्ड सन्स का मामला

जमाल बनाम मुल्ला दाऊद एण्ड सन्स[1] वाला मामला भी प्रतिकर के परिमाण को निर्धारित करने के सम्बन्ध में है। मामला माल विक्रय का था और ऐसे मामलों में, प्रतिकर की राशि संविदा-मूल्य और संविदा भंग के दिन उस माल के प्रचलित बाजार मूल्य का अन्तर होता है।

1 एल० आर० (1915) 43 इण्डियन अपील्स, 6.

इस मामले में, वादी-अपीलकर्ता ने प्रतिवादी प्रत्यर्थी को कुछ शेयर विक्रय करने की संविदा की। शेयरों को 30 दिसम्बर, 1911 तक प्रतिवादी को क्रय करके उनका परिदान प्रतिगृहीत कर लेना चाहिए था। उक्त तिथि पर, प्रतिवादी शेयरों को नहीं ले सका और न वादी को उनके मूल्य का संदाय कर सका। शेयरों का बाजार-मूल्य गिर रहा था और वादी ने प्रतिवादी को नोटिस दिया कि या तो वह शेयर ले ले अन्यथा वादी खुले बाजार में उसका अन्य किसी को विक्रय कर देगा। शेयरों का संविदा-मूल्य और 30 दिसम्बर, 1911 को प्रचलित बाजार भाव के मध्य का अन्तर 1,09,218 रुपये होता था। 28 फरवरी तथा अगस्त, 1912 के बीच, वादी ने उन शेयरों का एक पर-व्यक्ति के हाथ विक्रय कर दिया जबकि बाजार-भाव कुछ चढ चुका था और इस प्रकार, वादी को उनका मूल्य, 30 दिसम्बर, 1911 को प्रचलित बाजार-मूल्य से, केवल 79,862 रुपया कम प्राप्त हुआ। वादी ने, प्रतिवादी के विरुद्ध मूल संविदा के आधार पर, एक वाद संस्थित किया और 1,09,218 रुपये के प्रतिकर की मांग की। प्रतिवादी का अभिवाक् यह था कि जो मूल्य वादी वसूल कर चुका है, उसकी मुजराई का वह हकदार है।

मर्वा के चीफ कोर्ट ने प्रतिवादी के अभिवचन को स्वीकार कर लिया और वादी के विरुद्ध निर्णय दिया। वादी ने प्रिवी काउन्सिल के समक्ष अपील प्रस्तुत की और अपील न्यायालय ने, इस प्रकार अभिनिर्धारित किया—

1. यदि क्रेता, पश्चात्वर्ती विक्रय का फायदा उठाने का हकदार है तो यह भी सत्य होना चाहिए कि वह पश्चात्वर्ती हानियों का भार भी वहन करे। पश्चात्कथित बात, असम्भव है और पूर्व कथित उतनी ही निःसार है। यदि विक्रेता, संविदा-भंग के पश्चात् भी शेयर रोके रहता है तो कालान्तरण में बाजार का रुख किधर जाएगा, इसकी परिकल्पना, विक्रेता की परिकल्पना होती है न कि क्रेता की।

2. विक्रेता बाजार-भाव के गिरने पर अपनी हानि को क्रेता से, संविदा भंग की तारीख पर प्रचलित बाजार-भाव से कम करके वसूल नहीं कर सकता और न ही वह क्रेता के प्रति उस लाभ के लिए उत्तरदायी होगा जो उसे बाजार-भाव चढ़ जाने के कारण मिलते हैं।

3. विधि का यह सुस्थिर सिद्धान्त है कि उस वादी का जो प्रतिकर का दावा करता है, यह कर्त्तव्य है कि वह संविदा-भंग के उपरान्त होने वाली हानियों में कमी करने के लिए यथासम्भव व युक्तियुक्त प्रयत्न करे और वह किसी ऐसी हानि की राशि का दावा नहीं कर सकता जो कि उसकी ही उपेक्षा के कारण उद्भूत हुई हो, परन्तु अभिनिश्चित की जाने वाली हानि वह हानि होती है जो संविदा-भंग की तारीख पर हुई हो। यदि उस तारीख पर, वादी ने कोई ऐसा कार्य किया हो जिससे नुकसान में कमी हुई होती, तो प्रतिवादी उसके लाभ का हकदार हो सकता था।

4. संविदा-भंग की तारीख पर होने वाली विक्रेता की हानि वही होती है जो संविदा-मूल्य और संविदा-भंग की तारीख पर प्रचलित बाजार-मूल्य का अन्तर हो। अतः वादी 1,09,218 रुपये, संविदा-मूल्य और 30 दिसम्बर, 1911 अर्थात् संविदा-भंग की तारीख को प्रचलित बाजार-मूल्य के अन्तर का हकदार था।

धारा 73 का द्वितीय चरण—हानि की दूरस्थता या परोक्षता

भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 73 के द्वितीय पैरा में यह अभिव्यक्त कर दिया गया है कि प्रतिकर, संविदा-भंग के कारण उठाई गई किसी दूरस्थ और परोक्ष हानि क्या है और क्या नहीं है, इस विषय में किसी सार्वभौम मत की प्रतिपादना कठिन है तथा इस तथ्यगत बात को न्यायालय द्वारा

प्रत्येक मामले की, परिस्थितियों पर सम्यक् विचार करके अवधारित करना होता है। उपरोक्त धारा 73 के प्रथम पैरा में, प्रतिकर की राशि के अभिनिश्चय के विषय में तीन बातें बताई गई हैं—

1. क्या संविदा-भंग के कारण उठाई गई क्षति, ऐसा नुकसान या ऐसी हानि है जो किसी मामले की घटनाओं के प्रायिक अनुक्रम में प्रकृत्या उद्भूत हुई हो ?

2. क्या ऐसा नुकसान या हानि संविदा-भंग का सम्भाव्य परिणाम कही जा सकती है ?

3. क्या इस सम्भाव्य परिणाक को पक्षकार उस समय जानते थे जबकि उन्होंने संविदा की थी ?

यदि इन प्रश्नों का उत्तर हां में दिया जा सके तो हानि परोक्ष या दूरस्थ नहीं थी, किन्तु यदि उत्तर ना में हो तो हानि को दूरस्थ या परोक्ष माना जाएगा।

उपरोक्त धारा 73 के साथ दृष्टान्त (त) से यह बात स्पष्ट हो जाती है। क रुई की 500 गांठें ख को बेचने और एक नियत दिन पर परिदत्त करने की संविदा करता है। ख के कारबार के संचालन के ढंग के बारे में क कुछ नहीं जानता। क अपना वचनभंग करता है और रुई न होने के कारण अपनी मिल बन्द करने के लिए विवश हो जाता है। मिल बन्द होने से ख को कारित हानि के लिए ख के प्रति क उत्तर-दायी नहीं है, क्योंकि यह हानि अति दूरस्थ है, कारण यह कि मिल बन्द करने के सम्भाव्य परिणाम को क नहीं जानता था और न ख ने स्पष्ट ही किया था। किंतु इस मामले में, ख यदि संविदा-भंग की तारीख को, खुले बाजार से अन्य रुई का क्रय कर लेता तो वह क से रुई के संविदा-मूल्य और संविदा-भंग के दिन उतनी रुई के प्रचलित बाजार-भाव के अन्तर, यदि वह अन्तर संविदा-मूल्य से अधिक होता, को प्रतिकर के रूप में क से वसूल करने का हकदार हो सकता था।

हैडले और जमाल वाले मामलों के सूत्रों की मान्यता और अनुषंगी उप-सिद्धान्त

हैडले बनाम बैक्सेन्डेल[1] तथा **जमाल बनाम मुल्ला दाऊद एण्ड सन्स**[2] वाले मामलों ने क्रमशः निम्न दो सूत्रों को स्थिरता प्रदान की है—

1. प्रतिकर केवल उस नुकसान के लिए किया जा सकता है जो संविदा भंग के कारण स्वाभाविक रूप में अर्थात् घटनाओं के सामान्य अनुक्रम में उत्पन्न हुआ हो तथा जिसे युक्तियुक्त रूप में यह माना जा सके कि संविदा के समय ही संविदा-भंग की अवस्था में पक्षकारों द्वारा परि-कल्पित किया गया हो,

2. माल विक्रय की संविदाओं में संविदा-भंग की तारीख पर होने वाली उस हानि को प्रतिकर के रूप में देय माना जाएगा जो कि संविदा-मूल्य और संविदा-भंग की तारीख पर प्रचलित बाजार मूल्य का अन्तर हो।

उपरोक्त दोनों सूत्रों की प्रतिष्ठा भारत के न्यायालयों में यथावत् है और उनका महत्व किसी भी भांति न्यून नहीं हुआ है, अपितु इन सिद्धांतों के ही अनुषंगी कतिपय उप-सिद्धान्तों की स्थापना का अवसर प्राप्त हुआ है जिनमें से कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(i) भारत संघ बनाम **वैस्ट पंजाब फैक्ट्रीज**[3] वाले मामले में, न्यायाधिपति के० एन० वांचू ने मुल्ला दाऊद वाले मामले के सूत्र को नकारात्मक ढंग से प्रस्तुत करके एक उपसिद्धान्त इस भांति

---

[1] एल० आर० (1854) 9 एक्सचेकर, 341.

[2] एल० आर० (1915) 43 इण्डियन अपील्स 6.

[3] ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 395 (400)

प्रस्तुत किया है कि प्रतिकर का परिमाण संविदा-मूल्य नहीं वरन् प्रतिकर का परिणाम नुकसान की तिथि पर प्रचलित बाजार-मूल्य है ।

(ii) **बंगो स्ट्रीट फर्नीचर** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में, न्या० वी० रामस्वामी ने मुल्ला दाऊद वाले मामले के सूत्र को विनिमार्ण की संविदाओं में लागू करते हुए यह उपसिद्धान्त स्थापित किया है कि तैयार माल की दशा में संविदा भंग के कारण उद्भूत हानि के लिए प्रतिकर का परिमाण संविदा मूल्य तथा बाजार मूल्य का अन्तर होगा जबकि जो माल तैयार न हो पाया हो उस दशा में संविदा भंग के कारण उद्भूत हानि का परिमाण एक ओर संविदा मूल्य तथा दूसरी ओर विनिर्माण में प्रयुक्त होने वाले श्रम और सामान के मूल्य का अन्तर होगा तथा प्रदाय के स्थान पर यदि उस माल का बाजार उपलब्ध न हो तो निकटतम बाजार के प्रचलित मूल्य के आधार पर प्रतिकर के परिमाण पर विचार किया जाएगा ।

(iii) **मोदी वनस्पति कम्पनी** बनाम **कटिहार जूट मिल्स**[2] वाले मामले में इस उपसिद्धान्त की स्थापना की **गई है** कि संविदा भंग के किसी भी मामले में, संविदा भंग की तिथि को ही तात्विक और संगत माना जाएगा ।

(iv) **भारत संघ** बनाम **त्रिभुवन दास लाल जी पटेल**[3] वाले मामले में संविदा-मूल्य और बाजार-मूल्य के अन्तर वाले सूत्र के एक अपवाद के रूप में यह उपसिद्धान्त स्थापित किया गया है कि यद्यपि सामान्यत: प्रतिकर का परिमाण संविदा भंग की तिथि पर संविदा-मूल्य और बाजार-मूल्य का अन्तर होगा तथापि संविदा के पक्षकार, संविदा-भंग की स्थिति की परिकल्पना में नुकसान के परिमाण को उपबन्धित करने वाले विशेष अधिकारों और दायित्वों का सृजन कर सकते हैं और तद्द्वारा माल विक्रय की संविदाओं पर साधारणतया लागू होने वाली विधिक शर्तों का अपवर्जन कर सकते हैं जो कि माल विक्रय अधिनियम, 1930 की धारा 62 में भी अनुज्ञेय है ।

(v) **राजस्थान राज्य** बनाम **मोतीराम**[4] वाले मामले में, **अलोपी प्रसाद एण्ड सन्स** बनाम **भारत संघ**[5] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय का आधार लेकर, न्यायमूर्ति सोहननाथ मोदी ने एक उपसिद्धान्त यह स्थापित किया है कि यद्यपि कुछ दशाओं में ऐसा सम्भव है कि परिस्थितियों के पश्चात्वर्ती परिवर्तन के कारण करारित कार्य की प्रकृति में ऐसा सारवान परिवर्तन हो जाए जो कि संविदा के समय पक्षकारों की परिकल्पना से पूर्णत: परे रहा हो, तथापि इस कारण संविदा के अभिव्यक्त निबन्धनों की अवहेलना नहीं की जानी चाहिए और ऐसी दशा में प्रतिकर की राशि क्वान्टम मैरिअट के सिद्धान्त पर अवधारित न करके पक्षकारों द्वारा अनुबद्ध दर पर ही की जानी चाहिए क्योंकि क्वान्टम मैरिअट अर्थात् अधिकारोचित प्रतिकर का प्रश्न केवल संविदा के विनष्ट होने की दशा में लागू किया जा सकता है ।

क्या ब्याज को नुकसानी के तौर का प्रतिकर माना जा सकता है ?

थावर दास फेरूमल बनाम **भारत संघ**[6] जिसमें कि प्रिवी काउंसिल द्वारा **बंगाल नागपुर रेलवे** बनाम **रतन जी रान जी**[7] वाले मामले में किए गए विनिश्चय का अवलम्ब ग्रहण किया गया है तथा **भारत संघ**

1 ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 378 (381).
2 ए० आई० आर० 1969 कलकत्ता 496 (510).
3 ए० आई० आर० 1971 दिल्ली 120 (122).
4 ए० आई० आर० 1973 राजस्थान 223 (232).
5 ए० आई० आर० 1960 एस० सी० 588.
6 ए० आई० आर० 1955 एस० सी० 468; (1955)-2 एस० सी० आर० 48.
7 ए० आई० आर० 1938 प्रिवी काउंसिल 67.

बनाम ए० एल० रलियाराम[1] तथा भारत संघ बनाम वाटकिन्स मेयर एण्ड कम्पनी[2] वाले मामलों में किए गए विनिश्चय का अनुसरण करते हुए उच्चतम न्यायालय के भारत संघ बनाम वैस्ट पंजाब फैक्ट्रीज[3] वाले मामले में न्या० के० एन० वांचू द्वारा दिए गए निर्णय के आधार पर, अब यह सुस्थिर विधि है कि जब तक ब्याज दिलाए जाने का औचित्य दर्शाने वाली कोई प्रथा या उस संबंध में कोई अभिव्यक्त या विवक्षित संविदा अथवा विधि का कोई अन्य उपबन्ध न हो, नुकसानी के तौर पर प्रतिकर के रूप में ब्याज दिलाया जाना सम्भव नहीं है ।

किंतु यहां यह भी स्मरण रखना चाहिए कि धन के सदोष विधारित किये जाने वाले मामलों में, सामान्यतः, जो डिक्री किया जा सके उसी धन की वसूली का अनुतोष प्राप्तव्य है और ऐसे मामलों में नुकसानी का दावा चलने योग्य नहीं होता (तेलचर कोलफील्ड लि० बनाम सन्ट्रल कोलफील्ड[4]) ।

अविधिमान्य संविदा के भंग की अवस्था में प्रतिकर की अदेयता

कोटेश्वर विट्ठल कामथ बनाम के० रंगप्पा[5] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में, न्यायमूर्ति बी० भार्गव द्वारा यह कहा गया है कि **जिन संविदाओं को विधि-विरुद्ध माना गया हो, उनके भंग के कारण नुकसानी के प्रतिकर के लिए कोई वाद नहीं लाया जा सकता ।**

शास्ति के अनुबन्धयुक्त संविदा के भंग पर प्रतिकर के लिए संविदा अधिनियम की धारा 74—

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 74 के उपबन्ध, निम्न प्रकार हैं—

"जबकि कोई संविदा-भंग कर दी गई है, तब, यदि उस संविदा में ऐसी कोई राशि नामित हो जो ऐसे भंग की अवस्था में संदेय होगी या यदि शास्ति के तौर का कोई अन्य अनुबन्ध उस संविदा में अन्तर्विष्ट हो तो चाहे यह साबित किया गया हो या नहीं कि उस भंग स वस्तुतः नुकसान या हानि हुई है, भंग का परिवाद करने वाला पक्षकार उस पक्षकार से जिसने संविदा-भंग किया है, यथास्थिति ऐसी नामित रकम से या अनुबद्ध शास्ति से अनधिक युक्तियुक्त प्रतिकर पाने का हकदार होगा ।"

स्पष्टीकरण—"व्यतिक्रम की तारीख से वर्धित ब्याज के लिए अनुबन्ध शास्ति के तौर का अनुबन्ध हो सकता है" ।

अपवाद—"जबकि कोई व्यक्ति कोई जमानत नामा, मुचलका या उसी प्रकृति की अन्य लिखत करता है, अथवा किसी विधि के उपबन्धों के अधीन या केन्द्रीय सरकार के या राज्य सरकार से आदेशों के अधीन कोई बन्धपत्र किसी लोक-कर्त्तव्य के या ऐसे कार्य के, जिसमें जनता हितबद्ध हो, पालन के लिए देता है, तब वह किसी ऐसी लिखत की शर्त के भंग होने पर उसमें वर्णित सम्पूर्ण राशि देने के लिए दायी होगा ।"

---

1 ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1685 (1694) 3 एस० सी० आर० 164.

2 ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 275.

3 ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 395 (400-401).

4 ए० आई० आर० 1976 कलकत्ता 449.

5 ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 504 (513).

स्पष्टीकरण—"वह व्यक्ति जो सरकार से कोई संविदा करता है, तद्द्वारा आवश्यकत: न तो किसी लोक-कर्त्तव्य का भार लेता है न ऐसा कार्य करने का वचन देता है जिसमें जनता हितबन्ध हो"।

इन उपबन्धों के साथ निम्न दृष्टान्त दिये गए हैं—

क—ख से क संविदा करता है कि यदि वह ख को एक विनिर्दिष्ट दिन 500 रुपया देने में असफल रहे तो वह ख को 1,000 रुपए देगा। क उस दिन ख को 500 रुपए देने में असफल रहता है। क से ख 1,000 रुपए से अनधिक ऐसा प्रतिकर, जो न्यायालय युक्तियुक्त समझे, वसूल करने का हकदार है।

ख—ख से क संविदा करता है कि यदि क कलकत्ते के भीतर शल्य चिकित्सक के रूप में व्यवसाय करेगा तो वह ख को 5,000 रुपए देगा। क कलकत्ते में शल्य-चिकित्सक के रूप में व्यवसाय करता है। ख 5,000 रुपए से अनधिक उतना प्रतिकर पाने का हकदार है जितना न्यायालय युक्तियुक्त समझे।

ग—क अमुक दिन न्यायालय में स्वयं उपसंजात होने के लिए मुचलका देता है जिससे ऐसा न करने पर वह 500 रुपए की शास्ति देने के लिए आबद्ध है। उसका मुचलका समपहृत हो जाता है। वह सम्पूर्ण शास्ति देने का दायी है।

घ—ख को क छह मास के अन्त पर 1,000 रुपया 12 प्रतिशत ब्याज के सहित संदाय करने का बन्धपत्र इस अनुबन्ध के साथ लिख देता है कि व्यतिक्रम की दशा में ब्याज व्यतिक्रम की तारीख से 75 प्रतिशत की दर से देय होगा। यह शास्ति के तौर का अनुबन्ध है और क से ख केवल ऐसा प्रतिकर वसूल करने का हकदार है जो न्यायालय युक्तियुक्त समझे।

ङ—क जो एक साहूकार ख को धन का देनदार है, यह वचनबन्ध करता है कि वह उसको अमुक दिन दस मन अनाज परिदत्त करने द्वारा प्रतिसंदाय करेगा और यह अनुबन्ध करता है कि यदि वह नियत परिमाण को नियत तारीख तक परिदत्त न करे तो वह 20 मन परिदान करने का दायी होगा। यह शास्ति के तौर का अनुबन्ध है और भंग की दशा में ख केवल युक्तियुक्त प्रतिकर ही का हकदार है।

च—ख को क 1,000 रुपए के उधार को पांच मासिक किस्तों में प्रतिसंदत्त करने के लिए इस अनुबन्ध के साथ वचनबद्ध होता है कि किसी किस्त के संदाय में व्यतिक्रम होने पर सम्पूर्ण राशि शोध्य हो जाएगी। यह अनुबन्ध शास्ति के तौर का नहीं है और संविदा उसके निबन्धनों के अनुसार प्रवर्तित कराई जा सकेगी।

छ—ख से क 100 रुपए उधार लेता है और 200 रुपए के लिए बन्धपत्र जो चालीस रुपए की पांच वार्षिक किस्तों में देय है, इस अनुबन्ध के साथ लिख देता है कि किसी भी किस्त के संदाय में व्यतिक्रम होने पर सम्पूर्ण राशि शोध्य हो जाएगी। यह शास्ति के तौर का अनुबन्ध है।

शास्ति और परिनिर्धारित नुकसानी में अन्तर

संविदा भंग की अवस्था में संदेय **नामित राशि** और **शास्ति के तौर का अनुबन्ध** इन दो शब्दावलियों का प्रयोग किया गया है। उस राशि को जो संविदा भंग की दशा में संदेय हो, यदि संविदा में ही नामित कर दिया गया हो तो वह **परिनिर्धारित नुकसानी**

कहा जाता है जबकि संविदा में संविदा भंग की दशा में जिसे दण्ड स्वरूप माना गया हो **शास्ति के तौर का अनुबन्ध** कहा जाता है। **नामित राशि** अथवा **परिनिर्धारित नुकसानी** को अंग्रेजी में लिक्विडेटेड डैमेजज़ का नाम दिया गया है।

धारा 74 के उपबन्धों में वह इसके साथ दिए गए दृष्टान्तों में **शास्ति** और **परिनिर्धारित नुकसानी** में प्रभेद किया गया है जिसके कारण इस धारा का स्वरूप जटिल हो गया है।

धारा 74 के वर्तमान स्वरूप की जटिलता—

धारा 74 का वर्तमान स्वरूप संविदा अधिनियम पर लाये गए संशोधन अधिनियम, (1899 का छठा) का फल है। इस संशोधन से पूर्व इस धारा का पाठ इस प्रकार था——

> "जबकि कोई संविदा भंग की गई है, तब, यदि उस संविदा में कोई ऐसी राशि नामित हो जो ऐसी भंग की अवस्था में संदेय होगी, तो चाहे यह साबित किया गया हो या नहीं कि उस भंग से वस्तुतः नुकसान या हानि हुई है, भंग का परिवाद करने वाला पक्षकार उस पक्षकार से जिसने संविदा भंग किया है, ऐसी नामित राशि से अनधिक युक्तियुक्त प्रतिकर पाने का हकदार होगा।

उपरोक्त संशोधन के फलस्वरूप इस धारा में,

1. "या शास्ति के तौर का कोई अन्य अनुबन्ध उस संविदा में अन्तर्विष्ट हो",
2. "यथास्थिति" तथा "अनुबद्ध शास्ति से",
3. धारा के साथ वर्तमान स्पष्टीकरण, तथा
4. धारा के साथ वर्तमान दृष्टान्त (घ) (ङ), (च) और (छ)

की अन्तःस्थापना की गई है।

अतः यह स्पष्ट है कि संशोधन से पूर्व, नामित राशि और शास्ति के तौर के अनुबन्ध का कोई भेद इस धारा में विद्यमान नहीं था। संशोधन का उद्देश्य, इंग्लैण्ड की विधि में अनुभव की गई उस कठिनाई का जो कि परिनिर्धारित नुकसानी को शास्ति से प्रभेदित करने में अनुभव होती थी, का परिहार करना रहा है, किन्तु **वस्तुस्थिति यह है कि कठिनाई का परिहार होने के स्थान पर, परिनिर्धारित नुकसानी और शास्ति के भेद की जटिलता अधिक उजागर हुई है।**

यह जटिलता इस कारण है कि एक ओर तो यह कहा गया है कि युक्तियुक्त प्रतिकर ही देय होगा, किन्तु दूसरी ओर यह भी कथन किया गया है कि ऐसा युक्तियुक्त प्रतिकर प्राप्त किया जा सकेगा चाहे यह साबित किया गया हो अथवा नहीं किया गया हो कि उस भंग से वस्तुतः हानि या नुकसान हुआ है। **जटिलता विशेषकर इस बात में है कि जब मामला युक्तियुक्त प्रतिकर के संदाय का हो तो यह युक्तियुक्तता प्रत्येक मामले के तथ्यों और उसकी विशेष परिस्थितियों पर निर्भर होगी, जबकि धारा में उपबन्ध यह है कि वास्तविक हानि या नुकसान को साबित करने या न करने से कोई अन्तर नहीं आयेगा।** इसके अतिरिक्त धारा का अन्तिम चरण यह उपबन्ध करता है कि ऐसा युक्तियुक्त प्रतिकर, संविदा में नामित राशि अथवा संविदा में अनुबद्ध शास्ति, जैसी भी स्थिति हो, से अधिक नहीं हो सकेगा।

इस जटिलता की दृष्टि से, यह विवेचना आवश्यक हो जाती है कि संविदा का कोई अनुबन्ध शास्ति के तौर का कब होता है।

संविदा का अनुबन्ध शास्ति के तौर का कब होता है—

मान लीजिए कि दो पक्षों के मध्य की गई संविदा में ऐसा अनुबन्ध हो कि किसी एक द्वारा व्यतिक्रम किए जाने पर दूसरा पक्ष 50,000 रुपए की राशि व्यतिक्रमी से प्राप्त करने का अधिकारी होगा तो, ऐसा अनुबन्ध स्पष्टतः शास्ति के तौर का कहा जाएगा। (देखिए **गुरुबख्श सिंह गोरोवारा** बनाम **बेगम रफिया खुरशीद**[1])

भाई पन्नासिंह बनाम **भाई अरजन सिंह**[2] वाले मामले में प्रिवी काउन्सिल की न्यायिक समिति द्वारा किए गए निर्णय के पश्चात् धारा 74 का जटिल स्वरूप प्रबलतर हो गया। प्रिवी काउन्सिल का विनिश्चय यह था कि चाहे शास्ति हो अथवा परिनिर्धारित नुकसानी, वादी पर अपनी सहन की गई, नुकसानी को साबित करने की अनिवार्यता है। प्रिवी काउन्सिल के उक्त कथन का **महादेव प्रसाद बनाम साइमन लिमिटेड**[3] वाले मामले में न्यायमूर्ति अमीर अली ने परीक्षण किया। न्यायमूर्ति अमीर अली के समक्ष प्रश्न यह था कि संविदा में नामित की गई राशि का क्या प्रभाव होता है। पर्याप्त कठिनाई के पश्चात् न्यायमूर्ति अमीर अली ने यह व्याख्या प्रस्तुत की कि प्रिवी काउन्सिल का यह अभिप्राय नहीं रहा था कि संविदा में नामित राशि को कभी प्रभावी किया ही न जाए वरन् अभिप्राय यह था कि वादी को अपनी नुकसानी को साबित करना होता है। न्यायमूर्ति अमीर अली ने इस व्याख्या के साथ **दो बातों पर बल** दिया—

1. संविदा में नामित राशि जो कि पक्षकारों ने विचारपूर्वक निर्धारित की है, स्वंय ही नुकसानी के परिमाण का साक्ष्य है,
2. इंग्लैंड की विधि में शास्ति का अनुबन्ध नुकसानी के परिमाण की न न्यूनतम सीमा है और न अधिकतम, किंतु भारत में यह अधिकतम सीमा है।

न्यायमूर्ति अमीर अली ने **निम्न निष्कर्षों की प्रतिपादना** की—

1. वादी को सामान्य रूप में अपनी नुकसानी साबित करनी चाहिए,
2. पक्षकारों द्वारा संविदा में ही प्राक्कलित नुकसानी स्वंय ही साक्ष्य हैं,
3. जहां अन्य साक्ष्य न हो, वहां संविदा में नामित राशि के साक्ष्य को पर्याप्त माना जा सकता है,
4. नामित राशि निश्चायक सबूत नहीं है तथा यदि अन्य साक्ष्य ऐसा हो जिसके आधार पर नामित राशि को अत्यधिक कहा जा सके तो न्यायालय नामित राशि से बाध्य नहीं है,
5. यदि अन्य साक्ष्य से यह प्रतीत हो कि नुकसानी नामित राशि से अधिक या उसके बराबर बैठेगी तो नामित राशि को ही प्रभावी किया जाएगा, तथा
6. यदि अन्य साक्ष्य से यह दर्शित होता हो कि नामित राशि अयुक्तियुक्त है तो, नामित राशि को दृष्टि में बिना लाये, वादी को नुकसानी साबित करनी पड़ेगी।

---

[1] ए० आई० आर० 1979 मध्य प्रदेश 66.
[2] ए० आई० आर० 1929 प्रिवी काउंसिल 179.
[3] ए० आई० आर० 1934 कलकत्ता 285.

उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह विषय फतेहचन्द बनाम बालकिशन दास[1] वाले मामले में प्रस्तुत हुआ। उच्चतम न्यायालय ने धारा 74 के प्रविषय में, परिनिर्धारित नुकसानी और शास्ति के अन्तर को निःसार बताते हुए यह अवधारित किया[2]—"नुकसानी के प्राक्कलन में, अनुबद्ध शास्ति के अध्यधीन रहते हुए न्यायालय को ऐसी नुकसानी दिलाने का अधिकार है जिसे कि वह मामले की समस्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, युक्तियुक्त समझे। संविदा भंग के मामले में, प्रतिकर दिलाने का न्यायालय का अधिकार क्षेत्र जो अधिकतम अनुबद्ध किया गया हो, उसके सिवाय, परिमित है, किंतु प्रतिकर युक्तियुक्त होना चाहिए और इस प्रकार न्यायालय पर इस कर्त्तव्य का अधिरोपण हो जाता है कि वह सुस्थिर सिद्धान्तों के आधार पर ही प्रतिकर दिलाये। निःसन्देह, इस धारा में यह कहा गया है कि व्यथित पक्षकार उस पक्षकार से जिसने संविदा-भंग की है, प्रतिकर पाने का हकदार है, चाहे यह साबित किया गया हो या नहीं कि उस भंग से वस्तुतः नुकसान या हानि हुई है। तद्द्वारा यह धारा वस्तुतः हुए नुकसान या क्षति के सबूत से अभिमुक्ति प्रदान करती है, किंतु इससे यह औचित्य नहीं बन जाता कि संविदा भंग के परिणाम में किसी विधिक क्षति के हुए बिना भी प्रतिकर दिलाया ही जाए, क्योंकि दिलाया जाने वाला प्रतिकर उस हानि अथवा क्षति की प्रतिपूर्ति करता है जो ऐसी घटनाओं के प्रायिक अनुक्रम में प्रकृत्या ऐसे संविदा भंग से उद्भूत हुआ हो जिसका संविदा भंग का परिणाम होना पक्षकार उस समय जानते थे जब उन्होंने संविदा की थी"।

उच्चतम न्यायालय के समक्ष, **मौलाबख्श बनाम भारत संघ**[3] वाले मामले में पुनः यही प्रश्न प्रस्तुत हुआ। इस मामले में, मौलाबख्श ने आलू के प्रदाय की संविदा की थी तथा अपने वचन के पालन की प्रतिभूति में एक अनुबद्ध राशि का निक्षेप कर दिया था। मौलाबख्श प्रदाय करने में असफल रहा और सरकार ने संविदा का विखंडन करते हुए प्रतिभूति के निक्षेप को समपहृत कर लिया। सरकार द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था, यद्यपि ऐसा साक्ष्य उपलब्ध था, कि सरकार को कितनी और क्या हानि सहन करनी पड़ी। इस मामले में सरकार मौलाबख्श के 18,500 रु० के निक्षेप को प्रतिसंदत्त करना पड़ा। कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति जे० सी० शाह ने, संविदाओं के भिन्न-भिन्न संवर्गों में भेद दर्शित करते हुए, इस प्रकार सम्प्रेक्षित किया[4]—"संविदा भंग के कतिपय मामलों में ऐसे भंग से उद्भूत होने वाले प्रतिकर का प्राक्कलन असंभव हो सकता है जबकि अन्य वे मामले भी हैं जिनमें कि स्थापित नियमों के अनुसार प्रतिकर का प्राक्कलन किया जा सके। जहां न्यायालय ऐसा प्राक्कलन करने में असमर्थ हो तो पक्षकारों द्वारा नामित राशि, यदि वह असली पूर्व-प्राक्कलन मानी जा सके, युक्तियुक्त प्रतिकर के परिमाण के तौर पर विचार में लाई जा सकती है, किंतु ऐसा उस दशा में नहीं किया जाएगा जबकि नामित राशि शास्ति के तौर की है। जहां, हानि का अवधारण धन के रूप में किया जा सके, वहां प्रतिकर का दावा करने वाले पक्ष को अपनी सहन की गई हानि का सबूत देना ही होगा"।

इस प्रकार उपरोक्त सम्प्रेक्षण, **भाई पन्ना सिंह बनाम भाई अर्जन सिंह**, [ए० आई० आर० 1929 पी० सी० 179 (180)] के इस कथन में कि **वादी को नुकसानी का साक्ष्य देना ही होगा तथा महादेव प्रसाद बनाम साइमन कम्पनी**, (ए० आई० आर० 1934 कल० 285) में न्यायमूर्ति अमीर अली के इस कथन में कि **पक्षकारों द्वारा संविदा में नामित राशि स्वयमेव नुकसानी का साक्ष्य है**, एक

---

[1] ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1405 (1411).

[2] हिन्दी अनुवाद लेखक द्वारा किया गया है.

[3] ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1955 (1959).

[4] हिन्दी अनुवाद लेखक द्वारा किया गया है.

मध्यमार्ग प्रशस्त कर देता है जिसका आशय यह है कि जहां नुकसानी का प्राक्कलन धन में सम्भव हो, वहां नुकसानी का साक्ष्य देना आवश्यक है और पक्षकारों द्वारा संविदा में नामित राशि को नुकसानी के साक्ष्य में तभी ग्रहण किया जा सकता है जबकि वह नुकसानी का युक्तियुक्त पूर्व प्राक्कलन हो तथा शास्ति के तौर का न हो।

आनन्द कन्स्ट्रक्शन वर्क्स बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में उपरोक्त विवेचन के आधार पर न्यायमूर्ति आर० एम० दत्त ने शास्ति और परिनिर्धारित नुकसानी के भेद को दर्शाते हुए यह अवधारित किया है कि--

1. यदि संविदा भंग का परिवेदन करने वाला पक्षकार ऐसा साक्ष्य दे सके जिसके आधार पर न्यायालय के लिए युक्तियुक्त प्रतिकर की राशि का अवधारण सम्भव हो, तो, युक्तियुक्त प्रतिकर के ऐसे साक्ष्य के अभाव में नुकसानी की डिक्री पारित नहीं की जाएगी और ऐसी स्थिति में संविदा में नामित राशि शास्ति के तौर की मानी जाएगी और उसे युक्तियुक्त प्रतिकर के रूप में नहीं दिलाया जा सकता।

2. किंतु यदि पक्षकारों ने संविदा में ऐसे सही अंक को व्यक्त किया है जो कि उनकी वास्तविक नुकसानी का पूर्वानुमान है तथा यदि संविदा भंग का परिवेदन करने वाला पक्षकार प्रतिकर का प्राक्कलन करने में इसलिए असमर्थ हो कि ऐसा प्राक्कलन, किसी विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अन्तर्गत, सुस्थापित नियमों के आधार पर नहीं किया जा सकता हो, तो ऐसी दशा में संविदा में नामित राशि शास्ति के तौर की नहीं मानी जाएगी वरन् उसी को युक्तियुक्त प्रतिकर के साक्ष्य के रूप में ग्रहण किया जाएगा और इसे परिनिर्धारित नुकसानी माना जाएगा।

उच्चतम न्यायालय के समक्ष जब **भारत संघ** बनाम **रमण आयरन फाउन्ड्री**[2] वाला मामला प्रस्तुत हुआ तो **न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती ने**, धारा 74 के **प्रविषय में, परिनिर्धारित नुकसानी और शास्ति के इस जटिल भेद को स्पष्टतः निःसार मान लिया।**

शास्ति और परिनिर्धारित नुकसानी के भेद की निःसारता--

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 74 के अन्तर्गत नुकसानी के दावे में नुकसानी की प्रकृति (क्वालिटी) का कोई अन्तर नहीं है। ऐसे दावे का आधार परिनिर्धारित नुकसानी (लिक्विडेटेड डेमेजेज) हो अथवा अपरिनिर्धारित नुकसानी (अनलिक्विडेटेड डेमेजेज) संविदा अधिनियम की धारा 74 के अन्तर्गत, वही नुकसानी संदेय है जो युक्तियुक्त हो। धारा 74 में, परिनिर्धारित नुकसानी के संदाय की व्यवस्था करने वाले अनुबन्धों और उन अनुबन्धों के बीच जो शास्ति के रूप में हैं, प्रभेद करने के लिए, इंगलिश कॉमन लॉ के अधीन निकाली गई विशद बारीकियों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। कॉमन लॉ के अधीन पारस्परिक सहमति से किये गए नुकसानी के असली पूर्व-प्राक्कलन को ऐसे अनुबन्ध के रूप में माना जाता है, जिसमें परिनिर्धारित नुकसानी नियत की गई हो, और जो पक्षकारों पर आबद्धकर हो। संविदा में कोई उपबन्ध जो चेतावनी के रूप में हो, शास्ति है, और न्यायालय उसको प्रवर्तित नहीं करता है और व्यथित पक्षकार को केवल युक्तियुक्त प्रतिकर ही

---

1 ए० आई० आर० 1973 कलकत्ता 550(558).

2 ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1265 (1272, 1273).

दिलाता है। न्या० पी० एन० भगवती के शब्दों में, भारतीय विधानमण्डल ने सभी अनुबन्धों को लागू होने वाले एक समरूप सिद्धान्त को अधिनियमित करके, जिसमें कि भंग की दशा में संदत्त की जाने वाली रकमों और शास्ति के रूप में अनुबन्धों का उल्लेख किया गया है, इंगलिश कामन लॉ के अधीन नियमों और उपधारणाओं के जाले का सफाया कर दिया है और इस सिद्धान्त के अनुसार, परिनिर्धारित नुकसानी के रूप में कोई अनुबन्ध हो तो संविदा की भंग की शिकायत करने वाला पक्षकार, स्वयं द्वारा उठाई गई क्षति के लिए केवल युक्तियुक्त प्रतिकर ही वसूल कर सकता है और जो भी रकम अनुबन्धित की गई हो, वह केवल एक बाह्य सीमा मात्र होगी।[1]

शास्ति, परिनिर्धारित नुकसानी और ऋण की भिन्नता

जहां संविदा का भंग हो वहां भंग करने वाला पक्षकार, तत्क्षण कोई धनीय बाध्यता उपगत नहीं करता है और न ही भंग की शिकायत करने वाला पक्षकार, अन्य पक्षकार से शोध्य किसी ऋण का हकदार हो जाता है। संविदा के भंग से व्यथित पक्षकार को जो एकमात्र अधिकार प्राप्त है वह नुकसानी के लिए वाद लाने का है। वह कोई अनुयोज्य दावा नहीं है और यह स्थिति सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 6 (ङ) में संशोधन करके पर्याप्त स्पष्ट कर दी गई है जिसमें यह उपबन्ध है कि नुकसानी के लिए वाद लाने का अधिकार अन्तरित नहीं किया जा सकता है।

अब से बहुत पूर्व **जोब्स बनाम थामसन**[2] वाले मामले से लेकर तथा वर्तमान समय के **ओ' डिस्कोल बनाम मेंचेस्टर इन्शोरेन्स कमेटी**[3] वाले मामले तक इंग्लैंड में भी सदैव यही विधि रही है कि नुकसानी के मामलों में, उस समय तक कोई भी ऋण नहीं होता जब तक कि नुकसानी का निर्धारण करने वाला जूरी का अधिमत सुना नहीं दिया जाता और निर्णय नहीं दे दिया जाता।

आयरन एण्ड हार्डवेयर (इण्डिया) कम्पनी बनाम फर्म शामलाल एण्ड ब्रदर्स[4] में यही विनिश्चित किया गया है कि वह व्यक्ति जो संविदा का भंग करता है, कोई धनीय दायित्व उपगत नहीं करता और यह कहना सही नहीं है कि अन्य पक्षकार के पास जो संविदा भंग की शिकायत करता है वह कोई ऐसी रकम होती है जो उसको दूसरे पक्षकार से शोध्य हो। संविदा-भंग की शिकायत करने वाले पक्षकार को जो एकमात्र अधिकार है वह नुकसानी की वसूली के लिए न्यायालय की शरण लेना है। नुकसानी ऐसा प्रतिकर है जिसे न्यायालय उसके द्वारा उठाई गई क्षति के लिए देता है। किंतु इसके अतिरिक्त यह ध्यान देना अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि उसे कोई नुकसानी या प्रतिकर उस व्यक्ति पर, जिसने भंग किया है, विद्यमान किसी बाध्यता के कारण नहीं मिलता है। इसलिए धनीय दायित्व तब तक उत्पन्न नहीं होता जब तक न्यायालय यह अवधारित न कर दे कि भंग की शिकायत करने वाला पक्षकार नुकसानी का हकदार है। अतः जब नुकसानी निर्धारित की जाती है तो यह कहना सही नहीं है कि न्यायालय जो कुछ कर रहा है वह ऐसे धनीय दायित्व को निर्धारित करना है जो पहले से विद्यमान है। न्यायालय को प्रथमतः यह विनिश्चित करना चाहिए कि प्रतिवादी दायित्वाधीन है, और उसके पश्चात् यह

---

[1] भारत संघ बनाम रमण आयरन फाउन्ड्री, [1975] 2 उम० नि० प० 310 (329–330) = ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1265 (1272, 1273).

[2] (1858) 27 एल० जे० क्यू० बी० 234.

[3] (1915) 3 के० बी० 499.

[4] ए० आई० आर० 1954 मुम्बई 423.

अवधारित करना चाहिए कि दायित्व कितना है। किंतु जब तक ऐसा अवधारण नहीं हो जाए तब तक प्रतिवादी का बिलकुल भी कोई दायित्व नहीं है। इस कथन को सही विधिक स्थिति का सूचक मानते हुए **भारत संघ बनाम रमण आयरन फाउन्ड्री**[1] वाले मामले में न्या० पी० एन० भगवती ने यही निष्कर्ष निकाला कि **संविदा भंग के मद्धे नुकसानी का दावा ऐसी राशि के लिए दावा नहीं है जो तत्काल शोध्य और संदेय हो।** अतः, संविदा में उसके भंग की दशा में पक्षकारों द्वारा अनुबन्धित राशि चाहे, परिनिर्धारित नुकसानी के रूप में हो या शास्ति के तौर पर की हो, अपने आप में ऋण के रूप की कोई तत्काल शोध्य राशि नहीं है वरन वह न्यायालय द्वारा दिलाये जाने वाले युक्तियुक्त प्रतिकर की अधिकतम सीमा है।

अग्रिम धन के निक्षेप और प्रतिभूति का समपहरण

कुछ मामलों में, संविदा के पक्षकारों में से, वचनदाता, वचनगृहीता के पास, अपने वचन के सम्यक् पालन को प्रत्याभूत करने के दृष्टिकोण से, कोई धनराशि प्रतिभूति के तौर पर निक्षिप्त कर देता है। **भारत संघ बनाम रामपुर डिस्टिलरी एण्ड केमीकल कम्पनी**[2] वाले मामले में, न्या० वाई० वी० चन्द्रचूड़ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब वचनदाता की ओर से वचन के पालन में हुए व्यतिक्रम से वचनगृहीता को कोई हानि न हुई हो तो, वचनगृहीता उस प्रतिभूति के तौर पर निक्षिप्त राशि को समपहृत नहीं कर सकता। किंतु ऐसे मामलों में, प्रमुख विचारणीय प्रश्न यह होता है कि क्या उस निक्षिप्त धन के समपहरण का अनुबन्ध शास्ति के तौर का है? यदि शास्ति के तौर का है तो संविदा अधिनियम की धारा 74 लागू हो जाएगी और ऐसी दशा में संविदा-भंग की शिकायत करने वाला पक्षकार, उस निक्षेप को समपहृत नहीं कर सकता वरन् केवल युक्तियुक्त प्रतिकर प्राप्त करने का हकदार होता है, किंतु इसके विपरीत यदि निक्षेप के समपहरण का अनुबन्ध शास्ति के तौर पर का नहीं है तो धारा 74 लागू नहीं होती और वह निक्षेप समपहृत किया जा सकता है। **मौलाबख्श बनाम भारत संघ**[3] वाले मामले में, कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति जे० सी० शाह (जैसाकि वे तब थे) ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां स्थावर या जंगम सम्पत्ति के विक्रय की संविदा के अधीन अग्रिम धन के रूप में समपहृत रकम युक्तियुक्त है तो वह शास्ति के तौर की नहीं है और धारा 74 लागू नहीं होगी। प्रतिभूति की राशि के निक्षेप के समपहरण की शर्त को यद्यपि शास्ति के तौर की माना गया है, तथापि न्यायमूर्ति आर० एस० सरकारिया ने, **भारत संघ बनाम के० एच० राव**[4] वाले मामले में यह माना है कि ऐसी शास्ति से उस पक्ष को केवल इस कारण अवमुक्त नहीं किया जा सकता कि शास्ति के कारण उसे कष्ट हुआ है।

कंवर चिरंजीत सिंह बनाम हरस्वरूप[5]; **रोशनलाल बनाम दिल्ली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स**[6]; **मोहम्मद हबीबुलशाह बनाम मोहम्मद शफी**[7] और **किशनचन्द बनाम राधाकिशन दास**[8] वाले मामलों में यह भली प्रकार स्पष्ट किया गया है कि अग्रिम धन के रूप में संदत्त युक्तियुक्त

---

[1] [1974] 2 उम० नि० प० 310, (329–30)=ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1265 (1273).

[2] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1098, 1099.

[3] [1970] 2 उम० नि० प० 1011=ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1955.

[4] ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 626.

[5] ए० आई० आर० 1926 प्रिवी काउंसिल 11.

[6] आई० एल० आर० 33 इलाहाबाद, 166.

[7] आई० एल० आर० 41 इलाहाबाद 324.

[8] आई० एल० आर० 19 इलाहाबाद 489.

रकम का समपहरण शास्ति अधिरोपित करने की कोटि में नहीं आता, किन्तु यदि समपहरण शास्ति की प्रकृति का है तो धारा 74 लागू होती है। जहां संविदा के निबन्धनों के अधीन संविदा भंग करने वाला पक्षकार कोई धनराशि संदत्त करने या ऐसी धनराशि जिसके समपहरण के लिए जो कि उसने पहले ही संविदा भंग का दावा करने वाले पक्षकार को संदत्त की है, वचनबद्ध हो तो वह परिवचन शास्ति की प्रकृति का होता है।

इस प्रसंग में आवश्यक यह है कि अग्रिम धन का निक्षेप वस्तुतः क्या होता है, पहले इसे समझ लिया जाए। होव बनाम स्मिथ[1] में यह कहा गया है कि निक्षेप इस बात की गारन्टी होती है कि संविदा का पालन किया जाएगा और यदि विक्रय, न केवल संविदा के शब्दों में वरन् संविदा करने वाले पक्षकारों के आशय के अनुसार भी, पूरा हो जाए तो उसे क्रय धन के आंशिक संदाय के प्रति समायोजित किया जाता है जिसके लिए वह निक्षिप्त किया गया हो, किन्तु यदि क्रेता के व्यतिक्रम के कारण, संविदा निष्फल हो जाती है, अर्थात् यदि वह संविदा निराकृत कर देता है तो उसे निक्षेप वसूल करने का अधिकार नहीं होता।

सोपर बनाम आरनाल्ड[2] में इस प्रकार संप्रेक्षित किया गया है—

"निक्षेप दो प्रयोजनों की पूर्ति करता है—यदि क्रय पूरा हो जाए तो उसे क्रय-धन के प्रति समायोजित किया जाता है किन्तु इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि यह इस बात के लिए गारन्टी है कि क्रेता सचेत है और ऐसा मामला जिसमें निक्षेप को ठीक और उचित रूप से समपहृत कर लिया जाता है, वह मामला होता है, जिसमें कोई व्यक्ति इस बात पर विचार करने का कष्ट किए बिना कि क्या वह किसी वास्तविक सम्पत्ति के लिए संदाय कर सकता है या नहीं, उसे खरीदने की संविदा कर ले।"

फर स्मिथ कम्पनी बनाम मैसर्स लिमिटेड[3] में कहा गया है कि अग्रिम के रूप में दी गई वस्तु सद्भाव के प्रमाणस्वरूप और इस बात की गारन्टी के रूप में है कि देने वाला पक्ष संविदा पूरी करेगा और अग्रिम की वस्तु इन निबन्धनों के अधीन रहते हुए दी जानी चाहिए कि यदि उसके व्यतिक्रम के कारण संविदा निष्फल हो जाए तो वह समपहृत हो जाएगी किन्तु यदि संविदा पूरी हो जाए तो अग्रिम एक और प्रयोजन की पूर्ति कर सकता है और आंशिक संदाय के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

कार्य की एक संविदा में यद्यपि समय को संविदा का सार बताया गया था तथापि संविदा को कार्य की समाप्ति अथवा कार्य के त्याग तक वर्तमान माना गया था। निश्चित अवधि में कार्य के अपूर्ण रहने तथा तत्पश्चात् कार्य को त्यागने के कारण संविदा विखण्डित कर दी गई। न्यायाधिपति ए० डी० कौशल ने, यह विनिश्चित किया कि प्रतिभूति की राशि का समपहरण, संविदा की शर्तों के अनुसार अधिकारपूर्ण था (**महाराष्ट्र राज्य बनाम दिगंबर बलवन्त कुलकर्णी**[4])

---

[1] एल० आर० (1884) चान्सरी 89.

[2] एल० आर० (1889) 14 ए० सी० 429, 435.

[3] एल० आर० (1928) 1 के० बी० डी० 397, 408.

[4] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1339 (1341).

> **सुमेर एण्ड लोबसले बनाम जॉन ब्राउन**[1] में यह कहा गया है कि यदि संविदा पूरी हो जाती थी तो अग्रिम के रूप में दी गई वस्तु देने वाले को लौटा दी जाती थी या यदि वह धनराशि हो तो उसे कीमत में से घटा दिया जाता था। यदि संविदा अग्रिम देने वाले के व्यतिक्रम के कारण निष्फल हो जाती थी तो अग्रिम के रूप में दी हुई वस्तु समपहृत हो जाती थी।"

अग्रिम धन का समपहरण भी शास्ति की परिभाषा में आ सकता है, यदि समपहरण की जाने वाली राशि अयुक्तियुक्त हो। यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने **हनुमान काटन मिल्स बनाम टाटा एयर क्राफ्ट,** [ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1986 (1996)] वाले मामले में न्यायाधिपति वैद्यलिंगम के निर्णय में इस प्रश्न पर विचार नहीं किया कि अयुक्तियुक्त राशि क्या होती है, तथापि न्यायाधिपति जे० सी० शाह द्वारा दिए गए **मौलाबख्श बनाम भारत संघ,** [ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1955 (1959)] वाले मामले के निर्णय में यह स्पष्टतः कथन किया गया है कि समपहृत की जाने वाली अग्रिम राशि यदि अयुक्तियुक्त हो तो वह शास्ति की कोटि में मानी जा सकती है। **फतेह चन्द बनाम बालकिशन दास**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में, **प्रसंविदा में शास्ति के तौर पर कोई अन्य अनुबन्ध अन्तर्विष्ट** पद शास्ति अन्तर्वलित करने वाली प्रत्येक प्रसंविदा (कावेनैन्ट) को व्यापक रूप से लागू होता है, चाहे वह संविदा भंग होने पर धन के संदाय की हो या भविष्य में सम्पत्ति के परिदान की या धन अथवा पहले ही परिदत्त अन्य सम्पत्ति के अपहरण की हो। शास्तिक खण्ड को प्रवृत्त न करने किन्तु केवल युक्तियुक्त प्रतिकर अधिनिर्णीत करने का कर्त्तव्य न्यायालयों पर धारा 74 द्वारा कानूनी रूप से अधिरोपित किया गया है। अतः ऐसे सभी मामलों में, जिनमें संविदा के उन निबन्धनों के अनुसरण में, जो कि अभिव्यक्त रूप से समपहरण का उपबन्ध करते हैं, निक्षिप्त रकम के समपहरण के लिए शास्ति की प्रकृति का कोई अनुबन्ध होता है वहां न्यायालय को केवल ऐसी राशि अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता होती है जो कि वह युक्तियुक्त समझे किन्तु जो संविदा में समपहरणीय रकम के रूप में विनिर्दिष्ट रकम से अधिक न हो। **संविदा में शास्ति के तौर पर कोई अन्य अनुबन्ध अन्तर्विष्ट है** यह पद संविदा भंग होने पर धन का संदाय करने या सम्पत्ति परिदत्त करने के करार की प्रकृति के अनुबन्ध तक ही सीमित नहीं है वरन् इसके अन्तर्गत ऐसी प्रसंविदाएं भी आती हैं जिनके अधीन अभिव्यक्त रूप से संविदा के निबन्धनों द्वारा या स्पष्ट विवक्षा द्वारा संदत्त रकमें या सम्पत्ति समपहरणीय होती है। धारा 74 उन मामलों में संविदा भंग होने पर दायित्व के सम्बन्ध में विधि घोषित करती है जिसमें कि प्रतिकर पक्षकारों के करार द्वारा पूर्व अवधारित होता है या जहां शास्ति के तौर पर कोई अनुबन्ध होता है। इस धारा का आशय किसी पक्षकार को विशेष फायदा पहुंचाना नहीं है। यह केवल उस विधि को घोषित करती है कि संविदा में चाहे नुकसानी का पूर्व अवधारण किया गया हो या कोई शास्ति के तौर का अनुबन्ध हो, न्यायालय कथित पक्षकार को नामित रकम या अनुबन्धित शास्ति से अनधिक केवल युक्तियुक्त प्रतिकर प्रदान करेगा और न्यायालय की यह अधिकारिता किसी पक्षकार के किसी वाद में वादी या प्रतिवादी होने की आकस्मिक परिस्थिति

---

[1] 25 टाईम्स एल० आर० (1908-9) 745.

[2] (1964) एस० सी० आर० 515: ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1405.

द्वारा अवधारित नहीं होती वरन् इस बात से अवधारित होती है कि संविदा का भंग किस पक्षकार ने किया। निष्कर्ष यह है कि जहां क्रेता द्वारा संविदा के निबन्धनों के अनुसार, अग्रिम धन का निक्षेप किया जाए और तत्पश्चात् संविदा का क्रेता की ओर से भंग हो जाए और विक्रेता द्वारा निक्षेप का समपहरण कर लिया जाए, वहां धारा 74 लागू नहीं होती। ऐसे मामलों में वादी के लिए यह अभिवाक् करना तथा इसकी पुष्टि में ऐसा साक्ष्य भी प्रस्तुत करना आवश्यक है कि समपहृत अग्रिम धन की राशि अयुक्तियुक्त अथवा अन्तःकरण विरुद्ध है। (देखिए **बालीराम दोटी** बनाम **भूपेन्द्रनाथ बनर्जी**[1]) धारा 74 केवल ऐसी नामित रकम के विषय में लागू होती है जो क्रेता द्वारा अग्रिम धन के रूप में संदत्त नहीं की गई हो। यदि संदत्त रकम अग्रिम धन के अर्थ में साबित होती है तो उसे क्रय धन के एक भाग के रूप में नहीं माना जा सकता और विक्रेता उसे बिना शर्त समपहृत करने का हकदार होता है। दूसरे शब्दों में, जब पूर्वतः संदत्त राशि, अग्रिम होकर, क्रय-मूल्य का एक भाग हो, वहां धारा 74 लागू होगी।

यह विषय **हनुमान कॉटन मिल्स** बनाम **टाटा एयरक्राफ्ट**[2] वाले मामलों के तथ्यों से अधिक स्पष्ट हो सकेगा।

हनुमान काटन मिल्स का मामला

प्रत्यर्थी और अपीलकर्ताओं ने 10,000 रुपये के मूल्य के ऐरोस्क्रेप के विक्रय का करार किया। अपीलार्थियों ने संविदा की तारीख को 2,25,000 रुपये संदत्त कर दिये और यह करार किया कि शेष रकम दो किस्तों में संदत्त की जाएगी। अपीलार्थी की सहमति से प्रत्यर्थी कम्पनी के कारबार के निबन्धनों के अनुसार क्रेता को कुल मूल्य का 25 प्रतिशत विक्रेता के पास निक्षिप्त कराना होता है जो निक्षेप कम्पनी के पास अग्रिम धन के रूप में रहता है और जिसे अन्तिम बिलों के प्रति समायोजित किया जाता है और उस पर कोई ब्याज संदेय नहीं होता और यदि क्रेता संविदा के अनुसार संदाय करने में कोई व्यतिक्रम करे तो विक्रेता को संविदा रद्द करने और निक्षिप्त अग्रिम धन बिना शर्त के समपहृत करने का अधिकार प्राप्त है। अपीलार्थी ने शेष रकम संदत्त करने से इन्कार करके संविदा भंग की। तदुपरि, प्रत्यर्थी ने संविदा रद्द कर दी और 2,25,000 का निक्षेप समपहृत कर लिया। अपीलार्थी द्वारा रकम की वसूली के लिए फाइल किया गया वाद खारिज कर दिया गया जिसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की गई जिसे खारिज करते हुए न्यायाधिपति सी० ए० वैद्यलिंगम ने यह अभिनिर्धारित किया——

1. भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 74 क्रेता द्वारा संदत्त केवल ऐसी रकमों के बारे में ही लागू की जा सकती है जो अग्रिम धन न हो। जिस मामले में क्रेता द्वारा संदत्त सम्पूर्ण रकम संविदा के अधीन अग्रिम धन हो, उसमें धारा 74 लागू नहीं होती और अग्रिम धन के रूप में संदत्त रकम विक्रेता द्वारा समपहृत की जा सकती है। जब तक कि संविदा में कोई अन्यथा उपबन्ध न हो।

2. क्रेता द्वारा किए गए निक्षेप को अग्रिम धन मानने के लिए यह आवश्यक है कि अग्रिम धन संविदा निश्चित किए जाने के समय संदत्त किया गया हो और अग्रिम धन इस बात की गारन्टी होता है कि संविदा का पालन किया जाएगा अर्थात्

---

[1] ए० आई० आर० 1978 कलकत्ता 559.

[2] 1974] 3 उम० नि० प० 393:ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1986.

अग्रिम-धन संविदा को पक्का करने के लिए दिया जाता है। जब संव्यवहार पूरा हो जाए तब अग्रिम धन को आंशिक संदाय मानते हुए, उसे क्रय धन के प्रति समायोजित किया जाता है। यदि संविदा, क्रेता के व्यतिक्रम के कारण, निष्फल हो जाए, तो विक्रेता उसे समपहृत करने का हकदार होता है।[1]

वर्धित ब्याज के संदाय का अनुबन्ध

वर्धित ब्याज के अनुबन्धों के निम्न स्वरूप हो सकते हैं—

1. बन्ध पत्र की तारीख से या व्यतिक्रम की तारीख से—यदि वर्धित ब्याज का किसी संदाय में व्यतिक्रम की दशा में, बन्धपत्र की तारीख से चालू होना अनुबन्धित हो तो यह शास्ति के तौर का होता है।[2] जब संविदा में व्यतिक्रम का खण्ड इस विषय में मौन हो कि वर्धित ब्याज किस स्थिति से लागू होगा तो यह उपधारणा होगी कि यह व्यतिक्रम की तिथि से, न कि बन्धपत्र की तिथि से, लागू होगा।[3]

2. जहां ब्याज की दो दरें न हों अर्थात् एक कम और एक वर्धित न हो, किन्तु अनुबन्ध ऐसा हो कि निश्चित समय पर मूलधन के या ब्याज के संदाय में व्यतिक्रम होने की दशा में, ब्याज किसी विनिर्दिष्ट दर पर दिया जाएगा तो ऐसे अनुबन्ध में, यदि ब्याज साधारण दर से व्यतिक्रम के दिन से संदेय हो तो यह शास्ति के तौर का नहीं होता किन्तु यदि यह बन्धपत्र के दिन से संदेय हो अथवा अत्यधिक दर पर हो तो वह शास्ति के तौर का होता है।[4]

3. जहां नियमित समय पर संदाय करते रहने की दशा में नियत ब्याज की दर से कम दर पर ब्याज देने का अनुबन्ध हो तो नियत ब्याज की दर को शास्ति के तौर का नहीं माना जाता।[5]

4. यदि असम्यक् असर वाली बात न हो तो, निश्चित समय पर मूलधन या ब्याज के संदाय में व्यतिक्रम की दशा में, साधारण ब्याज की दर पर ही चक्रवृद्धि ब्याज का अनुबन्ध शास्ति तौर का नहीं होता[6] किन्तु ऐसे मामलों में साधारण ब्याज की दर से वर्धित दर पर चक्रवृद्धि ब्याज का अनुबन्ध शास्ति के तौर का होता है।[7]

5. जहां संव्यवहार अऋजु हो अथवा ब्याज की दर अत्यधिक ऊंची हो वहां न्यायालय को उसे शास्ति के तौर का मानने की अधिकारिता होती है और यह प्रत्येक मामले की पृथक्-पृथक् परिस्थितियों पर निर्भर करता है।[8]

संदाय में विलम्ब हो जाने की दशा में ब्याज की दर के अतिरिक्त 12 प्रतिशत प्रति-वर्ष के अधिकार को, न्या० मू० चिन्नप्पा रेड्डी ने शास्ति के तौर का नहीं माना। [**एडोनी जिनिंग फैक्टरी बनाम सेक्रेटरी, आन्ध्र प्रदेश विद्युत् बोर्ड।**[9]]

---

[1] उपरोक्त निर्णय का ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1986 में पृ० 1994.
[2] भगवतराव **बनाम** दामोदर, ए० आई० आर० 1938 नागपुर 112.
[3] वेंकटरमन स्वामी भण्डार **बनाम** फातिया बी, ए० आई० आर० 1971 मैसूर 250.
[4] याकोमद राजा **बनाम** नादरज्जमा, ए० आई० आर० 1932 कलकत्ता 53.
[5] कुलादा प्रसाद **बनाम** रामानन्द पटनायक, 25 सी० डब्ल्यू० एन० 776.
[6] गुरमुखसिंह **बनाम** दियालसिंह, 150 आई० सी० 787.
[7] गंगाधर **बनाम** परसराम, ए० आई० आर० 1928 नागपुर 120.
[8] गोपेश्वर **बनाम** जादवचन्द्र, आई० एल० आर० 43, कलकत्ता 632.
[9] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1511 (1512).

जमानतनामा या मुचलका की राशि का समपहरण

संविदा अधिनियम की धारा 74 के साथ दिए गए अपवाद के अनुसार केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के प्रति दिए गए बन्धपत्र या लिखत की किसी शर्त के भंग होने पर उसमें वर्णित सम्पूर्ण राशि के देने की बाध्यता उपगत हो जाती है, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक मामले में, सम्पूर्ण राशि ही वसूल की जाए। उदाहरण के लिए आपराधिक मामलों से सम्बन्धित जमानतों और मुचलकों के सम्बन्ध में दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 446 (3) में न्यायालय को वसूलीय राशि में छूट देने का अधिकार है।

शेयर का समपहरण

स्टाक एक्सचेन्ज के विनियमों के अधीन पारित प्रस्ताव के द्वारा एक्सचेन्ज के किसी व्यतिक्रम सदस्य के शेयरों को समपहृत करने की शर्त को, **नरेशचंद्र सान्याल बनाम कलकत्ता स्टाक एक्सचेन्ज**[1] वाले मामले में, न्यायाधिपति जे० सी० शाह (जैसा कि वे तब थे) ने शास्ति के तौर का माना है।

समझौते वाली डिक्री में व्यतिक्रमी खण्ड

समझौते के आधार पर पारित डिक्री में भी यदि कोई शास्ति का उपबन्ध हो तो धारा 74 उस पर लागू होगी क्योंकि शास्ति का उपबन्ध धारण करने वाली संविदा कोई अवैध संविदा नहीं है और संविदा अधिनिमय की धारा 74 का प्रभाव इतना ही है कि इस संविदा की अन्तर्वस्तु में से केवल शास्ति वाले उपबन्ध का प्रवर्तन नहीं किया जाएगा।[2] किन्तु समझौते के आधार पर पारित डिक्री में अन्तर्विष्ट व्यतिक्रमी खण्ड शास्ति के तौर का तभी समझा जा सकता है जबकि उसमें वादी को अपने वाद में चाहे गए अनुतोष से भी अधिक दिलाए जाने का उपबन्ध हो।[3]

वचनपत्र अथवा परक्राम्य लिखत पर धारा 74 का लागू होना

जहां कि वचन पत्र में ऐसी कोई राशि नामित न हो कि जो संविदा भंग की दशा में संदेय हो तो ऐसे वचन पत्र पर संविदा अधिनियम की धारा 74 लागू नहीं होती। इसी प्रकार, अनादृत परक्राम्य लिखतों की शोध्य राशियों के मामलों में भी इस धारा के उपबन्ध लागू नहीं होते जिसका कारण यह है कि भारतीय संविदा विधि साधारण उपयोजन वाला अधिनियम है जबकि परक्राम्य लिखत अधिनियम विशेष अधिनियम है जिसकी धारा 117 (क) में भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 74 के समान ही एक विशिष्ट उपबन्ध है।[4]

नुकसान नहीं तो नुकसानी भी नहीं

वास्तविक नुकसान का साक्ष्य नुकसानी की प्राप्ति का प्राण कहा जा सकता है। नुकसानी का दावा लाने वाले व्यक्ति के लिए नुकसान की राशि का अभिवाक् तथा उस अभिवाक् की पुष्टि में सुमान्य साक्ष्य प्रस्तुत करना अनिवार्य है। **(मारीमुथु गाउन्डर बनाम रामास्वामी गाउन्डर)**[5]

---

[1] ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 422-[1976] 4 उम० नि० प० 753.

[2] नोनजी भाई बनाम रामकिशन, ए० आई० आर० 1977 मध्य प्रदेश 112.

[3] भुरईलाल बनाम मोहिनदास, ए० आई० आर० 1972 इलाहाबाद 457.

[4] तिरुपागडी तायारम्मा बनाम श्री रमन जानेय, ए० आई० आर० 1977 आन्ध्र प्रदेश 205.

[5] ए० आई० आर० 1979 मद्रास 187.

सरकारी ठेके के कार्य के अपूर्ण रहने की दशा में सरकार द्वारा ठेकेदार की ओर से निक्षिप्त प्रतिभूति का समपहरण शास्ति का अधिरोपण है और सरकार उस निक्षेप को विशेषत: तब जब कि उसे संविदा भंग से कोई नुकसान नहीं हुआ हो, समपहृत नहीं कर सकती ।[1]

संविदा भंग का परिवेदन करने वाले पक्षकार को यदि कोई नुकसान हुआ ही न हो तो उसे नुकसानी के रूप में प्रतिकर प्राप्त करने का कोई हक नहीं होता भले ही संविदा में कोई ऐसी राशि नामित हो जो संविदा भंग की स्थिति में संदेय मानी गई हो ।[2] यह अभिमत, उच्चतम न्यायालय द्वारा, **फतेह चन्द बनाम बालकिशन दास**[3] तथा **मौला बख्श बनाम भारत संघ**[4] वाले मामलों में किए गए संप्रेक्षणों पर अवलम्बित है ।

संविदा के अधिकारपूर्ण विखण्डन पर प्रतिकर

ऐसे सब मामलों के लिए जहां किसी एक पक्षकार द्वारा किसी संविदा का दूसरे पक्षकार के विरुद्ध अधिकारपूर्वक विखण्डन किया जाता है, वहां उस विखण्डित करने वाले पक्षकार के प्रतिकर पाने के अधिकार का सामान्य उपबन्ध संविदा अधिनियम की धारा 75 में किया गया है जो इस प्रकार है—"वह व्यक्ति, जो किसी संविदा को अधिकारपूर्वक विखण्डित करता है, ऐसे नुकसान के लिए प्रतिकर पाने का हकदार है जो उसने उस संविदा के पालन न किये जाने से उठाया है"।

इस नियम से संलग्न एक दृष्टान्त इस प्रकार है कि एक गायिका क एक नाट्यगृह के प्रबन्धक ख से अगले दो मास में प्रति सप्ताह में दो रात उस के नाट्यगृह में गाने की संविदा करती है और ख उसे हर रात के गाने के लिए एक सौ रुपया देने के लिए वचनबद्ध होता है । छठी रात को क उस नाट्यगृह से जानबूझकर अनुपस्थित रहती है और परिणामस्वरूप ख उस संविदा को विखण्डित कर देता है । ख उस नुकसान के लिए प्रतिकर का दावा करने का हकदार है जो उसने उस संविदा के पूरा न किए जाने से उठाया है ।

यह स्पष्ट है कि संविदा अधिनियम की धारा 75 के अन्तर्गत, प्रतिकर का अधिकार केवल उस पक्षकार को है जो संविदा का अधिकारपूर्वक विखण्डन करे, चाहे समय संविदा का मर्म हो या न हो तथा संविदा को विखण्डित करने के अधिकार का उपबन्ध संविदा अधिनियम की धारा 39, 53, 54 व 55 में किया गया है। इस प्रकार, **धारा 75 का उपबन्ध, धारा 39, 53 व 55 के उपबन्धों का पूरक है और धारा 75 का उपबन्ध वहीं लागू होगा जबकि संविदा का विखण्डन धारा 39, 53 या 55 में समाविष्ट किसी उपबन्ध के अन्तर्गत आने वाले अधिकार के प्रयोग स्वरूप किया गया है ।**

न्या० जी० के० मित्तर के अनुसार, इस धारा का लाभ तभी उठाया जा सकता है जब कि वादी यह सिद्ध कर दे उसने संविदा का विखण्डन अधिकारपूर्वक किया था । संविदा को दोषत: विखण्डित करने वाला पक्षकार, स्वयं दूसरे पक्ष को प्रतिकर देने के लिए बाध्य किया जा सकता है ।[5]

○ ○ ○ ○

---
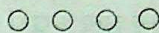
1 उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** चन्द्रगुप्त एंड कम्पनी, ए० आई० आर० 1977 इलाहाबाद 28.

2 राजस्थान राज्य **बनाम** चन्द्रमोहन चोपड़ा, ए० आई० आर० 1971 राजस्थान 229.

3 ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1405.

4 ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1955.

5 फर्म पी० एल० कीलिकर **बनाम** केरल राज्य, ए० आई० आर० 1971 एं० सी० 1196 (1198, 1200).

अध्याय 10

क्षतिपूर्ति और प्रत्याभूति के विषय में

क्षतिपूर्ति और प्रत्याभूति का स्वरूप और भेद

वह संविदा, जिसके द्वारा एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को स्वयं वचनदाता के आचरण से या किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से उस दूसरे पक्षकार को हुई हानि से बचाने का वचन देता है, **क्षतिपूर्ति की संविदा** कहलाती है।[1] दृष्टान्त के लिए जैसे **क** ऐसी कार्यवाहियों के परिणामों के लिए जो **ग** 200 रुपए की अमुक राशि के सम्बन्ध में **ख** के विरुद्ध चलाए, **ख** की क्षतिपूर्ति करने की संविदा करता है। यह क्षतिपूर्ति की संविदा है।

प्रत्याभूति की संविदा किसी पर व्यक्ति द्वारा व्यतिक्रम की दशा में उसके वचन का पालन या उसके दायित्व का निर्वहन करने की संविदा है। वह व्यक्ति, जो प्रत्याभूति देता है, **प्रतिभू** कहलाता है, वह व्यक्ति, जिसके व्यतिक्रम के बारे में प्रत्याभूति दी जाती है **मूलऋणी** कहलाता है, और वह व्यक्ति जिसको प्रत्याभूति दी जाती है, **लेनदार** कहलाता है। प्रत्याभूति या तो मौखिक या लिखित हो सकेगी।[2]

प्रत्याभूति की संविदा में यदि प्रतिभू को अपने दायित्व का पालन लेनदार की मांग पर करना हो तो प्रतिभू का दायित्व लेनदार द्वारा मांग किए जाने पर तत्काल उद्भूत हो जाता है। [देखिए **टैक्स मैको लि०** बनाम **स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया**।[3]]

मूलऋणी के फायदे के लिए की गई कोई भी बात या दिया गया कोई वचन प्रतिभू द्वारा प्रत्याभूति दिये जाने का पर्याप्त प्रतिफल हो सकेगा।[4] दृष्टान्त के लिए—

क. **क** से **ख** माल उधार बेचने और परिदत्त करने की प्रार्थना करता है। **क** वैसा करने को इस शर्त पर रजामन्द हो जाता है कि **ग** माल की कीमत के संदाय की प्रत्याभूति दे। **क** के इस वचन के प्रतिफलस्वरूप कि वह माल परिदान करेगा, **ग** संदाय की प्रत्याभूति देता है। यह **ग** के वचन के लिए पर्याप्त प्रतिफल है।

ख. **ख** को **क** माल बेचता और परिदत्त करता है। **ग** तत्पश्चात **क** से प्रार्थना करता है कि वह एक वर्ष तक ऋण के लिए **ख** पर वाद लाने से प्रविरत रहे और वचन देता है कि यदि वह ऐसा करेगा तो **ख** द्वारा संदाय में व्यतिक्रम होने पर **ग** उस माल के लिए संदाय करेगा। **क** यथाप्रार्थित प्रविरत रहने के लिए रजामन्द हो जाता है। यह **ग** के वचन के लिए पर्याप्त प्रतिफल है।

ग. **ख** को **क** माल बेचता है और परिदत्त करता है। **ग**, तत्पश्चात प्रतिफल के बिना करार करता है कि **ख** द्वारा व्यतिक्रम होने पर वह माल के लिए संदाय करेगा। करार शून्य है। इस दृष्टान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्य करारों के समान प्रत्याभूति के करार के लिए

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 124.
[2] उपरोक्त, धारा 126.
[3] ए० आई० आर० 1979 कलकत्ता 44.
[4] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 127.

भी प्रतिफल का होना आवश्यक है। वचनगृहीता की वांछा पर, वचनदाता का विधिक दृष्टि से कोई भी अपाय या अहित (डैट्रिमैण्ट) प्रतिफल के निर्माण के लिए पर्याप्त है, भले ही उससे वचनगृहीता का कोई हित होता हो या न होता हो।

इसके विपरीत, क्षतिपूर्ति की संविदा स्वयं वचनदाता का अन्य किसी व्यक्ति का आचरण प्रतिफल के रूप में विद्यमान रहता है और यह इस बात का उदाहरण है कि प्रतिफल किसी अन्य व्यक्ति के कार्य या प्रविरति से भी उद्भूत हो सकता है।

प्रत्याभूति की संविदा लिखित, मौखिक, अथवा केवल आचरण से ही विवक्षित भी हो सकती है[1]। इस प्रकार की संविदा में मूल ऋणी द्वारा प्रतिभू को किया गया यह अनुरोध कि वह किसी बाध्यता का परिवचन दे, अभिव्यक्त न होकर विवक्षित भी हो सकता है। साथ ही, प्रतिभू, मूलऋणी और लेनदार के मध्य ऐसे त्रिपक्षीय संविदा का एक साथ होना भी आवश्यक नहीं है और न ही यह आवश्यक है कि इस संविदा में स्वयं प्रतिभू को भी कोई लाभ पहुंचे।

प्रत्याभूति की संविदा का आन्तरिक भाव पर व्यक्ति द्वारा व्यतिक्रम की दशा में वचनगृहीता की क्षतिपूर्ति करना ही है। अतः प्रत्याभूति की संविदा भी अपने मौलिक अर्थ में क्षतिपूर्ति की ही संविदा है। भेद यह है कि क्षतिपूर्ति की संविदा में दो ऐसे पक्षकारों के बीच, जिनमें से एक पक्षकार, दूसरे को, वचनदाता के या अन्य किसी के आचरण के परिणामस्वरूप होने वाली क्षति से अक्षत रहने का वचन देता है, एक सीधा वचनबन्ध होता है जो किसी घटना से नहीं वरन् किसी व्यक्ति के आचरण से सम्बन्ध रखता है। ऐसा वचनबन्ध, दो पक्षकारों के बीच सीधा न होकर, साम्पार्श्विक हो तो यह क्षतिपूर्ति की संविदा न होकर प्रत्याभूति की संविदा हो जाती है क्योंकि प्रत्याभूति की संविदा में प्रथम एक करार दो पक्षकारों के बीच होता है और उसी मूल करार से साम्पार्श्विक एक अन्य करार, मूल करार वाले वचनगृहीता से एक तृतीय पक्षकार इस आशय से करता है कि उस मूल करार वाले वचनदाता की ओर से वचन के पालन में व्यतिक्रम की दशा में तृतीय पक्षकार उसी वचन का पालन करेगा या उसी वचन के अधीन जो दायित्व होगा उसका निर्वहन करेगा।

प्रतिभू का दायित्व, इस प्रकार, मूल ऋणी के दायित्व की पूर्वविद्यमानता के कारण होता है और प्रतिभू का दायित्व उसी समय प्रकट होता है जबकि मूल ऋणी के दायित्व के निर्वहन में व्यतिक्रम हो। अतः मूल ऋणी का दायित्व विधितः प्रवर्तनीय होना चाहिए क्योंकि यदि मूलऋणी का स्वयं का ही दायित्व अस्तित्व में न हो या प्रवर्तनीय न हो तो प्रतिभू का भी कोई दायित्व नहीं है।[2]

पंजाब नेशनल बैंक बनाम **श्री विक्रम कॉटन मिल्स**[3] वाले मामले में, क्षतिपूर्ति और प्रत्याभूति की संविदाओं का अन्तर स्पष्ट करते हुए न्या० जे० सी० शाह (जैसा कि वे तब थे) ने यह संप्रेक्षित किया है कि मूलतः और स्वतन्त्रतः किसी अन्य व्यक्ति के आचरण के लिए दायित्व धारण कर लेना, क्षतिपूर्ति की संविदा है जबकि प्रत्याभूति की संविदा में, तीन पक्षकारों की सहमति अपेक्षित होती है अर्थात् एक मूल ऋणी, द्वितीय प्रतिभू और तृतीय लेनदार, जिनमें से प्रतिभू, मूलऋणी की अभिव्यक्त या विवक्षित प्रार्थना पर उसके दायित्व के निर्वहन का परिवचन लेनदार के प्रति करता है। प्रतिभू का

---

[1] मीर नियामत अली खां **बनाम** कार्मशियल ग्रौर इंडस्ट्रियल बैंक, ए० ग्राई० ग्रार० 1969 ग्रान्ध्र प्रदेश 294.

[2] लीमा लेटाव एंड कम्पनी **बनाम** भारत संघ, ए० ग्राई० ग्रार० 1968 गोग्रा 29.

[3] ए० ग्राई० ग्रार० 1970 एस० सी० 1973 :(1970) 2 एस० सी० ग्रार० 462-[1970] 3 उम० नि० प० 610.

दायित्व सारतः मूलऋणी के व्यतिक्रम पर निर्भर करता है जबकि क्षतिपूर्ति की संविदा में, किसी अन्य व्यक्ति या स्वयं वचनगृहीता के ही किसी आचरण से वचनगृहीता को होने वाली हानि के कारण वचनदाता का दायित्व उद्भूत होता है ।

बीमे की संविदा का स्वरूप

बीमे की संविदा या तो क्षतिपूर्ति की या समाश्रित संविदा होती है। किन्तु इसे प्रत्याभूति की संविदा नहीं कहा जा सकता । बीमे की संविदा में क्षतिपूर्ति के खण्ड का मर्म यह है कि जिस व्यक्ति का बीमा किया गया हो उस पर यह दायित्व है कि वह क्षति का सबूत दे, किन्तु किन्हीं अवस्थाओं में बीमा की संविदा समाश्रित संविदा होती है जिसमें किसो विनिर्दिष्ट घटना के घटित होने की दशा में उस घटना से उद्भूत क्षति अथवा क्षति की सम्भावना में प्रतिपूर्ति के संदाय का वचन होता है, और इस बात का अवधारण कि बीमे की संविदा क्षतिपूर्ति की संविदा है अथवा समाश्रित संविदा, पृथक्-पृथक् मामलों की प्रकृति और परिस्थितियों पर निर्भर करता है[1] । सामान्यतः बीमे की संविदा में बीमा कर्ता प्रतिभू नहीं होता क्योंकि वह मूल ऋण के संदाय का वचनबन्ध नहीं करता वरन् उस नये ऋण के संदाय का वचनबन्ध करता है जो कि बीमे की संविदा से उदभूत होता है तथा यह ऋण अपनी मात्रा और अन्य प्रसंगतियों में मूल ऋण से भिन्न होता है[2] ।

क्षतिपूर्तिधारी पर वाद लाये जाने की दशा में उसका अधिकार

क्षतिपूर्ति की संविदा का वचनगृहीता, अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर कार्य करता हुआ, वचनदाता से निम्नलिखित वसूल करने का हकदार है[3] —

1. वह सब नुकसानी, जिसके संदाय के लिए वह ऐसे किसी वाद में विवश किया जाए जो किसी ऐसी बात के बारे में हो, जिसे क्षतिपूर्ति करने का वह वचन लागू हो ।

2. वे सब खर्चे, जिनको देने के लिए वह, ऐसे किसी वाद में विवश किया जाए, यदि वह वाद लाने या प्रतिरक्षा करने में उसने वचनदाता के आदेशों का उल्लंघन न किया हो और इस प्रकार कार्य किया हो जिस प्रकार कार्य करना क्षतिपूर्ति की किसी संविदा के अभाव में उसके लिए प्रज्ञायुक्त होता अथवा यदि वचनदाता ने वह वाद लाने या प्रतिरक्षा करने के लिए उसे प्राधिकृत किया हो ।

3. वे सब धनराशियां, जो उसने ऐसे किसी वाद के किसी समझौते के निबन्धनों के अधीन दी हों, यदि वह समझौता वचनदाता के आदेशों के प्रतिकूल न रहा हो और ऐसा रहा हो जैसा समझौता क्षतिपूर्ति की संविदा के अभाव में वचनगृहीता के लिए करना प्रज्ञायुक्त होता अथवा यदि वचनदाता ने उस वाद का समझौता करने के लिए उसे प्राधिकृत किया हो।

इन उपबन्धों में वचनदाता के अधिकारों का उल्लेख नहीं है, किन्तु वचनदाता को वे सब अधिकार है, जो कि क्षतिपूर्तिधारी के लिए दायित्व हैं, जैसे क्षतिपूर्तिधारी का यह दायित्व है कि वह क्षतिपूर्ति की संविदा के विस्तार के अनुरूप ही कार्य करे और उस संविदा की शर्तों का उल्लंघन न करे, साथ ही वह उस

---

[1] ब्रिटिश इण्डिया जनरल इन्श्योरेन्स कम्पनी के मामले में, ए० आई० आर० 1971 मुम्बई, 102

[2] हुकुमचन्द इन्श्योरेन्स कम्पनी बनाम बड़ौदा बैंक, ए० आई० आर० 1977 कर्नाटक 204.

[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 125.

संविदा के अन्तर्गत अपने कार्य-व्यवहार की सीमा में, एक प्रज्ञायुक्त व्यक्ति की भांति आचरण करे और इन्हीं सब दायित्वों से क्षतिपूर्ति के वचनदाता के अधिकारों का स्वतः सृजन हो जाता है। वैसे क्षतिपूर्तिधारी के दायित्वों से पृथक्, क्षतिपूर्ति के वचनदाता के अधिकारों का आधार प्राकृतिक साम्या होता है[1]।

क्षतिपूर्ति के दायित्व का उद्भूत होना

क्षतिपूर्ति के बन्धपत्र के अन्तर्गत, वचनदाता का दायित्व उसी क्षण उद्भूत हो जाता है जिस क्षण कि क्षतिपूर्तिधारी के प्रति कोई नुकसान, हानि या क्षति आसन्न हो जाए और यह दायित्व वैसी क्षति, नुकसान या हानि के वास्तव में घटित होने तक के समय में स्थगित नहीं माना जा सकता[2]।

चलत प्रत्याभूति क्या है

वह प्रत्याभूति जिसका विस्तार संव्यवहारों की किसी आवली पर हो **चलत प्रत्याभूति** कहलाती है।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 129 में दी गई इस परिभाषा के संबंध में निम्नलिखित दृष्टान्त हैं —

क. **क** इस बात के प्रतिफलस्वरूप कि **ख** अपनी जमींदारी के भाटकों का संग्रह करने के लिए **ग** को नौकर रखेगा **ग** द्वारा उन भाटकों के सम्यक् संग्रह और संदाय के लिए 5,000 रुपए की रकम तक उत्तरदायी होने का वचन **ख** को देता है। यह चलत प्रत्याभूति है।

ख. **क** एक चाय के व्यापारी **ख** को, उस चाय के लिए, जिसका वह **ग** को समय-समय पर प्रदाय करे, 100 पौंड तक की रकम का संदाय करने की प्रत्याभूति देता है। **ग** को **ख** उपर्युक्त सौ पौण्ड से अधिक मूल्य की चाय का प्रदाय करता है और **ग** उसके लिए **ख** को संदाय कर देता है। तत्पश्चात् **ग** को **ख** 200 पौंड मूल्य की चाय का प्रदाय करता है। **ग** संदाय करने में असफल रहता है। **क** द्वारा दी गई प्रत्याभूति चलत प्रत्याभूति थी, और तदनुसार वह **ख** के प्रति 100 पौंड तक का दायी है।

ग. **ख** द्वारा **ग** को परिदत्त किए जाने वाले आटे के पांच बोरों की कीमत के, जो एक मास में दी जानी है, संदाय के लिए **ख** को **क** प्रत्याभूति देता है। **ग** को **ख** पाँच बोरे परिदत्त करता है। **ग** उनके लिए संदाय कर देता है। **ख** तत्पश्चात् **ग** को चार बोरे देता है जिसका संदाय **ग** नहीं करता है। **क** द्वारा दी गई प्रत्याभूति चलत प्रत्याभूति नहीं थी और इसलिए वह उन चार बोरों की कीमत के लिए दायी नहीं है।

चलत प्रत्याभूति और साधारण प्रत्याभूति में अन्तर

उपर्युक्त दृष्टान्तों से साधारण और चलत प्रत्याभूति के अन्तर का बोध होता है। **साधारण प्रत्याभूति में, प्रतिभू केवल एक ही संव्यवहार के लिए उत्तरदायी होता है, किंतु चलत प्रत्याभूति में प्रतिभू, मूल ऋणी के और लेनदार के बीच चालू रहने वाले समस्त संव्यवहारों के लिए उत्तरदायी होता है।**

जहां यह निश्चित कहना कठिन प्रतीत होता है कि प्रत्याभूति केवल एक संव्यवहार तक ही सीमित है अथवा संव्यवहारों की एक आवली तक विस्तृत है, वहां संविदा के गठन के समय जो पक्षकारों का आशय रहा हो, उसी के आधार पर यह अवधारित हो सकेगा कि प्रतिभूति किस प्रकार की थी। एक कम्पनी

---

[1] महाराजा जसवन्त सिंह **बनाम** सेक्रेटरी ऑफ स्टेट, आई० एल० आर० (1889) 14 मुम्बई 299.

[2] राघवैया **बनाम** मोहम्मद इब्राहीम, (1963) 2 आन्ध्र डब्ल्यू० आर० 98.

के प्रबन्ध-अभिकर्ता ने एक बैंक के प्रति एक वचन पत्र, एक आडमान की लिखत और एक पत्र इस आशय का लिखा कि बैंक के पास आडमान में रखे प्रत्येक सामान की हानि के लिए कम्पनी दायी होगी और साथ ही उस प्रबन्ध-अभिकर्ता ने अपनी ओर से एक प्रत्याभूति भी निष्पादित की कि वह कम्पनी की ओर से बैंक को संदेय धनराशि के लिए, बैंक की मांग पर, स्वयं दायी रहेगा तो न्यायाधिपति जे० सी० शाह (जैसाकि वे तब थे) के मत में यह एक चलत प्रत्याभूति थी[1]।

प्रत्याभूति का प्रतिसंहरण

साधारण प्रत्याभूति एक ही संव्यवहार तक सीमित होती है अतः वह वचनगृहीता के प्रतिगृहीत कर लिये जाने के पश्चात् प्रतिसंहरणीय नहीं रहती। किंतु चलत प्रत्याभूति प्रायः एक लम्बी अवधि तक चालू रहने वाले क्रमिक और श्रृंखलाबद्ध संव्यवहारों तक विस्तृत होती है, अतः उसका प्रतिसंहरण, मूल ऋणी और लेनदार के बीच चालू रहने वाले संव्यवहारों की अवधि में किसी भी समय किया जा सकता है। स्वयं प्रतिभू की मृत्यु पर भी ऐसी प्रत्याभूति प्रतिसंहृत हो जाती है, यदि संविदा में कोई अन्यथा उपबन्ध न हो।

चलत प्रत्याभूति के प्रतिसंहरण के विषय में **निम्न दो नियम** है —

1. चलत प्रत्याभूति का भावी संव्यवहारों के बारे में प्रतिसंहरण लेनदार को सूचना द्वारा किसी समय भी प्रतिभू कर सकेगा[2]। इसके विषय में निम्न दृष्टान्त हैं —

क. ऐसे विनिमय-पत्रों को, जो **ग** के पक्ष में हो, **क** की प्रार्थना पर **ख** द्वारा मितीकाटे पर भुगतान के प्रतिफलस्वरूप **ख** को **क** ऐसे सब विनिमय-पत्रों पर 5,000 रुपए तक सम्यक् संदाय की प्रत्याभूति बारह मास के लिए देता है। 2,000 रुपए तक के ऐसे विनिमय-पत्रों को, जो **ग** के पक्ष में हैं, **ख** मितीकाटे पर भुगतान करता है, तत्पश्चात् तीन मास का अन्त होने पर **क** उस प्रत्याभूति का प्रतिसंहरण कर लेता है। यह प्रतिसंहरण **क** को **ख** के प्रति किसी भी पश्चात्वर्ती मितीकाटे पर भुगतान के लिए समस्त दायित्व से उन्मोचित कर देता है। किन्तु **ग** द्वारा व्यतिक्रम होने पर, **क** उन 2,000 रुपयों के लिए **ख** के प्रति दायी है।

ख. **ख** को 1,000 रुपए तक की यह प्रत्याभूति देता है कि **ग** उन सब विनिमय-पत्रों का जो **ख** उसके नाम लिखेगा, संदाय करेगा। **ग** के नाम **ख** विनिमय-पत्र लिखता है। **ग** उस विनिमय-पत्र को प्रतिगृहीत करता है। **क** प्रतिसंहरण की सूचना देता है। **ग** उस विनिमय-पत्र को उसके परिपक्व होने पर अनादृत कर देता है। **ग** अपनी प्रत्याभूति के अनुसार दायी है।

सूचना दिए जाने का कोई भी प्ररूप और कोई भी ढंग हो सकता है जैसा भी पक्षकार अपनी सहमति से निश्चित कर लें।[3]

2. चलत प्रत्याभूति को, जहां तक कि उसका भावी संव्यवहारों से सम्बन्ध है, प्रतिभू की मृत्यु, तत्प्रतिकूल संविदा के अभाव में, प्रतिसंहृत कर देती है।[4]

---

[1] पंजाब नेशनल बैंक बनाम श्री विक्रम काटन मिल्स, ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1973-[1970] 3 उम० नि० प० 610.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 130.

[3] धन्नुमल परसराम बनाम कुप्पुराज, ए० आई० आर० 1977 मद्रास, 274.

[4] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 131.

प्रतिभू की स्वेच्छा अथवा उसकी मृत्यु द्वारा, किसी भी प्रकार से, चलत प्रत्याभूति का प्रतिसंहरण, प्रतिसंहरण के पश्चात्, मूल-ऋणी और लेनदार के बीच भावी संव्यवहारों पर लागू होता है, अर्थात् प्रतिसंहरण की संसूचना के पूर्ण हो जाने से पूर्व के संव्यवहारों के लिए प्रतिभू दायी रहता है, जिसका तात्पर्य यह है कि मृत्यु के पश्चात् सामान्यत: चलत प्रत्याभूति का उन्मोचन हो जाता है, किन्तु जहां संविदा में ही तत्प्रतिकूल आशय हो, वहां मृत्यु के पश्चात् भी प्रतिभू की सम्पदा की सीमा तक उसके प्रतिनिधि उत्तरदायी होते हैं। ऐसी तत्प्रतिकूल संविदा अभिव्यक्त ही हो, यह आवश्यक नहीं है। ऐसा तत्प्रतिकूल आशय, संविदा की प्रकृति से भी ग्रहण किया जा सकता है। यदि पट्टेदार द्वारा पट्टाकर्ता को संदेय भाटक के लिए प्रतिभू ने यह प्रत्याभूत किया हो कि भाटक के संदाय में पट्टेदार के व्यतिक्रमी होने पर प्रतिभू भाटक के लिए दायी होगा तो इस संव्यवहार की प्रकृति से ही आशयित था कि प्रत्याभूति पट्टे की सम्पूर्ण अवधि तक के लिए थी, अत: प्रतिभू की मृत्यु के पश्चात् भी, पट्टे के पर्यवसान तक प्रतिभू के प्रतिनिधि उस प्रत्याभूति के अन्तर्गत दायी थे।[1]

प्रतिभू के दायित्व की सीमा

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 128 के अनुसार, प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी के दायित्व के समविस्तीर्ण है जब तक कि संविदा द्वारा अन्यथा उपबन्धित न हो। इस सम्बन्ध में एक दृष्टांत इस प्रकार है—

> **ख** को **क** एक विनिमय-पत्र के प्रतिगृहीता **ग** द्वारा संदाय की प्रत्याभूति देता है। विनिमय-पत्र **ग** द्वारा अनादृत किया जाता है। **क** न केवल उस विनिमय-पत्र की रकम के लिए, बल्कि उन ब्याज और प्रभारों के लिए भी, जो उस पर शोध्य हो गए हों, दायी है।

समविस्तीर्ण शब्द से **विस्तार** का द्योतन होता है तथा इसका सम्बन्ध केवल मूल ऋण के परिमाण से है।[2]

मूल ऋणी के दायित्व और प्रतिभू के दायित्व का जन्म यद्यपि एक ही संव्यवहार से होता है तथापि ये दोनों दायित्व भिन्न-भिन्न हैं। अत: यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी के दायित्व के साथ ही उद्भूत हो[3]। इन दायित्वों के भिन्न-भिन्न होने का अर्थ केवल यह है कि प्रतिभू के दायित्व के उद्भूत होने के लिए मूल ऋणी के दायित्व की पूर्व-विद्यमानता आवश्यक है और इस प्रकार प्रतिभू का दायित्व द्वितीय प्रकार का है जो मूल ऋणी के व्यतिक्रम के पश्चात् जन्म लेता है[4]। न्यायाधिपति आर० एस० बछावत के मत में समविस्तीर्णता का अर्थ यह है कि प्रतिभू का दायित्व, लेनदार की दृष्टि से, मूल ऋणी के साथ-साथ ही उद्भूत हो जाता है, अर्थात् यह दायित्व केवल इस आधार पर आस्थगित नहीं किया जा सकता कि मूल ऋणी शोधक्षम है और लेनदार को प्रथम उसी से वसूली करनी चाहिए।[5] अत: जब तक संविदा में अन्यथा उपबन्धित न हो, लेनदार सीधे मूल ऋणी के

1 गोपाल सिंह **बनाम** भवानी प्रसाद, 10 इलाहाबाद 53.
2 गोपीलाल **बनाम** ट्रक इण्डस्ट्रीज, ए० आई० आर० 1978 मद्रास 135 (137).
3 हुकुमचन्द इन्श्योरेन्स कम्पनी **बनाम** बड़ौदा बैंक, ए० आई० आर० 1977 कर्नाटक, 204.
4 लीमा लेइटाव एण्ड कम्पनी **बनाम** भारत संघ, ए० आई० आर० 1968 गोआ, 29.
5 बैंक ऑफ बिहार लिमिटेड **बनाम** दामोदर प्रसाद, ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 297-[1969] 1 उम० नि० प० 234.

विरुद्ध वाद ला सकता है और मूल ऋणी के विरुद्ध अन्य किसी उपचार का अनुसरण न किए जाने से प्रतिभू उन्मोचित नहीं हो सकता[1] । न्या० एम० हिदायतुल्लाह (जैसा कि वे तब थे) के शब्दों में मूलभूत नियम यह है कि प्रतिभू अपने वचन के अनुबन्धों से अधिक अन्य किसी बात के लिए दायी नहीं ठहराया जा सकता ।[2]

प्रतिभू के उन्मोचन की अवस्थाएं

मूलऋणी के दायित्व का किसी विधिक संक्रिया से निर्वापन हो जाए या अन्य किसी प्रवृत विधि के अन्तर्गत उसके दायित्व में कोई छूट हो जाए, तो वह लाभ प्रतिभू को भी प्राप्त होगा । किन्तु निर्वापन या छूट, उन्मोचन की अवस्था से पृथक् है, अत: जहां किसी विधिक प्रक्रिया से केवल मूल-ऋणी के दायित्व का उन्मोचन हो जाए तो, प्रतिभू के दायित्व का उन्मोचन नहीं हो सकता ।[3]

निम्न अवस्थाओं में प्रतिभू का उन्मोचन हो जाता है—

1. जो भी फेरफार मूलऋणी और लेनदार के बीच की संविदा के निबन्धनों में प्रतिभू की सम्मति के बिना किया जाए वह उस फेरफार के पश्चात्वर्ती संव्यवहारों के बारे में प्रतिभू का उन्मोचन कर देता है ।[4] इस बात को निम्नलिखित दृष्टांतों के आधार पर समझना चाहिए—

क—ग के बैंक में प्रबन्धक के तौर पर ख के आचरण के लिए ग के प्रति क प्रतिभू होता है । तत्पश्चात् क की सम्मति के बिना ख और ग संविदा करते हैं कि ख का संबलम् बढ़ा दिया जाएगा और ओवरड्राफ्टों से हुई हानि की एक चौथाई का ख दायी होगा । ख एक ग्राहक को ओवरड्राफ्ट कर देता है और बैंक को कुछ धन की हानि होती है । क उसकी सम्मति के बिना किए गए फेरफार के कारण अपने प्रतिभूत्व से उन्मोचित हो जाता है, और इस हानि को पूरा करने का दायी नहीं है ।

ख—क एक ऐसे पद पर ख के रहते हुए उसके अवचार के विरुद्ध ग को प्रत्याभूति देता है जिस पद पर ग द्वारा ख नियुक्त किया जाता है और जिसके कर्तव्य विधानमण्डल के एक अधिनियम द्वारा परिभाषित हैं । एक पश्चात्वर्ती अधिनियम द्वारा उस पद की प्रकृति तात्विक रूप से बदल दी जाती है । तत्पश्चात् ख अवचार करता है । इस तब्दीली के कारण क अपनी प्रत्याभूति के अधीन भावी दायित्व से उन्मोचित हो जाता है, यद्यपि ख का वह अवचार ऐसे कर्तव्य के सम्बन्ध में है जिस पर पश्चात्वर्ती अधिनियम का प्रभाव नहीं पड़ता ।

ग—ग अपना माल बेचने के लिए वार्षिक संबलम पर ख को अपना लिपिक नियुक्त करने का करार इस बात पर करता है कि ऐसे लिपिक के नाते ख द्वारा प्राप्त धन का उसके द्वारा सम्यक् हिसाब किए जाने के लिए क प्रतिभू हो जाए । तत्पश्चात् क के ज्ञान या सम्मति के बिना ग और ख करार करते हैं कि ख को पारिश्रमिक उसके द्वारा बेचे गए माल पर कमीशन के रूप में, न कि नियत संबलम् के रूप में, दिया जाएगा । ख के पश्चात्वर्ती अवचार के लिए क दायी नहीं है ।

घ—ग द्वारा ख को उधार प्रदाय किए जाने वाले तेल के लिए क 3,000 रुपए तक की चलत प्रत्याभूति ग को देता है । तत्पश्चात् ख संकट में पड़ जाता है और क के ज्ञान

---

1 डालीचन्द बनाम राजस्थान राज्य, ए० आई० आर० 1976 राजस्थान 112.

2 महाराष्ट्र राज्य बनाम डा० एम० एन० कौल, ए० आई० आर० 1967, एस० सी० 1634.

3 बालकिशन बनाम आत्माराम, ए० आई० आर० 1944 नागपुर, 277.

4 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 133.

के बिना ख और ग संविदा करते हैं कि ख को ग नगद धन पर तेल प्रदाय करता रहेगा और वे संदाय, जो किए जाएं, ख और ग के उस समय वर्तमान ऋणों के लिए उपयोजित किए जाएंगे । क इस नए ठहराव के पश्चात् दिए गए किसी भी माल के लिए अपनी प्रत्याभूति के अधीन संदाय का दायी नहीं है ।

ङ—ख को पहली मार्च को, 5,000 रुपए उधार देने की संविदा ग करता है । क उस ऋण के प्रतिसंदाय की प्रत्याभूति करता है । ग 5,000 रुपए ख को पहली जनवरी को दे देता है । क अपने दायित्व से उन्मोचित हो जाता है, क्योंकि संविदा में यह फेरफार हो गया है कि ग रुपयों के लिए ख पर पहली मार्च से पूर्व वाद ला सकता है ।

च—एक मामले में किसी बैंक द्वारा प्रतिभूत्व तथा माल की गिरवी के दोनों आधारों पर नकद साख की सुविधा प्रदान की गई थी । गिरवी माल की सुरक्षा में बैंक ने असावधानी बरती और परिणामस्वरूप गिरवी माल खो गया । ऐसी स्थिति में, न्या० मू० डी० ए० देसाई ने विनिश्चित किया कि प्रतिभू अपने प्रतिभूत्व से उन्मोचित हो गया । [**स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र बनाम चितरंजन रंगनाथ राजा**[1]]

उपरोक्त उपबन्धों में निहित सिद्धान्त यह है कि साधारण संविदा के पक्षकारो की भांति ही प्रतिभू भी उस कार्य के लिए आबद्ध नहीं है जिसकी कि उसने संविदा की ही नहीं थी । उपधारणा यह है कि जब संविदा में कोई फेरफार हो जाए तो प्रतिभू अपने दायित्व से तत्काल उन्मोचित हो जाता है क्योंकि पक्षकारों ने स्वयं ही प्रत्याभूत वचन का पालन असम्भव कर दिया है । साधारण प्रत्याभूति तथा चलत प्रत्याभूति, दोनों ही दशाओं में, संविदा विधि का यह आधारभूत नियम है कि यदि वचनगृहीता वचन के पालन का वही स्वरूप दर्शित कर सके जो संविदा के समय था, तभी वह उस वचन से वचनदाता को आबद्ध कर सकेगा ।[2]

फेरफार से तात्पर्य तात्विक फेरफार से है और ऐसे फेरफार से जिसके लिए प्रतिभू की अभिव्यक्त या विवक्षित सहमति नहीं रही हो यदि फेरफार तात्विक नहीं है और जिसके कारण प्रतिभू की स्थिति पर कोई तात्विक प्रभाव नहीं पड़ता या उसने सहमति दी हो, तो ऐसी दशा में प्रतिभू उन्मोचित नहीं हो सकता ।[3] जहाँ निर्णीत ऋणी द्वारा किसी डिक्री के निष्पादन में डिक्री-धन के संदाय को प्रत्याभूत कर दिया जाता है किंतु उच्च न्यायालय में अपील किए जाने पर, स्थगन आदेश किन्हीं भिन्न शर्तों के अधीन प्रदान किया जाता है तो प्रतिभू अपनी पूर्व में की हुई प्रत्याभूति से उन्मोचित हो जाता है ।[4] संविदा में किये गए फेरफार का प्रभाव मूलऋणी के किसी आचरण पर पड़े या न पड़े किंतु मूलऋणी के, फेरफार के पश्चात्वर्ती, किसी भी आचरण के लिए प्रतिभू दायी नहीं है, जैसाकि उपरोक्त दृष्टान्त (ख) से स्पष्ट है ।

2 लेनदार और मूलऋणी के बीच किसी ऐसी संविदा से जिसके द्वारा मूल ऋणी निर्मुक्त हो जाए या लेनदार के किसी ऐसे कार्य या लोप से जिसका विधिक परिणाम मूलऋणी

---

1 ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1528-[1981] 2 उप० नि० प० 550

2 प्रतापसिंह **बनाम** केशवलाल, (1935) 153 आई० सी० 700.

3 मथुरा **बनाम** शम्भू, 112, आई० सी० 843.

4 हीरालाल **बनाम** मनीलाल, 28 बाम्बे लॉ रिपोर्टर, 517.

का उन्मोचन हो, प्रतिभू उन्मोचित हो जाता है।[1] इस बात को निम्न दृष्टांतों की सहायता से समझा जा सकता है—

क—ग द्वारा ख को प्रदाय किए जाने वाले माल के लिए ग को क प्रत्याभूति देता है। ख को ग माल प्रदाय करता है और तत्पश्चात् ख संकट में पड़ जाता है और अपने लेनदारों से (जिनके अन्तर्गत ग भी है), उनकी मांगों से अपने को निर्मुक्त किए जाने के प्रतिफल-स्वरूप, उनको अपनी सम्पत्ति समनुदेशित करने की संविदा करता है। यहां ग के साथ की गई संविदा द्वारा ख अपने ऋण से निर्मुक्त हो जाता है और क अपने प्रतिभूत्व से उन्मोचित हो जाता है।

ख—क अपनी भूमि पर नील की फसल उगाने और उसे नियत दर पर ख को परिदत्त करने की संविदा ख से करता है और ग इस संविदा के क द्वारा पालन किए जाने की प्रत्याभूति देता है। ख एक जलधारा को, जो क की भूमि सिंचाई के लिए आवश्यक है, मोड देता है और तद्द्वारा उसे नील उगाने से निवारित कर देता है। ग अब अपनी प्रत्याभूति पर दायी नहीं रहा।

ग—ख के लिए एक गृह अनुबद्ध समय के भीतर और नियत कीमत पर बनाने की संविदा ख से क करता है, जिसके लिए आवश्यक काष्ठ ख द्वारा दिया जाएगा। ग इस संविदा के क द्वारा पालन किए जाने की प्रत्याभूति देता है। ख को काष्ठ देने का लोप करता है। ग अपने प्रतिभूत्व से उन्मोचित हो जाता है।

यदि लेनदार किसी ऐसे कार्य या लोप का दोषी हो जिसके आधार पर, मूल ऋणी लेनदार के प्रति की हुई अपनी संविदा को शून्यकरणीयता के विकल्प द्वारा शून्य करने का अधिकारी हो जाए तो प्रतिभू अपने प्रतिभूत्व से **उन्मोचित हो** जाएगा। ऊपर के दृष्टान्त (ख)और(ग) से यही बात पुष्ट होती है। उपरोक्त नियम में ही यह भी स्पष्ट है कि लेनदार का कोई कार्य या लोप ऐसा होना चाहिए जिसका विधिक परिणाम मूलऋणी को उन्मोचित कर दे।

मूलऋणी के विरुद्ध लेनदार द्वारा वसूली की कार्यवाही न करना ऐसा लोप नहीं है जिसका कि विधिक परिणाम मूल ऋणी को उन्मोचित करना हो।[2] किन्तु लेनदार यदि मूलऋणी से कोई नवीन वचनबन्ध इस प्रकार का कर ले जिससे मूलऋणी की पूर्वसंविदा के स्थान पर कोई अन्य संविदा प्रतिस्थापित हो जाए तो वह ऐसा कार्य होगा जो मूल ऋणी को निर्मुक्त कर दे और ऐसे कार्य से प्रतिभू भी निर्मुक्त हो जाएगा, जैसाकि ऊपर के दृष्टान्त (क) से स्पष्ट है।

3. लेनदार और मूलऋणी के बीच ऐसी संविदा, जिससे लेनदार मूलऋणी के साथ समझौता कर लेता है या उसे समय देने या उस पर वाद न लाने का वचन देता है, प्रतिभू को तब के सिवाय उन्मोचित कर देती है जबकि प्रतिभू ऐसी संविदा के लिए अनुमति दे देता है।[3]

इस नियम में यह स्पष्ट है कि यदि मूल ऋणी और लेनदार के बीच प्रतिभू की सहमति से ही कोई नई संविदा या अन्य समझौता कर लेता है तो ऐसी दशा में प्रतिभू अपने प्रतिभूत्व से उन्मोचित नहीं होता, किन्तु यदि ऐसी नई संविदा या अन्य कोई समझौता, प्रतिभू की सहमति के बिना कर लिया गया है तो प्रतिभू उन्मोचित हो जाता है।

---

1 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 134.

2 काशीनाथ गुप्ता बनाम कलक्टर ऑफ देहरादून, 1959 एन० एल० जे० 789.

3 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 135.

लेनदार द्वारा मूलऋणी को समय देने से तात्पर्य, लेनदार द्वारा मूलऋणी के विरुद्ध वाद लाने से प्रविरत रहना नहीं है, वरन् इसका तात्पर्य किसी विशेष समय के भीतर वाद न लाने के आबद्धकर करार से है ।[1]

4. यदि लेनदार कोई ऐसा कार्य करे जो प्रतिभू के अधिकारों से असंगत हो या किसी ऐसे कार्य को करने का लोप करे जिसके किए जाने की प्रतिभू के प्रति उसका कर्तव्य अपेक्षा करता हो और मूलऋणी के विरुद्ध प्रतिभू के अपने पारिणामिक उपचार का तद्द्वारा ह्रास हो तो प्रतिभू उन्मोचित हो जाएगा ।[2]

इस नियम को समझने के लिए निम्नलिखित दृष्टान्त सहायक होंगे—

क—ग के लिए ख निश्चित धनराशि के बदले एक पोत निर्माण करने की संविदा करता है, जो धनराशि, काम के जैसे-जैसे अमुक प्रक्रमों तक पहुंचे, वैसे-वैसे किस्तों में दी जानी है । ख द्वारा संविदा के सम्यक् पालन के लिए ग के प्रति क प्रतिभू हो जाता है । क के ज्ञान के बिना ख को अन्तिम दो किस्तों का पूर्वसंदाय ग कर देता है । इस पूर्वसंदाय के कारण क उन्मोचित हो जाता है ।

ख—ख के फर्नीचर के ऐसे विक्रयाधिकार-पत्र के साथ, जो ग को यह शक्ति देता है कि वह फर्नीचर बेच दे और उसके आगमों को वचन-पत्र के उन्मोचन में उपयोजित कर ले । ग के पक्ष में ख द्वारा और ख के प्रतिभू के रूप में क द्वारा लिखे गए संयुक्त एवं पृथक् वचनपत्र की प्रतिभूति पर ख को ग धन उधार देता है । तत्पश्चात् ग उस फर्नीचर को बेच देता है, किन्तु उस अवचार और उसके द्वारा जानबूझकर की गई उपेक्षा के कारण केवल थोड़ी कीमत प्राप्त होती है । क उस वचनपत्र के दायित्व से उन्मोचित हो जाता है ।

ग—ङ को ख के पास शिक्षु (अप्रैन्टिस) के रूप में क रखता है और ख को ङ की विश्वस्तता की प्रत्याभूति देता है । ख अपनी ओर से वचन देता है कि वह प्रतिमास कम से कम एक बार देख लेगा कि ङ ने रोकड़ का मिलान कर लिया है । ख ऐसा करने का लोप करता है और ङ गबन कर लेता है । ख के प्रति क अपनी प्रत्याभूति पर दायी नहीं है ।

इस नियम में दो बातें बताई गई हैं—

1. लेनदार का ऐसा कोई कार्य जो प्रतिभू के अधिकारों से असंगत हो । उदाहरण के लिए यदि लेनदार मूल ऋणी के विरुद्ध पारित डिक्री में यदि प्रतिभू की सहमति के बिना मूलऋणी से समझौता कर ले तो प्रतिभू उन्मोचित हो जाएगा ।[3]

2. लेनदार द्वारा प्रतिभू के प्रति अपने कर्तव्य का ऐसा लोप जिससे मल ऋणी के विरुद्ध प्रतिभू के पारिणामिक उपचारों में ह्रास होता हो ।

लेनदार का ऐसा कार्य जो मूल ऋणी के विरूद्ध प्रतिभू के पारिणामिक उपचारों का ह्रास कर दे इस विषय में निर्णायक प्रभाव रखता है क्योंकि यदि लेनदार के किसी कार्य या कार्य के लोप से प्रतिभू के पारिणामिक उपचार में ह्रास न हुआ हो तो केवल लेनदार के ऐसे किसी कार्य से जो प्रतिभू के

---

1 टी० एन० एस० फर्म बनाम महोमद हुसैन, ए० आई० आर० 1933 मद्रास 756.

2 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 139.

3 सरदार काहनसिंह बनाम टेकचन्द, ए० आई० आर० 1968 जम्मू-कश्मीर, 93.

अधिकारों से असंगत हो अथवा ऐसे किसी कार्य के लोप से जो प्रतिभू के प्रति उसका कर्तव्य अपेक्षा करता हो, तो प्रतिभू उन्मोचित नहीं होगा ।[1] अधिनियम की धारा 141 का निम्नलिखित उपबन्ध जहां लेनदार मूलऋणी के विरुद्ध किसी प्रतिभू को विलग कर दे, लेनदार द्वारा ऐसे कार्य का उदाहरण है जिससे मूल ऋणी के विरुद्ध प्रतिभू के पारिणामिक उपचार का ह्रास हो जाए ।

प्रतिभू के भागतः उन्मोचन की अवस्था

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 141 में यह उपबन्ध है कि प्रतिभू हर ऐसी प्रतिभूति के फायदे का हकदार है जो उस समय, जब प्रतिभूत्व की संविदा की जाए, लेनदार को मूलऋणी के विरुद्ध प्राप्त हो, चाहे प्रतिभू उस प्रतिभूति के अस्तित्व को जानता हो या नहीं, और यदि लेनदार उस प्रतिभूति को खो दे या प्रतिभू की सम्मति के बिना उस प्रतिभूति को विलग कर दे तो प्रतिभू उस प्रतिभूति के मूल्य के परिमाण तक उन्मोचित हो जाएगा ।

निम्नलिखित दृष्टान्तों से इस नियम की समुचित व्याख्या हो जाती है--

क--क की प्रत्याभूति पर ग अपने अधिकारी ख को, 2,000 रुपए उधार देता है । ग के पास उन 2,000 रुपयों के लिए ख के फर्नीचर के बन्धक के रूप में एक और प्रतिभूति है । ग उस बन्धक को रद्द कर देता है । ख दिवालिया हो जाता है और ख की प्रत्याभूति के आधार पर क के विरुद्ध ग वाद लाता है । क उस फर्नीचर के मूल्य की रकम तक दायित्व से उन्मोचित हो गया है ।

ख--एक लेनदार ग को, जिसका ख को दिया हुआ उधार डिक्री द्वारा प्रतिभूत है, उस उधार के लिए क से भी प्रत्याभूति मिलती है । तत्पश्चात् ग उस डिक्री के निष्पादन में ख के माल को कुर्क करा लेता है, और तब क को जानकारी के बिना उस निष्पादन का प्रत्याहरण कर लेता है । क उन्मोचित हो जाता है ।

ग--ग से ख के लिए उधार प्राप्त करने को ख के साथ संयुक्ततः क एक बन्ध-पत्र ख के प्रतिभू के तौर पर ग को लिख देता है । तत्पश्चात् ग उसी ऋण के लिए ख से एक अतिरिक्त प्रतिभूति अभिप्राप्त करता है । तत्पश्चात् ग उस अतिरिक्त प्रतिभूति को छोड़ देता है । क उन्मोचित नहीं होता ।

जो भी अन्य प्रतिभूतियां उसी लेनदार को उसी मूलऋणी के विरुद्ध प्राप्त हैं, वे सब प्रतिभू की मूलऋणी द्वारा क्षतिपूर्ति के दायित्व की पूरक हैं और प्रतिभू अन्य सब प्रतिभूतियों के फायदे का हकदार है । किंतु वे अन्य प्रतिभूतियां ऐसी होनी चाहिए जो पश्चातवर्ती न होकर मूलऋणी के विरुद्ध लेनदार को उस समय प्राप्त हों जब कि प्रत्याभूति की संविदा की गई थी । किंतु लेनदार द्वारा किसी साम्पार्श्विक प्रतिभूति से ऋण की वसूली न किए जाने से प्रतिभू के दायित्व में न्यूनता नहीं आती ।[2] न्या० वी० रामस्वामी द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि इंग्लैंड की विधि में प्रतिभू पश्चात्वर्ती प्रतिभूति का भी लाभ उठा सकता है, किंतु भारत में यह फायदा संविदा के समय की स्थिति तक परिमित है ।[3]

साथ ही यह भी स्मरणीय है कि अन्य उपलब्ध प्रतिभूतियां, उसी ऋण के सम्बन्ध में होनी चाहिए । किसी भिन्न ऋण की प्रतिभूतियों को लेनदार द्वारा विलग कर दिये जाने का कोई लाभ प्रतिभू को नहीं

---

1 डालीचन्द बनाम राजस्थान राज्य, ए० आई० आर० 1976 राजस्थान, 112.

2 कर्नाटक बैंक लिमिटेड बनाम गजानन शंकरराव, ए० आई० आर० 1977, कर्नाटक 14(18).

3 अमृतलाल गोवर्धनलाल बनाम स्टेट बैंक, ट्रावनकोर, ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 1432(1436–1438)- [1968 2 उम० नि० प० 510]

प्राप्त हो सकता ।[1] **जब प्रतिभूत्व की संविदा की जाए** इन शब्दों का अर्थ यह भी है कि प्रतिभू संविदा किए जाने के दिन से पूर्व उपलब्ध किसी प्रतिभूति का भी लाभ नहीं उठा सकता ।[2]

व अवस्थायें जहां प्रतिभू उन्मोचित नहीं होता

संविदा अधिनियम में, लेनदार के ऐसे तीन कार्यों का भी कथन किया गया है जिनसे प्रतिभू उन्मोचित नहीं होता । वे इस प्रकार हैं—

1. **मूल ऋणी को समय दिए जाने का पर-व्यक्ति से करार :**—जहां कि मूल ऋणी को समय देने की संविदा लेनदार द्वारा किसी पर-व्यक्ति से, न कि मूलऋणी से, की जाती है, वहां प्रतिभू उन्मोचित नहीं होता ।[3] दृष्टान्त के लिए, **ग** एक ऐसे अतिशोध्य विनिमय-पत्र का धारक है, जिसे **क** ने **ख** के प्रतिभू के रूप में लिखा और **ख** ने प्रतिगृहीत किया है । **ख** के समय देने की संविदा की, **ङ** से, **ग** करता है । **क** उन्मोचित नहीं होता ।

लेनदार द्वारा मूलऋणी को प्रतिभू की सहमति के बिना, समय दिये जाने के कार्य द्वारा, प्रतिभू तब दायी नहीं रहता जबकि; (1)—समय देने की संविदा लेनदार मूलऋणी से ही करे; और (2)—वह की हुई संविदा वास्तव में आबद्धकर हों, किन्तु यदि लेनदार, मूलऋणी को समय देने की ऐसी संविदा, मूल ऋणी से न करके, किसी पर-व्यक्ति से करे तो प्रतिभू उन्मोचित नहीं होता ।

2. **लेनदार की मूलऋणी के विरुद्ध वाद लाने से प्रविरति :**—मलऋणी पर वाद लाने से या उसके विरुद्ध किसी अन्य उपचार को प्रवर्तित करने से लेनदार का प्रविरत रहना मात्र, प्रत्याभूति में तत्प्रतिकूल उपबन्ध के अभाव में, प्रतिभू को उन्मोचित नहीं करता ।[4]

एक दृष्टान्त, इस सम्बन्ध में यह है कि **ख** एक ऋण का, जिसकी प्रत्याभूति **क** ने दी है, **ग** को देनदार है । ऋण देय हो जाता है । ऋण के देय हो जाने के पश्चात् एक वर्ष तक **ख** पर **ग** वाद नहीं लाता । **क** अपने प्रतिभूत्व से उन्मोचित नहीं होता ।

न्या० जे० सी० शाह ने अभिनिर्धारित किया है कि विधि के अन्तर्गत प्रतिभू का दायित्व संयुक्त और पृथक् दोनों प्रकार का माना गया है किन्तु यह मूल ऋणी के दायित्व से भिन्न नहीं माना गया है, अतः लेनदार यदि संयुक्त प्रतिभुओं में से कुछ को उन्मुक्त कर दे अथवा प्रतिभूति का प्रवर्तन उनमें से कुछ के विरुद्ध न करे तो इससे अन्य प्रतिभू उन्मोचित नहीं होते । अधिनियम की धारा 137 व 138 में इसका स्पष्ट उपबन्ध है ।[5]

एक अवस्था वह है जब लेनदार, प्रतिभू की सहमति के बिना मूलऋणी पर वाद न लाने का अभिव्यक्त वचन देता है और ऐसी दशा में, प्रतिभू उन्मोचित हो जाता है, किन्तु दूसरी अवस्था, जो इस नियम में दर्शित की गई है, उसमें लेनदार वाद न लाने का कोई स्पष्ट वचन नहीं देता वरन् वाद लाने से या अन्य उपचार को प्रवर्तित करने से केवल प्रविरत रहता है और ऐसी प्रविरति मात्र से प्रतिभू उन्मोचित नहीं हो जाता । **किसी कार्य को न करने का वचन देना और बिना वचन दिये किसी कार्य को करने से प्रविरत रहना, ये दोनों अवस्थायें भिन्न-भिन्न हैं** और इसी कारण इनके परिणाम भी भिन्न-भिन्न हैं ।

---

1 **बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम** कृष्णवल्लभ, ए० आई० आर० 1975 राजस्थान, 1.

2 **जे० हरीगोपाल बनाम स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया**, ए० आई० आर० 1976 मद्रास, 211.

3 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 136.

4 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 137.

5 श्री चन्द **बनाम** जगदीश परशाद, ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 1427–1431.

प्रथम अवस्था का परिणाम प्रतिभू को उस समय उन्मोचित कर देना होता है जबकि ऐसा वचन प्रतिभू की सहमति के बिना दिया गया हो, किन्तु द्वितीय अवस्था का परिणाम प्रतिभू को उन्मोचित करना नहीं है ।

दूसरा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या लेनदार द्वारा मूल ऋणी के विरुद्ध वाद लाने या अन्य उपचार को प्रवर्तित न करने से प्रविरत रहने का कार्य, कोई ऐसा कार्य या ऐसे किसी कार्य का लोप माना जा सकता है जिसका विधिक परिणाम मूल ऋणी का उन्मोचन और तदनुसार प्रतिभू का भी उन्मोचन करना होता हो। दूसरे शब्दों में, यह कहना सार्थक होगा कि यदि लेनदार, मूल ऋणी के विरुद्ध वाद लाने के हक को परिसीमा विधि द्वारा वारित हो जाने दे तो क्या यह अवस्था ऐसी अवस्था है जिससे मूलऋणी के साथ-साथ प्रतिभू भी उन्मोचित हुआ कहा जा सके। यह प्रश्न उन अवस्थाओं को लक्ष्य करता है, जबकि मूल ऋणी के विरुद्ध वाद लाने की विहित अवधि व्यतीत हो चुकी हो किन्तु प्रतिभू के विरुद्ध, वाद लाये जाने की अवधि शेष हो। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने[1] इस प्रश्न का उत्तर हां में दिया था अर्थात् यह अभिनिर्धारित किया कि जब मूल ऋणी के विरुद्ध वाद लाने का हक परिसीमा विधि द्वारा वारित हो जाए तो प्रतिभू भी दायी नहीं रहता। किन्तु प्रिवी काउन्सिल ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के इस अभिनिर्धारण का स्पष्टत: अननुमोदन किया है और यह निर्धारित किया कि मूलऋणी के विरुद्ध वाद लाने का अधिकार परिसीमा विधि द्वारा वारित हो जाने पर भी, प्रतिभू उन्मोचित नहीं होता और यदि प्रतिभू के विरुद्ध वाद लाने का अधिकार परिसीमा विधि द्वारा वारित न हुआ हो तो केवल प्रतिभू के विरुद्ध वाद लाया जाकर ऋण की वसूली की जा सकती है ।[2]

उपरोक्त प्रिवी काउन्सिल के अभिमत की मान्यता, भारत के न्यायालयों में यथावत है। **अजीज अहमद बनाम शेरअली**[3] वाले मामले में, स्वयं इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक पूर्णपीठ की ओर से निर्णय देते हुए मुख्य न्यायाधीश मूथम ने यह अवधारित किया है कि यदि लेनदार मूल ऋणी के विरुद्ध पारित डिक्री के निष्पादन को परिसीमा विधि द्वारा वारित हो जाने दे तो इससे प्रतिभू उन्मोचित नहीं होता **दास बैंक लिमिटेड बनाम काली कुमारी देवी**[4] वाले मामले में, कलकत्ता उच्च न्यायालय का भी यही अभिमत रहा है। मैसूर उच्च न्यायालय के समक्ष **बाबू शंभूमल गंगाराम बनाम स्टेट बैंक, मैसूर**[5] वाले मामले में, न्यायमूर्ति सी० होन्निया ने न केवल प्रिवी काउन्सिल के उपर्युक्त अभिमत का अवलम्ब ही ग्रहण किया है वरन् यह भी संप्रेक्षित किया है कि इस विषय में भारत में इंग्लैण्ड की ही विधि का इस आधार पर अनुसरण किया जा रहा है कि यदि लेनदार मूल ऋणी के विरुद्ध लाये जाने वाले वाद को परिसीमा विधि द्वारा वारित हो जाने दे तो भी प्रतिभू इसलिए उमोचित नहीं होता क्योंकि स्वयं प्रतिभू भी मूल ऋणी के विरुद्ध विधिक उपचार के निमित्त कानून को सक्रिय बना सकता है। न्यायमूर्ति होन्निया ने इस सम्बन्ध में, **चिट्टी ऑन कान्ट्रेक्ट्स** में से एक उद्धरण इस प्रकार सम्प्रेक्षित किया है "यदि कोई अभिव्यक्त या विवक्षित संविदा इस बात की हो कि लेनदार, मूल ऋणी के विरुद्ध किसी हक का अर्जन करेगा अथवा उस का परिरक्षण करेगा और यदि लेनदार उस हक से, जिसे अर्जित करना उसके द्वारा अनुध्यात है, स्वयं को वंचित करले अथवा जो हक उस उपलब्ध हो उसे निर्मुक्त कर दे, तो प्रतिभू का उन्मोचन हो जाएगा किन्तु यदि ऐसी कोई संविदा नहीं है वरन् जो

1 रंजीत बनाम नौबत, आई० ए० आर० (1902) 24 इलाहाबाद 504.

2 महन्तसिंह बनाम ऊबा, ए० आई० आर० 1939 प्रीवी काउन्सील 110.

3 ए० आई० आर० 1956 इलाहाबाद, 8.

4 ए० आई० आर० 1958 कलकत्ता, 530.

5 ए० आई० आर० 1971 मैसूर 156 (164-165).

हक लेनदार को उपलब्ध है, उसी को पूर्ण किया जाना है और लेनदार ऐसा न करे तो इससे प्रतिभू निर्मुक्त नहीं होता जब तक कि प्रतिभू यह दर्शित न कर सके कि लेनदार के इस आचरण के फलस्वरुप उसे कोई क्षति हुई है।"[1]

सह-प्रतिभू की निर्मुक्ति

जहां कि सह-प्रतिभू हों वहां लेनदार द्वारा उनमें से एक की निर्मुक्ति अन्यों को उन्मोचित नहीं करती और न यह ऐसे निर्मुक्त प्रतिभू को अन्य प्रतिभुओं के प्रति अपने उत्तरदायित्व से मुक्त करती है।[2]

इंग्लैण्ड की विधि में, लेनदार द्वारा, उन प्रतिभुओं में से जिन्होंने, संयुक्ततः और पृथकतः दोनों ही रूपों में संविदा की है, किसी एक को निर्मुक्त कर दिये जाने पर, अन्य प्रतिभुओं की भी निर्मुक्ति हो जाती है क्योंकि उनका संयुक्त प्रतिभूत्व प्रत्येक के ही करार के प्रतिफल का भाग होता है, किन्तु जहां प्रतिभुओं ने अपनी-अपनी संविदायें पृथकतः की हैं, वहां एक की निर्मुक्ति से अन्य किसी की निर्मुक्ति नहीं होती।[3]

भारतीय विधि में, सह-प्रतिभुओं और संयुक्त प्रतिभुओं में किसी प्रकार का अन्तर नहीं किया गया है तथा दोनों ही प्रकार के प्रतिभुओं को संयुक्त वचनदाताओं की कोटि में माना गया है। उच्चतम न्यायालय के समक्ष **श्रीचन्द व अन्य** बनाम **जगदीश परशाद किशनचन्द व अन्य**[4] वाले मामले में न्या० जे० सी० शाह (जैसा कि वे तब थे) द्वारा दिए गए निर्णय में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रतिभुओं के दायित्व संयुक्त और पृथक्-पृथक् होते हुए भी भिन्न-भिन्न नहीं है और यदि लेनदार उन प्रतिभुओं में से किसी एक को निर्मुक्त कर दे अथवा प्रतिभूत्व को संयुक्त प्रतिभुओं में से केवल कुछ के ही विरुद्ध प्रवर्तित करे तो, इस आधार पर अन्य प्रतिभुओं का उन्मोचन नहीं हो जाता।

प्रतिभू के अधिकार की तीन कोटियां

प्रतिभू के अधिकारों को तीन कोटियों में रखा जा सकता है—1. वे अधिकार जो उसे मूल ऋणी के विरुद्ध प्राप्त हैं, 2. वे अधिकार जो उसे सहप्रतिभुओं के विरुद्ध प्राप्त हैं, तथा 3. वे अधिकार जो उसे लेनदार के विरुद्ध प्राप्त हैं।

मूल ऋणी के विरुद्ध प्रतिभू के दो अधिकार

इस अधिकार को दो वर्गों में रखा जा सकता है—1. मूल ऋणी से क्षतिपूर्ति का अधिकार तथा 2. संदाय या पालन होने पर लेनदार के समान अधिकार।

1. मूल ऋणी से क्षतिपूर्ति का अधिकार :—प्रत्याभूति की हर संविदा में, प्रतिभू की क्षतिपूर्ति किये जाने का मूल ऋणी का विवक्षित वचन रहता है, और प्रतिभू किसी भी धनराशि को, जो उसने प्रत्याभूति के अधीन अधिकार पूर्वक दी हो, मूल ऋणी से वसूल करने का हकदार है, किन्तु उन धनराशियों को नहीं, जो उसने अनधिकार पूर्वक दी हों।[5]

इस नियम की व्याख्या के लिए निम्न दृष्टान्त हैं—

क—**ग** का **ख** ऋणी है और **क** उस ऋण के लिए प्रतिभू है। **ग** संदाय की मांग **क** से करता है और उसके इन्कार करने पर, उस रकम के लिए उस पर वाद लाता है। प्रतिरक्षा के लिए

---

1 अनुवाद लेखक द्वारा किया गया है।

2 भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 138.

3 वार्ड **बनाम** नेशनल बैंक, न्यूजीलैण्ड, एल० आर० (1883) 8 ए० सी० 755.

4 ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 1427(1431).

5 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 145.

युक्तियुक्त आधार होने से क वाद में प्रतिरक्षा करता है, किन्तु वह ऋण की रकम को खर्च समेत संदत्त करने के लिए विवश किया जाता है। वह मूल ऋण तथा अपने द्वारा की गई खर्च की रकम को भी ख से वसूल कर सकता है।

ख—ख को ग कुछ धन उधार देता है, और ख की प्रार्थना पर क उस रकम को प्रतिभूत करने के लिए ख द्वारा क के ऊपर लिखे गए विनिमय-पत्र को प्रतिगृहीत करता है। विनिमय-पत्र का धारक ग उसके संदाय की मांग क से करता है और क के इन्कार करने पर उसके विरुद्ध उस विनिमय-पत्र पर वाद लाता है। क प्रतिरक्षा करने के लिए युक्तियुक्त आधार न रखते हुए वाद में प्रतिरक्षा करता है, और उसे उस विनिमय-पत्र की रकम और खर्चा देना पड़ता है। वह विनिमय-पत्र की रकम ख से वसूल कर सकता है, किन्तु खर्चे के लिए दी गई राशि वसूल नहीं कर सकता क्योंकि उस अनुयोग में प्रतिरक्षा करने के लिए कोई वास्तविक आधार नहीं था।

ग—ग द्वारा ख को प्रदाय किये जाने वाले, चावल के लिए, क 2,000 रुपए तक का संदाय प्रत्याभूत करता है। ख को ग 2,000 रुपए से कम की रकम का चावल प्रदाय करता है, किन्तु प्रदाय किए गए चावल के लिए, क से 2,000 रुपए की राशि का संदाय अभिप्राप्त कर लेता है। क वास्तव में प्रदाय किए हुए चावल की कीमत से अधिक ख से वसूल नहीं कर सकता।

इन दृष्टान्तों से यही बात सिद्ध होती है कि प्रतिभू मूलऋणी से उसी रकम की क्षतिपूर्ति करा सकता है जो कि उसने अपनी प्रत्याभूति की संविदा के अधीन अधिकारपूर्वक संदत्त की हो या जिसे संदत्त करने के लिए वह अधिकारपूर्वक विवश किया गया हो, किन्तु जो राशि उसने अनधिकारपूर्वक संदत्त की हो उसकी क्षतिपूर्ति वह मूल ऋणी से नहीं करवा सकता। खर्चे की राशि का संदाय कब अधिकारपूर्वक और कब अनधिकारपूर्वक माना जाए, इसी अन्तर को क्रमशः दृष्टान्त (क) और (ख) में दर्शाया गया है। दृष्टान्त (ग) में, मूल प्रत्याभूत राशि के कुछ अंश का संदाय अनधिकृत है और इसे प्रतिभू, मूल ऋणी से वसूल करने का हकदार नहीं है। संदत्त की हुई, राशि खर्चे की हो या संदत्त की हुई राशि, मूल राशि या उसका कोई अंश हो, प्रतिभू द्वारा अनधिकारपूर्वक संदत्त की हुई किसी भी राशि के लिए मूलऋणी दायी नहीं है।

यदि माना जाए कि प्रतिभू ने लेनदार को सद्भावपूर्वक ब्याज का संदाय करते रहकर अपने दायित्व को जीवित रखा हो और इस दौरान में मूलऋणी के प्रति लेनदार का दावा परिसीमा विधि द्वारा वारित हो चुका हो और तत्पश्चात् लेनदार ने प्रतिभू के विरुद्ध अपना वाद डिक्री कराकर प्रतिभू से ऋण की रकम वसूल कर ली हो, तो प्रतिभू द्वारा डिक्री की सन्तुष्टि में किया गया संदाय अधिकारपूर्वक किया हुआ संदाय माना जाएगा और इस नियम के अन्तर्गत प्रतिभू उस रकम का मूल ऋणी से प्रति संदाय करा सकता है।[1]

मूल ऋणी द्वारा प्रतिभू की क्षतिपूर्ति का वचन विवक्षित हो अथवा अभिव्यक्त, लेनदार के अधिकारों पर, ऐसे वचन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि प्रतिभू और मूल ऋणी के दायित्व समविस्तीर्ण होते हैं, जब तक कि संविदा में ही अन्यथा उपबन्धित न हो। वैसे, मूल ऋणी और प्रतिभू के बीच इस प्रकार के अभिव्यक्त वचन का उपबन्ध भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 132 में निम्न-प्रकार किया गया है—

"जबकि दो व्यक्ति किसी दायित्व को अपने ऊपर लेने की किसी तृतीय व्यक्ति से संविदा करते हैं कि एक के व्यतिक्रम पर ही दूसरा दायी होगा, जिस संविदा का वह तृतीय व्यक्ति पक्षकार

1 राघवेन्द्र गुरूराव नायक बनाम महीपतकृष्ण, (1925) 86 आई० सी० 883.

नहीं है, तब ऐसे दोनों व्यक्तियों में से हर एक के उस तृतीय व्यक्ति के प्रति प्रथम संविदा के अधीन दायित्व पर उस दूसरी संविदा के अस्तित्व का प्रभाव नहीं पड़ता, यद्यपि उस तृतीय व्यक्ति को उसकी जानकारी रही हो।"

इस विषय में एक दृष्टान्त, इस प्रकार है—

क और ख संयुक्त और पृथक् दायित्व वाला एक वचनपत्र ग के पक्ष में लिखते हैं। क उसे वास्तव में ख के प्रतिभू के रूप में लिखता है और जिस समय वह वचनपत्र लिखा जाता है, ग यह बात जानता है। यह तथ्य कि क ने वह वचनपत्र ख के प्रतिभू के रूप में ग की जानकारी में लिखा था, वचनपत्र के आधार पर क के विरुद्ध ग द्वारा किए गए वाद का कोई उत्तर नहीं है।

यह नियम उस दशा में लागू नहीं होगा जबकि क और ख की संविदा का दायित्व, क और ख की ग से की हुई संयुक्त संविदा के दायित्व से भिन्न हो[1]। साथ ही क को वे सारे अधिकार प्राप्त होंगे जो कि किसी प्रतिभू को लेनदार के विरुद्ध प्राप्त होते हैं।[2]

2. संदाय या पालन पर लेनदार के समान अधिकार :—जहां कोई प्रत्याभूत ऋण शोध्य हो गया हो, या प्रत्याभूत कर्तव्य के पालन में मूल ऋणी से व्यतिक्रम हो गया हो, वहां वे सब अधिकार, जो लेनदार को मूल ऋणी के विरुद्ध प्राप्त हों, प्रतिभू द्वारा उस सबके, जिसके लिए वह दायी हो, संदाय या पालन पर प्रतिभू में निहित हो जाते हैं।[3]

यह नियम तभी लागू होता है जबकि मूल ऋणी की ओर से उसके प्रतिभू ने लेनदार के प्रति दायित्व का पालन कर दिया हो या संदाय कर दिया हो, और पालन या संदाय करने के पश्चात् जो अधिकार लेनदार को मूल ऋणी के विरुद्ध उपलब्ध हो सकते थे वे सब प्रतिभू में निहित हो जाते हैं और वह उन सब कार्यवाहियों या अनुयोगों के करने में सक्षम हो जाता है जो कि लेनदार मूल ऋणी के विरुद्ध कर सकता है।[4] लेनदार की ऐसी तुष्टि के पश्चात्, जो कि प्रतिभू ने की हो, प्रतिभू, मूल ऋणी के प्रति लेनदार की स्थिति में आ जाता है।

सह-प्रतिभुओं के परस्पर दो अधिकार

प्रतिभू के अपने सह-प्रतिभुओं के प्रति अधिकार को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है—1. जब दायित्व या ऋण एक अथवा समान हो, 2. जब ऋण की राशि भिन्न-भिन्न हो।

1. जब दायित्व या ऋण एक अथवा समान हो:—जहां कि दो या अधिक व्यक्ति उसी ऋण या कर्तव्य के लिए, या तो संयुक्ततः या पृथकतः और चाहे एक ही चाहे विभिन्न संविदाओं के अधीन, और चाहे एक दूसरे के ज्ञान में चाहे ज्ञान के विना, सह-प्रतिभू हों, वहीं उन सह-प्रतिभुओं में से हर एक, तत्प्रतिकूल संविदा के अभाव में वहां तक, जहां तक उनके बीच का सम्बन्ध है, सम्पूर्ण ऋण का या उसके उस भाग का, जो मूल ऋणी द्वारा असंदत्त रह गया हो, समान अंश समानतः देने के दायी हैं।[5]

इस नियम को निम्न दृष्टान्तों के आधार पर समझा जा सकता है—

क—ङ को उधार दिए गए 3,000 रुपए के लिए घ के क, ख और ग प्रतिभू हैं। ङ संदाय में व्यतिक्रम करता है। क, ख और ग, जहां तक उनके बीच का सम्बन्ध है, हर एक 1,000 रुपए संदत्त करने का दायी है।

---

[1] पोगसे बनाम बैंक ऑफ बंगाल, आई० एल० आर० (1877) 3 कलकत्ता 174.

[2] देखिए पंचानन घोष बनाम डाली, (1875) 15 बाम्बे ला रिपोर्टर 535.

[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 140.

[4] जे० हरीगोपाल बनाम स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ए० आई० आर० 1970 मद्रास 211.

[5] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 146.

ख—ङ को उधार दिए गए 1,000 रुपयों के लिए घ के क, ख और ग प्रतिभू हैं और क, ख और ग के बीच यह संविदा है कि क एक चौथाई तक के लिए, ख एक चौथाई तक के लिए और ग आधे तक के लिए उत्तरदायी है। ङ संदाय में व्यतिक्रम करता है। जहां तक कि प्रतिभुओं के बीच का सम्बन्ध है, क 250 रुपए, ख 250 रुपए और ग 500 रुपए संदत्त करने का दायी है।

दृष्टान्त (क) उस दशा को दर्शित करता है जबकि कोई तत्प्रतिकूल संविदा न हो और ऐसी दशा में प्रत्येक प्रतिभू का दायित्व समान न होकर, संविदा के अधीन भिन्न-भिन्न प्रकार से परिनिश्चित किया गया हो।

यदि प्रतिभू का भी कोई अन्य व्यक्ति प्रतिभू हो तो वह सह-प्रतिभू न होकर साम्पार्श्विक प्रतिभू होगा और उसका दायित्व समान अभिदाय के लिए न होकर, मूल ऋणी के दायित्व की समविस्तीर्णता में, सम्पूर्ण अभिदाय के लिए होगा।[1] इसी प्रकार यदि कोई अन्य व्यक्ति मूल ऋणी और प्रतिभू दोनों के ही दायित्व को अकेला प्रत्याभूत करे तो वह भी सह-प्रतिभू न होकर, मूलऋणी के ही समान दायी होगा।[2]

2. जब ऋण की राशि भिन्न-भिन्न हो :—सह-प्रतिभू, जो विभिन्न राशियों के लिए आबद्ध हैं, अपनी-अपनी बाध्यताओं की परिसीमाओं तक समानतः संदाय करने के दायी हैं।[3]

इस नियम को निम्न दृष्टान्तों की सहायता से समझा जा सकता है—

क—घ के प्रतिभुओं के रूप में, क, ख और ग इस शर्त पर आश्रित कि ङ को घ सम्यक् रूप से लेखा देगा, पृथक्-पृथक् तीन बन्ध पत्र लिख देते हैं, जिनमें से हर एक भिन्न शास्ति वाला है अर्थात् क का 10,000 रुपए की, ख का 20,000 रुपए की, ग का 40,000 रुपए की शास्ति वाला है। ग 30,000 रुपए का लेखा नहीं देता है। क, ख और ग, हर एक, 10,000 रुपए संदाय करने के दायी हैं।

ख—घ के प्रतिभुओं की हैसियत में क, ख और ग, इस शर्त पर आश्रित कि ङ को घ सम्यक् रूप से लेखा देगा, पृथक्-पृथक् तीन बन्ध पत्र लिख देते हैं, जिनमें से हर एक भिन्न-भिन्न शास्ति वाला है, अर्थात् क का 10,000 रुपए की, ख का 20,000 रुपए की और ग का 40,000 रुपए की शास्ति वाला है। घ 40,000 रुपए का लेखा नहीं देता। क 10,000 का और ख और ग हर एक 15,000 रुपए का संदाय करने के दायी हैं।

ग—घ के प्रतिभुओं के रूप में क, ख और ग इस शर्त पर आश्रित कि ङ को घ सम्यक् रूप से लेखा देगा, पृथ् क-पृथ्क तीन बन्ध पत्र लिख देते हैं जिनमें से हर एक-भिन्न शास्ति वाला है, अर्थात् क का 10,000 रुपए की, ख 20,000 रुपए की और ग का 40,000 रुपए की शास्ति वाला है। घ 70,000 रुपए का लेखा नहीं देता है। क, ख और ग में हर एक को अपने बन्ध पत्र की पूरी शास्ति देनी होगी।

उपरोक्त तीनों दृष्टान्तों से नियम भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है। नियम में विशेष बात यह है कि प्रतिभुओं की शास्तियां भिन्न-भिन्न होने पर भी, वे अनुपाती अभिदाय के लिए नहीं वरन्

1 री डेन्टन्स् एस्टेट, एल० आर० (1904) 2 चान्सरी 178 सी० ए०.

2 क्रेथोर्न बनाम स्विन बर्न, (1807) 14 वैसी 160.

3 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 147.

समान अभिदाय के लिए दायी हैं किन्तु शर्त यह है कि अभिदाय की राशि, शासित की राशि से अधिक नहीं हो सकती ।

लेनदार के विरुद्ध प्रतिभू के अधिकार

लेनदार के विरुद्ध प्रतिभू को, कुछ दशाओं में, अपने प्रतिभूत्व से, पूर्णत: अथवा किसी सीमा तक, उन्मोचित होने का अधिकार है । अत: वे सब अवस्थायें जिनमें प्रतिभू अपने दायित्व से पूर्णत: अथवा भागत: उन्मोचित हो सकता हो, प्रतिभू के उन अधिकारों को अन्तर्वलित करती हैं, जो उसे लेनदार के विरुद्ध उपलब्ध हैं । इन अवस्थाओं का वर्णन इस अध्याय के पूर्ववर्ती पृथक् शीर्षकों में किया जा चुका है ।

प्रत्याभूति की अविधिमान्यता की तीन अवस्थायें

भारतीय संविदा अधिनियम के अनुसार, निम्नलिखित **तीन अवस्थाओं में** प्रत्याभूति अविधिमान्य होती है—

1. जब प्रत्याभूति दुर्व्यपदेशन से अभिप्राप्त हो :—कोई भी प्रत्याभूति जो लेनदार द्वारा या उसके ज्ञान और अनुमति से संव्यवहार के तात्विक भाग के बारे में दुर्व्यपदेशन से अभिप्राप्त की गई है, अविधिमान्य है ।[1]

यह नियम तभी आकृष्ट होता है जबकि दुर्व्यपदेशन संव्यवहार के तात्विक भाग के बारे में हो ।

2. जब प्रत्याभूति छिपाव द्वारा अभिप्राप्त हो :—कोई भी प्रत्याभूति जो लेनदार ने तात्विक परिस्थिति के बारे में मौन धारण से अभिप्राप्त की है, अविधिमान्य है ।[2]

निम्न दो दृष्टान्त इस नियम को समझने में सहायक होंगे—

क—**क** अपने लिए रुपए का संग्रहण करने के लिए **ख** को लिपिक के तौर पर रखता है । ख अपनी कुछ प्राप्तियों का सम्यक् लेखा देने में असफल रहता है और परिणामस्वरूप **क** उससे यह अपेक्षा करता है कि वह अपने द्वारा सम्यक् रूप से लेखा दिये जाने के लिए प्रतिभूति दे । ख द्वारा सम्यक् रूप से लेखा दिए जाने की प्रत्याभूति ग दे देता है । **ग** को **ख** के पिछले आचरण से क अवगत नहीं कराता है । तत्पश्चात् ख लेखा देने में व्यतिक्रम करता है । प्रत्याभूति अविधिमान्य है ।

ख—**ग** द्वारा ख को 2,000 टन परिमाण तक प्रदाय किए जाने वाले लोहे के लिए संदाय की प्रत्याभूति **ग** को **क** देता है । ख और ग ने प्राइवेट तौर पर करार कर लिया है कि **ख** बाजार-दाम से पांच रुपया प्रति टन अधिक देगा जो अधिक रकम एक पुराने ऋण के समापन में उपयोजित की जाएगी । यह करार क से छिपाया गया है । **क** प्रतिभू के तौर पर दायी नहीं है ।

मौन धारण को इस नियम में एक सक्रिय अवस्था माना गया है । अत: यह निष्क्रियतावश किसी तथ्य को अप्रकट रखने के भाव से भिन्न है ।[3] स्वल्प भाषण भी जो कि नहीं करना चाहिए था अथवा स्वल्प मौन भी जो नहीं रखना चाहिए था, दोनों ही अवस्थायें प्रत्याभूति की संविदा की अविधिमान्यता के लिए पर्याप्त हैं ।[4] आशय यह है कि प्रतिभूतिगृहीता का यह दायित्व है कि प्रतिभू को

---

1 भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 142.

2. भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 143.

3 एन० पी० बैंक बनाम ग्लैमस्क, एल० आर० (1913) 3 के० बी० 335.

4 डेवीन्स बनाम लण्डन एण्ड मैराइन इन्श्योरेन्स कम्पनी, एल० आर० (1878) 8 चान्सरी 469.

उन सब तथ्यों से अवगत कर दे जो कि उसके (प्रतिभू के) दायित्व पर प्रभाव डालने वाले हों। प्रतिभू मल ऋणी के साथ जो संविदा कर रहा है, उसकी प्रत्येक और पूर्ण तात्विक बातों को प्रतिभू पर प्रकट कर देना अनिवार्य है।

3. सह-प्रतिभूति के सम्मिलित न होने पर अविधिमान्यता :—जहां कि कोई व्यक्ति इस संविदा पर प्रत्याभूति देता है कि लेनदार उस पर तब तक कार्य नहीं करेगा जब तक कि कोई अन्य व्यक्ति सह-प्रतिभू के रूप में उसमें सम्मिलित नहीं हो जाता, वहां यदि वह अन्य व्यक्ति सम्मिलित नहीं होता तो वह प्रत्याभूति विधिमान्य नहीं है।[1]

जब कोई व्यक्ति इसी विश्वास और समझ के आधार पर कोई दायित्व उठाता है कि एक अन्य व्यक्ति भी इसी दायित्व की अधीनता स्वीकार करेगा, तो वह साम्या के अन्तर्गत अपने अधिकार के आधार पर कि उस अन्य सह-प्रतिभू ने प्रत्याभूति की लिखत निष्पादित नहीं की है, स्वयं भी उन्मोचित होने का हकदार है।[2]

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 144.
[2] ईवान्स बनाम ब्रेमब्रिज, 25 लॉ जर्नल (इंग्लेण्ड) चान्सरी 334.

अध्याय 11

उपनिधान के विषय में

उपनिधान का स्वरूप

उपनिधान एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को किसी प्रयोजन के लिए इस संविदा पर माल का परिदान करना है कि जब वह प्रयोजन पूरा हो जाए तब वह लौटा दिया जाएगा या उसे परिदान करने वाले व्यक्ति के निर्देशों के अनुसार अन्यथा व्ययनित कर दिया जाएगा। माल का परिदान करने वाला व्यक्ति **उपनिधाता** कहलाता है। वह व्यक्ति, जिसको वह परिदत्त किया जाता है **उपनिहिती** कहलाता है।[1]

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 148 में की गई इस परिभाषा के साथ, स्पष्टीकरण के रूप में यह भी कहा गया है कि यदि वह व्यक्ति, जो किसी अन्य के माल पर पहले से ही कब्जा रखता है, उसका धारण उपनिहिती के रूप में करने की संविदा करता है तो वह तद्द्वारा उपनिहिती हो जाता है और माल का स्वामी उसका उपनिधाता हो जाता है, यद्यपि वह माल उपनिधान के तौर पर परिदत्त न किया गया हो।

उपनिधान एक वस्तु प्रधान और शर्त प्रधान संविदा है। किसी वस्तु के सशर्त परिदान की संविदा को उपनिधान कहा जा सकता है। उपनिधान की विषयवस्तु किसी न किसी प्रकार का माल होता है। अतः यह स्पष्ट है कि उपनिधान स्थावर सम्पत्ति के बारे में नहीं हो सकता। एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को कोई जंगम वस्तु किसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए परिदान की जानी चाहिए। परिदान करने वाला उपनिधाता और जिसे परिदान किया जाए वह उपनिहिती होता है।

उपनिहिती को उपनिधाता द्वारा किसी माल के परिदान बिना और उपनिधाता द्वारा उसे वापस करने के परिवचन के बिना उपनिधान का गठन नहीं हो सकता।[1] जब कोई चोरी गया हुआ माल पुलिस द्वारा प्रत्युद्धरित करा लिया जाए तो, माल के स्वामी और पुलिस के बीच कोई उपनिधान की संविदा नहीं होती।[2] किन्तु यदि नियत भाड़े पर एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को कोई सवारी, जैसे हाथी, घोड़ा आदि किसी विशेष अवधि के लिए दी जाए तो वह उपनिधान होगा।[3]

पोलॅक और राइट ने **पजेशन इन कामन लॉ**[4] में यह सम्प्रेक्षित किया है, उपनिधान का सम्बन्ध स्वजात (सुइजेनेरिस) है और जब तक उपनिधान की बात से उपनिहिती पर अधिरोपित भार को न्यूनाधिक नहीं करना हो तब तक इसे संविदा विधि में समाविष्ट करना अथवा इसके लिए प्रतिफल को सिद्ध करना आवश्यक नहीं है। **गुजरात राज्य** बनाम **मेमन मुहम्मद**[5] वाले मामले में,

---

1 शंकरलाल बनाम भरालाल, ए० आई० आर० 1951 अजमेर 24.

2 ओमप्रकाश बनाम सैक्रेटरी ऑफ स्टेट, 175 आई० सी० 343.

3 अनामलाई टिम्बर ट्रस्ट बनाम त्रिपुनीथरा देवस्थान, ए० आई० आर० 1954 ट्रावनकोर कोचीन 305.

4 पजेशन इन कामन लॉ, पृ० 163.

5 ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 1885 (1888).

न्या० वी० रामस्वामी ने उपर्युक्त सम्प्रेक्षण का अनुमोदन करते हुए यह कहा है कि उपनिधान का जन्म प्रवर्तनीय संविदा के अभाव में भी हो सकता है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 71 में तो पड़ा माल पाने वाला भी उपनिहिती माना जाता है। इसी प्रकार, स्वामी और सेवक के सम्बन्धों में, सेवक स्वामी की वस्तुओं को उपनिहिती के तौर पर ही धारण करता है जिसके लिए उपनिधान की पृथक् संविदा नहीं होती।

उपनिहित माल के परिदान के विषय में संविदा अधिनियम में यह उपबन्ध है कि उपनिहिती को परिदान ऐसा कुछ करने द्वारा किया जा सकेगा जिसका प्रभाव उस माल को आशयित उपनिहिती के या उसकी ओर से उसे धारण करने के लिए प्राधिकृत किसी व्यक्ति के कब्जे में रख देना हो।[1] अतः माल को उपनिहिती के या उसके द्वारा किसी प्राधिकृत व्यक्ति के कब्जे में दे देने का प्रभाव रखने वाली किसी भी बात से उपनिधान की संविदा का निर्माण हो जाएगा, यह कब्जा चाहे वास्तविक हो चाहे आन्वयिक। रेलवे के क्लोक रूम में, यात्रियों द्वारा अपने माल को रेलवे के कर्मचारियों की अभिरक्षा में दे देना, उपनिधान है। किसी जलपान गृह में, वेटर द्वारा ग्राहक के कोट को अभिरक्षा में ले लेना, उपनिधान है[2]। किसी स्वर्णकार के पास आभूषणों के निर्माण हेतु दिया हुआ स्वर्ण, उपनिधान है परन्तु यदि स्वर्ण का स्वामी अर्द्धनिर्मित आभूषणों के बक्स की चाबी स्वर्णकार के पास न रखकर स्वयं अपने पास रखता है तो वह उपनिधान नहीं है क्योंकि इस प्रकार का परिदान स्वर्ण को स्वर्णकार के कब्जे में देने का प्रभाव नहीं रखता[3]। रेलवे के प्रतीक्षालयों या मालगोदामों में, यात्रियों द्वारा अपनी जोखिम पर माल को रखना या छोड़ देना, उपनिधान नहीं है।[4]

कौन-सा संव्यवहार उपनिधान नहीं है

उपनिधान की विशेषता यह है कि इसमें परिदत्त किए हुए माल का हक या स्वामित्व अन्तरित नहीं होता। यदि स्वामित्व अथवा हक का अन्तरण कर दिया जाए तो, परिदत्त माल को वापस करने की आवश्यक शर्त शेष नहीं रहती और ऐसी दशा में वह संव्यवहार उपनिधान नहीं माना जा सकता। यदि माल का बिना कीमत के स्वामित्व सहित परिदान कर दिया जाए तो वह उपनिधान न होकर दान कहा जाएगा। यदि वस्तु के बदले में किसी वस्तु का परिदान किया जाए तो वह विनिमय होगा न कि उपनिधान। जहां कीमत लेकर माल का परिदान किया जाए वह उपनिधान न होकर, माल का विक्रय कहा जाएगा। किन्तु किसी मित्र या सम्बन्धी को केवल सामयिक उपयोग के लिए कोई माल इस शर्त पर दिया जाए कि उपयोग के पश्चात् उस माल को लौटा दिया जाएगा तो वह माल का उपनिधान है।

उपनिधान के आवश्यक तत्व

उपनिधान के संव्यवहार में निम्नलिखित आवश्यक तत्व होते हैं—

1. इसमें माल का परिदान होना चाहिए।
2. माल का परिदान इस ढंग से होना चाहिए कि वह उपनिहिती के कब्जे में आ जाए।
3. माल का परिदान संविदा के अधीन होना चाहिए।

---

1 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 149.

2 उलजेम बनाम निकोल्स, एल० आर० (1894) 1 क्यू० बी० 92.

3 कालिया पेरुमल बनाम विशालाक्षी, ए० आई० आर० 1938 मद्रास 32.

4 देखिए हरिदायतराम बनाम बी० एंड एन० डब्ल्यू० रेलवे, 117 आई० सी० 311.

4. माल का परिदान किसी प्रयोजन से होना चाहिए।

5. माल का परिदान इस शर्त पर किया जाना चाहिए कि जब उस माल के प्रतिनिर्दिष्ट प्रयोजन पूरा हो जाए तो माल परिदान करने वाले को लौटा दिया जाएगा या अन्य किसी प्रकार व्ययनित किया जाएगा।

6. माल को लौटाने या अन्य प्रकार से व्ययनित करने का कार्य उपनिधाता के निदेशानुसार किया जाना चाहिए।

संविदा के अधीन किए गए उपनिधान की कोटियां

कॉग बनाम बर्नार्ड[1] वाले मामले में, उपनिधान के संव्यवहार की छह **कोटियां** बताई गई हैं। उन्हीं को सुविधानुसार उपान्तरित करके नीचे दर्शाया गया है —

1. **निक्षेप**—यह साधारण प्रकार का उपनिधान है जिसका प्रयोजन माल को सुरक्षित रखने का होता है, जैसे कि बैंक के लॉकर में किसी माल को रख देना या किसी होटल में किराये से कक्ष लेकर सामान रख दिया जाना,

2. **आनुग्रहिक परिदान**—किसी मित्र या सम्बन्धी को किसी विशेष अवसर पर सीमित समय के उपयोग के लिए किया गया किसी माल का परिदान,

3. **भाड़े पर परिदान**—यह आनुग्रहिक नहीं होता वरन् जितने समय तक कोई माल उपयोग किया जाए उसके लिए भाड़े का ठहराव होता है।

4. **पणयम**—इसे गिरवी कहा जाता है और इसमें माल का परिदान किसी ऋण या किसी वचन के पालन के लिए प्रत्याभूति के तौर पर किया जाता है,

5. **प्रसंस्करण**—जब मूल्य देकर या बिना मूल्य किए, जैसी भी संविदा हो, परिदत्त माल को उसमें कोई प्रसंस्करण करने के लिए दिया जाए, जैसे दर्जी के यहां कोट बनवाने के लिए वस्त्र दिया जाए या जोहरी को रत्नों को तराशने के लिए दिया जाए या पुस्तकों को जिल्द बनने के लिए दिया जाए, आदि ऐसे अनेकों उदाहरण हैं,

6. **परिवहन**—जब माल को निश्चित मूल्य देकर या बिना मूल्य के एक स्थान से अन्य स्थान पर वहन किये जाने के लिए किसी वाहक को परिदत्त किया जाए जैसे, डाक या रेल द्वारा या ट्रकों द्वारा माल परिवहन करने वालों को माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाए जाने के लिए परिदत्त किया जाए।

ऊपर दर्शाये गए मामले सभी संविदा के अधीन किए गए उपनिधान हैं। पड़े माल को अपनी अभिरक्षा में ले लेने की, अथवा किसी अतिथि द्वारा अपना माल गृहस्वामी या उसके सेवकों की अभिरक्षा में रख देने जैसी स्थितियों के अतिरिक्त, अन्य उपनिधान, सामान्यत: किसी संविदा के अधीन ही किए जाते हैं। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के **पुरुषोत्तमदास बनाम भारत संघ**[2] वाले मामले में न्यायमूर्ति राजेश्वरी प्रसाद के अनुसार इस विषय में अब कोई विवाद नहीं है कि लोक-वाहक के रूप में रेलवे उपनिहिती की स्थिति में होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस दृष्टिकोण में अब कुछ परिवर्तन होने लगा है। **बन्दी चलपतिराव बनाम आफिशल एसाइनी**[3] वाले

1 1 एस० एल० सी० 191.

2 ए० आई० आर० 1967 इलाहाबाद 549 (556).

3 ए० आई० आर० 1978 मद्रास 112 (117).

मामले में, न्यायमूर्ति राम प्रसाद राव ने मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में यह भी माना है कि माल वहन करने की संविदा में बीमा की संविदा जैसे तत्व की सर्जना रहती है क्योंकि ऐसा कहना युक्तियुक्त होगा कि वाहक बीमाकर्ता के समतुल्य होकर माल वहन के कार्य से समुद्‌भूत सभी जोखिमों के साथ उसे वहन करने का वचनबन्ध करता है। जो हो, रेलवे का दायित्व रेलवे अधिनियम 1890 के उपबन्धों के अध्यधीन होता है।[1]

उपनिधान की संविदा की शून्यकरणीयता और पर्यवसान

जिस उपनिधान का आधार संविदात्मक है, वह शून्यकरणीय भी है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 153 के अन्तर्गत उपनिधान की संविदा उपनिधाता के विकल्प पर शून्यकरणीय है, यदि उपनिहिती, उपनिहित माल के सम्बन्ध में कोई ऐसा कार्य करे जो उपनिधान की शर्तों से असंगत हो। दृष्टान्त के लिए, ख को एक घोड़ा उसकी अपनी सवारी के लिए क भाड़े पर देता है किन्तु ख उस घोड़े को अपनी गाड़ी में चलाता है। यह क के विकल्प पर उपनिधान का पर्यवसान है। यह सिद्धान्त सामान्यतः सभी प्रकार के उपनिधानों पर लागू होता है, चाहे उपनिधान आनुग्रहिक हो चाहे अनानुग्रहिक। किन्तु आनुग्रहिकतः किया हुआ उपनिधान भी परिदत्त वस्तु के स्वामित्व का अन्तरण नहीं करता, अतः आनुग्रहिकतः किया हुआ उपनिधान भी सदैव के लिए नहीं हो सकता। आनुग्रहिक उपनिधान के विषय में भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 162 में यह उपबन्ध है कि ऐसा उपनिधान उपनिधाता या उपनिहिती की मृत्यु से पर्यवसित हो जाता है।

उपनिधाता के कर्त्तव्य और दायित्व

संविदा अधिनियम में, उपनिधाता के कर्त्तव्य और दायित्व को चार प्रकार से दर्शाया गया है।

1. माल की त्रुटियों को प्रकट करने का कर्त्तव्य—उपनिधाता, उपनिहित माल की उन त्रुटियों को उपनिहिती से प्रकट करने के लिए आबद्ध है जिनकी जानकारी उपनिधाता को हो और जो उसके उपयोग में तत्वतः विघ्न डालती हों या उपनिहिती को असाधारण जोखिम में डालती हों और यदि वह ऐसा प्रकटीकरण नहीं करता तो वह उपनिहिती को ऐसी त्रुटियों से प्रत्यक्षतः उद्‌भूत नुकसान के लिए उत्तरदायी है। यदि माल भाड़े पर उपनिहित किया गया है तो उपनिधाता ऐसे नुकसान के लिए उत्तरदायी है, चाहे उपनिहित माल की ऐसी त्रुटियों के अस्तित्व से वह परिचित था या नहीं।[2]

इस नियम में आनुग्रहिक और भाड़े की शर्त पर किए हुए दोनों प्रकार के उपनिधानों के विषय में उपबन्ध किया गया है और दोनों अवस्थाओं को स्पष्ट करने के लिए निम्न दो दृष्टान्त दिये गए हैं—

> क—क एक घोड़ा ख को उधार देता है जिसका दुष्ट होना वह जानता है। वह यह तथ्य प्रकट नहीं करता कि घोड़ा दुष्ट है। घोड़ा भाग खड़ा होता है, ख को गिरा देता है और ख क्षत हो जाता है। हुए नुकसान के लिए ख के प्रति क उत्तरदायी है।
>
> ख—ख की एक गाड़ी क भाड़े पर लेता है। गाड़ी अक्षेमकर है, यद्यपि ख को यह मालूम नहीं है और क क्षत हो जाता है। क्षति के लिए क के प्रति ख उत्तरदायी है।

---

[1] भारत संघ बनाम लक्ष्मीरतन काटन मिल, ए० आई० आर० 1971 इलाहाबाद 531.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 150.

दृष्टान्त (क) में घोड़ा उधार देने के उद्देश्य में ही यह दायित्व निहित है कि जिन ऐसे दोषों को उधार देने वाला जानता है जो उधार लेने वाले के लिए अक्षेमकर या हानिकारक हो, वह उन्हें उधार लेने वाले पर आवश्यक रूप से प्रकट कर दे।[1] किन्तु आनुग्रहिक उधार वाले मामले में, यदि उधार देने वाला, उधार दी गई वस्तु के किन्हीं दोषों से अज्ञात हो तो वह उन दोषों से व्युत्पन्न किसी हानि के लिए दायी नहीं है।[2] जब उपनिधान भाड़े पर किया गया हो तो, उपनिधाता, उपनिहित माल के सभी प्रकार के दोषों से व्युत्पन्न हानि के लिए दायी है, चाहे वे दोष उसके ज्ञान में थे अथवा नहीं थे।

2. **आवश्यक व्ययों के संदाय का दायित्व**—जहां कि उपनिधान की शर्तों के अनुसार, उपनिहिती द्वारा उपनिधाता के लिए माल रखा जाना या प्रवहण किया जाना हो, अथवा उस पर काम करवाया जाना हो और उपनिहिती को कोई पारिश्रमिक नहीं मिलना हो, वहां उपनिधाता उपनिहिती को, उपनिहिती द्वारा उपनिधान के प्रयोजन के लिए उपगत आवश्यक व्ययों का प्रतिसंदाय करेगा।[3]

3. **समय से पूर्व माल की वापसी के कारण उपनिहिती की हानि के लिए दायित्व**—किसी चीज को उपयोगार्थ उधार पर देने वाला, यदि वह उधार आनुग्रहिक रूप से दिया गया हो, किसी भी समय उसकी वापसी अपेक्षित कर सकेगा, यद्यपि उसे एक विनिर्दिष्ट समय या प्रयोजन के लिए उधार दिया हो। किन्तु यदि उधार लेने वाले ने विनिर्दिष्ट समय या प्रयोजन के लिए दिए गए उधार के भरोसे ऐसे प्रकार से कार्य किया है कि उधार दी गई चीज की ठहराये गए समय से पूर्व वापसी से उसे उस फायदे से अधिक हानि होगी जो उसे उधार से वास्तव में व्युत्पन्न हुआ तो, यदि उधारदाता उधार लेने वाले को उसे वापस करने के लिए विवश करे तो उसको उधार लेने वाले की उतनी मात्रा में क्षतिपूर्ति करनी होगी जितनी वैसे हुई हानि वैसे व्युत्पन्न फायदे से अधिक हो।[4]

4. **बिना हक उपनिधान करने या उपनिहित माल की वापसी पर दायित्व**—उपनिधाता, उपनिहिती की ऐसी किसी भी हानि के लिए उत्तरदायी होगा जो उपनिहिती इस कारण उठाये कि उपनिधाता उपनिधान करने या माल को वापस लेने या उसके सम्बन्ध में निदेश देने का हकदार नहीं था।[5]

उपनिहिती के दायित्व

भारतीय संविदा अधिनियम के अनुसार, उपनिहिती के उपनिहित माल के प्रति दायित्व को निम्नलिखित **पांच कोटियों में** रखा जा सकता है :—

1. माल के प्रति सतर्कता का दायित्व

(i) **सामान्य उपबन्ध** :—उपनिधान की सभी दशाओं में उपनिहिती आबद्ध है कि वह अपने को उपनिहित माल के प्रति वैसी ही सतर्कता बरते जैसी मामूली प्रज्ञा वाला मनुष्य वैसी

---

[1] ब्लैकमोर बनाम ब्रिस्टल एंड एक्स्टर रेलवे, 27 लॉ जर्नल (इंग्लैंड) क्यू० बी० 167.

[2] मैकार्थी बनाम यंग, (1861) हर्लस्टोन एंड नार्मन रिपोर्ट्स 329.

[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 158.

[4] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 159.

[5] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 164.

ही परिस्थितियों में अपने ऐसे माल के प्रति बरतता जो उसी परिमाण, क्वालिटी और मूल्य का हो जैसा उपनिहित माल है।[1]

उपनिहिती, विशेष संविदा के अभाव में, उपनिहित चीज की हानि, नाश या क्षय के लिए उत्तरदायी नहीं है, यदि उसने उपरोक्त नियम में वर्णित परिमाण में उसकी देखरेख की हो।[2]

उपरोक्त दोनों नियमों का सम्मिलित परिणाम यह है कि यदि उपनिहिती ने उपनिहित माल के प्रति वैसी सतर्कता न बरती हो जैसी कि मामूली प्रज्ञा वाला व्यक्ति उन्हीं परिस्थितियों में अपने स्वयं के माल के प्रति बरतता, और इस सम्बन्ध में कोई अन्य प्रतिकूल संविदा न हो, तो उपनिहिती, उपनिहित चीज की हानि, नाश या क्षय के लिए उत्तरदायी है। यह नियम उपनिधान के आनुग्रहिक होने की दशा में भी लागू होता है[3]। माल की सुरक्षा के लिए बरती जाने वाली सतर्कता एक ऐसा विधिक दायित्व है जैसाकि—

1. उपनिहिती की स्थिति वाले अन्य किसी भी सामान्य मनुष्य से अपेक्षित किया जा सके,

2. उपनिधान के विशेष संव्यवहार या उपनिहित माल की प्रकृति के अनुकूल हो,

3. जहां माल उपनिहित किया गया हो, उस स्थान विशेष की परिस्थितियों में युक्तियुक्त हो, तथा

4. इस सतर्कता में न केवल माल की सुरक्षा का दायित्व सम्मिलित है वरन् माल को प्रत्येक सामान्य जोखिम से बचाये रखना भी सम्मिलित है।[4]

उपनिहिती की साधारण सतर्कता में, सामान्यतः वे सब उपाय सम्मिलित हैं जो कि किसी भी सामान्य प्रज्ञा वाले व्यक्ति के लिए, माल को, आग, पानी, जलवायु आदि के कारण अथवा माल में चोरी आदि की सम्भावनाओं के कारण या अन्य कीटाणु अथवा पशुओं आदि के द्वारा पहुंचाई जाने वाली क्षति के निवारणार्थ करना आवश्यक है। यदि उपनिहिती ने माल की सुरक्षा के लिए ऐसे उपाय नहीं किये हैं तो वह उपेक्षा का दोषी है, और उपेक्षा का अर्थ है ऐसा कोई कार्य करना जो सामान्य प्रज्ञा वाले व्यक्ति को वैसी परिस्थितियों में नहीं करना था या ऐसा कार्य न करना जो वैसी परिस्थितियों में सामान्य प्रज्ञा वाले व्यक्ति को करना था।[5]

(ii) होटल वालों के दायित्वः—अपने मेहमानों के प्रति होटल चलाने वालों के उत्तरदायित्व को विनियमित करने के लिए किसी प्रकार का विशेष अधिनियम नहीं है और उनके दायित्व या तो परस्पर की संविदा के अनुसार तथा ऐसी संविदा के अभाव में, भारतीय संविदा अधिनियम उपबन्धों के अधीन नहीं माने जायेंगे। एक मामले में, होटल में प्रवास कर रहे एक मेहमान का माल उसके कक्ष में से उस समय चोरी हो गया जिस समय वह होटल के भोजनालय में भोजन कर रहा था। होटल के मालिक को यह विदित था कि मेहमान जिस कक्ष में ठहरा हुआ था वह सुरक्षित स्थिति में नहीं था और होटल वाले ने उसकी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं किया था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि होटल वाला उत्तरदायी था।[6]

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 151.
[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 152.
[3] विल्सन बनाम ब्रेट, (1843) 11 मीसन एण्ड वेल्स बीज रिपोर्ट्स 113.
[4] ब्रावेण्ट बनाम किंग, एल० आर० (1895) ए० सी० 632.
[5] ब्रिजज बनाम एन० एल० रेलवे, एल० आर० 7 एच० एल० 213.
[6] जैन एंड सन बनाम कैमरोन, आई० एल० आर० 44 इलाहाबाद 735.

होटल वालों द्वारा मेहमानों के सामान की सुरक्षा के लिए क्या सतर्कता बरती और क्या नहीं बरती गई, यह एक तथ्यगत प्रश्न है और प्रत्येक मामले की विशेष परिस्थितियों के अनुसार अवधारित किया जाएगा। यदि कोई तत्प्रतिकूल संविदा न हो तो, होटल में ठहरने वाले मेहमान का होटल के फर्नीचर आदि की सुरक्षा के लिए वही दायित्व है जो कि एक सामान्य प्रज्ञा वाले व्यक्ति का समान परिस्थिति में हुआ करता है।

(iii) सामान्य वाहक और उनके दायित्व:—सामान्य वाहकों के लिए भारत में, वे ही नियम लागू होते हैं जो इंग्लैण्ड के कॉमन लॉ के अन्तर्गत लागू किये जाते हैं, और इन नियमों को वाहक अधिनियम, 1865 में भी मान्यता दी गई है।

वाहक शब्द का अर्थ उन व्यक्तियों अथवा कम्पनियों से है जो भाड़े पर किसी व्यक्ति के माल को एक स्थान से अन्य स्थान को परिवहन करने का दायित्व लेते हैं। वाहकों के दायित्व, पारिश्रमिक पर लोकनियोजन के अन्तर्गत कार्य करने वाले व्यक्तियों के समान होते है[1]। **सामान्य वाहकों के दो सुभिन्न प्रकार के दायित्व होते हैं**—एक ऐसी क्षति के लिए जिसके लिए कि सामान्य वाहक उसी प्रकार आवद्ध है जैसेकि बीमा करने वाले तथा द्वितीय ऐसा दायित्व जो कि माल को सुरक्षित पहुंचाने का होता है[2]। वायु अथवा जल मार्ग से माल को वहन करने वाले वाहकों के दायित्व, इंग्लैण्ड के कॉमन लॉ के अनुसार ही होते हैं, और भारतीय संविदा अधिनियम का उद्देश्य उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन करना नहीं है। सामान्य वाहकों के दायित्व के सम्बन्ध में, वाहक अधिनियम, 1865 के द्वारा इंग्लैण्ड के कॉमन लॉ के अन्तर्गत आने वाले दायित्वों को ही किसी सीमा तक उपान्तरित कर दिया गया है, किन्तु समुद्र मार्ग से माल को प्रवहण करने वाले वाहक, 1865 के वाहक अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते और उन पर इंग्लैण्ड के कॉमन लॉ के नियम ही लागू होते हैं। इसी प्रकार वायुमार्ग से माल ले जाने वाले वाहकों पर भी, वाहक अधिनियम, 1865 या भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 या इण्डियन कैरिज बाई एयर ऐक्ट, 1934 में के कोई भी उपबन्ध लागू नहीं होते वरन् इंग्लैण्ड के कॉमन लॉ के नियम ही लागू होते हैं। किन्तु भारतीय नदियों में नौ परिवहन करने वाले वाहक, सामान्य वाहक माने जाते हैं और जब तक वाहक यह परिसिद्ध न कर दे कि उसकी ओर से कोई उपेक्षा नहीं हुई थी, तब तक वाहक, चाहे उसकी राष्ट्रीयता कुछ भी हो, माल में हुई क्षति या हानि के लिए उत्तरदायी है।[3]

रेलवे का दायित्व, भारतीय रेल अधिनियम, 1890 की धारा 72 के अनुसार परिनिश्चित कर दिया गया है, जिसके उपबन्ध, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 151, 152 व 161 के उपबन्धों के समान है। इस प्रकार रेलवे के दायित्व, एक सामान्य उपनिहिती के दायित्वों के समान ही हैं क्योंकि रेलवे को सामान्य वाहक की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं रखा गया है। रेलवे का जो दायित्व माल के सम्बन्ध में, एक बीमा कम्पनी के समान है वह केवल उस संविदा की एक प्रसंगति मात्र है जो कि माल के स्वामी और रेलवे के बीच माल वहन करने के लिए की जाती है[1]।

रेलवे द्वारा अपने दायित्व को कुछ अंशों तक न्यून करने के दृष्टिकोण से एक जोखिम पत्र (रिस्कनोट) जारी किया जाता है जो माल के स्वामी द्वारा हस्ताक्षरित होता है।

---

1 इरावदी फ्लोटिला **बनाम** बगवानदास, ग्राई० एल० ग्रार० (1891) 18 कलकत्ता 620.

2 ब्रिटिश एंड एफएम इंश्योरेन्स **बनाम** ग्राई० जी० एन० रेलवे, ग्राई० एल० ग्रार० 38 कलकत्ता 28.

3 मलाबार एस० एस० कम्पनी **बनाम** दादा, 55 सी० डब्लू० एन० 11.

रिस्कनोट अथवा जोखिमपत्र दो प्रकार के होते हैं––1. स्वामी की जोखिम वाला, और 2. रेलवे की जोखिम वाला। प्रथम प्रकार के जोखिम पत्र पर स्वामी हस्ताक्षर करके अपनी ही जोखिम पर माल का परेषण करता है और ऐसी दशा में रेलवे का दायित्व कुछ अंशों में न्यून हो जाता है और भाड़े में भी यथोचित छूट प्राप्त हो जाती है। किन्तु यदि रेलवे कर्मचारियों की स्वयं की उपेक्षा के कारण, पूरा माल या माल के एक या एक से अधिक पैकिट मार्ग में ही अथवा गोदाम में से चुरा लिए जाए या उनमें कोई तोड़फोड़ की जाए तो रेलवे पर नुकसानी का दायित्व आ जाता है, भले ही माल स्वामी की जोखिम पर भेजा गया हो। रिस्कनोट से रेलवे का दायित्व कुछ अंशों में न्यून हो जाता है, किन्तु रेलवे का जो दायित्व उपनिहिती के तौर पर होता है, उस पर रिस्कनोट का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। नुकसान का अर्थ रेलवे कम्पनी द्वारा माल का नुकसान है न कि स्वामी को होने वाला आर्थिक नुकसान[1]। जोखिम पत्र में प्रायः इस बात का निर्देश होता है कि यदि माल में नुकसान आकस्मिक अथवा दैवी घटना के कारण हो तो वह रेलवे कर्मचारियों का दोष नहीं माना जाता किन्तु ऐसी स्थिति में रेलवे को यह परिसिद्ध करना होता है कि नुकसान रेलवे कर्मचारियों की उपेक्षा के कारण नहीं हुआ और न उनके कर्मचारियों ने चोरी ही की है।[2]

एक जोखिम पत्र के अन्तर्गत तेल की मात्रा कानपूर से कलकत्ता प्रेषित की गई जहां वह सुरक्षित पहुंच गई किन्तु पहुंचने पर उसे स्वास्थ्य अधिकारियों द्वारा अधिग्रहण करके अपमिश्रित मानकर उच्च न्यायालय के आदेशानुसार नष्ट कर दिया गया। ऐसा करने में रेलवे का कोई अवचार नहीं था तथा परेषिती को माल का परिदान न किए जाने के कारण रेलवे के नियंत्रण में आने वाली किसी ऐसी दुर्घटना, जो आग अथवा अन्य परिस्थितियों से घटित हुई हो, नहीं था। ऐसी स्थिति में रेलवे प्रशासन को न्या० के० के० मैथ्यू ने जोखिम पत्र के अन्तर्गत नुकसानी के लिए दायी नहीं ठहराया।[3]

(iv) **लॉण्ड्री वालों के दायित्वः**––लॉड्री वालों पर वस्त्रों की सुरक्षा का दायित्व सामान्य उपनिहितियों के समान है तथा वस्त्रों की रसीद पर लिखी हुई इस शर्त का कि वस्त्रों में होने वाले किसी नुकसान का लॉण्ड्री वाले पर दायित्व नहीं होगा, कोई विधिक महत्व नहीं है।[4]

2. अप्राधिकृत उपयोग के लिए दायित्व––यदि उपनिहिती उपनिहित माल का ऐसा कोई उपयोग करे जो उपनिधान की शर्तों के अनुसार न हो तो वह उसके ऐसे उपयोग के दौरान में माल को हुए नुकसान के लिए उपनिधाता को प्रतिकर देने का दायी है।[5]

इस नियम को समझने के लिए निम्नलिखित दो दृष्टान्त सहायक होंगे :—

क––**ख** को एक घोड़ा केवल उसकी अपनी सवारी के लिए **क** उधार देता है। **ख** अपने कुटुम्ब के एक सदस्य **ग** को उस घोड़े पर सवारी करने देता है। **ग** सावधानी से सवारी करता है, किन्तु अकस्मात घोड़ा गिर पड़ता है और क्षत हो जाता है। **ख** घोड़े को हुई क्षति के लिए **क** को प्रतिकर देने का दायी है।

---

[1] जॉकी बनाम डोमिनियन, ए० आई० आर० 1949 कलकत्ता 380.

[2] सैक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम कद्दू, 31 ए० एल० जे० 995.

[3] जुग्गीलाल कमलापत आइल मिल्स बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1976, एस० सी० 227.

[4] एम० सिद्दा लिंगप्पा बनाम टी० नटराज, ए० आई० आर० 1970 मैसूर, 154.

[5] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 154.

ख—क कलकत्ता में ख से एक घोड़ा यह कहकर भाड़े पर लेता है कि वह वाराणसी जाएगा। क सम्यक् सावधानी से सवारी करता है, किन्तु वाराणसी न जाकर कटक जाता है। अकस्मात घोड़ा गिर पड़ता है और क्षत हो जाता है। क घोड़े की हुई क्षति के लिए ख को प्रतिकर देने का दायी है।

एक उपनिहिती के पास एक मोटरकार का उपनिधान किया गया किन्तु उपनिहिती ने उसे अपने प्राइवेट उपयोग में लेना प्रारम्भ कर दिया जिसके लिए कि वह प्राधिकृत नहीं था। उस उपनिहिती पर कार के स्वामी को प्रतिकर देने का दायित्व डाला गया।[1]

3. उपनिहित माल की वापसी का दायित्व—उपनिहिती का यह कर्तव्य है कि ज्यों ही उस समय का, जिसके लिए माल उपनिहित किया गया था, अवसान हो जाए या वह प्रयोजन, जिसके लिए वह माल उपनिहित किया गया था, पूरा हो जाए, उपनिहित माल को मांग के बिना वापस कर दे या उपनिधाता के निदेशों के अनुसार परिदत्त कर दे।[2]

4. माल की वापसी न किए जाने पर दायित्व—यदि उपनिहिती के दोष से माल उचित समय पर वापस या परिदत्त या निविदत्त न किया जाए तो उस समय से माल की किसी भी हानि, नाश या क्षय के लिए वह उपनिधाता के प्रति उत्तरदायी है।[3]

उपरोक्त नियम अपने पूर्वगामी नियम का उपचार मात्र है। सिद्धान्त यह है कि **जो वस्तु किसी दूसरे की है, उसे रोके रखना नाममात्र की नहीं वरन् वास्तविक नुकसानी के लिए आधार बन सकता है।** किन्तु इस नियम का विलोम भी उतना ही सार्थक है, अर्थात् जहां उपनिहिती अपने को उपनिहित माल की वापसी निश्चित समय पर उपनिधाता को करने के लिए तैयार और रजामन्द हो, जैसे कि कोई वाहक, वहन के किये हुए माल का समय पर परिदान करना चाहे, किन्तु माल के स्वामी द्वारा समयानुसार परिदान न किया जाए, तो उपनिहिती भी उपनिधाता से उस माल की सुरक्षा में किए गए कार्यों के लिए प्रतिकर प्राप्त करने का हकदार है। रेलवे द्वारा डैमरेज का अधिरोपण इसका उदाहरण है।

5. माल में हुई वृद्धि या उसके लाभ के लिए दायित्व—तत्प्रतिकूल संविदा के अभाव में, उपनिहिती वह वृद्धि या लाभ, जो उपनिहित माल से प्रोद्भूत हुआ हो, उपनिधाता को, या उसके निदेशों के अनुसार परिदत्त करने के लिए आबद्ध है।[4]

इसके लिए एक दृष्टान्त इस प्रकार है कि यदि क एक गौ को देखभाल के लिए ख की अभिरक्षा में छोड़ता है और गौ के बछड़ा पैदा होता है, तो ख वह गौ और बछड़ा, क को, परिदत्त करने के लिए आबद्ध है, जब तक कि क और ख के बीच कोई तत्प्रतिकूल संविदा न रही हो।

उपनिहित और अन्य माल के मिश्रण का प्रभाव

सामान्यतः उपनिहिती को उपनिहित माल को अपने माल के साथ मिश्रित करने का अधिकार नहीं है और न ऐसा उसे करना ही चाहिए, किन्तु उपनिधाता की सम्मति से ऐसा किया जा सकता है। जब उपनिधाता की सम्मति के बिना उपनिहिती, उपनिहित माल को अपने माल के साथ मिश्रित

---

1 हफीजउल्ला बनाम मौन्टेग, 156 आई० सी० 354.

2 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 160.

3 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 161.

4 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 163.

कर दे तो दो अवस्थाएं उत्पन्न हो सकती हैं--1. या तो उपनिहित माल, अन्य माल से पृथक् किया जा सकता है, या 2. उपनिहित माल अन्य माल से पृथक् नहीं किया जा सकता । इस प्रकार, उपनिहित माल को अन्य माल के साथ मिश्रण करने की तीन अवस्थायें हो सकती हैं--1. जब मिश्रण उपनिधाता की सम्मति से किया जाए, 2. जब मिश्रण उपनिधाता की बिना सम्मति से किया जाए और माल का पृथक्करण सम्भव हो, और 3. जब मिश्रण बिना सम्मति के किया जाए और पृथक्करण भी सम्भव न हो ।

1. जब मिश्रण सम्मति से किया जाए :--यदि उपनिहिती उपनिधाता की सम्मति से उपनिधाता के माल को अपने माल के साथ मिश्रित कर दे तो उपनिधाता और उपनिहिती इस प्रकार उत्पादित मिश्रण में अपने अंश के अनुपात से हित रखेंगे ।[1]

ऐसा मिश्रण सहमति से भी हो सकता है और संयोग से भी, किन्तु जैसे भी हो जाए, मिश्रण की दशा में, उपनिधाता और उपनिहिती उस मिश्रित माल में, अपने-अपने स्वामित्व के अनुपात से सामान्यिक अभिधारी[2] (टैनेण्ट्स इन कामन) हो जाते हैं ।

2. बिना सम्मति मिश्रण जब पृथक्करण सम्भव हो:--यदि उपनिहिती उपनिधाता की सम्मति के बिना उपनिधाता के माल को अपने माल के साथ मिश्रित कर दे और माल पृथक् या विभाजित किए जा सकते हों तो माल में की सम्पत्ति पक्षकारों की अपनी-अपनी रहती है, किन्तु उपनिहिती पृथक्करण या विभाजन के व्यय को और मिश्रण से हुए किसी भी नुकसान को सहन करने के लिए आबद्ध हैं ।[3]

इस नियम को एक दृष्टान्त से समझा जा सकता है । दृष्टान्त इस प्रकार है :—

क एक विशिष्ट चिह्न से चिह्नित रुई की 10 गांठें ख के पास उपनिहित करता है । क की सम्मति के बिना ख उन गांठों को एक अलग चिह्न धारण करने वाली अपनी अन्य गांठों से मिश्रित करता है । क को हक है कि वह अपनी 10 गांठों को वापस कराले और गांठों के पृथक् करने में हुआ सारा व्यय और अन्य आनुषंगिक नुकसान सहन करने के लिए ख आबद्ध है ।

3. बिना सम्मति मिश्रण और पृथक्करण सम्भव नहीं हो :--यदि उपनिहिती, उपनिधाता की सम्मति के बिना उपनिधाता के माल को अन्य माल के साथ ऐसे प्रकार से मिश्रित कर दे कि उपनिहित माल को अन्य माल से पृथक् करना और उसे वापस परिदत्त करना असम्भव हो तो उपनिधाता उस माल की हानि के लिए उपनिहिती से प्रतिकर पाने का हकदार है ।[4]

इस विषय में एक दृष्टान्त इस प्रकार है :—

क 45 रुपए कीमत के केप के आटे का बैरल ख के पास उपनिहित करता है। क की सम्मति के बिना ख उस आटे को केवल 25 रुपए प्रति बैरल के अपने देशी आटे के साथ मिश्रित करता है । क को उसके आटे के लिए ख प्रतिकर देगा ।

इंग्लैंड की विधि में नियम यह है कि जब उपनिहिती, उपनिहित माल का अन्य माल के साथ इस प्रकार से मिश्रण कर दे कि उपनिहित माल का अन्य माल से पृथक् किया जाना सम्भव न हो तो, या तो पूरा

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 155.

[2] सामान्यिक अधिकारी की व्याख्या के लिए अध्याय 7 का शीर्षक 12 देखिए.

[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 156.

[4] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 157.

माल उपनिधाता का हो जाएगा[1] या उपनिहिती, उपनिधाता के प्रति पूरे माल के लिए दायी हो जाएगा।[2] किंतु भारतीय विधि में उपनिधाता, अपने पूरे माल के लिए उपनिहिती से प्रतिकर प्राप्त कर सकता है, अर्थात् वह उपनिहित और अन्य माल के पूरे मिश्रण को लेने का हकदार नहीं है। जब उपनिहित माल का पूरे तौर से पृथक्करण सम्भव न हो, तो उपनिधाता उपनिहित माल के केवल कुछ भाग को लेने से इंकार कर सकता है और ऐसी इन्कारी पर उपनिहिती, उपनिधाता का पूरे उपनिहित माल के लिए ऐसा प्रतिकर देगा, जो माल की क्षति, नाश या नुकसान की दशा में देय होता।[3]

उपनिहिती की विधिक सुरक्षा

भारतीय संविदा अधिनियम में, उपनिहिती की विधिक सुरक्षा को **तीन कोटियों** में रखा गया है जो निम्न प्रकार से हैं :—

1. संयुक्त उपनिधाताओं की दशा में माल प्रति परिदत्त करने का नियम :— यदि माल के कई संयुक्त स्वामी उसे उपनिहित करें तो, किसी तत्प्रतिकूल करार के अभाव में, उपनिहिती सभी स्वामियों की सम्मति के बिना भी, एक संयुक्त स्वामी को या उसके निदेशों के अनुसार माल वापस परिदत्त कर सकेगा।[4]

कर सकेगा का तात्पर्य **कर देने की बाध्यता** कदापि नहीं है। जब तत्प्रतिकूल संविदा न हो, तभी उपनिहिती को यह सुरक्षा प्राप्त है कि वह संयुक्त उपनिधाताओं में से किसी एक को भी उपनिहित माल वापस परिदत्त कर दे। किन्तु यदि तत्प्रतिकूल संविदा होने पर भी उपनिहिती द्वारा उपनिहित माल, संयुक्त उपनिधाताओं में से किसी एक को परिदत्त कर दिया जाए तो स्थिति विलक्षण हो सकने की सम्भावना है, क्योंकि जिस एक उपनिधाता ने माल का परिदान प्रतिगृहीत कर लिया है वह अपने ही दोष के कारण उपनिहिती के विरुद्ध उस माल के परिदान के लिए अन्य उपनिधाताओं द्वारा लाए हुए वाद में सम्मिलित नहीं हो सकता। साथ ही शेष उपनिधाता भी उसे प्रतिवादी बनाये बिना कोई वाद नहीं ला सकते। सम्भवतः इसी विलक्षणता के कारण, इस नियम का संविदा अधिनियम में इस स्थिति के लिए विशेष उपबन्ध किया गया है।

2. बिना हक वाले उपनिधाता को सद्भावपूर्वक प्रति परिदान का नियम :—उपनिहिती को विधि के अन्तर्गत एक अन्य सुरक्षा यह प्रदान की गई है कि यदि उपनिधाता का माल पर कोई हक न हो और उपनिहिती उसका उपनिधाता को या उसके निदेशों के अनुसार सद्भावपूर्वक प्रतिपरिदान कर दे तो उपनिहिती ऐसे परिदान के बारे में उसके स्वामी के प्रति उत्तरदायी नहीं है।[5]

भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 117 के अनुसार, **उपनिहिती, उपनिहित माल पर उपनिधाता के हक से इंकार नहीं कर सकता।** यह विबन्ध का सिद्धान्त कहलाता है। अतः इस विबन्ध के सिद्धान्त के अनुसार, न केवल उपनिहिती द्वारा उपनिहित माल, उपनिधाता को वापस कर देने का औचित्य है वरन् यह उसकी एक प्रकार की बाध्यता भी है, **जब तक कि उस माल पर किसी पर व्यक्ति का सर्वोपरि हक प्रतीत न हो रहा हो** अर्थात् जब किसी अन्य के सर्वोपरि हक के द्वारा उपनिहित माल के प्रति वास्तविक

1 लुपटन **बनाम** व्हाइट, 15 वैसीज रिपोर्टस् 432.

2 कुक **बनाम** एडीसन, एल० आर० (1869) 7 इक्विटी 466.

3 देखिए धनपत राम **बनाम** जयनारायण, **27 कटक लॉ टाइम्स, 340.**

4 भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 165.

5 उपरोक्त, धारा 166.

उपनिधाता अपने हक से बेदखल हो जाए तो उपनिहिती की अपने ऊपर लागू होने वाले विबन्ध से निर्मुक्ति हो जाती है। और इस स्थिति के स्पष्ट हो जाने पर भी यदि उपनिहिती बिना हक वाले उपनिधाता को माल प्रति परिदत्त कर दे तो यह प्रति-परिदान सद्भावपूर्वक किया हुआ नहीं माना जा सकता और उपनिहिती वास्तविक स्वामी के प्रति दायी हो जाएगा।

3. उपनिहिती का साधारण और विशिष्ट धारणाधिकार:—जब किसी व्यक्ति को अपने कब्जे में आई हुई किसी ऐसी वस्तु को जिस पर कि किसी अन्य का स्वामित्व है तब तक प्रतिभूति के तौर पर रखे रहने या अपने ही कब्जे में रोके रखने का अधिकार हो जब तक कि उस माल के स्वामी के द्वारा उस वस्तु पर कब्जा रखने वाले व्यक्ति की विधिपूर्ण मांगों की तुष्टि या उस वस्तु से सम्बन्धित कब्जे वाले व्यक्ति के किसी लेखे या बकाया को चुकता न कर दिया जाए, तो ऐसे अधिकार को उस कब्जे वाले व्यक्ति का धारणाधिकार कहा जाता है।

यह **धारणाधिकार दो प्रकार** का होता है—1. साधारण और 2. विशिष्ट।

साधारण धारणाधिकार, किसी सामान्य व्यावसायिक ढंग के लेखों की बकाया के विषय में लागू होता है जबकि विशेष धारणाधिकार कब्जे में रखी गई वस्तु के प्रति उसकी सुरक्षा या उसके प्रसंस्करण में किए हुए श्रम या व्यय के मूल्य के लिए प्रतिकर प्राप्त करने की प्रत्याभूति के तौर पर लागू किया जाता है। प्रथम प्रकार का धारणाधिकार कुछ विशिष्ट प्रकार के व्यवसाइयों के हितों की सुरक्षा करता है जैसे कि बैंकर, अटर्नी, दलाल आदि, जबकि द्वितीय प्रकार का धारणाधिकार, विशिष्ट कर्मकारों, जैसे जौहरी, दर्जी, स्वर्णकार आदि, जो कि कब्जे में आई वस्तु के प्रति किसी विशेष प्रकार का श्रम करते हैं, के हितों की सुरक्षा के लिए है।

साधारण धारणाधिकार के विषय में भारतीय संविदा अधिनियम में निम्न उपबन्ध किया गया है—

"बैंकार, फैक्टर, घाटवारी, उच्च न्यायालय के अटर्नी और बीमा दलाल अपने को उपनिहित किसी माल को, तत्प्रतिकूल संविदा के अभाव में, समस्त लेखाओं के बाकी के लिए, प्रतिभूति के रूप में, प्रतिधृत रख सकेंगे, किंतु अन्य किन्हीं भी व्यक्तियों को यह अधिकार नहीं है कि वे अपने को उपनिहित माल ऐसी बाकी के लिए प्रतिभूति के रूप में प्रतिधृत रखे जब तक कि उस प्रभाव की कोई अभिव्यक्त संविदा न हो"[1]।

इस नियम को लागू करने के लिए **निम्न अवस्थाओं का विद्यमान होना आवश्यक है—**

(i)—उपनिधाता कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो बैंकार, फैक्टर, घाटवारी, उच्च न्यायालय के अटर्नी या बीमा दलाल की कोटि का व्यवसायी हो।

(ii)—इस अधिकार का तभी प्रयोग किया जा सकता है जबकि उपरोक्त व्यवसाइयों के लेखाओं की, उपनिधाता की ओर कोई बाकी निकलती हो।

(iii)—धारणाधिकार केवल प्रतिभूति के तौर का अधिकार है, अतः जैसे ही लेखाओं की बाकी का भुगतान हो जाए, उपनिधाता अपने माल की वापसी का हकदार हो जाता है।

व्यवसाइयों की उपर्युक्त कोटि में अधिवक्ताओं को भी सम्मिलित माना जा सकता हैं, किंतु जहां किसी मुवक्किल ने अपने अधिवक्ता को एक वचन-पत्र, जो कि पूर्णतः या भागतः वाद का आधार था, परिदान करके अधिवक्ता से वाद प्रस्तुत करने का वचन बन्ध किया हो वहां यह विवक्षित संविदा मानी

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 171.

जाएगी कि अधिवक्ता उस दस्तावेज को वाद पत्र के साथ अथवा अधिक से अधिक प्रथम सुनवाई की तिथि पर न्यायालय में प्रस्तुत कर देगा, तथा इस विवक्षित संविदा के आधार पर अधिवक्ता के धारणाधिकार का अपवर्जन हो जाएगा[1]।

विशिष्ट धारणाधिकार के विषय में निम्न उपबन्ध है —"जहां कि उपनिहिती ने उपनिहित माल के बारे में, उपनिधान के प्रयोजन के अनुसार कोई ऐसी सेवा की हो जिसमें श्रम या कौशल का प्रयोग अन्तर्वलित हो, वहां तत्प्रतिकूल संविदा के अभाव में उसे ऐसे माल के तब तक प्रतिधारण का अधिकार है जब तक वह उन सेवाओं के लिए, जो उसने उन के बारे में की हों, सम्यक् पारिश्रमिक नहीं पा लेता है"।[2]

इस नियम को निम्न दो दृष्टान्तों से स्पष्ट किया गया है—

क—क एक जौहरी ख को अनगढ़ हीरा काटने और पालिश किए जाने के लिए परिदत्त करता है। तदनुसार वैसा कर दिया जाता है। ख उस हीरे के तब तक प्रतिधारण का हकदार है जब तक उसे उन सेवाओं के लिए, जो उसने की हैं, संदाय न कर दिया जाए।

ख—क एक दर्जी ख को कोट बनाने के लिए कपड़ा देता है। ख यह वचन देता है कि कोट ज्यों ही पूरा हो जाएगा, वह उसे क को परिदत्त कर देगा और पारिश्रमिक के लिए तीन मास का प्रत्यय देगा। कोट के लिए संदाय किए जाने तक ख उसे प्रतिधृत रखने का हकदार नहीं है।

दृष्टान्त (ख), इस नियम में वर्णित विशिष्ट धारणाधिकार के प्रतिकूल की हुई संविदा का उदाहरण है। नियम से ही यह स्पष्ट है कि यह धारणाधिकार केवल उसी अवस्था में लागू होता है जबकि उपनिहिती ने उपनिहित माल में कोई प्रसंस्करण, या उसके निर्माण में कोई श्रम या कौशल प्रयुक्त किया हो।

4. माल के वास्तविक हकदार का निर्णय कराने का नियमः—यदि उपनिधाता से भिन्न कोई व्यक्ति उपनिहित माल का दावा करे तो वह न्यायालय से आवेदन कर सकेगा कि उपनिधाता को माल का परिदान रोक दिया जाए और यह विनिश्चय किया जाए कि माल पर हक किसका है।[3]

इस नियम का मर्म यह है कि **उपनिहिती, उपनिधाता की अपेक्षा किसी श्रेष्ठतर स्थिति में नहीं होता।** यदि उपनिहित वस्तु पर उपनिधाता का कोई हक न हो तो उपनिहिती का भी कोई हक नहीं होता। अतः यदि उपनिहित माल के प्रति, कोई पर-व्यक्ति अपना हक प्रकट करे तो उपनिहिती पर अन्तराभिवाचिता का दायित्व आ जाता है, और यदि उपनिहिती ऐसे मामले में अन्तराभिवाची वाद न लाए तो वह उस माल के सदोष निरोध के लिए उत्तरदायी हो सकता है।

पड़ा माल पाने वाले के विधिक अधिकार

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 71 के अनुसार वह व्यक्ति जो किसी अन्य का माल पड़ा पाता है और उसे अपनी अभिरक्षा में ले लेता है, उसी उत्तरदायित्व के अध्यधीन है जिसके अध्यधीन उपनिहिती होता है किन्तु इस अधिनियम की धारा 168 के अन्तर्गत पड़ा माल पाने वाले को ऐसा माल

---

[1] लालचन्द बनाम प्यारे दसरथ, ए० आई० आर० 1971 मध्य प्रदेश 245 (247).

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 170.

[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 167.

पाने और उसे अपनी अभिरक्षा में ले लेने के कारण कुछ अधिकार भी सृष्ट हो जाते है, जिनका उपबन्ध निम्न प्रकार है :—

पड़ा माल पाने वाले को उस माल का परिरक्षण करने और स्वामी का पता लगाने में अपने द्वारा स्वेच्छा से उठाए गए कष्ट और व्यय के प्रतिकर के लिए स्वामी पर वाद लाने का कोई अधिकार नहीं होता, किन्तु उसे यह अधिकार अवश्य है कि वह उस माल को स्वामी के विरुद्ध तब तक प्रतिधृत रख सकेगा जब तक उसे ऐसा प्रतिकर न मिल जाए और यदि स्वामी ने खोए माल की वापसी के लिए विनिर्दिष्ट पुरस्कार देने की प्रस्थापना की हो तो पड़ा माल पाने वाला ऐसे पुरस्कार के लिए वाद ला सकेगा और माल को तब तक प्रतिधृत रख सकेगा जब तक उसे वह पुरस्कार न मिल जाए।

यह नियम नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों पर आधारित है। यदि पड़े माल की खोज के लिए कोई विनिर्दिष्ट पुरस्कार न हो और उसके पाने और उसके परिरक्षण में हुए व्यय और कष्ट के लिए देय प्रतिकर के परिमाण के विषय में पक्षकारों की सहमति भी न हो सके तो प्रतिकर की राशि न्यायालय द्वारा ही अधिनिर्णीत की जा सकेगी, किंतु यदि पक्षकार सहमत हो सकें तो यह एक समुचित और आबद्धकर वचन होगा जिसे अधिनियम की धारा 25(2) के अनुसार किसी ऐसे व्यक्ति को पूर्णतः या भागतः प्रतिकर देने का वचन माना जाएगा जिसने वचनदाता के लिए स्वेच्छया पहले ही कोई बात कर दी हो अथवा कोई ऐसी बात कर दी हो जिसे करने के लिए वचनदाता वैध रूप से विवश किए जाने का दायी था।

कुछ अवस्थाओं में पड़ा माल पाने वाले को उस माल के बेचने का भी अधिकार होता है। इस विषय में संविदा अधिनियम की धारा 169 में यह उपबन्ध है कि जब कोई चीज, जो सामान्यतया विक्रय का विषय हो, खो जाए और स्वामी का युक्तियुक्त तत्परता से पता नहीं लगाया जा सके या यदि वह पड़ा माल पाने वाले के विधिपूर्ण प्रभारों का मांगे जाने पर संदाय करने से इंकार करे तो पड़ा माल पाने वाला उसे निम्न स्थितियों में बेच सकेगा—

1. जबकि उस चीज के नष्ट हो जाने या उसके मूल्य का अधिकांश जाते रहने का खतरा हो, अथवा

2. जबकि पाई गई चीज के बारे में पड़े पाने वाले के विधिपूर्ण प्रभार उसके दो तिहाई तक पहुंच जाए।

गिरवी रूपी उपनिधान

किसी ऋण के संदाय के लिए या किसी वचन के पालन के लिए प्रतिभूति के तौर पर माल का उपनिधान **गिरवी** कहलाता है। उस दशा में उपनिधाता **पणयमकार** कहलाता है। उपनिहिती **पणयमदार** कहलाता है।[1]

किसी ऋण के संदाय के लिए प्रतिभूति के तौर पर किये गए उपनिधान को माल की गिरवी कहा जाता है। प्रतिभूति सामान्यतया तीन प्रकार की होती है—1. धारणाधिकार, जिसका कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, 2. बन्धक जिसके विषय में सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 में विस्तृत उपबन्ध किए गए हैं, और 3. धारणाधिकार और बन्धक की मध्यवर्ती अवस्था जो कि गिरवी कहलाती है और जिसमें ऋण के संदाय की प्रतिभूति के तौर पर माल के निक्षेप की संविदा की जाती है।

जहां अन्तरिती को किसी विनिर्दिष्ट चल सम्पत्ति के कब्जे का परिदान ऐसे करार पर नहीं किया गया हो कि अन्तरिती उसे अपने ऋण के संदाय की प्रतिभूति के तौर पर रखेगा तो ऐसे संव्यवहार को उपनिधान नहीं कहा जा सकता।[2]

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 172.

[2] स्वरूप कोल्ड स्टोरेज, ए० आई० आर० 1976 इलाहाबाद 88.

गिरवी की संविदा में, जैसा कि न्या० ए० एम० ग्रोवर ने अभिनिर्धारित किया है, उस माल में, जिसे गिरवी रखा जाए; पणयमदार की विशिष्ट सम्पत्ति होती है और जब तक पणयमदार के दावे की तुष्टि नहीं हो जाए तब तक अन्य किसी लेनदार या पणयमदार को उस माल को या उसकी कीमत के लेने का कोई अधिकार नहीं होता।[1]

मोरवी मरकेन्टाइल बैंक बनाम भारत संघ[2] वाले मामले में एक संव्यवहार तीन भागों में निष्पादित हुआ :— 1. बैंक द्वारा ऋण का अभिदाय 2. फर्म के द्वारा वचन पत्र का निष्पादन, और 3. बैंक के पक्ष में रेलवे रसीद का फर्म के द्वारा पृष्ठांकन। इन तीनों का सम्मिलित प्रभाव यह था कि बैंक उस रेलवे रसीद के अधीन प्राप्त होने वाले माल को तब तक प्रतिधृत कर सकेगा जब तक कि फर्म द्वारा ऋण का संदाय न कर दिया जाए। उच्चतम न्यायालय ने इस संव्यवहार को गिरवी माना।

गिरवी, बन्धक, विक्रय और आडमान

कोई संव्यवहार गिरवी है अथवा बन्धक, इसमें भेद करना कठिन है। सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम में अचल सम्पत्ति के बन्धक का उल्लेख है। जबकि संविदा अधिनियम में चल सम्पत्ति की गिरवी का उल्लेख है। यद्यपि चल सम्पत्ति के आडमान अथवा बन्धक का संविदा अधिनियम में उल्लेख नहीं है तथापि इस अधिनियम के नि:शेषी न होने के कारण, ऐसे संव्यवहारों की भारत में दीर्घकाल से मान्यता रही है। ऐसे संव्यवहारों में न्यायालय को, इंग्लैंड की विधि में प्रचलित न्याय, साम्या और शुध्द अन्त:करण के सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए ही, मामले में निर्णय देना चाहिए। गिरवी और बन्धक में प्रमुख भेद यह है कि बन्धकदार को सम्पत्ति के उपयोग का अधिकार होता है जो गिरवीदार को नहीं होता। वस्तु के परिदान से अधिक अन्तरिती को उसके उपभोग का भी अधिकार प्रदत्त किए जाने से संव्यवहार गिरवी के अनुकूल न होकर बन्धक के अनुकूल होता है। जहां अन्तरिती को परिदत्त वस्तु के विक्रय करने का अधिकार दे दिया गया हो वहां उपभोग के अधिकार का प्रदत्त किया जाना स्पष्ट है और ऐसी दशा में उस वस्तु को गिरवी न मानकर बन्धक माना जाना चाहिए।[3]

गिरवी की स्थिति में माल का परिदान आवश्यक है किंतु आडमान की स्थिति में ऐसा आवश्यक नहीं है। आडमान में माल का वास्तविक कब्जा ऋण लेने वाले के पास रह सकता है और ऐसी दशा में ऋणदाता का उस माल पर आन्वयिक कब्जा धारण करता है।[4] आडमान और बन्धक में अन्तर यह है कि **बन्धक स्थावर सम्पत्ति का होता है जबकि गिरवी जंगम माल की।** आडमान एक प्रकार का ऐसा बन्धक होता है जिसमें पणयमकार द्वारा, पणयमदार को माल के कब्जे का परिदान नहीं करना पड़ता किंतु आडमान में यह अनुबन्ध होता है कि ऋण का संदाय न होने की दशा में माल का विक्रय करा लिया जाए। **बन्धक, आडमान और गिरवी, तीनों ही में यह लक्षण समान रूप से विद्यमान रहता है कि संबंधित माल किसी ऋण के संदाय के प्रतिभूति के तौर पर माना जाता है।**

गिरवी में कब्जे का परिदान आवश्यक

क्योंकि गिरवी का संव्यवहार मूलत: उपनिधान का ही संव्यवहार होता है, अत: उसमें पणयमदार को गिरवी माल के कब्जे का परिदान किया जाना आवश्यक है। जहां कमीशन अभिकर्ता को करार

---

1 बैंक ऑफ बिहार **बनाम** स्टेट ऑफ बिहार, ए० आई० आर० 1971, एस० सी० 1210 (1213).

2 ए० आई० आर० 1965 एस० सी० 1954.

3 शतजादी बेगम **बनाम** गिरधारी लाल, ए० आई० आर० 1976 आन्ध्र प्रदेश 273.

4 देखिए गोपालसिंह **बनाम** पंजाब नेशनल बैंक, ए० आई० आर० 1976 दिल्ली 115.

के अन्तर्गत, अनाज पर कब्जा रखने का अधिकार दिया गया और यह भी अधिकार दिया गया कि वह उसे मालिक के निदेशानुसार व्ययनित कर सकेगा, किंतु सरकार द्वारा अनाज की कीमत मालिक को देकर उसे अभिकर्ता के कब्जे से हटा दिया गया और अभिकर्ता द्वारा गिरवी के अधिकारों का दावा किए बिना ही अनाज को खाद्यान्नों के नियंत्रक के कब्जे में दे दिया गया, वहां न्या० एस० एम० सीकरी (जैसाकि तब वे थे) ने यह माना, कि अनाज पर अभिकर्ता का कब्जा पणयमदार के तौर का कब्जा नहीं था।[1]

कब्जा चाहे वास्तविक हो या आन्वयिक, किंतु गिरवी के माल पर कब्जा पणयमदार का होने की संविदा होनी चाहिए भले ही वह माल पणयमकार के कब्जे से पणयमदार के कब्जे में न पहुंचा हो, और ऐसी अवस्था में, इस प्रकार की संविदा का होना आवश्यक है कि उस माल पर पणयमकार का कब्जा वस्तुत: पणयमदार का ही कब्जा माना जायेगा। ऐसी अवस्थाओं में, माल का प्रतीकात्मक या आन्वयिक परिदान, पणयमदार के कब्जे के लिए पर्याप्त है।

किसी माल की रेलवे रसीद दे देना, किसी व्यक्ति को उस रसीद के अधीन माल का कब्जा देने के ही समान है और यह आन्वयिक कब्जे का एक उदाहरण है। किसी कम्पनी ने किसी बैंक को माल गिरवी किया किंतु वास्तविक कब्जा कम्पनी के पास ही रहा तो कम्पनी का वह कब्जा बैंक के लिए ही माना जायेगा तथा कम्पनी के अन्य लेनदार उस गिरवी माल की बैंक के दावे की तुष्टि किये बिना कुर्की अथवा विक्रय नहीं करवा सकते हैं।[2]

अवक्रय अर्थात् भाड़ा-क्रय (हायर परचेज)

इस करार में तीन प्रकार के करारों के लक्षण वर्तमान होते हैं क्योंकि यह **भाड़े, विक्रय और आडमान के करार का एक मिश्रित रूप** होता है। ऐसे करार का प्रमुख लक्षण उस समय को अवधारित करना है जिस पर कि वह करारित सम्पत्ति भाड़े दार में निहित हो जाए। ऐसे करार का एक प्रमुख लक्षण यह भी होता है कि भाड़ेदार को अपनी स्वेच्छा से ऐसे करार को समाप्त करने का अधिकार भी होता है।

अवक्रय के करार में दो तत्व हुआ करते हैं—1. उपनिधान का तत्व, और 2. विक्रय का तत्व और वह इस अर्थ में कि इसमें एक पारिणामिक (इवैन्चुअल) विक्रय अनुध्यात रहता है। करार की सब शर्तों को पूरा करने के द्वारा आशार्थी क्रेता जब अपने क्रय के विकल्प का प्रयोग कर चुकता है तभी विक्रय सम्पूर्ण समझा जाता है और उससे पूर्व केवल भाड़ेदारी मानी जाती है। अवक्रय का करार विक्रय के उस करार से भी भिन्न होता है जिसमें कि माल की कीमत विक्रय के पश्चात् किस्तों में देने का करार किया जाता है। किस्तों में संदेय कीमत वाले विक्रय में भी, सम्पत्ति क्रेता में तत्काल अन्तरित हो जाती है, किंतु अवक्रय की संविदा में सम्पत्ति संविदा के समय उस व्यक्ति को अन्तरित नहीं होती जो कि किसी वस्तु को अवक्रय कर लेता है। जब अवक्रेता द्वारा, उस करार की शर्तों का पालन करते हुए, अन्तत: क्रय करने के विकल्प का प्रयोग कर लिया जाए, तभी वह सम्पत्ति उसे अन्तरित होती है किन्तु यदि अवक्रेता उस करार की शर्तों को पूरा करने में व्यतिक्रम करे या अन्तत: अपने क्रय करने के विकल्प का प्रयोग न करे तो वह सम्पत्ति विक्रेता की ही सम्पत्ति रहती है। अवक्रय के करार में अवक्रेता द्वारा विक्रेता को संदत्त धन अंशत: भाड़े के निमित्त और अंशत: क्रय-मूल्य के निमित्त होता है।[3]

---

[1] रामप्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 326=(1970) 2 एस० सी० आर० 677.

[2] बैंक ऑफ इंडिया बनाम विनोद स्टील लिमिटेड, ए० आई० आर० 1977 मध्य प्रदेश 188.

[3] के० एल० जौहर बनाम डिप्टी कामर्शियल टैक्स आफ़िसर, ए० आई० आर० 1965 एस० सी० 1082.

पणयमकार के परिसीमित हित वाली गिरवी

जहां कि कोई व्यक्ति ऐसे माल को गिरवी रखता है जिसमें वह केवल परिसीमित हित रखता है, वहां गिरवी उस हित के विस्तार तक विधिमान्य है।[1]

कोई भी व्यक्ति जिसका किसी वस्तु में कोई सीमित हक होता है, वह उसे गिरवी रख सकता है और ऐसी गिरवी पणयमकार के हक की सीमा तक विधिमान्य है।

दो बैंको के बीच, जिनमें से एक पणयमकार और दूसरा पणयमदार था, एक करार द्वारा पणयमकार बैंक की 75,000 रुपयों के प्रकट मूल्य की प्रतिभूतियों को पणयमदार बैंक के पास रखकर उसे इस प्रकार प्रभारित किया गया कि वह, एक ओवरड्राफ्ट की व्यवस्था के अनुसार, 66,150 रुपयों की सीमा तक, समय-समय पर, पणयमकार बैंक को, अभिदाय करता रहेगा, किन्तु ऐसा प्रभार आत्यन्तिक न होकर उन दोनों बैंकों के परस्पर के लेखाओं की सीमा तक, अर्थात् पणयमकार बैंक की ओर पणयमदार बैंक की प्रतिकूल बाकियों की सीमा तक था तथा पणयमकार बैंक ने सभी तात्विक समयों पर उस करार के अनुसरण में पणयमकार बैंक से कभी कोई धन नहीं लिया था। उच्चतम न्यायालय ने[2] यह अभिनिर्धारित किया कि—

1. पणयमदार बैंक, करारित प्रतिभूतियों पर, कार्यवाही करने के लिए कुछ निश्चित घटनाओं के घटित होने पर ही हकदार था और वे घटनायें उन दशाओं की द्योतक थीं जबकि पणयमदार बैंक अपने लेखे को एक निश्चित राशि की सीमा तक रखने में असफल रहे या वह पणयमदार बैंक की मांग पर उसकी बकाया की राशि के प्रतिसंदाय में व्यतिक्रम करे। जब तक ऐसी आकस्मिकतायें न घटित हों, पणयमदार बैंक उन प्रतिभूतियों की, अपने हित की सीमा तक, गिरवी, उप-गिरवी या समनुदेशन करने का हकदार नहीं था।

2. यदि पणयमकार बैंक वास्तव में उस ओवरड्राफ्ट लेखे पर करारित अनुबन्धों की सीमा में पणयमदार बैंक से धन लेता, तभी पणयमदार बैंक को उन प्रतिभूतियों में ऐसा हित प्रोद्भूत हो सकता था कि वह उन्हें किसी पर-व्यक्ति को गिरवी, उप-गिरवी या समनुदेशित कर सकता, किन्तु जब पणयमकार द्वारा किसी प्रकार का ओवरड्राफ्ट नहीं किया गया, तो पणयमदार को उपरोक्त प्रकार की सीमित हितवाली गिरवी करने का कोई हक न था।

वाणिज्यिक अभिकर्ता द्वारा गिरवी

जहांकि कोई वाणिज्यिक अभिकर्ता स्वामी की सम्मति से माल पर या माल के हक की दस्तावेजों, पर कब्जा रखता है, वहां वाणिज्यिक अभिकर्ता के कारबार के मामूली अनुक्रम में कार्य करते हुए उसके द्वारा की गई गिरवी उतनी ही विधिमान्य होगी मानों वह माल के स्वामी द्वारा उसे करने के लिए अभिव्यक्त रूप से प्राधिकृत हो, परन्तु यह तब जबकि पणयमदार सद्भावपूर्वक कार्य करे और गिरवी के समय उसे यह सूचना न हो कि पणयमकार गिरवी करने का प्राधिकार नहीं रखता।[3]

इस नियम का उद्देश्य उन व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करना है जो कि सद्भावपूर्वक ऐसे व्यक्तियों से उन्हें वाणिज्यिक अभिकर्ता मानते हुए व्यौहार करते हैं। इस नियम का आश्रय तभी लिया जा सकता है जबकि पणयमदार को यह ज्ञान हो कि पणयमकार एक वाणिज्यिक अभिकर्ता है, भले ही पणयमदार

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 179

[2] जसवन्तराय बनाम मुम्बई राज्य, ए० आई० आर० 1956 एस० सी० 575

[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 178

को, पणयमकार के अभिकरण के करार का पूरा ब्यौरा न ज्ञात हो। इस नियम का लाभ उठाने के लिए पणयमदार को निम्न बातें साबित करना आवश्यक है—

1. कि जिस व्यक्ति का माल पर कब्जा था उसी ने उसे गिरवी रखा है,

2. कि पणयमदार ने सद्भाविक दृष्टि से तथा ऐसी परिस्थितियों के अन्तर्गत, जिन में यह युक्तियुक्त उपधारणा की जा सके कि उसका कार्य अनुचित नहीं था, कार्य किया है,

3. कि माल को, उसके विधिपूर्ण स्वामी या उस व्यक्ति से, जिसका उस माल पर विधिपूर्ण कब्जा हो, किसी अपराध या कपटवृत्ति द्वारा अभिप्राप्त नहीं किया गया है, और यह

4. कि गिरवी वाणिज्यिक अभिकर्ता द्वारा की गई है।

वाणिज्यिक अभिकर्ता का अर्थ ऐसे अभिकर्ता से है जो व्यापार के रूढ़िगत अनुक्रमानुसार, अभिकर्ता के रूप में, माल के विक्रय अथवा विक्रय के लिए उसे परेषण करने, या माल की प्रतिभूति के आधार पर धन समुत्थापित (रेज) करने के लिए प्राधिकृत हो[1]। उदाहरण के लिए, किसी विनिर्माता या थोक व्यापारी द्वारा, अपने माल को इस शर्त पर अन्य खुदरा व्यापारी के सुपुर्द किया जाए कि वह खुदरा व्यापारी, उस माल का विक्रय करे और जितना माल विक्रय न हो, उसे उसी विनिर्माता या थोक-व्यापारी को वापस कर दे, तो वह खुदरा व्यापारी उस विनिमार्ता या थोक व्यापारी का वाणिज्यिक अभिकर्ता कहा जाएगा। ऐसा वाणिज्यिक अभिकर्ता, उस माल का भावी ग्राहक न होकर केवल वाणिज्यिक अभिकर्ता होता है जिसे कि विनिर्माता या थोक व्यापारी के किसी अभिव्यक्त प्राधिकार बिना भी उस माल को गिरवी रखने का विधिक अधिकार उपरोक्त नियम के अन्तर्गत आता है।

निम्न वस्तुओं को हक की दस्तावेजों के अन्तर्गत माना गया है[2]—

1. वहन पत्र,
2. डॉक वारन्ट,
3. भाण्डागारिक का सर्टिफिकेट (प्रमाण-पत्र),
4. घाटवारी का प्रमाण पत्र,
5. रेलवे रसीद,
6. माल के परिदान के लिए वारन्ट या आदेश, तथा
7. ऐसा अन्य कोई भी दस्तावेज जिसका कि व्यापार के साधारण अनुक्रम में, माल पर कब्जे या नियन्त्रण के प्रमाण के रूप में प्रयोग किया जा सके और जिससे कि उस दस्तावेज पर कब्जा रखने वाले व्यक्ति को, उस दस्तावेज के परिदान या पृष्ठांकन द्वारा उस दस्तावेज में दर्शित माल को प्राप्त या अन्तरण करने का प्राधिकार प्राप्त हो।

यदि उपरोक्त प्रकार के किसी भी उद्देश्य के लिए उस दस्तावेज का उपयोग किया जा सके तो वह दस्तावेज हक की दस्तावेज या हक को दर्शित करने की दस्तावेज मानी जाएगी। हक के दस्तावेज की गिरवी उस दस्तावेज में दर्शित माल की गिरवी है।

इस नियम के अन्तर्गत कब्जे का अर्थ, स्वामी की अनुमति से वाणिज्यिक अभिकर्ता का कब्जा है। ऐसा कब्जा क्रेता का कब्जा नहीं होता वरन् अभिकर्ता का कब्जा होता है। जबकि दोनों पक्षकारों के

[1] माल विक्रय अधिनियम, 1930 की धारा 2(9) में दी गई परिभाषा देखिए.

[2] माल विक्रय अधिनियम, 1930 की धारा 2(4) देखिए,

बीच की गई संविदा की शर्त के अनुसार माल का स्वामी किसी भी समय माल की वापसी की मांग कर सके तो ऐसा कब्जा क्रेता का कब्जा नहीं माना जा सकता वरन् यह कब्जा अभिकर्ता का कब्जा माना जाएगा ।[1]

शून्यकरणीय संविदा के अधीन कब्जा रखने वाले द्वारा गिरवी

जबकि पणयमकार ने अपने द्वारा गिरवीकृत माल का कब्जा, संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 19 या 19क के अधीन शून्यकरणीय किसी संविदा के अधीन अभिप्राप्त किया हो, किन्तु संविदा गिरवी के समय विखण्डित न हो चुकी हो, तो पणयमदार उस माल पर अच्छा हक अर्जित कर लेता है, परन्तु यह तब जब कि वह सद्भावपूर्वक और पणयमकार के हक की त्रुटि की सूचना के बिना कार्य करे ।[2]

इस नियम के अनुसार गिरवी करने के समय, पणयमकार को गिरवीकृत माल पर हक अर्जित हो जाना चाहिए । जो व्यक्ति स्वयं पणयमदार है, उसे, अपने को गिरवी किए हुए माल पर, कोई हक अर्जित नहीं होता, और यदि वह उसी माल को कहीं अन्यत्र गिरवी रख दे तो उसे इस नियम का लाभ उठाने का अधिकार नहीं होता । जब किसी व्यक्ति ने, कपट, दुर्व्यपदेशन, प्रपीड़न अथवा असम्यक् असर के द्वारा किसी माल को अभिप्राप्त कर लिया है और तत्पश्चात् उसने उसी माल को गिरवी कर दिया है तो ऐसे गिरवी का संव्यवहार तभी विधिमान्य होगा जबकि—

1. गिरवी रखने से पूर्व, उस व्यक्ति ने जिससे कि पणयमकार ने माल अभिप्राप्त किया है, उस संविदा का विखण्डन इस आधार पर नहीं कर दिया हो कि पणयमकार ने उस माल की अभिप्राप्ति उस माल के स्वामी से कपट, असम्यक् असर, प्रपीड़न या दुर्व्यपदेशन द्वारा की थी,
2. पणयमदार ने सद्भावपूर्वक कार्य किया हो, और
3. पणयमदार को पणयमकार के हक की त्रुटि की सूचना न हो ।

कपट, दुर्व्यपदेशन, प्रपीड़न अथवा असम्यक् असर के द्वारा कारित संविदा शून्य न होकर केवल शून्यकरणीय होती है, और जब तक वह व्यक्ति जिसके विकल्प पर वह संविदा शून्यकरणीय है, अपने उस विकल्प के प्रयोग द्वारा उस संविदा को शून्य न कर दे, तब तक, उपर्युक्त नियम के अनुसार उस संविदा के अधीन प्राप्त किए हुए माल को प्राप्तकर्ता द्वारा अन्यत्र संक्रांत कर दिये जाने पर या पर-व्यक्तियों को उस माल पर प्रोद्भूत किसी हित या लाभ पर कोई प्रभाव नहीं होगा ।

पणयमदार के अधिकार

पणयमदार के अधिकारों को **तीन श्रेणियों** में रखा जा सकता है—1. गिरवी माल के प्रतिधारण का अधिकार, 2. उपगत गैरमामली व्ययों के बारे में अधिकार, और 3. पणयमकार द्वारा व्यतिक्रम की दशा में पणयमदार को प्राप्त अधिकार । इन अधिकारों के विषय में भारतीय संविदा अधिनियम में निम्न उपबन्ध किये गए हैं—

1. गिरवी माल के प्रतिधारण के आधार—पणयमदार गिरवी माल का प्रतिधारण न केवल ऋण के संदाय के लिए या वचन के पालन के लिए कर सकेगा, वरन् ऋण के ब्याज और गिरवी माल के कब्जे के बारे में या परिरक्षण के लिए अपने द्वारा उपगत सारे आवश्यक व्ययों के लिए भी कर सकेगा ।[3]

---

[1] देखिए दामोदर वैली कारपोरेशन बनाम बिहार राज्य, ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 440.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 178 क.

[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 173.

पणयमदार, अपने इस प्रतिधारण के अधिकार का प्रयोग, सामान्यतः उसी ऋण या उसी वचन के लिए कर सकता है जिस ऋण या वचन के लिए माल गिरवी रखा गया है, किन्तु यदि पक्षकारों के बीच हुई संविदा के अंतर्गत पणयमदार को यह अधिकार दिया गया हो कि वह गिरवी माल को उस वचन या ऋण, जिसके लिए माल गिरवी रखा गया है, से अन्य किसी वचन या ऋण के लिए भी प्रतिधारण कर सकेगा तो पणयमदार उस ऋण या वचन, जिसके लिए कि माल वास्तव में गिरवी रखा गया था, से अन्य किसी वचन या ऋण के बारे में भी उसी माल का प्रतिधारण कर सकेगा, साथ ही यदि तत्प्रतिकूल कोई बात न हो तो, यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार की संविदा अभिव्यक्त रूप में ही हो वरन् पणयमदार द्वारा दिए गए पश्चात्वर्ती उधारों के बारे में यह उपधारणा कर ली जाएगी कि पणयमदार को पूर्णतः गिरवी रखे माल के प्रतिधारण का अधिकार उसके द्वारा किए गए ऐसे पश्चात्वर्ती उधारों के विषय में भी प्राप्त है।[1]

प्रतिधारण के इस अधिकार का विस्तार, गिरवी माल के कब्जे या उसके परिरक्षण के बारे में उपगत सारे आवश्यक अथवा मामूली व्ययों की सीमा तक हो सकेगा, किन्तु यदि गिरवी माल के कब्जे या परिरक्षण से सम्बन्धित व्यय गैर मामूली हुए हों तो पणयमदार को उन गैर मामूली व्ययों के लिए गिरवी काल के प्रतिधारण का अधिकार नहीं होगा। ऐसे गैर मामूली व्ययों के लिए निम्न नियम लागू होगा—

2. उपगत गैर मामूली व्ययों को प्राप्त करने का अधिकार—पणयमदार गिरवी माल के परिरक्षण के लिए अपने द्वारा उपगत गैर मामूली व्ययों को पणयमकार से प्राप्त करने का हकदार है।[2]

ऐसे गैर मामूली व्ययों को पणयमदार, पणयमकार के विरुद्ध वाद लाकर न्यायालय की सहायता से प्राप्त कर सकता है। इन व्ययों के लिए पणयमदार को गिरवी माल के प्रतिधारण का अधिकतर नहीं है।

3. पणयमकार द्वारा व्यतिक्रम की दशा में, पणयमदार के अधिकार—यदि पणयमकार उस ऋण के संदाय में या अनुबद्ध समय पर उस वचन का पालन करने में, जिसके लिए माल गिरवी रखा गया था, व्यतिक्रम करता है तो पणयमदार उस ऋण या वचन पर पणयमकार के विरुद्ध वाद ला सकेगा और गिरवी माल का साम्पार्श्विक प्रतिभूति के रूप में प्रतिधारण कर सकेगा, या गिरवी चीज को बेचने की युक्तियुक्त सूचना पणयमकार को देकर उस चीज को बेच सकेगा।

यदि ऐसे विक्रय के आगम उस रकम से कम हों, जो ऋण या वचन के बारे में शोध्य हैं, तो पणयमकार बाकी के संदाय के लिए तब भी दायी रहता है। यदि विक्रय के आगम उस रकम से अधिक हो जो ऐसे शोध्य हैं तो पणयमदार वह अधिशेष पणयमकार को देगा।

भारतीय संविदा अधिनियम की उपर्युक्त धारा 176 में निम्न पांच बातों का उपबंध किया गया है—

(i) पणयमदार, पणयमकार के विरुद्ध वाद ला सकता है, और ऐसे वाद के लिए पणयमदार द्वारा पणयमकार को किसी प्रकार की सूचना दिया जाना आवश्यक नहीं है।

(ii) पणयमदार, गिरवी रखे माल को साम्पार्श्विक प्रतिभूति के तौर पर प्रतिधारण कर सकता है।

---

[1] देखिए भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 174.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 175.

(iii) पणयमदार गिरवी चीज को बेच सकता है किन्तु इसके लिए उसे पणयमकार को युक्तियुक्त सूचना देनी होगी और यह सूचना चीज को बेचने की होनी चाहिए न कि चीज को बेचने के केवल आशय की। ऐसी सूचना देने के पश्चात् इस प्रकार के किसी प्रतिबन्ध का उपबन्ध नहीं है कि पणयमदार उस चीज को सूचना के पश्चात् कितने समय के भीतर बेचे। अतः सूचना के पश्चात् वह किसी भी समय उस चीज को बेच सकता है।

(iv) यदि शोध्य ऋण से उस चीज के विक्रय का आगम अधिक हो तो, अधिशेष पणयमकार को दिया जाएगा।

(v) यदि उस चीज के विक्रय का आगम शोध्य ऋण से कम हो तो जो बाकी रहे वह पणयमकार से वसूल किया जा सकेगा।

जब तक गिरवी माल का विक्रय नहीं हो जाए, पणयमकार ऋण का संदाय करके गिरवी माल के मोचन का हकदार रहता है। इसका निष्कर्ष यह है कि यदि पणयमकार ऋण की वसूली के लिए वाद संस्थित कर दे तो यद्यपि उसे माल को प्रतिधृत करने का अधिकार है तथापि उस पर यह भी बाध्यता है कि ऋण का संदाय होने पर वह माल को प्रति-परिदत्त कर दे। ऋण के सम्बन्ध में वाद लाने की स्थिति का अर्थ यह है कि पणयमदार, ऋण का संदाय कर दिए जाने पर गिरवी माल को प्रति-परिदत्त करने की स्थिति में है, अतः यदि उसने गिरवी माल के प्रति-परिदान की स्थिति नहीं रहने दी है, तो वह वाद में डिक्री का हकदार नहीं रहता। यदि विधि का आशय अन्यथा होता तो पणयमदार को ऋण की वसूली तथा माल को प्रतिधृत किये रहने के दोनों हक हो जाते और पणयमकार की स्थिति गिरवी की संविदा में उपगत दायित्व से भी गुरुतर हो जाती। अतः पणयमदार गिरवी माल को सांपार्श्विक प्रतिभूति के तौर प्रतिधृत करके ही ऋण की वसूली के लिए वाद ला सकता है जिसका सीधा अर्थ, न्या० जे० एम० शेलत के अनुसार, यह है कि ऋण के संदाय हो जाने पर उसे माल को प्रतिपरिदत्त करने की स्थिति में होना चाहिए क्योंकि यदि वह माल का प्रतिपरिदान करने की स्थिति में न हो तो उसे माल रखने, और ऋण के संदाय के दोनों अधिकार, नहीं हो सकते[1]। क्योंकि पणयमकार को यह हक सदैव है कि वह ऋण का संदाय करके गिरवी माल का मोचन करा सके। जैसाकि नीचे दिए गए नियम से स्पष्ट होगा, यदि माल का वास्तव में विक्रय नहीं हुआ है तो पणयमकार अपने व्यतिक्रम को दृष्टि में लाये बिना भी, कुछ शर्तों के अध्यधीन माल का मोचन करा सकता है।

व्यतिक्रमी पणयमकार का मोचनाधिकार :—

यदि उस ऋण के संदाय या उस वचन के पालन के लिए, जिसके लिए गिरवी की गई है, कोई समय अनुबद्ध हो, और पणयमकार ऋण का संदाय या वचन का पालन अनुबद्ध समय पर करने में व्यतिक्रम करे तो वह किसी भी पश्चात्वर्ती समय में, इसके पूर्व कि गिरवी माल का वस्तुतः विक्रय हो, उसका मोचन करा सकेगा, किन्तु ऐसी दशा में, उसे ऐसे अतिरिक्त व्ययों का, जो उसके व्यतिक्रम से हुए हों, संदाय करना होगा।[2]

उपनिधान से सम्बन्धित वाद :—

1. दोषकर्ता के विरुद्ध वाद—कोई पर-व्यक्ति, उपनिहिती को उप-निहित माल के उपयोग या उस पर कब्जे से दोष-पूर्वक वंचित करे या माल को कोई क्षति करे तो उपनिहिती ऐसे उपचारों का उपयोग

1 लल्लन प्रसाद बनाम रहमत अली, ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 1322 (1325-26).

2 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 177.

करने का हकदार है जिनका वसी दशा में स्वामी उपयोग कर सकता यदि उपनिधान नहीं किया गया होता और या तो उपनिधाता या उपनिहिती ऐसे वंचित किए जाने या ऐसी क्षति के लिए पर-व्यक्ति के विरुद्ध वाद ला सकेगा ।[1]

उपनिधाता को वाद लाने का अधिकार इसलिए हैं कि किसी पर-व्यक्ति का इस बात से कोई सरोकार ही नहीं हैं कि उपनिधाता और उपनिहिती के बीच की क्या संविदा हैं और उस संविदा के अधीन दोनों के क्या क्या अधिकार हैं, क्योंकि पर-व्यक्ति तो को वस्तु के वास्तविक कब्जे के आधार पर उपनिहिती को ही स्वामी मानना चाहिए । उपनिधाता को वाद लाने का अधिकार अपने स्वामित्व के कारण हैं तो उपनिहिती को अपने कब्जे के कारण ।

उपनिधाता उपनिहित माल को अपने ऋण के लिए प्रतिभूति के तौर पर रखता है ।

अतः यदि उपनिहिती किसी पर-व्यक्ति के कृत्य के कारण उपनिहित माल से वंचित हो जाए या किसी पर-व्यक्ति द्वारा उस माल को कोई क्षति पहुंचा दी जाए तो उपनिहिती को वे सारे उपचार उपलब्ध होंगे जो कि ऐसी अवस्थाओं में स्वयं स्वामी को होते ।

एक फर्म ने एक बैंक से 20,000 रुपए का ऋण लेकर, एक वचन पत्र लिख दिया और माल की रेलवे रसीद को बैंक के नाम में पृष्ठांकित करके उसे ऋण के लिए प्रतिभूति के तौर पर, बैंक को परिदत्त कर दिया तो उस मामले में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या वह बैंक वास्तव में उस माल का पणयमदार था अथवा केवल रेलवे रसीद का, क्योंकि बैंक ने उस रसीद में दर्शित पूरे परेषण के 35,000 रुपए के मूल्य की नुकसानी का एक वाद रेलवे के विरुद्ध संस्थित कर दिया था जैसे कि उस माल के स्वामी के द्वारा किया जाता । इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि रेलवे रसीद के परिदान द्वारा उस माल पर बैंक का, पणयमदार के तौर पर कब्जा हो गया था और बैंक को उपरोक्त नियम के अन्तर्गत, वे सब अधिकार थे जो कि उस माल के स्वामी को होते[2] । इसी विनिश्चय का अवलम्ब ग्रहण करते हुए कलकत्ता उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि रेलवे रसीद का मूल्यवान प्रतिफल वाला पृष्ठांकिती, रेलवे द्वारा माल का परिदान न किए जाने पर, उस माल के उपयोग और कब्जे से वंचित रह जाने के कारण, रेलवे के विरुद्ध उस माल की सम्पूर्ण कीमत के लिए वाद ला सकता है ।[3]

2. अनुतोष या प्रतिकर का विभाजन—उपरोक्त नियम के अन्तर्गत संस्थित किए गए वाद के परिणामों का लाभ उपनिहिती और उप-निधाता में से किस को और कितना होगा, इस विषय में संविदा अधिनियम की धारा 181 में यह उपबन्ध है कि ऐसे किसी वाद में अनुतोष या प्रतिकर के तौर पर जो कुछ भी अभिप्राप्त किया जाए वह, जहां पर कि उपनिधाता और उपनिहिती के बीच का सम्बन्ध हैं, उनके अपने-अपने हितों के अनुसार बरताया जाएगा ।

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 180.

[2] मोरवी मर्केन्टाइल बैंक बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1965 एस० सी० 1954.

[3] गनपति राय सागरमल बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1975 कलकत्ता 265.

अध्याय 12

अभिकरण—समस्या और स्वरूप

कुछ संव्यवहार इतने विस्तृत होते हैं कि उनमें स्थान और समय की सीमाओं के कारण एक पक्षकार का, दूसरे पक्षकार से, प्रत्यक्ष और सीधे सम्पर्क करना सम्भव या सुविधाजनक नहीं हो पाता और ऐसी दशा में कोई व्यक्ति अपने कार्य के लिए किसी अन्य व्यक्ति को प्रतिनिधि के तौर पर नियुक्त कर लेता है और जब यह अन्य व्यक्ति अपने नियोजक के लिए पर-व्यक्ति से व्यवहार करता है अथवा पर-व्यक्तियों के समक्ष अपने नियोजक का प्रतिनिधित्व करता है तो वह अपने नियोजक का अभिकर्ता कहा जाता है ।

अंग्रेजी में अभिकर्ता के लिए एजेंट शब्द प्रयुक्त होता है जो लैटिन धातु 'एजीयर' से व्युत्पन्न हुआ है । 'एजीयर' का अर्थ 'देखना' होता है । अभिकरण का संव्यवहार लैटिन भाषा के एक सूत्र **क्वि फैसिट पर एलिम फेसिट पर सी** पर आधारित है जिसका अर्थ है कि जो कार्य कोई व्यक्ति स्वयं कर सकता है उसे वह स्वयं के तौर पर किए जाने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को प्राधिकृत कर सकता है अर्थात् जो व्यक्ति किसी कार्य को अन्य द्वारा करवाता है वह कार्य स्वयं उस व्यक्ति का ही किया हुआ कार्य माना जाता है ।

संविदात्मक संव्यवहारों में, अभिकरण का यह स्वरूप त्रिकोणात्मक हो जाता है क्योंकि अभिकरण के माध्यम से किए गए संव्यवहारों में तीन पक्ष, प्रथम मालिक, द्वितीय अभिकर्ता और तृतीय कोई परव्यक्ति अन्तर्वलित हो जाते हैं और यहीं से समस्याओं का सूत्रपात होने लगता है। **बोल्टन बनाम लैम्बर्ट**[1] वाले मामले में उत्पन्न समस्या का स्वरूप यह था कि किसी व्यक्ति ने बिना प्राधिकार के किसी अन्य के लिए किसी पर-व्यक्ति द्वारा की गई प्रस्थापना को प्रतिगृहीत कर लिया और उस अन्य व्यक्ति ने प्रतिग्रहण का अनुसमर्थन कर दिया किंतु तत्पश्चात् उस पर-व्यक्ति ने उस प्रस्थापना को प्रतिसंहृत कर लिया । इस मामले में यह अवधारित हुआ कि पर-व्यक्ति द्वारा विधितः ऐसा प्रतिसंहरण नहीं किया जा सकता था । किंतु यह समस्या का एक पक्ष है । समस्या यह भी हो सकती है क्या वह पर-व्यक्ति मालिक द्वारा उस अप्राधिकृत कार्य के अनुसमर्थन किए जाने से पूर्व अपनी प्रस्थापना का प्रतिसंहरण करने में समर्थ होगा । ऐसी समस्याओं का जन्म अभिकरण के क्षेत्र में स्वाभाविक है क्योंकि **इस क्षेत्र में वस्तुतः दो संविदाओं का विलयन होता है** । अभिकर्ता और पर-व्यक्ति के मध्य की गई संविदा स्वाभाविक प्रत्यक्ष और वास्तविक है किंतु उसकी विस्तीर्णता के कारण वह मालिक और पर-व्यक्ति की संविदा बन कर अभिकर्ता द्वारा की गई संविदा का विलय कर लेती है ।

भारतीय संविदा अधिनियम द्वारा की गई परिभाषा में, **अभिकर्ता** वह व्यक्ति है जो किसी अन्य की ओर से कोई कार्य करने के लिए या पर-व्यक्तियों से व्यवहारों में किसी अन्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए नियोजित है । वह व्यक्ति जिसके लिए ऐसा कार्य किया जाता है या जिसका इस प्रकार प्रतिनिधित्व किया जाता है **मालिक** कहलाता है[2] । अधिनियम में यह भी कहा गया है कि **अभिकरण के सर्जन के लिए कोई प्रतिफल आवश्यक नहीं है**[3] ।

---

1 एल० आर० (1888) 41 चान्सरी, 295.

2 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 182.

3 भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 185.

अभिकरण की संविदा का सार यह है कि मालिक अपने अभिकर्ता को अपना कार्य करने के लिए या अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए अथवा पर-व्यक्तियों के साथ संविदात्मक संबंधों के सर्जन में सहायक होने के लिए प्राधिकृत करता है। अभिकर्ता के कार्य करने का प्राधिकार व्युत्पन्नी (डिराइवेटिव) प्राधिकार होता है।

परामर्श और प्रतिनिधित्व में स्पष्ट अन्तर है, अतः वह व्यक्ति जो व्यापारिक मामलों में किसी को केवल परामर्श देता है, अभिकर्ता नहीं हो जाता। अभिकर्ता के संबंध में विशेष बात उसका वह प्राधिकार है जिसके द्वारा वह मालिक को पर-व्यक्तियों के प्रति उत्तरदायी बनाता है। अभिकर्ता के प्राधिकार की सीमा के भीतर अभिकर्ता के द्वारा किए गए समस्त कार्य मालिक के द्वारा किए गए समझे जाते हैं और मालिक अपने अभिकर्ता द्वारा किए हुए कार्यों से तब तक आबद्ध रहता है जब तक कि अभिकरण को समाप्त ही न कर दिया जाए। **अभिकर्ता मालिक का विधिक प्रतिनिधि है।**

वैल्सवर्थ बनाम फरार[1] वाले मामले में यह कहा गया है कि बीसवीं शताब्दी में संविदा और अपकृत्य में जो भेद किया गया है, वह प्राचीनकाल में विद्यमान नहीं था। अतः स्वामी और सेवक तथा मालिक और अभिकर्ता के पारस्परिक संबंधों में भेद है। सामान्यतया, अपकृत्य विधि के प्रतिनिधिक दायित्व और अभिकरण विधि के मालिक के दायित्व में भिन्नता है, तथापि **बोस्टड की एजेन्सी**[2] में यह माना गया है कि कुछ व्यक्ति, जिन्हें संगति के दृष्टिकोण से अपकृत्य विधि में सेवक कहा जाता हैं, उन्हें अभिकर्ता कहा जाने का भी उतना ही औचित्य है। उदाहरण के लिए बस का परिचालक सवारियों को बस में चढ़ाते समय यात्रियों को टिकट देता है तो वह अभिकर्ता के तौर पर कार्य करता है।

इस बात की परख कि कोई व्यक्ति अभिकर्ता है अथवा नहीं, इस बात में है कि क्या वह व्यक्ति पर-व्यक्तियों से किए गए संव्यवहार में किसी अन्य का प्रतिनिधित्व करके, उस अन्य को उस परव्यक्ति के प्रति दायी बना सकता है। यदि हां, तो वह अभिकर्ता है।[3]

अभिकरण विबन्ध के आधार पर भी व्युत्पन्न हो सकता है। **हाल्सबरीज लाज आफ इंग्लैंड**[4] में कहा गया है कि कोई व्यक्ति जब अपने कथन अथवा आचरण द्वारा ऐसा व्यपदेशन करता है अथवा ऐसे व्यपदेशन को अनुज्ञात करता है कि अमुक व्यक्ति उसका अभिकर्ता है, तो ऐसे व्यपदेशन के विश्वास पर अभिकर्ता कहे जाने वाले व्यक्ति से संव्यवहार करने वाले व्यक्ति के प्रति अभिकरण से इंकार नहीं कर सकता, चाहे उस व्यक्ति और अभिकर्ता कहे जाने वाले व्यक्ति के बीच कोई अभिकरण की संविदा रही हो अथवा न रही हो।

अभिकरण की संविदा अभिव्यक्त भी हो सकती है तथा विवक्षित भी। अभिव्यक्त अभिकरण ऐसे व्यपदेशन का परिणाम है कि अमुक व्यक्ति अभिकर्ता है। यह एक आत्मपरक बात है जहां अभिकरण का संबंध अभिव्यक्त नहीं होता अथवा अभिव्यक्त होता हो तो किसी अमुक प्रश्नगत संव्यवहार के विषय में नहीं होता वहां विवक्षित अभिकरण पक्षकारों के आचरण से अथवा किसी वाणिज्य, व्यवसाय या कारबार के प्रायिक अनुक्रम से वस्तुपरक तथ्य के रूप में उदभूत होता है। जिस वाणिज्य, अथवा

[1] एल० आर० (1967) क्यू० बी० 497.

[2] 13वां संस्करण, पृ० 327.

[3] देखिए—महेश चन्द्र बनाम राधाकिशोर, 12सी० डब्ल्यू० एन० 28.

[4] तृतीय संस्करण, जिल्द 1, पृ० 158-159.

व्यवसाय अथवा कारबार में जो कुछ प्राथिक रीतियों के आधार पर किया जाना मान्य रहा हो, उस सबके लिए अभिकरण का विवक्षित प्राधिकार होता है और यह विवक्षा वस्तुतः वास्तविक अभिकरण की एक प्रसंगति मात्र है। फ्रिडमैन[1] के अनुसार, न्यायालयों द्वारा इन दोनों को एक ही भाषा में व्यक्त किया जाता है।

अभिकरण की व्युत्पत्ति विधिक संक्रिया द्वारा भी सम्भव है। अभिकर्ता द्वारा आपात में प्रयुक्त किये जाने वाला प्राधिकार विधिक संक्रिया द्वारा व्युत्पन्न अभिकरण की कोटि में आता है। पत्नी द्वारा पति के प्रत्यय पर किए गए संव्यवहारों को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है जब तक कि पति ने पत्नी को ऐसा करने से वर्जित न कर रखा हो।[2] इसे **आवश्यकताजन्य अभिकरण** भी कहा जा सकता है।

भारतीय संविदा अधिनियम के अनुसार **अभिकरण की व्युत्पत्ति तीन स्वरूपों** में मानी जा सकती है—1. अभिव्यक्त अथवा विवक्षित नियुक्ति द्वारा, (धारा 187), 2. आपात अथवा आवश्यकताओं द्वारा (धारा 189), तथा 3. अनुसमर्थन द्वारा (धारा 196)। आगामी पृष्ठों में सुसंगत शीर्षकों के अनुसार संविदा अधिनियम के अभिकरण संबंधी उपबन्धों की विवेचना की जाएगी।

भारतीय संविदा अधिनियम में अभिकर्ता के प्राधिकार की विवक्षायें

भारतीय संविदा अधिनियम में अभिकर्ता के व्युत्पन्न प्राधिकार की सामान्य विवक्षायें निम्नलिखित हैं—

1. अभिकर्ता के द्वारा अपने मालिक की ओर से की गई संविदाओं के सम्बन्ध में, व्यक्तिगत रूप से न्यायालयों में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती।

2. अभिकर्ता स्वयं भी व्यक्तिगत रूप से पर-व्यक्तियों के विरुद्ध न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं कर सकता।

3. मालिक और अभिकर्ता अभिकरण के प्राधिकार की सीमा में, एक दूसरे के प्रति दायी हैं क्योंकि दोनों ही परस्पर एक स्वतंत्र संविदा से आवद्ध हैं।

4. यदि अभिकर्ता कोई अप्राधिकृत कार्य करता है अर्थात् कोई ऐसा कार्य करता है जो उसके प्राधिकार की सीमा से परे है, तो ऐसे कार्य के लिए वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी है, किन्तु यदि मालिक चाहे तो अभिकर्ता के किसी अप्राधिकृत कार्य का अनुसमर्थन करके स्वयं उत्तरदायी हो सकता है।

5. अभिकरण की तात्विक विवक्षा यह है कि यह एक व्यक्ति द्वारा दूसरे का इस उद्देश्य से किया हुआ नियोजन है कि जिस व्यक्ति को नियोजित किया गया है वह अपने नियोजक का पर-व्यक्तियों से विधिक सम्बन्ध स्थापित करा दे। मालिक द्वारा, किसी अभिकर्ता के नियोजन का उद्देश्य अभिकर्ता द्वारा मालिक की ओर से कोई कार्य करना या पर-व्यक्तियों से व्यवहारों में मालिक का प्रतिनिधित्व करना है।

अभिकरण में आपराधिक दायित्व नहीं होता

अभिकर्ता का नियोजन स्वयं एक संविदा है, अतः इसका उद्देश्य अविधिपूर्ण या आपराधिक नहीं होना चाहिए। अभिकर्ता अपने मालिक के लिए जो कार्य करे या जिन व्यवहारों में वह अपने मालिक

[1] लॉ ऑफ एजेंसी, द्वितीय संस्करण, पृ० 92.

[2] देखिए—ऐवरसली डाइमैस्टिक रिलेशन्स, छठा संस्करण, 1951, पृ० 208 तथा स्टोलजार का लॉ ऑफ एजेन्सी, पृ० 160.

का प्रतिनिधित्व करे, वे किसी भी भांति अवैध अथवा आपराधिक प्रवृत्ति के नहीं होने चाहिएं। यदि वे कार्य या व्यवहार अवैध हुए तो अभिकरण की संविदा शून्य होगी और यदि वे कार्य या व्यवहार आपराधिक हुए तो मालिक और अभिकर्ता एक दूसरे के प्रति दायी न होकर, दोनों ही देश की आपराधिक विधि के समक्ष दायी होंगे, किन्तु अभिकर्ता ऐसे प्राधिकार के आधार पर जैसा कि न्या० एम० एच० बेग का कथन है, मालिक को क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं बना सकता।[1] भारतीय संविदा अधिनियम में स्पष्टतः कहा गया है—[2]

"जहां कि एक व्यक्ति किसी दूसरे को ऐसा कार्य करने के लिए नियोजित करता है, जो आपराधिक हो, वहां नियोजक उस कार्य के परिणामों के लिए अभिकर्ता की क्षति पूर्ति न तो अभिव्यक्त और न विवक्षित वचन के आधार पर करने का दायी है।"

इस नियम के साथ निम्न दो दृष्टांत भी दिए गए हैं—

क—ग को पीटने के लिए ख को क नियोजित करता है और उस कार्य के सभी परिणामों के लिए उसकी क्षतिपूर्ति करने का करार करता है। ख तदुपरि ग को पीटता है और वैसा करने के लिए उसे ग को नुकसानी देनी पड़ती है। क उस नुकसान के लिए ख की क्षतिपूर्ति करने का दायी नहीं है।

ख—ख, एक समाचार पत्र का स्वत्वाधिकारी, क की प्रार्थना पर उस पत्र में एक अपमानजनक लेख प्रकाशित करता है और क उस प्रकाशन के परिणामों और उसके सम्बन्ध में जो भी अनुयोजन हो, उसके सब खर्चों और नुकसानी के लिए ख की क्षतिपूर्ति करने का करार करता है। ख पर ग द्वारा वाद लाया जाता है और उसे नुकसानी देनी पड़ती है और व्यय भी उठाना पड़ता है। उक्त क्षतिपूर्ति-वचन के आधार पर ख के प्रति क दायी नहीं है।

सामान्य नियम यह है कि दोषकर्ताओं के बीच क्षतिपूर्ति अथवा समान अभिदाय का कोई दायित्व नहीं होता और इस नियम का अपवाद केवल वहां होता है जहां कि किया हुआ कार्य अपने आपमें स्पष्टतः अवैध न हो। यह नियम उन्हीं अवस्थाओं में लागू होता है जहां कि अनुतोष चाहने वाले व्यक्ति के प्रति यह उपधारणा की जा सके कि वह यह जानता था कि उसके द्वारा जो कार्य किया जा रहा है वह अवैध है, किन्तु उन परिस्थितियों में यह नियम लागू नहीं होता जहां कि उस व्यक्ति को किसी विधिक उपधारणा के आधार पर ही अपकृत्य का दोषी माना गया हो।[3] किसी फर्म के कुछ भागीदारों द्वारा लोकसेवकों के रिश्वत देने में व्यय किया हुआ धन जबकि ऐसा व्यय अन्य भागीदारों की सहमति से किया गया हो, अन्य भागीदारों के नाम प्रदर्शित किया जा सकता है।[4] किन्तु यह स्पष्ट है कि बिल्कुल आपराधिक कार्य के लिए, अभिकर्ता को मालिक के विरुद्ध क्षतिपूर्ति का कोई अधिकार नहीं है।

अभिकर्ता कौन हो सकेगा

जहां तक कि मालिक और पर-व्यक्तियों के बीच का संबंध है कोई भी व्यक्ति अभिकर्ता हो सकेगा, किन्तु कोई भी व्यक्ति, जो प्राप्तवय और स्वस्थ-चित्त न हो अभिकर्ता ऐसे न हो सकेगा कि वह अपने

---

[1] फर्म प्रतापचन्द नोपाजी बनाम फर्म कोट्रिक वेंकट सेट्टी एण्ड सन्स, ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1223 (1233).

[2] धारा, 224.

[3] हरी बनाम जतीन्द्र, 5 सी० डब्ल्यू० एन० 393.

[4] ज्योति प्रसाद बनाम हरद्वारी, ए० आई० आर० 1932 इलाहाबाद 128.

मालिक के प्रति तन्निमित्त भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अनुसार उत्तरदायी हो।[1]

सैयद अब्दुल खादर बनाम रामीरेड्डी[2] वाले मामले में न्यायाधिपति डी० ए० देसाई ने यह अवधारित किया है कि इस नियम के अनुसार, तीन मालिकों द्वारा संयुक्त एक अभिकर्ता की नियुक्ति की जा सकती है।

इस नियम के अनुसार **अवयस्क अथवा विकृतचित्त व्यक्ति भी अभिकर्ता हो सकता है किन्तु शर्त यह है कि वह अपने मालिक के प्रति संविदा अधिनियम के अन्तर्गत दायी नहीं होगा।** उदाहरण के लिए अवयस्क किसी फर्म में भागीदार तो हो ही सकता है और अपने भागीदार होने की सामर्थ्य में वह अपने सह-भागीदारों को पर-व्यक्ति को लिखे गये वचन-पत्र के आधार पर आबद्ध कर सकता है, किन्तु वह ऐसा करके उन व्यक्तियों को जो कि भागीदार नहीं हैं, आबद्ध नहीं कर सकता[3] और न स्वयं ही उस फर्म अथवा अन्य भागीदारों के प्रति दायी हो सकता है।

अभिकरण की तुलना में कुछ अन्य प्रकार के सम्बन्ध या पद

(1) न्यायालय द्वारा नियुक्त प्रापकः—सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 40 के अन्तर्गत किसी सम्पत्ति के लिए नियुक्त किया गया प्रापक, अभिकर्ता न होकर, मालिक के तौर पर कार्य करता है[4] और वह अपने से व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के प्रति व्यक्तिगत रूप से दायी रहता है, जब तक कि उसकी नियुक्ति की शर्तों में ही उसके व्यक्तिगत दायित्व का अपवर्जन न कर दिया गया हो।[5]

(2) न्यासीः—न्यासी को अभिकर्ता नहीं कहा जा सकता, यद्यपि अभिकरण की संविदा में प्रायः न्यास और विश्वास के सम्बन्ध अन्तर्वलित होते हैं और अभिकर्ता की अभिरक्षा में जो माल रहता है वह न्यास के तौर पर मालिक के फायदे के लिए होता है।[6]

(3) नौकर या कर्मचारी तथा स्वतन्त्र ठेकेदारः—**मालिक और नौकर के सम्बन्ध और अभिकरण के सम्बन्धों में यह अन्तर है कि अभिकर्ता को मालिक द्वारा जो कार्य करना हो केवल उसी सम्बन्ध में निदेशित किया जाता है किन्तु नौकर को मालिक न केवल यह निदेश देता है कि क्या कार्य किया जाए वरन् यह भी कि वह कार्य किस प्रकार किया जाए**[7]। मालिक और नौकर के बीच जो सम्बन्ध हैं, उनके अवधारण के विषय में समुचित दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि क्या कार्य की प्रकृति के अनुसार, नियोजक का कर्मचारी के कार्य पर सम्यक् नियंत्रण और पर्यवेक्षण रहा है[8]। यदि ऐसा रहा है तो, वह सम्बन्ध मालिक और नौकर के तौर का है। अभिकर्ता, यद्यपि अपने प्राधिकार के प्रयोग में मालिक के समय-समय पर दिये जाने वाले विधिपूर्ण अनुदेशों के अधीन रहता है तथापि वह अपने प्राधिकार के प्रयोग में अपने मालिक के प्रत्यक्ष नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन नहीं होता। इसके विपरीत, कर्मचारी, अपने नियोजक के प्रत्यक्ष नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अध्यधीन होता है।

1 देखिए भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 184.

2 ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 553.

3 मुआंग आडंग **बनाम** हाजी दादा, 42 आई० सी० 98.

4 पारसन्स **बनाम** सोवरिन बैंक, एल० आर० (1913) ए० सी० 160.

5 पैट्रिक **बनाम** लियान, ए० आई० आर० 1938 रंगून 611.

6 काली **बनाम** हरी, आई० एल० आर० (1938) कलकत्ता 652.

7 इन्डोयूनियन एश्योरेन्स **बनाम** श्रीनिवासन, ए० आई० आर० 1946 मद्रास, 530.

8 हरिश्चन्द्र **बनाम** त्रिलोकीसिंह, ए० आई० आर० 1957 एस० सी० 444.

दूसरी ओर एक स्वतंत्र ठेकेदार, किसी प्रकार के नियंत्रण या हस्तक्षेप से पूर्णतः मुक्त होता है तथा उसका परिवचन केवल एक ऐसे विनिर्दिष्ट परिणाम को उत्पन्न करने के लिए हुआ करता है जिसे उत्पन्न करने के लिए वह अपने ही साधनों का उपयोग करता है ।[1]

(4) **अविभक्त कुटुम्ब का कर्ता**:—संविदा अधिनियम की धारा 182 के अन्तर्गत अभिकर्ता को ऐसा व्यक्ति माना गया है जो किसी अन्य की ओर से कोई कार्य करने के लिए पर-व्यक्तियों से व्यवहारों में किसी अन्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए नियोजित है । अविभक्त हिन्दू परिवार को विधिक व्यक्ति माना गया है तथापि अविभक्त हिन्दू परिवार का कर्ता, अभिकरण के वास्तविक अर्थ में अभिकर्ता नहीं होता[2] । ऐसा इसलिए कि अभिकरण, वास्तव में एक संविदा की उपज है,[3] जबकि कर्ता और परिवार के सदस्यों के बीच कोई संविदा नहीं हुआ करती । किन्तु विधिक व्यक्ति होने के कारण, कर्ता, अविभक्त कुटुम्ब की ओर से किसी अभिकर्ता का नियोजन कर सकता है[4] । अविभक्त हिन्दू कुटुम्ब के कर्ता की हैसियत कुछ अंशों में न्यासी के समान हो सकती है ।[5]

(5) **नगरपालिका का अध्यक्ष**:—ऊपर बताया जा चुका है कि अभिकरण किसी संविदा की उपज हुआ करता है, अतः नगरपालिका का अध्यक्ष, जिसका पद संविदा द्वारा निर्मित न होकर, कानून के अनुसार, निर्वाचन द्वारा होता है, अभिकर्ता नहीं माना जा सकता ।[2]

(6) **प्लीडर**:—प्लीडर को अपने मुवक्किल, जो कि प्रकटतः मालिक होता है, का अभिकर्ता माना गया है ।[6]

(7) **पत्नी**:—सामान्य रूप से, पति-पत्नी के सम्बन्ध के कारण ही, पति अपनी पत्नी के द्वारा किए गए ऋणों के लिए उत्तरदायी नहीं होता । पत्नी के ऋणों के लिए पति का उत्तरदायित्व अभिकरण के सिद्धांत पर निर्भर है और पति तभी उत्तरदायी हो सकता है, जब यह दर्शित हो कि उसने अपनी पत्नी के कृत्यों के प्रति अपनी अभिव्यक्त या विवक्षित सहमति प्रदान की है । यदि पति-पत्नी में सहवास के सम्बन्ध विद्यमान हैं तो पति की इस प्रकार की सहमति की उपधारणा की जा सकती है और इस उपधारण का, प्रतिकूल साक्ष्य के द्वारा खण्डन भी किया जा सकता है ।[7] ऐसी सब अवस्थाओं में जहां पत्नी ने अपने पति की साख को गिरवी किया हो, यह दर्शित किया जाना आवश्यक है कि पत्नी को पति द्वारा प्राधिकृत किया गया था और इसे एक तथ्य की भांति परिसिद्ध करना होगा कि ऐसा प्राधिकार अभिव्यक्त था या वह परिस्थितियों की उपधारणा के आधार पर विवक्षित था ।[8]

यदि कोई पति, पत्नी द्वारा व्यापारियों के साथ किए गए वर्तमान या पूर्व के संव्यवहारों को मान्यता प्रदान करके या उनके प्रति अपनी सहमति व्यक्त करके, उन दायित्वों को अपने ऊपर लेता है, तो वह अपनी पत्नी को अपना अभिकर्ता ही मानता है जिसके आधार पर पत्नी को पति के प्राधिकार पर विलास

---

[1] लक्ष्मीनारायण बनाम हैदराबाद सरकार, ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 364 और क्यू० एस० तैय्यब जी बनाम कमिशनर, ए० आई० आर० 1960 एस० सी० 1269.

[2] कन्दासामी बनाम सोमासकान्त, 20 एम० एल० जे० 371.

[3] टैवाय एम० कमेटी बनाम बू, 164 आई० सी० 410.

[4] शंकरलाल बनाम तोशनलाल, ए० आई० आर० 1934 इलाहाबाद 553.

[5] अन्नामलाई बनाम मुरुगास, 7 सी० डब्ल्यू० एन० 754 पी० सी०.

[6] बिधू बनाम अहमद, 24 सी० डब्लू० एन० 1263.

[7] मोण्टेग बनाम बनैडिक्ट, 3 बान वेल एण्ड क्रेस वैल्स रिपोर्ट्स, 631.

[8] रौबिन्सन बनाम रिग, 34 ए० एल० जे० 50.

की सामग्री के लिए भी पति की ओर से संविदा करने का अधिकार प्राप्त होता है और ऐसी दशा में पति, पत्नी द्वारा व्यापारियों के साथ की गई सभी संविदाओं के लिए उत्तरदायी होगा, जब तक कि पति द्वारा व्यापारियों को यह तथ्य ज्ञात न करा दिया गया हो कि उसने अपनी पत्नी का अभिकरण समाप्त कर दिया है ।[1]

जहां पति-पत्नी एक साथ रहते हों, और पति पत्नी की आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो, वहां पति, पत्नी द्वारा पर-व्यक्तियों से की हुई संविदा से बाध्य नहीं होगा, सिवाय उन अवस्थाओं के जिनमें कि यह दर्शित करने के लिए युक्तियुक्त आधार हो कि पत्नी ने पति के प्राधिकार से संविदा की थी। जहां पति-पत्नी एक साथ रहते हों, किन्तु पति-पत्नी की आवश्यकताओं की या उसके योग्य जीवन के अनुकूल, उपयुक्त साधनों की पूर्ति नहीं करता हो, तो पत्नी, पति की साख को, ऐसी वस्तुओं के लिए, गिरवी कर सकती है जो उसके जीवन और स्तर के लिए सर्वथा आवश्यक हो ।[2]

जहां किसी युक्तियुक्त कारणों के बिना, पति, पत्नी को घर से निकाल दे या तो पत्नी द्वारा सर्वथा आवश्यक वस्तुओं के लिए की गई संविदाओं से पति बाध्य होगा, क्योंकि ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पति बाध्य है, किन्तु यदि पत्नी बिना किसी युक्तियुक्त कारण के पति को त्याग कर पृथक् रहने लगी हो, तो वह अपनी आवश्यकताओं के लिए भी पति को बाध्य नहीं कर सकती ।[3]

जहां पत्नी, पति की ओर से उसके व्यापार का संचालन कर रही हो, वहां, पति, पत्नी के कार्यों के लिए दायी होता है किन्तु यह उपधारणा विवाहित महिला सम्पत्ति अधिनियम, 1874 के उपबन्धों से अपवर्जित हो जाती है। किन्तु जहां पत्नी स्वयं अपना कारबार कर रही हो, वहां उसके ऋणों के लिए पति दायी नहीं हो सकता ।[4] जहां पति ने अपनी पत्नी की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपबन्ध कर रखा हो, वहां पत्नी का अपने पति की साख को गिरवी करने की उपधारणा का अपवर्जन हो जाता है ।[5]

इस सम्बन्ध में सामान्य नियम यह है कि यदि कोई व्यक्ति, किसी अन्य की पत्नी के साथ की हुई संविदा के आधार पर उसके पति को दायी मानता है तो उसे यह साबित करना होगा कि पत्नी को पति की ओर से संविदा करने का प्राधिकार था, क्योंकि ऐसे प्राधिकार के बिना, पत्नी अपनी संविदा के लिए पति को आबद्ध नहीं कर सकती ।[6]

(8) पुत्रः—पुत्र को पिता की ओर से कार्य करने का कोई विवक्षित प्राधिकार प्राप्त नहीं होता। ऐसा प्राधिकार अभिव्यक्त होना चाहिए। किन्तु सामान्य कलापों में, **पिता के साथ रहने वाले पुत्र को, पिता की वस्तुओं के उपयोग का विवक्षित प्राधिकार है।** अवयस्क पुत्र के भरणपोषण का पिता पर दायित्व होता है, भले ही पुत्र की स्वयं की संपत्ति कितनी ही विशाल हो। किन्तु पुत्र की विधवा माता पर ऐसा दायित्व नहीं है ।[7]

---

[1] वैंजले **बनाम** फोर्डर, एल० आर० 3 क्यू० बी० 559.

[2] बाबूलाल **बनाम** परसल, 34 ए० एल० जे० 1280.

[3] नाथूभाई **बनाम** जवहर बाई जी०, आ:ई० एल० आर० (1876), 1 मुंबई 121.

[4] अल्लूम दी **बनाम** ब्राहम, आई० एल० आर० (1878), 4 कलकत्ता 140.

[5] मोरेल ब्रदर्स **बनाम** वैस्टमोर लैण्ड, एल० आर० (1904) ए० सी० 11.

[6] मैनबी **बनाम** स्काट, एम० 2 एस० एम० एल० सी० 417.

[7] डगलस **बनाम** एन्ड्रूज, 12 बीवान्स रिपोर्ट्स 310.

साधारण, विशेष और सर्वस्व अभिकर्ता

विधि के अन्तर्गत अभिकर्ताओं को साधारण, विशेष और सर्वस्व अभिकर्ताओं की श्रेणी में रखा जा सकता है। साधारण अभिकर्ता को अपने मालिक के लिए सभी मामलों में, या किसी विशिष्ट प्रकार के व्यापार या व्यवसाय से सम्बन्धित प्रत्येक विषय में व्यवहार करने का प्राधिकार होता है, किन्तु विशेष अभिकर्ता को किसी एक विशिष्ट संव्यवहार में, अपने मालिक की ओर से किसी विशिष्ट कार्य को ही करने का प्राधिकार होता है। साधारण अभिकर्ता और विशेष अभिकर्ता दोनों को ही, सम्बन्धित व्यापार से आनुषंगिक सभी प्रकार के कार्य करने का प्राधिकार होता है। दोनों में अन्तर यह है कि साधारण अभिकर्ता को अपने व्यवसाय या व्यापार से परे किसी विषय में अपने निजी विवेक के प्रयोग का प्राधिकार नहीं होता तथा जिस कार्य के लिए उसका नियोजन किया गया है, उसके क्षेत्र में भी उसे अपने निजी विवेक के प्रयोग का प्राधिकार सीमित ही होता है जबकि विशेष अभिकर्ता को उस विशिष्ट संव्यवहार में जिसके लिए कि उसका नियोजन किया गया है, अपने निजी विवेक के प्रयोग का प्राधिकार अपेक्षाकृत विस्तृत होता है। सर्वस्व अभिकर्ता को मालिक की ओर से, प्रत्येक प्रकार के और वे सभी प्रकार के कार्य करने का वैसा ही प्राधिकार होता है जैसा कि स्वयं मालिक विधितः करने या प्रत्यायोजित (डैलीगेट) करने का प्राधिकार रखता है।[1]

व्यापार जगत में प्रचलित अभिकर्ताओं की श्रेणियां

व्यापार जगत में, अभिकर्ताओं की, प्रचलित और परिचित श्रेणियां निम्न प्रकार से हैं—

(1) **प्रत्यायक अभिकर्ता**:—प्रत्यायक अभिकर्ता (डैलक्रैडर एजेण्ट) से तात्पर्य ऐसे अभिकर्ता से है जो माल के विक्रय के लिए नियुक्त किया जाता है किन्तु वह अतिरिक्त कमीशन लेकर, माल के क्रेता की शोधन-क्षमता को प्रत्याभूत करता है और इसी बात के लिए वह अपना अतिरिक्त प्रत्यायक कमीशन लेता है[2]। अतिरिक्त कमीशन के बदले में, प्रत्यायक अभिकर्ता इस बात का दायित्व लेता है कि यदि उसके द्वारा विक्रय किए हुए माल की कीमत न मिली तो वह मालिक की क्षतिपूर्ति कर देगा। प्रत्यायक अभिकर्ता, उसी अवस्था में मालिक की क्षतिपूर्ति करने का दायी है जबकि क्रेता के दिवालिया होने अथवा अन्य किसी ऐसे ही कारण से, क्रेता से माल की कीमत को वसूल न किया जा सके।[3]

(2) **कमीशन अभिकर्ता**:—कमीशन अभिकर्ता से तात्पर्य ऐसे अभिकर्ता से है जो मालिक की ओर से, वस्तुओं का क्रय और विक्रय, मालिक के अधिकाधिक लाभ के लिए करता है तथा इसके बदले में कमीशन प्राप्त करता है।

(3) **फैक्टर**:—फैक्टर और कमीशन अभिकर्ता में अन्तर यह है कि साधारण अभिकर्ता का माल पर कब्जा नहीं होता जबकि फैक्टर का, मालिक की ओर से, माल पर, कब्जा भी रहता है। फैक्टर प्रायः अपने ही नाम में माल का क्रय-विक्रय कर लेता है और संदाय प्राप्त करके रसीद भी दे देता है और माल के प्रतिधारण का अधिकार भी रखता है और ऐसे प्रतिधारण का अधिकार उसे न केवल माल के सम्बन्ध में उपगत व्ययों के लिए ही वरन् उस लेखे की सभी साधारण बाकियों के लिए प्रतिभूति के तौर पर माल को रखे रहने का भी होता है।[4]

---

1 अमृतलाल सी० शाह बनाम राम कुमार, ए० आई० आर० 1962 पंजाब 325.

2 जिब्राइल एंड सन्स बनाम चर्चिल, एल० आर० (1914) 3 के० बी० 1272.

3 चंपा बनाम तुलसी 105 आई० सी० 739.

4 जफर भाई बनाम थामस डी०, आई० आर० एल० 17 मुम्बई 520.

(4) **नीलामकर्ता**:—नीलामकर्ता की दोहरी हैसियत होती है । यद्यपि नीलामकर्ता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि, खुले में नीलाम किए जाने वाले माल का कब्जा उसे दिया ही जाए, किन्तु वह विक्रेता के लिए इस कारण अभिकर्ता होता है कि वह विक्रेता के लिए माल का विज्ञापन करता है और क्रेता का अभिकर्ता वह इसलिए होता है कि क्रेता से कीमत का संदाय नीलामकर्ता को ही प्राप्त करना होता है ।[1]

(5) **सह-अभिकर्ता** :—जब अभिकरण की संविदा एक से अधिक व्यक्तियों के साथ संयुक्त रूप से की जाए और यह स्पष्ट निदेश न हो कि कौन-से एक या अधिक व्यक्ति उस अभिकरण के अन्तर्गत कार्य करेंगे तो उस अभिकरण पर सबका संयुक्त अधिकार होता है और वे सब सह-अभिकर्ता होते हैं जो उसके अन्तर्गत कार्य करते हैं ।

(6) **ब्रोकर(दलाल)** :—दलाल एक ऐसा अभिकर्ता होता है जिसका नियोजन वस्तुओं के क्रय और विक्रय के लिए किया जाता है । उसका मुख्य कार्य किसी व्यापारिक संव्यवहार के लिए दो पक्षकारों के बीच सम्बन्ध स्थापित करा देना या उनके बीच संविदा स्थापित करा देना है और अपने इस कार्य के लिए वह दलाली या कमीशन प्राप्त करता है । माल का कब्जा उसको नहीं सौंपा जाता । वह केवल दो पक्षकारों को क्रय-विक्रय का कोई संव्यवहार निश्चित कराने के लिए एक दूसरे को निकट लाता है और उसके द्वारा अपने कमीशन का हकदार हो जाता है । ऐसे दलालों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है—एक वह जो अपने मालिकों के लिए केवल ग्राहकों को उपलब्ध करता है, तथा दूसरा वह जो न केवल ग्राहकों को उपलब्ध करता है, वरन् क्रेताओं और विक्रेताओं के मध्य संविदायें भी करवा देता है । इनमें से प्रथम प्रकार का दलाल, अपनी मध्यस्थता से दो पक्षकारों को निकट लाकर उन्हें अपनी संविदा करने के लिए अवसर दे देता है ।[2] उसे संविदा के पक्षकारों द्वारा संविदा का पालन किए जाने या न किये जाने से कोई सरोकार नहीं होता और न उसका कोई व्यक्तिगत दायित्व होता है ।[3]

दलाल वस्तुतः एक कमीशन एजेण्ट ही होता है । कमीशन एजेण्ट और दलाल, जिसे ब्रोकर कहा जाता है, में भेद केवल इतना सा है कि कमीशन एजेण्ट अपने मालिकों के लाभ के दृष्टिकोण से वस्तुओं का क्रय-विक्रय करवाता है किन्तु ब्रोकर को पक्षकारों के बीच केवल सम्बन्ध स्थापित कराना होता है और अपने लाभ की बात पक्षकार स्वयं निश्चित करते हैं ।

(7) **आढ़तिया**:—आढ़त का कार्य करने वाले को आढ़तिया कहा जाता है । यह ऐसा अभिकर्ता होता है जो कार्य तो वास्तव में मालिकों के लिए ही करता है किन्तु मालिकों को परस्पर समक्ष नहीं लाता और न इसे मालिकों के नाम को ही प्रकट करने की आवश्यकता होती है । प्रकट में, यह सारा संव्यवहार अपने ही नाम से करता है जबकि वह संव्यवहार होता मालिकों के लिए है ।

आढ़त दो प्रकार की होती है, **कच्ची आढ़त** और **पक्की आढ़त** । पक्की आढ़त में, आढ़तिया किसी निश्चित समय पर माल के परिदान को भी प्रत्याभूत करता है और यदि वह माल का परिदान करने या करवाने में असफल रहे तो उसे उस माल की संविदा के

---

[1] **बेल बनाम बेल**, एल० आर० (1897) 1 चान्सरी 663.

[2] लक्ष्मी जिनिंग व आइल मिल्स **बनाम** अमृत वनस्पति, ए० आई० आर० 1962 पंजाब 56.

[3] ए० आर० जी० कृष्णमूर्ति **बनाम** जे० रामानुजन, ए० आई० आर० 1961 आन्ध्र प्रदेश 408.

दिन की दर और परिदान के दिन की दर के बीच के अन्तर का संदाय अपने क्रेता को करना होता है । कच्ची आढ़त में, आढ़तिया केवल क्रय या विक्रय के लिए आदेश प्राप्त करता है और माल की दर निश्चित करने के लिए दलाल को पृथक् से नियुक्त करता है । जिस मालिक से वह आदेश प्राप्त करता है उसके प्रति वह संविदा के पालन के लिए दायी नहीं है, किन्तु दूसरे पक्षकार के लिए वह संविदा के पालन को भी प्रत्याभूत करता है।

(8) अभिकर्ता को कौन नियोजित कर सकता है

वह व्यक्ति, जो उस विधि के अनुसार, जिसके वह अध्यधीन है, प्राप्तवय हो और स्वस्थचित्त हो, अभिकर्ता नियोजित कर सकेगा ।[1]

मोहरी बीबी बनाम धरमोदास घोस[2] वाले मामले में यह नियम सुस्थिर हो चुका है कि अवयस्क द्वारा की हुई संविदा आद्यतः शून्य है । अतः जब अवयस्क स्वयं कोई संविदा नहीं कर सकता तो वह संविदा करने के लिए अपनी ओर से किसी को प्राधिकृत नहीं कर सकता जब कोई व्यक्ति किसी कार्य को विधितः स्वयं न कर सके, वह उसी कार्य को, अपना अन्य व्यक्ति के द्वारा प्रतिनिधित्व कराके भी नहीं कर सकता । अवयस्क मालिक अपने अभिकर्ता के किसी कार्य से बाध्य नहीं हो सकता जबतक कि ऐसे अभिकर्ता की हैसियत विधितः नियुक्त संरक्षक की ही न हो ।[3]

(8-क) एक से अधिक मालिकों द्वारा एक अभिकर्ता का अभियोजन

न्या० डी० ए० देसाई के अनुसार, तीन मालिकों द्वारा संयुक्ततः एक अभिकर्ता का नियोजन किया जा सकता है । ऐसे नियोजन में, जबतक कि नियोजन के विलेख में कोई प्रतिकूल बात न हो, अभिकर्ता के प्राधिकार के सम्बन्ध में सामान्य अनुमान यही किया जाएगा कि अभिकर्ता का प्राधिकार उन विषयों तक सीमित होगा जिनमें कि सह-मालिकों का संयुक्त हित हो ।
(सय्यद अब्दुल खादर बनाम रामी रेड्डी)[4]

अभिकर्ता का प्राधिकार

(1) **अभिव्यक्त और विवक्षितः**—भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 186 के अनुसार अभिकर्ता का प्राधिकार अभिव्यक्त या विवक्षित हो सकेगा । प्राधिकार अभिव्यक्त तब कहा जाता है जबकि वह मौखिक या लिखित शब्दों द्वारा दिया जाए । प्राधिकार विवक्षित तब कहा जाता है जबकि उसका अनुमान मामले की परिस्थितियों से करना हो और मौखिक या लिखित बातों या व्यवहार के मामूली अनुक्रम की, मामले की परिस्थितियों में, गणना की जा सकेगी ।[5]

विवक्षित प्राधिकार के विषय में एक दृष्टान्त यह है कि **क** जो स्वयं कलकत्ते में रहता है, सीशमपुर में एक दुकान का स्वामी है और उस दुकान पर वह कभी-कभी जाता है । दुकान का प्रबन्ध **ख** द्वारा किया जाता है और **क** की जानकारी में वह दुकान के

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 183.
[2] (1903) 30 इंडियन अपील्स, 114.
[3] सादिक अली खां बनाम जयकिशोर, ए० आई० आर० 1928 प्रिवी काउंसिल 152.
[4] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 553 (558).
[5] भारतीय संविदा अधिनियम धारा 187.

प्रयोजनों के लिए क के नाम से ग से माल आदिष्ट करता रहता है और क के कोष में से उसके लिए संदाय करता रहता है। दुकान के प्रयोजनों के लिए क के नाम में ग से माल आदिष्ट करने का क की ओर से ख को विवक्षित प्राधिकार है।

अभिव्यक्त प्राधिकार का यदि किसी अधिनियम के अन्तर्गत कोई विहित प्ररूप हो अथवा उसके निष्पादन के लिए कोई विशेष रीति निर्धारित की गई हो तो वह प्राधिकार उसी प्ररूप अथवा उसी रीति में होना चाहिए। विवक्षित प्राधिकार के सम्बन्ध में किसी व्यापार की प्रथा अथवा रुढ़ियों में ऐसी विवक्षा के लिए जिन विशिष्ट परिस्थितियों की अपेक्षा हो, उन सब परिस्थितियों का किसी विशिष्ट संव्यवहार में विद्यमान होना आवश्यक है।

पति को पत्नी की ओर से विवक्षित अभिकर्ता की हैसियत से कोई संविदा करने का प्राधिकार तब माना जाएगा जबकि—1. संव्यवहार से पूर्व पत्नी से सम्पर्क करना संभव न हो, 2. जिस मार्ग का उसने अनुसरण किया, वह उन विशेष परिस्थितियों में एकमात्र युक्तियुक्त और प्रज्ञायुक्त मार्ग था, और 3. उसने पत्नी के हित में सद्‌भावपूर्वक कार्य किया हो, साथ ही, 4. उसके द्वारा किया गया संव्यवहार, व्यवसाय के सामान्य अनुक्रम से परे न हो और न ही ऐसा हो जिसे आवश्यक या आनुषंगिक न कहा जा सके।[1]

न्या० (जैसा कि वे तब थे) एस० एम० सीकरी के अनुसार, मसजिद के सामने से वाद्य सहित शोभा यात्रा निकालने के लिए हिन्दू और मुसलमान वर्णों के मूर्धन्य व्यक्तियों को समझौता कर लेने का विवक्षित प्राधिकार नहीं हो सकता तथा सम्बन्धित व्यक्ति अपने-अपने अधिकारों के लिए न्यायालय में वाद ला सकते हैं।[2]

(2) **सामान्य और आपात् में प्राधिकार का विस्तार:**—अभिकर्ता के प्राधिकार का विस्तार, सामान्य मामलों में और आपात् में, पृथक्-पृथक् होता है।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 188 के अन्तर्गत, सामान्य मामलों में, किसी कार्य को करने का प्राधिकार रखने वाला अभिकर्ता हर ऐसी विधिपूर्ण बात करने का प्राधिकार रखता है जो ऐसा कार्य करने के लिए आवश्यक हो। किसी कारबार को चलाने का प्राधिकार रखने वाला अभिकर्ता हर ऐसी विधिपूर्ण बात करने का प्राधिकार रखता है जो ऐसे कारबार के संचालन के प्रयोजन के लिए आवश्यक हो या उसके अनुक्रम में प्रायः की जाती हो।

उपरोक्त नियम को दो दृष्टान्तों के आधार पर समझा जा सकता है—

(क) ख जो लन्दन में रहता है, अपने को शोध्य ऋण मुम्बई में वसूल करने के लिए क को नियोजित करता है। क उस ऋण को वसूल करने के प्रयोजनों के लिए आवश्यक कोई भी विधिक प्रक्रिया अपना सकेगा और उसके लिए विधिमान्य उन्मोचन दे सकेगा।

(ख) क अपना पोत-निर्माता का कारबार चलाने के लिए ख को अपना अभिकर्ता बनाता है। ख उस कारबार को चलाने के प्रयोजन के लिए काष्ठ और अन्य सामग्री खरीद सकेगा और कर्मकारों को भाड़े पर रख सकेगा।

---

[1] फुलझड़ी देवी बनाम मिठाई लाल, ए० आई० आर० 1971 इलाहाबाद 494 (499).

[2] शेख पीरू बक्स बनाम कालिन्दी, ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1885. (1888).-[1969] 2 उम० नि० प० 531

इस नियम में दो बातें बताई गई हैं -- 1. किसी विशिष्ट कार्य को करने के लिए नियुक्त अभिकर्ता के प्राधिकार का विस्तार तथा 2. किसी कारबार को चलाने के लिए नियुक्त अभिकर्ता के प्राधिकार का विस्तार । दोनों बातों को स्पष्ट करने के लिए क्रमशः दो दृष्टान्त दिये गए हैं । दृष्टान्त (क) में विशिष्ट कार्य के लिए नियुक्त किए गए अभिकर्ता का प्राधिकार बताया गया है और दृष्टान्त (ख) में किसी कारबार के सामान्य व्यावसायिक विषयों में अभिकर्ता के प्राधिकार का विस्तार बताया गया है

किसी भी अभिकर्ता को कारबार के सफल प्रबन्ध के निमित्त किसी भी आवश्यकता के लिए अपने मालिक की साख को गिरवी करने का विवक्षित प्राधिकार होता है तथा यदि ऐसा उस कारबार के संचालन के लिए आवश्यक हो अथवा कारबार की विशिष्ट प्रकृति की दृष्टि से उसकी व्यवस्था में ऐसा प्रायः होता रहा हो या किसी अत्यावश्यक परिस्थिति में ऐसा करने का औचित्य हो, तो अभिकर्ता को, पर-व्यक्तियों से ऋण लेकर अपने मालिक को आबद्ध करने का भी विवक्षित प्राधिकार है ।[1]

इस नियम के अन्तर्गत अभिकर्ता को दी गई सूचना मालिक को दी हुई सूचना मानी जाएगी ।[2]

उपरोक्त उदाहरणों से **किसी विशेष कार्य को करने के प्राधिकार और किसी कारोबार के चलाने के प्राधिकार में अन्तर किया गया है** । किसी विशेष कार्य को करने के प्राधिकार का विस्तार हर ऐसी बात करने तक है जो कि अमुक कार्य करने के लिए आवश्यक हो, किन्तु किसी कारोबार को चलाने के प्राधिकार का विस्तार न केवल हर ऐसी बात के करने तक है जो कि उस कारोबार के क्षेत्र में आवश्यक हो वरन् ऐसी बातों को करने तक भी है जो कि उस प्रकृति के व्यापार के अनुक्रम में प्रायिक रूप से की जाती हैं । व्यापार जगत में कुछ ऐसी रुढ़ियों और प्रथाओं का प्रचलन होता है जिन्हें पक्षकार बिना किसी अभिव्यक्त अनुबंध के भी मान्यता प्रदान करते हैं । अतः प्रत्येक अभिकर्ता को उन रूढ़ियों और प्रथाओं के अनुसार अपने मालिक के लिए संव्यवहार करने का प्राधिकार प्राप्त होता है; भले ही प्राधिकार के ऐसे विस्तार की कोई अभिव्यक्त शर्त मालिक और अभिकर्ता के बीच न तय हुई हो । हां, इतना आवश्यक है कि जिन प्रथाओं अथवा रूढ़ियों के अन्तर्गत, अभिकर्ता ने कार्य किया है, वे युक्तियुक्त और विधिमान्य हों ।[3]

आपात स्थिति में, अभिकर्ता के विवेक के प्रयोग की सामर्थ्य में कुछ सीमा तक अभिवृद्धि हो जाती है और उसके प्राधिकार का विस्तार भी अधिक हो जाता है । भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 189 में यह उपबन्ध है कि किसी भी अभिकर्ता को आपात में यह प्राधिकार है कि हानि से अपने मालिक की संरक्षा करने के प्रयोजन से सारे ऐसे कार्य करे जैसे मामूली प्रज्ञा वाला व्यक्ति अपने मामले में वैसी ही परिस्थितियों में करता । उदाहरण के लिए, किसी भी विक्रय-अभिकर्ता को, यदि आवश्यक हो तो उस माल में मरम्मत कराने का प्राधिकार होता है । मान लिया जाए कि ख को जो कलकत्ता में

---

[1] धनपतराय **बनाम** इलाहाबाद बैंक, ९८ आई० सी० 783.

[2] सीमाचल महापात्रों **बनाम** बुद्धिराम, ए० आई० आर० 1976 उड़ीसा 113(114).

[3] नार्थ **बनाम** बासेट, एल० आर० (1892) क्यू० बी० 333.

है, क इस निदेश के साथ रसद परेषित करता है कि वह उसे तुरन्त ही ग के पास कटक भेज दे । यदि वह रसद, कटक की यात्रा में, खराब होने से नहीं बच सकती तो ख उस रसद को कलकत्ता में ही बेच सकेगा ।

इस नियम का उद्देश्य ऐसे अभिकर्ता को सुरक्षा प्रदान करना है जो कि मालिक के हितों की रक्षा करने के प्रयोजन से कोई ऐसा कार्य करता है जिसे करने का उसे अपने मालिक से अनुदेश नहीं प्राप्त हुआ है । उपरोक्त नियम भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 214 में वर्णित उस नियम का एक अपवाद है जिसमें यह कहा गया है कि अभिकर्ता का यह कर्त्तव्य है कि कठिनाई की दशा में अपने मालिक से सम्पर्क रखने और उसके अनुदेश अभिप्राप्त करने में समस्त युक्तियुक्त तत्परता बरते । उपरोक्त नियम और धारा 214 में वर्णित नियम का एक साथ पठन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि अधिनियम का दृष्टिकोण कठिनाई और आपात की अवस्थाओं में भेद करना रहा है । आपात का यह प्राधिकार अभिकर्ता को इस उद्देश्य से प्रदत्त किया गया है कि जहां मालिक का माल या उसका कोई हित किसी आसन्न संकट से ग्रस्त हो जाए और उस संकट के निवारण के लिए मालिक के अनुदेश के बिना ही कोई अध्युपाय तात्कालिक रूप से आवश्यक हो गया हो तो वहां अभिकर्ता किसी आवश्यक अध्युपाय के द्वारा मालिक के माल या उसके हितों का परिरक्षण कर सके । ऐसी दशाओं में, अभिकर्ता के पक्ष में, मालिक की अनुमति या उसके अनुदेश की उपधारणा कर ली जाती है ।

किसी भी आपात की स्थिति का सामना करने के लिए जो अध्युपाय प्रयोग में लाये जायें, वे मिथ्या, काल्पनिक अथवा अतिशयात्मक न होकर ऐसे होने चाहिएं जिनका कि समान परिस्थितियों में किसी भी प्रज्ञावान व्यक्ति के द्वारा प्रयुक्त किया जाना युक्तियुक्त हो।

आस्ट्रेलियन स्टीम नेवीगेशन कम्पनी बनाम **मोर्स**[1] वाले मामले में यह अधिनिर्णीत किया गया है कि किसी आपात स्थिति के कारण, किसी अनुपस्थित स्वामी के माल को, किसी पोत-मास्टर के द्वारा विक्रय करने का प्राधिकार तब समुचित माना जा सकता है जबकि 1. विक्रय की अनिवार्यता हो, तथा 2. स्वामी से सम्पर्क करना और उसके अनुदेश को अभिप्राप्त करना सम्भव न रहा हो, और जहां स्वामी की ओर से उत्तर आने तक प्रतीक्षा न की जा सके, वहां यही माना जाएगा कि सम्पर्क करना सम्भव नहीं था ।

उपाभिकर्ता

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 191 के अनुसार, उपाभिकर्ता वह व्यक्ति है जो अभिकरण के कारबार में, मूल अभिकर्ता द्वारा नियोजित हो और उसके नियन्त्रण के अधीन कार्य करता हो ।

मूल अभिकर्ता और उपाभिकर्ता के सम्बन्ध उसी प्रकार के हैं जैसे कि मालिक और अभिकर्ता के और जब तक उपाभिकर्ता का आचरण सोद्देश्य सदोष अथवा कपटपूर्ण न हो तब तक मालिक के प्रति उपाभिकर्ता का कोई दायित्व नहीं है ।[2]

---

[1] एल० आर० (1872) 4 पी० सी० 22.

[2] गम्भीरमल महावीर प्रसाद बनाम इंडियन बैंक, ए० आई० आर० 1963 कलकत्ता 163.

उपाभिकर्ता का नियोजन कब किया जा सकता है

कोई अभिकर्ता उन कार्यों के पालन के लिए, जिनका स्वयं अपने द्वारा पालन किए जाने का भार उसने अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से लिया हो, किसी अन्य व्यक्ति का विधिपूर्वक नियोजन तबके सिवाय नहीं कर सकेगा जबकि उपाभिकर्ता का नियोजन व्यापार की मामूली रूढ़ि के अनुसार किया जा सकता हो या अभिकरण की प्रकृति के अनुसार करना आवश्यक हो ।[1]

इस नियम के द्वारा इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि **प्रत्यायोजित शक्ति का और आगे प्रत्यायोजन नहीं हो सकता** (डैलीगेट्स नॉन पोटैस्ट डेलीगेयर) । ऐसा कोई कार्य जो व्यक्तिगत विश्वास अथवा कौशल का हो, किसी अन्य को प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता, किन्तु व्यापारिक अभ्यावश्यकतायें इस प्रकृति की हो सकती हैं कि उन्हें एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति की सहायता के बिना नहीं कर सकता और ऐसी सीमा तक प्रत्यायोजन किया जा सकता है, जैसे कि भवन निर्माण और स्थापत्य कला से सम्बन्धित कार्यों में, सर्वेक्षकों द्वारा परिकल्पना (डिजाइन) के चुनाव की सहायता ली जा सकती है और उस सीमा तक निर्माण कार्य का प्रत्यायोजन किया जा सकता है ।

मालिक की सहमति से मूल-अभिकर्ता, उपाभिकर्ता का नियोजन कर सकता है । बोस्टेड[2] ने उन अवस्थाओं का, जबकि उपाभिकर्ता का नियोजन विधितः किया जा सकता हो, इस प्रकार कथन किया है: जबकि 1. ऐसा नियोजन अभिकर्ता के व्यापार की रूढियों के अन्तर्गत किया जा सकता हो, 2. अभिकर्ता द्वारा उपाभिकर्ता के नियोजन का उद्देश्य मालिक को विदित हो, 3. मालिक और अभिकर्ता दोनों ही के आचरण और व्यवहार से ऐसे नियोजन की सहमति दर्शित हुई हो, 4. उपाभिकर्ता के नियोजन की कोई ऐसी अनिवार्यता आ गई हो जिसकी पूर्व में कोई कल्पना न की जा सकी हो, 5. अभिकर्ता का स्वयं का प्राधिकार ऐसी प्रकृति का हो जहां किसी सहायक या उपाभिकर्ता के द्वारा ही उसका निष्पादन सम्भव हो, तथा 6. लिपिक वर्गीय या अनुसचिवीय कार्य जहां विवेक के प्रयोग अथवा विश्वास की आवश्यकता अन्तर्वलित न हो ।

उपाभिकर्ता के प्राधिकार, प्रतिनिधित्व और दायित्व संबंधी उपबन्ध

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 190 में उपाभिकर्ता के नियोजन के केवल दो ही आधार माने गए हैं—1. जबकि ऐसा नियोजन व्यापार की मामूली रूढ़ि के अनुसार किया जा सकता हो, और; 2. जबकि व्यापार की प्रकृति को देखते हुए, ऐसे नियोजन की अनिवार्यता हो । अधिनियम में उपाभिकर्ता के प्राधिकार, प्रतिनिधित्व और दायित्व सम्बन्धी उपबन्ध निम्न प्रकार हैं—

(क) जहां कि उपाभिकर्ता उचित तौर पर नियुक्त किया गया हो, वहां, जहां तक पर-व्यक्तियों का सम्बन्ध है, मालिक का प्रतिनिधित्व वह उपाभिकर्ता करता है, और मालिक उसके कार्यों से ऐसे ही आबद्ध और उनके लिए ऐसे ही उत्तरदायी है मानो वह मालिक द्वारा मूलतः नियुक्त अभिकर्ता हो । अभिकर्ता उपाभिकर्ता के कार्यों के

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 190.

[2] लॉ ऑफ एजेन्सी, 9वां संस्करण, पृ० 81.

लिए मालिक के प्रति उत्तरदायी है। उपाभिकर्ता अपने कार्यों के लिए अभिकर्ता के प्रति उत्तरदायी है, किन्तु कपट या जानबूझ कर किए गए दोष की दशा को छोड़कर मालिक के प्रति उत्तरदायी नहीं है।[1]

यह स्पष्ट है कि उपाभिकर्ता के नियोजन की संविदा मालिक द्वारा नहीं की जाती वरन् वह नियोजन स्वयं अभिकर्ता और उपाभिकर्ता के बीच की हुई संविदा की उपज है। अतः मालिक उपाभिकर्ता के कार्यों के लिए तभी उत्तरदायी और उन कार्यों से तभी आवद्ध होगा जबकि उपाभिकर्ता उचित तौर पर नियुक्त किया गया हो, और जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, ऐसी नियुक्ति उचित तभी मानी जा सकती है जबकि ऐसी नियुक्ति या तो अमुक व्यापार की मामूली रूढ़ि के अन्तर्गत की जा सकती हो या वह उस व्यापार के प्रकृति को देखते हुए आवश्यक हो। ऐसी नियुक्ति यदि उपरोक्त दो शर्तों के अधीन की गई हो तो, मालिक, जहां तक पर-व्यक्तियों का सम्बन्ध है, उपाभिकर्ता के कार्यों से आवद्ध है, किन्तु जहां तक मालिक उपाभिकर्ता, के प्रति उत्तरदायी न होकर मूल अभिकर्ता के प्रति उत्तरदायी है और मूल अभिकर्ता उपाभिकर्ता के कार्यों के लिए स्वयं मालिक के प्रति उत्तरदायी है जिसका आशय यह है कि मालिक, अपने लेखे के लिए उपाभिकर्ता के विरुद्ध वाद नहीं ला सकता वरन् यदि वाद लाना आवश्यक हो तो मूल अभिकर्ता के विरुद्ध ही वाद ला सकेगा। उपाभिकर्ता सामान्यतः मूल अभिकर्ता के प्रति उत्तरदायी है किन्तु उपाभिकर्ता अपने कपट या जानबूझ कर किए गए दोषों के लिए सीधा मालिक के प्रति भी उत्तरदायी हो सकेगा।

(ख) जहां कि किसी अभिकर्ता ने उपाभिकर्ता नियुक्त करने के प्राधिकार के बिना किसी व्यक्ति को उपाभिकर्ता की हैसियत में कार्य करने के लिए नियुक्त किया हो वहां अभिकर्ता की उस व्यक्ति के प्रति हैसियत वैसी है जैसी अभिकर्ता के प्रति मालिक की होती है और वह उसके कार्यों के लिए मालिक और पर-व्यक्तियों, दोनों के प्रति, उत्तरदायी है। इस प्रकार से नियोजित उपाभिकर्ता मालिक का प्रतिनिधित्व नहीं करता और न उसके कार्यों के लिए मालिक उत्तरदायी है और न वह मालिक के प्रति उत्तरदायी है।[2]

ऊपर बताया गया है कि उपाभिकर्ता मालिक के प्रति अपने कपट या जानबूझ कर किए गए दोष की दशा को छोड़कर, अन्य किसी बात के लिए उत्तरदायी नहीं है किंतु उपाभिकर्ता का मालिक के प्रति इन अवस्थाओं में वर्तमान रहने वाला दायित्व भी समाप्त हो जाता है यदि उपाभिकर्ता की नियुक्ति अप्राधिकृत हो और ऐसी अप्राधिकृत नियुक्ति की अवस्था में, सम्पूर्ण दायित्व उपाभिकर्ता को नियुक्त करने वाले अभिकर्ता पर आ जाता है, चाहे वह दायित्व पर-व्यक्तियों के प्रति हो चाहे स्वयं मालिक के प्रति। अप्राधिकृत नियुक्ति की दशा में, उपाभिकर्ता के कपट या जानबूझ कर दिए गए दोष के लिए भी उसे नियुक्त करने वाले अभिकर्ता पर दायित्व होगा जो कि स्वयं उपाभिकर्ता का होता यदि उसकी नियुक्ति प्राधिकृत होती।

उपाभिकर्ता और प्रतिस्थापित अभिकर्ता

प्रतिस्थापित उपाभिकर्ता को भारतीय संविदा अधिनियम में अभिकर्ता द्वारा नामित व्यक्ति कहा गया है। इस संबंध में अधिनियम की धारा 194 और 195 में निम्न उपबन्ध हैं।

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 192.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 193.

1. धारा 194 के अनुसार, जहां कि वह अभिकर्ता, जो अभिकरण के कारबार में मालिक की ओर से कार्य करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नामित करने का अभिव्यक्त या विवक्षित प्राधिकार रखता है, किसी अन्य व्यक्ति को तदनुसार नामित कर देता है, वहां ऐसा व्यक्ति उपाभिकर्ता नहीं है वरन् वह अभिकरण के कारबार के ऐसे भाग के लिए, जो उसे सौंपा गया हो, मालिक का अभिकर्ता है।

दो दृष्टान्त इस संबंध में इस प्रकार हैं—

(क) क अपने सालिसिटर ख को अपनी सम्पदा नीलाम द्वारा बेचने और उस प्रयोजन के लिए एक नीलामकर्ता नियोजित करने का निदेश देता है। ख विक्रय संचालन के लिए एक नीलामकर्ता ग को नामित करता है। ग उपाभिकर्ता नहीं है वरन् विक्रय संचालन के लिए क का अभिकर्ता है।

(ख) क कलकत्ते के एक वणिक ख को ग एण्ड कम्पनी द्वारा अपने को शोध्य धन वसूल करने के लिए प्राधिकृत करता है। सालिसिटर घ को ख उस धन की वसूली के लिए ग एण्ड कम्पनी के विरुद्ध विधिक कार्यवाही करने का अनुदेश देता है। घ उपाभिकर्ता नहीं है वरन् क का सालिसिटर है।

2. धारा 195 में यह कहा गया है कि धारा 194 में दर्शित प्रकार से अपने मालिक के लिए ऐसा अभिकर्ता चुनने में, अभिकर्ता उतना ही विवेक प्रयुक्त करने के लिए आबद्ध है जितना मामूली प्रज्ञा वाला व्यक्ति अपने निजी मामले में करता है और यदि वह ऐसा करता है तो वह ऐसे चुने गए अभिकर्ता के कार्यों या उपेक्षा के लिए मालिक के प्रति उत्तरदायी नहीं है।

इस विषय में दो दृष्टान्त इस प्रकार हैं—

(क) क अपने लिए एक पोत खरीदने के लिए ख को, जो एक वणिक है, अनुदेश देता है। ख अच्छी ख्याति वाले एक पोत-सर्वेक्षक को क के लिए पोत पसन्द करने को नियोजित करता है। वह सर्वेक्षक पसन्द करने में उपेक्षा बरतता है और पोत तरण-अयोग्य निकलता है और नष्ट हो जाता है। क के प्रति ख नहीं वरन् वह सर्वेक्षक उत्तरदायी है।

(ख) ख को जो एक वणिक है, क विक्रय करने के लिए माल परेषित करता है। ख सम्यक् अनुक्रम में अच्छे प्रत्यय वाले एक नीलामकर्ता को क का माल बेचने के लिए नियोजित करता है, और नीलामकर्ता को विक्रय के आगम प्राप्त करने के लिए अनुज्ञात करता है। नीलामकर्ता तत्पश्चात् उन आगमों का लेखा-जोखा दिए बिना दिवालिया हो जाता है। ख उन आगमों के लिए क के प्रति उत्तरदायी नहीं है।

उपाभिकर्ता और प्रतिस्थापित अभिकर्ता में दो प्रकार से भेद किया गया है—

1. प्रथम यह है कि उपाभिकर्ता मूल अभिकर्ता के नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्य करता है किंतु प्रतिस्थापित अभिकर्ता सीधे मालिक के नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्य करता है और उसका अभिकर्ता से कोई संसर्ग नहीं होता।

2. द्वितीय यह कि जैसे ही अभिकर्ता ऐसे व्यक्ति को नामित कर देता है, उसके पश्चात् मालिक और ऐसे नामित व्यक्ति के बीच एक निजत्व या संसर्ग (प्रिविटी) स्थापित हो जाता है[1] जिसके आधार पर वह नामित व्यक्ति मालिक के प्रति दायी हो जाता है और मालिक उसके

[1] डी० सी० चौधरी बनाम गिरीन्द्रमोहन, ए० आई० आर० 1930 कलकत्ता 10 जिसका अनुसरण ईस्टर्न ट्रेडर्स बनाम पंजाब नेशनल बैंक, ए० आई० आर० 1966 पंजाब 303 (308) में किया गया.

विरुद्ध उसकी ओर किसी लेखे की बाकी या अन्य किसी राशि के लिए, सीधे वाद ला सकता है और मालिक उस अभिकर्ता के विरुद्ध जिसने कि ऐसे व्यक्ति को नामनिर्दिष्ट किया है, उस नामनिर्दिष्ट व्यक्ति के कार्यक्षेत्र के विषय में, कोई वाद लाने का हकदार नहीं रहता क्योंकि ऐसा नामनिर्दिष्ट व्यक्ति सीधा मालिक के प्रति दायी होता है ।[1]

3. तृतीय यह कि उपाभिकर्ता को अपने पारिश्रमिक के लिए मालिक पर वाद लाने का कोई हक नहीं होता जबकि प्रतिस्थापित अभिकर्ता पारिश्रमिक के लिए सीधे मालिक पर वाद ला सकता है, किंतु प्रतिस्थापित-अभिकर्ता के विषय में ऐसा नहीं है ।

4. चतुर्थ यह कि अभिकर्ता की नियुक्ति का आधार अभिकर्ता के प्राधिकार का प्रत्यायोजन होता है जबकि प्रतिस्थापित अभिकर्ता की नियुक्ति का आधार मालिक के प्राधिकार का प्रत्यायोजन होता है। प्रतिस्थापित अभिकर्ता के कार्य से मालिक स्वयं आबद्ध हो जाता है।[2] यही वह सूत्र है जिसके आधार पर यह अवधारित किया जा सकेगा कि अमुक व्यक्ति प्रतिस्थापित अभिकर्ता है अथवा उपाभिकर्ता ।

यह स्मरण रखना होगा कि प्रतिस्थापित अभिकर्ता की मान्यता तभी हो सकती है जबकि अपने मालिक के लिए प्रतिस्थापित अभिकर्ता चुनने में, मूल-अभिकर्ता ने उतना और वैसा ही विवेक प्रयुक्त किया हो जितना और जैसाकि कोई मामूली प्रज्ञा वाला व्यक्ति अपने निजी मामले में करता। यदि अभिकर्ता ने प्रतिस्थापित अभिकर्ता के चुनाव में इस कोटि का विवेक प्रयुक्त नहीं किया है तो मालिक के प्रति वह अभिकर्ता स्वयं ही दायी रहता है न कि प्रतिस्थापित अभिकर्ता ।

अनुसमर्थन द्वारा अभिकरण

अभिकरण के प्राधिकार के सजन के विषय में अधिनियम की धारा 187 में कहा गया है कि ऐसे प्राधिकार का सर्जन दो प्रकार से हो सकता है अर्थात् या तो अभिव्यक्त, जिसका आशय है लिखित अथवा मौखिक शब्दों द्वारा, अथवा विवक्षित, जिसका अनुमान मामले की परिस्थितियों और पक्षकारों के आचरण या व्यवहार से किया जाए। इन दो रीतियों से पृथक् एक तीसरी भी रीति है जिसके द्वारा दो व्यक्तियों के बीच अभिकरण की संविदा का सर्जन हो सकता है। इस तीसरी रीति के आधार पर सर्जित, अभिकरण की संविदा को **अनुसमर्थन द्वारा अभिकरण** कहा जाता है । भारतीय संविदा अधिनियम में, इस विषय में विशेष उपबन्ध किये गए हैं, अधिनियम में एक व्यक्ति द्वारा स्वंय के लिए किए गए, दूसरे के कार्य का, अनुसमर्थन किए जाने के प्रभाव को ही अभिकरण के तौर का माना गया है। अधिनियम की धारा 196 में कहा गया है कि ––

> जहां कि कार्य एक व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति के निमित्त किंतु उसके ज्ञान या प्राधिकार के बिना किए जाते हैं वहां वह निर्वाचित कर सकेगा कि ऐसे कार्यों का अनुसमर्थन करे या अनंगीकरण करे। यदि वह उनका अनुसमर्थन करे तो उन कार्यों के वैसे ही परिणाम होंगे मानों वे उसके प्राधिकार से किए गए थे।

---

[1] सालिगराम **बनाम** अयोध्या प्रसाद, ए० आई० आर० 1966 पटना 61.

[2] पंजाब नैशनल बैंक **बनाम** फर्म ईश्वरलाल, ए० आई० आर० 1971 बम्बई, 348.

धारा 197 में यह भी कहा गया है कि ऐसा अनुसमर्थन अभिव्यक्त या उस व्यक्ति के आचरण से, जिसकी ओर से वे कार्य किए जाते हैं, विवक्षित हो सकेगा। दृष्टान्त के तौर पर—

(क) क प्राधिकार के बिना ख के लिए माल खरीदता है। तत्पश्चात् ख उन्हें ग को अपने लेखे बेच देता है। ख के आचरण से विवक्षित है कि उसने क द्वारा उसके लिए किए गए क्रय का अनुसमर्थन किया है।

(ख) ख के प्राधिकार के बिना ख का धन ग को क उधार देता है; तत्पश्चात् ख उस धन पर ग से ब्याज प्रतिगृहीत करता है। ख के आचरण से विवक्षित है कि उसने उस आधार का अनुसमर्थन किया है।

मालिक के लिए और मालिक की ओर से कार्य करते हुए अभिकर्ता ने यदि किसी संविदा के अन्तर्गत मालिक के लिए यदि कोई फायदा अनुबद्ध कर लिया है और मालिक ने बिना किसी नानुच के उस फायदे का उपभोग कर लिया है तो कानून में मालिक द्वारा उस संविदा के अनुसमर्थन की विवक्षा हो जाती है।[1]

अधिनियम की धारा 198 का यह उपबन्ध स्मरणीय है कि **कोई भी विधिमान्य अनुसमर्थन ऐसे व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता जिसका मामले के तथ्यों का ज्ञान तत्वतः त्रुटियुक्त हो।**

अनुसमर्थित अभिकरण के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें

1. अनुसमर्थन करने वाले व्यक्ति का उस दिन, जिस दिन अनुसर्थमन किया गया है, विद्यमान होना आवश्यक है। जो व्यक्ति उत्पन्न ही न हुआ हो अथवा जो व्यक्ति मर चुका हो, उसके नाम से अनुसमर्थन नहीं किया जा सकता। **व्यक्ति** का तात्पर्य किसी भी विधिक व्यक्तित्वधारी निकाय या संस्था से है। यदि किसी कम्पनी के विधितः निगमित होने से पूर्व, उस कम्पनी के लिए किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कोई कार्य किया गया है तो कम्पनी निगमित होने के पश्चात् उस कार्य को विधितः अनुसमर्थित नहीं कर सकती।[2] जहां किसी कार्य को करने का कोई समय निर्धारित हो और उसी निर्धारित समय के भीतर किसी व्यक्ति ने किसी अन्य के लिए ऐसा कार्य कर दिया हो तो वहां वह व्यक्ति जो उस कार्य का अनुसमर्थन करना चाहे, उसका अनुसमर्थन उसी निर्धारित अवधि के भीतर ही कर सकेगा।[3]

2. जिस कार्य का अनुसमर्थन किया जाए वह उसी व्यक्ति के निमित्त किया हुआ होना चाहिए जो कि उसका अनुसमर्थन कर रहा है। किसी कम्पनी ने किसी व्यक्ति को एक निश्चित दर पर माल क्रय करने के लिए प्राधिकृत किया किंतु उस व्यक्ति ने ऊंची दर पर किंतु अपने ही नाम में उस माल का क्रय कर लिया। ऐसी दशा में कम्पनी उस व्यक्ति द्वारा माल के क्रय करने के कार्य को अनुसमर्थित नहीं कर सकती।[4]

---

[1] हुकुमचन्द इन्शोरेन्स बनाम बैंक ऑफ बड़ोदा, ए० आई० आर० 1977 कर्नाटक 204.

[2] एम्प्रेस इंजीनियरिंग कंम्पनी का मामला, एल० आर० (1880) 16 चान्सरी 125.

[3] डिबिन्स बनाम डिबिन्स, एल० आर० (1896) 2 चान्सरी 348.

[4] कैथले बनाम ड्यूरेन्ट, एल० आर० (1901) ए० सी० 240.

3. अनुसमर्थित कार्य ऐसा होना चाहिए जिसके किये जाने का ज्ञान अनुसमर्थन करने वाले को उस दिन न हो जिस दिन वह कार्य उसके निमित्त किसी अन्य द्वारा किया गया था। उदाहरण के लिए, यदि कोई अभिकर्ता अपने मालिक को जानकारी दिए बिना अपने प्राधिकार की सीमा से बाहर होकर अपने मालिक के लिए कोई कार्य कर ले तो मालिक उस कार्य का अनुसमर्थन कर सकता है किंतु ऐसे अनुसमर्थन का यह अर्थ कदापि नहीं होगा कि वह अभिकर्ता उसी प्रकार के कार्य भविष्य में भी करने के लिए प्राधिकृत हो गया है।[1] इसका आशय यह हुआ कि अनुसमर्थन का प्रभाव भूतलक्षी होता है किंतु भविष्यलक्षी नहीं हो सकता अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता कि अनुसमर्थन की आशा में, ऐसा ही कोई कार्य भविष्य में भी उसके लिए किया जाए क्योंकि यदि भविष्य में भी उसी प्रकार का कार्य कर लिया जाता है तो इसे नवीन अनुसमर्थन की आवश्यकता होगी और यदि अनुसमर्थन न किया जाए तो वह व्यक्ति जिसके निमित्त किया गया है, उसके परिणामों से आबद्ध नहीं किया जा सकता।

4. अनुसमर्थन का प्रभाव भूतलक्षी होने का स्पष्ट अर्थ यह होता है कि अनुसमर्थन करने वाला व्यक्ति उस कार्य का विधितः तभी अनुसमर्थन कर सकेगा जबकि वह उस दिन, जिस दिन वह कार्य किया गया था, अनुसमर्थन करने में सक्षम रहा हो। यदि उस दिन वह अप्राप्तवय या अन्य किसी कारण से अक्षम हो, तो वह उस कार्य का अनुसमर्थन नहीं कर सकता भले ही अनुसमर्थन के दिन वह सक्षम हो गया हो।[1]

5. प्रत्येक संविदा की भांति, अनुसमर्थित कार्य विधिपूर्ण होना चाहिए। किसी अविधिपूर्ण कार्य के अनुसमर्थन का कोई प्रभाव नहीं होता। अतः न्या० वी० रामस्वामी के अनुसार, यदि संविदा, भारतीय संविधान की धारा 299 के उपबन्धों के प्रतिकूल है तो वह अविधिमान्य है जो अनुसमर्थनीय नहीं है।[2]

6. मामले के तथ्यों का पूर्ण और शुद्ध ज्ञान प्राप्त किये बिना किया हुआ अनुसमर्थन विधितः किया हुआ अनुसमर्थन नहीं माना जा सकता। यदि अनुसमर्थन करने वाले व्यक्ति का मामले के तथ्यों के प्रति ज्ञान त्रुटिपूर्ण हो तो, वह अनुसमर्थन अविधिमान्य है।[3]

7. इस नियम के अन्तर्गत, सरकार के नाम से लोकसेवकों द्वारा किये हुए कार्यों को भी तत्पश्चात् राज्य द्वारा अनुसमर्थित किया जा सकता है।[4] ऐसे कार्यों को दो वर्गों में रखा जा सकता है प्रथम वे कार्य जो किसी विधि के अन्तर्गत किए जा सकते हों, और विधितः किये गए हों, किंतु जिस प्राधिकार में ऐसा कार्य किया हो, उसे वैसा करने का प्राधिकार नहीं रहा हो, और द्वितीय वह कार्य जो विधि के क्षेत्र से ही बाहर हो और ऐसा हो जिसे राज्य-कार्य कहा जा सके अर्थात् ऐसा जो युद्ध आदि की अथवा किसी

---

1 इर्विन **बनाम** यूनियन बैंक, आई० एल० आर० (1877) 3 कलकत्ता 280.

2 मूलमचन्द **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 1218; बंगाल कोल कम्पनी **बनाम** भारत संघ, ए० आई० आर० 1971 कलकत्ता 219 (220) में, न्या० एस० के० चक्रवर्ती के मतानुसार उपरोक्त मूलमचन्द वाले मामले के पश्चात् चतुर्भुज **बनाम** मोरेश्वर, ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 236 वाले मामले का कोई प्रभाव नहीं रह गया है.

3 सैवी **बनाम** किंग, (1853-56) 10 इंग्लिश रिपोर्ट्स, 1046.

4 कलक्टर ऑफ मसूलीपटम **बनाम** केवलीवेंकट, (1860) 8 मूर्स इंडियन अपील्स, 529.

क्षेत्र में सेना-विधि के प्रवृत्त होने की असामान्य अवस्थाओं में किया जाए। प्रथम प्रकार के कार्य का एक उदाहरण यह हो सकता है जैसे कि किसी शासकीय रिसीवर को न्यायालय के आदेश के बिना किसी सम्पत्ति के विक्रय का प्राधिकार न हो किन्तु उसके द्वारा उस सम्पत्ति का विधित: विक्रय कर दिया जाए तो ऐसे कार्य का तत्पश्चात् अनुसमर्थन कर दिये जाने से क्रेता का सम्पत्ति में समुचित हक उदभूत हो जाता है।[1] द्वितीय प्रकार के कार्य ऐसे हैं जो किसी ऐसे क्षेत्र में, जहां सेना विधि प्रवृत्त थी अथवा अन्य कोई असामान्य स्थिति लागू थी, व्यवस्था को बनाए रखने या पुन: स्थापना के संबंध में किया गया है, और ऐसे कार्यों के लिए विधि द्वारा उन कार्यों के करने वालों को परित्राण प्रदान किया जा सकता है और उन कार्यों को मान्य भी किया जा सकता है।[2] 'विदा विधि के उपरोक्त नियम का संबंध प्रथम प्रकार के कार्यों से है।

8. जहां किसी प्राधिकार का गठन या प्राधिकारी की नियुक्ति ही अविधिमान्य रही हो, वहां नियोजक द्वारा उस प्राधिकार के कार्य का अनुसमर्थन नहीं किया जा सकता, भले ही उस प्राधिकारी ने सारा कार्य विधिपूर्वक किया हो।[3]

अनुसमर्थन का प्रभाव

इस संबंध में, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 में दो उपबन्ध किये गए हैं--
1. उस अप्राधिकृत कार्य के अनुसमर्थन का प्रभाव जो किसी संव्यवहार का भाग हो, तथा
2. अप्राधिकृत कार्य के अनुसमर्थन द्वारा पर-व्यक्तियों की सुरक्षा।

1. प्रथम उपबन्ध अधिनियम की धारा 199 में इस प्रकार है कि जो व्यक्ति अपनी ओर से किए गए किसी अप्राधिकृत कार्य का अनुसमर्थन करता है वह उस सम्पूर्ण संव्यवहार का अनुसमर्थन करता है जिसका ऐसा कार्य भाग हो।

जहां किसी व्यक्ति द्वारा किये हुए कार्य के किसी भाग का अनुसमर्थन करके उस व्यक्ति को अभिकर्ता मान लिया गया है, वहां तत्पश्चात् उस व्यक्ति को उस सम्पूर्ण संव्यवहार के विषय में ही दोषकर्ता नहीं माना जा सकता। अभिकर्ता के द्वारा किए गए संव्यवहार के विषय में यह छूट नहीं हो सकती कि उसके किसी एक भाग का अनुसमर्थन किया जाए और शेष को अनंगीकृत कर दिया जाए। अनुसमर्थन या अनंगीकरण, जो भी किया जाए, सम्पूर्ण व्यवहार के लिए लागू होगा।[4]

2. द्वितीय उपबन्ध धारा 200 में इस प्रकार है—एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति की ओर से ऐसे दूसरे व्यक्ति के प्राधिकार के बिना किया गया कोई ऐसा कार्य, जो यदि प्राधिकार से किया जाता तो किसी पर-व्यक्ति को नुकसानी के अध्यधीन करने या किसी पर-व्यक्ति के किसी अधिकार या हित का पर्यवसान करने का प्रभाव रखता है, अनुसमर्थन के द्वारा ऐसा प्रभाव रखने वाला नहीं बनाया जा सकता।

---

[1] गरपति बनाम वासवा, 85 आई० सी० 439.

[2] भारत के संविधान का अनुच्छेद 34 देखिए.

[3] मोहम्मद दिलावर बनाम मुस्लिम वक्फ बोर्ड, ए० आई० आर० 1967 आन्ध्र प्रदेश, 291,

[4] देखिए—कात्यायनी बनाम पोर्ट कैनिंग, 19 सी० डब्ल्यू० एन० 56.

इस नियम के साथ दो दृष्टान्त भी दिए गए हैं, जो निम्न प्रकार से हैं—

क—ख द्वारा तदर्थ प्राधिकृत किए गए बिना ख की ओर से ग से क यह मांग करता है कि ख की कोई जंगम वस्तु, जो ग के कब्जे में हो ग परिदत्त कर दे। वह मांग ख द्वारा ऐसे अनुसमर्थित नहीं की जा सकती कि ग परिदान से अपने इन्कार के लिए नुकसानी का दायी हो जाए।

ख—तीन मास की सूचना पर पर्यवसेय एक पट्टा ख से क धारण करता है। एक अप्राधिकृत व्यक्ति ग पट्टे के पर्यवसान की सूचना क को देता है। यह सूचना ख द्वारा ऐसे अनुसमर्थित नहीं की जा सकती कि वह क पर आबद्धकर हो जाए।

यह उस सामान्य नियम का, जिसके अन्तर्गत अनुसमर्थन का प्रभाव भूतलक्षी माना गया है, एक अपवाद है जिसका आशय यह है कि सम्पत्ति में के हितों में, किसी अप्रवर्तनशील कार्य के अनुसमर्थन द्वारा भूतलक्षी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ऐसा कार्य जो अनुसमर्थन के बिना दोषपूर्ण होता, अनुसमर्थन के द्वारा तभी अधिकारपूर्ण हो सकता है जबकि अनुसमर्थन ऐसे समय किया गया हो जबकि वह अनुसमर्थन करने वाले व्यक्ति द्वारा अधिकारपूर्वक किया जा सकता था।[1]

एक सिद्धान्त यह है कि **किसी शून्यकरणीय संव्यवहार का विखण्डन इस प्रकार नहीं किया जा सकता कि उससे किसी पर-व्यक्ति द्वारा सद्भावपूर्वक प्राप्त हितों को क्षति पहुंचे। उपरोक्त नियम म, शब्दों का क्रम उलट कर, इसी सिद्धान्त का कथन किया गया है।**

अभिकरण का पर्यवसान

अभिकरण की संविदा अधिनियम की धारा 201 के अनुसार पांच प्रकार से पर्यवसित हो सकती है, अर्थात्

(i) मालिक द्वारा अपने प्राधिकार के प्रतिसंहरण से,

(ii) अभिकर्ता द्वारा अभिकरण के कारबार के त्यजन से,

(iii) अभिकरण के कारबार के पूरे हो जाने से,

(iv) मालिक या अभिकर्ता के मर जाने या विकृतचित्त हो जाने से,

(v) मालिक के; तत्समय प्रवृत्त किसी ऐसे अधिनियम के उपबन्धों के अधीन जो दिवालिया ऋणियों के अनुतोष के लिए हो, दिवालिया निर्णीत किये जाने से।

अधिनियम की उपर्युक्त धारा को निःशेषी नहीं माना गया है। अतः पर्यवसान की अन्य अवस्थाएं भी हो सकती हैं, जैसे संविदा भंग अथवा अभिकरण की विषय-वस्तु का विनष्ट हो जाना।[2]

अभिव्यक्त और विवक्षित पर्यवसान

मालिक और अभिकर्ता, दोनों ही, पर्यवसान की अवस्था को, या तो अभिव्यक्त रूप से या अपने-अपने आचरण से विवक्षित रूप से भी, प्रभाव में ला सकते हैं। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 207 के अनुसार प्रतिसंहरण अथवा त्यजन अभिव्यक्त भी हो सकेगा अथवा मालिक या अभिकर्ता के अपने-अपने आचरण द्वारा विवक्षित भी।

---

1 वर्ड बनाम ब्राउन, एल० आर० (1850) 4 एक्सचेकर 786.

2 डेवलपमेन्ट ऑफ इण्डस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, ए० आई० आर० 1968 कलकत्ता 492 (495).

विवक्षित प्रतिसंहरण का एक उदाहरण आजम खाओं बनाम एस० सत्तार वाले मामले[1] में इस प्रकार दिया गया है कि जहां किसी मुख्तारनामे में यह उल्लेख था कि अभिकर्ता मालिक के विदेश प्रवास काल में मालिक के लिए सारा कार व्यवहार करेगा तो ऐसी दशा में मालिक के भारत में लौटने पर मुख्तारनामा विवक्षिततः प्रतिसंहृत माना जाएगा।

प्रतिसंहरण या त्यजन के द्वारा अभिकरण के पर्यवसान की अभिव्यक्त अवस्था या तो किसी लिखत के द्वारा, या किसी सार्वजनिक सूचना या किसी सुपरिचित रीति से की हुई घोषणा के द्वारा भी लाई जा सकती है। इसी प्रकार इनकी विवक्षित अवस्था भी अनेक प्रकार से दर्शित हो सकती है। अभिकरण के प्रतिसंहरण का अनुमान इस बात से भी किया जा सकता है कि मालिक ने अभिकर्ता को अभिकरण के कार्य से नितान्त भिन्न किसी अन्य कार्य पर नियुक्त कर दिया है, जैसे कि मालिक ने अभिकर्ता को न्यासी के तौर पर नियुक्त कर दिया हो। किसी ऐसे कार्य के करने या किसी ऐसी घटना के घटित होने से जो कि अभिकरण के अधीन किये जाने वाले कार्य से सर्वथा प्रतिकूल हो, प्रतिसंहरण या त्यजन की अवस्था का अनुमान किया जा सकता है, जैसे कोई अभिकर्ता अपने मालिक के कारबार के विरोध में कोई अन्य कार्य करने लगा हो या अभिकर्ता मालिक के कारबार में भागीदार हो गया हो, या मालिक ने स्वयं ही वह कार्य जिसके लिए अभिकर्ता की नियुक्ति की गई थी, स्वयं ही कर डाला हो, जैसे कि क अपना गृह भाड़े पर देने के लिए ख को सशक्त करता है किन्तु तत्पश्चात् क स्वयं उसे भाड़े पर दे देता है, तो क का कार्य ख के प्राधिकार का विवक्षित प्रतिसंहरण है। यदि अभिकर्ता मालिक के साथ एक ही कारोबार में भागीदार हो जाए तो वह फिर मालिक का अभिकर्ता नहीं रहता यद्यपि वह भागीदार के तौर पर उस फर्म के कारबार का अभिकर्ता माना जा सकता है। जहां कोई अभिकर्ता किन्हीं दो या अधिक व्यक्तियों का किसी व्यापार में प्रतिनिधित्व करने के दृष्टिकोण से नियुक्त किया जाए और तत्पश्चात् उन नियोजक व्यक्तियों के बीच विभाजन हो जाए तो यह भी अभिकरण के प्राधिकार के प्रतिसंहरण की एक अवस्था होगी। पर्यवसान की विवक्षित अवस्थाओं के ऐसे अनेक उदाहरण हो सकते हैं।

अभिकरण के पर्यवसान का उपाभिकरण पर प्रभाव

जब किसी अभिकर्ता के प्राधिकार का अधिनियम की धारा 201 में वर्णित पांच अवस्थाओं में से किसी भी रीति से पर्यवसान हो जाए, तो ऐसे अभिकर्ता द्वारा नियुक्त उपाभिकर्ता या उपाभिकर्ताओं का प्राधिकार भी समाप्त हो जाता है और उपाभिकर्ता के प्राधिकार का पर्यवसान उन्हीं सब नियमों के अधीन माना जाएगा जिनके अधीन अभिकर्ता के प्राधिकार का पर्यवसान हुआ करता है।[2]

पर्यवसान कब प्रभावी होता है

अभिकर्ता के प्राधिकार का पर्यवसान, जहां तक अभिकर्ता से सम्बन्ध है, उसे उसका ज्ञान होने से पूर्व अथवा जहां तक पर-व्यक्तियों का सम्बन्ध है, उन्हें उसका ज्ञान होने से पूर्व, प्रभावी नहीं होता।[3]

इस नियम में पर्यवसान के प्रभावी होने के सिद्धान्त का नकारात्मक ढंग से कथन किया गया है। स्वीकारात्मक शब्दों में इसे, इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि अभिकर्ता के प्राधिकार का पर्यवसान उस समय प्रभावी हो जाता है जबकि स्वयं अभिकर्ता को और पर-व्यक्तियों को, ऐसे पर्यवसान का ज्ञान हो जाए। इस नियम को नकारात्मक ढंग से इसलिए कथन किया गया है कि पर्यवसान का ज्ञान स्वयं अभिकर्ता और पर-व्यक्तियों को पृथक्-पृथक् समय पर होना संभव है और ज्ञान हुए बिना प्रभाव होना सम्भव नहीं है।

[1] ए० आई० आर० 1978 आन्ध्र प्रदेश 442.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 210.

[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 208.

यह पृथक्-पृथक् प्रभाव, निम्न दृष्टान्तों से, स्पष्ट हो सकेगा—

क—ख को क अपनी ओर से माल बेचने का निदेश देता है और माल की जो कीमत मिले उस पर ख को पांच प्रतिशत कमीशन देने का करार करता है। तत्पश्चात् क पत्र द्वारा ख के प्राधिकार का प्रतिसंहरण करता है। ख उस पत्र के भेजे जाने के पश्चात् किन्तु उसकी प्राप्ति से पूर्व माल को 100 रुपये में बेच देता है। क इस विक्रय से आबद्ध है और ख पांच रुपए कमीशन का हकदार है।

ख—क, जो मद्रास में है, पत्र द्वारा अपनी ओर से ख को मुम्बई में एक भाण्डागार में रखी हुई कुछ रुई बेचने का निर्देश देता है और तत्पश्चात् पत्र द्वारा उसके विक्रय प्राधिकार का प्रतिसंहरण करता है और ख को उस रुई को मद्रास भेजने का निदेश देता है। ख, दूसरा पत्र पाने के पश्चात् ग के साथ, जिसे पहले पत्र का तो ज्ञान है किन्तु दूसरे का नहीं, उस रुई को उसे बेचने की संविदा करता है। ख को ग उसकी कीमत संदत्त कर देता है और ख उसे लेकर फरार हो जाता है। क के विरुद्ध ग का संदाय प्रभावी है।

ग—क अपने अभिकर्ता ख को अमुक धनराशि ग को देने का निर्देश देता है। क मर जाता है और घ उसकी विल का प्रोबेट लेता है। क की मृत्यु के पश्चात् किन्तु मृत्यु की खबर सुनने से पूर्व ग को ख रुपए संदत्त कर देता है। निष्पादक घ के विरुद्ध यह संदाय प्रभावी है।

प्रतिसंहरण द्वारा पर्यवसान पर कतिपय निर्बन्धन

मालिक द्वारा अपने अभिकर्ता को दिए गए प्राधिकार का प्रतिसंहरण करने के कार्य में दो अवस्थाओं की गणना की जा सकती है—1. जहां प्राधिकार पक्षकारों की संविदा के अनुसार किसी विशिष्ट कालावधि के लिए चालू रहना हो, किन्तु उस कालावधि के पर्यवसान से पूर्व ही मालिक द्वारा अभिकर्ता के प्राधिकार का प्रतिसंहरण कर दिया जाए, और ऐसी अवस्था में यदि प्रतिसंहरण का कोई युक्तियुक्त कारण न हो तो मालिक द्वारा अभिकर्ता को प्रतिकर देय होगा,[1] और 2. जहां प्राधिकार किसी एक विशिष्ट कार्य के करने के निमित्त दिया जाए।

दूसरी अवस्था में, मालिक द्वारा अभिकर्ता को दिए गए प्राधिकार के प्रतिसंहरण पर कुछ निर्बन्धन आरोपित किए गए हैं जो निम्न हैं—

1. मालिक अपने अभिकर्ता को दिए गए प्राधिकार का प्रतिसंहरण, अभिकर्ता द्वारा उस प्राधिकार का उपयोग किए जाने से पूर्व किसी भी समय कर सकता है[2] किन्तु यदि अभिकर्ता द्वारा उस प्राधिकार का प्रयोग कर लिया गया हो तो ऐसे प्रयोग के पश्चात् उस प्राधिकार का प्रतिसंहरण नहीं किया जा सकता। उदाहरण के तौर पर, क अपने माल का नीलाम करने के लिए ख को अभिकर्ता नियुक्त करता है, अब क यदि ख के प्राधिकार का प्रतिसंहरण करना चाहे तो वह ऐसा प्रतिसंहरण तब तक कर सकता है जब तक कि ख सबसे ऊंची बोली लगाने वाले के पक्ष में माल का नीलाम सम्पूर्ण न कर दे।

अभिकर्ता के हितयुक्त प्राधिकार के प्रतिसंहरण पर विशेष निर्बन्धन

जहां कि उस सम्पत्ति में, जो अभिकरण की विषयवस्तु हो, अभिकर्ता का कोई हित हो, वहां अभिव्यक्त संविदा के अभाव में अभिकरण का पर्यवसान ऐसे नहीं किया जा सकता कि उस हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।[3]

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 205.

[2] उसी में, धारा 203.

[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 202.

दृष्टान्त के लिए—

क—ख को क यह प्राधिकार देता है कि वह क की भमि बेच दे और उस विक्रय के आगमों में से उन ऋणों का संदाय कर ले जो उसे क द्वारा शोध्य हैं। क इस प्राधिकार का प्रतिसंहरण नहीं कर सकता और न क की उन्मता या मृत्यु से उस प्राधिकार का पर्यवसान हो सकता है।

ख—क रुई की 1,000 गांठे ख को, जिसने उसे ऐसी रुई पर अग्रिम धन दिया है, परेषित करता है और ख से वांछा करता है कि ख उस रुई को बेचे और उसकी कीमत में से अपने अग्रिम धन की रकम का प्रतिसंदाय कर ले। क इस प्राधिकार का प्रतिसंहरण नहीं कर सकता और न उसकी उन्मत्तता या मृत्यु से उस प्राधिकार का पर्यवसान होता है।

इस नियम में, अभिकर्ता के साधारण प्राधिकार से अभिकर्ता के हित-युक्त प्राधिकार (आथोरिटी कपल्ड विद इन्ट्रेस्ट) को सुभिन्न किया गया है। **हितयुक्त प्राधिकार वह प्राधिकार है जहां अभिकरण की विषयवस्तु में अभिकर्ता का भी व्यक्तिगत हित निहित हो।** इंग्लैण्ड की विधि में, हितयुक्त प्राधिकार में अभिकरण का प्राधिकार, अभिकर्ता के हित की प्रतिभूति के तौर पर धारण किया जाता है, किन्तु ऐसा हित प्राधिकार के समय या प्राधिकार के साथ विद्यमान होना चाहिए। यदि ऐसा हित प्राधिकार के पश्चात् उत्पन्न हुआ हो तो उसे हितयुक्त प्राधिकार नहीं माना जा सकता।[1] जैसे कि ऊपर के दृष्टान्त (ख) में यदि क अपनी 100 रुई की गांठें, ख को बेचने के प्राधिकार पर परेषित करता है, तो यह केवल साधारण प्राधिकार है और तत्पश्चात् यदि ख उन गांठों पर अग्रिम धन दे दे तो, ऐसे पश्चात्वर्ती अधिदाय (एडवान्स) को एक पृथक् संव्यवहार माना जाएगा और रुई बेचने का प्राधिकार हितयुक्त प्राधिकार नहीं होगा किन्तु ऊपर के दृष्टान्त (ख) में एक हितयुक्त प्राधिकार का उदाहरण है।

भारतीय विधि में, उपरोक्त नियम से ऐसा प्रतीत होता है कि अभिकरण की विषयवस्तु में, न केवल अभिकर्ता का हित विद्यमान होना चाहिए वरन् अभिकर्ता के हित और उसके प्राधिकार में किसी विशिष्ट सम्बन्ध का होना आवश्यक है जैसे, ऊपर के दृष्टान्त (क) में भूमि बेचने के प्राधिकार में और अपने को मालिक द्वारा शोध्य ऋणों में, एक सम्बन्ध की स्थापना कर दी गई है। अब यदि, मालिक द्वारा अभिकर्ता के प्रति कोई शोध्य ऋण न होते, और अभिकर्ता भूमि के विक्रय के आगमो में से अपने कमीशन की रकम के संदाय की आशा लगाए रहे तो ऐसी आशा का अभिकरण की विषयवस्तु, अर्थात् भूमि के विक्रय, से कोई सम्बन्ध नहीं है,[2] क्योंकि कमीशन का सम्बन्ध मालिक से है न कि अभिकरण की विषय वस्तु स। इसी प्रकार, जहां भाटक वसूल करने का प्राधिकार देकर यह भी सहमति दे दी गई हो कि भाटक के आगमों में से अभिकर्ता अपने कमीशन की रकम ले ले, तो यह प्राधिकार हितयुक्त प्राधिकार नहीं कहा जा सकता।[3] न्या० के० एस० हेगडे के शब्दों में, भारत में अब यह सुस्थिर विधि है कि जहां अभिकरण मूल्यवान प्रतिफल पर सृष्ट हुआ हो और किसी प्रतिभूति को प्रभावी करने का प्राधिकार, प्रदत्त किया गया हो अथवा अभिकर्ता के हित को प्रत्याभूत कर दिया गया हो, जैसे कि किसी डिक्रीदार ने किसी बैंक के पक्ष में मुख्तारनामा लिखकर यह प्राधिकार दे दिया हो कि वह डिक्री का निष्पादन कराके, वसूल होने वाले धन को ऋण के लेखे में संदत्त कर ले, तो यह प्राधिकार प्रतिसंहरणीय नहीं है।[4]

---

[1] स्मार्ट बनाम सैण्डर्स, (1848) 5 कामन बैंच रिपोर्ट्स 895.

[2] लक्ष्मीचन्द बनाम छोटूराम, आई० एल० आर० (1900) 24 बम्बई 403.

[3] विष्नुचार्य बनाम रामचन्द्र, आई० एल० आर० (1881) 5 बम्बई 253.

[4] सेठ लूनकरन बनाम आई० ई० जान, ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 73 (75-77).

प्राधिकार के भागतः प्रयोग के पश्चात् प्रतिसंहरण की परिसीमा

मालिक अपने अभिकर्ता को दिए गए प्राधिकारों का प्रतिसंहरण उस प्राधिकार के भागतः प्रयोग के पश्चात् नहीं कर सकता जहां तक कि उस अभिकरण में पहले ही किए गए कार्यों से उद्भूत कार्यों और बाध्यताओं का सम्बन्ध हो।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 204 में कही हुई यह बात नीचे दिए गए दो दृष्टान्तों से समझी जा सकती है—

क—ख को क प्राधिकृत करता है कि वह क के लेखे रुई की 1,000 गांठें खरीद ले और क का जो धन ख के पास बचा हुआ है उसमें से उनके लिए संदाय कर दे। ख रुई की 1,000 गांठें अपने नाम में इस प्रकार खरीद लेता है कि उनकी कीमत के लिए वह स्वयं वैयक्तिक तौर पर दायी हो जाता है। जहां तक कि उस रुई के लिए संदाय करने का सम्बन्ध है ख के प्राधिकार का प्रतिसंहरण क नहीं कर सकता।

ख—ख को क प्राधिकृत करता है कि वह क के लेखे रुई की 1,000 गांठें खरीद ले और क का जो धन ख के पास बचा हुआ है उसमें से उनके लिए संदाय कर दे। ख रुई की 1,000 गांठें क के नाम में इस प्रकार खरीद लेता है कि उनकी कीमत के लिए वह स्वयं वैयक्तिक तौर पर दायी नहीं होता। क उस रुई के संदाय के लिए ख के प्राधिकार का प्रतिसंहरण कर सकता है।

उपरोक्त नियम अधिनियम की धारा 222 में कथित उस नियम का एक भाग माना जा सकता है जिसके अन्तर्गत यह उपबन्ध किया गया है कि अभिकर्ता का नियोजक उन सब विधिपूर्ण कार्यों के परिणामों के लिए अभिकर्ता की क्षतिपूर्ति करने के लिए आबद्ध है जो उस अभिकर्ता ने उसे प्रदत्त प्राधिकार के प्रयोग में किए हों।

यदि अभिकर्ता ने अपने प्राधिकार का भागतः प्रयोग कर लिया है तो इसका अर्थ यह है कि उसने एक ऐसा कार्य कर लिया है जो मालिक पर आबद्धकर है और जिससे पर-व्यक्तियों के भी कुछ अधिकार उद्भूत हो चुके हैं, और इसीलिए इतना हो जाने के पश्चात् मालिक को उस प्राधिकार के प्रतिसंहरण द्वारा स्वयं को उन बाध्यताओं से, जो कि तत्पूर्व उपगत हो चुकी हैं, मुक्त करने के लिए विधितः अनुज्ञात नहीं किया जा सकता। यदि मालिक ने अभिकर्ता को किसी कार्य को करने के लिए प्राधिकृत किया है और यदि उस प्राधिकार का प्रतिसंहरण कर लिए जाने से अभिकर्ता किसी नुकसान या क्षति के लिए उच्छन्न (एक्सपोज) होता है, तो ऐसी दशा में प्राधिकार प्रतिसंहरणीय नहीं रहता। अभिकर्ता ऐसी बाध्यता चाहे विधि के अन्तर्गत उपगत करे चाहे दोनों पक्षकारों को ज्ञात व्यापार की किसी ऐसी प्रथा के अन्तर्गत, जो कि पक्षकारों की संविदा पर लागू होती हो, नियम यही रहेगा[1] कि उस अभिकरण में प्राधिकार के प्रतिसंहरण से पहले ही किये गए कार्यों से उद्भत कार्यों और बाध्यताओं से मालिक आबद्ध रहेगा और ऐसे प्रतिसंहरण का प्रभाव पहले ही किए गए कार्यों से उद्भूत कार्यों और बाध्यताओं पर नहीं होगा।

समयपूर्व प्रतिसंहरण अथवा त्यजन के लिए उपबन्ध

इस सम्बन्ध में भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 205 व 206 में क्रमशः दो उपबन्ध किए गए हैं—

1. धारा 205—जहां कि यह अभिव्यक्त या विवक्षित संविदा हो कि अभिकरण को किसी कालावधि के लिए चालू रहना है वहां पर्याप्त कारण के बिना अभिकरण के किसी पूर्वतन प्रतिसंहरण या त्यजन का प्रतिकर, यथास्थिति, अभिकर्ता को मालिक या मालिक को अभिकर्ता देगा।

[1] रीड बनाम एण्डरसन, (1884) 13 क्यू० बी० डी० 779.

2. धारा 206—ऐसे प्रतिसंहरण या त्यजन की युक्तियुक्त सूचना देनी होगी, अन्यथा यथास्थिति, मालिक को या अभिकर्ता को तद्द्वारा होने वाले नुकसान की प्रतिपूर्ति एक को दूसरा करेगा।

प्रतिकर का दायित्व दो दशाओं में उद्भूत होता है—1. जबकि अभिकरण को किसी कालावधि तक चालू रखे जाने की संविदा हो किन्तु उसे किसी पर्याप्त कारण के बिना उस कालावधि के व्यतीत होने से पूर्व समाप्त कर दिया गया हो, चाहे मालिक के द्वारा प्रतिसंहरण की अथवा अभिकर्ता द्वारा त्यजन की क्रिया से, 2. जबकि ऐसे प्रतिसंहरण या त्यजन की युक्तियुक्त सूचना न दी गई हो।

जहां अभिकरण के किसी विशेष कालावधि तक चालू रहने की विवक्षा न हो वहां उसका किसी भी समय प्रतिसंहरण किया जा सकता है और ऐसी दशा में किसी सूचना की आवश्यकता नहीं रहती। अतः धारा 206 में प्रयुक्त ऐसे शब्द के सन्दर्भ में स्वतः उस अभिकरण के प्रतिसंहरण अथवा त्यजन को अनुध्यात किया गया है जिसे कि धारा 205 के अन्तर्गत किसी निर्दिष्ट कालावधि तक चालू रहना था।[1]

अभिकर्ता की शारीरिक या मानसिक अक्षमता या उसमें उसके पद से अपेक्षित युक्तियुक्त तत्परता या कौशल का अभाव या उसका सामान्य अवचार या उसके द्वारा की गई उपेक्षा आदि वे अवस्थायें हैं जिन्हें प्राधिकार के प्रतिसंहरण करने के लिए पर्याप्त कारण माना जा सकता है। इसी प्रकार मालिक द्वारा, अभिकर्ता के कमीशन की रकम का संदाय न किया जाना या मालिक द्वारा अभिकर्ता के कार्यों के विधिक परिणामों के लिए अभिकर्ता की क्षतिपूर्ति न किया जाना, या मालिक द्वारा अभिकर्ता के प्रति दुर्व्यवहार किया जाना, आदि ऐसी अवस्थायें हैं जिन्हें अभिकर्ता द्वारा अपने प्राधिकार के त्यजन के लिए पर्याप्त कारण माना जा सकता है।

मालिक की मृत्यु या उन्मत्ततावश पर्यवसान का प्रभाव

संविदा अधिनियम की धारा 201 के अन्तर्गत मालिक की मृत्यु या उन्मत्तता उन अवस्थाओं में से एक है जहां अभिकरण का पर्यवसान हो जाता है, किन्तु धारा 210 में ऐसे पर्यवसान से अभिकर्ता के दायित्व पर होने वाले विशेष प्रभाव का उपबन्ध करते हुए यह कहा गया है कि जब मालिक की मृत्यु हो जाने या उसके विकृतचित्त हो जाने से अभिकरण का पर्यवसान हो जाए तब अभिकर्ता अपने को न्यस्त हितों के संरक्षण और परिरक्षण के लिए अपने भूतपूर्व मालिक के प्रतिनिधियों की ओर से सभी युक्तियुक्त कदम उठाने के लिए आबद्ध है।

किन्तु जहां प्राधिकार हितयुक्त (कपल्ड विद इन्ट्रैस्ट) हो, वहां यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मालिक की मृत्यु या उसके विकृतचित्त हो जाने से प्राधिकार के समय या प्राधिकार के साथ धारण किए गए अभिकर्ता के हित पर कोई प्रतिकूल प्रभाव ही पड़ता है।

मालिक की मृत्यु से या उसके विकृतचित्त हो जाने से अभिकरण का पर्यवसान हो जाता है तथापि अभिकर्ता का इतना दायित्व शेष रहता है कि वह अपने भूतपूर्व मालिक के हितों का यथाशक्य संरक्षण और परिरक्षण करे। मालिक की मृत्यु के पश्चात् भी अभिकर्ता द्वारा पर-व्यक्तियों से संविदा की जा सकती है,[2] यदि ऐसा करना भूतपूर्व मालिक के हितों के संरक्षण के लिए युक्तियुक्त हो। यदि अभिकर्ता

[1] ब्राइट ब्रदर्स बनाम जे० के० संधानी, ए० आई० आर० 1976 मद्रास 55 (59).

[2] मूसाजी अहमद बनाम एडमिनिस्ट्रेटर जनरल, 200 आई० सी० 485.

द्वारा उठाए गए कदम युक्तियुक्त न हों अथवा उनसे मालिक के हितों का संरक्षण न होता हो तो इस नियम का लाभ नहीं उठाया जा सकता ।

मालिक के अभिकर्ता के प्रति कर्त्तव्य

भारतीय संविदा अधिनियम में अभिकर्ता के प्रति मालिक के तीन कर्त्तव्य माने गए हैं—

1. अभिकर्ता का नियोजक उन सब विधिपूर्ण कार्यों के परिणामों के लिए अभिकर्ता की क्षतिपूर्ति करने के लिए आबद्ध है जो उस अभिकर्ता ने उस प्रदत्त अधिकार के प्रयोग में किए हों ।

संविदा अधिनियम की धारा 222 में, इस नियम को, निम्न दृष्टान्तों से स्पष्ट किया गया है—

> क—कलकत्ते के, क, के अनुदेशों के अधीन ग को कुछ माल परिदान करने के लिए ग से ख सिंगापुर में संविदा करता है । ख को क माल नहीं भेजता और ग संविदा भंग के लिए ख पर वाद लाता है । क को ख वाद की इत्तिला देता है और क उसे वाद में प्रतिरक्षा करने के लिए प्राधिकृत करता है । ख वाद में प्रतिरक्षा करता है । और नुकसानी खर्चे देने के लिए विवश किया जाता है और वह व्यय उपगत करता है । क ऐसी नुकसानी, खर्चों और व्ययों के लिए ख के प्रति दायी है ।
>
> ख—कलकत्ते का एक दलाल, ख, वहां के एक वणिक, क, के आदेशों के अनुसार ग से, क के लिए, दस पीपे तेल खरीदने की संविदा करता है । तत्पश्चात् क वह तेल लेने से इन्कार कर देता है और ख पर वाद लाता है । क को ख इत्तिला देता है । क संविदा का पूर्णतः निराकरण कर देता है । ख प्रतिरक्षा करता है किन्तु असफल रहता है और उसे नुकसानी और खर्चे देने पड़ते हैं और व्यय उठाने पड़ते हैं । क ऐसी नुकसानी, खर्चों और व्ययों के लिए ख के प्रति दायी है ।

मालिक अभिकर्ता की क्षतिपूर्ति करने के लिए तभी दायी है जबकि अभिकर्ता द्वारा किया हुआ कार्य (1) विधिपूर्ण हो और (2) अपने प्राधिकार के अन्तर्गत हो ।

विधिपूर्ण का तात्पर्य न केवल विधि के अन्तर्गत किये गए कार्य से है, वरन् ऐसे सब कार्यों से हैं जो व्यापार की प्रथाओं या रूढ़ियों के पालन के परिणामस्वरूप किए गए हों । विधिपूर्ण के अर्थ में पंदयम की संविदा भी आती है । न्या० (जैसा कि वे तब थे) एम० एच० बेग के अनुसार, पंदयम का करार शून्य है किन्तु वह अवैध नहीं है और पंदयम के करार से साम्पार्श्विक संव्यवहार आबद्धकर और प्रवर्तनीय माने गए हैं किन्तु यदि किसी संव्यवहार को विधि द्वारा निषिद्ध अथवा दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है, जैसे कि बम्बई अग्रिम संविदा नियन्त्रण अधिनियम, 1957 द्वारा अपराध घोषित की गई अग्रिम संविदायें, तो ऐसी दशा में यदि मालिक के प्राधिकार से अभिकर्ता ने कोई ऐसा करार कर लिया हो जो पंदयम के तौर का हो तो मालिक अभिकर्ता की क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होगा ।[1]

2. जहां कि एक व्यक्ति किसी दूसरे को कोई कार्य करने के लिए नियोजित करता है और वह अभिकर्ता उस कार्य को सद्भाव से करता है, वहां वह नियोजक उस कार्य के परिणामों के लिए अभिकर्ता की क्षतिपूर्ति करने का दायी है, यद्यपि वह कार्य पर-व्यक्तियों के अधिकारों को क्षतिकारक हो ।

संविदा अधिनियम की धारा 223 के इस पाठ के साथ निम्न दृष्टान्त हैं—

> क—क एक डिक्रीदार, जो ख के माल के विरुद्ध उस डिक्री का निष्पादन कराने का हकदार है, कुछ माल को ख का माल व्यपदिष्ट करके न्यायालय के आफिसर से अपेक्षा करता है कि वह

---

1 फर्म प्रतापचन्द नोपाजी बनाम फर्म कोट्रिक वेंकट सेट्टी एण्ड सन्स, ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1223 (1233)

उस माल को अभिगृहीत कर ले। आफिसर उस माल का अभिग्रहण करता है और उस माल के वास्तविक स्वामी ग द्वारा बाद लाया जाता है। क उस राशि के लिए उस आफिसर की क्षतिपूर्ति करने का दायी है जिसे वह क के निदेशों के पालन के परिणामस्वरूप ग को देने के लिए विवश किया जाता है।

ख—क की प्रार्थना पर ख उस माल को बेचता है जो क के कब्जे में तो है किन्तु जिसके व्ययन का, क को कोई अधिकार नहीं था। ख यह बात नहीं जानता और विक्रय के आगम क को दे देता है। तत्पश्चात् ख पर उस माल का वास्तविक स्वामी ग वाद लाता है और माल का मूल्य और खर्चा वसूल कर लेता है। ग को जो कुछ देने के लिए ख विवश किया गया है, उसकी और ख के अपने व्ययों की क्षतिपूर्ति करने के लिए ख के प्रति क दायी है।

इससे पूर्वगामी नियम में यह बताया गया है कि मालिक अपने अभिकर्ता द्वारा किये गए विधिपूर्ण कार्यों से उद्भूत परिणामों के लिए अभिकर्ता की क्षतिपूर्ति के लिए दायी है। इस नियम में यह बात बताई गई है कि मालिक अभिकर्ता द्वारा किए गए अविधिपूर्ण कार्यों से उद्भूत परिणामों के लिए भी अभिकर्ता की क्षतिपूर्ति करने का दायी है यदि उन कार्यों को सद्भावपूर्वक किया गया है और ये कार्य ऐसे नहीं हैं जो अपराध हों वरन् ऐसे हैं जिन्हें अभिकर्ता अपने ज्ञान में अविधिपूर्ण नहीं समझता था किन्तु ऐसा तब है जबकि तथ्यों से यह भली प्रकार प्रकट हो रहा हो कि अभिकर्ता ने ऐसा सद्भावपूर्वक किया था।[1]

3. मालिक की उपेक्षा से या कौशल के अभाव से उसके अभिकर्ता को कारित क्षति के लिए मालिक अभिकर्ता को प्रतिकर देगा।

संविदा अधिनियम की धारा 225 में उल्लिखित इस बात को निम्न दृष्टान्त से स्पष्ट किया जा सकता है—

क एक गृह बनाने के लिए ख को राज के तौर पर नियोजित करता है और पाड़ स्वयं ही लगाता है। पाड़ कौशलहीनता से लगाई गई है और परिणामत: ख उपहत होता है। ख को क प्रतिकर देगा।

इस नियम में ध्यान देने योग्य बात यह है कि अभिकर्ता केवल मालिक की उपेक्षा से कारित क्षति के लिए ही प्रतिकर का हकदार है। यदि कोई क्षति उसे स्वयं की योगदायी उपेक्षा से या अन्य किसी व्यक्ति की उपेक्षा से, जैसे ऊपर के दृष्टान्त में अपने किसी सह-कर्मकार की उपेक्षा से, कारित हुई हो तो वह ऐसे प्रतिकर का हकदार नहीं है।

मालिक के प्रति अभिकर्ता के कर्त्तव्य

भारतीय संविदा अधिनियम में, मालिक के प्रति अभिकर्ता के कर्त्तव्यों के लिए निम्न उपबन्ध किये गए हैं।

1. अभिकर्ता अपने मालिक के कारबार का संचालन मालिक द्वारा दिए गए निदेशों के अनुसार या ऐसे निदेशों के अभाव में, उस रुढ़ि के अनुसार, करने के लिए आबद्ध है जो उस स्थान पर, जहां अभिकर्ता ऐसे कारबार का संचालन करता है, उसी किस्म का कारबार करने में प्रचलित हो। जबकि अभिकर्ता अन्यथा कार्य करे तब यदि कोई हानि हो तो उसे उसके लिए मालिक की प्रतिपूर्ति करनी होगी और यदि कोई लाभ हो तो उसे उसका लेखा देना होगा।

1 राज्य बनाम चकियत ब्रदर्स, ए० आई० आर० 1975 केरल 13.

अधिनियम की धारा 211 के इस पाठ को नीचे लिखे दो दृष्टान्तों से स्पष्ट किया गया है—

क—क, एक अभिकर्ता, जो ख की ओर से ऐसा कारबार करने लगा है, जिसमें यह रुढ़ि है कि समय-समय पर जो रुपया हाथ में आए उसे ब्याज पर विनिहित कर दिया जाए, उसका वैसा विनिधान करने का लोप करता है। ख के प्रति उस ब्याज की प्रतिपूर्ति, जो इस प्रकार के विनिधानों से प्राय: अभिप्राप्त होता है, क को करनी होगी।

ख—एक दलाल, ख, जिसके कारबार में उधार बेचने की रूढ़ि नहीं है, क का माल ग को जिसका प्रत्यय उस समय बहुत ऊंचा है, उधार बेचता है। ग, संदाय करने से पूर्व दिवालिया हो जाता है। क की इस हानि की प्रतिपूर्ति ख को करनी होगी।

नियम और दोनों दृष्टान्तों का आशय यह है कि अभिकर्ता अपने अभिकरण का कारबार मालिक के निदेशों के अनुसार करेगा किन्तु जिस विषय में मालिक के निद श नहीं हैं, वहां वह अपने अभिकरण की प्रकृति के कारबार में प्रचलित रूढ़ियों का पालन करेगा। ऐसे निदेश या निदश के अभाव में ऐसी रूढ़ि का अभिकर्ता द्वारा पालन न किए जाने से कोई जोखिम हो तो वह जोखिम स्वयं अभिकर्ता पर है। अभिकर्ता अपने अभिकरण का कारबार करने में यदि मालिक के निदेशों या निदेशों के अभाव में, उस अमुक कारबार में प्रचलित रूढियों का पालन नहीं करता है तो इसके दो परिणाम हो सकते हैं—1. या तो ऐसा करने से मालिक को हानि हो अथवा 2. ऐसा करने से मालिक को लाभ हो। यदि हानि हो तो, अभिकर्ता अपने मालिक की प्रतिपूर्ति करेगा। ऊपर के दोनों दृष्टान्त ऐसे हैं, जहां अभिकर्ता ने अपने अभिकरण के कारबार में प्रचलित रूढ़ियों का उल्लंघन किया है और तद्द्वारा मालिक को हानि हुई है और अभिकर्ता को, मालिक के प्रति, मालिक की, उस हानि की सीमा तक, प्रतिपूर्ति के लिए दायी माना गया है। यदि मान लिया जाए कि अभिकर्ता मालिक के निदेशों या कारबार में प्रचलित किसी रूढ़ि का उल्लंघन करके भी उस कारबार को लाभ पहुंचा सके तो उसे मालिक को उस लाभ का लेखा देना होगा।

2. अभिकर्ता अभिकरण के कारबार का संचालन उतने कौशल से करने के लिए आबद्ध है जितना वैसे कारबार में लगे हुए व्यक्तियों में साधारण होता है, जब तक कि मालिक को उसके कौशल के अभाव की सूचना न हो। अभिकर्ता सदा ही युक्तियुक्त तत्परता से कार्य करने के लिए और उसका जितना कौशल है, उसे उपयोग में लाने के लिए और अपनी स्वयं की उपेक्षा, कौशल के अभाव या अवचार के प्रत्यक्ष परिणामों की बाबत अपने मालिक को प्रतिकर देने के लिए आबद्ध है, किन्तु ऐसी हानि या नुकसान की बाबत नहीं जो ऐसी उपेक्षा, कौशल के अभाव या अवचार से अप्रत्यक्षत: या दूरस्थत: कारित हो।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 212 के इस नियम में बताए गए अभिकर्ता के कर्त्तव्य को भली प्रकार स्पष्ट करने के लिए निम्न दृष्टान्त सहायक होंगे—

क—कलकत्ते के एक वणिक, क, का एक अभिकर्ता, ख, लन्दन में है जिसे क के लेखे में कुछ धन इस आदेश के साथ दिया जाता है कि वह उसे भेज दे। ख उस धन को बहुत समय तक रखे रहता है। उस धन के न मिलने के फलस्वरूप क दिवालिया हो जाता है। ख उस धन के लिए और जिस तारीख को वह दे दिया जाना चाहिए था, उस तारीख से प्रायिक दर पर ब्याज के लिए एवं प्रत्यक्ष हानि के लिए, उदाहरणार्थ विनिमय दर में फेरफार के लिए दायी है, किन्तु इससे अतिरिक्त के लिए नहीं।

ख—माल के विक्रय के लिए अभिकर्ता क जिसे उधार बेचने का प्राधिकार है ख की शोधन-क्षमता के बारे में उचित और प्रायिक जांच किए बिना ख को उधार माल बेचता है। इस विक्रय के समय ख दिवालिया है। उससे हुई हानि के लिए क अपने मालिक को प्रतिकर देगा।

ग—पोत का बीमा करने के लिए ख द्वारा नियोजित एक बीमा दलाल क इस बात का ध्यान रखने का लोप करता है कि बीमे की पालिसी में ये उपबन्ध रखे जाएं, जो प्रायः रखे जाते हैं। तत्पश्चात् पोत नष्ट हो जाता है। उन उपबन्धों के न होने के परिणामस्वरूप निम्नांकक[1] से कुछ वसूल नहीं किया जा सकता। ख की उस हानि की प्रतिपूर्ति करने के लिए क आबद्ध है।

घ—इंग्लैण्ड का एक वणिक क, मुम्बई के अपने अभिकर्ता, ख, को जिसने अभिकरण प्रतिगृहीत किया है, रुई की 100 गांठें अमुक पोत में अपने को भेजने का निदेश देता है। ख की शक्ति में यह बात थी कि वह रुई भेज दे, किन्तु वह ऐसा करने का लोप करता है। वह पोत सकुशल इंग्लैण्ड पहुंच जाता है। उसके पहुंचने के तुरन्त पश्चात् रुई की कीमत चढ़ जाती है। ख उस लाभ की प्रतिपूर्ति क के प्रति करने को आबद्ध है जो क रुई की उन 100 गांठों में से उसे कमाता जिस समय पोत पहुंचा, किन्तु उस लाभ की पूर्ति के लिए नहीं जो उस पश्चात्वर्ती बढ़ोतरी के कारण होता।

उपरोक्त नियम अपने भाषा विन्यास की दृष्टि से जटिल है। **इसे सरल शब्दों में इस प्रकार विश्लेषित किया जा सकता है—**

(i) अभिकर्ता का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने अभिकरण का कारबार कौशल से संचालित करेगा। उपरोक्त नियम की सर्वप्रथम बात यही है।

(ii) तत्पश्चात् यह बताया गया है कि अभिकर्ता के कौशल का मापदण्ड क्या होगा, और इस मापदण्ड के लिए कहा गया है कि अभिकर्ता को उतने ही कौशल का परिचय देना होगा जितने कौशल का कि वैसे ही कारबार में लगे हुए अन्य व्यक्ति प्रयोग करते हैं।

(iii) किन्तु जहां मालिक को यह ज्ञात हो कि उसके अभिकर्ता का कौशल वैसे ही कारबार में लगे हुए अन्य व्यक्तियों के जैसा नहीं है, वहां, यद्यपि मालिक उससे अन्य व्यक्तियों के स्तर के कौशल की अपेक्षा नहीं कर सकता तथापि अभिकर्ता में स्वयं में जितना कौशल है, उतने का वह अभिकर्ता पूरा उपयोग करेगा, जिसका तात्पर्य यह है कि अभिकर्ता ने जहां यह दर्शित किया हो कि वह किसी विशिष्ट कौशल का धनी है अथवा वह स्वयं अपने मामलों में किसी विशेष कौशल का प्रयोग करता रहा है अथवा किसी अमुक प्रकार के कौशल की उसकी वृत्ति या उसके नियोजन से अपेक्षा की जा सकती हो, किन्तु, इनमें से जैसी भी अवस्था हो, उसके अनुसार वह उस कौशल का प्रयोग नहीं करता है तो उसे, अपने कौशल के अप्रयोग के द्वारा कारित हानि के लिए मालिक को प्रतिकर देना होगा। ऐसे कौशल के अप्रयोग से अभिकर्ता घोर उपेक्षा का दोषी माना जाएगा। किन्तु जहां अभिकर्ता मालिक से किए गए करार के अनुरूप कार्य कर रहा हो वहां उससे किसी असाधारण सावधानी की अपेक्षा नहीं की जा सकती। जैसे, यदि परेषक ने रसीद और हुण्डी बैंक को देकर यह निदेशित कर दिया कि वह परेषिती से हुण्डी की रकम लेकर, रसीद उसे दे दे और बैंक ने यदि रसीद को रजिस्ट्रीकृत डाक के स्थान पर साधारण डाक से भेज दिया हो और रसीद खो गई हो तो यह माना गया कि बैंक उसे रजिस्ट्रीकृत डाक से भेजने के लिए बाध्यताधीन नहीं था।[2]

---

[1] निम्नांकक शब्द को अंग्रेजी में अन्डरराइटर कहते हैं जिसका अर्थ ऐसे व्यक्ति से है जो बीमा की पालिसियों के नीचे हस्ताक्षर करते हैं और किसी भी प्रकार की जोखिम को पालिसी के अन्तर्गत लेते हैं। यह शब्द बहुधा पोत का बीमा करने वालों के लिए प्रयुक्त होता है.

[2] पदम परशाद बनाम पंजाब नेशनल बैंक, ए० आई० आर० 1974 पंजाब-हरियाणा 22(24).

(iv) कौशल के साथ-साथ अभिकर्ता का यह भी कर्त्तव्य है कि वह अपने कार्य में युक्तियुक्त तत्परता बरतेगा और न कोई उपेक्षा करेगा और न किसी प्रकार का अवचार। उसके युक्तियुक्त तत्परता न बरतने से या उसकी उपेक्षा या उसके अवचार के कारण मालिक को यदि कोई हानि हो तो भी वह मालिक को प्रतिकर देने के लिए आबद्ध है।

(v) अभिकर्ता का मालिक को प्रतिकर देने का दायित्व तभी होता है जबकि मालिक की अभिकथित हानि अभिकर्ता के कौशल या युक्तियुक्त तत्परता के अभाव से या उसकी उपेक्षा या उसके अवचार के कारण प्रत्यक्षत: उद्भूत हुई हो किन्तु जो हानियां दूरस्थ अथवा अप्रत्यक्ष हों, उनके लिए मालिक अभिकर्ता से प्रतिकर पाने का हकदार नहीं है।

(vi) इस नियम में यह भी विवक्षित है कि जहां अभिकर्ता ने किसी ऐसे कार्य का जिम्मा ले लिया है जिसे करने के लिए किसी विशेष कौशल की आवश्यकता हो और वैसा विशेष कौशल अभिकर्ता में मूलत: हो ही नहीं तो, अभिकर्ता में ऐसे कौशल का अभाव होने के कारण जो हानि मालिक को उठानी पड़े उसके लिए भी मालिक अभिकर्ता से प्रतिकर प्राप्त कर सकेगा।

3. अभिकर्ता अपने मालिक की मांग पर उचित लेखा देने के लिए आबद्ध है।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 213 में वर्णित लेखा देने का यह दायित्व केवल लेखा भेज देने या लेखा बहियों को प्रस्तुत कर देने मात्र से पूरा नहीं हो जाता, वरन् लेखा देने के कर्तव्य का अर्थ यह है कि अभिकर्ता लेखा प्रस्तुत करते समय लेखे की सम्यक् व्यवस्था भी करेगा जिससे मालिक उस लेखे को भली प्रकार समझ सके, साथ ही लेखा देने का अर्थ यह भी है अभिकर्ता उस लेखे मद्धे जो बाकी रकम हो, उसे भी मालिक को संदत्त करे।[1]

यद्यपि इस नियम के अनुसार, मालिक को ही अधिकार है कि वह अभिकर्ता के विरुद्ध लेखे के लिए वाद संस्थित करे और ऐसा अधिकार इस नियम में दर्शित नहीं होता कि अभिकर्ता भी लेखे के लिए मालिक के विरुद्ध वाद संस्थित कर सके तथापि अभिकर्ता का मालिक से लेखा मांगने का अधिकार साम्या के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। इस सम्बन्ध में न्या० वी० रामस्वामी का संप्रेक्षण यह है कि, अभिकर्ता का यह अधिकार उन अवस्थाओं पर निर्भर करता है जहां लेखा मालिक के द्वारा रखा जाता हो और जहां अभिकर्ता के लिए यह ज्ञात करना कठिन हो कि उसके कमीशन की कितनी रकम मालिक की ओर से उसके प्रति शोध्य है।[2] किन्तु जहां अभिकर्ता को वस्तुस्थिति का पूर्ण ज्ञान रहा हो वहां अभिकर्ता द्वारा किसी असाधारण परिस्थिति का अभिवाक् व्यर्थ है और उसका वाद खारिज होने योग्य है।[3]

4. अभिकर्ता का यह कर्त्तव्य है कि कठिनाई की दशाओं में अपने मालिक से सम्पर्क रखने और उसके अनुदेश अभिप्राप्त करने में समस्त युक्तियुक्त तत्परता बरते।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 214 में अन्तर्विष्ट यह एक सामान्य नियम है जो सामान्य अवस्थाओं में लागू होता है। आपात की स्थिति में यह नियम लागू न होकर धारा 189 में वर्णित नियम लागू होता है जहां अभिकर्ता को यह प्राधिकार है कि हानि से अपने मालिक की संरक्षा करने के प्रयोजन से सारे ऐसे कार्य करे जैसे मामूली प्रज्ञा वाला व्यक्ति अपने मामले में वैसी ही परिस्थितियों में करता।

---

1 शिव बनाम हनुमान, ए० आई० आर० 1938 पटना 392.

2 नारायणदास बनाम पापामल, ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 333.

3 सुशीलचन्द्र बनाम राजबहादुर, ए० आई० आर० 1977 इलाहाबाद 259 (266).

सामान्य अवस्था और आपात-अवस्था में लागू होने वाले उपरोक्त दोनों नियमों का एक साथ अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि संविदा विधि में, कठिनाई और आपात् की स्थितियों में भेद किया गया है। आपात् का यह प्राधिकार, अभिकर्ता को इस उद्देश्य से प्रदान किया गया है कि जहां मालिक का माल या उसका कोई हित किसी आसन्न संकट से ग्रस्त हो गया हो और उस संकट के निवारण के लिए मालिक के अनुदेश के बिना ही कोई अध्युपाय तात्कालिक रूप से आवश्यक हो गया हो और इतना समय शेष न रहा हो कि मालिक से सम्पर्क स्थापित करके उसके अनुदेश अभिप्राप्त किये जा सकें, तो वहां अभिकर्ता किसी आवश्यक अध्युपाय द्वारा मालिक के माल या उसके हितों का संरक्षण कर सके। ऐसी दशाओं में, अभिकर्ता के पक्ष में मालिक की अनुमति या उसके अनुदेश की उपधारणा कर ली जाती है।

5. अभिकर्ता मालिक की उन सब राशियों को संदाय करने के लिए आबद्ध है जो मालिक के लेखे उसे प्राप्त हुई हों।[1] किन्तु मालिक लेखे प्राप्त की हुई राशियों में से अभिकर्ता निम्न कटौतियां कर सकता है[2]—

अ—अभिकरण के कारबार के संचालन में, अभिकर्ता द्वारा दिए गए अग्रिमों की राशि;

आ—अभिकर्ता द्वारा उचित रूप से उपगत व्ययों की राशि, और

इ—ऐसे पारिश्रमिक की राशि जो उसे अभिकर्ता के तौर पर कार्य करने के लिए मालिक की ओर से देय हो।

अभिकर्ता के विरुद्ध मालिक के कुछ विशेष अधिकार

1. यदि कोई अभिकर्ता अपने मालिक की सम्मति पहले से अभिप्राप्त किए बिना और उसको उन सब तात्विक परिस्थितियों से, जो उस विषय पर उसके अपने ज्ञान में आई हों, परिचित कराये बिना अभिकरण के कारबार में अपने ही लेखे व्यवहार करे तो, यदि मामले से दर्शित हो कि या तो कोई तात्विक तथ्य अभिकर्ता द्वारा बेईमानी से मालिक से छिपाया गया है या अभिकर्ता के व्यवहार मालिक के लिए अहितकर रहे हैं, तो मालिक उस व्यवहार का निराकरण कर सकेगा।[3]

निम्न दो दृष्टान्तों से उपरोक्त नियम की व्याख्या की जा सकती है—

क—क अपनी सम्पदा बेचने का निदेश ख को देता है। ख उस सम्पदा को ग के नाम में अपने लिए खरीद लेता है। यह पता लगने पर कि ख ने सम्पदा अपने लिए खरीदी है क उस विक्रय का निराकरण कर सकेगा यदि वह यह दर्शित कर सके कि ख ने बेईमानी से कोई तात्विक तथ्य छिपाया है या वह विक्रय उसके लिए अहितकर रहा है।

ख—क अपनी सम्पदा बेचने का निदेश ख को देता है। ख बेचने से पूर्व उस सम्पदा को देखने पर यह जान पाता है कि सम्पदा में एक खान है जो क को ज्ञात नहीं है। क को ख सूचित करता है कि वह सम्पदा अपने लिए खरीदना चाहता है किन्तु खान की बात छिपा लेता है। क खान के अस्तित्व को न जानते हुए ख को खरीदने देता है। क यह जानने पर कि ख सम्पदा को खरीदने के समय खान के बारे में जानता था, उस विक्रय को अपने विकल्प पर निराकृत या अंगीकृत कर सकेगा।

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 218.
[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 217.
[3] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 215.

उपरोक्त नियम के सम्बन्ध में इंगलैण्ड की विधि और भारतीय विधि में जो अन्तर है, उसे राम स्वरूप मामचन्द बनाम छाजूराम एण्ड सन्स[1] वाले मामले में स्पष्ट किया गया है। इंग्लैण्ड की विधि में, जब मालिक को यह पता चले कि अभिकर्ता, छद्म रूप से मालिक के तौर पर ही व्यवहार कर रहा है तो मालिक इसी आधार पर अभिकर्ता द्वारा किए हुए उस व्यवहार को निराकृत कर सकता है। किन्तु भारतीय विधि में, मालिक द्वारा ऐसे व्यवहार का निराकरण तभी किया जा सकता है जबकि अभिकर्ता ने कोई तात्विक तथ्य बेईमानी से अपने मालिक से छिपाया हो या अभिकर्ता का वह व्यवहार मालिक के लिए अहितकर रहा हो।

2. यदि कोई अभिकर्ता अपने मालिक के ज्ञान के बिना अभिकरण के कारबार में अपने मालिक के लेखे व्यवहार करने के बजाय अपने ही लेखे व्यवहार करता है तो मालिक अभिकर्ता से उस फायदे का दावा करने का हकदार है जो अभिकर्ता को उस संव्यवहार से हुआ हो।[2]

नियम को स्पष्ट करने के लिए एक दृष्टान्त यह है कि क अपने लिए अमुक गृह खरीदने का निदेश अपने अभिकर्ता ख को देता है। क से ख कहता है कि वह खरीदा नहीं जा सकता और उसे अपने लिए खरीद लेता है। यह जांचने पर कि ख ने गृह खरीद लिया है क उसी वह घर अपने को उस कीमत पर, जो ख ने दी हो, बेचने के लिए विवश कर सकेगा।

नियम का उद्देश्य यह है कि अभिकर्ता के तौर पर कार्य करने वाले किसी भी व्यक्ति को ऐसी स्थिति उत्पन्न करने की अनुमति नहीं दी जा सकती जिसमें कि उस व्यक्ति के कर्त्तव्य और हितों में किसी प्रकार का अन्तर्विरोध हो जाए, साथ ही किसी भी अभिकर्ता को अपने अभिकरण के कारबार में मालिक की जानकारी और सहमति के बिना अपने को लाभान्वित करने की अनुमति भी नहीं दी जा सकती।[3] इस नियम में वस्तुतः ऐसे अभिकर्ता पर जो कि अनुचित रीति से और सही स्थिति को बिना प्रकट किए, अपने को मालिक बताकर व्यवहार करता है, एक प्रकार की शास्ति अधिरोपित की गई है। इस नियम को आकृष्ट करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि अभिकर्ता के ऐसे व्यवहार से मालिक को कोई हानि हुई हो। यदि अभिकर्ता ने मालिक के लिए किसी कम कीमत पर माल खरीदा हो और मालिक को उसी माल का प्रदाय ऊंची कीमत पर किया हो तो न केवल मालिक उन कीमतों के अन्तर के फायदे का हकदार है वरन् वह अभिकर्ता पर कपट के लिए भी वाद ला सकता है।[4]

3. मालिक अपने अभिकर्ता के कमीशन की राशि का संदाय करने के लिए आबद्ध है, किन्तु वह अभिकर्ता, जो अभिकरण के कारबार में अवचार का दोषी है, कारबार के उस भाग के बारे में, जिसे उसने अवचारित किया है, किसी पारिश्रमिक का हकदार नहीं है।[5]

निम्न दृष्टान्तों से यह नियम स्पष्ट होगा—

(क) ग से 1,00,000 रुपए वसूल करने और उन्हें अच्छी प्रतिभूति पर लगाने के लिए ख को क नियोजित करता है। ख उन 1,00,000 रुपयों को वसूल करता है और 90,000 रुपय अच्छी प्रतिभूति पर लगाता है किन्तु, 10,000 रुपये ऐसी प्रतिभूति पर लगाता है जिसका बुरा होना उसे ज्ञात होना चाहिए था। इसके फलस्वरूप क को 2,000 रुपयों की हानि

---

[1] 169 आई० सी० 827.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 216.

[3] गोवर्धन बनाम अब्दुल, ए० आई० आर० 1942 मद्रास 634.

[4] कालूराम बनाम चिमनीराम, 36 बाम्बे ला रिपोर्टर, 68.

[5] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 220.

होती है। ख 1,00,000 रुपये वसूल करने के लिए और 90,000 रुपये विनिहित करने के लिए पारिश्रमिक पाने का हकदार है । वह 10,000 रुपये विनिहित करने के लिए पारिश्रमिक पाने का हकदार नहीं है, और उसे क को 2,000 रुपये की प्रतिपूर्ति करनी होगी ।

(ख) ग से 1,000 रुपये वसूल करने के लिए ख को क नियोजित करता है । ख के अवचार से वह धन वसूल नहीं होता । ख अपनी सेवाओं के लिए किसी भी पारिश्रमिक का हकदार नहीं है और उसे हानि की प्रतिपूर्ति करनी होगी ।

यह नियम इस सिद्धान्त पर आधारित है कि मालिक एक ईमानदार अभिकर्ता का हकदार है और यदि अभिकर्ता प्रत्यक्षतः अन्य पक्षों से कोई दुरभिसन्धि करके मालिक के हितों के प्रतिकूल आचरण करता है तो वह कमीशन का हकदार नहीं रहता ।

निर्णयज विधि में, इस नियम के कुछ अपवाद स्थापित किए गए हैं । अपवादों के अनुसार, निम्न दशाओं में यह नियम लागू नहीं होता—

(i) जहां कि अभिकर्ता कपट का दोषी नहीं हो वरन् उसने मालिक के धन को इस भूल में प्रतिधृत कर लिया हो कि उसे कारबार की रूढियों के अन्तर्गत ऐसा धन रखने का अधिकार है।[1]

(ii) जहां कि अभिकर्ता ने कुछ संव्यवहारों में अवचार किया हो किन्तु अन्य संव्यवहारों में अवचार नहीं किया हो, तथा कारबार के वे भाग जिन्हें अभिकर्ता ने अवचारित किया है उन भागों से, जिनके प्रति अभिकर्ता ने अवचार नहीं किया है, पृथक्करणीय हैं ।[2] ऐसी दशा में अभिकर्ता उन संव्यवहारों पर, जिनके प्रति वह अवचार का दोषी नहीं है, पारिश्रमिक का हकदार हो सकेगा ।

(iii) जहां अभिकर्ता को यह पता चल गया हो कि वह क्रेता और विक्रेता दोनों ही के लिए अभिकर्ता के तौर पर कार्य कर रहा है और पता चलने पर उसने क्रेता से यह प्रस्थापना की हो कि वह पृथक अभिकर्ता नियुक्त कर ले किन्तु क्रेता द्वारा पृथक अभिकर्ता की नियुक्ति न की गई हो तो अभिकर्ता क्रेता से कमीशन का हकदार हो जाता है ।[3]

अभिकर्ता का धारणाधिकार अथवा प्रतिधारणा की अवस्थायें

1. **तीन अवस्थाएं**—अभिकर्ता के धारणाधिकार और प्रतिधारण की तीन अवस्थायें हैं—

(1) मालिक के लेखे प्राप्त राशियों में से पारिश्रमिक की रकम का प्रतिधारण,

(2) मालिक के बेचे गए माल के लेखे प्राप्त राशियों का प्रतिधारण, और

(3) मालिक की सम्पत्ति पर धारणाधिकार ।

2. **मालिक के लेखे प्राप्त राशियों का प्रतिधारण**—अभिकर्ता अभिकरण के कारबार में मालिक के लेखे प्राप्त राशियों में से उन सब धनों का, जो उसे कारबार के संचालन में उसके द्वारा दिए गए अग्रिमों या उचित रूप से उपगत व्ययों के लिए उसको शोध्य हों, और ऐसे पारिश्रमिक का भी, जो ऐसे अभिकर्ता के तौर पर कार्य करने के लिए उसे देय हो, प्रतिधारण कर सकेगा ।[4]

---

[1] हिप्पिस्ली बनाम नी ब्रदर्स, एल० आर० (1905) 1 के० बी०, 1.

[2] नाइटेंडल्स बनाम बस्टर, एल० आर० (1906) 2 चान्सरी 671.

[3] हैरोडस लिमिटेड बनाम लेमन, एल० आर० (1931) 2 के० बी० 157.

[4] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 217.

मालिक के लेखे प्राप्त राशियों में से, अभिकर्ता केवल निम्न राशियों का प्रतिधारण कर सकेगा--

(i) जो धन उसने मालिक के कारबार के संचालन में अग्रिम के तौर पर विनिहित किया हो,

(ii) वह धन जिसका अभिकर्ता ने मालिक के कारबार के संचालन में उचित व्ययों के रूप में संदाय किया हो,

(iii) वह धन जो उसे अपने अभिकरण के कारबार में पारिश्रमिक के तौर पर मालिक की ओर से शोध्य हो गया हो ।

3. कटौतियों के पश्चात् संदाय की आबद्धता—मालिक के लेखे प्राप्त राशि में से, अभिकर्ता उपरोक्त मदों की कटौती कर लेने का हकदार है, किन्तु उपरोक्त कटौतियों के अध्यधीन अभिकर्ता मालिक की उन सब राशियों को संदाय करने के लिए आबद्ध है जो मालिक के लेखे उसे प्राप्त हुई हों ।[1]

4. पारिश्रमिक की शोध्यता तथा प्रतिधारण—किसी विशेष संविदा के अभाव में, किसी कार्य के पालन के लिए संदाय अभिकर्ता को तब तक शोध्य नहीं होता जब तक वह कार्य पूरा नहीं हो जाए, किन्तु अभिकर्ता बेचे गए माल के लेखे उसे प्राप्त धनराशियों को प्रतिधृत कर सकेगा यद्यपि विक्रय के लिए उसे परेषित माल सारे का सारा बेचा न जा सका हो, या विक्रय वस्तुतः पूर्ण न हुआ हो ।[2]

5. पारिश्रमिक कब शोध्य होता है—अभिकर्ता का पारिश्रमिक निम्न अवस्थाओं में शोध्य हो जाता है—

(1) यदि पारिश्रमिक का उपबन्ध करने वाली कोई अभिव्यक्त संविदा हो, तो यह बात कि पारिश्रमिक कब शोध्य हो जाता है, मूलतः उस संविदा की शर्तों के अनुसार विनिश्चित की जाएगी ।[3] ऐसी किसी अभिव्यक्त संविदा के अभाव में, पारिश्रमिक का अधिकार और यह कि वह कब शोध्य होता है, उस विशिष्ट व्यापार जिसमें कि अभिकर्ता नियोजित है, की प्रथाओं अथवा रूढ़ियों पर निर्भर करता है ।[4]

(2) जहां अभिव्यक्त संविदा न हो, वहां पारिश्रमिक उस कार्य के जिसके लिए कि अभिकर्ता की नियुक्ति की गई है, पूर्ण होने पर शोध्य होता है । माल विक्रय के संव्यवहार में, जैसे ही अभिकर्ता, क्रेता और विक्रेता का सम्पर्क स्थापित करा देता है, वैसे ही विक्रय के कार्य का पूर्ण हो जाना मान लिया जाता है और अभिकर्ता पारिश्रमिक का हकदार हो जाता है, भले ही वास्तविक विक्रय न हो पाया हो ।[5] जब अभिकर्ता पक्षकारों में सम्पर्क स्थापित करा दे और वे पक्षकार संविदा के लिए विचार बना लें तभी अभिकर्ता का पारिश्रमिक शोध्य हो जाता है, भले ही पक्षकारों ने किसी कारणवश अपना विचार तत्पश्चात् बदल डाला हो ।[6] अभिकर्ता ने पक्षकारों का सम्पर्क करा दिया या नहीं, यह एक तथ्य का प्रश्न है जो मामले की विशेष परिस्थितियों के अनुसार अवधारित होगा ।[7]

---

[1] देखिए भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 218.

[2] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 219.

[3] ग्रीन बनाम म्यूल्स, (1861) 30 लॉ जर्नल (इंग्लैंड) कामन प्लीज, 343.

[4] रीड बनाम रैन, (1830) 10 बार्नवाल एंड क्रैस वैल्स रिपोर्ट्स, 438.

[5] ग्रीन बनाम बार्टलैट, (1863) 14 कामन बैंच न्यू सीरीज रिपोर्ट्स 681.

[6] ग्रीन बनाम ल्यूकस, (1876) 31 लॉ टाइम्स, 731.

[7] जार्डन बनाम रामचन्द्र गुप्ता, (1904) 8 सी० डब्ल्यू० एन० 831.

(3) यदि अभिकरण की संविदा की किसी शर्त का भंग करके मालिक किसी संव्यवहार को पूरा न करे या पूरा करने से इन्कार कर दे, और अभिकर्ता को अपना पारिश्रमिक उपार्जित करने से निवारित करे तो अभिकर्ता मालिक से नुकसानी का हकदार है ।[1]

(4) जहां अभिकरण किसी माल के विक्रय के लिए हो, वहां अभिकर्ता, अपने द्वारा बेचे गए माल के लेखे अपने को प्राप्त धनराशियों को प्रतिधृत कर सकेगा, भले ही सारा माल बेचा न जा सका हो अथवा विक्रय पूर्ण न हुआ हो ।

6. मालिक की सम्पत्ति पर अभिकर्ता का धारणाधिकार—

(i) प्रतिधारण और धारणाधिकार में अन्तर—इस अन्तर को कहीं परिभाषित नहीं किया गया, किन्तु प्रतीत ऐसा होता है कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 217 व 219 में जहां **प्रतिधारण** शब्द प्रयुक्त हुआ है, वह **राशि** अथवा **राशियों** के सन्दर्भ में है, जबकि अधिनियम की धारा 221 के शीर्षक में प्रयुक्त किया हुआ शब्द **धारणाधिकार** है जो धारा के पाठ में माल, कागजपत्र व अन्य सम्पत्ति के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है । **प्रतिधारण** वस्तुतः एक क्रियावाची पद है जिसे धारणाधिकार के नाम से एक विशेष अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है । **प्रतिधारण राशि के सम्बन्ध में वह क्रिया है जिसे अभिकर्ता रख सकता है और उसमें उसका स्वत्व सृष्ट हो जाता है जबकि धारणाधिकार ऐसे माल, कागजपत्र या सम्पत्ति के सम्बन्ध को केवल रोक रखने का अधिकार है जिसमें रोक रखने वाले का स्वत्व उत्पन्न नहीं होता ।**

(ii) धारणाधिकार के विषय में उपबन्ध—भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 221 में यह उपबन्ध है कि तत्प्रतिकूल संविदा के अभाव में अभिकर्ता को यह हक है कि उसे प्राप्त मालिक का माल, कागज-पत्र और अन्य सम्पत्ति, चाहे वह जंगम हो या स्थावर, तब तक प्रतिधारित किए रहे जब तक उसे तत्सम्बन्धी कमीशन, संवितरणों और सेवाओं की बाबत शोध्य रकम दे न दी जाए या उसका लेखा समझा न दिया जाए ।

रामप्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए न्यायाधिपति के० एस० हेगडे धारणाधिकार की व्याख्या करते हुए यह अवधारित करते हैं कि जिस अभिकर्ता को अपने द्वारा उपगत व्ययों के लिए, अग्रिम के तौर पर दी हुई राशियों के लिए अथवा अभिकरण के अनुक्रम में उठाए गए नुकसान की रकमों के लिए, मालिक की सम्पत्ति से प्रतिपूर्ति का अधिकार हो अथवा जिसे अपनी सेवाओं के लिए मालिक से प्रतिकर प्राप्त करने का हक हो, उसे अपने उस अभिकरण के अनुक्रम में, जिससे कि उसका प्रतिकर अथवा क्षतिपूर्ति का हक उद्भूत होता हो, अपने कब्जे में विधितः आये हुए माल या सम्पत्ति पर धारणाधिकार रहता है । क्रय-अभिकर्ता (परचेजिंग अभिकर्ता) को अपने कब्जे में आये हुए उस माल पर, जिसे कि मालिक के लिए क्रय करने में अभिकर्ता ने धन का संदाय किया है, धारणाधिकार होता है । उपरोक्त रामप्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिकर्ता के धारणाधिकार के बारे में निम्न सिद्धान्त अधिकथित किए हैं—

(i) सामान्य नियम यह है कि धारणाधिकार के प्रयोग के लिए, उस विषय वस्तु पर, जिस पर कि धारणाधिकार का दावा किया जाए, अभिकर्ता का किसी प्रकार का कब्जा, अभिरक्षण नियन्त्रण या किसी प्रकार की व्ययन-शक्ति का होना अनिवार्य है ।

---

[1] टर्नर बनाम गोल्डस्मिथ, एल० आर० (1891) 1 क्यू० बी० 544.

[2] ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1818 (1970) 2 एस० सी० आर० 677

(ii) धारणाधिकार निम्न अवस्थाओं में उद्भूत नहीं होता--

1. जबकि अभिकर्ता ने माल पर कब्जा किसी ऐसी संविदा के अधीन प्राप्त किया हो जिसमें कि कोई प्रतिकूल आशय अभिव्यक्त या विवक्षित हो, अथवा

2. जबकि अभिकर्ता को माल का परिदान या उसे माल के प्रति न्यस्त ऐसे उद्देश्य से किया गया हो जो कि उस माल पर होने वाले धारणाधिकार से असंगत हो ।

3. धारणाधिकार, माल अथवा सम्पत्ति के केवल प्रतिधारण का अधिकार होने के कारण, उस समय समाप्त हो जाता है जबकि अभिकर्ता का उस माल या सम्पत्ति पर कब्जा न रहा हो, किन्तु निम्नदशाओं में, अभिकर्ता का माल या सम्पत्ति पर कब्जा न रहने पर भी, उसका धारणाधिकार विद्यमान रहता है, यदि

1. अभिकर्ता ने माल या सम्पत्ति पर अपने कब्जे को त्यागते हुए धारणाधिकार को अभिव्यक्ततः या विवक्षिततः आरक्षित रखा हो, अथवा

2. अभिकर्ता को किसी कपट या अविधिपूर्ण साधन से माल पर अपने कब्जे से वंचित कर दिया गया हो ।

भागीदारी की संविदा में, एक भागीदार को दूसरे भागीदार के विरुद्ध धारणाधिकार नहीं होता क्योंकि प्रत्येक भागीदार ही अभिकर्ता नहीं वरन् मालिक की हैसियत रखता है ।[1]

अभिकरण के प्राधिकार में की हुई संविदाओं का प्रवर्तन

1. **अधिनियम की धारा 230 और 226 का सन्दर्भः**--अभिकर्ता द्वारा अपने अभिकरण के प्राधिकार के अन्तर्गत की हुई संविदा के प्रवर्तन के विषय में दो मूल सिद्धान्त हैं--(1) ऐसी संविदाओं का प्रवर्तन अभिकर्ता वैयक्तिक रूप से नहीं करा सकता और न वह उनसे वैयक्तिक रूप से बाध्य ही होता है, और (2) ऐसी संविदाओं के विधिक परिणाम वे ही होंगे मानो वे संविदायें मालिक द्वारा ही की गई हों । प्रथम सिद्धान्त का उपबन्ध भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 230 तथा द्वितीय का धारा 226 में उपबन्ध किया गया है ।

2. **धारा 230:**--किसी तत्प्रभावी संविदा के अभाव में, कोई भी अभिकर्ता अपने मालिक की ओर से अपने द्वारा की गई संविदाओं का प्रवर्तन वैयक्तिक रूप से नहीं करा सकता और न वैयक्तिक रूप से उनसे आबद्ध होता है । ऐसी तत्प्रभावी संविदा के अस्तित्व की उपधारणा निम्नलिखित दशाओं में की जाएगी--

(i) जहां कि संविदा किसी अभिकर्ता द्वारा किसी विदेश निवासी वणिक की ओर से माल के विक्रय या क्रय के लिए की गई हो,

(ii) जहां कि अभिकर्ता अपने मालिक का नाम प्रकट नहीं करता,

(iii) जहां कि मालिक पर, यद्यपि उसका नाम प्रकट कर दिया गया हो, वाद नहीं लाया जा सकता ।

ऊपर (i), (ii) और (iii) में वर्णित अवस्थाओं में, अभिकर्ता अभिकरण के प्राधिकार के अन्तर्गत की हुई संविदाओं से वैयक्तिक रूप से बाध्य होता है तथा उनका प्रवर्तन भी वह वैयक्तिक रूप से करा सकता है, जिसका आशय यह है कि जो संविदा अभिकर्ता द्वारा उपरोक्त तीन अवस्थाओं में से किसी के भी

---

[1] आफिशल लिक्विडेटर बनाम स्वरूप कोल्ड स्टोरेज, ए० आई० आर० 1976 इलाहाबाद 88.

अन्तर्गत की गई हो, वहां उस संविदा की शर्तों से उद्भूत किसी भी विषय पर अभिकर्ता वाद ला सकता है और अभिकर्ता के विरुद्ध भी वाद लाया जा सकता है । उपरोक्त तीन अवस्थाओं के सिवाय, अन्य संविदायें जो अभिकर्ता और पर-व्यक्तियों के बीच की गई हैं, उनके सम्बन्ध में न तो अभिकर्ता वैयक्तिक रूप से वाद ला सकता है और न उसके विरुद्ध ही वाद लाया जा सकता है, वरन् ऐसा वाद मालिक द्वारा या मालिक के विरुद्ध ही वाद लाया जायेगा ।

अभिकर्ता द्वारा मालिक का नाम प्रकट किए बिना, मालिक और अभिकर्ता की संयुक्त बाध्यता का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । ऐसी दशा में केवल अभिकर्ता ही बाध्यताधीन होता है । (जे० थामस एण्ड कम्पनी बनाम बंगाल जूट बेलिंग कं० लि०[1])

3. उपरोक्त तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त भी, यदि अभिकरण की विषयवस्तु में संविदा अधिनियम की धारा 202 में उद्दिष्ट अभिकर्ता का कोई हित हो, अर्थात् जब अभिकर्ता द्वारा धारण किया जाने वाला प्राधिकार, हितयुक्त प्राधिकार हो, तो अभिकर्ता वैयक्तिक रूप से वाद ला सकता है । ऐसी दशा में अभिकर्ता की वैयक्तिक रूप से वाद लाने की क्षमता का समर्थन इस कारण किया जा सकता है कि ऐसी अवस्था में वैयक्तिक हित के आधार पर वैयक्तिक अधिकार सृष्ट हो जाता है और अभिकरण की विधि ने केवल उस अधिकार को मान्यता प्रदान की है ।

इस नियम के अन्तर्गत तीन ऐसी अवस्थाओं का वर्णन किया गया है जिनमें अभिकर्ता के विरुद्ध या उसके द्वारा वैयक्तिक रूप से वाद लाया जा सकता है और उन अवस्थाओं में एक वह अवस्था है जहां कि मालिक पर यद्यपि उसका नाम प्रकट कर दिया गया है, वाद लाया नहीं जा सकता । वाद लाया नहीं जा सकता का अर्थ यह है कि वाद कहीं भी नहीं लाया जा सकता । इसका अर्थ यह नहीं है कि मालिक पर, वाद भारत में नहीं लाया जा सके तो अभिकर्ता के विरुद्ध व्यक्तितः वाद लाया जा सकेगा । अतः मालिक पर वाद, भारत में, न लाया जाकर, अन्यत्र लाया जा सके तो अभिकर्ता वैयक्तिक रूप से दायी नहीं होगा ।[2] उदाहरण के लिए भारत संघ की अथवा भारत संघ के किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में की गई संविदाओं में, संविधान के अनुच्छेद 299 के अनुसार, न तो राष्ट्रपति और न किसी राज्य का राज्यपाल ही इस प्रकार की गई अथवा लिखी गई किसी संविदा या हस्तान्तरण-पत्र के बारे में वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी होगा और न वैसा कोई व्यक्ति ही इसके बारे में वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी होगा जिसने उनमें से किसी की ओर से ऐसी संविदा या हस्तान्तरण-पत्र किया या लिखा हो । संविधान के अनुच्छेद 300 के अनुसार ऐसी संविदाओं के विषय में, भारत संघ के नाम से, भारत सरकार व्यवहार वाद ला सकेगी अथवा उसके विरुद्ध व्यवहार वाद लाया जा सकेगा तथा किसी राज्य के नाम से उस राज्य की सरकार व्यवहार वाद ला सकेगी अथवा उसके विरुद्ध व्यवहार वाद लाया जा सकेगा ।

उपरोक्त उपबन्ध केवल प्ररूप के दृष्टिकोण से ही नहीं किये गए हैं वरन् इसका उद्देश्य अप्राधिकृत संविदाओं के विरुद्ध सरकार के हितों की रक्षा करने का है । वास्तव में, यदि कोई संविदा अप्राधिकृत है अथवा प्राधिकार से बाहर होकर की गई है तो सरकार के हितों की रक्षा किया जाना उचित है; किन्तु दूसरी ओर यह बात भी उचित है कि सरकार की ओर से संविदा करने वाला अधिकारी भी संविदा के उपयुक्त प्ररूप के आश्रय से अपनी रक्षा कर सके । इन दोनों बातों के मध्य में ही वे असंख्य मामले आते हैं जहां संविदा प्राधिकृत होते हुए भी किसी न किसी कारणवश विहित प्ररूप के अनुसार नहीं हो

1 ए० आई० आर० 1979 कलकत्ता 20.

2 भारत संघ बनाम विनाय चावलानी एंड कम्पनी, ए० आई० आर० 1976 कलकत्ता 467.

पायी हो अतः यह भी उचित है कि केवल इसी कारण, संविदा के किसी निर्दोष पक्षकार को कोई क्षति न उठानी पड़े और यदि कोई अन्य प्रकार का दोष या आक्षेप न हो तो सरकार उस संविदा के दायित्वाधीन होगी ।

4. **चतुर्भुज बनाम मोरेश्वर की व्याख्या** :—चतुर्भुज बनाम मोरेश्वर[1] वाले मामले में, प्रशासन परिषद् के अध्यक्ष ने भारत संघ की ओर से संविदा की थी और उसके संविदा करने के प्राधिकार को चुनौती नहीं दी गई थी । चतुर्भुज उस फर्म का भागीदार था जिसने कि भारत संघ के साथ सरकार के प्रयोजनों के लिए माल के प्रदाय की संविदा की थी और संविदा के दोनों पक्षों का यही विश्वास था कि वह संविदा उस प्ररूप में नहीं थी जिसका कि उपबन्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 299(1) में किया गया था और केवल इसी दोष के कारण उस संविदा को मालिक के विरुद्ध अप्रवर्तनीय माना गया था । उच्चतम न्यायालय के न्यायाधिपति बोस ने यह संप्रेक्षित किया था कि—

> "यह ठीक है कि सरकार ऐसे मामले में संविदा से आबद्ध नहीं होगी किन्तु इस बात में और यह कहने में कि यह संविदा शून्य है अथवा प्रभावी नहीं है, बहुत अन्तर है । इसका अर्थ केवल इतना-सा है कि मालिक पर वाद नहीं लाया जा सकता किन्तु ऐसी कोई बात नहीं है जो ऐसी संविदा के सरकार द्वारा, विशेषतः तब जबकि वह सरकार के लाभ में हो, अनुसमर्थित किए जाने से निवारित करे । जहां कोई सरकारी अधिकारी अपने प्राधिकार से बाहर होकर कार्य करे वहां सरकार उस कार्य से तब बाध्य हो जाती है जबकि सरकार उस कार्य को अनुसमर्थित कर दे । केवल इसी कारण से कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 299(1) के आधार पर संघ सरकार पर वाद नहीं लाया जा सकता, कोई संविदा शून्य नहीं मानी जा सकती ।"

जो संविदा आद्यतः शून्य है, उसका अनुसमर्थन नहीं किया जा सकता, किंतु जो संविदा भारत के संविदा के अनुच्छेद 299 (1) के विहित प्ररूप में नहीं है, उसका अनुसमर्थन करके उसे प्रवर्तनीय स्वरूप प्रदान किए जाने में कोई बाधा नहीं है । पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम बी० के० मोण्डल[2] वाले मामले में न्या० बोस के उपरोक्त संप्रेक्षण की व्याख्या करते हुए न्या० गजेंद्रगडकर (तत्पश्चात् मुख्य न्यायाधिपति) ने यह अवधारित किया है कि यह प्रतिपादना सही नहीं है कि जहां पक्षकारों द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 299(1) के उपबंधों का पालन नहीं किया गया है वहां भी वह संविदा प्रवर्तनीय रहेगी । इस संबंध में तत्पश्चात् न्या० ए० एन० ग्रोवर के निर्णयानुसार, यह स्पष्ट किया गया कि अनुच्छेद 299 (1) के उपबंध आज्ञापक हैं और यदि कोई संविदा उन उपबंधों में विहित रीति से नहीं की गई है तो वह एक अप्रवर्तनीय संविदा है । ऐसी अप्रवर्तनीय संविदा से वह अधिकारी जिसने कि राष्ट्रपति या राज्यपाल, जैसी भी स्थिति हो, की ओर से वह संविदा की है, स्वयं भी वैयक्तिक रूप से दायी नहीं होता ।[3]

5. धारा 226 —अभिकर्ता के माध्यम से की गई संविदायें और अभिकर्ता द्वारा किए गए कार्यों से उद्भूत बाध्यताएं उसी प्रकार प्रवर्तित कराई जा सकेंगी और उनके वे ही विधिक परिणाम होंगे मानों वे संविदाएं और कार्य स्वयं मालिक द्वारा किए गए हों ।

---

[1] ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 236-1954 एस० सी० आर० 817.

[2] ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 779-1961 (3) एस० सी० आर० 45.

[3] **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मुरारीलाल एण्ड संस**, ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 2210; **मूलचन्द बनाम मध्य प्रदेश राज्य**, ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 1218 अवलम्बित.

दृष्टांत के लिए—

क—ख से माल क यह जानते हुए कि ख उनके विक्रय के लिए अभिकर्ता है, किन्तु यह न जानते हुए कि मालिक कौन है, खरीदता है। ख का मालिक क से उस माल की कीमत का दावा करने का हकदार है और मालिक द्वारा लाये गए वाद में मालिक के दावे के विरुद्ध वह ऋण जो उसे ख से शोध्य हों, मुजरा नहीं करा सकता।

ख—ख का अभिकर्ता क, जिसे उसकी ओर से धन प्राप्त करने का प्राधिकार है, ग से ख को शोध्य कुछ धनराशि प्राप्त करता है। उक्त धन ख को देने की बाध्यता से ग उन्मोचित हो जाता है।

इस नियम द्वारा ग्राह्य बात यह है कि अभिकर्ता ने जिस संविदा या कार्य को किया है, वह जहां तक मालिक और पर-व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध है, मालिक पर आवद्धकर है यदि अभिकर्ता ने ऐसा कार्य अपने प्राधिकार के क्षेत्र में और सद्भावपूर्वक किया हो। यदि अभिकर्ता ने वह कार्य अपने नियोजन के क्षेत्र के अन्तर्गत किया है तो यह बात महत्वहीन है कि अमुक कार्य मालिक द्वारा स्पष्टतः प्राधिकृत नहीं था। अतः नगरपालिका द्वारा नियोजित ठेकेदारों और इंजीनियरों की उपेक्षा से पर-व्यक्तियों को हुई क्षति के लिए नगरपालिका दायी है।[1] न्या॰ वी॰ रामस्वामी के अनुसार नगरपालिका द्वारा प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा न्यायालय में लाए हुए परिवाद में नगरपालिका को परिवादी माना जाएगा।[2]

जहां तक अभिकर्ता के उन कार्यों का सम्बन्ध है जो वास्तव में प्राधिकृत नहीं थे, उनसे भी मालिक आबद्ध होगा किन्तु तब जबकि वे कार्य अभिकर्ता के दृश्यमान (आस्टेन्सिबिल) प्राधिकार के अन्तर्गत आते हों, किन्तु मालिक, किसी भी दशा में, अभिकर्ता और पर-व्यक्तियों के बीच किए गए संव्यवहार से तब आबद्ध नहीं होगा जबकि पर-व्यक्ति को यह ज्ञान हो कि अभिकर्ता का वह कार्य या संव्यवहार अभिकर्ता के प्राधिकार से परे था। अभिकर्ता द्वारा प्राधिकार से परे या प्राधिकार के बिना किये गए कार्यों के लिए मालिक की बाध्यता के विषय में, पृथक् से उपबन्ध किये गए हैं जिनका वर्णन नीचे के शीर्षक में किया गया है।[3]

प्राधिकार से परे या प्राधिकार के बिना किए गए कार्यों की बाध्यता

अभिकर्ता द्वारा अपने प्राधिकार से परे या बिना प्राधिकार किए हुए कार्यों के प्रति मालिक की आबद्धता के सम्बन्ध में **तीन प्रमुख नियम** निम्न प्रकार से हैं।

1. **जब प्राधिकृत और अप्राधिकृत कार्यों का पृथक्करण हो सके** :—जबकि कोई अभिकर्ता उससे अधिक करता है जितना करने के लिए वह प्राधिकृत है और जबकि जो कुछ वह करता है उसका वह भाग, जो उसके प्राधिकार के भीतर है, उस भाग से जो उसके प्राधिकार से परे है, पृथक् किया जा सकता है तो जो कुछ वह करता है उसका केवल उतना ही भाग, जितना उसके प्राधिकार के भीतर है, उसके और मालिक के बीच आवद्धकर है।[4]

दृष्टान्त के लिए, क जो एक पोत और स्थोरा का स्वामी है, ख को उस पोत का 4,000 रुपये का बीमा उपाप्त करने के लिए प्राधिकृत करता है। ख पोत का 4,000 रुपये का एक बीमा और स्थोरा का समान राशि का दूसरा बीमा उपाप्त करता है। क पोत के बीमे के लिए प्रीमियम देने को आबद्ध है किन्तु स्थोरा के बीमे के लिए प्रीमियम देने को नहीं।

[1] कालिदास साईजिंग वर्क्स बनाम भिवण्डी नगरपालिका, ए॰ आई॰ आर॰ 1969 मम्बई 127.
[2] दिल्ली नगरपालिका बनाम जगदीश, ए॰ आई॰ आर॰ 1970-एस॰ सी॰ 7.
[3] फर्म रूपराम कैलाशनाथ बनाम सहकारी संघ, ए॰ आई॰ आर॰ 1967 इलाहाबाद, 382.
[4] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 227.

सामान्य सिद्धान्त यह है कि जहां कोई अभिकर्ता जिस सीमा तक वह प्राधिकृत है, उससे कम कार्य करता है, तो ऐसा कार्य प्राधिकृत नहीं माना जा सकता और वह इसलिए शून्य है कि ऐसे कार्य में जो प्राधिकारिता का तत्व है वह पूर्णतः विद्यमान ही नहीं हैं, किन्तु जहां अभिकर्ता द्वारा किया हुआ कार्य ऐसा है जो उससे अधिक है जितना कि प्राधिकृत है, तो ऐसी दशा में जितना प्राधिकार से अधिक है, वह शून्य है और शेष मालिक पर आबद्धकर है। **पृथक्करणीयता का सिद्धान्त जिसका ऊपर के नियम में कथन किया गया है, केवल पश्चात्‌वर्ती अवस्था में अर्थात् उस अवस्था में जहां अभिकर्ता ने प्राधिकृत कार्य से अधिक कर लिया हो, लागू किया जा सकता है जबकि अधिक किये हुए भाग को प्राधिकृत भाग से पृथक् किया जाना सम्भव हो।** पृथक् किये जाने की सम्भावना में, किया हुआ कार्य प्राधिकार की सीमा तक मालिक पर आबद्धकर है।

2. **जब प्राधिकृत और अप्राधिकृत कार्यों का पृथक्करण न हो सके:**—जहां कि अभिकर्ता उससे अधिक करता है जितना करने के लिए वह प्राधिकृत है और अपने प्राधिकार के विस्तार के परे जो कुछ वह करता है, वह उससे पृथक् नहीं किया जा सकता जो उसके प्राधिकार के भीतर है, वहां मालिक उस संव्यवहार को मान्यता देने के लिए आबद्ध नहीं है।[1]

दृष्टान्त के लिए, **क** अपने लिए 500 भेड़ें खरीदने के लिए **ख** को प्राधिकृत करता है। **ख** 6,000 रुपये की एक राशि में 500 भेड़ें और 200 मेमने खरीद लेता है। **क** सम्पूर्ण संव्यवहार का निराकरण कर सकेगा।

इस नियम का सार यह है कि **जब अभिकर्ता का अप्राधिकृत कार्य अपने आप में एक सम्पूर्ण इकाई हो जिसमें कि उस कार्य के अप्राधिकृत भाग को प्राधिकृत भाग से पृथक् न किया जा सके तो मालिक उसके किसी भाग से और किसी भी सीमा तक आबद्ध नहीं।** मालिक के आबद्ध न होने का यह अर्थ नहीं है कि वह अमुक संव्यवहार अवैध है क्योंकि मालिक चाहे तो उस कार्य को सम्पूर्णतः अनुसमर्थित कर सकता है अथवा सम्पूर्णतः निराकृत कर सकता है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 199 के अनुसार अनुसमर्थन के विषय में नियम यह है कि जो व्यक्ति अपनी ओर से किए गए किसी अप्राधिकृत कार्य का अनुसमर्थन करता है, वह उस सम्पूर्ण संव्यवहार का अनुसमर्थन करता है, जिसका ऐसा कार्य भाग है। ऊपर के दृष्टान्त में यह कहा गया है कि **क** उस सम्पूर्ण संव्यवहार का निराकरण कर सकेगा जिसका तात्पर्य यही है कि यदि वह **ख** के कार्य का अनसमर्थन करना चाहे तो भी उसे **ख** द्वारा किए गए उस सम्पूर्ण संव्यवहार का ही अनुसमर्थन करना होगा, किंतु **क** को यह अधिकार नहीं है कि **ख** द्वारा केवल 500 भेड़ों की खरीद के कार्य का तो अनुसमर्थन कर दे और शेष 200 मेमनों की खरीद के कार्य को बातिल कर दे।

दृष्टान्त का प्रत्यक्ष अर्थ यह है कि यदि मालिक ने उस सम्पूर्ण संव्यवहार को निराकृत नहीं किया तो वह विवक्षिततः उस सम्पूर्ण संव्यवहार से आबद्ध होगा। अतः ऐसे मामलों में मालिक का यह कर्त्तव्य है कि उसे एक युक्तियुक्त समय के भीतर अपने अभिकर्ता को यह अवश्य संसूचित कर देना चाहिए कि वह उस अभिकर्ता के कार्य को अनुसमर्थित नहीं कर रहा और न उससे वह आबद्ध होगा क्योंकि यदि वह निराकृत करने की संसूचना नहीं देता है तो यह उपधारणा की जा सकती है कि उसने उस कार्य को अनुसमर्थित किया है।

---

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 228.

3. जब अप्राधिकृत कार्य को प्राधिकृत मानने का विश्वास हो:—जबकि अभिकर्ता ने प्राधिकार के बिना अपने मालिक की ओर से कार्य किए हों या पर-व्यक्तियों के प्रति बाध्यताएं उपगत की हों तब मालिक ऐसे कार्यों या बाध्यताओं से आबद्ध होगा, यदि मालिक ने अपने शब्दों या आचरण से ऐसे पर-व्यक्तियों को यह विश्वास करने के लिए उत्प्रेरित किया हो कि ऐसे कार्य और बाध्यताएं उस अभिकर्ता के प्राधिकार के विस्तार के भीतर थीं ।[1]

दृष्टान्त के लिए—

क—क विक्रय के लिए माल ख को प्रेषित करता है और उसे अनुदेश देता है कि वह उसे नियत कीमत से कम पर न बेचे । ख को दिए गए अनुदेशों को न जानते हुए ग आरक्षित कीमत से कम कीमत पर उस माल को खरीदने की ख से संविदा करता है । क उस संविदा से आबद्ध है ।

ख—क ऐसी परक्राम्य लिखत, जिन पर निरंक पृष्ठांकन है, ख के पास न्यस्त करता है । क के प्राइवेट आदेशों का अतिक्रमण कर ख उन्हें ग को बेच देता है । विक्रय ठीक है ।

4. होल्डिंग आउट या व्यपदेशन का सिद्धान्त :—उपरोक्त नियम में जिस सिद्धान्त को स्थान दिया गया है उसे अंग्रेजी में **होल्डिंग आउट** का सिद्धान्त कहा जाता है । हिंदी में इसे **व्यपदिष्ट करने या प्रकट करने** का सिद्धान्त कहा जा सकता है । यह सिद्धान्त उन मामलों में लागू होता है जहां कि अभिकर्ता द्वारा किया हुआ कोई कार्य जिस पर कि वह अपने मालिक को आबद्ध करने के लिए निर्भर करता है कार्यों के विशिष्ट वर्ग में आता है जिनके विषय में मालिक ने यह व्यपदिष्ट किया हो कि ऐसे कार्यों को करने का अभिकर्ता को मालिक की ओर से सामान्य प्राधिकार है और जबकि अभिकर्ता से संव्यवहार करने वाले उस पक्षकार ने, जिस पर ऐसे किसी कार्य का कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हो, भुलावे में आकर अभिकर्ता के उस प्रकार के कार्यों के सामान्य प्राधिकार का विश्वास करते हुए संव्यवहार किया हो । अन्य शब्दों में, इस सिद्धान्त का कथन इस प्रकार किया जा सकता है कि **जहां मालिक की ओर से किसी विशिष्ट प्रकृति के विशिष्ट कार्यों को करने के लिए अभिकर्ता का केवल सीमित प्राधिकार व्यपदिष्ट किया गया है, वहां अभिकर्ता द्वारा अपने प्राधिकार से बाहर होकर किए गए कार्यों से मालिक के आबद्ध न होने का यह कारण है कि अभिकर्ता से संव्यवहार करने वाले पक्षकार को अभिकर्ता के सीमित प्राधिकार की सूचना रहती है और उस पक्षकार को अभिकर्ता के उस संव्यवहार के लिए प्राधिकृत होने न होने का विनिश्चय कर लेना चाहिए ।**

जहां अभिकर्ता को मालिक की ओर से अन्य व्यक्ति से माल क्रय करने का प्राधिकार हो और अभिकर्ता उस माल को उधार लेकर मालिक के धन का दुर्विनियोग कर ले तो मालिक माल के मूल्य के संदाय के लिए उस अन्य व्यक्ति के प्रति दायी है और इस बात से कि मालिक का उस व्यक्ति से उधार खाता है या नहीं, कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि उस अन्य व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कोई आधार नहीं है कि अभिकर्ता को उधार खाते माल क्रय करने का प्राधिकार नहीं रहा था ।[2]

उपरोक्त नियम विबन्ध के सिद्धान्त को अन्तर्वलित करता है । जब किसी व्यक्ति का आशय भले ही कुछ भी हो, किन्तु उसका आचरण इस प्रकार का रहा हो जिससे किसी भी युक्तियुक्त व्यक्ति के लिए उस आचरण से किसी विशेष तथ्य या तथ्यों के व्यपदिष्ट होने का अर्थ लगाया जाना और यह समझना कि ऐसा व्यपदेशन सत्य है, संभव हो, और जिस व्यक्ति ने उस आचरण का ऐसा अर्थ लगाया

[1] भारतीय संविदा अधिनियम, धारा 237.

[2] फर्म रूपराम कैलाशनाथ बनाम सहकारी संघ, ए० आई० आर० 1967 इलाहाबाद 382.

हो उससे तदनुसार किसी विशेष रीति से कार्य करने की अपेक्षा हो और उस पर उस रीति से कार्य करने के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हो तो जिस व्यक्ति का ऐसा आचरण रहा है वह उस प्रकार व्यपदिष्ट तथ्यों से इंकार नहीं कर सकता ।

और भी सरल शब्दों में कथन किया जाए तो इस **नियम का सार यह है कि जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का नियोजन ऐसे स्वरूप में करता है जिसमें कि कोई विशिष्ट प्राधिकार स्वतः अन्तर्वलित हो तो वह प्रथम व्यक्ति किसी गुप्त आरक्षण के द्वारा, उस द्वितीय व्यक्ति को दृश्यमान प्राधिकार से निर्निहित (डाइवैस्ट) नहीं कर सकता । यदि दृश्यमान प्राधिकार वास्तविक प्राधिकार न हो तो व्यापार जगत को सारी सुरक्षा ही समाप्त हो जाए ।** ऊपर के दोनों दृष्टान्त जो इस नियम के साथ दिए गए हैं, उन्हें यदि ध्यान से पढ़ा जाए तो वे मालिक के उस आचरण के प्रमाण हैं, जिनसे अभिकर्ता का एक विशिष्ट प्राधिकार दृश्यमान है कि वह माल का विक्रय करे अथवा परक्राम्य लिखत पर किसी भी प्रकार का संव्यवहार करे और क्योंकि यह किसी भी प्रकार व्यपदिष्ट नहीं है कि मालिक ने किसी गुप्त निदेशों का आरक्षण किया हो, तो ऐसी दशा में अभिकर्ता द्वारा अन्य व्यक्तियों से किए गए संव्यवहार से मालिक आबद्ध है। किंतु यदि पर-व्यक्तियों को यह सूचना हो कि मालिक द्वारा कोई गुप्त आरक्षण किए गए हैं तो मालिक के ऐसे आरक्षण के विपरीत, अभिकर्ता और पर-व्यक्तियों के बीच किए गए संव्यवहारों से मालिक आबद्ध नहीं है ।

अप्रकटित अभिकर्ता द्वारा की हुई संविदा

इस संबंध में संविदा अधिनियम में तीन उपबन्ध हैं जो क्रमशः अधिनियम की धारा 231 के प्रथम चरण, धारा 232 तथा धारा 231 के द्वितीय चरण में उपबन्धित हैं ।

1. धारा 231, प्रथम चरण:—यदि कोई अभिकर्ता ऐसे व्यक्ति से संविदा करे, जो न तो यह जानता हो और न यह संदेह करने का कारण रखता हो कि वह अभिकर्ता है तो अभिकर्ता का मालिक यह अपेक्षा कर सकेगा कि संविदा का पालन किया जाए, किन्तु संविदा करने वाला दूसरा पक्षकार उस मालिक के विरुद्ध वे ही अधिकार रखता है जो वह उस अभिकर्ता के विरुद्ध रखता है यदि वह अभिकर्ता मालिक होता ।

यह नियम अप्रकट मालिक के किसी अभिकर्ता के साथ किसी पर-व्यक्ति द्वारा की हुई संविदा को अवस्था का वर्णन करते हुए यह दर्शाता है कि ऐसी दशा में 1. मालिक के उस पर-व्यक्ति के विरुद्ध क्या अधिकार हैं और 2. उस पर-व्यक्ति के मालिक के विरुद्ध क्या अधिकार हैं। इन दोनों प्रश्नों का उत्तर, इस नियम में इस प्रकार दिया गया है—

1. अभिकर्ता का मालिक उस पर-व्यक्ति के विरुद्ध उस संविदा का प्रवर्तन करा सकता है, तथा

2. वह पर-व्यक्ति, उस अभिकर्ता के मालिक के विरुद्ध वे ही अधिकार रखता है जो कि वह उस अभिकर्ता के विरुद्ध रखता यदि वह अभिकर्ता मालिक होता ।

प्रथम उत्तर, द्वितीय उत्तर से विशेषित बना हुआ है अर्थात् अप्रकटित मालिक का अपने अभिकर्ता द्वारा पर-व्यक्ति से की हुई संविदा के प्रवर्तन का अधिकार, उस पर-व्यक्ति के उस अधिकार के अध्यधीन है जो कि वह पर-व्यक्ति उस अभिकर्ता के विरुद्ध रखता यदि वह अभिकर्ता मालिक ही होता। मालिक के अधिकार की पर-व्यक्ति के अधिकार के प्रति ऐसी अध्यधीनता का ही अधिनियम की धारा 232 में कथन किया गया है—

2. धारा 232—जहां कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ, यह न जानते हुए और यह सन्देह करने का युक्तियुक्त आधार न रखते हुए कि वह दूसरा व्यक्ति एक अभिकर्ता है, संविदा करता है, वहाँ

यदि मालिक उस संविदा के पालन की अपेक्षा करे तो वह एसा पालन, अभिकर्ता और संविदा के दूसरे पक्षकार के बीच विद्यमान अधिकारों और बाध्यताओं के अध्यधीन ही अभिप्राप्त कर सकता है।

दृष्टान्त के लिए, मान लिया जाए कि **क**, **ख** को 500 रुपये का देनदार है और साथ ही वह **ख** को 1,000 रुपये का चावल भी बेचता है। अब यह चावल बेचने का संव्यवहार **क** ने **ख** के साथ, किया तो है वास्तव में **ग** के अभिकर्ता की हैसियत से किन्तु **ख** यह नहीं जानता कि **क** ने उसके साथ यह चावल बेचने का संव्यवहार **ग** के अभिकर्ता के रूप में किया है और न ही ऐसी बात के सन्देह करने का **ग** के पास कोई युक्तियुक्त आधार ही है कि **क** का **ख** के साथ यह संव्यवहार मालिक के तौर पर न होकर वास्तव में किसी अन्य व्यक्ति अर्थात् **ग** के अभिकर्ता की हैसियत से किया हुआ संव्यवहार है। ऐसी दशा में **ग** जो कि मालिक है, **ख** के विरुद्ध चावल लेने की संविदा का प्रवर्तन तो करा सकता है अर्थात् **ग**, **ख** को, वह चावल लेने के लिए विवश तो कर सकता है, किन्तु **ग** को इस संविदा के प्रवर्तन के निमित्त **ख** को उस 500 रुपये के ऋण को, जो कि **ख** का **क** के प्रति शोध्य है, मुजरा करने की अनुमति देनी होगी।

यदि उपरोक्त अवस्था में, संविदा पूर्ण होने के पूर्व, **ग**, **ख** पर, यह प्रकट कर देता है कि **ख** ने जो चावल लेने का करार **क** से किया है, उस करार में **क** मालिक न होकर **ग** का अभिकर्ता मात्र है तो, **ख** यदि चाहे तो अपने 500 रुपये के ऋण को मुजरा करके शेष 500 रुपये **ग** को देने की बाध्यता को प्रतिगृहीत कर सकता है और यदि चाहे तो वह उस संविदा का पालन करने से इंकार कर सकता है। इस विषय में जो नियम है, उसका कथन भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 231 के द्वितीय चरण में किया गया है।

3. **धारा 231, द्वितीय चरण**:—यदि मालिक संविदा पूर्ण होने के पूर्व अपने आपको प्रकट कर दे तो संविदा करने वाला दूसरा पक्षकार उस संविदा का पालन करने से इंकार कर सकेगा यदि वह यह दर्शित कर सके कि यदि उसे यह ज्ञात होता कि संविदा में मालिक कौन है या यदि उसे यह ज्ञात होता कि वह अभिकर्ता मालिक नहीं है तो उसने वह संविदा न की होती।

इस नियम को ऊपर के दृष्टान्त पर लागू करने से **ख** का विकल्प स्पष्ट हो सकता है अर्थात् **ख** को एक ओर तो यह विकल्प है कि वह **ग** को भी उस 500 रुपये की मुजराई को, जो कि **ख** का **क** के विरुद्ध ऋण के रूप में शोध्य है, मानने के लिए बाध्य कर सकता है, जैसाकि वह **क** को कर सकता था, साथ ही दूसरी ओर **ख**, यह भी दर्शित कर सके कि उसे यदि **क** का मालिक न होना विदित होता तो वह चावल लेने की संविदा **क** से करता ही नहीं अथवा यदि **ख** यह दर्शित कर सके कि वह चावल लेने की संविदा **क** से मालिक के तौर पर ही करना चाहता था न कि इस तौर पर कि **क**, **ग** का, अभिकर्ता है, तो वह चावल लेने से पूर्णतः इंकार भी कर सकता है। तात्पर्य यह हुआ कि, ऊपर के दृष्टान्त में, **ग**, जो मालिक है, अपने अभिकर्ता और उस पर-व्यक्ति **ख** के बीच हुई चावल लेने की संविदा का प्रवर्तन **ख** के विरुद्ध केवल तभी करा सकेगा जबकि—

1. **ख**, **ग** को मालिक मानते हुए उस संविदा का पालन करने के लिए तैयार हो, तथा
2. **ग**, **ख** को, उस 500 रुपये की राशि की मुजराई के लिए अनुज्ञात करने को तैयार हो जो कि ऋण के रूप में **ख** के प्रति **क** की ओर से शोध्य है।

! वह अवस्था जब मालिक और अभिकर्ता दोनों दायी हों

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 230 में यह उपबन्ध है कि किसी तत्प्रभावी संविदा के अभाव में कोई भी अभिकर्ता अपने मालिक की ओर से अपने द्वारा की गई संविदाओं का प्रवर्तन वैयक्तिक रूप से नहीं करा सकता और न वैयक्तिक रूप से उनसे आबद्ध होता है। इस धारा के द्वितीय चरण

में उन तीन अपवादों की गणना की गई है जहां ऐसी तत्प्रभावी संविदा के अस्तित्व की उपधारणा की जाएगी और जिनमें अभिकर्ता का वैयक्तिक दायित्व माना जा सके :—

1. जहां कि संविदा किसी अभिकर्ता द्वारा किसी विदेश निवासी वणिक की ओर से माल के विक्रय या क्रय के लिए की गई हो;

2. जहां कि अभिकर्ता अपने मालिक का नाम प्रकट नहीं करता, और

3. जहां कि मालिक पर, यद्यपि उसका नाम प्रकट कर दिया गया हो, वाद नहीं लाया जा सकता ।

तत् पश्चात्, अधिनियम की धारा 233 में यह कहा गया है कि उपरोक्त तीनों मामलों में, जिनमें कि अभिकर्ता वैयक्तिक रूप से दायी हो, उससे व्यवहार करने वाला व्यक्ति या तो उसको या उसके मालिक को या उन दोनों को दायी ठहरा सकेगा ।

इस नियम का आधार **काल्डर बनाम डो बैल**[1] वाले मामले में अभिनिर्णीत वह सिद्धांत है जिसके आधार पर वैयक्तिक रूप से दायी अभिकर्ता से संव्यवहार करने वाले व्यक्ति को एक दोहरे प्रकार का विकल्प प्राप्त होता है । उस व्यक्ति को प्रथम यह विकल्प है कि वह, मालिक का नाम प्रकट होने पर, या तो मालिक और अभिकर्ता, दोनों के विरुद्ध ही संयुक्त वाद ला सकता है तथा उसे द्वितीय विकल्प यह प्राप्त है कि मालिक अथवा अभिकर्ता दोनों में से, जिस पर वह चाहे, उसी पर, वाद ला सकता है । सका परिणाम यह होगा कि यदि उस व्यक्ति ने, मालिक या अभिकर्ता दोनों में से किसी एक पर ही वाद लाकर निर्णय अभिप्राप्त कर लिया हो तो फिर वह उनमें से किसी दूसरे पर वाद नहीं ला सकता, परन्तु जहां वह दोनों पर वाद लाता है और उनमें से एक वाद में होने वाले निर्णय को स्वीकार कर लेता है, तो दूसरे के विरुद्ध वाद चालू रखे जाने में कोई बाधा नहीं ।[2]

अभिकर्ता और मालिक दोनों पर वाद लाया जाए अथवा उनमें से केवल एक पर ही वाद लाया जाए, ऐसे विकल्प का प्रयोग केवल दो अवस्थाओं में किया जा सकता है—

1. जबकि आभकर्ता ने किसी पर-व्यक्ति से संव्यवहार करते समय अपने को अभिकर्ता बताया ही न हो' तो वह दूसरा व्यक्ति मालिक का पता चल जाने पर, यह चुनाव कर सकता है कि उसे वाद, मालिक और अभिकर्ता में से दोनों के विरुद्ध लाना है अथवा उनमें से किसी एक पर और यदि एक पर तो, उनमें से, किस पर,

2. जबकि अभिकर्ता ने पर-व्यक्ति से संव्यवहार करते समय यह तो बता दिया हो कि वह अभिकर्ता है किन्तु अपने मालिक का नाम प्रकट न किया हो अथवा नाम प्रकट भी कर दिया हो तो भी, उस पर-व्यक्ति ने अकेले अभिकर्ता के विश्वास पर ही संव्यवहार करना उचित न समझा हो और ऐसी दशा में वह पर-व्यक्ति मालिक या अभिकर्ता दोनों पर या केवल मालिक पर वाद ला सकता है ।

उपरोक्त दोनों अवस्थाओं के लिए एक दृष्टांत यह है कि रुई की 100 गांठें **ख** को बेचने की संविदा उससे **क** करता है और तत्पश्चात् उसे पता चलता है कि **ग** की ओर से **ख** अभिकर्ता के रूप में कार्य कर रहा था । **क** उस रुई की कीमत के लिए या तो **ख** पर या **ग** पर या दोनों पर वाद ला सकेगा ।

---

1. एल० आर० (1871) 6 कामन प्लीज, 486.
2. मूर बनाम फ्लैनैगन, एल० आर० (1920) 1 के० बी० 919.

परन्तु जहां अभिकर्ता ने अपने आपको अभिकर्ता तो माना हो, किन्तु वास्तव में उसके पास किसी भी व्यक्ति की ओर से अभिकरण का प्राधिकार न हो और उसका कोई मालिक ही न हो तो वहां अकेला अभिकर्ता ही वैयक्तिक रूप से दायी होगा। ऐसे मिथ्या अभिकर्ता का वैयक्तिक दायित्व तो स्वाभाविक है और वह इसलिए कि दायी ठहरने योग्य कोई मालिक है ही नहीं, किन्तु ऐसे मिथ्या अभिकर्ता से संविदा करने वाला व्यक्ति, सही स्थिति का पता चलने पर, संविदा के पालन से इन्कार कर सकता है, जैसाकि निम्न शीर्षक से विदित होगा।

मिथ्या अभिकर्ता से किया गया संव्यवहार

वह व्यक्ति, जिससे अभिकर्ता की हैसियत से संविदा की गई है, उसके पालन की अपेक्षा करने का हकदार नहीं है, यदि वह वास्तव में अभिकर्ता के तौर पर नहीं, वरन् स्वयं अपने लेखे कार्य कर रहा था।

यह उपबन्ध भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 236 में किया गया है जिसका तात्पर्य यह नहीं है कि मिथ्या अभिकर्ता की अन्य व्यक्ति से की हुई संविदा शून्य है, वरन् यह कि वह संविदा उस अन्य व्यक्ति के विकल्प पर शून्यकरणीय है और उस मिथ्या अभिकर्ता को यह हक नहीं है कि उस अन्य व्यक्ति को उस संविदा के पालन के लिए विवश कर सके।

अभिकर्ता को दी गई सूचना के परिणाम

अभिकर्ता को दी गई किसी सूचना या उसके द्वारा अभिप्राप्त किसी जानकारी का, जहां तक कि मालिक और पर-व्यक्तियों का सम्बन्ध है, वही विधिक परिणाम होगा मानो वह मालिक को दी गई या उसके द्वारा अभिप्राप्त की गई हो, परन्तु यह तब जबकि वह अभिकर्ता द्वारा मालिक के लिए संव्यवहृत कारबार के अनुक्रम में दी या अभिप्राप्त की गई हो।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 229 में कथित इस नियम को निम्न दो दृष्टान्तों से समझा जा सकता है :—

(क) **ग** से वह माल जिसका **ग** दृश्यमान स्वामी है खरीदने के लिए **ख** द्वारा **क** नियोजित किया जाता है और वह तदनुसार उसे खरीदता है। विक्रय की बातचीत के अनुक्रम में **क** को पता चलता है कि वह माल वास्तव में **घ** का है किन्तु **ख** को यह तथ्य ज्ञात नहीं है। **ग** से अपने को शोध्य एक ऋण उस माल की कीमत के विरुद्ध मुजरा करने का **ख** हकदार नहीं है।

(ख) **ग** से वह माल जिसका **ग** दृश्यमान स्वामी है, खरीदने के लिए **ख** द्वारा **क** नियोजित किया जाता है। **क** इस प्रकार नियोजित होने से पूर्व **ग** का सेवक था और तब उसे मालूम हुआ था कि वह माल वास्तव में **घ** का है, किन्तु **ख** को यह तथ्य ज्ञात नहीं है। अपने अभिकर्ता को यह ज्ञान होते हुए भी **ग** से अपने को शोध्य ऋण **ख** उस माल की कीमत के विरुद्ध मुजरा कर सकेगा।

अभिकर्ता के कार्य से मालिक आबद्ध होता है और इस बात की उपधारणा कर ली जाती है कि जिस बात का अभिकर्ता को ज्ञान था उसका ज्ञान मालिक को भी हो जाता है किन्तु ऐसी उपधारणा तभी लागू होती है जबकि अभिकर्ता को जो सूचना प्राप्त हुई है वह अपने मालिक के लिए किये जाने वाले कारबार के अनुक्रम में दी गई हो या अभिप्राप्त हुई हो। मालिक अपने अभिकर्ता को प्राप्त हुई उन सूचनाओं से आबद्ध नहीं है जो कि अभिकर्ता को मालिक के कारबार के अनुक्रम से बाहर के किसी

विषय में प्राप्त हुई हो। अभिप्राय यह कि यदि अभिकर्ता को किसी ऐसे विषय पर सूचना प्राप्त हुई हो, जो विषय उसके अभिकरण की विषयवस्तु से पृथक् है तो ऐसी सूचना का मालिक के विरुद्ध कोई विधिक परिणाम नहीं होगा क्योंकि यह मालिक के कारबार के अनुक्रम से सम्बन्धित ही नहीं है।[1]

यह एक सामान्य सिद्धांत है कि अभिकरण की विषयवस्तु से सम्बन्धित अथवा उससे उद्भूत होने वाले तथ्यों की अभिकर्ता को दी गई या उसके द्वारा अभिप्राप्त सूचना, मालिक को दी गई या मालिक द्वारा अभिप्राप्त आन्वयिक सूचना मानी जाती है किन्तु इस सामान्य नियम के **दो अपवाद** हैं—

1. जबकि किसी मामले की विशेष परिस्थितियां इस प्रकार की हों जहां यह आवश्यक हो कि सूचना अभिकर्ता के बजाय स्वयं मालिक को ही दिये जाने के अनुबन्ध की स्थापना करके उपरोक्त सामान्य उपधारणा का खंडन किया जा सके।[2]

2. जबकि अभिकर्ता अपने मालिक के प्रति कपट का दोषी है और उसने कपटपूर्वक किसी सूचना को मालिक से छिपाया है अथवा जहां वह व्यक्ति जो अभिकर्ता को दी हुई सूचना के विधिक परिणामों से मालिक को बाध्य करना चाहता है, यह जानता है कि अभिकर्ता का आचरण अपने मालिक के प्रति कपटपूर्ण है।[3]

वह अवस्था जब मालिक और अभिकर्ता में से कोई एक दायी हो

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 234 में यह उपबन्ध किया गया है कि जब कोई व्यक्ति, जिसने किसी अभिकर्ता से संविदा की हो उस अभिकर्ता को इस विश्वास पर कार्य करने के लिए उत्प्रेरित करे कि केवल मालिक ही दायी ठहराया जाएगा या मालिक को इस विश्वास पर कार्य करने के लिए उत्प्रेरित करे कि केवल अभिकर्ता ही दायी ठहराया जाएगा तब वह यथास्थिति, अभिकर्ता या मालिक को तत्पश्चात दायी नहीं ठहरा सकता।

उपरोक्त नियम भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 233 में वर्णित उस नियम का अपवाद है जिसमें यह कहा गया है कि उन मामलों में, जिनमें कि अभिकर्ता वैयक्तिक रूप से दायी हो, उससे व्यवहार करने वाला व्यक्ति या तो उसको या मालिक को या उन दोनों को दायी ठहरा सकेगा। यदि मालिक अपने दायित्व से बचना चाहता है तो यह परिसिद्ध करने का भार उसी पर है कि उसके अभिकर्ता से संव्यवहार करने वाले व्यक्ति ने मालिक के अपेक्षा अभिकर्ता को ही प्रत्यय देने का चुनाव किया है और उसके इस चुनाव से मालिक को भुलावा हुआ है।[4]

अपदेशी अभिकर्ता का दायित्व

जो व्यक्ति अपने को किसी दूसरे का प्राधिकृत अभिकर्ता होना असत्यतः व्यपदिष्ट करता है और तद्द्वारा किसी पर-व्यक्ति को उत्प्रेरित करता है कि वह उसे अभिकर्ता मानकर उसके साथ व्यवहार करे, यदि उसका अभिकथित नियोजक उसके कार्यों का अनुसमर्थन न करे तो, वह उस पर-व्यक्ति की उस हानि या नुकसान के बारे में जो उस पर-व्यक्ति ने ऐसे व्यवहार करने के द्वारा उठाया है प्रतिकर देने का दायी होगा।

---

[1] छबीलदास बनाम दयाल, 34 इंडियन अपील्स, 179.

[2] आर० एस० नेवीगेशन बनाम विसेश्वर, 116 आई० सी० 148.

[3] होरमस जी बनाम मानकुंवर बाई, 12 बाम्बे हाई कोर्ट रिपोर्टस्, 262.

[4] डेविडसन बनाम डोनेल्डसन, 9 क्यू० बी० डी० 623.

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 235 में वर्णित इस नियम की व्याख्या कालिन बनाम **राइट**[1] वाले मामले में निम्न संप्रेक्षण से की गई है—

"कोई व्यक्ति जो किसी अन्य व्यक्ति के अभिकर्ता की हैसियत से उस अन्य व्यक्ति की ओर से अभिकर्ता के रूप में कार्य करने के लिए प्राधिकृत होने के अविशेषित प्राख्यान द्वारा किसी पक्षकार को अपने साथ संविदा करने के लिए उत्प्रेरित करता है तो वह उस पक्षकार के प्रति, जो कि इस प्रकार की संविदा करता है, उस प्राधिकार के ऐसे प्राख्यान की असत्यता से कारित नुकसान के लिए जवाबदार होगा ।"

इसी नियम का कथन इस प्रकार भी किया गया है—

"यदि कोई व्यक्ति अभिकर्ता के तौर पर संविदा करता है तो वह यह वचन देता है कि वह वही है जैसा कि उसने अपना होना व्यपदिष्ट किया है और वह व्यक्ति, किसी भी ऐसे नुकसान के लिए, जो कि उसके व्यपदेशन पर विश्वास कर लिए जाने से प्रत्यक्षतः घटित हुआ हो, अवश्य जवाबदार होगा ।[2]

इस नियम को आकृष्ट करने के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं—

1. कि प्रतिवादी ने अपने आपको किसी नामित व्यक्ति का प्राधिकृत अभिकर्ता व्यपदिष्ट किया है अथवा अपने को वास्तविक प्राधिकार से अधिक या भिन्न प्राधिकारवान अभिकर्ता के रूप में व्यपदिष्ट किया है,

2. कि वादी ऐसे व्यपदेशन के द्वारा प्रतिवादी को उस नामित व्यक्ति का अभिकर्ता समझकर ही उससे संविदा करने के लिए उत्प्रेरित हुआ था,

3. कि उस नामित व्यक्ति ने प्रतिवादी के कृत्य को निराकृत किया है,

4. कि इसके परिणामस्वरूप नुकसान हुआ है ।

जबकि मालिक नामित न हो अर्थात् अप्रकट मालिक के मामले में यह नियम लागू नहीं होता और न यह नियम उस दशा में लागू होता है जब कि नामित व्यक्ति से ही संविदा का होना स्थापित कर दिया जाए । इस नियम के अंतर्गत प्रवंचना करने के आशय से, अपने प्राधिकार का कपटपूर्ण व्यपदेशन करने वाला अभिकर्ता ही वैयक्तिक रूप से दायी होता है।[3] ऐसे मामले में प्रतिकर की राशि का निर्धारण पक्षकारों की स्थिति और उस व्यपदेशन से होने वाले प्रभाव की प्रकृति पर निर्भर करता है । **सामान्य नियम यह है कि उस मामले के प्राकृतिक अनुक्रम में प्रत्यक्षतः जो नुकसान हुआ है, वही देय होगा ।**[4]

अभिकर्ता के कपट या दुर्व्यपदेशन का प्रभाव

अपने कारबार के अनुक्रम में अपने मालिकों की ओर से कार्य करते हुए अभिकर्ताओं द्वारा किए गए दुर्व्यपदेशन या कपट ऐसे अभिकर्ताओं द्वारा किए गए करारों पर वे ही प्रभाव रखते हैं मानों ऐसे दुर्व्यपदेशन या कपट उन मालिकों द्वारा किए गए हों, **किन्तु अभिकर्ताओं द्वारा ऐसे विषयों में जो उनके प्राधिकार के भीतर नहीं आतें, किए गये दुर्व्यपदेशन या कपट का उनके मालिकों पर प्रभाव नहीं पड़ता ।**

---

[1] 7 एलिस एंड ब्लेकबर्न्स रिपोर्ट्स 301, 313.

[2] स्टार्क बनाम बैंक ऑफ इंग्लैंड, एल० आर० (1903) ए० सी० 114, 116.

[3] पोलहिल बनाम वाल्टर, 3 बैस्ट एंड स्मिथ्स रिपोर्ट्स 114.

[4] सईमन्स बनाम पेचट, 7 एलिस एंड ब्लैक बर्न्स रिपोर्टस्, 575.

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 238 के उपर्युक्त पाठ के साथ निम्न दृष्टान्त दिए गए हैं —

क—क, जो माल के विक्रय के लिए ख का अभिकर्ता है, एक दुर्व्यपदेशन द्वारा, जिसे करने के लिए वह ख द्वारा प्राधिकृत नहीं था, ग को उसे खरीदने के लिए उत्प्रेरित करता है। जहां तक कि ख और ग के बीच का सम्बन्ध है, संविदा ग के विकल्प पर शून्यकरणीय है।

ख—ख के पोत का कप्तान क, वहन पत्रों पर उनमें वर्णित माल को पोत पर प्राप्त किए बिना ही हस्ताक्षर करता है। जहां तक ख और अपदेशी परेषक का सम्बन्ध है, वे वहन-पत्र शून्य हैं।

वारविक बनाम इंग्लिश जाइन्ट बैंक[1] वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मालिक अपने अभिकर्ता द्वारा किए गए कपट के लिए तब दायी है जबकि—

(i) अभिकर्ता द्वारा ऐसा कपट अपने कारबार के अनुक्रम में किया गया हो और

(ii) अभिकर्ता द्वारा किया गया कपट उसके प्राधिकार के बाहर न हो, किन्तु इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि अभिकर्ता द्वारा किया गया कपट, मालिक के फायदे के लिए था या अभिकर्ता के फायदे के लिए।

इस प्रकार, इस नियम को आकृष्ट करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि अभिकर्ता का दोषपूर्ण कार्य मालिक के फायदे के लिए ही हो। इस नियम में प्रयुक्त **निम्न दो पदावलियों में अन्तर** किया जा सकता है—

(अ) अपने कारबार के अनुक्रम में अपने मालिकों की ओर से कार्य करते हुए अभिकर्ताओं का दुर्व्यपदेशन या कपट, और

(आ) अभिकर्ताओं द्वारा ऐसे विषयों में किए गए दुर्व्यपदेशन या कपट जो उनके प्राधिकार के भीतर नहीं आते।

जो कार्य कारबार के अनुक्रम में ही न हों, उनके विषय में तो मालिक के दायित्व होने का कोई प्रश्न ही नहीं है क्योंकि प्राधिकार का प्रयोग कारबार के अनुक्रम में ही किया जा सकता है। कारबार के अनुक्रम से बाहर प्राधिकार के प्रयोग का मालिक के लिए कोई अर्थ ही नहीं है। जो कार्य अभिकर्ता ने कारबार के अनुक्रम में किए हों, उन्हीं के सम्बन्ध में विनिश्चय करना आवश्यक होता है कि क्या अमुक कार्य जो कारबार के अनुक्रम में किया गया है, अभिकर्ता के प्राधिकार के भीतर भी है? यदि इसका उत्तर हां है तो मालिक उस अभिकर्ता के कार्य के लिए जवाबदार है।

स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया बनाम श्यामादेवी[2] वाले मामले में, न्यायमूर्ति आर० एस० सरकारिया ने यह संप्रेक्षण किया है कि प्रत्येक मामले में यह बात कि अभिकर्ता का कोई कपट या दुर्व्यपदेशन, मालिक के कारबार के अनुक्रम में है अथवा नहीं, एक तथ्य का प्रश्न है।

[1] एल० आर० (1867) 2 एक्सचेकर, 259.

[2] ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 1263, 1267-1268.

गोपाल बनाम सेक्रेटरी आफ स्टेट[1] वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था, कि अभिकर्ता द्वारा अपने नियोजन के अनुक्रम में मालिक के फायदे के लिए किए हुए कपट के लिए मालिक जवाबदार है किन्तु यह अभिनिर्धारण उस गलत अनुमान पर आधारित है जिसमें यह समझा गया है कि **बारविक वाले मामले**[2] में ऐसा ही कहा गया था, किन्तु वास्तव में इस नियम में ऐसी कोई बात नहीं है जिसके आधार पर यह समझा जा सके कि मालिक अभिकर्ता के उस कपट के लिए जवाबदार है जो कि अभिकर्ता ने मालिक के फायदे के लिए किया हो । **लायड** बनाम **ग्रेस स्मिथ**[3] वाले मामले में यह स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि अभिकर्ता के कपट के लिए मालिक को दायी ठहरने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि अभिकर्ता का कपट मालिक के फायदे के लिए किया गया हो । अत: इस नियम को लागू करने के लिए केवल **तीन बातें** आवश्यक हैं——

1. अभिकर्ता ने कपट या दुर्व्यपदेशन किया है,

2. अभिकर्ता ने ऐसा कपट या दुर्व्यपदेशन अपने कारबार के अनुक्रम में अपने मालिक की ओर से कार्य करते हुए किया है, और

3. अभिकर्ता द्वारा जिस विषय में कपट या दुर्व्यपदेशन किया गया है वह उस अभिकर्ता के प्राधिकार के भीतर आता है ।

मालिक का फायदा या मालिक का अनुमानित फायदा, केवल अपकृत्यों के संदर्भ में सुसंगत है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 238 के दृष्टिकोण से इस बात का कोई महत्व नहीं है कि अभिकर्ता द्वारा किया गया कपट या दुर्व्यपदेशन मालिक के फायदे या मालिक के अनुमानित फायदे के लिए किया गया था या नहीं । इस धारा का प्रयोग केवल यह देखना है कि अभिकर्ता के कपट या दुर्व्यपदेशन का उसके द्वारा किए गए करार पर क्या प्रभाव पड़ता है और यह प्रभाव वही होगा जो कि स्वयं मालिक द्वारा कपट या दुर्व्यपदेशन से कारित करार पर होता । **भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 19 के अनुसार कपट या दुर्व्यपदेशन का किसी भी करार पर पड़ने वाला प्रभाव इतना होता है कि वह करार उस पक्षकार के विकल्प पर शून्यकरणीय हैं जिसकी सम्मति ऐसे करार के लिए कपट या दुर्व्यपदेशन से कारित हुई हैं । कपट या दुर्व्यपदेशन का शेष प्रभाव और मालिक की शेष जवाबदारी के प्रश्न, संविदा विधि के अन्तर्गत न आकर, अपकृत्य विधि के अन्तर्गत आते हैं ।** संविदा विधि के अन्तर्गत, मालिक अभिकर्ता के उस कपट या दुर्व्यपदेशन के लिए उत्तरदायी नहीं है जो कि अभिकर्ता ने ऐसे विषय में किया हो जिसके लिए कि मालिक ने उसे न तो नियुक्त ही किया हो और न प्राधिकृत । इसके विपरीत, जब अभिकर्ता ने कपट या दुर्व्यपदेशन अपने कारबार के अनुक्रम में उस विषय में किया है जो उसके प्राधिकार के भीतर आता हो तो भारतीय संविदा अधिनियम के अन्तर्गत मालिक पर पड़ने वाले प्रभाव निम्न प्रकार के हो सकते हैं——

1. जिस व्यक्ति से कपट या दुर्व्यपदेशन के आधार पर संविदा की गई है, वह अपने विकल्प पर उस संविदा को शून्य कर सकता है (धारा 19) ।

---

[1] 13 सी० डब्ल्यू० एन० 619.

[2] एल० आर० (1867) 2 एक्सचैकर 259.

[3] एल० आर० (1912) ए० सी० 716.

2. वह व्यक्ति उस शून्यकरणीय संविदा का अधिकारपूर्वक विखण्डन कर सकता है और उस संविदा के अधीन अभिकर्ता या मालिक को पहुंचे हुए फायदे का प्रत्यावर्तन करा सकता है (धारा 64)।

3. वह व्यक्ति ऐसे नुकसान के लिए प्रतिकर पाने का भी हकदार है जो उसने उस संविदा के पालन न किए जाने से उठाया है (धारा 75)।

अभिकर्ता के दोष से उद्भूत आपराधिक दायित्व

केवल एक प्रश्न यह शेष रहता है कि क्या मालिक पर अभिकर्ता द्वारा किए हुए दोषपूर्ण कार्यों के लिए आपराधिक दायित्व भी है ?

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 224 के अनुसार आपराधिक कार्यों के लिए नियोजित किए गए और अभिकर्ता के द्वारा ऐसे नियोजन के अन्तर्गत किए हुए आपराधिक कार्य के लिए मालिक दायी नहीं है। किन्तु यह अवस्था उस अवस्था से भिन्न है जहां मालिक द्वारा किया हुआ नियोजन आपराधिक कार्य के लिए न होकर विधिपूर्ण कार्य के लिए हो किन्तु उस विधिपूर्ण कार्य के क्षेत्र में ही किसी नियम आदि के उल्लंघन से कोई आपराधिक दायित्व उद्भूत हो गया हो और ऐसा प्रायः वहां हो जाता है जहां किसी अधिनियम द्वारा किसी कर्त्तव्य या किसी प्रतिषेध को इतना आत्यन्तिक रूप दे दिया गया हो कि उस प्रतिषिद्ध कार्य के किसी अभिकर्ता या किसी सेवक द्वारा किए जाने पर मालिक भी उत्तरदायी हो जाए। अनुज्ञप्ति वाले मामलों में ऐसे उदाहरण प्रायः मिलते हैं जहां अपने नौकर अथवा अभिकर्ता द्वारा किए हुए आपराधिक कार्य के लिए मालिक उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जिस मालिक के नौकर या अभिकर्ता, अपने नियोजन के अनुक्रम में, उस विधि या उन शर्तों का, जिसके अध्यधीन कि मालिक वैसी अनुज्ञप्ति धारण किए हुए है, उल्लंघन करके कोई आपराधिक दायित्व उपगत करे तो ऐसा आपराधिक दायित्व मालिक का भी माना जाएगा[1]। यदि मालिक के पास गोलाबारूद अथवा शस्त्रास्त्र के विक्रय की अनुज्ञप्ति हो और उसका नौकर या अभिकर्ता, किसी व्यक्ति को, बिना यह विनिश्चय किए हुए कि उस क्रेता के पास ऐसी सामग्री रखने की अनुज्ञप्ति है भी या नहीं, ऐसा कोई माल या ऐसी कोई सामग्री बेच दे तो ऐसे विक्रय के कारण उद्भूत आपराधिक दायित्व स्वयं मालिक पर भी आ सकता है।[2]

□ □ □

[1] एम्पेरर बनाम बाबूलाल, 9 ए० एल० जे० 288.

[2] क्वीन एम्प्रैस बनाम तय्यब अली, 2 बाम्बे लॉ रिपोर्टर, 52.

परिशिष्ट I

अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली

Able	योग्य
Abscond	फरार होना
Absolute	आत्यन्तिक
Abstain	प्रविरत रहना
Accept	प्रतिगृहीत करना
Acceptance	प्रतिग्रहण
Acceptor	प्रतिगृहीता
Account	खाता, लेखा
Accrued	प्रोद्भूत
Acquire	अर्जित करना
Acquiescence	उपमति
Act of God	दैव कृत
Action	अनुयोग
Actionable	अनुयोज्य
Active	सक्रिय
Actually	वस्तुतः
Adequate	पर्याप्त
Adjudicate	न्यायनिर्णीत करना
Adopt	अंगीकार करना
Adulterated	अपमिश्रित
Advance	अग्रिम
Advantage	फायदा
Advantageous	फायदाप्रद
Advertise	विज्ञापित करना
Affect	प्रभाव डालना
Affection	स्नेह
Agency	अभिकरण
Agent	अभिकर्ता
Agent for Sale	विक्रय अभिकर्ता
Agreed	करारित
Agree upon	सहमत होना
Agreement	करार

Alien enemy	विदेशी शत्रु
Alleged	अभिकथित
Allow	अनुज्ञात करना
Alter	परिवर्तित करना
Alternative	अनुकल्पी
Amend	संशोधित करना
Amount	परिमाण
Amount to	कोटि में आना
Annul	बातिल करना
Apparent	दृश्यमान
Appeal	अपील
Appear	उपसंजात होना
Appellant	अपीलार्थी
Apply	आवेदन करना
Apprentice	शिक्षु
Appropriation	विनियोग
Arbitration	माध्यस्थम्
Arise from	प्रत्युद्भूत होना
Arrangement	ठहराव
Arrear	बकाया
Article	अनुच्छेद, वस्तु
As defined	यथापरिभाषित
As such	उस हैसियत में
As the case may be	यथास्थिति
Ascertain	अभिनिश्चित करना
Assent	अनुमति
Assertion	प्राख्यान
Assets	आस्तियां
Assign	समनुदेशित करना
Assigned	समनुदिष्ट
Assignee	समनुदेशिती
Assignment	समनुदेशन
Attachment	कुर्की
Attendant	परिचारक
Attorny	अटर्नी
Auction	नीलाम
Auctioneer	नीलाम कर्ता
Authorised	प्राधिकृत

Authority	प्राधिकार
Average	औसत
Avoidable	परिहार्य
Award	अधिनिर्णय
Bail-bond	जमानत-नामा
Bailee	उपनिहिती
Bailor	उपनिधाता
Bailment	उपनिधान
Balance	बाकी
Bales	गांठें
Banker	साहूकार
Bargain	सौदा
Barred	वारित
Barrel	बैरल
Bear	सहन करन
Bench	न्यायपीठ
Beneficial	फायदाप्रद
Beneficiary	हिताधिकारी
Benefit	फायदा
Bill of Exchange	विनिमय पत्र
Bill of lading	वहन पत्र
Bill of Sale	विक्रयाधिकार पत्र
Bind	आबद्ध करना
Blank	निरंक
Bound	आबद्ध
Breach of Contract	संविदा भंग
Breach of Duty	कर्तव्य भंग
Broker	दलाल
Burden	भार
Business	कारबार
Buyer	क्रेता
Cancel	रद्द करना
Capable	समर्थ
Capacity	सामर्थ्य
Captain	कप्तान
Care	सतर्कता

Carriage	वहन
Carrier	वाहक
Cargo	स्थोरा
Case	मामला
Cash	रोकड
Cast away	संत्यक्त करना
Cause	हेतुक
Caused	कारित
Certain	अमुक, निश्चित
Champerty	जयांश भागिता
Charge	प्रभार
Charged	भारित
Civil	सिविल
Claim	दावा
Class	वर्ग
Coercion	प्रपीड़न
Co-extentive	समविस्तीर्ण
Collateral	साम्पार्श्विक
Collect	संग्रह करना
Come into force	प्रवृत्त होना
Commercial	वाणिज्यिक
Commission	कमीशन
Common	सामान्य
Communication	संसूचना
Compel	विवश करना
Compensation	प्रतिकर
Competent	सक्षम
Complaint	परिवाद
Complete	सम्पूर्ण
Composition	प्रशमन
Compromise	समझौता
Concealment	छिपाव
Concession	रियायत
Concluded	निष्पन्न
Concubine	उपपत्नी
Condition	शर्त
Conditional	सशर्त
Conduct	आचरण

Connivance	मौनानुकूलता
Consent	सम्मति।
Consideration	प्रतिफल
Consign	परेषित करना
Consignee	परेषिती
Consignor	परेषक
Consists of	गठित है
Constitution	संविधान
Contained	अन्तर्विष्ट
Context	संदर्भ
Contingency	आकस्मिकता
Contingent	समाश्रित
Continuing	चलत
Contract	संविदा
Contract-price	संविदा कीमत
Contrary	प्रतिकूल
Contravene	उल्लंघन करना
Contribution	अभिदाय
Convert	सम्परिवर्तित करना
Convey	हस्तान्तरण करना, प्रवहण।
Corporation	निगम
Cost	खर्च
Co-surety	सहप्रतिभू
Course	अनुक्रम
Court	न्यायालय
Create	सर्जन करना
Credit	प्रत्यय
Creditor	लेनदार
Criminal	आपराधिक
Custody	अभिरक्षा
Custom	रूढ़ि
Damage	नुकसान
Damages	नुकसानी, नष्टपरिहार
Danger	खतरा
Deal with	व्यवहार करना।
Dealor	व्यवसायी
Debt	ऋण

26—377 ह्वी० एस० पी० एन० डी०/81

Debtor	देनदार, ऋणी
Declared	घोषित
Deceive	प्रवंचना करना
Decision	विनिश्चय
Decree	डिक्री
Decree-holder	डिक्रीधारी, डिक्रीदार
Default	व्यतिक्रम
Defeat	विफल करना
Defect	त्रुटि
Defect of title	हक की त्रुटि
Defend	प्रतिरक्षा करन
Defendant	प्रतिवादी
Define	परिभाषित करना
Definite	परिमित
Defraud	प्रवंचना करना
Delay	विलम्ब
Deliver	परिदत्त करना
Delivery	परिदान
Delirious	चित्त विपर्यस्त
Deny	प्रत्याख्यान करना
Deposit	निक्षेप
Deprive	वंचित करना
Derived	व्युत्पन्न
Description	वर्णन
Desire	वांछा
Despatch	प्रेषित करना
Destruction	नाश
Detain	निरोध करना
Determine	अवधारित करना
Determination	पर्यवसान
Deterioration	क्षय
Diligence	तत्परता
Direction	निदेश
Disabled	निर्योग्य
Disadvantageous	अहितकर
Disbursement	संवितरण
Discharge	निर्मुक्ति, उन्मोचन

Disclose	प्रकट करना
Discount	मिती काटा
Discretion	विवेक
Dishonesty	बेईमानी
Dishonour	अनादृत करना
Disown	अनंगीकृत करना
Dispense with	अभिमुक्ति देना
Disposal	व्ययन
Dispute	विवाद
Disqualified	निरर्हित
Distinct	सुभिन्न
Distress	कष्ट
Divest, to	निर्निहित करना
Divided	विभाजित
Division	विभाजन
Doctrine	सिद्धान्त
Document	दस्तावेज
Dominate	अधिशासित करना
Donee	आदाता
Donor	दाता
Drunk	मत्त
Due	शोध्य
Duly	सम्यक् रूप से
During	के दौरान
Duty	कर्तव्य
Earned	उपार्जित
Elect	निर्वाचित करना
Embezzlement	गबन
Emergency	आपात्
Employer	नियोक्ता, नियोजक
Employment	नियोजन
Empower	सशक्त करना
Enacted	अधिनियमित
Enactment	अधिनियमिति
Encumbrance	विल्लंगम
Endorsement	पृष्ठांकन
Enfeebled	क्षीण हुए

Enforceable	प्रवर्तनीय
Engage	वचनबन्ध करना
Enhanced	वर्धित
Entertain	ग्रहण करना
Entitled	हकदार
Entrusted	न्यस्त
Equal	समान
Equivalent	तुल्य
Erroneous	गलत
Essence	मर्म
Estate	सम्पदा
Estimate	प्राक्कलन
Event	घटना
Eventful	पारिणामिक
Evidence	साक्ष्य
Examine	परीक्षा करना
Exception	अपवाद
Exchange	विनिमय
Excuse	माफी देना
Executed	निष्पादित
Execution	निष्पादन
Executor	निष्पादक
Executory	निष्पाद्य
Exempt	अभिमुक्ति देना, छूट देना
Exercise	प्रयुक्त करना
Expiration	अवसान
Explanation	स्पष्टीकरण
Exposed	उच्छन्न
Expression	पद
Extent	विस्तार
Fact	तथ्य
Facility	सौकर्य
Factor	फैक्टर
False	मिथ्या
Falsely	असत्यत:
Family Settlemens	कौटुम्बिक व्यवस्थापन
Fair	ऋजु

Fault	त्रुटि
Fidelity	विश्वस्तता
Fiduciary	वैश्वासिक
Firm	फर्म
Finder	पडा पाने वाला
Forbear	प्रविरत रहना
Forbidden	निषिद्ध
Forfeit	समपहरण
Forgery	कूट रचना
For hire	भाडे पर
For Life	जीवन पर्यन्त के लिए
For the time being	तत्समय
Fraud	कपट
Free	स्वतन्त्र
Freight	ढुलाई
Full	पूर्ण
Further	उत्तरभावी
Gain	अभिलाभ
Generality	व्यापकता
Generally	साधारण रूप से
Gift	दान
Good faith	सद्भाव
Goods	माल
Good title	अच्छा हक
Goodwill	गुडविल
Government	सरकार
Governor	राज्यपाल
Granary	धान्य भंडार
Granted	अनुदत्त
Gratuitous	आनुग्रहिक
Guarantee	प्रत्याभूति
High Court	उच्च न्यायालय
High Sea	खुला समुद्र
Hire-purchase	अवक्रय
Hold	धारण करना
House	गृह
Hurt	उपहृत

Ignorant	अनभिज्ञ
Illegal	अवैध
Illegally	अविधितः
Illegal traffic	दुर्व्यापार
Illness	रुग्णता
Immaterial	तत्वहीन
Immoral	अनैतिक
Immovable	स्थावर
Impair	ह्रास करना
Implied	विवक्षित
Impossible	असम्भव
Inadequate	अपर्याप्त
Incapable	असमर्थ
Incident	प्रसंगति
Incidental	आनुषंगिक
Includes	अन्तर्गत आता है
Inconsistent	असंगत
Increased	वर्धित
Incur	उपगत करना
Incurred	उपगत
Indemnity	क्षति पूर्ति
Indian Evidence Act	भारतीय साक्ष्य अधिनियम
Indian Penal Code	भारतीय दण्ड संहिता
Indicate	उपदर्शित करना
Indirect	परोक्ष
Induce	उत्प्रेरित करना
In entirety	पूर्णतः
Influence	असर
Injured	क्षत
In order of time	समय क्रमानुसार
In particular	विशिष्टतया
Insanity	उन्मत्तता
Insist	आग्रह करना
Insolvent	दिवालिया
Instalment	किस्त
Institute	संस्थित करना
Instrument	लिखत

Insurance	बीमा
Intended	आशयित
Intention	आशय
Interest	हित, ब्याज
Interested	हितबद्ध
Inter pleader	अन्तराभिवाचिता
Interval	अन्तराल
In that behalf	एतस्मिन, तन्निमित्त
Intimate	प्रज्ञापित करना
Intimidation	अभित्रास
Invested	विनिहित
Investment	विनिधान
Involve	अन्तर्वलित होना
Involved	अन्तर्वलित
In writing	लिखित
Is not capable	शक्य नहीं है
Issue	जारी करना
Joint	संयुक्त
Judgment	निर्णय
Judgment-debtor	निर्णीत ऋणी
Just	न्यायसंगत
Kind	किस्म
Labour	श्रम
Landed proprietor	भूस्वामी
Landlord	भूस्वामी
Law	विधि
Lawful	विधिपूर्ण
Lease	पट्टा
Legal	वैध, विधिक
Legislature	विधानमण्डल
Let	भाटक पर देना
Let to hire	भाड़े पर देना
Liable	दायी
Liability	दायित्व
Libel	अपमान लेख
License	अनुज्ञप्ति
Lien	धारणाधिकार
Limit	सीमा

Limited	परिसीमित
Limitation	परिसीमा
Loan	ऋण
Local	स्थानीय
Loss	हानि
Love	प्रेम
Lunatic asylum	पागल खाना
Maintain	भरण-पोषण करना
Maintenance	भरण-पोषण, संधारण
Make good to	प्रतिपूर्ति करना
Manufacture	विनिर्माण
Mark	चिह्न
Market-price	बाजार-मूल्य
Market-value	बाजार भाव, बाजार-दाम
Master of Ship	पोत का मास्टर
Material	तात्विक
Maturity	परिपक्वता
Means	अभिप्रेत है
Measure	अध्युपाय
Mental	मानसिक
Mercantile	वाणिज्यिक
Merchandise	वाणिज्या
Merchant	वणिक
Minority	अप्राप्तवयता
Misappropriation	दुर्विनियोग
Misconduct	अवचार
Mislead	भुलावा देना
Misrepresentation	दुर्व्यपदेशन
Mistake	भूल
Misuse	दुरुपयोग
Mixture	मिश्रण
Mode	ढंग
Mortgage	बन्धक
Movable	जंगम
Mukhtar	मुख्तार
Named	नामित
Natural	नसर्गिक

Naturally	प्रकृत्या
Navigation	नौपरिवहन
Neglect	उपेक्षा, उपेक्षा करना
Negligence	उपेक्षा
Negotiable	परक्राम्य
Non-performance	अपालन
Not exceeding	अनधिक
Notice	सूचना
Object	उद्देश्य
Obligation	बाध्यता
Obtain	अभिप्राप्त करना
Offer	पेश करना
Of sound mind	स्वस्थचित्त
Of the age of majority	प्राप्तवय
Of unsound mind	विकृत चित्त
Omission	लोप
One-half	अर्द्धांग
Operation	संक्रिया
Operative	प्रवृत्त
Opposed	विरुद्ध
Option	विकल्प
Oral	मौखिक
Order	आदेश, व्यवस्था, क्रम, आदिष्ट करना
Ordinary	मामूली
Otherwise	अन्यथा
Overdraft	ओवरड्राफ्ट
Parental	पैतृक
Part	भाग
Part payment	भागिक संदाय
Part with	विलग होना
Particular	विशिष्ट
Partly	भागतः
Partner	भागीदार
Partnership	भागीदारी
Party	पक्षकार
Pass	संक्रान्त करना
Passage money	यात्रा भाड़ा

Pawnee	पणयमदार
Pawnor	पणयम कार
Payable	देय
Payment	संदाय
Penalty	शास्ति
Performance	पालन
Period of time	कालावधि
Perish	नष्ट होना
Permanent	स्थायी
Permitted	अनुज्ञात
Personal	वैयक्तिक
Plaintiff	वादी
Pledge	गिरवी
Port	पत्तन
Position	स्थिति
Positive	निश्चयात्मक
Possession	कब्जा
Precedent	पुरोभाव्य
Premium	प्रीमियम
Preserve	परिरक्षण करना
President	अध्यक्ष, राष्ट्रपति
Presumption	उपधारणा
Preservation	परिरक्षण
Prevent	निवारित करना
Previous	पूर्वतन
Principal	मूलधन
Principal debtor	मूल ऋणी
Principle	सिद्धान्त
Private	निजी
Privy Council	प्रिवी काउन्सिल
Probate	प्रोबेट
Procedure	प्रक्रिया
Proceeding	कार्यवाही
Process	प्रक्रिया
Processing	प्रसन्सकरण
Procure	उपाप्त करना

Produced	उत्पादित करना
Profess, to	प्रव्यंजना करना
Professional	वृत्तिक
Profitable	लाभदायक
Prohibited	प्रतिषिद्ध
Promise	वचन
Promisee	वचन गृहीता
Promisor	वचनदाता
Promissory note	वचनपत्र
Property	सम्पत्ति
Proposal	प्रस्थापना
Proposer	प्रस्थापक
Proposition	प्रतिपादना
Proprietor	स्वत्वधारी
Prosecution	अभियोजन
Protect	संरक्षण देना
Prove	साबित करना, परिसिद्ध करना
Provision	उपबन्ध
Provisions	रसद
Prudent	प्रज्ञायुक्त
Public duty	लोक कर्तव्य
Public policy	लोक नीति
Public Service	लोक सेवा
Punishable	दण्डनीय
Purchaser	क्रेता
Purpose	प्रयोजन
Put into writing	लेखबद्ध करना
Quality	क्वालिटी
Question	प्रश्न
Rate	दर
Ratification	अनुसमर्थन
Rational	युक्तिसंगत
Ready	तैयार
Real	वास्तविक
Reasonable	युक्तियुक्त
Receipt	आगम, प्राप्ति

Receiver	प्रापक, रिसीवर
Reciprocal	व्यतिकारी
Recognise	मान्यता देना
Recognizance	मुचलका
Recover	वसूल करना
Recovery	प्रत्युद्धरण
Refer to	निर्देशित करना
Referred	निर्दिष्ट
Refrain	विरत रहना
Registration	रजिस्ट्रीकरण
Regulation	विनिमय
Reimbursement	प्रतिपूर्ति
Relation	सम्बन्ध
Release	उन्मोचित करना
Relevant	सुसंगत
Relief	अनुतोष
Relieved	अवमुक्त
Remedy	उपचार
Remit	परिहार करना
Remote	दूरस्थ
Remuneration	पारिश्रमिक
Renouncing	त्यजन
Rent	भाटक, भाड़ा
Repair	मरम्मत
Repay	प्रतिसंदत्त करना
Repeal	निरसित करना
Representation	व्यपदेशन
Representative	प्रतिनिधि
Repudiate	निराकरण
Required	अपेक्षित
Rescind	विखंडित करना
Reserved	आरक्षित
Resident abroad	विदेश निवासी
Respondent	प्रत्यर्थी
Responsibility	उत्तरदायित्व
Restore	प्रत्यावर्तित करना
Restrain	अवरुद्ध करना

Restraint	अवरोध
Restriction	निर्बन्धन
Retain	प्रतिधारण करना
Retainer	प्रतिधारण
Return	वापसी
Revenue	राजस्व
Reward	पारितोषिक, पुरस्कार
Right	अधिकार
Rightfully	अधिकारपूर्वक
Risk	जोखिम
Robbery	लूट
Rule	नियम
Sale	विक्रय
Salary	संबलम्
Satisfaction	तुष्टि
Scaffolding	पाड़
Section	धारा
Security	प्रतिभूति
Seize	अभिग्रहण करना
Separate	पृथक्
Sense	भाव
Series	आवली
Servant	सेवक
Service	सेवा
Set	संवर्ग
Set aside	अपास्त करना
Set off	मुजरा करना, मुजराई
Settle	परिनिर्धारण
Several	कई
Share	अंश
Ship	पोत
Show	दर्शित करना
Signed	हस्ताक्षरित
Signify	संज्ञापित करना
Similar	तत्सदृश
Single	एकल
Skill	कौशल

Smuggled	तस्करित
Solicitor	सॉलिसिटर
Solvency	शोधन क्षमता
Specially	विशेषत:
Specific	विनिर्दिष्ट
Specified	विनिर्देशित, नियत
Stage	प्रक्रम
State	राज्य
Station	आस्थान
Status	हैसियत
Statute	परिनियम, स्टैट्यूट
Stipulation	अनुबन्ध
Stock-in-trade	व्यापार स्टौक
Stringency	तंगी
Sub-agent	उपाभिकर्ता
Subject-matter	विषयवस्तु
Subject to	अध्यधीन
Subscription	चन्दा
Subsequent	पश्चातवर्ती, उत्तरभावी
Subsisting	विद्यमान
Substance	पदार्थ
Substitute	प्रतिस्थापित करना
Succeed	उत्तराधिकारी होना
Sue	वाद लाना
Suffer	क्षति उठाना
Sufficient	पर्याप्त
Suggest	सुझाना
Suit	वाद
Sum	राशि, रकम
Superintend	अधीक्षण करना
Supply	प्रदाय
Support	पालन पोषण
Supreme Court	उच्चतम न्यायालय
Surety	प्रतिभू
Surplus	अधिशेष
Surveyor	सर्वेक्षक

Survivor	उत्तरजीवी
Suspect	सन्देह करना
Symbol	प्रतीक
Take into account	गणना में लेना
Temporary	अस्थायी
Tender	निविदा
Tendered	निविदत्त
Term	निबन्धन
Thereby	तद्द्वारा
Thereto	तदर्थ
Thereunder	तदधीन
Third person	परव्यक्ति
Threat	धमकी
Through	माध्यम से
Timber	काष्ठ
Title	हक
To be awarded	प्रदेय
Tort	अपकृत्य
Towards	मद्धे
To that extent	उस विस्तार तक
To the prejudice of	प्रतिकूल
Trade	व्यापार
Transaction	संव्यवहार
Transfer	अन्तरण, अन्तरित करना
Transferee	अन्तरिती
Transferor	अन्तरक
Transmission	पारेषण
Transmit	पारेषित करना
Trial	परीक्षण
Trial Court	विचारण-न्यायालय
Tribunal	अधिकरण
Trust	न्यास
Trustee	न्यासी
Uberrima fide	परम विश्वास
Ultra vires	अधिकारातीत
Uncertainty	अनिश्चितता

Unconditional	अशर्त
Underwriter	निम्नांकक
Undue	असम्यक्
Unfair	अऋजु
Unlawful	विधिविरुद्ध
Unqualified	अविशेषित
Unreasonable	अयुक्तियुक्त
Unsafe	अक्षेमकर
Unseaworthy	तरण अयोग्य
Unspecified	अविनिर्दिष्ट
Unusual	अप्रायिक
Usage	प्रथा
Usual	प्रायिक
Usually	प्रायः
Validity	विधिमान्यता
Variance	फेरफार
Vein of ore	अयस्क की शिला
Vendee	क्रेता
Vendor	विक्रेता
Vessel	पोत
Violation	अतिक्रमण
Void	शून्य
Voidable	शून्यकरणीय
Voluntarily	स्वेच्छया
Warehouse	भाण्डागार
Warranted	समर्थित
Warranty	वारंटी
Wharfinger	घाटवारी
Whole	समग्र
Wholly	पूर्णतः
Wilful	जानबूझ कर
Will	इच्छा, वसीयत

Willing	रजामन्द
Withdraw	प्रत्याहरण करना
Withheld	विधारित
Without prejudice	प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना
Witness	साक्षी
Word	शब्द
Worker	कर्मकार
Wrongfully	सदोष, दोषपूर्वक, अनधिकारपूर्वक

□ □ □ □

27—377 व्हो० एम० पी० (एन०डी०)/81
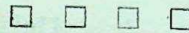
परिशिष्ट II

हिन्दी-अंग्रेजी शब्दावली

अंगीकार करना	Adopt
अंतरक	Transferor
अंतरण	Transfer
अन्तराभिवाचिता	Interpleader
अंतराल	Interval
अंतरित करना	To Transfer
अंतरिती	Transferee
अंतर्गत आता है	Includes
अंतर्वलित	Involved
अन्तर्वलित होना	Involve
अन्तर्विष्ट	Contained
अंश	Share
अनृजु	Unfair
अग्रिम	Advance
अच्छा हक	Good title
अटर्नी	Attorney
अतिक्रमण	Violation
अधिकरण	Tribunal
अधिकाई	Excess
अधिकार/पूर्वक	Right/fully
अधिकारातीत	Ultra vires
अधिनियम	Act
अधिनियमित	Enacted
अधिनियमिति	Enactment
अधिनिर्णय	Award
अधिशासित करना	Dominate
अधिशेष	Surplus
अधीक्षण करना	Superintend
अध्यधीन	Subject to
अध्युपाय	Measure

अनंगी करण	Disowning
अनधिक	Not exceeding
अनभिज्ञ	Ignorant
अनधिकारपूर्वक	Wrongfully
अनादृत करना	Dishonour
अनिश्चितता	Uncertainty
वानुकल्पी	Alternative
अनुक्रम	Course
अनुच्छेद	Article
अनुज्ञप्ति	Licence
अनुज्ञात	Permitted
अनुज्ञात करना	To permit
अनुतोष	Relief
अनुदत्त	Granted
अनुबन्ध	Stipulation
अनुमति	Assent
अनुयोग	Action
अनुयोज्य	Actionable
अनुसमर्थन	Ratification
अनैतिक	Immoral
अन्यथा	Otherwise
अपकृत्य	Tort
अपमान लेख	Libel
अपमिश्रित	Adulterated
अपर्याप्त	Inadequate
अपवाद	Exception
अपालन	Non-performance
अपास्त करना	To set aside
अपील	Appeal
अपीलकर्ता	Appellant
अपेक्षित	Requisite
अप्राप्तवयता	Minority
अप्रायिक	Unusual
अभिकथित	Alleged
अभिकर्ता	Agent
अभिकरण	Agency

अभिगृहीत करना	To Seize
अभित्रास	Intimidation
अभिदाय	Contribution
अभिनिश्चय करना	To ascertain
अभिप्राप्त करना	To obtain
अभिप्रेत है	Means
अभिमुक्ति देना, अभिमुक्त करना	To dispense with
अभियोजन	Prosecution
अभिरक्षा	Custody
अभिलाभ	Gain
अभिव्यक्त करना	Express
अमुक	Certain
अयस्क की शिला	Vein of Ore
अयुक्तियुक्त	Unreasonable
अर्धांग	One-half
अवक्रय	Hire-purchase
अवचार	Misconduct
अवधारित करना	To determine
अवमुक्त	Relieved
अवरुद्ध करना	To restrain
अवरोध	Restraint
अवसान	Expiration
अविधितः	Illegally
अविनिर्दिष्ट	Unspecified
अविशेषित	Unqualified
अवैध	Illegal
अशर्त	Unconditional
असंगत	Inconsistent
असंदत्त	Unpaid
असत्यतः	Falsely
असम्भव	Impossible
असमर्थ	Incapable
असम्यक्	Undue
असर	Influence
अस्थाई	Temporary
अहितकर	Disadvantageous

अक्षेमकर	Unsafe
आकस्मिकता	Contingency
आगम	Receipt
आग्रह करना	To insist
आचरण	Conduct
आत्यन्तिक	Absolute
आदाता	Donee
आदिष्ट करना	To order
आदेश	Order
आनुग्रहिक	Gratuitous
आनुषंगिक	Incidental
आपराधिक	Criminal
आपात	Emergency
आबद्ध	Bound
आबद्ध करना	To bind
आरक्षित	Reserved
आवली	Series
आवेदन करना	To apply
आशय	Intention
आशयित	Intended
आस्तियाँ	Assets
आस्थान	Station
इच्छा	Will
उच्चतम न्यायालय	Supreme Court
उच्च न्यायालय	High Court
उच्छन्न	Exposed
उत्तरजीवी	Survivor
उत्तरदायित्व	Responsibility
उत्तर भावी	Subsequent, further
उत्तराधिकारी होना	To succeed
उत्पादित	Produced
उत्प्रेरित करना	To induce
उद्देश्य	Object
उद्भूत होना	To arise from
उन्मत्तता	Insanity
उन्मोचन	Discharge
उन्मोचित करना	To release, to discharge

उपगत	Incurred
उपगत करना	To incur
उपचार	Remedy
उपदर्शित करना	To indicate
उपधारणा	Presumption
उपनिधाता	Bailor
उपनिधान	Bailment
उपनिहिती	Bailee
उप-पत्नी	Concubine
उपबन्ध	Provision
उपनति	Acquiescence
उपयोजित करना	To apply
उपसंजात होना	To appear
उपहत	Hurt
उपाप्त करना	To procure
उपाभिकर्ता	Sub-Agent
उपार्जित	Earned
उपेक्षा	Negligence
उल्लंघन करना	To contravene
उस विस्तार तक	To that extent
उस हैसियत में	As such
ऋजु	Fair
ऋण	Loan, debt
ऋणी	Debtor
एकल	Single
एतद्द्वारा	Hereby
एतस्मिन्	In that behalf
ओवर ड्राफ्ट	Overdraft
औसत	Average
कई	Several
कपट	Fraud
कप्तान	Captain
कब्जा	Possession
कमीशन	Commission
करार	Agreement
करारित	Agreed

कर्तव्य	Duty
कर्तव्य भंग	Breach of duty
कर्मकार	Worker
कष्ट	Distress
कारबार	Business
कारित	Caused
कार्य	Act
कार्यवाही	Proceeding
कालावधि	Period of time
काष्ठ	Timber
किस्त	Instalment
किस्म	Kind
कुर्की	Attachment
कूट रचना	Forgery
कोटि में आना	Amount to
कौटुम्बिक व्यवस्थापन	Family Settlement
कौशल	Skill
क्रम	Order
क्रेता	Purchaser, buyer
क्वालिटी	Quality
क्षतिपूर्ति	Indemnity
क्षय	Deterioration
क्षत	Injured
खतरा	Danger
खर्च	Cost
खाता	Account
खुला समुद्र	High Sea
गठित है	Consists of
गणना में लेना	Take into account
गबन	Embezzlement
गलत	Erroneous
गृह	House
ग्रहण करना	Entertain
गांठें	Bales
गिरवी	Pledge
गुडविल	Goodwill
घटना	Event

घाटवारी	Wharfinger
घोषित	Declared
चन्दा	Subscription
चलत	Continuing
चित्त विपर्यस्त	Delirious
चिह्न	Mark
छिपाव	Concealment
छूट	Exemption
छूट देना	To remit, to exempt
जंगम	Movable
जमानत नामा	Bail-bond
जयांश भागिता	Champerty
जानबूझ कर	Wilfully
जारी करना	To issue
जीवन पर्यन्त के लिए	For life
जोखिम	Risk
ठहराव	Arrangement
डिक्री	Decree
डिक्रीधारी	Decree-holder
ढंग	Mode
ढुलाई	Freight
तंगी	Stringency
तत्परता	Diligence
तत्वहीन	Immaterial
तत्सदृश	Similar
तत्सम	Corresponding
तत्समय	For the time being
तथ्य	Fact
तदधीन	Thereunder
तदर्थ	Thereto
तन्निमित्त	In that behalf
तरण अयोग्य	Unseaworthy
तस्करित	Smuggled
तात्विक	Material
तुल्य	Equivalent
तुष्टि	Satisfaction

तैयार	Ready
त्यजन	Renouncing
त्रुटि	Fault
दण्डनीय	Punishable
दर	Rate
दर्शित करना	To Show
दलाल	Broker
दस्तावेज	Document
दाता	Donor
दान	Gift
दायित्व	Liability
दायी	Liable
दावा	Claim
दिवालिया	Insolvent
दुरुपयोग	Misuse
दुर्विनियोग	Misappropriation
दुर्व्यपदेशन	Misrepresentation
दुर्व्यापार	Illegal traffic
दूरस्थ	Remote
दृश्यमान	Apparent
देनदार	Debtor
देय	Payable
दैवकृत	Act of God
दोषपूर्वक	Wrongfully
दौरान	During
धमकी	Threat
धान्य भण्डार	Granary
धारण करना	To hold
धारणाधिकार	Lien
धारा	Section
नष्ट होना	To perish
नामित	Named
नाश	Destruction
निक्षेप	Deposit
निगम	Corporation
निजत्व	Privity
निजी	Private

निदेश	Direction
निबन्धन	Term
निम्नांकक	Underwriter
नियत	Specified
नियम	Rule
नियोक्ता	Employer
नियोजक	Employer
नियोजन	Employment
निरंक	Blank
निरसित करना	To repeal
निरर्हित	Disqualified
निराकरण करना	To repudiate
निराकृत करना	To repudiate
निरोध करना	To detain
निर्णय	Judgement
निर्णीत ऋणी	Judgement debtor
निर्दिष्ट	Referred
निर्देशित करना	To refer
निर्निहित करना	To divest
निर्बन्धन	Restriction
निर्मुक्ति	Discharge
निर्योग्य	Disabled
निर्वाचन करना	To elect
निवारित करना	To prevent
निविदत्त	Tendered
निविदा	Tender
निश्चयात्मक	Positive
निश्चित	Certain
निषिद्ध	Forbidden
निष्पन्न	Concluded
निष्पादक	Executor
निष्पादन	Execution
निष्पादित	Executed
निष्पाद्य	Executory
नीलाम	Auction
नुकसान	Damage
नुकसानी	Damages

नैसर्गिक	Natural
नौपरिवहन	Navigation
न्यस्त	Entrusted
न्यास	Trust
न्यासी	Trustee
न्यायनिर्णीत करना	To adjudicate
न्यायपीठ	Bench
न्यायसंगत	Just
न्यायालय	Court
पंद्यम	Wager
पक्षकार	Party
पट्टा	Lease
पड़ा पाने वाला	Finder
पणयमकार	Pawnor
पणयमदार	Pawnee
पत्तन	Port
पद	Expression
पदार्थ	Substance
परक्राम्य	Negotiable
परमविश्वास	Uberrimae fide
पर-व्यक्ति	Third person
परिचारक	Attendant
परिदत्त करना	To deliver
परिदान	Delivery
परिनिर्धारण करना	To settle
परिपक्वता	Maturity
परिभाषित करना	To define
परिमाण	Amount, measure
परिमित	Definite
परिरक्षण	Preservation
परिरक्षण करना	To preserve
परिवर्तित करना	To alter
परिवाद	Complaint
परिसिद्ध करना	To prove
परिसीमा	Limitation
परिहार करना	To remit

परिहार्य	Avoidable
परीक्षण	Trial
परीक्षा करना	To examine
परेषक	Consignor
परेषित करना	To consign
परेषिती	Consignee
परोक्ष	Indirect
पर्यवसान	Determination
पर्याप्त	Sufficient, adequate
पश्चात्वर्ती	Subsequent
पागलखाना	Lunatic asylum
पाड़	Scaffolding
पारिणामिक	Eventual
पारिश्रमिक	Remuneration
पारेषण	Transmission
पारेषित करना	To transmit
पालन	Performance
पुरस्कार	Reward
पुरोभाव्य	Precedent
पूर्ण	Full
पूर्णतः	Wholly
पूर्वतन	Previous
पृथक	Separate
पृष्ठांकन	Endorsement
पेश करना	To offer
पैतृक	Parental
पोत	Vessel, Ship
पोत का मास्टर	Master of the Ship
प्रकट करना	To disclose
प्रकटीकरण	Disclosure
प्रकृत्या	Naturally
प्रक्रम	Stage
प्रक्रिया	Procedure, Process
प्रज्ञापित करना	To intimate
प्रज्ञायुक्त	Prudent
प्रतिकर	Compensation

प्रतिकूल	Contrary
प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना	Without prejudice
प्रतिग्रहण	Acceptance
प्रतिगृहीत करना	To accept
प्रतिगृहीता	Acceptor
प्रतिधारक	Retainer
प्रतिधारण करना	To retain
प्रतिधृत करना	To retain
प्रतिनिधि	Representative
प्रतिपादना	Proposition
प्रतिपूर्ति	Reimbursement
प्रतिपूर्ति करना	To recoup
प्रतिफल	Consideration
प्रतिभू	Surety
प्रतिभूति	Security
प्रतिरक्षा करना	To defend
प्रतिवादी	Defendant
प्रतिषिद्ध	Prohibited
प्रतिसंदत्त करना	To repay
प्रतिसंहरण	Revocation
प्रतिस्थापित करना	To substitute
प्रतीक	Symbol
प्रत्यय	Credit
प्रत्यर्थी	Respondent
प्रत्याख्यान करना	To deny
प्रत्याभूति	Guarantee
प्रत्यावर्तित करना	To restore
प्रत्याहरण करना	To withdraw
प्रत्युद्धरण	Recovery
प्रथा	Usage
प्रदाय	Supply
प्रदेय	To be awarded
प्रपीड़न	Coercion
प्रभार	Charge
प्रभाव डालना	To affect
प्रयुक्त करना	To exercise
प्रयोजन	Purpose

प्रवंचना करना	To deceive
प्रव्यंजना करना	To profess
प्रवर्तनीय	Enforceable
प्रवहन करना	To convey
प्रविरत रहना	To forbear, To abstain from
प्रवृत्त	Operative
प्रवृत्त होना	To come into force
प्रशमन	Composition
प्रश्न	Question
प्रसंगति	Incident
प्रसंस्करण	Processing
प्रस्थापक	Proposer
प्रस्थापना	Proposal
प्राक्कलन	Estimate
प्राख्यान	Assertion
प्राधिकार	Authority
प्रापक	Receiver
प्राधिकृत	Authorised
प्राप्तवय	Of the age of majority
प्राप्ति	Receipt
प्रायः	Usually
प्रायिक	Usual
प्रीमियम	Premium
प्रिवी काउन्सिल	Privy Council
प्रेम	Love
प्रेषित करना	To despatch
प्रोद्भूत	Accrued
प्रोबेट	Probate
फरार होना	To abscond
फर्म	Firm
फायदा	Benefit, advantage
फायदाप्रद	Beneficial
फेरफार	Variance
फैक्टर	Factor
बन्धक	Mortgage

बन्धककर्ता	Mortgagor
बन्धकदार	Mortgagee
बन्ध-पत्र	Bond
बकाया	Arrear
बाकी	Balance
बाजार दाम	Market price
बाजार भाव	Market price
बाजार-मूल्य	Market value
बातिल करना	To annul
बाध्यता	Obligation
बीमा	Insurance
बेईमानी	Dishonesty
बैरल	Barrel
ब्याज	Interest
भरण-पोषण	Maintenance
भरण-पोषण करना	To maintain
भांडागार	Warehouse
भाग	Part
भागतः	Partly
भागिक संदाय	Part-payment
भागीदार	Partner
भागीदारी	Partnership
भाटक	Rent
भाटक पर देना	To let
भाड़े पर	For hire
भार	Burden
भारतीय दण्ड संहिता	Indian Penal Code
भारतीय साक्ष्य अधिनियम	Indian Evidence Act
भारित	Charged
भाव	Sense
भुलावा देना	To mislead
भूल	Mistake
भू-स्वामी	Landlord, land proprietor
मत्त	Drunk
मद्दे	Toward
मरम्मत	Repair

मर्म	Essence
मर्मभूत	Essential
मानसिक	Mental
मान्यता देना	To recognise
माफी देना	To excuse
मामला	Case
मामूली	Ordinary
माल	Goods
मालिक	Principal
मितीकाटा	Discount
मिथ्या	False
मिश्रण	Mixture
मुख्तार	Mukhtar
मुचलका	Recognizance
मुजरा	Set off
मूलऋणी	Principal Debtor
मूल्य	Value
मौखिक	Oral
मौन	Silence
मौनानुकूलता	Connivance
यथापरिभाषित	As defined
यथास्थिति	As the case may be
यात्रा-भाड़ा	Passage-money
युक्ति-युक्त	Reasonable
युक्तिसंगत	Rational
योग्य	Able
रजामंद	Willing
रजामन्दी	Willingness
रजिस्ट्रीकरण	Registration
रद्द करना	To cancel
रसद	Provision
राजस्व	Revenue
राज्य	State
राज्यपाल	Governor
राशि	Sum
राष्ट्रपति	President

रियायत	Concession
रुग्णता	Illness
रूढि	Custom
रोकड़	Cash
लाभदायक	Profitable
लिखत	Instrument
लिखित	In writing
लूट	Robbery
लेख-बद्ध करना	Put into writing
लेखा	Account
लेनदार	Creditor
लोक कर्तव्य	Public duty
लोकनीति	Public Policy
लोकसेवा	Public Service
लोकात्मा-विरुद्ध	Unconscionable
लोप	Omission
वंचित करना	To deprive
वचन	Promise
वचन गृहीता	Promisee
वचनदाता	Promisor
वचनपत्र	Promissory note
वचनबन्ध करना	To engage
वणिक	Merchant
वर्ग	Class
वर्णन	Description
वर्धित	Increased, enhanced
वसीयत	Will
वसूल करना	To recover
वस्तु	Article
वस्तुतः	Actually
वहन	Carriage
वहन-पत्र	Bill of lading
वांछा	Desire
वाणिज्या	Merchandise
वाणिज्यिक	Commercial
वाद	Suit

28—377 व्ही०एम०पी०(एन०डी०/81

वाद लाना	To Sue
वादी	Plaintiff
वापसी	Return
वारंटी	Warranty
वारित	Barred
वास्तविक	Real
वाहक	Carrier
विकल्प	Option
विक्रय	Sale
विक्रय-अभिकर्ता	Agent for sale
विक्रयाधिकार पत्र	Bill of sale
विक्रेता	Seller, Vendor
विखंडित करना	To rescind
विचारण न्यायालय	Trial Court
विज्ञापित करना	To advertise
विदेश निवासी	Resident abroad
विदेशी-शत्रु	Alien enemy
विद्यमान	Existent
विधानमंडल	Legislature
विधारित	With held
विधि	Law
विधिक	Legal
विधिपूर्ण	Lawful
विधिमान्यता	Validity
विधिविरुद्ध	Unlawful
विनिधान	Investment
विनिमय	Exchange
विनिमय पत्र	Bill of Exchange
विनियम	Regulation
विनियोग	Appropriation
विनिर्दिष्ट	Specific
विनिर्देशित	Specified
विनिर्माण	Manufacture
विनिश्चय	Decision
विनिहित	Invested
विफल करना	To defeat

विभाजन	Division
विभाजित	Divided
विरत रहना	To refrain
विरुद्ध	Opposed to
विल	Will
विलग कर देना	To part with
विलम्ब	Delay
विल्लंगम	Encumbrance
विवक्षित	Implied
विवाद	Dispute
विवेक	Discretion
विशिष्ट	Particular
विशिष्टतया	In particular
विशेषतः	Specially
विशेष रूप से	Specially
विश्वस्तता	Fidelity
विषय-वस्तु	Subject-matter
विस्तार	Extent
विहित	Prescribed
वृत्ति	Profession
वृत्तिक	Professional
वैध	Legal
वयक्तिक	Personal
व्यतिकारी	Reciprocal
व्यतिक्रम	Default
व्यपदेशन	Representation
व्ययन	Disposal
व्यवसायी	Dealer
व्यवस्था	Order
व्यवहार करना	To deal with
व्यापकता	Generality
व्यापार	Trade
व्यापार स्टाक	Stock-in-trade
व्युत्पन्न	Derived
शक्य नहीं है	Is not capable
शब्द	Word

शर्त	Condition
शास्ति	Penalty
शिक्षु	Apprentice
शून्य	Void
शून्यकरणीय	Voidable
शोधन क्षमता	Solvency
शोध्य	Due
श्रम	Labour
संक्रान्त करना	To pass
संक्रिया	Operation
संग्रह करना	To Collect
संज्ञापित करना	To Signify
संत्यक्त करना	Cast away
संदर्भ	Context
संदाय	Payment
संदेह करना	To doubt
संधारण	Maintenance
संपत्ति	Property
संपदा	Estate
संपरिवर्तित करना	To Convert
संचालन/संचालित करना	Conducting, To conduct
संपूर्ण	Complete
संबंध	Relation
संबलम्	Salary
संयुक्त	Joint
संरक्षा करना	To protect
संवर्ग	Set
संवितरण	Disbursement
संविदा	Contract
संविदा कीमत	Contract Price
संविदा-भंग	Breach of Contract
संविधान	Constitution
संव्यवहार	Transaction
संशोधित करना	To amend
संसूचना	Communication
संसूचित करना	To Communicate
संस्थित करना	To institute

सक्रिय	Active
सक्षम	Competent
सतर्कता	Care
सद्भावपूर्वक	In good faith
सदोष	Wrongfully
समग्र	Whole
समझौता	Compromise
समनुदिष्ट	Assigned
समनुदेशन	Assignment
समनुदेशित	Assignee
समपहरण	Forfeiture
समय क्रमानुसार	In order of time
समर्थ	Capable
समर्थित	Warranted
समविस्तीर्ण	Co-extensive
समान	Equal
समाश्रित	Contingent
सम्मत होना	To agree upon
सम्मति	Consent
सम्यक् रूप से	Duly
सरकार	Government
सर्जन करना	To create
सर्वेक्षक	Surveyor
सशक्त करना	To empower
सशर्त	Conditional
सहन करना	To bear
सह-प्रतिभू	Co-surety
सांपार्श्विक	Collateral
साक्षी	Witness
साक्ष्य	Evidence
साधारण रूप से	Generally
साबित करना	To prove
सामर्थ्य	Capacity
सामान्य	Common
सॉलिसिटर	Solicitor
साहूकार	Money-lender

सिद्धान्त	Principle
सिविल	Civil
सीमा	Limit
सुझाना	To suggest
सुभिन्न	Distinct
सुसंगत	Relevant
सूचना	Notice
सेवक	Servant
सेवा	Service
सौकर्य	Facility
सौदा	Bargain
स्टेट्यूट	Statute
स्थानीय	Local
स्थायी	Permanent
स्थावर	Immovable
स्थिति	Situation
स्थोरा	Cargo
स्नेह	Affection
स्पष्टीकरण	Explanation
स्वतंत्र	Free
स्वत्वधारी	Proprietor
स्वस्थ चित्त	Of sound mind
स्वेच्छया	Voluntarily
हक	Title
हक की त्रुटि	Defect of title
हकदार	Entitled
हस्ताक्षरित	Signed
हस्तान्तरित करना	To Convey
हानि	Loss
हित	Interest
हितबद्ध	Interested
हिताधिकारी	Beneficiary
हेतुक	Cause
हैसियत	Status
ह्रास करना	To impair

□ □ □

प्रमुख सन्दर्भ

ए० सी० दत्त : ऑन दी इण्डियन कॉन्ट्रैक्ट ऐक्ट, 1969, ईस्टर्न लॉ हाउस प्राइवेट लि०, कलकत्ता

वी० डी० कुलश्रेष्ठ : दी इण्डियन कॉन्ट्रैक्ट, सेल ऑफ गुड्स एण्ड पार्टनरशिप ऐक्ट्स, 1970, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ

ए० आई० आर० : कमैण्टरी ऑन दी इण्डियन कॉन्ट्रैक्ट ऐक्ट, ऑल इण्डिया रिपोर्टर लिमिटेड, नागपुर

पोलक एण्ड मुल्ला : इण्डियन कॉन्ट्रैक्ट ऐक्ट, ईस्टर्न लॉ हाउस, कलकत्ता

□ □ □

विषयानुक्रमणिका

अ	पृष्ठ संख्या
अऋज्	
—करार	130
—फायदा	89, 221
—संव्यवहार	253
—संव्यवहार भी	92
अऋजुधाता	147
अकिंचन	131
अग्रिम (अग्रिमों)	328, 330
—के तौर पर	332
—धन	203, 204, 214, 215, 253, 314
—धन के निक्षेप का समपहरण	249, 252
—धन, संविदा को पक्का करने के लिए	215
—संविदा	121, 160, 161
अचल सम्पत्ति	35
—पर भार	35
अटर्नी	77, 286
अध्युपाय	328
सूदखोरी विधि निरसन अधिनियम	13
अधिकरण	131
अधिकारातीत	84
अधिग्रहण	205, 282
अधित्यजन	210
अधिदाय	320
अधिनियम	17
अधिवक्ता	91, 286, 287
—और मुवक्किल के मध्य करार	131, 132
अधिसूचना	214
अन्तरण	214
—भूमि का	204
अन्तराभिवाचिता	287
अन्तरिती	288
अनुतोष	222, 254, 296
अनुदेश	312
अनुदेशों	323, 338
अनुयोग	269
अनुयोज्य	270
—अवयस्क के विरुद्ध	81
—दावा	80, 214

पृष्ठ संख्या

अनुयोजन 296
अनुसमर्थन 35, 297, 299, 314, 315, 335, 343, 344
— द्वारा अभिकरण 313
अनुसमर्थित 142, 315
— अभिकरण के सम्बन्ध में आवश्यक बातें . . . 314
अनुज्ञप्ति 121, 214 347
अनुज्ञा 95, 163
अपकृत्य 223, 298
— के लिए अवयस्क का दायित्व 81
— विधि 346
अपमिश्रित 282
अपाय 257
अप्राप्तवय 76--80, 147, 315
— पुत्र 98
— व्यक्ति 219
अप्राप्तवयता 79
अफीम
— तस्करित 206
अभिकर्ता . . . . 260, 298, 299, 300—315, 316—346
-- अपदेशी 343
-- अप्रकटित 344
-- और पर व्यक्ति के मध्य की हुई संविदा 297
-- कमीशन 289, 304
— का अप्राधिकृत कार्य 317
-- का कब्जा 293
— का धारणाधिकार 330, 334
— का नियोजनक 321, 323
— की श्रेणियां 304, 305
— की क्षतिपूर्ति 321, 322
— के कपट या दुर्व्यपदेशन का प्रभाव 344, 346
— के कब्जे से 289
— के कारबार के संचालन में 328
— के तौर पर 344
— के प्रति मालिक के कर्त्तव्य 323, 324
— के प्राधिकार की विवक्षा में 299
— के प्राधिकार की सीमा 298
— के मालिक के प्रति कर्त्तव्य 324, 328
— कौन हो सकेगा 300
— कृपी 333

पृष्ठ संख्या

-- नियोजक का 297
-- नियोजित करने का अधिकार 76
— प्रत्यायक 304
— प्रतिस्थापित 311, 313
-- प्राधिकृत 143, 344
-- भूस्वामी का 119
— मालिक तथा . . . . . . 96—101
— मिथ्या 342
— मूल 309, 311, 313
— वाणिज्यिक . . . . . . 291—293
— विक्रय 308
— सर्वस्व 304
— सह 305
अभिकरण 291, 293, 296, 299--300, 305, 312, 313--316

अभिकरण
अनुसमर्थन द्वारा — 313, 314
अनुसमर्थित . . . . . 314—317
अभिव्यक्त -- 299
— का पर्यवसान 317, 318
— का प्रतिसंहरण 318
-- का संव्यवहार 297
-- की तुलना में अन्य सम्बन्ध 300--304
— की प्रकृति के अनुसार 309
— की संविदा शून्य 300
— के पर्यवसान का उपाभिकरण पर प्रभाव . . . 318
— के सृजन के लिए 297
— में आपराधिक दायित्व नहीं 299
— विधि 298
अभिग्रहण 324
अभिगृहीत 324
अभिदाय 289
अनुपाती — 272
समान — 182, 221, 272, 299
अभिधारी,
सामान्यिक — 180, 284
संयुक्त — 180
अभिमुक्त 212, 227
अभियुक्त 128
अभियोक्ता 128
अभियोजन,
आपराधिक --
— की अवस्थाओं को छुपाकर 128

पृष्ठ संख्या

अभियोजन
— की धमकी 128
— को कुंठित करना 128
अभिलेख 191
अभिवचन 239
अभिवाक् 222, 239
अयस्क 105
—वचन दाता 137
अवक्रय 288
—के करार 290
अवक्रेता 290
अवचार 262, 265, 282, 325, 327, 329, 330
अवयस्क 38, 76, 296, 301, 302

— आदि सजातीय दोष 91
— और अन्य व्यक्तियों का संयुक्त वचन-पत्र . . . 83
— कंपनी के सदस्यों के रजिस्टर में — 82
— का अपकृत्य के लिए दायित्व 81
— का संरक्षक 82
— की भागीदारी 82
— की संपदा 82
— के दायित्व के संबंध में 79
— को प्रदाय की गई वस्तुओं के लिए दावा . . . 81
— दान गृहीता 83
— द्वारा उठाए गए लाभ 79
— द्वारा निष्पादित विलेख 80
— द्वारा संविदा 76, 79
— न्यासी 83
— वचन गृहीता 88
अवयस्कता
— का अभिकथन 80
— की अवधि में प्राप्त ऋण 79
अविधिमान्य 315, 316
— प्रत्याभूति 273, 274
— संविदा 74, 200
— संविदा के भंग की अवस्थाएं 242
अविधिमान्यता
संविदा अथवा करारों की — 218
अविभक्त हिन्दू परिवार 302

अवैध
— प्रयोजन 126
— स्पष्टतः 300

पृष्ठ संख्या

असंभाव्यता 166, 172
आन्वयिक कपट के अर्थ में 199
-- का अभिवाक् 204, 205
-- का सिद्धांत 205
-- के अर्थ का विस्तार 201
-- के आधारों का वर्गीकरण 200
-- के कारण शून्य 202
-- के कारण शून्य संविदा 167
-- के मामलों में आवश्यक तत्व 200
-- के सिद्धांत का सामान्य अर्थ 199
असम्यक् असर 45, 86, 103, 104

-- और प्रपीड़न में भेद 93
-- का अभिवाक् व सबूत 92
-- का अर्थ 89
-- की स्थितियां 91
-- द्वारा कारित संविदा की शून्यकरणीयता . . . 108
-- द्वारा कारित शून्यकरणीयता की सीमा . . . 108, 109

आ

आडमान 289
-- का करार 289
आढ़त 305
-- पक्की और कच्ची 305
आढ़तिया 305

आन्वयिक सूचना 343
आनुग्रहिक, 277, 278, 280
-- उधार 279
-- कार्य 221
आपराधिक दुर्विनियोग 224
आपात 299, 312
-- की स्थिति 309
-- में प्राधिकार का विस्तार 308
-- स्थिति में 308
आवश्यक प्रदाय अधिनियम 121
आस्तियां 182
आस्थान परिदान 192

इ

इंजीनियर 336
इंग्लैण्ड,
-- की विधि 33, 34, 58, 65, 71, 76, 124, 129, 130, 147, 156

	पृष्ठ संख्या
	181, 184, 199, 204, 205, 211, 245, 269, 289, 320, 329
— में प्रचलित कठोर सिद्धान्त	132
— में प्रचलित विधिक सिद्धान्त	10
— में भी यही विधि	248
— में निर्मित पुराणपन्थी सीमाएं	127

उ

उच्छन्न	321
उत्पाद शुल्क अधिनियम	122
उत्प्रेरित	90, 93, 338, 344-347
उत्तरजीवी	132, 180-182
अंतिम—	181
उद्यापनीय करार	130
उद्देश्य,	
— और प्रतिफल में अतिव्याप्तता	117
करार का—	118, 119
— करार का निमित्त	117
करारों का —,	137
— की कपट पूर्णता से शून्य करार	122
— की विधि विरुद्धता के कारण शून्य करार	116-118
— के अनुसरण में	118
— को परिकल्पना का अर्थ	134
निषिद्ध अथवा अविधिपूर्ण,	118
— पूर्णतः विधि विरुद्ध	132
— भागतः विधि विरुद्ध	132
— विधि का	118
— विधि द्वारा प्रतिषिद्ध बात को क्रियाशील करने का	120
विधि विरुद्ध—	102, 119, 206
उन्मत्तता	322
उन्मोचन,	
ऋण का,—	208
— असम्भाव्यता के कारण	204
— का अर्थ	206-208
— की अवस्थाएं	209-215
— की विधि	199
— दायित्व का,—	189
— परिहार देकर	209
प्रतिभू का—	268
प्रतिभू का भागतः—	266
मांग का—	210

पृष्ठ संख्या

संपूर्ण दावे का— . . .
संविदा का— . . . 210
विखंडन द्वारा— . . . 205, 207, 208
विधिमान्य— . . . 211
उन्मोचित . . . 307
उपनिधाता . . . 336
उपनिहिती और— . . . 275, 277—279, 283—286
--का धारणाधिकार . . . 284—286
-- के कर्त्तव्य और दायित्व . . . 286—288
संयुक्त— . . . 277, 278, 286—289
उपनिधान . . . 285
आनुग्रहिकत: किया हुआ— . . . 224, 275—282, 283
-- का स्वरूप . . . 277
-- की संविदा का पर्यवसान . . . 275
— की संविदा की शून्यकरणीयता . . . 277
— के आनुग्रहिक होने की दशा में . . . 277
-- के प्रयोजन के लिए . . . 278
-- के विषय में . . . 277
गिरवी रूपी— . . . 275
प्रतिभूति के तौर पर किए गए -- . . . 288
भाड़े पर -- . . . 288
मोटर कार का -- . . . 288
-- से सम्बन्धित वाद . . . 283
. . . 295
उपनिहित,
-- और अन्य माल का मिश्रण . . . 283, 284
भाड़े पर -- . . . 290
-- माल . . . 283, 284, 285, 287, 296
उपनिहिती . . . 275—287, 295, 296
-- की विधिक सुरक्षा . . . 285
-- के दायित्व . . . 279
उपयोजन,
कालक्रमानुसार -- . . . 198
उपाप्त . . . 337
उपाभिकर्ता . . . 309—313, 318
-- और प्रतिस्थापित अभिकर्ता में भेद . . . 311, 312
नियोजित -- . . . 309
उपाभिकरण . . . 318

ए

एक्सपोज . . . 321
एकार्ड एण्ड सैटिसफैक्शन -- . . . 210
एग्रीमेंट,
-- बाई परोल . . . 135
-- बाई स्पेशलिटी . . . 135
एजैन्ट . . . 297

पृष्ठ संख्या

एडवान्स 320
एप्रैन्टिस 265
एस्टापल 36
ऐरर 109

ओ

ओवर ड्राफ्ट 262, 291
ओद्योगिक प्रतिष्ठान 88

ऋ

ऋजु
-- करार 130
ऋजुता 147
ऋण (ऋणों) . . . . 198, 208—211, 248, 256, 258, 266, 269—271, 288, 289, 294, 295, 320
-- का अर्थ 143
-- का उन्मोचन 209
-- का संदाय 294, 295
-- की केवल अभिस्वीकृति 145
-- की पूर्ण तुष्टि 210
-- के उन्मोचन का वचन 185
-- के संदाय के लिए 288
-- के अर्द्धांश 182
-- जब नुकसानी हो जाती है 143
-- दाता 289
पत्नी द्वारा किए गए -- 302
परिसीमा विधि वारित -- 143
पुराने -- 273
प्रत्याभूत -- 270
भिन्न -- 266
-- में कमी 188
विशिष्ट -- 198
शोध्य -- 143, 295, 320
हिन्दू पिता द्वारा लिए गए -- 144
ऋणी (ऋणियों) 188, 197, 210
-- (मूल) और प्रतिभू के बीच का सम्बन्ध 183
-- के अनुतोष 317
निर्णीत -- 263
मूल -- . . . . 261—272, 274

क

कटौती (कटौतियां) 331
कब्जा (कब्जे) 289, 290, 293, 317, 332,
आन्वयिक -- 276, 289, 290
-- का परिदान 288, 289

पृष्ठ संख्या

माल पर -- 289, 290
-- में रोके रखने का अधिकार . . . 286
वास्तविक -- 289, 290
विधिपूर्ण -- 292
कम्पनी . . . . 84, 95, 137, 148, [149, 204, 205, 252, 312, 314
— अधिनियम 137
निगमित होने वाली -- 98
कमीशन 123, 304, 319, 323, 330
-- एजेण्ट 297
कपट 6, 40, 86, 218, 292, 330
-- आदि सजातीय दोष 91
आन्वयिक -- 99, 199, 200
--उपेक्षा नहीं 95
-- और दुर्व्यपदेशन में भेद 96, 98,
-- का अर्थ 93
-- (अभिकर्ता के) का प्रभाव 330
-- के आधार पर की जाने वाली कार्यवाही . . 95
-- के बिना क्षति 94
-- छिपाव द्वारा 119
-- द्वारा कारित करारों की शून्यकरणीयता . . 104—106
— पूर्ण 81, 94, 118, 333
मौन द्वारा — 93
--वाले मामलों की मीमांसा 94
विधि में और तथ्य में-- 94
-- वंचित पक्षकार 107
-- वृत्ति 292
-- से अर्जित अभिलाभ 119
-- से ग्रस्त करार 104
क्षति के बिना— 94
करार 5, 6, 35
अधिवक्ता और मुवक्किल के मध्य-- . . . 131
अनिश्चितता के कारण शून्य -- 154, 155
अनैतिक -- 119
अभिकर्ता द्वारा किए हुए--' 346
अभियोजन को कुण्ठित करने का -- . . . 128
अमुक-- 74
अवक्रय का-- 290
असम्भव कार्य करने का— 198
आड़मान का-- 289
आद्यत: शून्य-- 214
-- आरम्भ से ही शून्य--' 216
उद्दापनीय— 130
उद्देश्य अथवा प्रतिफल की विधि विरुद्धता के कारण शून्य -- . 122

पृष्ठ संख्या

एरोस्ट्रैप के विक्रय का -- 252
-- और प्रतिफल 41
-- और संविदा 42
-- और संविदा के बीच प्रभेद . . . 217
ऋजु -- 130
कतिपय अवरोधक -- . . . . . 145—150
कपट अथवा दुर्व्यपदेशन से ग्रस्त . . . 104
-- का आनुषंगिक प्रयोग 134
-- का कराना उद्देश्य न होते हुए भी . . . 88
-- का निमित्त उद्देश्य 116
-- का पालन 206
-- का प्रवर्तन 74
-- का प्रादुर्भाव 135
-- का विलेख 203
-- की प्रवृत्ति में व्यतिकारी भाव 75
-- की प्रवृत्तनीयता संविदा के निमित्त . . . 116
-- की बाध्यकारिता 44
-- (बिना प्रतिफल वाले) की विधिमान्यता . . . 140
-- की विषयवस्तु के बारे में भ्रम 85
-- की शून्यता और प्रवर्तनीयता में भेद . . . 43
-- की शून्यता का पता चलने की स्थितियां . . . 213
-- की शून्यता का प्रभाव 135
-- की शून्यता, प्रतिफल के अभाव में . . . 135
-- की सब शर्तों को 290
-- की सम्पूर्ण विषय वस्तु 85
-- (अभिव्यक्त) के अभाव में 181
-- के उद्देश्य का विधिनिषिद्ध होने के कारण . . . 200
-- के दिन से 85
-- के निबन्धनों के विषय में मतभेद 85
-- के भंग होने की दशा में 129
-- के लिए सक्षम पक्षकार 75
-- के शब्दों के अर्थ 85
-- के शून्य होने का पता चलने के भाव में . . . 216
चार प्रकार के -- 102
चावल लेने का-- 340
जयांशभागिता या संधारण का-- 130
-- जिसके शून्य होने का पता चले 102, 214
-- जिसे विधि द्वारा शून्य बनाया गया हो . . . 79
तत्प्रतिकूल-- 285
दुर्व्यपदेशन से कारित-- 346
पट्टेदारी का-- 206
-- पर मूल का प्रभाव 109-115
पर व्यक्ति से-- 267
परिसीमा विधि वारित ऋण के संदाय का-- . . . 143

पृष्ठ संख्या

पहले की गई बात के प्रतिकर का— 141
पक्षकारों की सहमति युक्त-- 226
पक्षकारों के मध्य माध्यस्थम का-- 151
पूर्णतया वैध-- 216
पंचम का-- 155
पंचम के तौर के और समाश्रित-- 168
प्रतिफल के बिना-- 31
प्ररूपित— 75
प्राइवेट तौर पर-- 273
बिना प्रतिफल के— 256
बीमे का-- 162
भागत: विधि विरुद्ध 132
भागीदारी का-- 162
भूमि के विक्रय का-- 204
माध्यस्थम् का-- 151
माल विक्रय का-- 116
मालिक से किए गए-- 326
लिखित रजिस्ट्रीकृत-- 141
लोकात्मा विरुद्ध 130
व्यापार के अवरोधक-- 148
वचन से-- 116
वाचिक-- 135
-- विक्रय और अवक्रय के 47
विखंडन का— 211
विधिक कार्यवाहियों के अवरोधक-- 150
विधि के उपबन्धों को विफल कर देने वाले-- . . 122
विधित: प्रवर्तनीय-- 74
विधि निषिद्ध— 120
विधि निषिद्धता के कारण शून्य-- 120
विवाह का-- 200
विवाह के अवरोधक-- 147
विशिष्टत:-- 135
शरीर अथवा सम्पत्ति को क्षतिकारी-- . . . 123
शून्य— 21, 22, 23, 38, 119, 121, 127, 128
शून्यकरणीय-- 86, 99, 345,
-- शून्य है 212
स्वेच्छया-- 40
सम्पत्ति परिदत्त करने के-- 251
सशर्त— 163
साम्पार्श्विक-- 118, 157, 158
-- से साम्पार्श्विक 164
संविदा की कोटि में रखा जाने योग्य-- . . . 103
क्षतिपूर्ति के-- 162

पृष्ठ संख्या

का

कान्सट्रक्टिव फ्राड 98
कान्सेन्सस एड इडम 5, 49
कामन लॉ 275, 281
कारखाना अधिनियम 147
कारबार (कारोबार) . . . . . . 146, 147, 291, 298, 317, 324, 325, 328—331, 345

कालाधन
-- का संव्यवहार 133, 134
कावेनैण्ट 251
किस्त (किस्तों) 190, 197, 243

कुर्क 226, 266
कुर्की 290
केवियट एम्पटर 96
कौटुम्बिक
-- व्यवस्था भी एक संविदा 106
क्रेता
-- सावधान का सूत्र 96
क्वाण्टम मैरियट 224, 241
क्वालिटी 480
क्वासी कान्ट्रैक्ट्स 219

ख

खान 328

ग

गबन 128
गारण्टी 67, 250
गिरवी . . . . 277, 288—290
उप — 291
दस्तावेज की— 292
माल की— 288, 290
—रूपी उपनिधान 288
गुडविल,
-- के विक्रय द्वारा स्थापित वृत्ति 149
गेमिंग ऐक्ट 157
गोला बारूद 347

घ

घाटवारी 286
-- का प्रमाणपत्र 292
घुड़दौड़
— के विजेता 155
— से सम्बन्धित संव्यवहार 155

पृष्ठ संख्या

च

चकबन्दी 203
चिटफण्ड 161

छ

छल 6

ज

जमानतनामा 242, 254
जयांशभागिता,
-- और संधारण 129–131
जलयान 233
जिनिंग कारखाना 191
जूरी 248
जोखिम 131, 193, 276, 278, 325
जोखिम पत्र 282
जंगम,
-- वस्तु 275, 317
-- सम्पत्ति 249, 332

ट

टाउन एरिया कमेटी 213
टनैण्ट्स इन कॉमन 284

ठ

ठेका 213, 255
ठेकेदार 213, 255, 301, 302, 336

ड

ड्यूरेस,
-- और प्रपीड़न में भेद 87
-- के पर्याय के रूप में प्रपीड़न 87
डाइवेस्ट 339
डाक्ट्रिन ऑफ प्रिविटी 27
डाक्ट्रिन ऑफ फ्रस्ट्रेशन 199
डाक वारण्ट 292
डिक्री 183, 196, 263, 265, 266, 268
-- का निष्पादन 323
-- के निष्पादन के क्रम में 226
-- के लिए वाद 191
नुकसानी की -- 248
पट्टाकर्ता के विरुद्ध -- 175
-- में व्यतिक्रमी खण्ड 254
समझौते की -- 196
समझौते के आधार पर पारित -- 117, 254
-- हो जाने पर 131

पृष्ठ संख्या

डिक्रीदार 320, 323
डिजाइन 310
डैट्रिमेन्ट 257
डैमरेज 222, 283
डैल क्रैडियर एजैण्ट 304
डैलीगेट 304
डैली गॉन पोस्टेट डैलीगयर 310

द

दत्तक 89, 123
दण्ड प्रक्रिया संहिता 121, 254
दलाल 223, 286, 305
दलाली 127
वैवाहिक -- 127
दस्तावेज (दस्तावेजों) 287, 291
-- के रजिस्ट्रीकरण से सम्बन्धित 74, 140
-- के स्वरूप और अन्तर्वस्तु में भेद . . . 107
-- के सम्बन्ध में कपटपूर्ण दुर्व्यपदेशन . . . 96, 107
हक की -- 292
दाम दुपट 11
दिवालिया 182, 266, 304, 317, 325
दुर्व्यपदेशन 40, 86, 293
-- आदि सजातीय दोष 91
-- और कपट में भेद 96, 98, 99
-- का अर्थ 97
-- (अभिकर्ता के) का प्रभाव 344
-- की परिभाषा की समालोचना 97
दस्तावेजों के सम्बन्ध में कपटपूर्ण-- . . . 96, 107
-- द्वारा कारित करारों की शून्यकरणीयता . . . 104-106
-- से अभिप्राप्त प्रत्याभूति 273
-- से ग्रस्त करार 105
दुर्व्यवहार 322
दुर्विनियोग 127, 338
दुरभि सन्धि 330
देनदार 187, 188, 197, 198, 208, 209, 210, 225
दृश्यमान स्वामी 342

ध

धमकी
अभियोजन की -- 88
कुर्की की -- 128
धर्मगुरू 89
धर्मजता,
-- की घोषणा 131

पृष्ठ संख्या

धारणाधिकार 287, 288, 330, 332, 333
अधिवक्ता का -- 287
अभिकर्ता का -- 332, 333
उपनिहिती का -- 286
-- साधारण और विशिष्ट 286
द्यूत गृह 206

न

न्यस्त 322, 338
न्यागमन,
-- का सिद्धान्त 179
न्याय
-- और विबन्ध के सिद्धान्तों पर 117
सामाजिक— 146-147
न्यायिक बन्धन 49
-- अधिनियम 135
न्यास 27, 301
न्यासी, ... 91, 301, 318
-- तथा हिताधिकारी 91
न्यूडम पैक्टम 31
न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 147
नगर पालिका 213, 302, 336
नवीयन 208, 209
नष्ट परिहार 32, 99
निकाय (निकायी) 222
-- पर भी लागू 222
व्यक्तियों का -- 179
स्थानीय -- 213
संयुक्त -- 179
निगमित निकाय 84
निजत्व 27, 312
-- का सिद्धान्त 27
निम्नांकक 326
नियोजक 297, 299, 300, 301, 318, 323
नियोजन 304, 306, 310, 326, 336, 339
अभिकर्ता का -- 308, 323
उपाभिकर्ता का -- 309
नियोजित 310, 323, 326, 330
-- उपाभिकर्ता 309-312
निर्निहित 339
निर्वाचन 302
निर्वापन 262
निर्हता,
कानूनी -- 84

पृष्ठ संख्या

— की अवधि में संविदा	84
निराकरण	337
निराकृत	328, 334, 337
निवारित	335
निविदत्त	283
निविदा	25, 70
-- का प्रतिग्रहण	70
-- की मर्मभूत शर्तें	73
-- के आमंत्रण के लिए प्रस्ताव	118
-- के लिए किया गया विज्ञापन	25
निष्पादक	91
निक्षिप्त	255
--प्रतिभूति	255
प्रतिभूति के तौर पर ---	249
--राशि	202, 249
निक्षेप	69, 73, 233, 246, 252
अग्रिम धन का --	214, 215
अग्रिम धन के --	249
-- का समपहरण	249-251
-- की संविदा	288
निःशेपी	289, 317
नीलाम	312, 319
-- की संविदा	71
नीलामकर्ता	305, 312
नुकसानी	247, 248, 251, 317, 323, 332
-- का पूर्व अवधारण	247
-- का वाद	172, 228
-- का हकदार	143
--की डिक्री	247
--की राशि	249
-- के तौर का प्रतिकर	241
-- के बाद में	143
परिनिर्धारित --	246-248
वास्तविक --	283
साधारण --	234
नैराश्य का सिद्धान्त	202
नैसर्गिक	
-- न्याय	12, 288
--प्रेम	28, 34, 141
-- स्नेह	28, 34, 141
-- संरक्षक	82
नोटिस	239

पृष्ठ संख्या

प

प्लाट 191, 203
प्लीडर 302
पटसन 187
पट्टा 118, 119, 120, 170, 175, 220
-- की रकम के लिए वाद 206
खान का -- 214
सम्पत्ति का -- 137
संयुक्त -- 181
पट्टाकर्ता 261
पट्टेदार 175, 206, 261
पट्टेदारी 206
पणयम 277
पणयमकार 288-295
व्यतिक्रमी -- 290
पणयमदार 288-295
-- के अधिकार 293
-- के तौर पर कब्जा 294
पत्तन 199
परकाम्य लिखत 254, 338
-- अधिनियम 13, 254
परम विश्वास,
-- की स्थिति 96
-- की संविदा 97
पर व्यक्ति (पर व्यक्तियों) 298, 317, 318, 322, 323, 339, 341
-- की सुरक्षा 316
-- द्वारा अधिकार का प्रवर्तन 35
-- द्वारा वाद की अयोग्यता के अपवाद 34
-- द्वारा वाद की सीमा 33
-- प्रतिफल के लिए 34
-- से ऋण 303
-- से संविदा 297, 323
परिवहन 277-78
-- का दायित्व 281
ट्रकों द्वारा -- 277
रेल द्वारा -- 277
परिवादी 336
परिसीमा
-- अधिनियम 23, 137
-- वारित ऋण 143
-- विधि 143
-- विधि द्वारा वारित 143, 144

पृष्ठ संख्या

-- विधि द्वारा विहित अवधि 207
--विधि वारित ऋण 143
परिहार 210
परेषक 326
अपदेशी — 343
परेषण 282, 292
परेषित 282, 320, 338
परेषिती 225, 282
पक्षकार (पक्षकारों) 225
-- अनुध्यात करते हैं 156
-- अपनी भूल के लिए स्वयं उत्तरदायी . . . 115
अबोध -- 218
कपट के दोषी -- 200
कपट वंचित -- 107
करार के -- 213
करार के लिए सक्षम— 75
-- का आशय 94, 210
-- का पारस्परिक सम्बन्ध 92
-- का पालन के स्थान के विषय में आशय . . . 187
-- का व्यवहार 70
-- का स्वयं का हित 161
-- का समय व्यतीत होने तक 228
-- की क्या स्थिति है 185
-- की तैयारी और रजामन्दी 190
-- की परिकल्पना से परे 241
-- की प्रस्थापना 207, 227
-- की बाध्यता 170
-- की भावना का अनुमान 235
-- की भूल द्वारा कारित संविदा 98
-- की स्थिति 344
-- की स्वतंत्र सम्मति 45, 74
-- की सम्मति कब स्वतंत्र कही जाती है . . . 103
-- की सहमति युक्त करार 226
-- की सहमति से 155
-- की सक्षमता 45
-- की संविदा 321
-- की संविदा के अनुसार 319
-- के अधिकारों को अवरुद्ध करने का करार . . . 145-148
-- के अभिकर्ता द्वारा 93
-- के आचरण 68
-- के आचरण द्वारा 221
-- के आचरण या व्यवहार से 313
— के आचरण से 313
-- के करार द्वारा 251

पृष्ठ संख्या

-- के किसी कार्य को 94
-- के चालू संव्यवहार 196
-- के दायित्व की दृष्टि से 208
-- के परिणाम स्वरूप 324
-- के पारस्परिक संव्यवहार 70
-- के बीच 217, 294
-- के बीच की हुई संविदा 205
-- के बीच संविदा की स्वतंत्रता 147
-- के मध्य किराएदारी की संविदा 117
-- के मध्य प्रवर्तनीय समनुदेशन 121
-- के मध्य माध्यस्थम के करार 151
-- के मध्य समझौता 203
-- के माल के वास्तविक परिदान के 159
-- के वचन के लिए 119
-- के विरुद्ध विखण्डन 255
-- के समान भी प्रतिभू भी आबद्ध 263
-- के सहयोग के बिना 212
-- के ज्ञान 87
-- को एक दूसरे की पहचान 85
-- को नवीन शर्त का ज्ञान 155
-- को हानि 156
-- जनधन के संदाय के लिए बाध्य नहीं 133
तृतीय -- 257
दूसरा -- 339
दूसरे -- 248, 339
दोषत: विखण्डित करने वाला -- 255
-- द्वारा अनुध्यात 205
-- द्वारा अपने वचन का पालन न करना 228
-- द्वारा किए हुए कार्य 137
-- द्वारा नामित राशि 247
-- द्वारा समनुदेशन 172
निकटतम सम्बन्ध वाले -- 140
निर्दोष -- 355
-- ने विचार पूर्वक निर्धारित की है 245
-- पर आबद्धकर 247
-- पर बाध्यकारी 203
फायदा पाने वाला -- 215
मुकदमे का -- 130
मूल संविदा के -- 209
-- में सम्पर्क 331
-- में से एक के विकल्प पर प्रवर्तनीय संविदा 103
व्यतिक्रम करने वाले -- 230
व्यथित 234, 246
विखण्डित करने वाला (वाले) -- 211, 228,

पृष्ठ संख्या

-- सहमत हो सके 288
सक्षम -- 74
-- से फायदा 215
संव्यवहार करने वाले — 338
संविदा का दूसरा -- 93
संविदा के -- 240, 305
संविदा के लिए सक्षम— 74
संविदा भंग करने वाला— 248
संविदा भंग की शिकायत करने वाला— 247, 249
क्षतिग्रस्त— 230
पाड 192, 324
पारघाट परिवहन 121
पारिवारिक व्यवस्था 34
पारेषण
-- का अनुक्रम 62, 70
-- का महत्व 57
पालन 242, 310, 335
अन्य व्यक्ति द्वारा -- 179
अनुबन्धों का -- 204
-- असम्भव हो गया है 202
-- असम्भव हो जाए 200
-- आवश्यक न रहा हो 206
आवेदन पर -- 287
-- और उसकी तीन अवस्थाएं 189-191
-- करने के लिए तैयार और रजामन्द 192
करार का -- 206
-- का समय, स्थान और प्रकार . . . . . 184—189
-- किस क्रम में किया जाए 190
-- की असफलता 195
-- की प्रतिभूति में 246
-- की प्रस्थापना का अर्थ 176
-- की प्रस्थापना के प्रतिग्रहण से इन्कार का प्रभाव . . . . 175—177
-- की सीमा 205
-- के क्रम में 217
-- के क्रम में संदायों का विनियोग 196-197
-- के लिए आवेदन 187
-- के लिए दावा 192
-- के लिए निर्योग्य 227
-- के लिए निर्योग्यता या इन्कारी 178
-- के विषय में अनेक सिद्धान्तों का अधिनियमन 227
— के स्थान पर प्रतिकर 208
— के सम्बन्ध में आस्थान परिदान 193
— के समय की विवेचना 194, 195
— के समय तक प्रतीक्षा 227

पृष्ठ संख्या

— जब साथ-साथ करना हो 189
तत्परता से — 224
दायित्व का — 271
— द्वारा समाप्ति 206
— न किए जाने पर 325
निदेशों का — 324
प्रत्याभूत वचन का — 263
भागत: को — 201
भागत: — 230
भागिक — 179, 203
— में हुए व्यतिक्रम में 236
व्यतिकारी वचनों का — 189-190
वचन का — 189, 190
वचन के — 288, 293, 294
— वचन गृहीता के आवेदन के बिना . . . 185
विनिर्दिष्ट — 189, 203, 223, 228, 230, 236
समग्रत: — 182
समसामयिक रूप में — 178
— से अभिमुक्ति 207, 209
— से इन्कार 342
— से इन्कार का प्रभाव 177
— से छूट 211
— से निवारित करने का प्रभाव 193
संदाय या — 271
संविदा का — 185, 195, 230, 232, 239
संविदा के — 305
संविदा के भाग का — 190
पालिसी 107
पुत्र
अधर्मज — 96, 97
धर्मज — 96, 97
पूर्णपीठ 268
पैरी डेलिक्टो 133, 216
पोत 192, 231, 232, 265, 296, 312, 337
अमुक — 167
— का कप्तान 344
— का बीमा 326
— के मूल्य की प्रतिपूर्ति 118
खुले समुद्र में अंग्रेजी — 87
— का जल जाना 167
— तरण अयोग्य 312
— निर्माता 308

पृष्ठ संख्या

-- मास्टर 308
-- सर्वेक्षक 312
पंचाट 152, 153
पंद्यम,
-- और सट्टे में भेद 156
-- का करार 323
-- का स्वरूप 156
-- की प्रकृति का समझौता 156
-- की संविदा 323
-- के आवश्यक तत्व 157
-- के करारों को 162
-- के तौर का वचन 117
-- के तौर का संव्यवहार 162
-- के तौर के और समाश्रित करार 168
-- के तौर के करारों की शून्यता . . . . 155—161
-- से मुक्त साम्पाश्विक करार 158
प्रत्यय 312, 325, 343
व्यापारिक प्रथा 11, 13, 185
प्रत्याभूत 304, 305, 321
प्रत्याभूति . . . . 262—266, 268, 269
-- का प्रतिसंहरण 260
-- का स्वरूप 256
-- की अविधिमान्यता 273, 274
-- की संविदा 256, 258, 267
-- के करार के लिए 257
-- के तौर पर 277
चलत -- 259-260, 263
-- चलत और साधारण में अन्तर 259-260
दुर्व्यपदेशन से अभिप्राप्त -- 273
प्रतिकर प्राप्त करने की -- 286
प्रतिसंदाय की -- 263
साधारण -- 263
प्रत्यायोजन 310, 312
प्रत्यायोजित 304, 310
प्रत्यावर्तन (प्रत्यावर्तित) 172-173, 213, 214, 215-216, 218, 221, 222, 347
-- का अर्थ 223
प्रत्यास्थापन,
अवयस्क द्वारा उठाए गए लाभ का -- 74, 81
-- का औचित्य 80
प्रत्याहरण 266
अभियोजन का -- 121
निष्पादन का -- 266

पृष्ठ संख्या

प्रतिकर . . . . 192, 195 199, 200, 212—215, 217—222, 229, 230—238, 242, 246—248, 254, 282, 283, 285, 287, 288, 319, 324, 325, 332

अधिकार पूर्ण विखण्डन पर — 254-255

अधिकारोचित— 223, 228, 230, 235

आनुग्रहिक कार्य का — 137

— का अर्थ 230

— का दावा 255

— का वचन 143

— का विभाजन 296

— की अदेयता 242

— की बाध्यता 207

— की युक्ति-युक्त राशि 224

— के उपचार 230

— के तौर पर 296

— के परिणाम के विषय में 288

— के प्राक्कलन के सिद्धान्त . . . . . 234—237

— के विषय में दृष्टान्त . . . . . 230—233

— नाम मात्र का 230

नुकसान के लिए — 178, 230

नुकसानी के तौर का — 241, 242

पहले की गई बात के लिए — 141

— पाने का हकदार 227

भागत: — 288

युक्तियुक्त — 242, 244, 247-248, 249, 251

साधारण और विशेष — 234

प्रतिग्रहण 210, 211, 219, 297

अनन्तिम अथवा आरजी — 71

आचरण से — . . . . 67—69

आत्यन्तिक — 72

— आत्यन्तिक न होकर 163

— का प्रतिसंहरण 57

— (पालन के) का प्रभाव 179

— (सशर्त) की परख, ... 66

— की पुरोभाव्य शर्त 69

— की पुरोभाव्य शर्त को पूरा करने में प्रतिगृहीता की असफलता . 62

— (पालन की प्रस्थापना का) के इन्कार का प्रभाव . . 175

टिकट, रसीद आदि की शर्तों का 119

निविदा का — 72, 73

परिस्थिति से — . . . . 67—69

प्रतिफल के ग्रहण से — 69

बिना शर्त — 163

पृष्ठ संख्या

लेखबद्ध — 57
विहित रीति से — 66
शर्त के अधीन — 163
शर्त के पालन से — 67, 69
सशर्त — 63, 71
प्रतिगृहीत 195, 210, 227, 231, 260, 267, 285, 313, 340
तिधारण 293, 294, 304, 330, 331, 333
प्रतिधारित 332
प्रतिधृत 287, 288, 294, 332
प्रतिपाल्य अधिकरण 93, 130
प्रतिपूर्ति 142, 219, 221, 233, 235, 237, 238, 246, 258, 321, 324, 325, 329, 330, 343, 347
प्रतिफल 6, 21, 22, 28, 199, 298,
अच्छा — 29
अपर्याप्त — 139
— आन्वयिक 34
आनुग्रहिक कार्य का — 136-137
आनुग्रहिक वचन का — 136-137
उचित — 38, 40
उत्तम — 123
उपयुक्त — 142
एकल — 132
—और उद्देश्य में अतिव्याप्तता 117
करार और — 41
— करार का 74, 118
— का उद्भूत होना 33
— का चमत्कार 136
— का भूतकालिक सहवास के लिए औचित्य . . . 39
— का भौतिक मूल्य न होना 52
— का महत्व 28
— का व्यापक अर्थ 32
— का सार दो स्वतंत्र मूल्यों का विनिमय . . . 135
— का होना अनिवार्य नहीं 213
— की अपर्याप्तता 41, 139
-- की आंशिक पूर्ति 215
— की कपटपूर्णता से शून्य करार 122
— की पर्याप्तता 31
— की महिमा 190
— की यथायोग्यता 40
— की व्यवस्था 38

पृष्ठ संख्या

— की व्याख्या 30
— की वापसी के लिए वाद 120
— की विधिमान्यता के कारण 136
— की विधि विरुद्धता के कारण शून्य करार . . . 116
— की समग्रता 31
— के ग्रहण से प्रतिग्रहण 70
— के बिना करार 259
— के बिना की हुई संविदा 28
— के बिना संदाय 225
— के रूप में धन 129
— को अंगीकार करके दिया हुआ वचन 136
— को उद्भूत करना 42
— को सिद्ध करना आवश्यक नहीं 275
ठीक — 139, 140
दत्तक देने का — 123
धन के मूल्य का न होकर वचन— 117
नवीन — 142
निष्पादित और निष्पाद्य 37
पर्याप्त — 256, 257
प्रत्याभूति के करार के लिए— 257
प्रतिवादी की वांछा पर उद्भूत — 33
प्रस्थापना के साथ पेश किया गया — 70
प्रविरति से उद्भूत — 39
— प्राप्त करना 89
बिना — 136
बिना दान — 145
भावी — 37
— भूतकालिक 38
माल की कीमत के रूप में — 32
मूल्यवान 139, 140, 296, 321
लिखित वचन और — 136
व्यतिकारी वचन और — 138
— वचन का निमित्त — 116
वचन गृहीता की ओर से उद्भूत 33
वचनगृहीता की वांछा पर उद्भूत — 33
— वादी की ओर से 33
विधि पूर्ण — 42
— विधिमान्य हो 132
विधि विरुद्ध — 102, 118
विवाह उपाप्त करने का — 129
— सम्बन्धी अवधारण 31
समनुदेशित करने का — 117
समुचित — 125, 137
— से वचन 116

30—377 व्ही० एस० पी० (एन० डी०)/81

पृष्ठ संख्या

— से समर्थित करार 41
संविदा के लिए — 30
हेतु और — 30, 31
प्रतिभू . . . . 181—183, 258, 259, 262—272
— का दायित्व 258, 261
— की मृत्यु पर 260
— की स्वेच्छा 261
— की सम्पदा 261
— के उन्मोचन की अवस्था से . . . . . 262—266
— के दायित्व की सीमा 261
— के प्रतिनिधि 261
मूल ऋणी और — 189
प्रतिभूति . . . . 144, 189, 191, 266—268, 291, 305, 321, 329
— का समपहरण . . . . . . 249—251
— के तौर पर 189, 288, 296, 304, 319
— के रूप में प्रतिधृत 286
तीन प्रकार की — 288
निक्षिप्त — 255
पालन की — 246
वचन पत्र की — 265
सांपार्श्विक — 294
प्रतिसंदाय 225, 242, 263, 319
प्रतिसंहरण . . . . 260, 290, 317—319, 321, 322
अनुज्ञप्ति का — 213
असंसूचित — 60
— की रीति 60, 207
— की सूचना 260
की संसूचना के लिए विधि का उपबन्ध . . . 54
की संसूचना प्रस्थापक के विरुद्ध बाध्यकारी . . . 62
— के नियम 194
— के विषय में भारतीय विधि की विशेषता . . . 57
— तीसरे पक्ष द्वारा 61
दान का — 144
पर्याप्त — 60
प्रत्याभूति का — 260
प्रतिग्रहण का — 57
प्रस्थापना का — 57
प्राधिकार का — . . . . . . 317—319
विवक्षित — 318
सम्मति का — 104
समय पूर्व — 321

पृष्ठ संख्या

प्रतिसंहृत 298

प्रतिषेध

— का सृजन 121

बाल विवाह का — 121

प्रतीप दावा 169

प्रथा (प्रथायें, प्रथाओं) 9, 12, 13, 70, 241, 307, 309, 321, 331

प्रपीड़न . . . . 87—93, 104—106

— और असम्यक असर में भेद 93

— और ड्यूरेस में भेद 87-88

— का अर्थ 87, 226

— का लक्ष्य दूसरा पक्षकार 87

— का स्रोत 87

— के विस्तार का परीक्षण 88-89

— ड्यूरेस के पर्याय के रूप में 87

— द्वारा कारित करारों की शून्यकरणीयता . . . 104-107

— द्वारा धन का संदाय 89

— द्वारा प्राप्त संदाय का दायित्व 225

प्रभार 261

प्ररूप 306, 307, 334, 335

प्रवर्तनीय

— करार 257, 264, 267, 268

प्रविरति 164, 257, 267, 268

प्रवंचना 94, 97, 98, 344

प्रशासन परिषद 335

प्रस्ताव 26, 136, 254

— करने के लिए आमंत्रण 26

— को आमंत्रित करने वाला पक्ष 26

— के प्रतिग्रहण में वचन 67

निविदा के आमंत्रण के लिए— 118

सर्वसम्मति से — 136

प्रस्थापक,

— की उन्मत्तता 63

— की मृत्यु 63

प्रस्थापना 20-22, 27, 42, 219, 298, 329

अनिश्चयात्मक— 24

— ऑफर का पर्याय 22

— आमंत्रित की 203

— और वचन में भेद 26

— (पालन की) का अर्थ 176, 177

— का नीलाम की संविदा में प्रतिग्रहण . . . 71

— का पत्र 59

31—377 व्ही० एस० पी० (एन० डी०/81

	पृष्ठ संख्या
— का पूर्वज्ञान	68
— का प्रतिगृहीत होना	21
— का प्रतिसंहरण	57
— का प्राण	33
— का वचन बन जाना	21
— का विनिर्दिष्ट समय से पूर्व प्रतिसंहरण	62
— की शर्तों के पालन से प्रतिग्रहण	61
— का संज्ञान	68
— की शर्तों का पालन	51
— की शर्तों के अनुपालन से प्रतिग्रहण	68
— की शर्तों में परिवर्तन का प्रभाव	66
— के आवश्यक तत्व	22
— के खुले रहने की अवधि	59
— के प्रतिसंहरण सम्बन्धी सार की बातें	60
— के लिए आमंत्रण	26
— के वचन में सम्परिवर्तित होने की शर्तें	63, 64
— के विधिक स्वरूप का निरूपण	22
— के सम्बन्ध में अवधारणाएं	23
— को अस्वीकार करने की बाध्यता	65
— को बिना शर्त स्वीकार कर लेना	64
— गृह बेचने की —	57
— घोषणा की —	53
— जिनमें प्रतिग्रहण का स्वरूप विनिर्दिष्ट न हो	62
— जिसमें समय का निर्देश नहीं होता	62
निविदा की —	124
पालन की —	175, 207, 227
पुरस्कार देने की —	288
— में दी हुई शर्त के पालन से प्रतिफल का उद्भव	62
विशेष —	52, 53
विज्ञापन की —	53-55
समय व्यतीत होने पर व्यतीत होने वाली —	62
सामान्य —	53-55
संयुक्त भाव में की गई —	64
— संविदा का प्रथम चरण	47
प्रसंविदा	247
प्र संस्करण	277, 285, 286
प्रिव्हिटी	26, 312
प्राइवेट	332
प्राधिकार	291, 297, 298, 299, 303, 304, 307, 308, 313, 316, 322, 323, 327, 333, 335, 339, 343, 345
अभिकर्ता के —	306
— अभिव्यक्त	303

पृष्ठ संख्या

अभिव्यक्त और विवक्षित — 306
आपात का — 309
आपात में — 308
आपात में प्रयुक्त किए जाने वाले — 299
उपाभिकर्ता के — 310
— का गठन 316
— का त्यजन 321, 322
— का पर्यवसान 318, 319
— का प्रत्यायोजन 312
— का प्रतिसंहरण 319, 321-322
— का विस्तार 307, 308
— का विस्तार (आपात में) 307
— की विवक्षा में 299
— के प्रतिसंहरण से 317, 321
— के प्रयोग में 301
— के बिना 311
— के विस्तार के भीतर 338
— के विस्तार से परे 337
दृश्यमान — 336
विक्रय करने का — 309
विक्रय का — 315
विवक्षित — 299, 303, 308, 311
विशिष्ट — 339
सामान्य — 338
सीमित — 338
— से परे 336
— से बाहर 335
हितयुक्त — 319, 321, 322, 333
प्राधिकारिता 336
प्राधिकारी 315, 316
प्राधिकृत 156, 258, 259, 276, 292, 297, 298, 321, 323, 336, 338, 343, 344, 345
— अभिकर्ता 143, 145, 189, 302, 311, 315
— और अप्राधिकृत कार्यों का पृथक्करण . . . . 336-338.
— भाग 337
— लाटरी 161
स्पष्टतः — 336
प्राप्तवय 6, 76, 142, 148, 300, 305
प्राप्तवयता 76, 142
— का मिथ्या व्यपदेशन 80
— के कपटपूर्ण व्यपदेशन 81
— पर अनुसमर्थन 79

पृष्ठ संख्या

— पर नवीनीकरण 80

प्रापक 301

शासकीय — 315

प्रीमियम 337

प्रिवी काउन्सिल 130, 215, 238, 241, 245, 268

प्रोबेट (विल का) 319

पृष्ठांकन 296

पृष्ठांकित 288, 293, 338,

पृष्ठांकिती 296

फ

फर्नीचर 266, 338,

फर्म 288, 295, 300, 335

— के कारबार का अभिकर्ता 318

— के भागीदार 300

फरमान 165

फरार 318

फायदा (फायदे) 215, 222, 229

अऋजु — 229

आनुग्रहिक कार्य का — 221

— का उपभोग 314

— का दावा 329

— का निर्धारण 215

— के तात्पर्य में 214

पश्चात्वर्ती विक्रय का — 238

पूर्व प्राप्त — 215

प्रतिभूति का — 266

मालिक का या अभिकर्ता का — 344-346

विशेष — 251

— से अधिक हानि 279

पेरफार 263, 326

फैक्टर 286, 304

ब

ब्याज . . . . 241, 242, 252, 261, 270, 313, 324, 326.

चक्रवृद्धि — 254

नियत — 254

वर्धित — 242, 253

बन्धक — 144, 266, 288, 289

बन्धकदार 144

बन्धकदार 289

बन्धपत्र 242, 253, 272, 273

पृष्ठ संख्या

—जो पूरा अपास्त हो जाए — 254
—रुपए का — 108
सरकार के प्रति दिए गए — 254
बम्बई अग्रिम संविदा नियंत्रण अधिनियम 323
बातिल 337
बिल्टी कर 193
बीमा (बीमे) 161, 336
आग की — 164
—कर्ता 277
—करने वाले 281
—कराने वाला 165
—की पालिसी 326
—की प्रत्येक संविदा में 164
—की संविदा 258
—के करार 162
—दलाल 286, 326
पोत का — 326
बैरल 285
बैंक (बैंकों) . . . . 289, 298, 291, 296, 321, 327.
बैंकार 188, 286
ब्रोकर 305

भ

भागीदार 300, 318, 333, 335
भागीदारी 157
—अधिनियम 8, 13
— का करार 162, 213
भाटक 259, 261, 320
भाड़ेदार, भाड़ेदारी 122, 290
भाण्डागार 175, 185, 318
भाण्डागारिक सर्टिफिकेट 292
भारत
— सरकार 102
— संघ 102, 334, 335
—संघ के किसी राज्य की कार्यपालिका 334
— संघ के राज्य की सरकार 101, 102
भारतीय दण्ड संहिता 87, 89, 128, 156, 161
225
भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 15
भारतीय रेलवे अधिनियम 13
भारतीय साक्ष्य अधिनियम 282
भूतकालिक —
— अनैतिक सम्बन्ध 124
— सहवास 124

32—377 म्ही० एस० पी० (एन० डी०/81

पृष्ठ संख्या

— सहवास के मामले 124-125
— सेवाएं 124
भूतलक्षी 9, 315, 317
भूमि हस्तान्तरण अधिनियम 13
भूल 86, 87, 221, 329
एक पक्षीय — 115
— का अर्थ 109, 110
— का तात्पर्य विस्मृति नहीं 99
— प्रभाव, करार पर 109, 116
— (लक्ष्य की) के आवश्यक तत्व 112, 113
— के प्रभाव का सारांश 116
— चार प्रकार की 99, 100
तथ्य की बात सम्बन्धी — 87
तथ्य के बारे की — 226
तथ्य के बारे में एकपक्षीय — 111, 112
दूसरे पक्ष के कपट, दुर्व्यपदेशन द्वारा कारित — . . . 115
— द्वारा प्राप्त संदाय का दायित्व 225
विदेश में प्रवृत्त विधि के बारे की — 115
विधि के बारे की — 113, 225
विलेख की मान्यता के बारे में — 114
— शब्द की मीमांसा 225, 226
— सम्बन्धी उपबन्ध 110
— सम्बन्धी कुछ अन्य बातें 110, 111
भूस्वामी 120, 122
भेद
आनुग्रहिक किए गए और स्वेच्छया किए गए कार्य में — 137
उपाभिकर्ता और प्रतिस्थापित अभिकर्ता में — 312
कठिनाई और आपात की अवस्थाएं (स्थितियों) में — . . . 309, 328
करार और संविदा में — 214
करार की शून्यता और प्रवर्तनीयता में 43
करार को करने के हेतु और उसके प्रतिफल में — 117
ठीक और मूल्यवान प्रतिफल में — 139, 140
ड्यूरेस और प्रपीड़न में — 87, 88
दस्तावेज के स्वरूप और उसकी अन्तर्वस्तु में — 107
दोनों संविदाओं में स्पष्ट — 165
धारा 32 और धारा 56 का — 199
नामित राशि और शास्ति के तौर के अनुबन्ध में — . . . 244
निष्पादित और निष्पाद्य संविदा में — 202
परिदान और बिल्टी कर परिदान का — 193
पालन के पश्चात् समाप्त और शून्य होकर समाप्त होने वाली संविदाओं में — 207
पंदाम और सट्टे में — 156
पंदाम और सांपाश्विक करार में — 158
प्रतिफल और उद्देश्य में — 116

पृष्ठ संख्या

मालिक और अभिकर्ता के सम्बन्धों में — . . 298
मूल करार और सांपाश्विक करार में — . . . 157
विक्रय और अवक्रय के करार में — . . . 47
विक्रय की, श्रम अथवा कार्य की संविदा में — . 47
विवाह के अवरोधक और विवाहोपरान्त अवरोधक करार में — . 148
शास्ति और परिनिर्धारित नुकसानी में — . . . 247
शून्यता और विधि विरुद्धता में — 117
शून्यता और शून्यकरणीयता में — . . . 102, 103
सशर्त करार और समाश्रित संविदा में — 164
सामान्यिक अभिधारी और संयुक्त अभिधारी में — . . . 180, 181
संविदा और अपकृत्य में — 298
संविदाओं के भिन्न-भिन्न संवर्गों में — . . . 246
क्षतिपूर्ति और प्रत्याभूति का — 256–258
श्रम 6

म

मजदूरी संदाय अधिनियम 147
मतभेद 85
मतैक्य 49, 86
— के अभाव में बाध्यकारी संविदा नहीं 85
- पक्षकारों का — 64
मध्य प्रदेश नगर पालिका अधिनियम 213
मध्यस्थ, मध्यस्थों 193
माध्यस्थम् 24, 75, 151
—अधिनियम 136, 152
— करार 185
— खण्ड 152, 153
— द्वारा अवधारणा 153
माल विक्रय अधिनियम 8, 13, 25, 141
मिथ्या सूचना 85
मिल 240
मिस्टेक 109
मुकदमा (मुकदमें) 129, 130
अकिंचन के रूप में — 136
— का सम्पूर्ण व्यय 130
— का प्रति सट्टे की भावना 130
मुख्तार 119
मुख्तारनामा 260
मुचलका 242
— की राशि का समपहरण 254
न्यायालय में उपसंजात होने के लिए — 177
मुजरा 85, 335, 340
मुजराई 238, 340
मुवक्किल 91, 302
— और अधिवक्ता के मध्य करार 131, 132

पृष्ठ संख्या

मूल ऋणी 256, 259, 264-268 269-272
— का दायित्व 258, 261
— के दायित्व का उन्मोचन 262
— के व्यतिक्रम पर) 258
मूलधन 254
मूल संविदा 238

य

युक्तियुक्त . . . . . . 245, 248, 25 , 307, 322,
— अनुमान 235
— अर्थान्वयन 155
— आधार 269, 302, 340
— उपधारणा 292
— कदम 322
— कारण 303, 319
— तत्परता 199, 288, 308, 322, 327
— परिस्थितियों में 280
— प्रतिकर 242-244, 246-248 249-251
— प्रयत्न 253
— प्राक्कलन 247
— रकम 250
— राशि 224
— रूप से 238
— व्यक्ति 339
— स्थान 186, 187
— समय 62, 185, 338
— सूचना 294, 321
— सौकर्य 212
यूबी रेसाफाइड 96

र

रखेली 133
रजिस्ट्रीकरण 136, 140
— अधिनियम 136
रजिस्ट्रीकृत
— करार 140
— डाक 326
— दस्तावेज 194
राज्यपाल 100, 102, 335,
राज्य सरकार 127
— की ओर से 166

पृष्ठ संख्या

— की कार्यपालिका 334
— के कार्य 371
— द्वारा प्राधिकृत लाटरी 161
राजस्व
— अभिलेख 192
— की प्रतिभूति के निमित्त 121
— की बकाया 119, 220
— के कपट वचन 134
— में वृद्धि 121, 122
— से कपट वंचित 126
रायल्टी 178
राष्ट्रपति 100, 102, 335
रिश्वत 300
रिस्क नोट 281
रूढ़ि (रूढ़ियाँ) 11–13, 307, 309, 310 323, 324, 330, 331,
रेल अधिनियम 15, 281
रेलवे
— कम्पनी 194, 225
— कर्मचारियों का दोष 282
— का दायित्व 281
— के क्लोक रूम में 276
— के कर्मचारियों की अभिरक्षा में 276
— के प्रतीक्षालय 276
— के माल गोदाम 276
— के विरुद्ध वाद 296
— भाड़ा 193
— रसीद 193, 288, 291, 297

ल

लाकर 277
लिक्विडेटिड डैमेजेज 244, 247
लिखत 274, 317
लिपिक 262, 273
लेक कालोनी 203
लेखा (लेखे) 273, 286, 291, 312, 321, 324, 326, 328–331, 332, 342
— जोखा 311
लेनदार . . . . 187, 188, 197, 198, 209, 210, 225, 256, 257-262, 263, 269, 270, 271, 289.
लोक कर्तव्य 242
लोक नियम 126
लोक नीति 6

पृष्ठ संख्या

— की परिभाषा में विस्तार की आवश्यकता . . . 126-127
— की संकल्पना 126
— के नए शीर्षों का निर्माण 126
— के प्रतिकूल अन्य शीर्ष 128-129
— के प्रतिकूल कुछ सुपरिचित शीर्ष . . . 127-128
— के प्रतिकूल होने वाले दो उदाहरण 134-135
— के विरुद्ध 118, 218
— के विरुद्ध करार 126
— के विरुद्ध शर्तें 55
— के विस्तार के सम्बन्ध में दो सम्प्रेषण 126
— प्रतिकूलता 125-126
लोक सेवक, (लोक सेवकों)
— को रिश्वत देने में व्यय किया हुआ धन . . . 300
— द्वारा किए हुए कार्यों को 315
लोक सेवा
— में अधिकारी पद पर नियुक्ति 116
— में नियोजन अभिप्राप्त करने का वचन 119
लोक हित 125
लोकात्मा विरुद्ध 130
लौटरी 161
लॉड्री 282
— वालों के दायित्व 282

व

व्यतिक्रम 119, 181, 183, 185, 192, 215, 221, 237, 235, 242-244, 249-253, 270, 293, 294, 295
पर व्यक्ति द्वारा — 256, 257
मूल ऋणी के — 258
वचन के पालन में — 258
संदाय में — 257
— होने पर 257, 260
व्यपदिष्ट 324, 338-339, 344
व्यपदेशन 338, 344
व्ययन शक्ति 332
व्यवहार वाद 334
ब्याज अधिनियम 13
व्यादेश स्टाक 190, 191
व्यापार समुच्चय 162
व्यावृति,
उपबन्धों — 152
करारों की — 151
गुडविल के विक्रय द्वारा स्थापित— 149

पृष्ठ संख्या

वचन 1, 5, 21, 293, 294
अनुकल्पी -- 206
अभिव्यक्त -- 270
अभिव्यक्त और विवक्षित-- 70
आनुग्रहिक -- 136
आनुग्रहिक कार्य के प्रतिकर का -- 137
-- और प्रस्थापना में भेद 26
-- का संवर्ग 41
ऋण के उन्मोचन का -- 185
-- करार के निमित्त 116
-- का आभास 219
-- का पालन 185, 188,
-- (व्यतिकारी) का पालन 189, 190
-- का प्रतिफल स्वयं -- 32
कार्य करने का -- 243
किसी कार्य को न करने का-- 268
-- की अन्तर्वस्तु 42
-- (व्यक्तिगत प्रकार के) की बाध्यता 172-174
-- की बाध्यता से मुक्ति 207
-- की बाध्यता का ध्येय 169
-- के अनुबन्धों से अधिक 262
-- के पालन का आवेदन 190
-- के पालन का दावा 192
-- के पालन की प्रतिभूति में 246
-- के पालन के लिए दावा 180
-- के पालन में व्यतिक्रम 258
-- के पालन से छूट 211
-- के बल पर 190
-- के लिए स्थान को विनिर्दिष्ट करना 186
-- को विहित प्रकार से पूरा कर देना 189
-- देने और ग्रहण करने पर करार का प्रादुर्भाव 135
पश्चात्वर्ती -- 37
पारस्परिक -- 168
पालित -- 183
पंचम के तौर का -- 117
प्रत्यामूत -- 262
प्रतिकर देने का -- 288
प्रतिफल को अंगीकार करके दिया हुआ -- 136
प्रतिफल से -- 116
प्रविरत रहने का -- 43, 154
भविष्यलक्षी -- 154
-- में प्रयुक्त भाषा 144
लिखित -- 136
लिखित और हस्ताक्षरित -- 143-145

पृष्ठ संख्या

लोक सेवा में नियोजन अभिप्राप्त करने का -- . . . 119
व्यतिकारी — 21, 42, 67, 69, 137, 165, 169, 191, 193, 206
वाद संस्थित करने का -- 40
विवक्षित -- 70, 212, 269, 299
शर्तों द्वारा अभिव्यक्त — 70
स्वेच्छा से दिए हुए — 136
समग्र — 183
— से करार 116
संदाय करने का — 230
संदाय का — 144
— संविदा तन्त्र की कुंजी 32

वचन गृहीता 21, 28, 179, 183, 249
— ओं में से कुछ मर जाएं 180
— की वांछा पर 257
-- के आवेदन के बिना 185, 188
-- के लिए 259
— जहां उपलब्ध हो, ... 188
-- पालन के लिए आवेदन करे 186
— विहित या मंजूर करे 188

वचन दाता 21, 28, 135, 142, 185, 249,
-- ओं की संयुक्तता का दोहरा प्रभाव 184–185
-- का आचरण 257
-- का कितना दायित्व 183
— की इन्कारी 227
— की निर्मुक्ति 184
— की मृत्यु 172
-- की वांछा 22, 31, 33, 137, 141, 142
— के अधिकारों का उल्लेख 259
— के आचरण से 256
— के कारबार के प्रायिक घण्टों में 186
— के प्रतिनिधि, उत्तराधिकारी 172, 173
— के लिए स्वेच्छया 287
— के विरुद्ध 179
— को अपने वचन का पालन करना होगा 227
— को आवेदन करना चाहिए 186
— द्वारा वचन का पालन न किया जाना 227

वचन पत्र . . . . 79, 265, 2?7, 286, 288, 296, 300
— का निष्पादन 80, 82
— का प्राप्तवयता पर नवीनीकरण 80

वचन बद्ध 243, 254
वचनबद्धता 7

पृष्ठ संख्या

वचनबन्ध 7, 193, 243, 256, 263, 278
— की प्रत्याशा 178
प्रत्याशित — 178
वणिक 311, 323, 326, 333, 340
वसीयत 178, 202
वहन पत्र 292, 344
वहन पत्र अधिनियम 13
वाणिज्या 189
वाद हेतुक 152
वायु वहन अधिनियम 281
वाहक 278, 283
— के दायित्व 281
लोक — 278
सामान्य — 237, 281
वाहक अधिनियम 281
विकृत चित्त 83, 317, 322, 323
विक्रयाधिकार पत्र 265
विखण्डन 207, 208, 237, 246, 293
अधिकारपूर्ण — 230
अधिकार पूर्वक — 255
— आदि की संसूचना 260
— की संसूचना 194, 207
— द्वारा उन्मोचन 211
शून्यकरणीय संव्यवहार का — 317
शून्यकरणीय संविदा का — 181
सौकर्य में उपेक्षा द्वारा — 212
संविदा का — 232
विखण्डित 192, 203, 212, 227, 255, 293
— करने वाला पक्षकार 194, 229, 236
विखण्डनीयता,
शून्यकरणीयता और — 103, 104
संविदाओं की — 103-104
विधानमण्डल 262
विधि
अभिकरण की — 333
आपराधिक — 120, 123, 300
— का आशय 295
— का उद्देश्य 119
— का समाकलन 129
— का ज्ञान 226
— की अज्ञानता 103
— की गति समाज के साथ 126

पृष्ठ संख्या

— की दृष्टि से 91, 219
-- की संक्रिया द्वारा . . . 206
-- के अतिक्रमण में 120
-- के अधीन अभिमुक्ति 227
— के अन्तर्गत 286, 321, 323
-- के अर्थ में 221
— के उपबन्धों के अधीन 207
— के उपबन्धों के विरुद्ध संव्यवहार . . 120
— के उपबन्धों को विफल कर देने वाले करार . . 122
-- के बारे की भूल 226
— जो भारत में प्रवृत्त न हो 87, 100
— द्वारा 165, 315
— द्वारा निषिद्ध 89, 118
— द्वारा प्रतिषिद्ध 120, 218
निर्णयज — 219, 234, 330
परिसीमा सम्बन्धी — 197
प्रचलित — 199
प्रवृत्त — 262
भारत में प्रवृत्त — 100
— मन्त्रालय 207
— में कपट 95
— वारित ऋण 130
स्वीय — 122
सकारात्मक -- 199
सुस्थिर— 209
संविदाओं से सम्बन्धित— 9
विधि आयोग 8
विधिक
— अधिकार (गिरवी करने का) 292
— अधिकार (पड़ा माल पाने वाले के) 287
— अधिकारों की सृष्ठि 118
— अर्हता 76
— आधार 200
— उपचार 74, 89, 129, 228, 298
— उपधारणा 300
— उपबन्ध 225
— कर्त्तव्य के उत्पन्न होने की दशाएं . . . 40
— कार्यवाही 311
— कार्यवाही के अवरोधक करार . . . 150-154
— दायित्वों का 139
— दृष्टि से 257
— परिणाम 263, 268, 333, 335,
— परिणामों के लिए 332
— परिभाषा 102

पृष्ठ संख्या

— प्रक्रिया 236, 262, 308
— मांग 220
— शब्दावली 109
— शर्तों का अपवर्जन 241
— स्थिति 248
— स्थिति में परिवर्तन 209
— सम्बन्ध 299
— सम्बन्धों के निर्माण का आशय . . 45
— सुरक्षा (उपनिहिती की) 285, 286
— सुरक्षा का अवयस्क को लाभ . . . 81
— संक्रिया 171, 262, 298
विधित: 225, 297, 304, 316, 332
— आवद्ध 220, 221
— निर्गमित होने से पूर्व . . . 314
— प्रवर्तनीय करार 74, 257
— प्रवर्तनीय कौन सा करार . . . 74
— प्रवर्तनीय नहीं है 213, 214, 217
विधि निषिद्धता . . . 120, 122
— के कारण करारों की शून्यता के उदाहरण . . . 120
विधि पूर्ण 315, 121, 323, 347
— अनुदेश 301
— उद्देश्य . . . 74, 86
— ऋण 197
— कब्जा 292
— प्रतिफल 42, 74, 86, 118, 307, 323
— प्रभार 288
— मांग 286
— वृत्ति 148
— स्वामी 292
विधिपूर्वक 222, 236
विधि मान्य 46, 140, 200, 291, 307, 314
विधिमान्यता 203
करार की — 75
बिना प्रतिफल वाले करारों की — . . . 140
बिना प्रतिफल वाले दान की — 145
विधि व्यवसायी 96, 131
विधि विरुद्ध (विरुद्धता) 199, 206, 222, 242
— उद्देश्य 102, 118, 216
— निरोध 226
— प्रतिफल . , 102, 118, 216
— प्रतिफल अथवा उद्देश्य की — . . . 215
— प्रयोजन . . 216
— बताया गया है 162

पृष्ठ संख्या

-- बना देने वाली 93
-- भाग के विधि मान्य भाग से पृथक्करण की सम्भावना . . 133
भागतः— 132
-- रीति 86
-- व्यापार समुच्चय 149
विद्युत अधिनियम 213
विनकुलम ज्यूरिस 5
विनिधान 324
विनिमय दर 326
विनिमय पत्र 260, 261, 269
प्रतिशोध्य -- 267
विनियोग,
-- का निर्देश उपदर्शित हो 197
लेनदार के विवेकानुसार -- 197
संदायों का -- 197, 198
विनियोज्य दावे 136
विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 13, 40, 79, 230
विनिर्दिष्ट पालन 81
विनिहित 324, 329
विपर्यस्तता 83
विबन्ध 36, 225, 285 298, 338
विल का प्रोबेट 319
विलेख,
करार का -- 136
-- का प्रवर्तन 145
-- की मान्यता के बारे में भूल 114
-- की मूल अवस्था में परिवर्तन 209
-- के समय की अवयस्कता 80
-- द्वारा संविदा का गठन 67
पूरक -- 133
विक्रय का -- 154
शून्य -- 80
हक का -- 80
विज्ञापन 26, 67, 68

श

शमनीय,
-- अपराध के अभियोजन के प्रत्याहरण के प्रतिफल में . . . 121
-- और अशमनीय अपराध 128, 129
शर्त, शर्तें, (शर्तों) 78, 276, 292, 293, 300, 311, 332, 333
-- अनुज्ञप्ति में 121
-- अपवर्जन 241
अभिव्यक्त -- 308

पृष्ठ संख्या

आवश्यक -- 276
उपनिधान की -- 279, 282
-- का उल्लंघन 259, 347
-- का निर्वापन 209
-- कानून के प्राधिकार पर 71
-- का पालन 176
-- के अभिव्यजन की शक्ति 70
-- के पालन से प्रतिग्रहण 67-70
-- के विधि विरुद्ध अथवा लोकनीति विरुद्ध होने पर . . 117
नवीन -- 155
नियुक्ति की -- 301
पुरोभाव्य — 73, 152,
बिना -- 252
भाड़े की -- 278
भिन्न -- 299
माध्यस्थम द्वारा विनिश्चित किए जाने की — . . 153
मूलभूत -- 65
लिखत की -- 242
वस्तों की रसीद पर लिखी हुई -- 282
विवक्षित -- 163
समपहरण की -- 249
सरकार के साथ संविदा की -- 100-102
संविदा (के गठन) की 74, 215
शल्य-चिकित्सक 243
शवदाह 89
शास्ति 121, 122, 248, 249, 252, 273, 329
--और परिनिर्धारित नुकसानी में अन्तर 243
-- का अधिरोपण 254
-- के अनुबन्ध युक्त संविदा के भंग पर . . . 242
-- के तौर का . . . . . 243—245, 246, 249, 253, 254
--के तौर की 246, 247, 249
सम्पूर्ण -- 243
संविदा में अनुबद्ध-- 244
शिष्य 91
शिशु 265
शून्य 206, 257, 293, 299
अधिकारातीत और -- 85
अनिश्चितता के कारण — 154
अभिव्यक्ततः -- 102
असम्भाव्यता के कारण-- 200
आद्यतः — 102, 103, 168 213, 335
आरम्भ से -- 216

पृष्ठ संख्या

-- करार 43, 199, 206, 207, 213, 323, 336, 342, 344
-- करार के अधीन संदत्त धन का प्रत्यावर्तन . . 215, 216
नितान्त -- 75
पश्चात्वर्ती घटनाओं के कारण -- 217
-- बताया गया है 162
विधि निषिद्धता के कारण-- 120, 123
-- हो जाने वाली संविदा 217
-- हो जाए 229
-- होने का पता चले 214, 229
शून्यकरणीयता --
उपनिधान की संविदा की -- 278
-- और विखण्डनीयता 102, 104
-- और शून्यता 102, 103
करारों की -- 104
-- के दो वर्ग 104
-- के विकल्प द्वारा 264
शून्यता
-- और शून्यकरणीयता 102, 103
कतिपय अवरोधक करारों की -- 146
पंचम के तौर के करारों की -- 155, 161
समाश्रित करारों की -- 167
शेयर 36, 66, 238, 254
शेयरों 244, 248, 261
शोध्य 294, 295, 331, 340, 342
अन्य व्यक्ति से -- 220
अविधिमान्य संविदा के अधीन -- . . . 226
-- ऋण 144, 185, 270, 295, 309, 321, 330, 332, 335, 340
तत्काल -- 249
-- नहीं 225
-- बाकी 188
-- रकम 332
-- राशि 145, 213
वस्तुतः -- 210
शोधन क्षमता 326
शोरा 231

स्कीम 204, 206
स्टाक एक्सचेंज 254
स्थावर सम्पत्ति 96, 136, 249, 275, 332
-- के अन्तरण की संविदा 195, 289
-- के विक्रय की संविदा 228

पृष्ठ संख्या

स्थोरा 192, 199, 231, 330
स्वस्थ चित्त 6, 83, 84, 300, 305
स्वस्थ चित्तता 76
-- का अर्थ 83
संविदा के प्रयोजन के लिए-- 84
स्वीय विधि 222
सजैशियो फाल्सी 94
सट्टा, सट्टे
उतरते और चढ़ते भावों का-- 161
-- और पंद्यम में भेद 156, 157
कीमतों में अन्तर का -- 159
मुकदमें के प्रति -- 130
सद्भाव 7
-- युक्त अधिकार 107
सप्रैसियो वेरी 94
सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम 8, 13, 15, 96, 136, 251, 248, 289
सम्पदा 329
सम्परिवर्तित 225
सम्बलम् 262
सम्मति 85
-- का प्रतिसंहरण 104
-- की स्वतंत्रता का अर्थ 86
-- जो स्वतंत्र रूप से न दी गई हो 103
-- देने का अर्थ 89
पक्षकारों की स्वतंत्र -- 86
प्रपीड़न द्वारा कारित -- 89
-- प्राप्त करना 89
समदोषिता का सिद्धान्त 133
समदोषी 216
समनुदेश, समनुदेशक, समनुदेशन, समनुदेशित, समनुदेशी . . . 121, 122, 171, 204, 291
अनुज्ञप्ति का— 213
एक पक्षीय -- 171
-- करने की संविदा 264
संविदा का -- . . . . . . 170—172
समपहरण, समपहृत 215, 253
अग्रिम धन के निक्षेप और प्रतिभू का -- . . . 249—252
जमानतनामा या मुचलका का -- 254
प्रतिभूति का -- 255

पृष्ठ संख्या

शेयर का -- 254
समाश्रित,
-- करार और पंद्यम के तौर के करार 168
-- करारों की शून्यता 167
भावी आचरण पर -- 167
-- संविदा 163, 168, 258
-- संविदा और व्यतिकारी वचन 165
-- संविदाओं की शून्यता और प्रवर्तनीयता . . . 166
सरकार 172, 199, 213, 224, 225, 227, 247, 289, 309, 316, 335
-- की ओर से संविदा करने वाला अधिकारी . . . 334
केन्द्रीय -- 242
-- के प्रति दिए गए बन्ध पत्र 239
-- के साथ की हुई संविदा 213, 222
-- के साथ संविदा की शर्तें 100, 102
-- के साथ होने वाली लाभदायक संविदा 232
भारत -- 207, 334
राज्य -- 127, 242
राज्य की -- 136
-- से संविदा 175, 242
संघ -- 100, 102, 335
संघ के राज्य की -- 100, 102
सशर्त
-- और समाश्रित संविदा का मिश्रण 166
-- करार 163
-- करार और समाश्रित संविदा 163
-- संविदा में 163
सह-प्रतिभू 272, 274
-- की निर्मुक्ति 269
-- के परस्पर अधिकार 271
साख 303, 307
साम्पाश्विक 257, 323
-- करार 117, 118, 156, 158
-- करार और मूल करार में भेद 157-159
करार से -- 168
-- प्रतिभू 272
-- प्रतिभूति 267, 294
-- शब्द का प्रयोग अस्पष्ट 164

पृष्ठ संख्या

साम्या 79, 80, 205, 212, 219, 221, 225, 259
सामर्थ्यानुपात का सिद्धान्त 183
सामान्य वाहक अधिनियम 13
सालिसिटर 311
सिविल,
-- अधिकारिता 11
-- दायित्व 129
-- न्यायालय 197
-- प्रकार के वाद 220
-- वाद 94
सिविल प्रक्रिया संहिता 75, 301
संगम अनुच्छेद 136
संयुक्त,
-- अभिधारी 180
-- उपनिधाता 286
-- जीवनों के दौरान 181
-- दायित्व और पृथक्-पृथक् दायित्व 183
-- दायित्वों के विषय में 181
-- पट्टा 183
-- प्रतिभू 267
-- प्रतिभूत्व 269
-- वाद 341
-- संविदा 270
-- हित और दायित्व 181
संयुक्त वचन 182
— गृहीता 175, 181
— दाता 83, 181, 209
— पत्र 82
— में एक वचन दाता की निर्मुक्ति 183
— में न्यागमन का सिद्धान्त 179, 180
— में प्रत्येक वचनदाता की विवशता 181-183
संरक्षक,
— और प्रतिपाल्य 93, 155
-- और प्रतिपाल्य अधिनियम 76
संव्यवहार 85, 119, 215, 219, 253, 259, 262, 273, 276, 289, 293, 298, 299, 302, 304, 305, 307, 323, 329, 330, 332, 336, 338, 340, 342, 343

पृष्ठ संख्या

अऋज ु-- . . . . . 254.
उपनिधान का -- . . 276
उपनिधान के विशेष 280
करार को प्रवर्तनीय मानकर किए हुए -- 103
काले धन का -- 133, 134
—की आवली 259
—की प्रकृति 190, 210
--की प्रकृति से ही शून्यता का बोध 158
--की वित्त व्यवस्था 192
—की विषय वस्तु 98
— के लिए दो पूरक विलेख 133
— के स्वरूप अथवा शर्तों में मतभेद . . . 85
घुड़दौड़ से सम्बन्धित— 156
--जो विधि के उपबन्धों के विरुद्ध हों . . . 120
--जो संविदा नहीं था 137
तीसरे पक्ष से -- 160
तेजी मन्दी के -- 159
दान की कोटि का -- 145
देखने से ही लोकात्मा विरुद्ध — . . . 89
पक्षकारों के चालू — 195
भावी — 260
— भी अऋजु 92
शून्यकरणीय -- 107, 316
स्खलित — 123
सम्पत्ति से सम्बन्धित -- 92
संविदात्मक -- 297
श्रृंखलाबद्ध -- 260
संव्यवहृत 218
संविदा,
-- अथवा करारों की अविधिमान्यता 218
अनिगमित निकाय की -- 84
अप्रकटित अभिकर्ता द्वारा की हुई -- 339
अप्रवर्तनीय -- 335
अप्राधिकृत -- 334
अभिकर्ता और पर-व्यक्ति के मध्य की गई -- . . 298
अभिकर्ता की हैसियत से — 342
अभिकर्ता के तौर पर — 344

पृष्ठ संख्या

अभिकरण की -- 298, 299, 301, 305, 313
अभिनय करने की -- 199
अभिव्यक्त -- 319, 331
अभिव्यक्त या विवक्षित -- 241, 321
-- अमानवीय 147
अशर्त परिदान की -- 275
माल के प्रदाय की -- 246
उधार देने की -- 262
उपाभिकर्ता के नियोजन की -- 311
-- उस व्यक्ति द्वारा जो स्वस्थ चित्त नहीं है . . . 84
एक पक्ष के विकल्प पर प्रवर्तनीय -- 103
-- एक व्यापारिक दस्तावेज 48
एक ही पक्ष की भूल से कारित -- 87
-- और विबन्ध में भेद 47
कपट या दुर्व्यपदेशन के आधार पर -- 346
-- का अन्तिम संस्कार 169
-- का अनुबन्ध 245
-- का अधान्वियन 47, 194
-- का प्ररूप 15
कार्य की -- 47
-- का व्यतिक्रम 2
-- का विधिक मास 44
-- का विनिर्दिष्ट पालन 40, 83, 223
-- का विस्तार 14
-- का समनुदेशन 170, 172
किराएदारी की -- 117
-- की कोटि में रखा जाने योग्य करार . . . 103
-- की प्रकृति 187
-- की प्रवर्तनीयता का अधिकार 207
-- की प्रसंगति 13
-- की बाध्यता, वचन के कारण 169
-- की व्याख्या तथा निर्वचन 14
-- की विषय-वस्तु 120-122
-- की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में मतभेद . . . 86
-- की शर्तों का उल्लंघन 259
-- की शर्तों के अनुसार 187
-- की शून्यता का पता चलने का परिणाम . . . 212

पृष्ठ संख्या

-- की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध 129
-- की समाप्ति 206
-- के अधिकार पूर्ण विखण्डन पर प्रतिकर 255
-- के अधीन प्राप्त फायदा 214, 216, 217
-- के अन्तर्गत किया जाने वाला कार्य 212
— के अनुसमर्थन की विवक्षा 314
— के अपालन से असुविधा 231
— के अर्थान्वियन में दुविधा 117
-- के गठन का क्षण 66
— के गठन की पृष्ठभूमि 49, 50
-- के गठन की शर्तें 74
-- के दो शास्त्रीय तत्व 49
-- के नवीनीकरण की प्रार्थना 24
-- के पक्षकारों की प्राप्तवयता 76
-- के पक्षकारों की बाध्यता 170
-- के पालन की असम्भाव्यता 199
-- के पालन के विषय में 169, 218, 227
-- के पालन न किए जाने से असुविधा 347
-- के प्रवर्तन के विषय में 333, 339, 340
-- के भाग का पालन 191
-- के लिए सक्षमता की वय 76
-- के शून्य हो जाने की स्थितियां 213, 214
-- के सदृश सम्बन्ध 81, 82, 219
-- के संघटनों का निर्वचन 16
-- को प्रभावित करने वाली रूढ़ियां अथवा प्रथाएं . . . 11
-- को विखण्डित करने का हकदार 178
-- को शून्य करने के विकल्प का उपबन्ध 108
— को समाप्त करने का विकल्प 179
-- को समाप्त करने में एक पक्ष सक्षम नहीं . . . 178
गाने की -- 212, 213, 228, 234
गिरवी की — 288
गृह की मरम्मत की -- 231
चावल खरीदने को — 231, 340
-- जिनका पालन आवश्यक न रहा हो 206
— जो विधि विरुद्ध हो जाए 103
-- जो शून्य हो जाए 46, 47, 230
वर्तमानतिकूल — 260, 270, 272, 289, 283, 331

पृष्ठ संख्या

तत्प्रभावी — 333, 340
तेल खरीदने की — 323
तृतीय व्यक्ति से — 270
नवीन — — 80
नवीयन द्वारा रचित — 248
नियोजक और सेवक के बीच — 171
निष्पादित और निष्पाद्य — 202
नीलाम द्वारा गठित होने वाली — . . . 71
पट्टे के नवीनीकरण की — 195
पट्टेदारी की — 202
पत्नी के साथ हुई — 303
पति की ओर से — 302
पोत निर्माण की — 264
प्रतिभूत्व की — 266
प्ररूपित — 68, 75
प्राइवेट— 153
प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध — 118
बाध्यकारी — 73
बेचने की — 318
भागीदारी की — 333
भूल द्वारा कारित — 100
मतैक्य के अभाव में — 85
माल के निक्षेप की — 288
माल के प्रदाय की — 335
माल लादने की — 221
माल विक्रय की — 189
मालिक की ओर से की गई — 299
— में फेरफार 263
— रद्द करने का अधिकार 259
रुई की गांठें बेचने की — 342
लाभदायक — 231
व्यापारिक — 195
वस्तु प्रधान और शर्त प्रधान — 275
— वह करार जो विधितः प्रवर्तनीय हो . . . 43
विक्रय की — 47, 203, 239
विदेशी शत्रु की — 84
विधि की भूल से कारित — 225
विधिमान्य — 200
विनिर्दिष्ट पालन की — 169, 189
विवक्षित — 70, 223, 268, 286
शास्ति के अनुबन्ध मुक्त — 242
शून्य हो जाने वाली — 217
शेयर विक्रय की — 238
स्थावर सम्पत्ति के अन्तरण की — 196

पृष्ठ संख्या

स्वतंत्र -- 299
सद्गुण -- 223, 230
सम्पत्ति समनुदेशित करने की -- 299
सम्पूर्ण -- 25
समापित -- 64-65
साम्पार्श्विक -- 157
सामाजिक समागम और -- 1
सेवा की -- 236
श्रम की -- 47
संविदा अधिनियम,
-- एक सामाजिक अधिनियम 19
-- का उद्देश्य, विस्तार और व्यावृत्ति 9
-- का निर्वचन खण्ड 19, 33, 43-45, 102
संविदा कीमत 233, 234, 236
संविदात्मक सम्बन्ध 13
संविदा भंग 2, 184, 207, 223, 227, 230-231, 234, 235, 238, 239, 240, 244, 246-249, 317, 323
-- का अर्थ 227
-- का सम्भाव्य परिणाम 230
-- की तिथि 236
-- की तीन अवस्थाएं 227
-- की दशा में विधिक उपचार 228
-- की शिकायत करने वाला पक्षकार 249
-- की स्थिति में 254
-- के कारण सहन की गई क्षति 237
-- के परिणामों के विषय में 227-255
-- होने पर 252
संविधान,
-- का अनुच्छेद 100, 137, 146, 147, 195, 222, 315, 334, 335
संसूचना,
-- और उसका तात्विक महत्व 50
-- किसी विशेष रीति से 51
-- की अपूर्णता 50
-- की अभिव्यक्ति, कार्य अथवा कार्य के लोप में . . . 51, 54
-- की क्रिया से मतैक्यता 43
-- की सम्पूर्णता 55-56
-- के आशय से ओत प्रोत 68
डाक, तार अथवा टेलीफोन की -- 70-71
प्रतिग्रहण की -- 51, 57, 68
प्रतीक -- 51
प्रस्थापना की -- 50, 194

पृष्ठ संख्या

विखण्डन — 194, 207
शून्यकरणीय संविदा के विखण्डन की — 194
सांकेतिक — 51
संसूचित 338

ह

हस्तान्तरण पत्र 334
हाउस ऑफ लार्ड्स 155, 157
हाल्सबरी 163, 209
हायर परचेज 290
हिताधिकारी 91
हिन्दू अप्राप्तवयता तथा संरक्षकता अधिनियम . . . 82
हुण्डी 326
होटल,
— वालों के दायित्व 280
— वालों द्वारा बरती गई सुरक्षा 280
होल्डिंग आउट 338

क्ष

क्षतिपूर्ति 267, 270, 279, 299, 300, 304, 318, 323, 324, 332
अभिकर्ता की — 322
— का अधिकार 269
— का स्वरूप 256
— की संविदा 256–259
— के करार 162
— के दायित्व का उद्भूत होना 259
— के वचनदाता के अधिकारों का आधार . . . 192
— धारी 259
वचन गृहीता की — 190

ज्ञ

ज्ञापन 136

□ □ □

मा०स०मू०भा०—से- 9—377 बी०एस०पी०।एनडी।81—7-5-83—3000.

विधि साहित्य प्रकाशन—एल-एल० बी० कक्षाओं के लिए एवं वकीलों, न्यायाधीशों तथा विधि के अध्ययन में रुचि रखने वाले अन्य व्यक्तियों के लिए उपयोगी पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए विशिष्ट लेखकों द्वारा लिखित उच्च स्तर की मौलिक विधि पुस्तकें प्रकाशित कर रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक उसी ग्रन्थमाला का एक पुष्प है।

ग्रन्थमाला की अन्य उपलब्ध पाठ्य-पुस्तकें

दण्ड प्रक्रिया संहिता—लेखक : न्यायमूर्ति महावीर सिंह, मूल्य 46.50 रुपये।

साक्ष्य की विधि—(द्वितीय परिवर्धित संस्करण) — लेखक : रेवाशंकर गोविन्दराम त्रिवेदी, मूल्य : 33.60 रुपये।

भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व—लेखक : डॉ० प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी, मूल्य 36.50 रुपये।

चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष-विज्ञान— लेखक : डॉ० सी० के० पारिख, अनुवादक : डॉ० नरेन्द्र कुमार पटोरिया, मूल्य : 70.00 रुपये।

मुस्लिम विधि—लेखक : प्रो० हफीजुल रहमान, मूल्य : 16.50 रुपये।

श्रम विधि—लेखक : गोपी कृष्ण अरोड़ा, मूल्य : 24.20 रुपये।

प्रशासनिक विधि—लेखक : डॉ० कैलाश चन्द्र जोशी, मूल्य 16.50 रुपये।

अन्तरर्राष्ट्रीय संगठन—लेखक : डॉ० प्रयाग सिंह, मूल्य : 23.80 रुपये।

दण्ड विधि—लेखक : डॉ० रामचन्द्र निगम, मूल्य : 19.00 रुपये।

निर्णय लेखन—लेखक : भगवती प्रसाद बेरी, मूल्य : 11.00 रुपये।

प्राइवेट (निजी) अन्तर्राष्ट्रीय विधि—लेखक : डॉ० पारस दीवान, मूल्य : 6.25 रुपये।

उत्तर प्रदेश भू-धृति विधि— लेखक : उमेश कुमार, मूल्य : 5.00 रुपये।

मध्य प्रदेश भू-विधि—लेखक : शिवदयाल श्रीवास्तव, मूल्य : 10.50 रुपये।

अपकृत्य विधि के सिद्धान्त—लेखक : शर्मन लाल अग्रवाल, मूल्य : 14.50 रुपये।